भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुरायश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र सेठ शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन यन्थमाला

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, श्रपभंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल श्रादि प्राचीन भाषाश्रोंमें उपलब्ध श्रागमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक श्रौर ऐतिहासिक श्रादि विविध-विषयक जैन साहित्यका श्रनुसन्धानपूर्ण सम्पादन होकर मूल श्रौर यथासंभव श्रनुवाद श्रादिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके श्रध्ययन-ग्रन्थ श्रौर लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।

्रियन्थमाला सम्पादक—[प्राक्टत श्रीर संस्कृत विभाग]
्रिड्डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०, नागपुर
डॉ० श्रादिनाथ उपाध्याय, एम० ए०, डी० लिट्०, कोल्हापुर

त्रत्रत्रत्रत्रत्रत्रत्रत्वत्रत्वत्त्रत्वत्त्रत्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत्त्वत् इत्यास्त्रम्बद्धसमम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसममम

प्रकाशक---

अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ ं दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

स्यापनाब्द फाल्गुण कृष्ण ६ चीर नि० २४७०

सर्वाधिकार सुरद्गित

विक्रम सं० २००० १८ फरवरी १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी



स्वर्गीय मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JÑANA-PĪTHA MŪRTIDEVI JAINA GRANTHAMĀLĀ PRAKRIT GRANTHA No. 4

MAHABANDHO

[MAHADHAVAL SIDDHANTA SHASTRA]

2. Bidio Tthidi bandhahiyaro Vol. II

STHITI BANDHADHIKARA

WITH
HINDI TRANSLATION



Editor
Pandit PHOOL CHANDRAJI
Siddhant Shastry.

Published by

Bharatiya Jnanapitha Kashi

First Edition \ 1000 Copies.

MAGHA, VIR SAMVAT 2479 VIKRAMA SAMVAT 2009 FEBRUARY, 1958,

 $\begin{cases} Price \\ Rs. 11/- \end{cases}$

BHĀRATĪYA JŅĀNA-PĪTHA KĀSHI

Founded by

SETH SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTI DEVĪ

JÑÁNA-PĪTHA MŪRTI DEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

∞←∭ਉ~•••--

IN THIS GRANTHAMALA CRITICALLY EDITED, JAIN AGAMIC, PHILOSOPHICAL
PAURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRANSA, HINDI,
KANNADA & TAMIL ETC., WILL BE PUBLISHED IN
THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & JAIN LITERATURE OF POPULAR INTEREST WILL ALSO BE PUBLISHED.

General Editors of the Prakrit and Samskrit Section Dr. HIRALAL JAIN, M. A., D. Litt. Dr. A. N. UPADHYA, M. A., D. Litt.

PRAKRIT GRANTHA No. 4
uuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuuu

PUBLISHER

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

SECY., BHĀRATIYA JÑĀNAPĪTHA, DURGAKUND ROAD, BANARAS.

Founded in Falguna Krishna 9, Vira Sam. 2470

All Rights Reserved.

Vikrama Samvat 2000

18th Feb. 1944

प्रास्ताविक

जंब श्राजसे लगभग छुह वर्ष पूर्व महाबन्धका प्रथम खर्ण्ड प्रकाशित हुन्ना था, तब श्राशा यह की जाती थी कि इस परमागमके शेष खर्ण्ड भी जल्दी-जल्दी श्रनुक्रमसे पाठकों के हाथों में दिये जा सकेंगे। किन्तु इस प्रकाशनके लिए ज्ञानपीठकी बड़ी तत्परता श्रीर उत्साह होते हुए भी सम्पादन सम्बन्धी कठिना ईके कारण वर्षपर वर्ष निकलते चले गये, पर द्वितीय खर्ण्डकी सामग्री संस्थाके पास न पहुंच सकी। श्रन्ततः प्रथम खर्ण्डके सम्पादकसे सर्वथा निराश होकर तथा श्रिधिक विलम्ब करना श्रनुचित समक्षकर श्रन्य सम्पादककी व्यवस्था श्रिनिवार्य हो गई।

इस खरड़के सम्पादक पं॰ फूजचन्द जी शास्त्रीसे विद्वत्समाज भलीभांति परिचित है। घवल सिद्धान्त के सम्पादन व प्रकाशन कार्य में उनका बड़ा सहयोग रहा है, श्रीर श्रव पुनः सहयोग मिल रहा है। उन्होंने इस खरड़के सम्पादनका कार्य सहर्ष स्वीकार किया श्रीर श्राशातीत स्वल्पकालमें ही—केवल कुछ मासोंमें ही—इतना सम्पादन श्रीर श्रनुवाद करके सिद्धान्तोद्धारके पुर्यकार्यमें उत्तम योग-दान दिया है। इस कार्यके लिए ग्रंथमालाकी श्रीरसे हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं, श्रीर श्राशा करते हैं कि वे ऐसी ही लगनके साथ शेष खरड़ोंका भी सम्पादन कर इस महान् साहित्यिक निधिको शीघ सर्वसुलम बनानेमें सहायक होनेका पुर्य प्राप्त करेंगे। कार्य वेगसे किये जानेपर भी, सिद्धहरूत होनेके कारण, परिडत जीके सम्पादन व श्रनुवाद कार्यसे हमें बड़ा सन्तोष हुश्रा है, श्रीर भरोसा है कि पाठक भी इससे सन्तुष्ट होंगे।

यहां हम ज्ञानपीठके संस्थापक श्री शान्तिप्रसाद जो तथा संस्थाके मन्त्री श्री श्रयोध्याप्रसाद जी गोय-लीयकी प्रशंसा किये विना नहीं रह सकते । एक तो उन्होंने निपत्तियों श्रीर निष्नबाधाश्रोंके कारण कभी श्रपने उत्साहको मन्द नहीं होने दिया श्रीर न चोभ उद्घेगको स्थान दिया । श्रीर दूसरे ने प्राचीन जैन सिद्धान्त सम्बन्धी साहित्यके प्रकाशनमें किसी न्यानसायिक लेखे-जोखेसे श्राशङ्कित नहीं होते । प्रत्युत उनकी भावना है कि जितना हो सके, जितनी उत्तम रीतिसे हो सके श्रीर जितने जल्दी हो सके, उतना जैन साहित्यका प्रकाशन किया जाय । हमें निश्नास है कि साहित्यिक निद्धान् उनकी इस उत्तम भावनासे लाभ उठानेंगे श्रीर इस संस्था को उपयोगी ग्रंथ श्रित सुन्दर ढंगसे निद्धत्संसारके सम्मुख उपस्थित करनेमें सहायता प्रदान करेंगे ।

—हीरालाल जैन
—श्रादिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय
श्रन्थमाला सम्पादक

गिरिनगरकी चन्द्रग्रफा

लेखक—डा० हीरालाल जेन

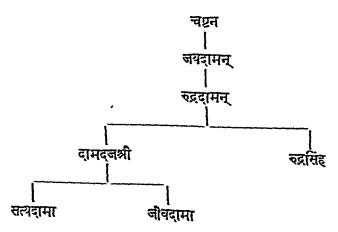
षट्खंडागमकी टीका धवलाके रचियता वीरसेनाचार्यने कहा है कि समस्त सिद्धान्तके एक-देशज्ञाता धरसेनाचार्य थे जो सोरठ देशके गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें ध्यान करते थे [षट्खंडागम, भाग १ पृ० ६७] उन्हें सिद्धान्तके संरत्त्रगाकी चिन्ता हुई । श्रतः मिहमानगरीके तत्कालवर्ती मुनिसम्मेलनको पत्र लिखकर उन्होंने वहाँसे दो मुनियोंको बुलाया श्रीर उन्हें सिद्धान्त सिखाया। ये ही दो मुनि पुष्पदन्त श्रीर भूतविल नामों-से प्रसिद्ध हुए श्रीर इन्होंने वह समस्त सिद्धान्त षट्खंडागमके स्त्ररूपमें लिपि-वद्ध किया।

इस उल्लेखते यह तो सुस्पष्ट हो जाता है कि धरसेनाचार्य सौराष्ट्र (काठियावाड-गुजरात) के निवासी थे श्रीर गिरिनगरमं रहते थे। यह गिरिनगर श्राधुनिक गिरनार है जो प्राचीन कालमें सौराष्ट्रकी राजधानी था। यहाँ मौर्य ज्ञप श्रीर गुप्तकालके सुप्रसिद्ध शिलालेख पाये गये हैं। वाईसवें तीर्थेकर नेमिनाथने भी यहाँ तपस्या की थी, जिससे यह स्थान जैनियोंका एक बड़ा तीर्थक्तेत्र है। श्राधुनिक कालमें नगरका नाम तो सूनागढ़ हो गया है श्रीर प्राचीन नाम गिरनार उसी समीपवर्ती पहाड़ीका रख दिया गया जो पहले ऊर्जयन्त पर्वतके नामसे प्रसिद्ध थी। श्रव प्रश्न यह है कि क्या इस इतिहास-प्रसिद्ध नगरमें उस चन्द्रगुफाका पता लग सकता है जहाँ धरसेनाचार्य ध्यान करते थे, श्रीर जहाँ उनके श्रुतज्ञानका पारायण पुष्पदन्त श्रीर भूतज्ञिल श्राचार्योंको कराया गया था !

खोज करनेसे पता चलता है कि भूनागढ़में बहुत-सी प्राचीन गुफाएँ हैं। एक गुफासमूह नगरके पूर्वीय भागमें श्राधुनिक 'बाबा प्यारा मठ' के समीप है। इन गुफाश्रोंका श्रध्ययन श्रीर वर्णन वर्जेज साहवने किया है। उन्हें इन गुफाओंमें ईसवी पूर्व पहली दूसरी शताब्दि तकके चिह्न मिले हैं। ये गुफाएँ तीन पंक्तियों-में स्थित हैं। प्रथम गुफापंक्ति उत्तरकी स्रोर दिच्णाभिमुख है। इसीके पूर्वभागसे दूसरी गुफापंक्ति प्रारंभ होकर द्विग्। की स्रोर गई है। यहाँकी चैत्य-गुफाकी छत स्रति प्राचीन प्रणालीकी समतल है स्रोर उसके स्राज्-वाज् उत्तर श्रीर पूर्व कोनोंमें श्रन्य सीधी सादी गुफाएँ हैं। इस गुफापंक्तिके पीछेसे तीसरी गुफापंक्ति प्रारम्भ होकर पश्चिमोत्तरकी त्रोर फैली है । यहाँकी छठवीं गुफा (F) के पार्श्वभागमें श्रर्थंचन्द्राकार विविक्त स्थान (2PSE) है, जैसा कि ईस्वी पूर्व प्रथम-द्वितीय शताब्दिकी भाजा, कार्ली, वेदसा व नासिककी वैद्ध गुफाओं में पाया जाता है। अन्य गुफाएँ बहुतायतसे सम चौकौन या आयत चौकोन हैं और उनमें कोई मूर्तियाँ व सजावट नहीं पाई जाती। कुछ बड़ी-बड़ी शालाएँ भी हैं, जिनमें बरामदें भी हैं। ये सब गुफाएँ श्रत्यन्त प्राचीन वास्तुकलाके आध्ययनके लिए बहुत उपयोगी हैं। (Burgess: Antiquities of Kutchli and Kathiawar, 1874—75, P. 189 ff.) ये सब गुफाएँ उनके निर्माण कालकी ऋपेदा मुख्यतः दो भागोंमें विभक्त की जा सकती हैं—एक तो वे चैत्यगुफाएँ श्रौर तत्सम्बन्धी सादी कोठरियाँ जो उन्हें बौद्धोंकी प्रतीत होती हैं श्रौर जिनका काल ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि अनुमान किया जा सकता है जब कि प्रथमवार बौद्धभिन्नु गुजरातमें पहुँचे । दूसरे मागमें वे गुफाएँ व शालायह हैं जो प्रथम भागकी गुफाओंसे कुछ उन्नत शैलीकी बनी हुई हैं, तथा जिनमें जैन चिह्न पाये जाते हैं। ये ईस्वीकी दूसरी शताब्दि ग्रर्थात् चत्रप राजात्रोंके कालकी श्रनुमान की जाती हैं । यहाँ हमारे लिए उन्हीं दूसरे भागकी गुफाओंकी श्रोर ध्यान देना है जिनमें जैन चिह्न. पाये जाते हैं ।

इनमैंकी एक गुफा (K) में खिरतक, मद्रासन, नंदीपद, मीनयुगल और कलशके चिह्न खुरे हुए हैं। ऐसे ही चिह्न मधुराके कैनस्त्वकी खुदाईसे प्राप्त आयागपरों पर पाये गये हैं। (Smith: Jain Stupa (Arch. Survey of India XX, Pt. XI) यही नहीं, वहाँसे एक शिलालेख भी प्राप्त हुआ है, जिसमें चत्रप राजाओं अप्रतिरिक्ष 'केनली' या केनलज्ञानका उल्लेख है। इस परसे उसके जैनत्वमें कोई संशय ही नहीं रहता। दुर्भाग्यतः इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिलालेखकी दुर्दशाकी बड़ी करुण कहानी है। उक्त गुकाके सम्मुख सन् १८७६ से पूर्व कुछ खुदाई हुई थी; उसीमें वह शिलापट हाथ लगा। निकालनेमें ही उसका एक हिस्सा टूट गया। फिर उसे उठाकर कोई शहरके भीतर राजमहलमें ले गया और इसी समय उसके एक ओर कोनेको भारी चृति पहुंची। जब वर्जेज सहब उसका फोटो लेने गये तब उसका पता लगना ही कठिन हो गया। अन्ततः वह महलके सामने गोल नरामदेमें एक जगह पड़ा हुआ मिला। (Arch: Survey of Western India, Vol. II P. 140.) फिर वह कुछ कालतक भूनागढ़ दरचारके छापखानेमें पड़ा रहा। तत्पश्चात् किसी और एक निपत्तिमें पड़कर उसके दो हुकड़े हो गये और इस हालतमें अब वह वहाँके अजायनघरमें उरित्त है।

यह शिलापट्ट दो फुट लम्बा चौड़ा श्रीर श्राठ इञ्च मोटा है। इसके एक पृष्ठभागपर चार पंक्तियों-का लेख है जो १ फुट ६ इंच चौड़ी श्रीर ६ इंच ऊँची जगहमें है। एक-एक श्रन्तर लगभग श्राधा इंच वड़ा है। लेखको क्षति बहुत पहुँ ची है। बीचकी दो पंहितयाँ कुछ सुरिवत हैं, िकन्तु प्रथम श्रीर चतुर्थ पंक्तिका वहुत-सा भाग ऋत्पष्ट हो गया है श्रीर पढ़नेमंं नहीं ग्राता । फिर एक ग्रोरसे जो शिलापट्ट टूट गया है उसके साथ इन पंक्तियोंका कितना हित्सा खो गया यह निश्चयतः नहीं कहा जा सकता। बुल्हर साहबके मतते दूसरी और चौथी पंक्तियाँ पायः पूरी हैं, केवल कोई दो अन्रोंकी हो कमी है। किन्तु यह अनुमान ही है, निश्चित नहीं। उसी कालके अन्य शिलालेखों परते निश्चयतः तो इतना ही कहा जा सकता है कि दूसरी श्रीर तीसरी पंक्तियोंमं जयदामन् नरेशके पुत्र श्रीर पौत्रके नामोल्लेख तथा लेखके वर्षका उल्लेख, सम्भवतः श्रंकों श्रीर शब्दोंमें दोनों प्रकारसे श्रवस्य रहा होगा। लेखकी लिपि निश्चयतः च्त्रपकालकी है। लेख दूय हुन्ना होनेसे उसका प्रयोजन स्पष्टतः ज्ञात नहीं होता । किन्तु जितना कुछ लेख यचा है उससे इतना तो सप्ट हो जाता है कि उसका संबंध जैनधर्मकी किसी घटनासे है। उसमें 'देवासुरनागयत्तराक्षस' 'केविल-ज्ञान' 'जरामरण' जैसे शब्द स्वलित पड़े हुए हैं, जिनसे अनुमान होता है कि उसमें किसी वड़े ज्ञानी और संयमी जैनमुनिके शरीरत्यागंका उल्लेख रहा हो श्रीर उस ग्रावसरपर देव, श्रमुर, नाग, यत्त श्रीर रात्तसींन उत्सव मनाया हो । यह घटना़ 'गिरिनगर' (गिरनार) में ही हुई थी, इसका लेखमें स्पष्ट उल्लेख है। घटनाका काल चैत्र शुक्ल पंचमी दिया है, पर वर्षका उल्लेख टूट गया है। जिस राजाके राज्यकालमं यह घटना हुई थी उस राजाका नाम भी टूट गया है। पर इतना तो स्पष्ट है कि वह राजा स्त्रपवंशके चष्टनका प्रपौत्र व जयदामनका पौत्र था । इस वंशके ग्रन्य शिलालेखों व सिक्कोंपरसे क्षत्रपत्रंशकी प्रस्तुतोपयोगी निम्न परम्पराका पता चल चका है-



ग्रतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि उक्त लेखमें चष्टनके प्रपीत्र और जयदामन्के पौत्रसे चद्रदामन्के पुत्र दामदजश्री या च्रिसिंहका ही अभिप्राय होगा। चप्टनका उल्लेख यूनानी लेखक टालेमीने अपने य थमें किया है। यह यन्थ सन् १३० ईस्वी (शक ५२) के लगमग लिखा गया था। च्रद्रदामन्के समयके सुप्रसिद्ध लेखमें शक ७२ (सन् १५०) का उल्लेख है। च्र्रसिंहके शिलालेख व सिक्कोंपर शक १०२ से ११० व ११३ से ११८-११९ तकके उल्लेख मिले हैं। शक संवत् १०३ का लेख अनेक वातोंमें प्रस्तुत लेखके समान होनेसे हमारे लिए बहुत उपयोगी है। जीवदामन्के शक ११६ से १२० तकके सिक्के मिले हैं। च्रत्रप राजाओंके राज्यकालकी सीमाएँ अभी बहुत कुछ गड़बड़ीमें हैं। इन राजाओंमें यह भी प्रथा थी कि राज्यपरम्परा एक माईके पश्चात् उससे छोटे माईकी ओर चलती थी और जब सब जीवित माइयोंका राज्य समात हो जाय तब नई पीढ़ीकी ओर जाती थी। इससे भी कमनिश्चयमें कुछ कठिनाई पड़ती है। तथापि पूर्वोक्त निश्चित उल्लेखोंपरसे हमें प्रस्तुतोपयोगी इतनी वात तो विदित हो जाती है कि उक्त लेख दामदजश्री या च्रहसिंहके समयका है और इनका समय शक ७२से११६ अर्थात् सन् १५० से १६७ ई० तकके ४७ वर्षोंके भीतर ही पड़ता है। च्रहसिंहके शक १०३ के गुंड नामक स्थानसे प्राप्त लेखको देखनेसे अनुमान होता है कि प्रस्तुत लेख भी उन्हींके समयका और उक्त वर्षके आसपासका हो तो आश्चर्य नहीं। अतः प्रस्तुत लेखका काल लगभग शक १०३ (सन् १८०) अनुमान किया जा सकता है।

हम षर्शंडागमके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें षर्खंडागमके विषयके ज्ञाता धरसेनाचार्यके विषयमें वता स्त्राये हैं कि उन्होंने गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें रहते हुए पुष्पदन्त स्त्रौर भूतविलको सिद्धान्त पढ़ाया था। जैन पट्टाविलयों स्त्रादि परसे उनके कालका भी विचार करके हम इस निर्णयपर पहुँचे थे कि उक्त प्रन्थकी रचना शक १ (सन् ८७) के पश्चात् हुई थी। स्त्रव हम जब गिरिनगरकी उक्त गुफास्रों स्त्रौर वहाँ के उक्त शिलालेखपर विचार करते हैं तो स्त्रनुमान होता है कि सम्भवतः भूनागढ़की ये ही 'बावा प्यारा मठ' के पासकी प्राचीन जैन गुफाएँ धरसेनाचार्यका निवासख्यल रही हैं। चेत्र वही है, काल भी वही पड़ता है। धरसेनकी गुफाका नाम चन्द्रगुफा था। यहाँकी एक गुफाका पिछला हिस्सा—चैत्यख्यान-चन्द्राकार है। स्राश्चर्य नहीं जो इसी कारण वही गुफा चन्द्रगुफा कहलाती रही हो। स्त्रार्श्चर्य नहीं जो उपर्युक्त शिलालेख उन्हीं धरसेनाचार्य की स्मृतिमें ही स्रांकित किया गया हो। लेखमें ज्ञानका उल्लेख ध्यान देने योग्य है। यदि यह लेख पूरा मिल गया होता तो जैन इतिहासकी एक बड़ी भारी घटनापर स्त्रच्छा प्रकाश पढ़ जाता। इस शिलालेखकी दुर्दशा इस बातका प्रमाण है कि हमारे प्राचीन इतिहासकी सामग्री किस प्रकार स्राज भी नष्ट-भ्रष्ट हो रही है।

यह लेख सर्वप्रथम सन् १८७६ में डा॰ बुल्हर द्वारा सम्पादितं किया गया था श्रोर कोटोग्राफर तथा श्रंग्रे जी अनुवाद सहित Archaeological Survey of Western India Vol. II में पृष्ठ १४० श्रादि पर छपा था । यही फिर कुछ साधारण सुधारोंके साथ सन् १८६५ में स्याहीके ठप्पेकी प्रतिलिपि व श्रनुवाद सिंहत 'मावनगरके प्राञ्चत श्रोर संस्कृतके शिलालेख' के पृ॰ १७ श्रादिपर छपा । रैपसन साइवने श्रपने Catalogue of coins of the Andhra Dynasty etc; P. L. XI, No. 40 में इस लेखका संचित परिचय दिया है तथा प्रो॰ लूडसेने श्रपनी List of Brahmi Inscriptions में नं० ६६६ पर इस लेखका संचित परिचय दिया है । यह लिस्ट एपीग्राफीश्रा इंडिका, माग १० सन् १६१२ के परिशिष्टमें प्रकाशित हुई है । इस लेखका श्रन्तिम सम्पादन व श्रनुवादादि राखालदास बनर्जी श्रोर विप्णु एस॰सुखतंकर ने किया है जो एपीग्राफिया इंडिका माग १६, के पृ॰ २३६ श्रादिपर छपा है । श्रोर इसीके श्राधारसे इमने उसका पाठ लिखा है । उक्त गुफाश्रोंका सर्वप्रथम वर्णन वर्जेज साहवने किया है, जो उनकी Antiquities of Kutchh and Kaṭhiawar (1874—75) के पृष्ठ १३६ श्रादि पर छपा है । उनका परिचय हाल हीमें श्रीयुत एच॰ डी॰ संक्लियाने श्रपनी 'The Archaeology of Gujrat' (Bombay 1941) नामक पुस्तकों कराया है ।

प्राप्त लेख इस प्रकार है-

(पं०१)स्तंथा सुरगण [ा] [सत्रा] णां प्रथ [म]

(पं०२) · · · · चाष्टनस्य प्र [पो] त्रस्य राज्ञः स [त्रप] स्य स्वामिजयदामपे [ो] त्रस्य राज्ञो म [हा] · · · · ·

(पं० ३) [चै] त्रशुक्लस्य दिवसे पंचमे ५ इ [ह] गिरिनगरे देवासुरनागय [च]

(पं॰ ४)·····थ [पु] रिमवं प्रामिवं िक्ता] न सं प्रामरण (f I)

अनुवाद

'''''तथा सुरगण्'''''''च्ित्रयोंमें प्रथम''''''च्छनके प्रपौत्रके, राजा ज्ञप स्वामी जयदामके
 पौत्रके, राजा महा'''''चैत्र शुक्लकी पंचमीको ५ यहां गिरिनगरमें देवासुरनागयन्तरान्त्स'''''पुरके
 समान''''केविलिशान सं०'''''के जरामरण्''''''''''

इस लेखकी राजवंशाविल ग्रादिको समभने तथा लेखकी गित-विधिका कुछ ग्राभास देनेके लिए हम चष्टनके प्रपौत्र, जयदामके पौत्र रुद्रदामके पुत्र स्वामी रुद्रसिंहके उस लेखको भी यहां उद्भृत कर देना उचित समभते हैं जो ठीक इसी लिपिमें लिखा हुन्ना गुएड नामक स्थानसे प्राप्त हुन्ना है, जो ग्रपने रूपमें पूरा है ग्रीर जिसमें १०३ वीं वर्षका स्पष्ट उल्लेख है—

गुएडका शिलालेख

- (पं०१) सिद्धं। राजो महत्तत्र [प] स्य स्वामिचष्टनपौत्रस्य राज्ञो स्वत्रपस्य स्वामिजयदाम पौत्रस्य
- (पं०२) राज्ञो महरूत्रपस्य स्वामिरुद्रदामपुत्रस्य राज्ञो चत्रपस्य स्वामिरुद्र-
- (पं०३) सीहस्य [व] पें [त्र] युत्तरशते १००३ वैशाखशुद्धे पंचिमघसितथौ रो [हि] णि नच्च—
- (पं० ४) त्र मुहूर्ते स्राभोरेख सेनापितवापकस्य पुत्रेण सेनापितरुद्रभूतिना प्रामेरसो---
- (पं०५) [प] दिये वा [पी] [ख] नि [तो] [बद्ध] । पितश्च सर्वेसस्वानां हित-सुखार्थमिति ।

अनुवाद

सिद्धं । राना महान्त्रप स्वामिन्चष्टनके, प्रपौत्र, राना च्त्रपस्वामी जयदामके पौत्र, राना महान्त्रपस्वामी रुद्रदामके पुत्र, राना च्त्रपस्वामी रुद्रसिंहके वर्ष एक सौ तीन वैशाख शुद्ध पंचमी तिथिके रोहिस्सी नन्त्रके सुहूर्तमें त्रामीर सेनापित वापकके पुत्र सेनापित रृद्रमूमिने ग्राम रसोपिद्रयमें वापी खुदवाई त्रौर वंधवाई सब नीवोंके हित श्रौर सुखके लिए । इति ।

सम्पादकीय

श्रङ्गों श्रीर पूर्वोंके एकदेश ज्ञाता श्रीर सोरठ देशके गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें निवास करनेवाले प्रातः रमरणीय त्राचार्य धरसेनके प्रमुख शिष्य त्राचार्य पुष्पदन्त त्रीर भूतवितने मिलकर जिस पट्खण्डागमकी रचना की है उसका महाबन्ध यह अन्तिम खरड है। इसके मुख्य अधिकार चार हैं-प्रकृतिकथ, स्थितिकथ, त्र<u>न</u>ुभागवन्य श्रीर प्रदेशवन्य । इनमेंसे प्रकृतिवन्यका सम्पादन श्रीर श्र<u>न</u>ुवाद कार्य श्री पं**र सुमेरचन्द्र** जी दिवाकर शास्त्री, न्यायतीर्थ, बी० ए० एल-एल० बी०] ने अपने सहयोगी पं० परमानन्द जी साहित्याचार्य श्रीर पं॰ क्रन्दनलाल जी न्यायतीर्थ सिवनीके साथ मिलकर किया था । इसे मारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित हुए लगभग पाँच वर्षसे ऊपर हो गए हैं।

यह स्थितित्रन्ध नामक दूसरा अधिकार है। प्रकृतित्रन्धकी अपेन्ना शेष तोनों अधिकार परिमाण्में दूने-दूने हैं, इसलिए इस भागमें मूलपकृतिस्थितिनन्ध और उत्तरप्रकृतिस्थितिनन्धका एक जीवकी अपेका अन्तरातु-गम तकका भाग ही सम्मिलित किया गया है।

हस्तलिखित प्रतिका परिचय-

इसका सम्पादन श्रीर त्रानुवाद कार्य करते समय हमें महाबन्धकी केवल एक प्रति ही उपलब्ध रही है। यह प्रति मेरे जयधवला कार्यालयमें कार्य करते समय श्री श्राखिल भारतवर्पीय दि० जैन संघके साहित्य मंत्री श्री पं॰ कैलाशचनद्र जी शास्त्रीने मूडविद्रीसे प्रतिलिपि करा कर बुलाई थी। भारतीय ज्ञानपीठकी प्रयन्थसमिति और उसके सुयोग्य मन्त्री श्री० पं० श्रयोध्याप्रसादनी गोयलीयने जब यह निश्चय किया कि महाबन्धके स्रागेके भागोंका सम्पादन स्रोर स्रमुवाद कार्य मुक्तसे कराया जाय तब जयधवला कार्यालयसे इस प्रतिको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न किया गया । यद्यपि ऐसे श्रवसरीं पर दूसरे वन्धु किसी प्रन्थकी प्रति स्रादि देनेमं श्रानेक श्रद्धन्वनें उपस्थित करते हैं। वे प्रबन्धके नाम पर उसके स्वामी वनने तकका प्रयत्न करते हैं। किन्तु इसे प्राप्त करनेमें ऐसी कोई ग्रङ्चन नहीं हुई। श्रीमान् पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्रीनीको इस वातके विदित होनेंपर उन्होंने तत्काल इस प्रतिको प्रतिलिपिका लागतमात्र दिलवाकर ज्ञानपीठको सौंप दिया । वही यह प्रति है निसके ग्राधारसे महावन्धका ग्रागेका सम्पादन श्रीर ग्रानुवाद कार्य हो रहा है। यह प्रति श्री पं० वर्धमान पार्श्व-नाथजी शास्त्रीके ज्येष्ठ वन्धु स्व० श्री पं० लोकनाथजी शास्त्रीने ताडपत्रीय प्रतिके त्राधारसे प्रतिलिपि करके भेजी थी। प्रति फुलस्केप साईजके कागजों पर एक श्रोर हाँसिया छोड़कर की गई है। श्रज्ञर सुन्दर श्रीर श्रन्तरसे लिखे हुए होनेसे प्रेसकापीके रूपमें इसीका उपयोग हुन्ना है।

पाठान्तर--

श्री पं० सुमेरचन्द्रजी दिवाकरके पास जो प्रांत है वह भी मूडिबद्रीकी ताडपत्रीय प्रतिके आधारसे की गई है ऋौर यह प्रति भी वहींसे लिपिग्रद्ध होकर ग्राई है। ऐसी ग्रवस्थामं इन दोनों प्रतियोंमें लेखकके प्रमादसे छूटे हुए या दुहराकर लिखे गये कुछ स्थलोंको छोड़कर पाठान्तरोंकी कोई भी शंका नहीं कर सकता। हमारा भी यही श्रनुमान था। हम समभते थे कि ये दोनों प्रतियां एक ही प्रतिके आधारसे लिपिबद्ध कराई गई हैं, इसलिए इनमें पाठमेद नहीं होगा पर हमें यह देखकर स्त्राश्चर्य हुस्त्रा कि पाठान्तर इनमें भी उपलब्ध होते हैं। यद्यपि हमारे सामने पं० सुमेरचन्द्र जी वाली प्रति नहीं है स्त्रीर न उसे प्राप्त करनेका क़ोई प्रयत्न ही किया गया है पर उस प्रतिके स्राधारसे जो प्रकृतिवन्ध मुद्रित हुन्ना है वह हमारे सामने हैं। उसके साथ स्नादर्श प्रति (जो प्रति हमारे पास है) के कुछ पृष्ठोंका हमने मिलान किया है। परिग्णामस्वरूप जो पाठान्तर हमें उपलब्ध हुए हैं उनमेंसे कुछ पाठान्तर उनका प्रकार दिखलानेके लिए हम यहां दे रहें हैं—

```
१. रुजगिन्ह ( श्रादर्श प्रति )। रुजुगिन्ह ( मुद्रित प्रति पृ० २१ )
  २. चउरणमुङ्गी ( स्रा. प्र. )। चदुर्ग्हं बुङ्गी ( सु. प्र. प्र० २२ )
  ३. तहा श्रारणच्चुदा ( श्रा. प्र. ) । तथ श्रारणग्ररणच्चुदा ( सु. प्र. २३ )
  ४, छुद्विं गेवज्जया ( आ. प्र. ) छुद्वी गेवज्जया (सु. प्र. प्र. २३ )
  ५. किं सन्वबंधो ? णोसन्ववंधो । ( श्रा. प्र. )
     किं सन्ववंधो गोसन्ववंधो ? गोसन्ववंधो । ( मु. प्र. ३० पंक्ति १ )
  ६. बंधो वि ( श्रा. प्र. )। वंधोपि ( सु. प्र. पृ. ३०, पंक्ति ४ )
  ७. श्रादेसेग य । तत्थ श्रोघेण गाणांतराइ- ( श्रा. प्र. )
     श्रादेसेण य । णागांतराइ- ( सु. प्र. प्र. ३०, पं. ६ )
  वेदणीयस्स श्रायुगस्स गोदस्स च किं जहरणवंधो ( श्रा. प्र. )
     वेदणीय-श्रायु-गोदाणं किं जहरू वर्षां ( मु. प्र. पृ. ३०, पं. 🖙 )
  ६. तत्थ श्रोघेण सादियबंधो ..... संतीश्रो भूयो ( श्रा. प्र. )
     सादियवंधो '''' 'संतिन्रो भूयो ( मु. प्र. प्र. ३१, पं. १-२ )
१०. एवं मुलपगदिश्रहपदं भंगो काद्द्वो ( श्रा. प्र. )
    एवं मूलपगदि-श्रहपदभंगा कादन्वा मु. प्र. २१, पं. ३)
११, श्रोघेण पंचणा० ण्वदंसणा० मिच्छत्तं सोलसकसायं भयं दुर्गुच्छा तेजाकमा० वगण्०४ श्रगुरु०
    उपघा॰ गिमिणं पंचंतराइगाणं ( श्रा. प्र. )
    श्रोघेण पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त--सोलसकसाय-भय-दुगुंच्छा--तेजा--कम्मइ्य-
    वरण०४-श्रगुरु०-उप०-णिमिण पंचंतराइयाणं ( सु. प्र. ११ पं. ५-६ )
१२. तत्थ श्रोघेण चोद्स जीवसमासा णाद्द्या भवंति । तं जहा (श्रा. प्र.)
    श्रोघेण चोद्दस-जीवसमासा गाद्वा भवंति । तं यथा ( सु. प्र. पृ ३२, पं. २ )
१३. चदुसंठाण-चदुसंघडण-तिरिक्लगदिशस्रोग्गाखपुन्वि उज्जोवं-( ग्रा. प्र. )
    चद्रसंठाण-चद्रसंघाद-तिरिक्खगदिवा० उडजो० (सु. प्र. पृ. ३३, पं. ६ )
१४. णिद्दापयलाणं को बंधगो ? को अबंधगो ? अअंधो अपुन्वकरणपविद्वसुद्धिसंजदेसु ( आ. प्र. )
    णिद्दापयलाणं को बंधगो, श्रवंधो को ? श्रवंधो मिन्छादिद्विपहुडि याव श्रपुःवकरणप्विद्वसुद्धि-
    संजदेसु ( सु. प्र. प्र. ३३, पं. ९-१० )
१५. को बंधगो अबं॰ ? ( आ. प्र. )। को. वंधको, अवंधो ? ( सु. प्र. प्र. ३४, पं. ४ )
१६. को बं को अबं ( आ. प्र. )। को बंधको को अबंधो ( सु. प्र. १८, एं. ८ )
१७. देवगदि० पंचिंदि० वेउन्वि० तेजाक० वेउन्वि०श्रंगो० वर्गण०४ देवाग्रु० श्रगुरु०४ पसस्थवि०
    धिर-सुभ-सुभग-सुस्तर-श्रादे । शिमिणं को बंधो ? को श्रवंधो ? ( श्रा. प्र. )
       देवगदि० पंभिदि० वेडिवेव० तेउजाकम्म० समचदु० वेडिवेवयं अंगोवंग-वरण०४ देवाणु०
    श्रगुरु० ४ पसत्थिवहायगदि० थीरा सुभ-सुभग-सुस्सर-श्रादेज्ज शिमिशं की वंधको को श्रवंधको ?
    ( सु. प्र. पृ. ३५, पं. ६-९ )
१८. यथा दामे ( श्रा. प्र. )। यथा छामे ( सु. प्र. पृ. ३५, पं. २ )
१६. यस्स इ्रां ( त्रा. प्र. )। जस्स इ्रां ( सु. प्र. प्र. ४०, पं. १ )
२०. श्रादेसेण ग्रिरयेसु पंचणागा० छदंसणा० सादासादं वारसकसा० सत्तगोक० मग्रुसगदि पंचिदि०
    श्रोरात्ति॰ तेजाक॰ समचदु॰ श्रोरात्तिय॰अंगो॰ वडजरिस॰ वराग्॰४ ( श्रा॰ प्र॰ )
       श्रादेसेण णिरप्सु पंचणाणावरण छुदंसण्।वरण सादासादं वारसकसाय-सत्तणोकसायाणं मणुस-
    गदि-पंचिदिय-श्रोरालियतेजाकम्मइय-समचदुरससंठाख-त्र्रोरालिय० त्रांगोवंग-वण्ण० ४ ( मु. प्र.
    ष्ट. ४१, एं. ३.५)
```

- २१. णउंसग (थ्रा. प्र.) णउंसक (सु. प्र. प्र. ४१, पं. ८)
- २२. मणुसगिद मणुसगिदपा० को बंधो ? (श्रा. प्र.) मणुसगिद-मणुसगिदपाश्रोग्गाणुपुन्ति-उच्चागोदाणं को बंधको ? (सु. प्र. प्र. ४१, पं० १२)
- २३. तेजाकस्म० (श्रा. प्र.) तेता कस्म० (मु. प्र. प्र. ४३, पं. ३)
- २४. एवं सन्वश्चपज्जत्ताणं सन्वविगत्तिदियाणं सन्वविगत्तिदिः (श्चा. प्र.) एवं सन्वश्चपज्जत्ताणं सन्वपृहंदियाणं सन्वविगत्तिदियाणं च । (सु. प्र. ५३, पं. ७)
- २५. चदुश्रायु० तिरिक्खगदितिगं श्रोघं। (श्रा. प्र.) चदुश्रायु० तिरिक्खगदि श्रोघं। (सु. प्र. पृ. ४७, पं० ७)
- २६. श्रपचक्लाणावर०४ तित्थयरं जह० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। श्रपच्चक्लणावर०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग०। देवगदि४ जह० एग०, उक्क० तिरिण पिलदो० सादि०। (श्रा० प्र०)

श्रपचक्ताणावर०४ तित्थयरं जह० श्रंतो०। उनक० तेत्तीसं सा० सादि०। श्रपचक्ताणा०४ जह० अंतो० उनक० वादालीसं सा० सादि०। श्रथवा तेत्तीसं सा० सादिरे० परिज्जिदि। दो श्रायु श्रोघं। मणुसगिद्दिपंचगं जह० श्रन्तो०। उनक० तेत्तीसं सा०। देवगिद०४ जह० एग०। तिरिण-पिलदो० सादि०। (सु. प्र. प्र. ६१, पं. १-५)

- २७. जह० एग०, उक्क० (था. प्र.) जह० । उक्क० (सु. प्र. प्र. ६१, पं० ५)
- २म. तिरिक्खाणुपु० परघादु० तस०४ (श्रा. प्र.) तिरिक्खाग्रु० तसं०४ (सु० प्र. प्र. ६३, पं. १)
- २९. श्रणंताणुवं०४ जह० ए०, (श्रा. प्र.) श्रणंताणुवं० ४ एय० । सु. प्र. ६३, पं. ८)

यहाँपर हमने विविध तथ्योंको स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण कुल २६ पाठान्तर ही उपस्थित किए हैं। इनके श्राधारसे निम्न निष्कर्प फलित होते हैं-—

१. प्रतिलिपि करते समय कहीं कहीं मूल पाठको बहुत ही कम ध्यानमें रखा गया है।

उदाहरणार्थ—प्रथम पाठान्तरको ही देखिए। आदर्श प्रतिके आधारसे ज्ञात होता है कि मूल प्रतिमें 'रुजगिन्ह' पाठ है जब कि पं॰ सुमेरचन्द्रजी को उनके सामने उपिस्ति प्रतिमें 'रुजगिन्ह' पाठ उपलब्ध हुआ है। दूसरे, तीसरे और चौथे पाठान्तरोंसे भी यही ध्वनित होता है। इन पाठोंके देखनेसे तो यही जान पड़ता है कि मूल प्रतिमें आदर्श प्रतिके अनुसार ही पाठ होने चाहिए।

२. मूलके त्राधारसे प्रतिलिपि करते समय दृष्टिभ्रम या त्रानवधानताके कारण किसी ऋत्तर, पद या वाक्यका छूट जाना बहुत सम्भव है। उक्त दोनों प्रतियोंमें ऐसे ग्रानेक स्वलन देखनेको मिलते हैं। इसके लिए देखो क्रमाङ्क ५, ७, ९, १२, १७, २२, २५, २७, २८ ग्रोर २६ के पाठान्तर।

साधारणतः क्रमाङ्क ५ से सम्बन्ध रखनेवाला पूरा स्थल पाठकी दृष्टिसे विचारणीय है। मुद्रित प्रतिके जिस पाठका हमने यहाँ उल्लेख किया है वह शुद्ध है और त्रादर्श प्रतिमें वह त्रुटित है। तथापि 'दंसणा-वरणीयस्स कम्मस्स किं सन्ववंधो गो सन्ववंधो ?' इस पाठके त्रागे 'सन्ववंधो वा गोसन्ववंधो वा' इतना पाठ त्रीर होना चाहिए, जो दोनों प्रतियोंमें त्रुटित जान पड़ता है।

क्रमांक १३ में मुद्रित प्रतिमें 'चतुसंठाण' के बाद 'चतुसंघाद' पाठ है जो अर्थकी दृष्टिसे असंगत है। पाँच बन्धन ग्रोर पाँच संघात प्रकृतियोंकी बन्ध प्रकरणमें अलगसे परिगणना नहीं की गई है, क्योंकि इनका पाँच शरीरोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। आदर्श प्रतिमें 'चतुसंघाद' के स्थानमें 'चतुसंघडण' पाठ उपलब्ध होता है जो शुद्ध है। कारण कि मध्यके चार संहननोंका मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टिके बन्ध होता है और यहाँ इन्हीं प्रकृतियोंके स्वामित्वका निर्देश किया है। क्रमांक १७ में भी इसी प्रकारका स्वलन देखनेको मिलता है। इसमें आदर्श प्रतिमें 'तेजाक विकार के बाद 'समचतु विकार पाठ स्विलत है। इसके साथ दोनों प्रतियोंमें

'पसत्थविहायगदि' के ग्रनन्तर 'तस०-बादर-पजत्त-पत्तेय' इतना पाठ ग्रौर होना चाहिए। जिसका दोनां प्रतियोंमें ग्रभाव दिखाई देता है। ग्रन्य पाठोंकी भी यही स्थिति है।

- ३. 'ग्रापि' के अर्थमं प्राक्ततमें 'वि' श्रोर 'पि' इन दोनों अव्यय पदोंका प्रयोग होता है । क्रमांक ६ मं मुद्रित प्रतिमें 'ग्रंघोपि' ऐसा पाठ मुद्रित किया गया है जब कि यह आदर्श प्रतिमें 'ग्रंघो वि' उपलब्ध होता है । व्याकरणकी दृष्टिसे यहाँ आदर्श प्रतिका पाठ संगत प्रतीत होता है ।
- ४. मुद्रित प्रतिमें प्रायः सर्वत्र 'को बंधको, को ग्रबंधको' इत्यादि रूपसे पाठ उपलब्ध होता है। कहीं कहीं 'गारक' ऐसा पाठ भी उपलब्ध होता है। देखों क्रमांक १५, १६, १७ व २१। प्राकृत व्याकरणके ग्रमुत्तार ऐसे प्रयोगों में तृतीय ग्रव्हर होनेका नियम है। हमने इस दृष्टिसे ग्रादर्श प्रतिके भी पाठान्तर दिए है। उनके देखनेसे विदित होता है कि ग्रादर्श प्रतिमें ऐसा व्यत्यय नहीं दिखाई देता है।
- ५. प्राचीन कानडी लिपिमें द ग्रीर घ प्रायः एकसे लिखे जाते हैं। तथा घ ग्रीर थ में भी बहुत ही कम अन्तर होता है। हमने यहाँ एक ऐसा पाठान्तर भी दिया है जिससे इस बातका पता लगता है कि पढ़नेके भ्रमके कारण ही यह पाठ दो प्रतियों में दो रूपसे निबद्ध हुन्ना है जब कि मूल पाठ इन दोनों पाठोंसे मिन्न होना चाहिए। देखों क्रमांक १८। न्त्रादर्श प्रतिमें यह पाठ 'दामें' उपलब्ध होता है ग्रीर मुद्रित प्रतिमें 'छामें'। किन्तु मूल प्रतिमें इन दोनों पाठोंसे भिन्न 'थामें' पाठ होना चाहिए। खुद्दाबंधमें भी यह पाठ इसी रूपमें उपलब्ध होता है।

इस प्रकार दोनों प्रतियों में श्रीर भी स्वलन उपलब्ध होते हैं। यहाँ हमने उनका परिचय करानेकी दृष्टिसे कुछका ही उल्लेख किया है।

पाठ संशोधनकी विशेषताएँ—

जैसा कि पूर्वमें हम दो प्रतियोंके ग्राधारसे प्रकृतिवन्धमं विविध स्खलनोंकी चरचा कर ग्राये हैं उस तरहके स्खलन हमें प्रस्तुत भागमें भी पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध हुए हैं। इनको कई भागोंमें विभक्त किया जा सकता है।

१. ऐसे पाठ जो मूलमें स्खलित हैं या जो ताडपत्रके गल जानेसे नप्ट हो गए हैं, उन्हें अर्थ श्रीर प्रकरणकी दृष्टिसे विचार कर [] इस प्रकारके कोष्ठकके भीतर दिया गया है।

उदाहरणके लिए देखो पृष्ठ २१, २३, २८, २६, ३०, ४५, ४८, ६८, ७४, ८२, १०४, १२८, १४२, १६६ श्रौर २०८ श्रादि । तथा ताङ्पत्रके गल जानेसे स्खलित हुए पाठोंके उदाहरणके लिए देखो पृष्ठ १५, ३१, ३२, २०८ श्रादि ।

- २. ऐसे पाठ जो मूलमं प्रकरण और अर्थकी दृष्टिसे असंगत प्रतीत हुए उन्हें उसी पृष्ठमं टिप्पणीमें दिखाकर मूलमें संशोधन कर दिया गया है। पर ऐसा वहीं किया गया है नहाँ विश्वस्त आधारोंसे संशोधित पाठका निश्चय किया जा सका है। इसके लिए देखो पृष्ठ १६, ३१, ४४, ४५, ४६, ५२ और ५८ आदि।
- रे. एक दो ऐसे भी पाठ उपलब्धं हुए हैं -जो या तो श्रव्यवस्थित ढंगसे लिपिनद्ध किए गये हैं या ताड़पत्रीय प्रतिमें ही उनके क्रममें दोष है। ऐसा एक पाठ महानन्ध प्रकृतिनन्धमें भी उपलब्ध होता है। पं॰ सुमेरुचन्द्रजो दिवाकरके पास जो प्रति है उस आधारसे मुद्रित प्रतिमें उनके द्वारा उस पाठकी स्थिति इस प्रकार निर्दिष्ट की गई जान पड़ती है—

देवेसु पंचणा० छुदंसणा० बारसक० भयदुगुं० घ्रोरालिय० तेजाकम्म० वर्ग्या० ४ घ्रगु० ४ वादर-पज्जत-पत्तेय-ियिमणं तित्थयरं पंचंतराइयाणं ग्यत्थि अंतरं। थीग्यगिद्धितगं मिच्छत्तं प्रगांताणु ४ जह० अंतो०। इत्थि० णवुं सक० पंचसंठा० जह० एग०, उनक० भ्रष्टारस-सागरोवमःणि सादिरेयागि। एइंदिय-घ्रादाव-थावरागां जह० एग०, उनक० वे साग सादिरे०। एवं सन्वदेवेसु श्रप्पपणो द्विदिशंतरं काद्व्वं। एइंदिएसु पंचग्या० णवदंसणा० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगुं० श्रोरालियतेजाकम्म० वर्ण ४ जह० एग०, उनक० श्रांतोसुहुत्तं। दो श्रायु० ग्रिरयभंगो०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिवाश्रो० उज्जोवाणं जह० एग०, उक्क० घट्टारससागरोवमाणि सादिरेगाणि। पृइंदिय-श्रादाव-थावराणं जह० एग०, वे साग७ सादिरेगाणि। पृवं सन्वदेवेषु श्रप्पप्पणो द्विदिश्र'तरं कादस्वं।

[सु. प्र., पृ. ७५-७६]

यह पाठ ग्रादर्श प्रतिमें भी इसी प्रकार उपलब्ध होता है। किन्तु यह होना इस प्रकार चाहिए। देवेसु पचणा०-छदंसगा०-वारसक-भय-दुगुं०-ग्रोरालिय०-तेजा०-कम्म-ग्रोरालियग्रंगों-वर्ण्ण० ४ ग्राउ० ४ वादर-पडनत-पत्तेय-शिमिण्-तित्थयर-पंचंतराइयाणं ग्रात्थि श्रन्तरं। श्रीण्गिद्धितग-मिच्छ्तत-श्रणंताणु० ४ जह ग्रंतो०, उक्क० एकत्तीससाग० देसू०। सादासा०-पुरिस०-चहुग्णोक० मणुस०-पंचिद्य० समचदु-वज्जरिस०-मणुसाणु०-पसत्थिव-तस०-थिरादिदोग्णियुगल-सुभग-सुस्सर-ग्रादेज-जस०-ग्रजस० जह एगस० उक्क० धंतोसु०। इत्थिवे० ग्रादुंस-पंचसंठाण-पचसं० श्रत्यसत्थिव-दूभग-दुस्वर-श्रणादेज-ग्रीचुचा-गोदाणं जह० एगस०, उक्क० एक्कती साग० देसू। दो श्रायु० णिरयभंगो। तिरिक्खगिद्शिक उक्कतीवाणं जह० एग०, उक्क० श्रद्धारससागरीमाणि सादिरेगाणि। एइंदिय-श्रादाव-थावराणं जह० एग० उक्क० बेसाग० सादि०। एवं सब्बदेवेसु। ग्रावरि श्रप्पप्पणो द्विदि श्रंतरं काद्व्वं।

हमं प्रस्तुत प्रकरण्में इस प्रकारके जो पाठ उपलब्ध हुए उन्हें हमने पादिव्पण्में देकर मूलमें संशोधन कर दिया है। इसके लिए देखो १९८ २०६ श्रादि।

- ४. प्रतिमें कुछ प्रयोगोंमें दीर्घ ईकारकी मात्राके स्थानमें हस्व इकारकी मात्रा दिखाई देती है। जान पड़ता है कि प्राचीन कनाडी लिपिमें हस्व ग्रौर दीर्घ स्वरका कोई भेद नहीं किया जाता रहा है। ग्रातः हमने ऐसे स्थलोंपर व्याकरणके नियमानुसार ही हस्व ग्रौर दीर्घ स्वरके रखनेका प्रयत्न किया है।
- प्र. ग्रादर्श प्रतिमें 'वर्णप्पदि' शब्दके स्थानमें कहीं कहीं वर्णपदि' ऐसा प्रयोग भी दृष्टिगोचर हुग्रा है। इसे कहीं कहीं लिपिकारने पीछेसे लाल स्थाहीसे संशोधित भी किया है। पर कहीं वह ग्राग्रुद्ध ही रह गया है। हमने सर्वत्र 'वर्णप्पदि' पाठ ही रखा है।
- ६. प्राचीन कानडी लिपिमें द श्रीर ध प्रायः एकसे लिखे जाते हैं। इसके कारण श्रादर्श प्रतिमें 'उपिण्धा' के स्थानमें प्रायः 'उपिण्दा' पाठ उपलब्ध हुश्रा है। यह स्पष्टतः लिपिक्रिकी श्रसावधानी है, इसलिए हमें जहां 'उपिण्दा' पाठ उपलब्ध हुश्रा यहां उसे 'उपिण्धा बना दिया है।
- ७. समग्र ग्रन्थमं किसी वाक्य या शब्दकी पूर्ति विन्दु रखकर की गई है। कहीं कहीं ये बिन्दु जहां चाहिए वहां नहीं भी रखे गए हैं ग्रीर कहीं कहीं उनकी ग्रावश्यकता नहीं होनेपर भी वे रखे गये हैं। यह व्यत्यय ग्रादर्श प्रतिमें सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। मुद्रित प्रतिके साथ ग्रादर्श प्रतिका मिलान करनेसे तो यह भी विदित हु ग्रा है कि इस बातका प्रायः बहुत ही कम ध्यान रखा गया है कि मूल प्रतिमें कौन शब्द या वाक्य कितना निर्दिष्ट है ग्रीर कितने शब्दांश या वाक्यांशकी पूर्तिके लिए विन्दुका उपयोग किया गया है। पहले हम मूल प्रति ग्रीर ग्रादर्श प्रतिके कुछ पाठान्तरोंकी तालिका दे ग्राए हैं। उसके देखनेसे इसका स्पष्ट पता लग जाता है। ऐसी ग्रावस्थामें हमें इस बातका स्वतन्त्र रूपसे विचार करना पड़ा है। फलस्वरूप जहां विन्दुकी हमने ग्रानावश्यकता ग्रानुभव की वहांसे उसे हटा दिया है ग्रीर जहाँ उसकी ग्रावश्यकता ग्रानुभव की वहां उसकी पूर्ति कर दी है।
- द्रादर्शप्रतिमें ग्रानेक स्थलींपर सम्यक्त्य मार्गणाके प्रसङ्गसे खद्दगसं०, उप्समसं० सासणासं० वेदगसं०' ऐसा पाठ उपलब्ध हुग्रा है। यहां 'स' के ऊपर श्रनुस्वारकी श्रावश्यकता नहीं है। प्राचीन कनाडी लिपिमें श्रनुस्वार श्रीर वर्णिद्वात्व बोधक संकेत एक विन्दु ही होता है। सम्भव है कि इसी कारेणिसे यह भ्रम हुग्रा है, श्रतएव ऐसे स्थानींपर हमने 'खद्दगस० उवसमस०, सासणसं०, वेदगस०' ऐसा संशोधित पाठ रखा है। कहीं कहीं 'जंहि' के स्थानमें 'जिम्ह' श्रीर 'तंहि' के स्थानमें 'तिम्ह' इसी नियमके श्रनसार किया गया है।
- ९. मूलमें 'कायजोगि' पाठके स्थानमें 'काजोगि' पाठ बहुलतासे उपलब्ध होता है। मुद्रित प्रति (प्रकृतिवन्ध)में भी यह व्यत्यय देखा जाता है। मूलमें इस प्रकारके पाठके लिपिबद्ध होनेका कारण क्या है इसकी

, ;

पुष्टिमं यद्यपि हमें निश्चित आधार नहीं मिला है तथापि पट्खरडागमके समग्र सूत्रों में 'कायजोगि' पाट ही प्रयुक्त हुआ है यह देखकर हमने 'काजोगि' पाटके स्थानमें सर्वत्र 'काययोगि' पाटको स्वीकार किया है ।

इसी प्रकार थोड़े बहुत संशोधन श्रौर भी करने पड़े हैं, पर ऐसा करते हु ए सर्वत्र मूल पाठकी रज्ञाका पूरा ध्यान रखा है ।

मंगलाचरण-

हम यह पहले ही लिख आये हैं कि महाबन्धके मुख्य अनुयोगद्वार चार हैं—प्रकृतिवन्ध, स्थितिवन्ध अनुमागवन्य और प्रदेशवन्ध। इन चारों अनुयोगद्वारोंकी रचना स्वयं आचार्य भूतवितने की है। यद्यपि ग्रंथके प्रारम्भमं मङ्गल करनेकी परिपाटी पुरानी है पर पट्खरडागमके जीवस्थान और वेदनाखरडको छोड़कर शेप खरडोंके प्रारम्भमं स्वतन्त्र मङ्गल सूत्र उपलब्ध नहीं होता। उसमं भी जीवस्थानके प्रारम्भमं मङ्गलसूत्रके कर्ता स्वयं पुष्पदन्त आचार्य हैं। आचार्य वीरसेनने मङ्गलके निब्द और अनिवद्ध ये दो भेद करते हुए लिखा है।

तच मंगलं दुविहं-णिवद्धमणिवद्धमिदि। तत्य णिवदं ग्राम जो सुत्तस्थादीए सुत्तकत्तारेण णिवद्धदेवदाणमोक्कारो तं णिवद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेददाणमोक्करो तमणिद्धमंगलं। इदं जीवद्वाणं शिवद्धमंगलं। [जीवद्वाणा-संतवरूवणा पृ० ४१]

'मङ्गल दो प्रकारका है—निवद्ध मङ्गल ग्रीर श्रनिवद्ध मंगल । जो स्त्रके ग्रादिमं स्त्रकारके द्वारा इप्ट देवता नमस्कार निवद्ध किया जाता है वह निवद्ध मङ्गल है श्रीर जो स्त्रके श्रादिमं स्त्रकारके द्वारा इप्ट देवता नमस्कार किया जाता है वह श्रनिवद्ध मङ्गल है। यह जीवस्थान निवद्ध मङ्गल है।'

इस निवद्ध श्रौर श्रनिवद्ध पदका श्रर्थ श्रौर श्रिधिक स्पष्ट रूपसे समभनेके लिए वेदनाखएडके कृति श्रनुयोग द्वारका यह उद्धरण विशेप उपयोगी है। यहां वीरसेन स्वामी लिखते हैं—

'शिवद्धाशिवद्धभेएण दुविहं मंगलं। तत्थेदं किं शिवद्धमाहो श्रिश्वद्धमिदि श ताव शिवद्धमंगल-मिदं; महाकम्मपयिष्ठपाहुडस्स किद्यादिचउवीसश्राशियोगावयवस्स श्रादीए गोदमसामिशा परूविदस्स भूदवित्तभडारएण वेयणाखंडस्स श्रादीए मंगलट्टं तत्तो श्राशेद्ण ठिवदस्स शिवद्धसिवेरोहादो।'

नित्रद्ध श्रीर श्रानिवद्धके मेदसे मंगल दो प्रकारका है। उनमेंसे यह मंगल क्या नित्रद्ध है या श्रानिवद्ध ? यह निवद्ध मंगल तो हो नहीं सकता, क्योंकि कृति श्रादि चौत्रीस श्रानुयोगोंमं विभक्ष महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके श्रादिमं गौतम स्वामीने इसकी रचना की है श्रीर भूतविल भट्टारकने मंगलके निमित्त वहांसे लाकर इसे वेदनाखरडके प्रारम्भमं स्थापित किया है, श्रातः इसे निवद्ध मंगल माननेमं विरोध श्राता है।

इन दोनों उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि जीवस्थानके प्रारम्भमं जो पञ्च नमस्कार सूत्र उपलब्ध होता है वह स्वयं त्राचार्य पुष्पदन्तकी कृति है और वेदनाखराडके प्रारम्भमें जो ४४ मङ्गलसूत्र त्राये हैं वे हैं तो स्वयं गौतम स्वामीकी कृति, पर त्राचार्य भूतविने उन्हें वेदनाखराडके प्रारम्भमं लाकर मङ्गलके निमित्त स्थापित किया है।

इन दो खरडोंके सिवा शेष खरडोंके प्रारम्भमं स्वतन्त्र मञ्जल सूत्र क्यों नहीं रचे गये इस पर वीरसेन स्वामी वेदनाखरडके प्रारम्भमें मञ्जलसूत्रोंका उपसंहार करते हुए कहते हैं—

'उवरि उद्यमाणेसु तिसु खंढेसु कस्सेदं मंगलं ! तिण्णिखंडाणं । कुदो ? वग्गणामहावंधाणमादीए मंगलाकरणादो ।' [पृ० १०५]

'श्रागे कहें जानेवाले तीन खरडोंमंसे किस खरडका यह मङ्गल है १ श्रागे कहे जानेवाले तीनों खरडों-का यह मङ्गल है; क्योंकि वर्गेणा श्रीर महावन्ध इन दो खरडोंके प्रारम्भमें मङ्गल नहीं किया गया है।'

इस उल्लेखसे यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि वीरसेन स्वामीके मतानुसार वेदनाखरडके प्रारम्भमें श्राया हुत्रा मङ्गल ही महावन्धका मङ्गल है श्रीर इसीलिए वहां श्रलगसे मङ्गल नहीं किया गया है। पर मृडविद्रीकी ताडपत्रीय प्रतिके श्राधारसे जो प्रति लिपि होकर हमारे सामने उपिश्यत है उसमें प्रत्येक मुख्य श्रानुयोगद्वारके प्रारम्भमें 'स्मो श्रिरहंताणं' यह मङ्गलसूत्र स्थापित किया गया है। प्रकृतिवन्धका प्रथम ताङ्-

पत्र त्रुटित होनेके कारण उसके सम्पादनके समय यह समस्या उपिखत नहीं हुई। वहां तो वीरसेन स्वामीकी सूचनानुसार वेदनाखरडका मङ्गलाचरण लाकर उससे निर्वाह कर लिया गया। पर स्थितिबन्धके प्रारम्भमें 'णुमो श्रिरिहंताणं' इस मङ्गल सूत्रको देखकर हमारे सामने यह प्रश्न था कि इस सम्बन्धमें क्या किया जाय। हमने इस सम्बन्धमें एक दो विद्वानोंसे परामर्श भी किया। श्रन्तमें सबकी सलाहसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि मूल प्रतिमें स्थितिबन्ध, श्रनुभागबन्ध श्रीर प्रदेशबन्धके प्रारम्भमें यह मङ्गल सूत्र उपलब्ध होता है तो उसे वैसा ही रहने दिया जाय। यद्यपि हम जानते हैं कि स्थितिबन्ध, श्रनुभागबन्ध श्रीर प्रदेशबन्धसे खरडका प्रारम्भ नहीं होता। महाबन्ध खरडका प्रारम्भ तो प्रकृतिबन्धसे होता है तथापि इन श्रनुयोगद्वारोंके प्रारम्भमें इस मङ्गलस्त्रका निवेश कर किसने किया इस वातका ठीक तरहसे निर्णय करनेका कोई साधन उपलब्ध न होनेसे उक्त मङ्गल सूत्रको यथास्थान रहने दिया गया है।

हमारे विचारसे ऐसा करनेसे एक बहुत बड़े सत्यकी रचा हो जाती है। पाठक जानते ही हैं कि अमरावतीसे जो धवलाका प्रकाशन हो रहा है उसके प्रत्येक भागके प्रथम व मुख्युष्ठपर भगवत्युष्पदन्तभूतबिज्ञप्यातिः
यह मुद्रित किया जाता है। जब कि सबको यह विदित है कि वीरसेन स्वामीके मतानुसार आचार्य पुष्पदन्तने
केवल सत्यरूपणको रचना की है और आचार्य भूतबिजने शेप छह खरडकी रचना की है। जीवस्थानद्रव्यप्रमाणानुगमके मुद्रग्यके समय आद्रग्यीय डा० हीराजाज जीके सामने भी यह प्रश्न उपस्थित था। उस समय
हम वहीं घवला कार्यालयमें कार्य करते थे। प्रश्न यह था कि आचार्य पुष्पदन्तने आचार्य भूतबिजके पास
जिनपालितको केवल सत्यरूपणा लेकर भेजा होगा या अपनी रूपरेखाका ज्ञान भी कराया होगा। विचार
विनिमयके अनन्तर उस समय निश्चय हुआ था कि अधिकतर सम्भव तो यही है कि उन्होंने ग्रन्थ रचनाके
सम्बन्धकी समस्त विशेष जानकारीके साथ ही सत्यरूपणा लेकर जिनपालितको आ० भूतबिजके पास भेजा होगा
और इस तरह श्रुत रच्नाका कार्य इन दोनों महान् आचार्योंके संयुक्त प्रयत्नका फल जानकर तब यही निर्णय
किया गया था कि प्रत्येक भागमें दोनों आचार्योंके नाम यथाविधि दिये जाने चाहिए।

इस समय जब हम महाबन्धके प्रत्येक अनुयोगद्वारके प्रारम्भमं जीवस्थानके मङ्गलाचरणको लिपिबद देखते हैं तो आखोंके सामने उस समयका समय इतिहास साकार रूप लेकर आ उपस्थित होता है। धन्य है उन प्रातः स्मरणीय चन्द्रगुक्तानिवासी आचार्य धरसेनको जिन्होंने अपनी वृद्धावस्थाकी चिन्ता न कर श्रुत रचाकी पुनीत भावनासे अपने अनुरूप योग्य दो शिष्योंको प्राप्त कर उन्हें अपना समय ज्ञान समर्पित कर शान्तिकी सांस ली और धन्य हैं उन परम श्रुतधर आचार्य पुष्पदन्त और भूलवितको, जिन्होंने गुरु आज्ञाको प्रमाण मानकर पट्खरडागमकी रचना द्वारा न केवल अपने गुरुकी इच्छाकी पूर्ति की अपि त सम्यक् श्रुतको जीवित रखनेका श्रे य प्राप्त किया।

श्राभार---

किसी भी कार्यको योग्यतापूर्वक सम्पन्न करनेके लिए अनुकृत साधन सामग्रीका सर्वोपिर स्थान है। हम दूसरोंकी नहीं कहते, अपनी ही कहते हैं। अनेक बार कुछ प्रमुख विपयोंपर हमने लिखनेका विचार किया, कई योजनाए बनाई पर अनुकृत साधनोंके उपलब्ध न होनेसे हम एक भी पूरी न कर सके। कुछका तो अब हमें ही स्वयं ज्ञान नहीं है।

महाबन्धके सम्पादनकी ग्रोर में स्वयं ध्यान दूं यह श्रनुरोध चिरकालसे मेरे निकटवर्ती व दूरवर्ती मित्र मुक्तसे करते त्रा रहे हैं। उनको ग्रन्तः प्रेरणावश ही मुक्ते इस ग्रोर ध्यान देना पड़ा है। में श्रीमान् डा० हीरालाल जीको श्रपना श्रन्यतम हितैषी मानता हूं। सम्पादन सम्बन्धी जो कुछ भी श्रनुभव ग्रोर ज्ञान मुक्ते मिला है यह उनकी ही सत्कृपाका फल है। श्रव भी वे मुक्ते श्रनेक उपयोगी सूचनात्रोंसे श्रनुग्रहीत करते रहते हैं। कुछ काल पूर्व उन्होंने मुक्ते एक श्रत्युपयोगी पत्र लिखा था। वे मेरी विखरी हुई शिक्तको देखकर खिनसे हो उठे थे। मेरे लिए उनका वह पत्र स्वरूपसम्बोधनके समान था। उससे मेरी न केवल निद्रा भङ्ग हुई श्रापि तु मुक्ते श्रपने कर्तव्यका बोध हुग्रा। उसीका यह फल है जो इस समय पाठक देख रहे हैं।

महावन्धका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठसे हो रहा है। इसके संस्थापक श्रीमान् दानवीर सेठ शान्तिप्रसाद जी श्रीर श्रध्यक्षा उनकी सुयोग्य पत्नी श्रीमती रमारानी जी हैं। प्रारम्भसे ही इसके संचालनका उत्तरदायिन्य श्रीमान् श्रयोध्याप्रसाद जी गोयलीय सम्हाले हुए हैं। वे ही इसके मन्त्री हैं। सुक्ते महावन्धके सम्पादन श्रीर प्रथम प्रकृ पाठके लिए संस्थाकी श्रोरसे हर तरहकी सुविधाएं उपलब्ध हैं। भारतीय ज्ञानपीठके मैनेजर श्री वाबूलाल जी 'फागुल्ल' तो सब वातोंका ध्यान रखते ही हैं साथ ही श्री पं० महादेव जी चतुर्वेदी जी व्याकरणाचार्यका भी इस काममें हमें पूरा सहयोग मिलता रहता है। प्रथम प्रकृ हम उनके साथ ही मिलकर देखते हैं। इस प्रकार महाबन्धके सम्पादनमें उक्त महानुभवोंका प्रत्यच श्रीर परोच्न सम्बन्ध होनेसे ही हम इस कामका निर्वाह कर सके हैं श्रतएव इन सबके हम श्राभारी हैं।

श्रनुवाद श्रीर सम्पादनमें हमने बहुत ही सावधानीसे काम लिया है फिर भी भ्रम या श्रज्ञानवरा कुछ दोष रह जाना बहुत सम्भव है। उदाहरणार्थ-पृष्ठ २१ पंक्ति ७ में 'कम्मांद्वदी कम्म०' के पहले 'श्रवाहू िण्या' पाठ होना चाहिए। इसी प्रकार पृष्ठ २३६ पंक्ति २ में भी कोष्ठकके भीतर 'श्रावाधू०' पाठ श्रिक हो गया है। श्रतएव विशेषज्ञ श्रीर स्वाध्यायप्रेमी बन्धु पूर्वापरका विचार कर इसका स्वाध्याय करें श्रीर जो दोष उनकी समक्तमें श्रावें उनकी सूचना हमें श्रवश्य देनेकी कृपा करें।

फ़्लचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रकाशन-व्यय

१४३४)॥ कागज २२ × २६ = २८ पौग्रड ६८ पीग्रड ६८ पीग्रड ६८ पीग्रड १८०४) सम्पादन-व्यय २०४) कार्यालय व्यवस्था १८०) क्राई ६१ फार्म १२०) प्रूफ संशोधन १०००) जिल्द वँधाई १०००) मेंट, श्रालोचना १०० प्रति १२५) पोस्टेज ग्रंथ मेंट मेजनेका २७५०) कमीशन, विज्ञापन, विक्री व्ययादि इत्त लागत ११३००।॥

कुल लागत ११३००)॥ १००० प्रति छपी। लागत एक प्रति ११॥॥ मूल्य ११ रु०

कर्ममीमांसा १. कर्मवादकी यक्ति

भारतीय दर्शनका ग्रन्तिम लक्ष्य है मुक्ति प्राप्ति । इसमें जीवकी उत्क्रान्ति, गति, श्रागति श्रौर परलोक विद्याका युक्तियुक्त विचार उपस्थित किया गया है । सब श्रास्तिक दर्शन इस विपयमें एकमत हैं कि जीव श्रपनी कमनोरीके कारण बँधता है श्रौर उसके दूर होने पर मुक्त होता है । समयप्रास्त्तमें कहा है—

'रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो। एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥१५०॥१

तीर्थङ्करोंका उपदेश है कि रागी जीव कमोंको वाँघता है और वैराग्ययुक्त जीव उनसे मुक्त होता है। इसलिए शुभाशुभ कमोंमें अनुरागी होना उचित नहीं है।

प्राचीन ऋषियोंने जीवकी वद्ध श्रीर मुक्त दो श्रवस्थाएँ मानी हैं। इससे समस्त जीवराशि दो भागोंमें विभक्त हो जाती है—संसारी जीव श्रीर मुक्त जीव। जो संसार श्रर्थात् चतुर्गति योनिमें परिभ्रमण् करते रहते हैं वे संसारी जीव हैं श्रीर जो इस प्रकारके परिभ्रमण्से मुक्त हैं वे मुक्त जीव हैं। प्रथम प्रकारके .जीव राग, द्वेष श्रीर मोहके श्रधीन हो कर निरन्तर पाँच प्रकारके संसारमें परिभ्रमण् करते रहते हैं। समीचीन हि। समीचीन चर्याके प्राप्त होनेके पूर्वतक वे इस परिभ्रमण्से मुक्ति प्राप्त करनेमें श्रसमर्थ रहते हैं। इससे प्रथम प्रकारके जीव संसारी कहलाते हैं। श्रीर ये ही जीव संसारका उपरम हो जाने पर मुक्त कहलाने लगते हैं।

इनमेंसे संसारी जीव अनेक भागोंमें विभक्त हैं-कोई एकेन्द्रिय है और कोई द्वीन्द्रिय। त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय श्रीर पञ्चेन्द्रिय ये भी संसारी जीवोंके ही भेद हैं। एकेन्द्रिय जीव पृथिवीकायिक, जलकायिक, ग्राग्निकायिक, वायुकायिक ग्रौर वनस्पतिकायिकके भेदसे पाँच प्रकारके हैं। जिनके एक मात्र स्पर्शन (छ कर जाननेवाली) इन्द्रिय होती है उन्हें एकेन्द्रिय जीव कहते हैं । ये पाँचों ही प्रकारके जीव स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण करते हैं । इनके रसना (चलकर जाननेवाली इन्द्रिय) त्रादि श्रन्य इन्द्रियाँ नहीं होतीं, इसलिए ये एकेन्द्रिय कहे जाते हैं। द्वीन्द्रिय जीव वे हैं जिनके स्पर्शन ग्रीर रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। लोकमें लट केंचुर्या त्रादि ऐसे त्रगिएत जीव देखे जाते हैं जो कभी तो स्पर्शन द्वारा विषय प्रहण करते हैं ज्रौर कभी रसना द्वारा, इसलिए इन्हें द्वीन्द्रिय जीव कहते हैं। त्रीन्द्रिय जीव वे हैं जिनके स्पर्शन, रसना श्रीर प्राण (सुगन्धि ऋौर दुर्गन्धिका ज्ञान प्राप्त करनेवाली इन्द्रिय) ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। ये जीव इन इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रह्मा करते हैं, इसलिए इन्हें त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं। इनमें पिपीलिका, गोभी श्रीर यूक श्रादि जीवोंकी परिगणना की जाती है। चतुरिन्द्रिय जीव वे हैं जिनके स्पर्शन रसना, घाए श्रीर नेत्र ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। ये जीव इन चार इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण करते हैं, इसलिए इन्हें चतुरिन्द्रिय जीव कहते हैं। भ्रमर, पतङ्ग श्रीर मक्खी श्रादि जीवोंकी इनमें गिनती की जाती है। जिनके स्पर्शन, रसना, श्राण, नेत्र श्रीर कान ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं वे पञ्चेन्द्रिय जीव हैं। समनस्क श्रीर श्रमनस्क ये इनके मुख्य भेद हैं। दूसरे शब्दोंमें इन्हें संज्ञी श्रीर श्रसंज्ञी भी कहते हैं। उक्त पाँचों इन्द्रियों के साथ जिनके हेय श्रीर उपादेय पदार्थों का विवेक करने में दत्त तथा किया और त्रालापको प्रहंशा करनेवाला मन होता है वे समनस्क जीव हैं और शेष त्रामनस्क जीव हैं। श्रमनस्क जीव मात्र तिर्यञ्चयोनिवाले होते हैं किन्तु समनस्क जीव नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य श्रीर देव इन चार भागोंमें विमक्त हैं। इनमेंसे तिर्यञ्च ग्रौर मनुष्य सनके प्रत्यके विषय हैं ग्रौर शेप दो प्रकारके जीव ग्रागमसे जाने जाते हैं।

जैनदर्शनमें संसारके समस्त पदार्थ छह भागोंमें विभक्त किये गये हैं—जीव, पुद्रल, धर्म, ग्राधर्म ग्राकाश ग्रीर काल । इनका विवेचन जैन ग्रागममें विस्तारके साथ किया गया है । जीवके विषयमें समय-प्राभृतमें लिखा है—

"श्ररसमरूवमगंधं श्रव्वत्तं चेदणागुरामसद्ं। जारा श्रतिगग्गहर्गं जीवमशिद्दिहसंठार्गं ॥४९॥"

जो रसरिहत है, रूप रहित है, गन्धरिहत है, इन्द्रियोंके अगोचर है, चेतन्य गुणवाला है, शब्द रहित है, किसी चिन्हके द्वारा जिसका ग्रहण नहीं होता और जिसका आकार कहा नहीं जा सकता वह जीव है।

जीवका यह लच्च्ण त्रिकालान्वयी है । उसमें चेतन धर्मकी विशेषता है । यह जीवका श्रसाधारण धर्म है; क्योंकि चेतनाकी जीवके साथ समन्याप्ति है । जीवकी पहिचानका यह प्रमुख चिन्ह है ।

कुछ मतवादी चेतना की उत्पत्ति पृथिवी ग्रादि भृतचतुष्ट्यके योग्य सिम्मश्रग्का फल मानते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा गेहूँ ग्रादि पदार्थों में मादकताका प्रादुर्भाव होता है उसी प्रकार पृथिवी ग्रादिके योग्य मिश्रग्से चेतनाकी उत्पत्ति होती है। जब तक इनका योग्य सिम्श्रग्स बना रहता है तभी तक वहाँ चेतना वास करती है। इनका विघटन होने पर चेतना भी विघटित हो जाती है। न परलोक है, न कर्म है ग्रीर न कर्मका फल है।

बौद्ध दर्शन भी जीवकी पृथक् सत्ता स्वीकार नहीं करता । बुद्धने जिन दस वातोंको ग्राव्याकृत माना है उनमें ग्रात्मा शरीरसे भिन्न है कि ग्राभिन्न है, मृत्युके बाद वह रहता है या नहीं रहता ये प्रश्न भी सम्मिलित हैं। बौद्ध दर्शनमें ग्रात्माको रूप वेदना, संज्ञा संस्कार ग्रौर विज्ञानका पुञ्जमात्र माना गया है। मिलिन्द्र प्रश्नमें भदन्त नागसेनने राजा मिलिन्द्रके सामने ग्रात्मस्वरूपका वर्णन एक वड़ी सुन्द्र उपमाके द्वारा किया है। नागसेनने राजासे पूछा कि इस दुपहरियेकी कड़कड़ाती धूपमें जिस रथ पर सवार होकर ग्राप इस स्थान पर पघारे हैं। उस रथका इदिमत्थं वर्णन क्या ग्राप करते हैं ? क्या दएड रथ है या ग्राच्च रथ है ? राजाके निपेध करने पर फिर पूछा कि क्या चक्के रथ हैं या रिस्तयाँ रथ हैं, लगाम रथ है या चानुक रथ है ? बार बार निपेध करने पर नागसेनने राजासे पूछा ग्राखिर रथ क्या चीज है ? ग्रगत्या मिलिन्द्रको स्वीकार करना पड़ा कि दएड, चक्र ग्रादि ग्रवयवोंके ग्राधारपर केवल व्यवहारके लिये 'रथ' नाम दिया गया है; इन ग्रवयवोंको छोड़कर पृथक् रूपसे किसी ग्रवयविकी सत्ता नहीं दीख पड़ती। तत्र नागसेनने वतलाया कि ठीक यही दशा ग्रात्माकी मी है। पञ्चस्कन्ध ग्रादि ग्रवयवोंके मिन्न ग्रवयवींके नितरां ग्रगोचर होनेके कारण इन ग्रवयवोंके ग्राधारपर 'ग्रात्मा' नाम केवल व्यवहारके लिये ही दिया गया है। ग्रात्माकी वास्तविक सत्ता है ही नहीं। बुद्ध दर्शनने ग्रात्माकी पृथक् सत्ता न मानकर भी निर्वाण ग्रौर परलोकका निपेध नहीं किया है। प्रस्तुत उनके चार ग्रार्थ सत्योंका उपदेश इसी ग्राधार पर स्थित है।

इस प्रकार जीवके ग्रस्तित्वको न माननेवाले या उसे संशयकी दृष्टिसे देखनेवाले मुख्य दर्शन दो हैं। शेप सभी पौर्वात्य दर्शनकारोंने उसकी स्वतन्त्र सत्ता किसी न किसी रूपमें स्वीकार ही है। इनमेंसे प्रथम मत बहुत प्राचीन है। लोकमें इसकी चार्वाक या लौकायितक इस नामसे प्रसिद्धि है। यह मात्र इन्द्रिय प्रत्यज्ञको प्रमाण मानता है, इसलिए यह ग्रतीन्द्रिय जीव, धर्म, ग्रधर्म ग्राकाश ग्रौर काल द्रव्यको तथा परलोक ग्रौर मुक्ति ग्रादि तत्वोंको स्वीकार नहीं करता।

किन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि जीव पृथिवी ग्रादिके योग्य सम्मिश्रण्का फल नहीं है, क्योंकि पृथिवी ग्रादि प्रत्येक तत्त्वमं चेतना गुण्की उपलिध नहीं होती, इसलिए उन सबके सम्मिश्रण्से मला उसकी उत्पत्ति हो ही कैसे सकती है। गेहूँ ग्रादिके सड़ाने पर उसमें जो मादकता दिखाई देती है वह उनका नया धर्म नहीं है। किन्तु यह मादकता इन पदार्थोंमं न्यूनाधिकरूपसे सदा विद्यमान रहती है। सड़ाने ग्रादिसे मात्र उसका विशेष रूपसे ग्राविभाव देखा जाता है। एक मनुष्य भोजन करता है, उसे कम ग्रालस्य ग्राता है ग्रीर

१. भारतीयदर्शनसे ।

दूसरा मनुष्य भोजन करता है, उसे श्रिधिक श्रालस्य शाता है। इसका एक कारण इस मादकताकी न्यूनाधिकता भी है, इसलिए मिदराके दृशन्त द्वारा जीवको भूतचतुष्ट्यका परिणाम मानना उचित नहीं है।

जीव द्रव्य है श्रीर उसका स्वतन्त्र श्रस्तित्व है। इन्द्रियों द्वारा उसका श्रन्य स्थूल पदार्थों समान श्रहण न होने पर भी उसके श्रस्तित्वको श्रस्तीकार करना बुद्धिकी विडम्बना मात्र है। लोकमें ऐसे श्रनेक पदार्थ हैं जिनका इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण न होने पर भी श्रनुमान प्रमाणके द्वारा उनका श्रस्तित्व सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ पृथिवी श्रादिके श्रारम्भक परमाणुश्रोंका चात्तुप प्रत्यन्त नहीं होता पर क्या इतने मात्रसे उनका श्रसद्भाव माना जा सकता है कभी नहीं। इसी प्रकार यद्यपि जीव तत्त्वका इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होता है तथापि श्रनुमान श्रादिके द्वारा उसका श्रस्तित्व सिद्ध होता है।

जिस प्रकार किसी यन्त्रप्रतिमाकी चेष्टाश्रोंको देखकर उसके प्रयोक्ताका श्रस्तित्व जाना जाता है उसी प्रकार सम्भापण, हलन-चलन, श्वासोच्छ्वासका ग्रहण करना श्रीर छोड़ना तथा श्राहारका लेना श्रादि क्रियाश्रोंको देखकर ज्ञात होता है कि इस शारीरका प्रयोक्ता कोई श्रन्य पदार्थ है जो शारीरके प्रत्येक श्रवयवमें व्याप्त कर रह रहा है।

यह तो हम प्रत्यक्षसे ही देखते हैं कि जीवत् शरीरसे मृत शरीरमें मौलिक अन्तर है। जीवत् शरीरमें ऐसी किसी वस्तुका वास अवश्य रहता है जो स्वासोच्छ्र्वास लेता छोड़ता है, उस द्वारा किया करनेमें सहायता प्रदान करता है, किसी वस्तुके विस्मृत हो जाने पर उसे याद करता है, इच्छा करता है, इच्छित भोगको स्वीकार करता है, और अनिच्छित भोगका त्याग करता है। स्व-परका मेद करता है, गिणित व रुपया, आना, पाईका हिसाव लगाता है, यशकी कामना करता है और विश्वकी सुव्यवस्था व आत्मोन्नतिके उपाय सोचता है। यह कहना विशेष युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि भूत चतुष्टयके योग्य सम्मिश्रण्से चैतन्य तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, क्योंकि जो शक्ति अलग-अलग पृथिवी आदिमें नहीं पाई जाती वह उनके सिम्मश्रण्से नहीं उत्पन्न हो सकती।

हम देखते हैं कि वालक जन्म लेते ही दुग्धपानकी इच्छा करता है। माताके स्तनसे उसका मुह लगाने पर वह दूध पीने लगता है। कुछ ऐसे भी वालक देखे गये हैं जो अपने पूर्वजन्मका चृत्तान्त सुनाते हैं। श्री रतनलालजीने अपनी आत्मरहस्य नामक पुस्तकमें देश विदेशकी ऐसी कई घटनाएँ निग्न की हैं। एक घटना वरेलीकी है। वात सन १६२६ की है। केकयनन्दन वकीलके यहां एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह वालक पाँच वर्षका हुआ और वोलना सीख गया तो वह अपने पूर्वजन्मकी वातें कहने लगा कि पूर्व जन्ममें में बनारस निवासी वन्तआ पांडेका पुत्र था। उस वालकके पिता श्री केकयनन्दन कई मित्रोंके साथ उस वालकको बनारस ले गये और वालकके बतलाये हुए स्थान पर गये। उस समय वनारसके जिलाधीश श्री वी॰ एन॰ मेहता भी उपस्थित थे। वालक वन्तआ महाराज तथा उस मोहल्लेके एकत्रित सज्जनोंको उनके नाम ले लेकर पुकारने लगा और उनसे मिलनेकी उत्सुकता प्रकट करने लगा। उसने अपने पूर्व जन्मके घर तथा बहुत सी क्खुओंको पहिचान लिया और अनेक प्रश्न पूछने लगा कि अमुक अमुक वस्तुएं कहाँ हैं और कैसी हैं। उस वालकका वतलाया हुआ पूर्व जन्मका चृतान्त विल्कुल सच निकला।

भूत प्रेतोंकी कथाएँ भी अवसर लोग सुनाया करते हैं। कुछ पश्चिमीय विद्वानोंने इनका सप्रमाण संकलन भी किया है। भारतीय समान्वार पत्रोंमें भी ये प्रकाशित होती रहती हैं। इनसे सम्बद्ध कई घटनाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें असत्य नहीं माना जा सकता। अक्सर ये प्रेत वहीं पर क्रियाशील दिखाई देते हैं जहां पर इनका पूर्व जन्मका किसी न किसी प्रकारका सम्बन्ध होता है।

प्रश्न यह है कि यह सब क्यों होता है ! जीवको शरीरसे अभिन्न मानने पर न तो बालकको दूध पीने की इच्छा हो सकती है, न वह पूर्व जन्मकी स्मृति रख सकता है और न ही भूत-प्रेत योनिकी विविध घटनाओं का सम्बन्ध ही बिठाया जा सकता है, किन्तु यह सब होता अवश्य है। इससे ज्ञात होता है कि शरीरसे मिन्न कोई खतन्त्र व्यक्तित्व अवश्य है।

जब हम किसी वालकको शिचा दीचासे दीचित करते हैं तब हमें यह देखना होता है कि उसकी स्वा-भाविक रुचि क्या है ! यदि उसकी इच्छाके अनुकल सामश्री जुटा दी जाती है तो उसकी उन्नति होनेमें देर नहीं लगती श्रौर यदि इच्छाके प्रतिकृल कार्य किया जाता है तो उसे बड़ा निराश होना पड़ता है। विचा-खीय यह है कि ऐसा क्यों होता है ! वह कौन सा तत्त्व है जो उससे ऐसा करता कराता है । वैज्ञानिकींने प्राणी की इस प्रवृत्तिका सूच्म निरीच्रण करनेका प्रयत्न किया है। वे तत्काल जीवके ग्रस्तित्वके विपयमं एकमत भले ही न हो सके हों, पर इस तत्त्वकी सत्ताको अस्वीकार करना उनकी शक्तिके बाहर है।

यह बात हम प्रतिदिन के व्यवहारसे देखते हैं कि जब कोई ग्रान्य व्यक्ति हमें दुःख पहँचानेकी चेष्टा करता है तव हमं क्रोध आता है और यदि कोई अपमान करना चाहता है तो आहंकारसे हमारा आत्मा अभि-भूत हो जाता है। किन्तु जल्दी या देरमें हम इस अवस्थासे हटना चाहते हैं। प्रकृतमें विचारणीय यह है कि इ.स प्रकार क्रोध करनेवाला या उससे हटनेवाला व्यक्ति कौन है ? क्या ऐसी विल्र जाए मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया किन्हीं जड़ तत्त्वोंके सम्मिश्रणसे सम्भव हो सकती है ! 'हाँ' में इसका उत्तर देना कठिन है।

हमने ऐसे बहुतसे प्राणी देखे हैं जिनका किसी प्रकारका ग्रानिष्ट करनेपर वे चिरकालतक उसकी वासना से अभिभूत रहते हैं और कालान्तरमें संयोग मिलनेपर वे उसका वदला लेनेसे नहीं चूकते । हम यहां यह कह सकते हैं कि ऐसी वासना वर्तमान जीवनतक ही सीमित रहती है, जन्मान्तरमें इसका ग्रन्वय नहीं देखा जाता । किन्तु यदि जन्मान्तरकी वात छोड़ भी दी जाय तो भी यह तो देखना ही होगा कि एक पर्यायके भीतर ही चिरकालतक ऐसी वासना क्यों देखी जाती है ? क्या बिना स्मृतिके इस प्रकारकी वासनाका वना रहना सम्भव है । मालूम पड़ता है कि बड़ तत्त्वोंसे विलद्मण स्मृतिज्ञानका आधारभूत कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व अवश्य है । प्राचीन ऋषियोंने इसे ही जीवशब्दसे पुकारा है । प्राचीन साहित्यमें इसके गुणोंका ख्यापन ग्रानेक प्रकार से किया गया है। नैयायिक वैशेपिक दर्शनने विश्लेषण करके संसारी जीवके बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेप, प्रयत्न, धर्म, ग्राधर्म ग्रीर संस्कार ये नौ विशेष गुण किल्पत किये हैं। इनकी तुलना हम जैन दर्शनके ग्रानुसार कर्मनिमित्तक भावोंसे कर सकते हैं। जैन दर्शनमं जीवकी ग्रनन्त ग्रनुजीवी शक्तियां मानी गई हैं। उदाहरण स्वरूप ज्ञान, दर्शन, सम्यक्तव, सुख, ज्ञमा, मार्दव, त्र्यार्जच, मोग, उपमोग श्रौर वीर्य ये जीवके अनुजीवी गुण हैं। पुद्गलोंके संयोगसे न होकर ये त्रात्माके स्वतन्त्र व्यक्तित्वको प्रख्यापित करते हैं।

पाचीन साहित्यमें जीवका श्रस्तित्व सिद्धः करनेके लिए सुख्य हेतु 'श्रहंपत्ययवेद्य' दिया जाता है इसलिए यहां इस 'ग्रहम्'का ज्ञान कराना आवश्यक हो जाता है। यह तो हम प्रत्यक्ते ही देखते हैं कि जहाँ हसाग निवास है वहां हम अनेक पदार्थोंसे घिरे रहते हैं । उनमंसे कुछ जड़ होते हैं श्रीर कुछ चेतन । ये प्रति दिन हमारे उपयोगमें त्राते हैं। इसलिए इनकी हम सम्हाल करते हैं। पर इन्हें हम अपने शरीर या आत्मासे श्रिधिक प्रिय नहीं मानते । शरीर रज्ञाका श्रीर मुख्यतः श्रात्मरज्ञाका प्रश्न उपस्थित होनेपर हम इन्हें त्याग देते हैं। शरीरकी भी यही ग्रावस्था होती है। जहांतक वर्तमान जीवनमें रित रहती है या शरीरकें रहते हुए किसी प्रकारका श्रनिष्ट नहीं प्रतीत होता वहीं तक हम उसकी रच्चा करते हैं, श्रन्यथा उसका त्याग करनेमें भी हम संकोच नहीं करते । इस प्रकार वर्तमान जीवनकी घटनात्र्योंसे हम देखते हैं कि इन विविध प्रकारके संयोग-वियोगोंमं भी हमारा 'त्र्रहम्' न तो भौतिक जगत्से सम्बन्ध रखता है ग्रौर न वाह्य चेतन जगत्से ही । उसकी सीमा इन सबसे परे अपनेमें सुरिच्त रहती है। बड़े-बड़े ज्ञानी मुनियोंने अनुभव द्वारा उस अहंप्रत्ययवेदा तत्त्वका निर्णिय किया है । उनकी स्वानुभव पूर्ण वाणी क्या कहती है यह उन्हीं के शब्दों में सुनिए---

'ग्रहमिनको खलु सुद्धो दंसण्णाणमङ्ग्रो सदारूती। ण वि श्रित्थि मन्म किंचि वि श्ररणं परमाणुमित्तं पि॥'

[ग्रा० कुन्दकुन्द]

ब्रहं प्रत्ययवेद्य में एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानदर्शन स्वभाव हूँ ब्रौर रूपादि भौतिक गुर्णोसे रहित हूँ। ये सन नाह्य नगत्से सम्मन्ध रखनेवाले यहाँतक कि परमासु मात्र भी मेरे नहीं हैं।

इसी वातको दूसरे शब्दोंमें उन्होंने यों व्यक्त किया है—
एगो मे सासदो श्रादा खाखदंसण्छन्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सब्वे संजोगलन्खणा॥

[श्रा॰ कुन्दकुन्द]

मेरा त्रात्मा शाश्वत होकर स्वतन्त्र तो है ही किन्तु उसका स्वभाव भी एकमात्र ज्ञान दर्शन है। इसके सिवा मुक्तमें त्रीर जो कुछ भी दिखलाई देता है वह सब संयोगका फल है।

इन प्रमाणोंसे त्रात्माके त्रस्तित्वपर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। यहां मुख्य रूपसे त्रात्माको ज्ञान दर्शन स्वभाववाला बत्लाया गया है क्योंकि इनका त्रम्वय एकमात्र चेतनके साथ देखा जाता है। जहाँ चेतना है वहाँ ज्ञान दर्शन है त्रौर जहाँ ज्ञान दर्शन है वहाँ चेतना है। इनकी परस्परमें व्याप्ति है।

पाचीन साहित्यमें चेतनके मुख्य नाम तीन मिलते हैं—जीव, ब्रात्मा ब्रौर प्राणी। जीव यह नाम जीवन क्रिया की प्रधानता से रखा गया है। ब्रात्मन् राव्दका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है—ब्राप्नोति व्याप्नोतीति ब्रात्मा—जो स्वीकार करता है या व्याप्त कर रहता है। संसार अवस्थामें जीव इन्द्रियों द्वारा विषयोंको ब्रहण करता है अर्थ कैवल्य लाभ होनेपर सबका वह जाता दृष्टा बनता है, इसिलये इसका ब्रात्मा यह नाम भी सार्थक है। ब्रौर प्राणी कहनेसे इसके विविध प्रकारके प्राणोंका बोध होता है। हमें मनुष्यके शरीरमें पाँच ज्ञानेन्द्रियोंकी उपलब्धि होती है। इन द्वारा वह विविध प्रकारके विषयोंको ब्रहण करता है। इनके सिवा वह मनसे सोचता विचारता है, श्वासोच्छ्वास लेता है, शरीरसे विविध प्रकारकी चेष्टाएँ करता है, वचन बोलता है ब्रौर एकके बाद दूसरे शरीरको धारण करता है। पाँच इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, ब्रायु, कायबल, वचनबल ब्रौर मनोबल ये दस प्राण हैं जिनसे इसका प्राणी यह नाम भी सार्थक है। ये ही दस प्राण व्यवहारसे जीवन क्रियाके प्रयोजक माने गये हैं। इन द्वारा मौतिक शरीरमें जीवके अस्तित्वका ज्ञान होता है।

हम पहले इसी जीवके मुक्त और संसारी ये दो भेद करके संसारी जीवके अनेक भेदोंका निर्देश कर आये हैं । प्रश्न यह है कि सब जीव एक समान स्वभाववाले होकर भी उनके ये विविध भेद क्यों दिखाई देते हैं । क्या विना कारणके वे इन विविध प्रकारके भेदोंको और विविध प्रकारके शील स्वभावोंको धारण कर सकते हैं । जैन दर्शन इसी प्रश्नका उत्तर कर्मको स्वीकार करके देता है ।

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कर्मके अस्तित्वको स्वीकार करते हुए गोम्मटसार जीवकाएडमें कहते हैं--"जह भारवहो पुरिसो वहद्द भरं गेहिऊण कावडियं।
एसेव वहद्द जीवो कम्मभरं कायकावडियं॥२०१॥''

जिस प्रकार भारको वहन करनेवाला पुरुष कावरके सहारे उसको ढोता है उसी प्रकार कायरूपी कावर-का सहारा लेकर यह जीव कर्मरूपी भारका वहन करता है।

ये ही कर्म जीवकी इन विविध स्रवस्थास्रोंके कारण हैं।

साधारणतः इस विषयमें यह प्रश्न किया जाता है कि गर्भमें माता पिताके रज-वीर्यके मिलनेसे वालककी उत्पत्ति होती है। विश्वके सब संसारी जीव तीन भागोंमें बटे हुए हैं—कुळ जीव गर्भज होते हैं, कुळ जीव सम्मूच्छ्रन होते हैं ख्रीर कुळ जीव उपपादज होते हैं। इनमेंसे जिन जीवोंकी उत्पत्तिके जो साधन निश्चित हैं उन्हींसे उन जीवोंकी उत्पत्ति होती है।

इस समय वैज्ञानिकोंने विविध प्रकारकी वनस्पतियों पर कुंछ प्रयोग किए हैं जिनमें उन्हें सफलता भी मिली है। वे खट्टे नीवृको प्रयोग द्वारा मीठा कर सकते हैं फूलोंका रंग श्रीर श्राकृति भी वदल सकते हैं। इंजक्शन द्वारा पशुश्रों श्रीर मनुष्योंकी नस्लमें भी वे सुधार कर सकते हैं। इससे भी श्रपने-श्रपने नियत साधनोंसे उस-उस जीवकी उत्पत्तिका ज्ञान होता है।

इसी प्रकार प्रत्येक जीवका शील-स्वभाव श्रीर शरीरकी रचना वाह्य परिस्थिति पर श्रवलम्बित जान पड़ती है। एक जीव क्रोधी होता है श्रीर दूसरा शान्त। यह भेद उस-उस जीवकी शरीर रचना श्रीर वाह्य परिस्थितिपर अवलिम्बत है। सामुद्रिक शास्त्रमं भी इसके कुछ निश्चित नियम दिए गए हैं। इसलिए यह शंका होती है कि जिन कारणोंसे जीवकी उत्पति होती है या जिन कारणोंसे उनका शील-स्वभाव वनता है उनके सिवा इनकी उत्पत्तिका कर्म नामक अन्य अज्ञात कारण नहीं है। यदि कर्मकी सत्ता स्वीकार न की जाय तो भी विविध प्रकारके जीवोंकी उत्पत्ति, आकृति और शील-स्वभावमें जो अन्तर दिखाई देता है वह वन जाता है।

प्रश्न मार्मिक है ग्रौर किसी ग्रंशमें वास्तविक स्थित पर प्रकाश डालनेवाला भी। पर यहाँ विचार-शीय विषय यह है कि जीव द्रव्य स्वतन्त्र होकर भी इन विविध प्रकारके ख्राकारों ख्रीर शील-स्वभावोंको क्यों धारण करता है। वह कौनसा हेत है जिसके कारण वह कभी मनुष्यके शरीरमें आकर वहाँ प्राप्त होनेवाली सामग्रीके श्रनुसार सुख-दुखका वेदन करता है श्रीर कभी तिर्यञ्जके शारीरमें श्राकर वहाँ प्राप्त परिस्थितिके श्रन-सार अपना विकास करता है। कभी क्रोधके निमित्त मिलने पर वह क्रोधी होता है और कभी मानके निमित्त मिलने पर वह मानी होता है। यह तो माना नहीं जा सकता कि वर्तमान जीवनके सिवा उसका पृथक कोई व्यक्तित्व ही नहीं है, क्योंकि भृतचतुष्टयसे ग्रहं प्रत्ययवेद्य ग्रौर ज्ञान दर्शनलच्रणवाले जीवकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। वैज्ञानिकोंने ग्रपनी सूक्ष्म बुद्धिका उपयोग करके ग्रागुवम श्रीर हाइड्रोजनवम बनाया है। बहुत सम्भव है कि उनका वैज्ञानिक श्रनुसंधान इसके श्रागे बहुत कुछ प्रगति करनेमं समर्थ हो पर इन सबमं जीवन डालनेमं उनका प्रयोग सफल होगा यह साहस पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। इसलिए तर्क श्रीर अनुभव यही माननेके लिए वाध्य करता है कि इस शरीरमें पंचभूतोंके योग्य सम्मिश्रग्रके सिवा एक स्वतन्त्र ग्रीर स्थायी व्यक्तित्व ग्रवश्य विद्यमान है जो इन सब विविध ग्रवस्थाओं ग्रीर शील स्वभावींको धारण करता है। माता पिताका रज वीर्य या ग्रन्य प्राकृतिक तथा दूसरे साधन शरीरकी उत्पत्तिमें सहायक हो सकते हैं पर जिस कारणसे यह जीव इन साधनोंका उपयोग करनेमं समर्थ होता है श्रीर जो इसे श्रपने मूल स्वभावसे च्युत कर इन अवस्थात्रों में रममार्ग कराता है, मानना पड़ता है कि वह इन सब दृश्य कारगोंसे भिन्न है । दर्शनकारीने उसे ही 'कर्म' शब्दसे सम्त्रोधित किया है यह कर्मवादकी युक्ति है। इसी वातको स्पष्ट करते हुए पञ्चाध्यायी कारने लिखा है--

'एको हि श्रीमान् एको दिरद इति च कर्मणः।'

[पञ्चाध्यायी ग्रा. २, रलोक ५०]

एक सुखी है श्रीर दूसरा दुखी इससे कर्मका श्रस्तित्व जाना जाता है।

२. जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है

हम देख चुके हैं कि जीव क्या है ग्रीर उसकी संसारमें क्या ग्रवस्था हो रही है। जीवमें कर्मके निमित्त से राग, द्वेप ग्रादिका प्रादुर्मीव होता है ग्रीर इससे नये कर्मका वन्ध होता है। इनकी यह परम्परा ग्रानादि है। इसी मावको व्यक्त करते हुए पञ्चास्तिकायमें लिखा है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो हु होहि परिणामो।
परिणामादो करमं करमोदो होदि गदीसु गदी॥१२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो हं दियाणि जायंते।
तेहिं हु विसयग्गहणं तत्तो रागो य दोसो वा॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालिम्म।

संसारमें स्थित जीवके राग, हो प ग्रीर मोहरूप परिणाम होते हैं। उनके कारण कर्म वंधते हैं। कर्मोंसे गितियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इससे शरीर मिलता है। शरीरके मिलनेसे इन्द्रियाँ होती हैं। इनसे यह जीव विपयोंको ग्रहण करता है। विपयोंको ग्रहण करनेसे राग होते हैं। यह संसारका एक ज्वक है। इसमें जो जीव स्थित है उसकी ऐसी ग्रवस्था होती है।

प्रश्न है कि यह जीव संसार दशाको क्यों प्राप्त होता है। जब राग द्वेषके विना कर्मबन्ध नहीं हो सकता है श्रीर कर्मबन्ध हुए विना राग द्वेष नहीं हो सकता तब जीवकी यह श्रवस्था कैसे होती है ? समाधान यह है कि संसारकी यह चक्र परम्परा बीज चृद्ध या पिता पुत्रके समान श्रनादि कालसे चली श्रा रही है। बीजसे चृद्ध होता है श्रीर चृद्धसे बीज। यह कोई नहीं कह सकता कि इनमंसे किसका प्रारम्भ सर्व प्रथम हुश्रा। हम तो इनका ऐसा ही सम्बन्ध देखते हैं। इससे श्रनुमान होता है कि इनकी यह परम्परा श्रनादि है। इसी प्रकार जीवके संसारके कारणभृत राग-द्वेष श्रीर कर्मबन्धकी परम्पराको भी श्रनादिकालीन मानना पड़ता है।

यद्यपि वर्तमानकालमें विकासवादके सिद्धान्तको माननेवाले यह कहते हैं कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक विकासकी अवस्थामें बन्दर था ओर धीरे धीरे उसे यह अवस्था प्राप्त हुई है। यह विकासवादका सिद्धान्त कुछ मी क्यों न हो किन्तु इससे उक्त मान्यतामें कोई वाधा नहीं आती। अतीत कालमें वहाँ भी जा कर हम प्राणियोंकी उत्पत्तिके क्रमका विचार करते हैं वहाँ हमें यही मानना पड़ता है कि जिस क्रमसे इस समय प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है उसी क्रमसे अतीत कालमें उनकी उत्पत्ति होती रही होगी। यह नहीं हो सकता कि पहले उनकी उत्पत्ति विना माता पिताके या विना बीज वृक्षके होती थी और अब इनकी उत्पत्ति इस क्रमसे होने लगी है।

यद्यपि इस न्यवस्थासे ईश्वरवादी सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि विश्वकी उत्पत्तिका मुख्य कारण ईश्वर है। ईश्वरके मनमें यह इच्छा हुई कि 'एकोऽहं बहु: स्थाम' श्रर्थात् 'में एक बहुत होकें ।' श्रीर फिर उसने विश्वकी सृष्टि की। इसकी विस्तृत चरचा मनुस्मृति श्रीर दूसरे वैदिक पुराण अन्यों की है वहाँ लिखा है—

हिरएयगर्भने अपने शरीरके दो भाग किए और आघेसे पुरुष और आघेसे स्त्री वन गया। उस स्त्रीमं उसने विराट पुरुषकी सृष्टि की। 'मैंने प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छाले आति दुष्कर तपस्या करके दस महर्षियोंको उत्पन्न किया।' इस प्रकार मेरी आज्ञासे इन महात्माओंने अपने तपयोगसे कर्मानुरूप स्थावर जङ्गमकी सृष्टि की।

इस पर प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्मा या ईश्वरके मनमें इस क्रमसे विश्वकी रचनाका विचार क्यों त्र्याया । उसने जिस क्रमसे ब्रादिमें पशु, पत्ती, मत्स्य, सरीख्प ब्रौर मनुष्यकी उत्पत्ति की थी ब्राज भी उसी क्रमसे वह उनकी उत्पत्ति क्यों नहीं करता । क्यों नहीं वह वन्ध्या या पतिविहीना स्त्रियोंको क्रमसे कम एक

१. जैनजगत्में प्रकाशित भदन्त श्रानन्द्जोके लेखसे।

एक पुत्र दे देता है जिससे वे अपने वन्ध्यापन या पतिके अभावके दुखको भूल जाँय। वे मनुष्य जो कुप्रसे जर्जर हो रहे हैं या जो धनाभावके कारण पशुआंका जीवन विता रहे हैं उन्हें क्यों नहीं ऐसे साधन जुटा देता है जिनका आलम्बन पाकर वे अपने कप्रको कुछ कम करनेमं समर्थ हों। उनके पाप ईश्वरको ऐसा नहीं करने देते, इस कथनमें कुछ भी सार नहीं है, क्यों कि पुण्यके समान पापका निर्माण भी तो उसीने किया है ? उसने पापका निर्माण ही क्यों किया !

एक यथार्थवादी होनेके नाते विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि इस प्रकार विश्वकी उत्पत्ति मानना कोरी कल्पना है। वे दर्शन जो ईश्वरवादी माने जाते हैं उनसे भी इस कल्पनाका समर्थन नहीं होता। ईश्वरवादका समर्थन करनेवाले मुख्य दर्शन दो हैं—एक न्याय ग्रीर दूसरा वैशेषिक। किन्तु इनका विचार इस सृष्टिक्रमको स्वीकार नहीं करता।

इस प्रकार विचार करने पर ज्ञात होता है कि विश्वकी यह रचना ग्रानादि है। थोड़ा वहुत जो उसमें समय समय पर परिवर्तन दिखलाई देता है उसमें किसीकी इच्छा कारण न होकर परस्पर में सम्बद्ध घटनाक्रम ही उसके लिये दायी है। सूर्य नियत समय पर उगता है ग्रौर नियत समय पर ग्रस्त होता है। इसमें किसी ग्रज्ञात शिक्षका हाथ नहीं है। जगत्का यह क्रम ग्रानादि कालसे इसी प्रकारसे चला ग्रा रहा है ग्रौर ग्रानन्त काल तक चलता रहेगा। जिन विचारकोंका जगत्के इस स्वामाविक क्रमकी ग्रोर ध्यान गया है उन्होंने विश्वकी यथार्थ स्थितिका विश्लेपण करके विश्वमें स्थित ग्रानन्त पदार्थोंके संयोग ग्रौर स्वमावको ही इसका कारण माना है। जीव ग्रौर कर्मका ऐसा स्वभाव है जिससे वे ग्रानादि कालसे परस्पर सम्बद्ध हो रहे हैं ग्रौर जब तक उन्हें परस्पर बन्धके कारणोंका संयोग मिलता रहेगा तब तक वे बन्धको प्राप्त होते रहेंगे। जीव ग्रौर कर्मके ग्रानादि सम्बन्धकी चरचा करते हुए गोम्मटसार कर्मकाएडमें लिखा है—

'पयडी सीत सहावो जीवंगाणं घ्यणाइसंवंघो। कणयोवले मलं वा ताणित्थत्तं सयं सिद्धं॥ २॥'

कनकोपलके मलके समान जीव श्रौर कर्मका सम्बन्ध श्रनादि है। इसके श्रस्तित्वको सिद्ध करनेके लिये श्रन्य प्रमाणकी स्रावश्यकता नहीं है, वह स्वतःसिद्ध है।

वहास्त्रमें संसारकी त्रानादिता इन शब्दोंमं स्वीकार की है-

न कर्माविभागात् इति चेत् ? नः श्रनादित्वात्।

[बह्मसूत्र २, १, ३५।]

इसका शंकर भाष्य है--

नैप दोपः, श्रनादित्वात् संसारस्य । भवेद् एप दोपो यदि श्रदिमान् संसारः स्यात् । श्रनादौ तु संसारे बीजाङ्करवत् हेतुहेतुमद्भावेन कर्मणः सर्गवैपम्यस्य च प्रवृत्तिर्न विरुद्ध्यते ।

इसमें स्पष्टतः संसारकी ग्रानादिता स्वीकार की गई है। इससे जीव ग्रीर कर्मका सम्बन्ध ग्रानादि सिद्ध होता है।

३. कर्म क्या है

कर्म क्या है ? विचार करनेपर ज्ञात होता है कि जीवका स्पन्दन तीन प्रकारका होता है—कायिक, वाचिनक ग्रौर मानसिक।

जीव शरीरसे कुछ न कुछ किया करता है, वचनसे कुछ न कुछ बोलता है श्रीर मनसे कुछ न कुछ सोचता है। ये तीन क्रियाएँ हैं जो प्रत्येकके श्रनुभवमें श्राती हैं। ये वाह्य हैं। इनके सिवा तीन श्राभ्यन्तर क्रियाएँ भी होती हैं जिन्हें योग कहते हैं।

'कायवाङ्मनः कर्म योगः।'

[तस्वार्थसूत्र ६, १।]

ंक़ाय, वचन ऋौर मनका व्यापार योग है।'

योगका दूसरा नाम स्पन्दन है। कायके निमित्तसे जीवकी स्पन्दन क्रियाको काययोग कहते हैं। वचनके निमित्तसे जीवकी स्पन्दन क्रियाको वचनयोग कहते हैं श्रीर मनके निमित्तसे जीवकी स्पन्दन क्रियाको मनोयोग कहते हैं। काय, वचन श्रीर मन श्रालम्बन है श्रीर जीवकी स्पन्दन क्रिया कर्म है।

जीवकी यह स्पन्दन क्रिया यों ही समाप्त नहीं हो जाती, किन्तु जिन भावोंसे यह स्पन्दन क्रिया होती है उसका संस्कार श्रपने पीछे छोड़ जाती है।

'ये संस्कार चिरकालतक स्थायी रहते हैं इसका दृष्टान्त हमारे लिये श्रपरिचित नहीं है। हम जिसे समृति कहते हैं जिसके फलस्वरूप पूर्वानुभूत वस्तुका स्मरण होता है वह संस्कारके सिवा श्रीर है ही क्या ? समृतिको यह करामात हम प्रतिदिन देखते हैं। प्राकृतिक जगत्में भी संस्कारके कुछ कम दृष्टान्त नहीं हैं। फोनोग्राफ यन्त्रके समीप यदि कोई गीत गाया जाय तो वह गीत संस्कारके रूपमें उस यन्त्रमें रिच्चत रहता है। पीछे युक्तिसे उसका उद्बोधन करनेपर वही गीत पुनः श्रुतिगोचर होने लगता है।

किन्तु इन संस्कारोंका आधार जीव नहीं माना जा सकता, क्योंकि जीवका संसार पुद्रलके आलम्बनसे होता है, अतः जिन भावोंसे स्पन्दन किया होती है उनके संस्कार च्या-च्यामें जीव द्वारा ग्रहीत पुद्रलोंमें ही संचित होते रहते हैं।

इसीलिये अनलंक देवने कहा है-

'यथा भाजनविशेषे प्रचिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामः तथा प्रद्गलाना-मपि श्रात्मनि स्थितानां योगकपायवशात् कर्मभावेन परिणामो वेदितन्यः ।'

[राजवातिक]

निस प्रकार पात्रविशेपमें डाले गये ग्रानेक रसवाले बीज, पुष्प ग्रीर फर्लोका मिदरारूपसे परिण्यमन होता है उसी प्रकार त्रात्मामें स्थित पुद्रलोंका भी योग और कषायके कारण कर्मरूपसे परिण्यमन होता है।

यग्रपि पुद्गलोंकी जातियाँ श्रानेक' हैं पर वे सब पुद्गल इस काम नहीं श्राते । मात्र कार्मण नामक पुद्गल ही इस काम त्राते हैं । ये श्राति सूद्गम श्रीर सब लोकमें व्याप्त हैं । जीव स्पन्दन क्रिया द्वारा प्रति समय इन्हें ग्रहण करता है श्रीर श्रपने भावोंके श्रानुसार इन्हें संस्कारित कर कर्मरूपसे परिणमाता है ।

'कर्म' शब्द तीन ग्रर्थमें प्रयुक्त होता है—(१) जीवकी स्पन्दन किया, (२) जिन भावोंसे स्पन्दन किया होती है उनके संस्कारसे युक्त कार्मण पुद्गल श्रीर (३) वे भाव जो कार्मण पुद्गलोंमें संस्कारके कारण होते हैं।

जीवकी स्पन्दन किया श्रीर भाव उसी समय निवृत हो जाते हैं किन्तु संस्कार युक्त कार्मण पुद्रल जीवके साथ चिरकालतक सम्बद्ध रहते हैं । ये यथायोग्य श्रपना काम करके ही निवृत्त होते हैं ।

ये कालान्तरमें फल देनेमें सहायता करते हैं, इसिलये इन्हें द्रव्यकर्म कहते हैं श्रीर इसीसे इनकी द्रव्य निच्चेपके तद्व य'तिरिक्त भेदमें परिगण्ना की जाती है।

- १. कर्मवाद श्रीर जन्मान्तरसे।
- २. पुद्गळांकी सुख्य जातियां २३ हैं। यथा श्रणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, श्रसंख्याताणुवर्गणा, श्रमाह्यवर्गणा, श्रमाह्यवर्गणा, श्रमाह्यवर्गणा, श्रमाह्यवर्गणा, स्मनोवर्गणा, श्रमाह्यवर्गणा, श्रमह्यवर्गणा, श्रमह्यवर्गणा, श्रमह्यवर्गणा, श्रम्यवर्गणा, श्रम्यवर्गणा।
- ३. कहां किस श्रथमें किस शब्दका प्रयोग किया जाता है इसका ठीक तरहसे ज्ञान कराना निक्षेपका काम है। इसके मुख्य मेद चार हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। किसीका नाम रखना नाम निक्षेप है। इसमें उस शब्दसे ध्वनित होनेवाले किया श्रीर गुण नहीं देखे जाते। उदाहरणार्थ—किसीका नाम महावीर रखनेपर उसमें गुण धर्म नहीं देखे जाते। एक पदार्थकी दूसरे पदार्थमें स्थापना कर तदनुकृत वचन व्यवहार करना स्थापना निक्षेप है। उदाहरणार्थ—महावीरकी प्रतिमाको महावीर मानना। द्रव्यकी जो श्रयस्था श्रागे होनेवाली है उसका पहले कथन करना द्रव्य निक्षेप है। यथा जो श्रागे श्राचार्य होनेवाला

ग्रदृष्ट, भाग्य, विधि, भवितव्य ग्रीर दैव ये द्रव्य कर्मके नामान्तर हैं ग्रीर कहीं कहीं इन नामोंके ग्रथमं व्यत्यय भी देखा जाता है।

कर्मका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है = यत् क्रियते तत् कर्म = जो किया जाता है वह कर्म है । संसारी जीवके रागादि परणाम और स्पन्दन क्रिया होती है, इसिलये ये दोनों तो उसके कर्म हैं ही, किन्तु इनके निमित्तसे कार्मण नामक पुद्रल कर्ममाव (जीवकी आगामी पर्यायके निमित्तभाव) को प्राप्त होते हैं इसिलये इन्हें भी कर्म कहते हैं।

कहा भी है--

'जोवपरिणामहेद्धं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति । पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ ॥' समयप्राभृत =० ो

जीवके रागादि परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गल कर्मरूपसे परिणमन करते हैं श्रीर पुद्गल कर्मोंका निमित्त पाकर जीव भी रागादि रूपसे परिणमन करता है।

यह कर्म (द्रव्य कर्म) को सुस्पष्ट अर्थ है। इसके द्वारा हम संसारमें होनेवालीं अपनी विविध अव- स्थाओंका नाता जोड़ते हैं।

४. कर्मवन्धके हेतु

हम देख चुके हैं कि जीवकी कायिक, वाचिनक श्रीर मानिसक तीन प्रकारकी स्पन्दन किया होती है। उसका नाम कमें है। किन्तु यह किया श्रकस्मात् नहीं होती। इसके होनेमें जीवके श्रुभाशुभ भाव कारण पड़ते हैं। जीवके प्रति समय श्रुभ या श्रशुभ भाव होते हैं। कभी वह किसीको इप्ट मान उसमें राग करता है श्रीर कभी किसीको श्रिनष्ट मान उसमें देज करता है। उसके इन भावोंकी सन्तित यहीं समात नहीं होती, किन्तु वह प्रति समय श्रनेक प्रकारसे प्रस्फुटित होती रहती है। प्राचीन ऋषियोंने क्रियाके साथ इनकी पाँच जातियाँ मानी हैं—मिथ्यादर्शन, श्रविरित, प्रमाद, कपाय श्रीर योग।

मिथ्यादर्शनका लज्ज् है 'स्व' की सत्ताका पृथक् रूपसे अनुभवमं न आना और 'पर' को 'स्व' मानना । संसारमें जीव और देहका संयोग है। इसिलये यह जीव मिथ्यादर्शनके प्रभाववश अपने ज्ञायक स्वभावको भूल पुद्रलको स्व मान रहा है। मिथ्यादर्शनका अर्थ है विपरीत श्रद्धान । संसारी जीवकी यह प्रथम भूमिका है। इसके सद्भावमें जीवकी अदेवमें देवबुद्धि, अगुरुमें गुरुबुद्धि और अतत्त्वमें तत्त्वबुद्धि होती है। धर्म अधर्मका स्वरूप भी पहिचानमें नहीं आता। यह दो प्रकारसे होता है। किसी जीवके निसर्गसे होता है । अग्रेर किसीके अन्यके उपदेशका निमित्त पाकर होता है।

विरितका श्रमाव श्रविरित है। जीवके प्रति समय हिंसा, श्रागृत, स्तेय, श्रागृह श्रीर श्रन्य वस्तुके संचयके भाव होते हैं। उसके जीवनमें यह कमजोरी घर किये हुए है कि श्रन्य वस्तुके विना मेरा काम नहीं चल सकता, इसलिये कभी वह श्रन्य जीवके वधका विचार करता है, कभी श्रसत्य बोलता है कभी उस वस्तुके संग्रहका भाव करता है जिसका उसने श्रपने पुरुषार्थसे न्याय्यवृत्तिसे श्रर्जन नहीं किया या जो उसे श्रन्यसे प्राप्त नहीं हुई, कभी श्रन्यमें रित करता है श्रीर कभी श्रावश्यकतासे श्रिधकका संचय करता है।

प्रमादका ग्रर्थ है ग्रपने कर्तव्यके प्रति ग्रनादर भाव। यह माव स्पर्शन ग्रादि पाँच इन्द्रियोंके विपयमें तीव ग्रासिक्त होनेसे, क्रोध मान माया ग्रीर लोमरूप परिणाम होनेसे, स्त्रीकथा, राजकथा, देशकथा ग्रीर मोजनकथाके निमित्तसे तथा निद्रा ग्रीर स्नेहवश होता है, इसलिए इसके मुख्य भेद पन्द्रह हैं।

है उसे पहलेसे श्राचार्य कहने लगना द्रव्यनिचेप है। तथा जो साधन सामग्री श्रागामी कालमें कार्यके होनेमें सहायक होती है उसका श्रन्तर्भाव भी द्रव्यनिचेपमें होता है। वर्तमान श्रवस्थासे युक्त पदार्थको उसी नामसे पुकारना भाव निक्षेप है। यथा पढ़ाते समय श्रध्यापक कहना।

जो त्रात्माको कृश करता है, खरूप रित नहीं होने देता उसे क्षाय कहते हैं। कपायके मुख्य भेद चार हैं—क्रोध, मान, माया त्रीर लोभ। हास्य, रित, त्रारित, शोक, भय, जुराप्ता, स्त्रीवेद, पुरुषवेद ग्रीर नपुंसकवेद ये भी इसीके भेद हैं। किन्तु ये ईपत् कपाय हैं, इसलिए इन्हें नोकषाय कहते हैं।

योगका श्रर्थ है श्रात्मप्रदेशोंका परिस्पन्द । यह मन, वचन श्रीर कायके निमित्तले होता है, इसलिए इसके मनोयोग, वचनयोग श्रीर काययोग ये तीन भेद हैं ।

जीवकी स्पन्दन किया इन भावोंका निमित्त पाकर कर्मवन्धका कारण होती है इसलिए कर्मवन्धके हेतु रूपसे इनकी परिगणना की जाती है। तत्वार्थसूत्रमें कहा है।

मिध्यादर्शनाविरतिप्रमादकपाययोगाः चन्धहेतव : ॥ =-१ ॥

मिष्यादर्शन, त्राविरति, प्रमाद, कपाय त्रीर योग ये वन्धके हेतु हैं।

प्रमादको पृथक् न गिनकर यह जात समयप्राभृतमें इन शब्दोंमें कही गई है-

सामारणपचया खलु चढरो भगंति वंधकतारो।

मिच्छंत्तं श्रविरमणं कसाय जोगा य बोद्धन्वा ॥ १०९ ॥

कर्मवन्धके कर्ता सामान्य कारण चार हैं--मिध्यादर्शन, ग्रविरति, कषाय श्रीर योग ।

संसारी जीव परिणामोंके अनुसार कई भूमिकाओं में विभक्त हैं। उनके आधारसे उक्त प्रकारसे बन्ध कारणोंका निर्देश किया है। प्रथम भूमिका मिथ्यादर्शनकी है। यह जीवकी ज्ञान चेतनाके अभावमें होती है। यहाँ किसीके कर्म फलचेतनाकी और किसीकी कर्मचेतनाकी प्रधानता देखी जाती है। इसमें बन्धके सब हेत पाये जाते हैं। किन्तु उनमें मिध्यादर्शनकी मुख्यता होनेसे यह मिध्यादर्शनकी भूमिका कहलाती है। दूसरी तीसरी, चौथी और पाँचवी ये अविरतिकी भूमिकाएँ हैं। आदिकी सब भूमिकाओं परिपूर्ण अविरति होती है और पाँचवी भूमिकामें वह आशिक होती है। इन भूमिकाओं में मिध्यादर्शनके सिवा बन्धके केवल चार हेत्र होते हैं। किन्तु यहाँ अविरतिकी प्रधानता होनेसे इन्हें अविरतिकी भूमिका कहते हैं। छटी प्रमादकी भूमिका है। यहाँ मिध्यादर्शन अविरतिके विना बन्धके तीन हेत्र होते हैं। किन्तु इसमें प्रमादकी प्रधानता होनेसे इसे प्रमादकी भूमिका कहते हैं। सातवीं, आठवीं, नौवीं और दसवीं ये कत्रायकी भूमिकाएँ हैं। यहाँ कत्रायकी प्रधानता होनेसे इन्हें कत्रायकी भूमिका कहते हैं। इनमें कत्राय और योग ये दो बन्धके हेत्र होते हैं। आगे तेर-हवीं भूमिका तक मात्र योगका सद्भाव होता है। चौदहवीं भूमिका बन्ध और बन्धके हेत्र छोसे रहित है।

त्रागममं इन भूमिकाञ्रोंकी गुणस्थान संज्ञा है। जीवके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान श्रौर साम्यक्चारित्र ये तीन गुग्ए हैं। इनके यथायोग्य तारतम्यसे ये भूमिकाएँ निष्पन्न होती हैं।

इनमें नहाँ नितने वन्धके हेत होते हैं उनके अनुसार वहाँ कर्मनन्थ होता है। उसमें भी सन कर्मों के वन्धके मुख्य कारण योग और कपाय हैं। योगसे नीव और कर्मका संयोग होता है तथा कषायसे उसमें स्थिति और फलदान शक्तिका आविर्माव होता है। कहा भी है—

'जोगा पयडिपदेसा हिदिश्रसमागा कसायदो होंति ॥'

[द्रव्यसंग्रह गाथा २९]

योगसे प्रकृतिवन्ध श्रीर प्रदेशवन्ध होता है तथा कपायसे स्थितिवन्ध श्रीर श्रनुभागवन्ध होता है।

५. कर्मके भेद

हम पहले कह आये हैं कि जीवका संसार कमोंके संयोगसे होता है। संसार अवस्थामं कर्म जीवकी अनुजीवी और प्रतिजीवी दोनों प्रकारकी शिक्त योंका घात करता है। इससे इसके अनेक मेद हो जाते हैं। किन्तु वर्गीकरण करनेपर जातिकी अपेक्षा उसके मुख्य मेद आठ होते हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

ज्ञानावरण—जीवकी ज्ञान शक्तिको त्रावरण करनेवाले कर्मकी ज्ञानावरण संज्ञा है। इसके पांच भेद हैं।

दर्शनावरण—जीवकी दर्शन शिक्तको भ्रावरण करनेवाले कर्मकी दर्शनावरण संज्ञा हे। इसके नौ भेद हैं।

वेदनीय—सुख ग्रौर दुखका वेदन करानेवाले कर्मकी वेदनीय संज्ञा है। इसके दो भेद है।

मोहनीय—राग, द्वेप ग्रौर मोहको उत्पन्न करानेवाले कर्मकी मोहनीय संज्ञा है। इसके दर्शनमोहनीय ग्रौर चरित्रमोहनीय ये दो भेद हैं। दर्शनमोहनीयके तीन ग्रौर चरित्रमोहनीयके पचीस भेद हैं।

श्रायु -- नरकादि गतियों में श्रवस्थानके कारण भूत कर्मकी श्रायु संज्ञा है । इसके चार भेद हैं ।

नाम—नाना प्रकारके शरीर, वचन ग्रौर मन तथा जीवकी गति इन्द्रिय ग्रादिरूप विविध ग्रावस्थाग्रीं के कारणभूत कर्मकी नाम संज्ञा है। इसके तेरानवे भेद हैं।

गोत्र —सदाचारियों श्रीर कदाचारियोंकी परम्परामं जन्म लेने या उसे स्वीकार करनेकी कारणभूत कर्म की गोत्र संज्ञा है। जैन जर्म जाति या श्राजीविकाकृत मनुष्योंके नीच उच्च भेद नहीं मानता। ये भेद गुण कृत माने गये हैं। साधु श्रचारवालोंकी परम्परामें जो जन्म लेते हैं, जो ऐसे मनुष्योंकी सङ्गतिको जीवनका उच्चतम कर्तव्य समभते हैं श्रीर जो जीवनके संशोधनमं सहायक श्राचारको श्रपने जीवनमं स्वीकार करते हैं वे उच्च गोत्री होते हैं श्रीर जो इनके विरुद्ध श्रचारवाले होते हैं वे नीचगोत्री होते हैं। नीचगोत्री श्रपने जीवनमं श्राप्तम मार्गका त्याग कर उच्चगोत्री हो सकते हैं। ऐसे मनुष्य श्रावकदीक्षा श्रीर मुनिद्धिक पूरे श्रिधकारी होते हैं।

श्रन्तराय—जीवकी दान, लाभ, भोग, उपभोग श्रौर वीर्य ये पांच श्रमुजीवी शक्तियां हैं। इनका श्रावरण करनेवाले कर्मकी श्रन्तराय संज्ञा है। इसके पांच भेद हैं।

इन श्राठों कमोंके प्रकारान्तरसे चार भेद हैं—जीवविपाकी, पुद्रलविपाकी- चेत्रविपाकी श्रीर भव-विपाकी । जिनका विपाक जीवमें होता है उनकी जीवविपाकी संग्रा है । इन कमोंके विपाकके फलस्वरूप जीवको श्रान, श्रदर्शन, सुख, दुख, राग, द्वेप श्रीर मोह श्रादि भावोंकी श्रीर नारक श्रादि पर्यायोंकी उपलिब्ध होती है । जिनका विपाक जीवसे एक चेत्रावगाह सम्बन्धको प्राप्त पुद्रलोंमें होता है उनकी पुद्रलविपाकी संग्रा है । इन कमोंके विपाकस्वरूप जीवको विविध प्रकारके शारीर, वचन श्रीर मनकी उपलिब्ध होती है । जिन कमोंका विपाक भवमें होता है उनकी भवविपाकी संग्रा है । इन कमोंके विपाकस्वरूप जीव नरक श्रादि गतियोंमें श्रवस्थान करता है । तथा जिन कमोंका विपाक चेत्रमें उपलब्ध होता है उनकी चेत्रविपाकी संग्रा है । इन कमोंके फलस्वरूप जीव पुरातन शरीरका त्यागकर नूतन शरीरको प्राप्त करनेके लिए गमन करते हुए श्रन्तराल-में पूर्व शरीरके श्राकारको धारण करता है ।

ये सब कर्म पुराय श्रीर पापके भेदसे दो प्रकारके हैं। ये भेद फलदान शिक्तकी गुख्यतासे किये गये हैं। दान, पूजा, मन्दकपाय, साधुसेवा, दया, श्रलोभता, परगुर्णप्रशंसा, सत्समागम, श्रितिथिसेवा श्रीर वैयावृत्य श्रादि श्रुभ कार्योंके करनेसे श्रीर तदनुकृल मानसकी वृत्ति होनेसे जिन कमोंकी गुड, खाँड, शर्करा श्रीर श्रमतोपम फलदान शिक्त उपलब्ध होती है उनकी पुरायकर्म संज्ञा है श्रीर मिदरापान, मांससेवन, परस्त्री-गमन, शिकार करना, जुश्रा खेलना, रात्रि भोजन करना, चुगलो करना, श्रितिथिके प्रति श्रादर भाव न रखना, दुष्ट पुरुपोंकी संगति करना, परदोपदर्शन, कपायकी तीत्रता श्रीर लोभातिरेक श्रादि श्रशुभ कार्योंके करनेसे श्रीर तदनुकृल मानस वृत्तिके होनेसे जिन कमोंकी नीम, काँजीर, विप श्रीर हलाहलके समान फलदान शिक्त उपलब्ध होती है उनकी पापकर्म संज्ञा है।

फलदान शिक्त वाति श्रीर श्रिषातिके भेदसे दो प्रकारकी है। घातिक्प फलदान शिक्तिके चार भेद हैं—लता, दारु, श्रिष्टा श्रीर शैल । उत्तरोत्तर श्रनुभाग शिक्तिकी कठोरताका ज्ञान करानेके लिए इसका यहाँ लता श्रादि रूपसे नामकरण किया है। इस प्रकारकी फलदान शिक्तिसे युक्त सब कर्म पापरूप ही होते हैं। किन्तु श्रघातिरूप फलदानशिक्त पाप श्रीर पुरुषके भेदसे दो प्रकारकी होती है। यह भी प्रत्येक चार चार प्रकारकी होती है। इसके नामोंका निर्देश पहले किया ही है। प्रत्येक जीवमं दो प्रकारके गुण होते हैं—अनुजीवी और प्रतिजीवी । जो केवल जीवमं होते हैं वेजीवके अनुजीवी गुण हैं और जो जीवके सिवा अन्य द्रव्योंमं भी उपलब्ध होते हैं वे उसके प्रतिजीवी गुण हैं । कमोंके घाति और अघाति इन भेदोंका कारण मुख्यता ये दो प्रकारके गुण ही हैं । ज्ञान, दर्शन सम्यक्त, चारित्र, वीर्य, दान, लाभ, भोग और उपभोग ये अनुजीवी गुण हैं । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म इन गुणों पर प्रहार करते हैं इसलिए इनकी घाति संज्ञा है और इनके सिवा शेष कर्मोंकी अधाति संज्ञा है ।

ं ६. कर्मका कार्य

कर्मका मुख्य कार्य जीवको संसारमें रोक रखना है। जीवके परावर्तनका नाम ही संसार है। वह पाँच प्रकारका है—द्रव्य, च्रेत्र, काल, भव श्रोर भाव। कर्मके निमित्तसे ही जीव इन पाँच प्रकारके परावर्तनों में परिभ्रमण करता है। चौरासी लाख योनियाँ श्रोर उनमें परिभ्रमण करते हुए जीवकी जो विविध श्रवस्थाएँ होती हैं उनका मुख्य निमित्त कर्म है। इसके कार्यका निदंश करते हुए खामी समन्तभद्र श्राप्तमीर्मासामें कहते हैं—

'कागादिप्रभवश्चित्रं कर्मवन्धानुरूपतः।'

'जीवके कामादि मार्वोकी उत्पत्ति ग्रपने ग्रपने कर्मवन्धके श्रनुरूप होती है।'

हम जीवके दो मेदोंका उल्लेख करके यह बतला श्राये हैं कि मुक्त श्रवस्था जीवकी खामाविक दशा है। इस श्रवस्थामें जीवकी प्रति समय जो परिण्ति होती है उसके होनेमें साधारण कारण काल द्रव्यको छोड़कर श्रव्य निमित्तकी श्रायश्यकता नहीं पड़ती श्रीर इसीसे वह परिनरपेक्ष होनेसे श्रुद्ध कहलाती है। किन्तु संसार श्रवस्थामें जीवकी प्रत्येक समयकी परिण्ति निमित्त सापेक्ष होनेसे बदलती रहती है। कभी वह एकेन्द्रिय होता है, कभी द्रीन्द्रिय होता है, कभी नारक होता है, कभी निर्वेश्व होता है, कभी मनुष्य होता है श्रीर कभी पश्चिन्द्रिय होता है। एके जीव बहुत प्रकारके श्राकार श्रीर शील स्वभावोंको धारण करता है। इस प्रकार संसार श्रवस्थामें जीवकी प्रति समयकी परिण्ति जुदी-जुदी होती रहती है इसिलए इसके जुदे-जुदे-निमित्त कारण माने गयेहैं। ये निमित्त संस्कार-स्त्यमें श्रात्मासे सम्बद्ध होते रहते हैं श्रीर कालान्तरमें तदनुकूल परिण्तिके उत्पन्न करनेमें सहायता प्रदान करते हैं। जीवकी श्रुद्धता श्रीर श्रगुद्धता इन निमित्तोंके सद्भाव श्रीर श्रमस्त्राव पर श्राधारित है। जब तक जीव इन निमित्तोंके सन्द्राव श्रीर व उसकी प्रति समयकी श्रवस्थाके होनेमें सहायक होते हैं तब तक जीवकी श्रगुद्धता बनी रहती है श्रीर इस निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी परम्पराका श्रन्त होने पर जीव श्रुद्ध दशाको प्राप्त हो जाता है। जैनदर्शनमें जीवकी श्रगुद्धताके करणभूत इन्हीं निमित्तोंको कर्म शब्दसे प्रकारा जाता है।

इस विपयमं कर्मकी ख्रालोचना करनेवाले यह कहते हैं कि जिस समय जिस प्रकारकी वाह्य सामग्री उपलब्ध होती है उस समय संसारी जीवकी उसके अनुकूल परिणित होती है। सुन्दर सुस्वरूप स्त्रीके मिलने पर राग होता है। जुगुप्साकी सामग्री मिलने पर ग्लानि होती है। विप आदिके मक्षण करने पर मरण होता है। धन सम्पत्तिको देखकर लोभ होता है श्रीर लोभ वश उसके अर्जन करने, छीन लेने या चुरा लेनेका भाव होता है। ठोकर लगने पर दुःख होता है और मालाका संयोग होने पर सुख; इसलिए यह कहा जा सकता है कि केवल कर्म ही जीवकी विविध प्रकारकी परिणितके होनेमें निमित्त नहीं है किन्तु अन्य पदार्थ भी उसके होनेमें निमित्त हैं।

किन्तु विचार करने पर यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अन्तरङ्गमें वैसी योग्यताके अभावमें वाह्य सामग्री कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। उदाहरणार्थ—एक ऐसा योगी है जिसका चित्त स्फटिक मणिके समान खच्छ निर्मेल है। यदि उसके सामने चित्तको मोहित करनेवाली स्त्री या अन्य सामग्री उपस्थित की जाती समान खच्छ निर्मेल है। यदि उसके सामने चित्तको मोहित करनेवाली स्त्री या अन्य सामग्री उपस्थित की जाती है तो भी उसके मनमें राग पैदा नहीं होता। या एक ऐसा व्यक्ति है जिसे विविध्यत वस्तु अनिप्टकर प्रतीत

होती है। भले ही वह वस्तु दूसरोंके लिए प्रिय है। तो भी वह व्यक्ति उस वस्तुको देखकर अप्रयन्नता ही व्यक्त करता है। इससे विदित होता है कि अन्तरङ्गमं योग्यताके अभावमं बाह्य वस्तुका कोई मृल्य नहीं है।

यग्रिप कर्मके विपयमें भी यही अनुपपत्ति उपस्थित की जाती है पर कर्म श्रीर वाह्य सामग्री इनमें मौलिक अन्तर है। कर्मका विशद विवेचन हम पिछले एक परिच्छेदमें कर श्राये हैं। उससे विदित होता है कि जिस समय श्रात्मा जो भाव कहता है उस समय उस भावके संस्कारोंसे युक्त कर्मरज श्रात्मासे सम्बन्धको प्राप्त होते हैं श्रीर कालान्तरमें वे ही कर्म श्रात्माको सुख-दुःखके वेदन करानेमें सहायक होते हैं किन्तु वाह्य सामग्रीकी यह स्थिति नहीं है।

महर्षियोंने श्रपने श्रनुभव द्वारा दो प्रकारके निमित्त कारण स्वीकार किए हैं-कर्म श्रीर नोकर्म । नेमि-चन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती नोकर्मकी मीमांसा करते हुए कहते हैं-

'वस्त्र ज्ञानावरणका, प्रतीहार दर्शनावरणका, ग्रांस वेदनीयका, मद्य मोहनीयका, ग्राहार ग्रायुका, शरीर नामकर्मका, उच्च ग्रीर नीच शरीर गोत्र कर्मका तथा भएडारी श्रन्तराय कर्मका नोकर्म द्रव्य कर्म है।'

श्रागे पुनः वे कहते हैं---

'मितज्ञान ग्रीर श्रुतज्ञानका व्याघात करनेवाले वस्त्रादि पदार्थ मितज्ञानावरण ग्रीर श्रुतज्ञानावरण कर्मके नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। श्रवधिज्ञान ग्रीर मनःपर्ययज्ञानका व्याघात करनेवाले संक्लेशकर पदार्थ ग्रवधिज्ञानावरण ग्रीर मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मके नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। मैंसका दही ग्रादि पदार्थ पाँच निद्रावरण कर्मोंके नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। इष्ट ग्रन्नपानादि साताका, ग्रानिष्ट ग्रन्न-पानादि ग्रासाताका, ग्रायतन सम्यक्तवका, ग्रानायतन मिथ्यात्वका, विडौल पुत्र हास्यका, सुपुत्र रितका, इष्टिवयोग ग्रानिष्टसंयोग ग्रारितका ग्रीर मृत पुत्रादि शोकका नोकर्म द्रव्यकर्म है।'

इस कथनका मिथतार्थ यह है कि कर्मके उद्यसे जीवके विविध प्रकारके ग्रज्ञान, ग्रदर्शन, मुख, दुःख, मिध्यात्व, क्रोध, मान, माया ग्रीर लोभ ग्रादि परिणाम होते हैं ग्रवस्य पर इन भावोंके निमित्तभूत कर्मके उद्य में प्रायः वस्त्र ग्रादि वाह्य पदार्थोंकी सहायतासे ही वे परिणाम होते हैं। यतः ये कर्मके उद्यमें सहकार करते हैं इसिलए इनकी नोकर्म संज्ञा है।

इसी भावको व्यक्त करते हुए कपाय प्राभृतके रचियता गुण्धर श्राचार्य कहते हैं— 'खेत्तभवकालपोग्गलद्विदिविवागोदयखयो दु ॥'

विविध प्रकारके द्रव्य, च्रेत्र, काल, मन श्रीर मान ये श्रपने-श्रपने योग्य कर्मके उदयमं सहकार करते हैं श्रीर इससे कर्मका उदय होकर जीन इष्टानिष्ट फलका मोक्षा होता है। उदाहरणार्थ—कोई मनुष्य जुधासे श्रत्यन्त व्याकुल हो रहा है। ऐसी श्रवस्थामें नहाँ एक दूसरा मनुष्य श्राता है श्रीर उसकी जुधाजन्य पीड़ाको देखकर उसे सुंदर सुस्वादु मोजन कराता है। इससे उसकी जुधाजन्य नेदना दूर होकर नह परम सुखका श्रनुभन करता है। यहाँ परम सुखके श्रनुभन करानेमें साताका उदय कारण है श्रीर साताके उदयमें दूसरे मनुष्य द्वारा दिया गया सुन्दर सुस्वादु मोजन कारण है। यह द्रव्य नोकर्मका उदाहरण है। इसी प्रकार चेत्र श्रादि पदार्थ कर्मके श्रुभाशुम फलके प्रदान करनेमें नोकर्म होते हैं।

किन्तु जिस प्रकार विविधित कर्मका विविधित भावके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है। उस प्रकार नोकर्म द्रव्यकर्मके साथ इन भावोंका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ—जीवका अज्ञान भाव ज्ञानावरण कर्मके उदयसे ही होता है, अन्य प्रकारसे नहीं। यह नहीं हो सकता कि ज्ञानावरणका उदय रहा आवे पर ध्रज्ञान-भाव न भी हो, या यह भी नहीं हो सकता कि ज्ञानावरणका नाश हो जाने पर भी अज्ञान भाव बना रहे। जब होंगे ये परस्पर सापेत्व ही होंगे। जिसके ज्ञानावरणका उदय होता है उसके अज्ञान भाव अवश्य ही होता है। इसी प्रकार जिसके अज्ञानभाव होता है उसके ज्ञानावरणका उदय अवश्य ही होता है। इन दोनोंकी समन्याप्ति है। परन्तु इस प्रकार नोकर्मके साथ जीवके अज्ञान आदि भावोंकी समन्याप्ति नहीं है। जो वस्त्र आदि अज्ञानके कारण माने जाते हैं उनके रहनेपर भी किसीके अज्ञान होता है और किसीके नहीं भी होता। इसी अभिप्रायको ध्यानमें रखकर बाह्म पदार्थोंको नोकर्म संज्ञा दी है। कर्म वैसी योग्यताका स्वक है पर बाह्म सामग्रीका

वैसी योग्यताके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। कभी वैसी योग्यताके सद्भावमें भी बाह्य सामग्री नहीं मिलती श्रोर कभी उसके श्रभावमें भी बाह्य सामग्रीका संयोग देखा जाता है। किन्तु कर्मके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। उसका सम्बन्ध तभीतक श्रात्मासे रहता है जबतक उसमें तदनुकुल योग्यता उपलब्ध होती है। इन दोनों तत्त्वोंकों कर्म श्रीर नोकर्म संशा देनेका यही कारण है।

इतने विवेचनसे हम यह जाननेमं समर्थ होते हैं कि कर्मका कार्य क्या है। तथापि इसे और अधिक विशदरूपसे समक्षनेके लिए सर्वप्रथम उसके वर्गीकरण्पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। यह तो हम पहले ही वतला आये हैं कि मुख्य कर्म आउ हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनमेंसे प्रारम्भके तीन और अन्तराय ये चार घातिकर्म हैं और शेप अघातिकर्म हैं। प्रकारान्तरसे ये आठों कर्म जीवविपाकी, पुद्रलविपाकी, मर्वावपाकी और वेत्रविपाकी इन चार भागोंमें वटे हुए हैं। जीवविपाकी कर्म वे हैं जिनका विपाक जीवमें होता है। जिनके विपाकस्वरूप शरीर, वचन और मनकी प्राप्ति होती है वे पुद्रलविपाकी कर्म हैं। भवके निमित्तसे जिनका फल मिलता है वे भवविपाकी कर्म कहे जाते हैं और चेत्र विशेपमें जो अपना कार्य करते हैं वे चेत्रविपाकी कर्म हैं। भवविपाकी और चेत्रविपाकी कर्म जीवविपाकी कर्मोंके ही अवान्तर मेद हैं केवल कार्यविशेपका ज्ञान करानेके लिए इनका अलगसे निर्देश किया है, इसिलए कर्मोंके मुख्य मेद दो हैं—जीवविपाकी और पुद्रलविपाकी। कर्मके कार्यको ठीक तरहसे हृद्यंगम करनेके लिए ये दो मेद हमें प्रकाशका काम देते हैं।

यह तो हम पहले ही बतला श्राये हैं कि जीवका संसार जीव श्रीर पुद्रल इन तत्त्वोंके संयोगका फल है। श्रकेला जीव संसारी नहीं हो सकता श्रीर श्रकेला कर्म भी कुछ नहीं कर सकता। इन दो तत्त्वोंके मिलापके फलस्वरूप संसारकी सृष्टि होती है। इसलिए कर्मका प्रथम कार्य जीवको संसारी बनाना है। इसके बाद कर्मोंके उक्त वर्गीकरण पर दृष्टिपात करनेसे हम जानते हैं कि जीवकी नर नरकादि विविध श्रवस्थाएँ, मुख-दुःख श्रीर श्रज्ञान श्रादि भाव ये जीवविपाकी कर्पोंके कार्य हैं श्रीर विविध प्रकारके शरीर, मन वचन ये पुद्रल विपाकी कर्मोंके कार्य हैं। इस विवेचनके उपसंहारस्वरूप हम कह सकते हैं कि कर्मके निमित्तसे जीवकी विविध प्रकारकी श्रवस्था श्रीर भाव होते हैं श्रीर जीवमें ऐसी योग्यता उत्पन्न होती है जिससे वह योगद्वारा यथायोग्य शरीर, वचन श्रीर मनके योग्य पुद्रलोंको श्रहणकर उन्हें शरीरादिरूपसे परिण्याता है।

इस विपयमें श्रिधिकतर विद्वान् यह विचार व्यक्त करते हैं कि केवल इतना ही कर्मका कार्य नहीं है किन्तु धन सम्पत्ति, महल, वगीचा, राज्य, पुत्र, स्त्री श्रादि सम्पदाएँ भी कर्मके कार्य हैं। पुरय कर्मके उदयसे जीवको सुखकर सामग्रियोंकी प्राप्ति होती है श्रीर पापके उदयसे दुःखकर सामग्री मिलती है। ऐसे ही विचार कुछ प्राचीन लेखकोंने भी व्यक्त किये हैं। परिडत प्रवर टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशमें लिखते हैं—

'तहाँ वेदनीय किर तो शरीर विषे व शरीर ते बाह्य नाना प्रकार सुख दुःखिनको कारणपर द्रव्यिन-का संयोग जुरे है ।' —[पृ० ३५]

इसी अभिपायको उन्होंने दूसरे खलपर इन शब्दोंमें दुहराया है-

'वहुरि कभैनिविषे वेदनीयके उदयकरि शरीर विषे बाह्य सुख दुःखका कारण निपजे है। शरीर विषे श्रारोग्यपनी रोगीयनौ शक्तिवानपनौ दुर्वलपनौ श्रर क्षुधा तृपा रोग खेद पीड़ा इत्यादि सुख दुःखनिके कारण हो हैं। वहुरि बाह्य विषे सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र घनादिक 'सुख दुःखके कारण हो हैं।

इन विचारोंके अनुरूप वातावरण बननेमें नीतिकारों, कथालेखकों और नैयायिक दर्शनसे बड़ी सहायता मिली है। नीतिकारों और कथालेखकोंकी यह प्रवृत्ति रही है कि जिस विपयकी उन्होंने प्रशंसा करना प्रारम्भ की उसे चरम सीमापर पहुँचाकर ही छोड़ा और जिस विषयकी उन्होंने निन्दा करना प्रारम्भ की उसकी दुर्गति बनाकर ही उन्होंने साँस ली। कर्मकी प्रशंसामें वे लिखते हैं—

'भाग्यं फलित सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम् ।'

भाग्य ही सर्वत्र काम करता है, विद्या स्त्रीर पौरुप कुछ काम नहीं स्राता।

'जलधिगतोऽपि न कश्चित्कश्चित्तटगोऽपि रत्नसुपयाति ।'

पापी जीव समुद्रमे प्रवेश करनेपर भी रत्न नहीं पाता किन्तु पुरायात्मा जीव तटपर बैठे ही उन्हें प्राप्त कर लेता है।

'लिखितमपि ललाटे प्रोडिमतुं कः समर्थः।'

ललाटमं जो कर्मकी रेखा खिच गई है उसे मेटनेके लिए कौन समर्थ है।

'जलनिधिपरतटगतमिप करतलमायाति यस्य भवितन्यम् । करतलगतमिप नश्यति यस्य च भवितन्यता नास्ति॥'

जिसका भाग्य त्रानुकूल होता है उसके समुद्रके उस पार गई हुई वस्तु भी हाथमें ग्रा जाती है ग्रीर जिसका भाग्य प्रतिकूल होता है उसके हाथमें त्राई हुई भी वस्तु नष्ट हो जाती है।

'नामन्यं भवतीह कर्मवरातो भावस्य नाशः फ़ुतः।'

लोकमें जो होनेवाला नहीं है वह नहीं ही होता ख्रौर जो होनेवाला होता है वह होकर ही रहता है। यह सब विधिविधान कर्मके स्राधीन है।

कथा लेखकों श्रौर पुराणकारोंकी स्थिति इससे भिन्न नहीं है। ऐसा करते हुए उन्होंने कर्मवादके श्राध्यात्मिक पहलूको भुलाकर मात्र पिछली कई शताब्दियोंसे चली श्रा रही सामाजिक व्यवस्थाके नियमोंको ही सदा श्रपने सामने रक्ता है। श्रौर इसलिए उन्होंने ईश्वरके समान कर्मका भी श्रस्त्रके रूपमें उपयोग किया है।

यहाँ हमें इन विचारोंके कारणोंकी छानवीनकर लेना उपयुक्त प्रतीत होता है। यर तो हम पहले ही लिख श्राए हैं कि परलोकवादी जितने दर्शन हैं उन सबने कर्मके श्रस्तित्वको स्वीकार किया है किन्तु इन सबका दार्शनिक दृष्टिकोण श्रलग-श्रलग होनेसे कर्मकी व्याख्या भी उन्होंने श्रपने-श्रपने दृष्टिकोणके श्रनुरूप ही की है। प्रकृतमें उपयोगी होनेसे यहाँ हम इस सम्बन्धमें नैयायिक दर्शनके दृष्टि कोणको उपस्थित करेंगे।

नैयायिक दर्शन कार्यमात्रके प्रति कर्मको कारण मानता है। वह कर्मको जीवनिष्ठ मानता है। उसका कहना है कि चेतनगत जितनी विपमताएँ हैं उनका कारण कर्म तो है ही साथ ही वह अचेतनगत सब प्रकारकी विपमताओंका और उनके न्यूनाधिक संयोगोंका भी जनक है। उसके मतसे जगत्में द्वयणुक आदि जितने भी कार्य होते हैं वे किसी न किसीके उपभोगके योग्य होनेसे उनका कर्ता कर्म ही है।

इस दर्शनमं तीन प्रकारके कारण माने गये हैं—समनायी कारण, ग्रसमनायी कारण ग्रीर निमित्त कारण। जिस द्रव्यमं कार्यकी सृष्टि होती है वह द्रव्य उस कार्यके प्रति समनायी कारण है। संयोग ग्रसमनायी कारण है। श्रीर श्रन्य सहकारी सामग्री निमित्त कारण है। तथा काल, दिशा, ईस्वर श्रीर कर्म ये कार्यमात्रके प्रति निमित्त कारण हैं। इनकी सहायता विना कोई कार्य नहीं होता।

ईश्वर श्रीर कर्म कार्यमात्रके प्रति साधारण कारण क्यों हैं, इस प्रश्नका उत्तर नैयायिक दर्शन इन शब्दोंमें देता है कि लोकमं जितने कार्य होते हैं वे सब चेतनाधिष्ठित ही होते हैं इसलिए तो ईश्वर सबका साधारण कारण है।

इस पर यह प्रस्न उपस्थित होता है कि जब सबका कर्ता ईर्वर है तब फिर उसने सब प्राग्रधारियोंको एक-सा क्यों नहीं बनाया। वह सबको एक-से सुख, एक-से भोग और एक-सी बुद्धि दे सकता था। स्वर्ग या मोक्षका अधिकारी भी सबको एक-सा बना सकता था। दुखी, दरिंद्र और निकृष्ट योनिवाले प्राग्यियोंकी उसे रचना ही नहीं करनी थी। उसने ऐसा क्यों नहीं किया। जगत्में तो विषमता ही विषमता दिखाई देती है। इसका अनुभव सभीको होता है। क्या जीवधारी और क्या जड जितने भी पदार्थ हैं उन सबकी आकृति, स्वभाव और जाति जुदी-जुदी है। एकका मेल दूसरेसे नहीं खाता। मनुष्यको ही लीजिए। एक मनुष्यसे दूसरेमें मनुष्यमें बड़ा अन्तर है। एक सुखी है तो दूसरा दुखी। एकके पास सम्पत्तिका विपुल भएडार है तो दूसरा दाने-दानेको भटकता फिरता है। एक सातिशयबुद्धिवाला है तो दूसरा निरामूर्ख। माल्स्यन्यायका सर्वत्र योलवाला है। बड़ी मछली छोटी मछलीको निगल जाना चाहती है। यह भेद यहींतक सीमित नहीं है।

धर्म श्रीर धर्मायतनों में भी यह भेद दिखाई देता है। यदि ईश्वरने सबको बनाया है श्रीर वह मन्दिरों में वैठा है तो उसतक सबको क्यों नहीं जाने दिया जाता। क्या उन दलालोंका जो श्रन्यको मन्दिरमें जानेसे रोकते हैं उसीने निर्माण किया है ? ऐसा क्यों है ? जब ईश्वरने ही इस जगत्को बनाया है श्रीर वह करूणामय तथा सर्वशिक्तमान है तब फिर उसने जगत्की ऐसी विषम रचना क्यों की ? यह प्रश्न है जिसका उत्तर नैया-यिक दर्शन कर्मवादको स्वीकार करके देता है। वह जगत्की इस विपमताका कारण कर्मको मानता है। उसका कहना है कि ईश्वर ज्ञातका कर्ता है तो सही पर उसने विश्वकी रचना प्राणियोंके कर्मानुसार की है। जीव जैसा कर्म करता है उसीके श्रनुसार उसे योनि श्रीर भोग मिलते हैं। यदि श्रच्छे कर्म करता है तो श्रच्छी योनि श्रीर श्रच्छे भोग मिलते हैं। कविवर तुलसीदास जी इसी तत्त्वको स्वीकार करते हुए रामचरितमानसमें कहते हैं—

"करम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करिह सो तस फल चाखा।।"

ईश्वरने विश्वकी रचना कर्म प्रधान की है। जो अच्छा या बुरा जैसा काम करता है उसीके अनुरूप उसे क्ल मिलता है।

नैशायिक दर्शन कार्यमात्रके प्रति कर्मको साधारण कारण मानता है। इसके श्रनुसार जीवातमा व्यापक है इसलिए जहां भी उसके उपमोगके योग्य कार्यको स्रष्टि होती है वहां उसके कर्मका संयोग होकर ही वैसा होता है। श्रमेरिकामें वननेवाली जिन मोटरों तथा श्रन्य पदार्थोंका मारतीयों द्वारा उपमोग होता है व उनके उपमोक्ताश्रोंके कर्मानुसार ही निर्मित होते हैं श्रीर इसीसे वे कालान्तरमें श्रपने-श्रपने उपमोक्ताश्रोंके पास पहुँच जाते हैं। उपमोग योग्य वस्तुश्रोंके विभागीकरणका कर्म तुलादर्थ है। जिसके पास विपुल सम्पत्ति है वह उसके कर्मानुसार है श्रीर जो निर्धन है वह भी श्रपने कर्मानुसार है। कर्म बटवारेमें कभी भी पक्षपत नहीं होने देता। गरीव श्रीर श्रमीरका भेद तथा स्वामी श्रीर सेवकका भेद मानवहत नहीं है। श्रपने-श्रपने कर्मानुसार ही इन भेदोंकी सृष्टि होती है। इसी प्रकार जातिहत भेद भी कर्मकृत ही है।

संह्येपमें नैयायिक दर्शनका मन्तव्य यह है कि प्राणी जो भी अच्छे बुरे कर्म करता है उसके अनुसार ईश्वर उसके फलकी व्यवस्था करता है। यदि कोई मनुष्य किसीके धनका अपहरण करता है तो अगले भवमें उसके धनका अवश्य ही अपहरण होता है और वर्तमान भवमें वह किसीको सहायता करता है तो अगले भवमें उसे अवश्य ही सहायता मिलती है।

किन्तु जैनदर्शनमें वतलाये गये कर्मवादसे इस मतका समर्थन नहीं होता। यहां कर्मवादकी प्राण प्रतिष्ठा मुख्यतया ग्राध्यात्मिक ग्राधारोंपर की गई है। ईश्वरको तो जैनदर्शन स्वीकार करता ही नहीं। वह निमित्तको स्वीकार करके भी कार्यके ग्राध्यात्मिक विक्लेपण्पर ग्राधिक जोर देता है। नैयायिक ग्रीर वैशेषिक दर्शनने कार्यकारणभावकी जो व्यवस्था की है वह उसे मान्य नहीं है। उसका मत है कि पर्यायक्रमसे बदलते रहना यह प्रत्येक वस्तुका स्वभाव है। इसके मतसे जिस कालमें वस्तुकी जैसी योग्यता होती है उसीके श्रनुसार कार्य होता है। जो दत्य, क्षेत्र, काल श्रीर भाव जिस कार्यके श्रनुकूल होता है वह उसका निमित्त कहा जाता है। कार्य श्रपने उपादानसे होता है किन्तु कार्य निप्पत्तिके समय श्रन्य वस्तुकी श्रनुकूलता ही निमित्तताका प्रयोजक है। निमित्त उपकारी कहा जा सकता है कर्ता नहीं। जैनदर्शनने जगतको श्रक्तिम श्रीर श्रनादि क्यों माना है इसका रहस्य यही है। वह यावत् कार्योंमें बुद्धिमान् निमित्तको ग्रावश्यकता स्वीकार नहीं करता। घटादि कार्योंकी उत्पत्तिमें यदि बुद्धिमान् निमित्त देखा भी जाता है तो इससे सब कार्योंमें बुद्धिमान्को निमित्त मानना उचित नहीं है ऐसा इसका मत है।

जैनदर्शन कर्मको स्वीकार करके भी यावत् क्योंके प्रति उसे निमित्त कारण नहीं मानता । वह जीवकी विविध अवस्थाएं, शरीर, इन्द्रिय, वचन, मन और श्वासोच्छवास इन कार्योंके प्रति ही कर्मको निमित्त कारण मानता है । इस दर्शनमें कर्मवादको जो व्यवस्था की गई है उसके अनुसार अन्य कार्य अपने अपने कारणोंसे होते हैं कर्म उनका कारण नहीं है । उदाहरणार्थ-पुत्रका प्राप्त होना, उसका मर जाना, रोजगारमें नका नुक-सानका होना, दूसरेके द्वारा अपमान या सन्मानका किया जाना, अकस्मात् मकानका गिर पड्ना, फसलका नष्ट

हो जाना, दुर्घटना द्वारा एक या अनेक व्यक्तियोंकी मृत्युका होना, ऋतुका अनुकूल या प्रतिकृल होना, अकाल या मुकालका पड़ना, रास्ता चलते-चलते अपघातका हो जाना, मनुष्य आदिपर विजली आदि गिरकर उसका मर जाना, शरीरमें रोगादिकका होना तथा विविध प्रकारके इप्रानिष्ट संयोगों व वियोगोंका होना अदि जितने कार्य हैं उनका कर्म कारण नहीं है। अमसे इन्हें क्मोंका कार्य माना जाता है। पुत्रकी प्राप्ति होनेपर मनुष्य अमवश उसे अपने शुभ कर्मका कार्य समभता है और उसके मर जानेपर अमवश उसे अपने अशुभ कर्मका कार्य समभता है। पर क्या पिताके पापकर्मके उदयसे पुत्रकी मृत्यु या पिताके पुर्योदयसे पुत्रकी उत्पत्ति सम्भव है। कभी नहीं। सच वात तो यह है कि ये इप्टसंयोग और इप्टियोग आदि जितने कार्य हैं वे पुर्य और पाप कर्मके कार्य नहीं हैं। निमित्त अन्य वात है और कार्य अन्य वात है। कर्मोदयके निमित्तको कर्मका कार्य कहना उचित नहीं है।

यहां प्रसङ्गसे हम उस मतकी श्रालोचना करेंगे जिसके श्रनुसार बाह्य इष्टानिएके संयोग-वियोगमें कर्मकी उपादेयता खीकार की जाती है।

प्रश्न यह है कि एक सम्पन्न घरमें उत्पन्न होता है श्रीर दूसरा दिख्न घरमें । एक श्रल्पायु होता है श्रीर दूसरा दिखायु । एकको जीवनमें नाना प्रकारके पूजा सत्कारकी प्राप्ति होती है श्रीर दूसरा दर-दरका भिखारी बना फिरता है। एक स्वर्ग जाकर देवसुखका उपभोग करता है श्रीर दूसरा नरकका कीड़ा होकर श्रनन्त यातनाएँ सहन करता है। यदि इप्रसंयोग श्रीर इष्टवियोग श्रादि पुर्य श्रीर पाप कर्मका फल नहीं है तो यह सब क्यों होता है ?

यह तो हम देखते हैं कि लोकमें एक ऐरवर्यशाली होता है श्रीर दूसरा दरिद्र । तथा हम श्रागमसे यह भी जानते हैं कि देव लोकमें भोगोपभोगकी विपुल सामग्री उपलब्ध होती है श्रीर नरकमें न केवल उसका सर्वया श्रभाव ही दिखाई देता है प्रत्युत वहां वहुतायतसे दुखके साधन ही देखे जाते हैं पर ऐसा क्यों होता है इसका विचार हमें तात्विक दृष्टिसे करना चाहिए ।

श्रागमें व्यवस्था दो प्रकारकी वतलाई है—एक शास्वितक व्यवस्था श्रीर दूसरी प्रयत्नसाध्य व्यवस्था । देवलोक, नरक श्रीर भोगभूमिमं शास्वितक व्यवस्था होती है। वहां श्रनादि काल पहले जो व्यवस्था थी वहीं श्राज भी है। जहां जितने विमान, नरक या कल्पवृद्ध श्रादि हैं वे सदा उतने ही वने रहेंगे। उनका जो शृङ्कार है वह भी उसी प्रकार बना रहेगा। उसमें तिलमात्र भी अन्तर नहीं हो सकता। इसिलए श्रपने पूर्ववद्ध श्रायुक्तमंके श्रनुसार जो जहां उत्पन्न होता है उसे वहांकी सुख दुखमें निमित्त पड़नेवाली सामग्री श्रनायास मिलती है श्रीर जीवनके श्रान्तिम सग्तक उसका संयोग बना रहता है। पुर्यातिशय न तो इसमें वृद्धि ही कर सकता है श्रीर न हीनपुर्य उसमें न्यूनता ही ला सकता है। हम यह तो कह नहीं सकते कि इन स्थानोंमें कमोंका विपाक एक समान होता है;क्योंकि एक तो श्रागममें इस प्रकारका कोई उल्लेख नहीं मिलता श्रीर मनुष्यकी युक्ति व विवेक भी इसे स्वीकार नहीं करता। श्रागममें तो यहांतक निर्देश किया है कि जिस प्रकार देवोंके साताका उदय होता है उसी प्रकार श्रमताका भी उदय होता है। नारिकयोंके सम्बन्धमें भी यही बात कही गई है। श्रागमका यह कथन तभी युक्तियुक्त उहरता दे जब हम यह मान लेते हैं कि इन स्थानोंमें भी कमेंके विपाकमें न्यूनाधिकता व यथासम्भव कर वहल देखा जाता है।

थोड़ी देरको हम इस सामग्रीको पुण्य ऋौर पापका फल मान भी लें तब भी हमारे सामने यह तो प्रदन रहता ही है कि यदि देवलोककी सामग्री पुण्यले मिलती है तो ऊपर ऊपरके देवोंके पुण्यातिशयकी विशेषता होनेसे उत्तरोत्तर विपुल सामग्रीकी उपलब्धि होनी चाहिए । किन्तु ऐसा नहीं होता । तत्त्वार्थसूत्रमें लिखा है कि ऊपर उपरके देव गति, शरीर परिग्रह ऋौर ऋमिमानसे हीन-हीन होते हैं । तत्त्वार्थसूत्रके इस कथनकी सार्थकता तभी बन सकती है जब हम बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति पुण्यका फल नहीं मानते हैं । इस पर यह प्रदन किया जा सकता है कि तो फिर इसकी प्राप्तिका कारण क्या है ! प्रदन त्पष्ट है ऋौर उसका उत्तर भी स्पष्ट है कि बाह्य सामग्रीकी प्राप्तिका मूल कारण पुण्य न होकर प्राणीकी कपाय है । एक कथाय ही ऐसा पदार्थ है जिसके निमित्तसे यह प्राणी बाह्य परिग्रहको स्वीकार करता है, उसका द्यर्जन करता है, संचय करता है ऋौर

सिञ्चित द्रव्यका संरक्षण, करता है। त्रागममं बतलाया है कि ग्रामुक लेक्यावाला जीव मरकर ग्रमुक स्वर्ग या नरकमं मरकर उत्पन्न होता है त्रीर यह भी वतलाया है कि जो जीव जिस प्रकारके स्थानको प्राप्त करता है उसके मरणके पूर्व नियमसे उस प्रकारकी लेक्या हो जाती है। ग्रीर यथासम्भव जीवन भर वह बनी रहती है। यह लेक्या क्या है कपाय ही तो है। इसमें योगकी पुट देकर उसकी लेक्या संज्ञा रख दी है।

पुर्य श्रीर पापकी जिनागममें लोकोत्तर व्याख्या की है। पुर्यकर्मका उपदेश क्या इसिलए दिया जाता है कि वह इस जीवनमें हेय जानकर जिस बाह्य श्रीर श्रन्तरङ्ग परिग्रहका त्याग करता है श्रगले जन्ममें उसके फलस्वरूप उसे वह पुनः प्राप्त कर श्रनन्त संसारका पात्र बने। पुण्यकर्मकी इससे बड़ी श्रीर विडम्बना क्या हो सकती है। हेय जानकर जिन पदार्थोंका इस जीवनमें त्याग किया जाता है उसके फलस्वरूप वह संसार बन्धनोंको श्रांशतः दीला करता है श्रीर यदि यह वासना चिरकाल तक बनी रहती है तो पुनः वह उसी मार्ग पर हढ़ता-पूर्वक चलने लगता है जिसके फलस्वरूप ऐसा क्षण उपित्यत होता है जब वह समग्ररूपसे भवबन्धनको काटनेमें समर्थ होता है। यह पुग्यकर्मकी लोकोत्तर व्यवस्था है श्रीर इसिलए हम हढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि बाह्य सामग्रीको प्राप्ति पुग्यकर्मका फल विकालमें नहीं है।

श्रव हम इस लोककी श्रोर मुड़ते हैं। इस लोकमें हम श्रनेक प्रकारकी व्यवस्थाएँ देखते हैं। ये सव व्यवस्थाएँ किसने की १ पुराकृत कर्म यदि इनका कारण है तब तो हमें उनके सम्बन्धमें बोलनेका श्रिधकार ही नहीं रहता। श्रीर यदि इनके निर्माणमें मनुष्यका हाथ माना जाता है तो हमें इन सब व्यवस्थाश्रोंके प्रति मनुष्यकी कषायको ही दायी मानना चाहिए न कि कर्मको। कर्म व्यक्तिगत पुराकृत कार्योंका लेखा है श्रीर व्यवस्थाएँ समाजरचनाका श्रङ्क हैं। इसलिए लोकमें एकका दिद्र होना श्रीर दूसरेका राजा वनना यह कर्मका कार्य नहीं होकर समाजरचनाका फल है।

देखो, यहाँ सर्वप्रथम भोगभूमि थी। उस समय प्रकृतिसे प्राप्त साधनोंसे प्रािख्योंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति होती थी। धीरे धीरे इस स्थितिमें परिवर्तन होता है। साधनोंकी विरलताके साथ मनुष्योंकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगती हैं। सब मनुष्य एक प्रकारके साधनोंके आधारसे आजीविका नहीं कर सकते यह देख विविध प्रकारके कला कीशल और उद्योगोंका निर्माण होता है। पृथिवी माताका पेट चीरकर साधन उपलब्ध करनेकी कला अवगत की जाती है। पुरानी व्यवस्थाओंका स्थान नई व्यवस्थाएँ लेती हैं। तब भी मनुष्योंके अभावकी पूर्ति नहीं होती, इसलिए मनुष्य अलग अलग समुदायोंमें विभक्त होकर पृथिवी माताका बटवारा करते हैं। सबके अलग-अलग नियम बनते हैं। चतुर चालाक मनुष्य आगे आते हैं। वे साधनों पर एकाधिकार स्थापित करते हैं और दूसरे प्रकारके मनुष्य पीछे रह जाते हैं। इससे मानव समुदायोंमें वेचैनी बढ़ती है। वह मिल कर व्यवस्थाको उलटनेका प्रयत्न करता है। इस समय हम विश्वमें जो अनेक बाद और व्यवस्थाएँ देख रहे हैं यह उनका संक्षिप्त लेखा है। इसके बाद भी यदि हम एकका गरीब होना और दूसरेका श्रीमान होना आदिका कारण कर्मको मानते हैं तो कहना होगा कि यह वह कर्मवाद नहीं है जिसका उपदेश तीर्थक्करोंने विश्वको दिया था।

साधारणतः प्रांचीन साहित्यमें हमें दो तरहके मतोंका उल्लेख मिलता है निनमं बाह्यसामग्रीकी प्राप्तिके कारणोंका निर्देश किया गया है। आगे इन दोनोंके आधारसे विचार कर लेना इप्ट है—

- (१) षट्खरडागम चूलिका अनुयोगद्वारमें प्रकृतियोंका नाम निर्देश करते हुए स्त्र १८ की टीकामें वीरसेन स्वामीने इनका विस्तृत विवेचन किया है। वहां सर्वप्रथम वे सातावेदनीय और असातावेदनीयके उसी स्वरूपका निर्देश करते हैं जो सर्वत्र प्रसिद्ध है और जो उनके जीवविपाकी प्रकृति होनेके अनुरूप है। किन्तु शंका समाधानके प्रसङ्गसे वे सातावेदनीयको जीवविपाकीके समान पुद्गलविपाकी भी मान लेते हैं। यद्यपि यह उनका व्यक्तिगत मत कहा जा सकता है पर इससे इस कथनका समर्थन होता है कि सातावेदनीयको पुद्गलविपाकी माने विना उसे वाह्य सामग्रीकी प्राप्तिमें कारण नहीं माना जा सकता।
- (२) तत्त्वार्थसूत्र अध्याय २ की सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक टीकामें अरिहन्तोंको प्राप्त होनेवाली सिंहासन आदि विभूतिके कारणोंका निर्देश करते हुए लामान्तराय आदि कमोंके क्षयको उसका कारण वतलाया

है। किन्तु सिद्धों में त्र्यतिप्रसङ्ग दोप देनेपर इसंके साथ शरीर नामकर्म त्रादिकी त्र्रपेक्षा त्रीर लगा दी है।

ये दो मत हैं जिनमें बाह्य सामग्रीकी प्राप्तिके कारणोंका स्पष्ट निर्देश किया है। ग्रिधिकतर विद्वान् इन्हीं दोनों मतोंका ग्राश्रय लेते हैं। कोई वेदनीयको बाह्य सामग्रीकी प्राप्तिका निमित्त कहते हैं ग्रीर कोई लाभान्तराय ग्रादिके च्रय व क्षयोपशमको।

साधारणतः यह धारणा हो जानेसे कि संसारी प्राणिको जो भी संयोग वियोग होता है वह पुराकृत कर्मके विपाकके विना नहीं हो सकता, विद्वान् प्रत्येक प्रश्नका उत्तर कर्मवादसे देनेका प्रयत्न करते हैं। हम पहले नैयायिक सम्मत कर्मवादका निर्देश कर आये हैं। वहाँ यह भी वतला आये हैं कि यह दर्शन कार्यमात्रके होनेमें कर्मको कारण मानता है। अधिकतर अन्य लेखकोंने इस मतसे प्रभावित होकर ही आम्त की है।

हम रेलगाड़ीसे सफर करते हैं। हमें वहां अनेक प्रकारके मनुष्योंका समागम होता है। कोई हँसता हुआ मिलता है तो कोई रोता हुआ। इनसे हमें सुख भी होता है और दुख भी। तो क्या ये हमारे शुभाशुभ कमोंके कारण रेलगाड़ीमें सफर करने आये हैं १ कभी नहीं। जैसे हम अपने कामसे सफर कर रहे हैं वैसे वे भी अपने-अपने कामसे सफर कर रहे हैं। उनके संयोग-वियोगमें न हमारा कर्म कारण है और न उनका ही कर्म कारण है।

हमारे मकानका मुख पूर्व श्रीर पश्चिम दोनों दिशाश्रोंकी श्रोर है। उससे प्रति दिन सूर्य रिहमयाँ घरको श्रालोकित करती रहती हैं। जाड़ेके दिनोंमें वह प्रकाश हमें सुखद प्रतीत होता है श्रीर गर्मीके दिनोंमें दुखकर प्रतीत होता है तो क्या यह प्रकाश हमारे शुपाशुम कमोंके कारण हमारे मकानमें स्थान पाता है किमी नहीं। मकानका मुख पूर्व श्रीर पश्चिम दोनों दिशाश्रोंकी श्रोर है, इसिलए सूर्य रिहमयोंको मकानमें प्रवेश करनेमें वाधा उपिख्यत नहीं होती।

हमारी दुकान बम्बईमें है। हमने अपनी समभसे एक ग्रन्छे आदमीको उसका मुख्याधिकारी नियुक्त किया है। वह वहाँका सब काम सम्हालता है। कभी दुकानमें लाभ होता है ग्रीर कभी हानि। तो क्या हमारे ग्रुभाग्रुभ कमोंके कारण वहाँ हानि-लाभ होता है श्रवि हानिका कारण हमारा कमें है तो हम मुनीमको क्यों दोग देते हैं श्रीर लाभके प्रति भी हमारा कमें दायी है तो हम मुनीम की पीठ क्यों ठोकते हैं। पूर्वोक्त व्यवस्थाके अनुसार मुनीम तो एक प्रकारका यन्त्र है जो हमारे कमेंसे प्रेरित होकर काम करता है। उसका उसमें ग्रुण-दोप ही क्या है ?

हमारी पत्नीने मन पसन्द एक साड़ी खरीदी है। वह उसे वड़े जतनसे पेटीमें सम्हालकर रखती है। पेटीकी वगलमें एक सूराख है जिसका उसे ज्ञान नहीं है। उसकी समभसे साड़ी सुरक्षित रखी हुई है किन्तु प्रतिदिन एक चुहिया सूराखसे भीतर जाकर उसे कुतरती रहती है। जब तक उसे हानिका ज्ञान नहीं होता वह प्रसन्न रहती है किन्तु इसका ज्ञान होनेपर वह विकलताका अनुभव करने लगती है। यदि वह हानि उसके कर्मानुसार होती है तो जबसे यह हानि होती है तमीसे वह विकलताका अनुभव क्यों नहीं करती ?

स्पष्ट है कि ये या इसी जातिके लोकमें श्रीर जितने संयोग वियोग हैं उनमें कर्मका रख्यमात्र भी हाथ नहीं है। सातावेदनीय श्रीर श्रसातावेदनीय कर्मोंकी व्याप्ति सुख श्रीर दुखके साथ की जा सकती है, बाह्य साधनोंके सद्भाव श्रीर श्रसद्भावके साथ नहीं। यही कारण है कि श्रावकके श्रल्प परिश्रंही श्रीर साधकें श्रपरिश्रही होनेपर भी वे उत्तरोत्तर पुरयात्मा श्रर्थात् पुराय कर्मके उपभोक्षा होते हैं, क्यों कि वे बहुपरिश्रही व्यक्तिकी श्रपेक्षा उत्तरोत्तर परम सुखका श्रनुभव करते हैं।

इसी प्रकार जब हम लाभान्तराय ग्रादि कर्मोंके क्षय या क्षयोपशम जन्य कार्योंकी मीमांसा करते हैं तो हमें बलात् मानना पड़ता है कि इन कर्मोंका क्षय व क्षयोपशम भी बाह्य सामग्रीके संयोग वियोगका कारण नहीं हो सकता। कारण कि ग्रात्माकी जो दान, लाभ, भोग, उपभोग ग्रीर वीर्य ये पाँच ग्रनुजीवी शिक्तयाँ मानी गई हैं ग्रन्तराय कर्म उनका ही ग्रावरण करता है, ग्रतएव ग्रन्तराय कर्मके ज्ञय व क्षयोपशमसे ये ग्रनुजीवी शिक्तयाँ ही ग्राविर्मृत होती हैं।

इस प्रकार यह ज्ञात हो जानेपर कि वाह्य साधनोंकी उपलब्धि न तो साता श्रीर श्रसातावेदनीयके

निर्मित्तसे होती है श्रीर न लाभान्तराय कर्मके त्त्य या ध्रयोपशमसे ही होती है, हमं उनकी उपलिध्यके कारखोंपर श्रवश्य ही विचार करना होगा। लोकमें वाहा साधनोंकी प्राप्तिके श्रनेक मार्ग दिखाई देते हैं। उदाहरखार्थ—उद्योग करना, व्यवसाय करना, मजदूरी करना, व्यापारके साधन जुटाना, राज्याधिकारियोंकी या साधन सम्पन्न व्यिक्तयोंकी चाटुकारी करना, उनसे मित्रता वढ़ाना, श्रार्जित धनकी रक्षा करना, उसे व्याजपर लगाना, प्राप्त धनको विविध व्यवसायोंमें लगाना, खेती करना, भांसा देकर ठगी करना, जेव काटना, चोरी करना, जुत्रा खेलना, भीख माँगना, धर्मादायको संचितकर पचा जाना श्रादि बाह्य साधनोंकी प्राप्तिके साधन हैं। इन व श्रन्य कारखोंसे बाह्य साधनोंकी उपलिब्ध होती है, कर्मोंसे नहीं।

शंका—इन सब उपायोंके या इनमेंसे किसी एक उपायके करने पर हानि देखी जाती है सो इसका क्या कारण है ?

समाधान-प्रयत्नकी कमी, या बाह्य परिस्थिति या दोनों।

शंका—कदाचित् व्यवसाय त्र्यादिके नहीं करने पर भी धनकी प्राप्ति देखी जाती है सो इसका क्या कारण है ?

समाधान—यहाँ यह देखना है कि वह प्राप्ति कैसे हुई है। क्या किसीके देनेसे हुई है या कहीं पड़ा हुआ मिलनेसे हुई है ? यदि किसीके देनेसे हुई है तो इसमें जिसे मिला है उसके विद्या स्नादि गुण कारण है या देनेवालीकी स्वार्थसिद्धि स्नौर प्रेम स्नादि कारण है। यदि कहीं पड़ां हुआ होनेसे उसकी प्राप्ति हुई है तो इस मार्गसे प्राप्त हुआ धन पुरयकर्मका फल कैसे कहा जा सकता है। यह तो चोरी है। स्नतः चोरीके माव ही इस प्रकारसे धनकी प्राप्तिमें कारण है साता का उदय नहीं।

शंका—दो श्रादमी एकसाथ एकसा व्यवसाय करते हैं, फिर क्या कारण है कि एकको लाभ होता है श्रीर दूसरेको हानि ?

समाधान—स्थापार करनेमें श्रपनी-श्रपनी योग्यता श्रीर उनकी श्रलग-श्रलग परिस्थिति श्रादि इसका कारण है, पाप पुण्य नहीं । संयुक्त न्यापारमें एकको हानि श्रीर दूसरेको लाभ हो तो कदाचित् हानि-लाभ पाप पुण्यका फल माना मी जाय । पर ऐसा होता नहीं, श्रतः हानि लाभको पाप पुण्यका फल मानना उचित नहीं है ।

शंका—र्याद बाह्य साधनोंका लाभालाभ पुग्य पापका फल नहीं है तो फिर एक गरीब श्रौर दूसरा श्रीमान् क्यों होता है ?

समाधा—एकका श्रीमान् श्रीर दूसरेका गरीन होना यह सामाजिक व्यवस्थाका फल है, पुण्य पापका नहीं । जिन देशों में पूँजीवादी व्यवस्था है श्रीर व्यक्तिको संग्रह करनेकी कोई सीमा नहीं वहाँ श्रपनी श्रपनी योग्यता व साधनोंके श्रानुसार मनुष्य उसका संचय करते हैं । गरीन श्रमीर वर्गको सृष्टि इसी व्यवस्थाका फल है । गरीन श्रीर श्रमीर इन मेदोंको पाप पुण्यका फल मानना किसी भी श्रवस्थामें उचित नहीं है । रूस ने बहुत कुछ हदतक इस व्यवस्थाका श्रन्त कर दिया है, इसिलिए वहां इस प्रकारका मेद बहुत ही कम दिखाई देता है, फिर भी पुण्य पाप तो नहाँ भी है । सचमुचमें पुण्य पाप तो नह है जो इन नाहा व्यवस्थाशोंसे परे है श्रीर वह श्राध्यात्मिक है । जैन कर्मशास्त्र ऐसे ही पुण्यका निर्देश करता है ।

शंका—यदि बाह्य साधनोंका लाभालाभ पुग्य पापका फल नहीं है तो सिद्ध जीवोंको उसकी प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—वाह्य साधनोंका सद्भाव जहां है श्रीर जो कपाययुक्त हैं उन्होंके उनकी प्राप्ति सम्भव है। साधारणतः उनकी प्राप्ति जड़ श्रीर चेतन दोनोंको होती है, क्योंकि तिजोड़ीमें भी धन रखा रहता है, इसलिए उसे भी धनकी प्राप्ति कही जा सकती है। किन्तु जड़के रागादि भाव नहीं होता श्रीर चेतनके होता है, इसलिए वह ममकार श्रीर श्रहंकार भाव करता है।

शंका—यदि बाह्य साधनोंका लामालाम पुर्य पापका फल नहीं है तो न सही, पर सरोगता ग्रोर नीरोगता यह तो पुर्य पापका फल मानना ही पड़ता है ?

समाधान—सरोगता ग्रौर नीरोगता दो प्रकारकी होती है त्रानु वंशिक ग्रौर प्रयत्न साव्य । दोनों ग्रावस्थाग्रोंमं इसे पुराय पापका फल नहीं माना जा सकता । जिस प्रकार बाह्य साधनोंकी प्राप्ति अपने-ग्रपने कारणोंसे होती है उसी प्रकार सरोगता ग्रौर नीरोगता भी ग्रपने-ग्रपने कारणोंसे होती है । इसे पाप पुरायका फल मानना किसी भी ग्रावस्थामें उचित नहीं है ।

शंका--सरोगता श्रौर नीरोगताके क्या कारण हैं ?

समाधान--- ग्रस्वास्थ्यकर श्राहार, विहार व संगति करना ग्रादि सरोगताके कारण हैं श्रीर स्वास्थ्य वर्धक श्राहार, विहार व संगति करना नीरोगताके कारण हैं।

इस प्रकार कर्मकी कार्यमर्यादाका विचार करनेपर यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्म वाह्य सम्पत्तिके संयोग वियोगका कारण नहीं है। किन्तु जिस कर्मका जो नाम है उसीके अनुसार वह काम करता है। सम्पत्तिका संयोग श्रौर वियोग होता अवक्य है किन्तु कहीं वह अनायास होता है श्रौर कहीं कपायपूर्वक होता है इसलिए सम्पत्तिके संयोगका मुख्य कारण कपाय है श्रौर वियोगका कारण कहीं कपाय है श्रौर कहीं कपायका त्याग है। जो रागादिमं वशीभृत होकर उसका त्याग करते हैं उनके वियोगका करण रागादि परिणाम हैं श्रौर जो राग देवकी हानि होनेसे उसका त्याग करते हैं उनके उसके वियोगका कारण राग द्वेषकी हानि है।

विषय-परिचय

महावन्धके चार भागोंमेंसे प्रकृतिबन्धका प्रकाशन कई वर्ष पहले हो चुका है। यह स्थितिबन्ध है। इसके मुख्य अधिकार दो हैं—मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध श्रीर उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्ध। मूलप्रकृतिस्थितिबन्धके मुख्य अधिकार चार हैं—स्थितिबन्ध स्थानप्ररूपणा, निपेकप्ररूपणा, श्रावाधाकारुडक प्ररूपणा श्रीर ग्रल्पवहुत्व।

कुल संसारी जीवराशि चौदह जीव समासों में विभक्त है। इनमेंसे एक-एक जीव समासमें अलग-अलग कितने स्थिति विकल्प होते हैं; स्थितिजन्धके कारणभूत संक्लेशस्थान और विशुद्धि स्थान कितने हैं और सबसे जघन्य स्थितिजन्धसे लेकर उत्तरोत्तर किसके कितना अधिक स्थितिजन्ध होता है इन तीनका उत्तर अलपबहुत्वकी प्रक्रिया द्वारा स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा नामक पहले अनुयोगद्वारमें दिया गया है।

निपेक प्ररूपणाका विचार दो अनुयोगोंके द्वारा किया गया है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाके द्वारा यह वतलाया गया है कि आयुकर्मके सिवा शेष सात कमोंका जितना स्थितिन्यध होता है उसमेंसे आवाधाके कालको कम करके जो स्थिति शेप रहती है उसके प्रथम समयमें सबसे अधिक कर्म परमाणु निचित्त होते हैं और इसके आगे द्वितीयादि समयों कमसे उत्तरोत्तर एक-एक चयहीन कर्मपरमाणुओंका निपेच होता है। इस प्रकार विविच्ति समयमें जिस कर्मके जितने कर्म परमाणुओंका बन्ध होता है उनका उक्त प्रकारसे विभाग हो जाता है। पर आयुकर्मकी अवाधा स्थितवन्धमें सम्मिलित नहीं है, इसलिये इसको प्राप्त कर्म द्वयका विभाग आयुकर्मके स्थितवन्धके सब समयोंमें होता है।

किस कर्मकी कितनी आत्राधा होती है इस बातका मी यहां संकेत किया है। यहाँ जो कुछ बतलाया है उसका माव यह है कि एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिकी सौ वर्ष प्रमाण आवाधा होती है। इस हिसाबसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिकच्य तीस कोड़ाकोड़ी सागर होनेसे इनकी उत्कृष्ट अवाधा तीन हजार वर्ष प्राप्त होती है; मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिकच्य सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होनेसे इसकी उत्कृष्ट अवाधा सात हजार वर्ष प्राप्त होती है और नाम व गोत्र कर्मका उत्कृष्ट स्थितिकच्य वीस कोड़ाकोड़ी सागर होनेसे इनकी उत्कृष्ट अवाधा दो हजार वर्ष प्राप्त होती है। यह संज्ञी पञ्चित्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवके उत्कृष्ट स्थितिकच्य होनेपर जो अवाधा प्राप्त होती है उसकी अपेक्षा जानना चाहिए। शेप तेरह जीव समासों सात कर्मोमंसे जिसके जिस कर्मका जितना उत्कृष्ट स्थितिकच्य होता है उसे ध्यानमं रख कर अवाधा जाननी चाहिए। वह कितनी होती है इसका निर्देश करते हुए वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बतलाई है। कारण कि अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर जितना भी स्थितिकच्य होता है उस सक्की आवाधा अन्तर्मुहूर्त होती है ऐसा नियम है।

मात्र श्रायुकर्मकी श्रावाधाका विचार दूसरे प्रकारसे किया गया है। यहां मूल प्रकृति स्थितिवन्धका प्रकरण होनेसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध तेतीस सागर कहकर उसकी श्रवाधा एक पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण कहा गया है। यह तो सुविदित है कि श्रायुकर्मका तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मनुष्य श्रोर तिर्यञ्चके ही होता है। किन्तु यहां श्रवाधा एक पूर्व कोटिका त्रिभाग प्रमाण कहनेका कारण क्या है यह विचारणीय है

जीवद्वाण्के चूलिका अनुयोगद्वारकी छठवीं और सातवीं चूलिकामें क्रमसे उन्हृष्ट स्थितिवन्ध और जन्नन्य स्थितिवन्धका निर्देश किया है। वहां छठवीं चूलिकाके सूत्र क्रमांक २३ 'पुन्वकोडितिभागो अवाधा' व्याख्या करते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं—

'पुन्वकोहितिमागमादिं काडण जाव श्रासंखेपद्धा ति । जदि एदे श्राबाधावियप्पा श्राडश्रस्स सन्व-रिसंयद्विदीसु होति तो पुन्वकोहितिमागो चेव उक्सस्सिणिसेयद्विदीए किमद्दं उच्चदे ? णः उक्कस्सावाधाए विगा उक्कस्सिणिसेयद्विदीए चेव उक्कस्सावाधाउत्तादो ।'

ग्राशय यह है कि यहां पर स्त्रमें नरकायु ग्रौर देवायुकी उत्कृष्ट ग्रावाधा पूर्वकोटिका त्रिभाग

प्रमाण कही है उससे पूर्वकोटिके त्रिभागसे लेकर ग्रासंचेपाद्धा कालतक जितने ग्रावाधाके विकल्प होते हैं उन सकत ग्रहण होता है। इसपर प्रश्न यह होता है कि यदि ग्रावाधाके ये सब विकल्प ग्रायुकर्मकी सब निपेक स्थितियों में होते हैं तो उत्कृष्ट निपेक स्थितिकी उत्कृष्ट ग्रावाधा पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण ही किसलिए कहते हैं? इसका समाधान करते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि उत्कृष्ट ग्रावाधाका कथन किये विना उत्कृष्ट निपेक स्थितिमात्र से उत्कृष्ट कर्मिस्थित नहीं प्राप्त होती है। यह बात वतलानेके लिए यहां उत्कृष्ट ग्रावाधा कही है।

वीरसेन स्वामीके इस कथनका यह श्रामिप्राय है कि यद्यपि उत्कृष्ट श्रायुका बन्ध केवल उत्कृष्ट त्रिभागमें ही नहीं होता; वह उत्कृष्ट त्रिभागसे लेकर श्रासंबेपादा कालके भीतर श्रायु बन्धके योग्य कालमें कभी भी हो सकता है पर यहां उत्कृष्ट कर्मस्थिति दिखलानेके लिए केवल उत्कृष्ट श्रावाधा कही है।

स्थित दो प्रकारकी होती है—कर्मास्थित और निपेकित्यित । ग्रायु कर्मकी उन्ह्रप्ट निपेक स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है ग्रीर कर्मस्थिति पूर्वकोटिका त्रिमाग ग्रधिक तेतीस सागर प्रमाण है । यहां इसी कर्मिस्थितिका ज्ञान करानेके लिए उत्कृष्ट ग्रावाधा कही है यह उक्क कथनका तात्पर्य है ।

श्वेताम्त्रर कर्मप्रकृतिमें चारों त्र्यायुत्र्योंके उत्कृष्ट स्थितित्रन्धका निर्देश करते समय उसका इस प्रकार निर्देश किया है—

'तेत्तीसुदही सुरनारयाङ सेसाड पर्वितगं।।' (कर्मप्रकृति वन्धनकरण, गाया ७३) स्रर्थात् देवायु स्रोर नरकायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध तेतीस सागर प्रमाण होता है।

किन्तु इसकी टीकामें 'पूर्वकोटित्रिमागाभ्यधिकानीति शेपः' यह वाक्य श्राया है। सो इस कथनसे भी वीरसेन स्वामीके कथन की ही पुष्टि होती है। श्रर्थात् श्रायु कर्मकी उत्कृष्ट नियेक स्थिति तेतीस सागर प्रमाण होती है श्रौर उत्कृष्ट कर्मस्थिति पूर्वकोटिका त्रिभाग श्रिधक तेतीस सागर प्रमाण होती है।

यद्यपि महाबन्धमं त्रागे भुजगार बन्धका निरूपण करते समय त्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट विमागके प्रथम समयनं कहकर त्रागे त्राल्पतर बन्धका ही निर्देश किया है। त्राय यदि वहां निपेक स्थितिका ग्रहण करते हैं तो पूर्वोक्त कथनके साथ बाधा त्राती है इसिलए बीरसेन स्वामीके त्रामिप्रायको ध्यानमं रखकर वहां कर्नस्थितिका ही ग्रहण करना चाहिए त्रौर इस प्रकार महाबन्धके पूरे कथनकी सार्थकता भी हो जाती है तथा यह भी ज्ञात हो जाता है कि त्रायुकर्मका उत्कृष्ट निपेक स्थितिबन्ध केवल उत्कृष्ट त्रिभागमं ही नहीं होकर त्रायु बन्धके योग्य किसी कालमं भी हो सकता है।

श्रव प्रश्न यह रह जाता है कि यदि मूलमें श्रायु कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रावाधा सहित लिया गया है तो केवल तेतीस सागर प्रमाण न कह कर पूर्वकोटिका त्रिभाग श्रिधिक तेतीस सागर प्रमाण कहना चाहिये था। किन्तु मूलमें ऐसा न कहकर केवल तेतीस सागर प्रमाण ही कहा है, इसमें श्रावाधा कालको सम्मिलित नहीं किया गया है सो इसका क्या कारण है ?

वीरसेन त्वामीके सामने भी यह प्रश्न था। उन्होंने जीवस्थान चूलिकामें इस प्रश्नका समाधान किया है। वे कहते हैं कि आयुकर्मके स्थितिवन्धमें निपेक और आवाधा अन्योन्याश्रित नहीं हैं इस वातका ज्ञान करानेके लिए निपेकस्थितिके साथ आवाधाका निर्देश नहीं किया है। आशाय यह है कि जिस प्रकार ज्ञानावरण आदि कमोंकी निपेकस्थिति और आवाधाका अन्योन्य सम्बन्ध है। अर्थात् यि ज्ञानावरण्का तीस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण उन्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है तो उसकी आवाधा तीन हजार वर्ष प्रमाण ही होगी और एक आवाधाकारडक न्यृन उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है तो एक समय कम तीन हजार वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आवाधा होगी, इस प्रकार जैसे यहां निपेक स्थिति और आवाधाका परस्पर सम्बन्ध है और इसलिए इन दोनोंका संयुक्त निर्देश किया जाता है उस प्रकार आयुकर्मकी निपेकस्थितिके साथ आवाधाका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्नु कितनी ही आवाधाके रहनेपर कितना ही निपेकस्थितिवन्ध हो सकता है। यही कारण है कि यहां आयुकर्मके प्रकरणमें निपेकस्थिति और आवाधाका संयुक्त विवेचन नहीं किया गया है।

यहां प्रकरण प्राप्त होनेसे एक वातका ग्रौर निर्देश कर देना स्त्रावश्यक प्रतीत होता है। जीवस्थान

चूलिकामें इसी त्रायुके प्रकरणमें त्रावाधाका निर्देश करनेके त्रानन्तर सर्वत्र 'श्राबाधा' यह खतन्त्र सूत्र त्राता है।

इस प्रसंगसे वीरसेन स्वामीने जो कुछ कहा है उसका भाव यह है कि जिस प्रकार ज्ञानावरणादिके समयप्रवद्धोंमें बन्धावितके वाद अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण रूपसे वाघा दिखाई देती है उस प्रकार आयुकर्मके निपेकोंमें अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण रूपसे वाघा नहीं होती, यह दिखलानेके लिए दूसरी वार 'श्रावाधा' इस स्त्रकी रचना की है।

प्रश्न यह है कि क्या त्रायुकर्ममें अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण आदि नहीं होते। यदि होते हैं तो यहां इनका निपेध क्यों किया गया है। और इस दृष्टिसे इसे बाधा रहित क्यों कहा है ! समाधान यह है कि आयुकर्मकी आवाधा शेष भुज्यमान आयु प्रमाण मानी गई है। नियम यह है कि एक आयुका दूसरी आयुमें संक्रमण नहीं होता। यहां भुज्यमान आयु अन्य है और वध्यमान आयु अन्य है। मान लो कोई एक जीव मनुष्यायुका भोग कर रहा है और उसने पुनः मनुष्यायुका ही बन्ध किया है तो भी ये एक आयु नहीं ठहरतीं और इसलिए वध्यमान आयुका न तो भुज्यमान आयुमें अपकर्षण होता है और न भुज्यमान आयुका वध्यमान आयुमें संक्रमण होता है। यही कारण है कि यहां आवाधाके भीतर निषेक दिथितकों बाधा रहित बतलाने के लिए 'आवाधा' इस सूत्रकी स्वतंत्र रचना की है। कदलीघात आदिसे बध्यमान आयुकी आवाधा न्यून हो जाय यह स्वतन्त्र वात है पर बध्यमान आयुके द्वारा अपकर्षण होकर और भुज्यमान आयुके द्वारा संक्रमण होकर यह न्यून नहीं हो सकती यह उक्क कथनका तास्पर्य है।

श्रनन्तरोपनिधाका विचार करनेके बाद परम्परोपनिधाका विचार श्राता है। यहां बतलाया है कि प्रथम निपेक्से श्रागे पल्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाने पर प्रथम निपेक्सें जितने कर्म परमाणु निज्ञित्त होते हैं उनसे वे श्राधे रह जाते हैं। इसी प्रकार जधन्य स्थितिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर पल्यके श्रसंख्यातवें भाग-प्रमाण स्थान जाने पर वे श्राधे श्राधे रहते जाते हैं। प्रत्येक गुणहानिके प्रति चयका प्रमाण श्राधा श्राधा होता जाता है, इसिलिए इस व्यवस्थाके घटित हो जानेमें कोई बाधा नहीं श्राती। मात्र कर्मास्थितिमेंसे श्राज्ञाधा कालको न्यून करके जो स्थिति शेष रहती है उसमें यथासम्भव पल्यके श्रसंख्यातवें भागका भाग देकर वहां प्राप्त द्विगुणहानिका प्रमाण ले श्राना चाहिए। एक उत्कृष्ट स्थितिमें पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण नाना द्विगुणहानिका प्रमाण ले श्राना चाहिए। एक उत्कृष्ट स्थितिमें पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण नाना द्विगुणहानियां होती हैं इसलिए यहां एक द्विगुणहानिका प्रमाण लानेके लिए पल्यके श्रसंख्यातवें भागसे भाजित किया गया है।

मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सर्वाधिक है इसिलए उसमें सबसे अधिक नाना द्विगुग्गहानियां उपलब्ध होती हैं। शेप कर्मोंमें जिनकी जितनी न्यून स्थिति है उनमें उसी अनुपातसे वे न्यून उपलब्ध होती हैं। सब कर्मोंकी सब जीवसमासोंमें निपेक रचनाका यही क्रम है।

'श्राबाधाकारहक'का विचार करते हुए वतलाया है कि उत्कृष्ट स्थितिसे पल्यके श्रसंख्यातवें मागप्रमार्ग स्थान जाकर इन सब स्थितिविकल्पोंका एक श्रावाधाकारहक करता है। श्रर्थात् इतने स्थितिविकल्पोंकी उत्कृष्ट श्रावाधा होती है। इसके बाद इतने ही स्थितिविकल्पोंकी एक समय कम श्रावाधा होती है। इस प्रकार जमन्य श्रावाधा होती है। इस प्रकार जमन्य स्थितिके प्राप्त होने तक श्रावाधा ले श्राना चाहिए। यहां जितने स्थितिविकल्पोंकी एक श्रावाधा होती है उसकी स्थितिके प्राप्त होने तक श्रावाधा ले श्राना चाहिए। यहां जितने स्थितिविकल्पोंकी एक श्रावाधा न्यून उत्कृष्ट एक श्रावाधाकारहक संशा है। इसे जानेका क्रम यह है कि उत्कृष्ट श्रावाधाका भाग श्रावाधा न्यून उत्कृष्ट एक श्रावाधाकारहक संशा है। इसे जानेका क्रम यह है कि उत्कृष्ट श्रावाधाका भाग श्रावाधा न्यून उत्कृष्ट एक श्रावाधाकारहक संशा है। सब जीवसमासों श्रावाधाकारहक संशा इसी विधिसे प्राप्त कर जेना चाहिए। मात्र श्रायुकर्ममें यह नियम लागू नहीं होता, क्योंकि वहां स्थितिवन्धक श्रावाधा नहीं प्राप्त होती।

प्रश्न यह है कि नहां सागरों प्रमाण स्थितिनन्ध होता है वहां तो इस अनुपातसे आवाधाकार इककी उपलिध्य हो नाती है पर नहां अन्तःको झालोड़ी सागरकी आवाधा भी अन्तर्मु हूर्त कही है और अन्तर्मु हूर्त माण स्थितिनन्धकी आवाधा भी अन्तर्मु हूर्त कही है वहां इस अनुपातसे व्यवस्था कैसे वन सकती है।

यह प्रश्न वीरसेन स्वामीके सामने भी था। उन्होंने जीवस्थान चूलिकामें इस प्रश्नका समाधान किया है। वे लिखते हैं कि न्यून या जघन्य स्थितिबन्धमें आबाधाकाएडककी जाति इससे मिन्न होती है, इसलिए वहां जो त्राबाधाकार्यं हो उसका भाग देकर त्राबाधा ले त्रानी चाहिए। सब प्रकारके स्थितवन्धोंमें त्राबाधा-कार्यं एक समान नहीं होता, किन्तु जहां संख्यात वर्ष प्रमाण रिथितबन्ध होता है वहां त्रान्तमु हूर्त प्रमाण त्राबाधासे विविद्यत स्थितिके भाजित करनेपर संख्यात समय मात्र त्राबाधा कार्यं उपलब्ध होता है।

चौथे प्रकरणका नाम श्रक्पबहुत्व है। इसमें सब जीव समासोंमें जघन्य श्रावाधा, श्रावाधास्थान, श्रावाधाकाराडक, उत्कृष्ट श्रावाधा, नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर, एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर, जघन्य स्थितिवन्ध, स्थितवन्धस्थान, श्रीर उत्कृष्ट स्थितिवन्ध इन सबके श्रल्पबहुत्वका निर्देश किया गया है।

श्रल्पबहुत्वका विवेचन करने पर स्थितिबन्धका सामान्य विवेचन पूरा होता है।

श्रागे पूर्वके विवेचनको अर्थपद मानकर निम्न श्रिष्ठकारों द्वारा मूल प्रकृति स्थितिवन्धके विचार करनेकी सूचना की गई है। वे अष्ठिकार ये हैं—श्रद्धाच्छेद, सर्ववन्ध, नोसर्ववन्ध, उत्कृष्टवन्ध, श्रमुत्कृष्टवन्ध, जधन्यवन्ध, सादिवन्ध, श्रनादिवन्ध, ध्रुववन्ध, श्रुववन्ध, स्वामित्व, वन्धकाल, वन्धान्तर, वन्धसित्कर्ष, नाना जीवोंकी अपेद्या मङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, द्वेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव श्रोर श्रल्पबहुत्व। इसके बाद भुजगारवन्ध, पदिनद्वेप, वृद्धिवन्ध, अध्यवसानसमुदाहार श्रीर जीवसमुदाहार इन प्रकरणों द्वारा भी मूलप्रकृति स्थितिबन्धका विचार किया गया है। भुजगारवन्धके १३ अनुयोगद्वार, पदिनद्वेपके ३ अनुयोगद्वार, वृद्धिवन्धके १३ अनुयोगद्वार, श्रीर अध्यवसान समुदाहारके ३ अनुयोगद्वार हैं। जीवसमुदाहार का अलगसे कोई अनुयोगद्वार नहीं है।

इन अनुयोगद्वारोंके जो नाम हैं उन्हींके अनुसार उनमें स्थितवन्थके आश्रयसे विचार किया गया है।
आगे उत्तर प्रकृति खितिबन्धका विचार भी इसी प्रिक्रयासे किया गया है। मात्र मूलप्रकृतिखितिबन्धमें आठ
मूल प्रकृतियोंके आश्रयसे विचार किया गया है और उत्तर प्रकृति खितिबन्धमें १२० उत्तर प्रकृतियोंके आश्रयसे
विचार किया गया है। यद्यपि उत्तर प्रकृतियाँ १४८ हैं पर दर्शनमोहनीयकी सम्यक्तव और सम्यग्मिय्यात्व ये
दो अबन्ध प्रकृतियाँ हैं और पाँच बन्धनों व पाँच संघातोंका पाँच शरीरोंमें अन्तर्भाव हो जाता है तथा स्पर्शादिक्को अवान्तर बीस भेदोंके खानमें स्पर्शादिक चारका ही प्रहण किया गया है, इसिलए २८ प्रकृतियाँ कम
होकर यहाँ कुल १२० प्रकृतियाँ ही ग्रहण की गई हैं।

स्थितिबन्धके मुख्य भेद चार हैं यह हम पहले कह त्राये हैं। स्थितिवन्धका कारण कषाय है। कहा भी है—'द्वित्रग्राभागा कसायदो होंति।'

स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कपायसे होता है।

त्रागममें कषायके विविध मेदोंकी कपायाध्यवसान संज्ञा कही है। ये कपायाध्यवसान स्थान दो प्रकारके होते हैं—संक्लेशरूप श्रौर विशुद्धिरूप। इन्हें ही संक्लेशरूथान श्रौर विशुद्धिरूथान कहते हैं। त्रासातके बन्ध योग्य परिणामोंकी संक्लेश संज्ञा है श्रौर साताके बन्ध योग्य परिणामोंकी विशुद्धि संज्ञा है। ये दोनों प्रकारके परिणाम कपायस्वरूप होकर भी जातिकी अपेक्षा अलग अलग हैं। तत्त्वार्थसूत्र अध्याय सातमें साता और असताके बन्धके कारणोंका निर्देश करते हुए लिखा है—

'दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यस्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥ भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः चान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥

श्रपने श्रात्मामें, श्रन्यकी श्रात्मामें या दोनोंमें स्थित दुःख, शोक, ताप, श्राक्रन्दन, वध, श्रौर परि-देवन ये श्रसातावेदनीयके श्रास्तवके कारण हैं। तथा जीवमात्रके प्रति श्रनुकम्पा, वितयोंके प्रति श्रनुकम्पा, . दान श्रौर सरागसंयमका उचित ध्यान रखना श्रौर क्षान्ति व शौच ये साता वेदनीय कर्मके श्रास्तवके कारण हैं॥ ११–१२॥

यह उल्लेख परिणामोंकी जातिका ज्ञान करानेके लिए बहुत ही स्पष्ट है। इससे संक्लेशरूप परिणामोंकी जाति क्या है श्रीर विशुद्ध परिणामोंकी जाति क्या है इसका स्पष्टतया बोध होता है। ये दोनों प्रकारके परिणाम एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक प्रत्येक जीवके छटवें गुणस्थानतक होते हैं। सातवें श्रादि गुणस्थानोंमें प्रमादका श्रभाव हो जानेके कारण मात्र विशुद्ध परिणाम ही होते हैं।

साधारण नियम यह है कि तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु ग्रौर देवायुको छोड़कर रोष सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है ग्रौर इनसे विपरीत परिणामोंसे जधन्य स्थितिबन्ध होता है। इसी ग्रिमिप्रायको गोम्मटसार कर्मकाएडमें इन शन्दोंमें व्यक्त किया है—

'सन्विहदीण्मुक्कस्सन्रो दु उक्कस्ससंकित्तेसेण । विवरीदेण जहण्णो श्राउगतियविज्ञयाणुं तु॥'

इसलिए प्रश्न होता है कि तीन ग्रायुश्रोंको छोड़कर शेप सब प्रकृतियोंका बन्ध जब संक्लेश श्रीर विशुद्ध दोनों प्रकारके परिणामोंसे होता है, ऐसी श्रवस्थामें श्रसाताके बन्धयोग्य परिणामोंकी संक्लेश संशा है श्रीर साताके बन्धयोग्य परिणामोंकी विशुद्धि संशा है यह लक्षण कैसे सुविचारित कहा जा सकता है। समाधान यह है कि संक्लेश परिणाम भी जधन्य मध्यम श्रीर उत्कृष्टके भेदसे श्रनेक प्रकारके होते हैं श्रीर विशुद्ध परिणाम भी जधन्य, मध्यम श्रीर उत्कृष्टके भेदसे श्रनेक प्रकारके होते हैं। इनमेंसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम श्रसातावेदनीयके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण है श्रीर जधन्य विशुद्ध परिणाम सातावेदनीयके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण है श्रीर जधन्य विशुद्ध परिणाम सातावेदनीयके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण है। श्रागममें जहाँ कहीं प्रशस्त श्रीर श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका विभागिकये बिना उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है ऐसा कहा है वहाँ यही श्रीभप्राय लेना चाहिए। इस विषयको श्रीर श्रिधक स्पष्टताले समक्तिके लिए यह उत्लेख पर्याप्त है—

'सादस्य चहुद्वाण्वंधगा जीवा णाणावरणीयस्य जह्ण्णयं द्विदि बंधंति । तिद्वाण्वंधगा जीवा णाणा-वरणीयस्य श्रजह्ण्णणाणुवकस्ययं दि्ठिद वंधंति । विद्वाणवंधगा जीवा सादावेदणीयस्य उक्कस्ययं द्विदि यंधंति । श्रसादः विद्ठाणवंधगा जीवा सद्ठाणेण णाणावरणीयस्य जहण्णयं दि्ठिद बंधंति । तिट्ठाण-वंधगा जीवा णाणावरणीयस्य श्रजहण्णभणुक्कस्ययं द्ठिदि वंधंति । चहुद्ठाणवंधगा जीवा श्रसादस्य चेव ' उक्किस्स्या द्विदि वंधंति ।'

साताके चतुःस्थानवन्यक जीव ज्ञानावरण कर्मकी जघन्य स्थितिका वन्य करते हैं। त्रिस्थान बन्धक जीव ज्ञानावरण कर्मकी श्रजघन्यानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं। द्विस्थानवन्धक जीव साता वेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं। श्रसाताके द्विस्थानवन्यक जीव स्वस्थानकी श्रपेक्षा ज्ञानावरण कर्मकी ज्ञानय स्थितिका वन्ध करते हैं। श्रिस्थानवन्धक जीव ज्ञानावरण कर्मकी श्रजघन्यानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं। चतुःस्थानवन्धक जीव श्रसाता वेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं।

इसमें स्पष्टतः गुड ग्रीर खांड इस द्विःस्थानिक ग्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीवोंको तो सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धक कहा है ग्रीर निम्ब, कांजीर, विष ग्रीर हलाहल इस चतुःस्थानिक ग्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीवोंको ग्रसाता वेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धक कहा है। इससे स्पष्ट है कि सामान्यतः उत्कृष्ट संक्लिए पदसे इन दोनों स्थानोंका ग्रहण होता है।

इसी विषयको खेताम्बर पञ्चसंग्रहमें इन शब्दोंमें व्यक्त किया है-

धुवपगईवर्धता चउठागाई सुभाग इयरागं।

दो ठाणगाइ तिविहं सद्वाणजहराणगाईसु ॥ १०९ ॥ [बन्धनकरण]

ग्राशय यह है कि ज्ञानावरण त्रादि ४७ प्रकृतियोंका वन्ध करनेवाले जीव सातावेदनीय, देवगति, मनुप्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, ग्राहारक शरीर, ग्रोदारिक शरोर, समचतुरस्तंस्थान, वज्रपमनाराचसंहनन, तीनों ग्राङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, परधात, उच्छ्वास, ग्रातप, उद्योत, प्रशस्त
विहायोगित, त्रसादि दस, तीर्थेङ्कर, तिर्थेङ्वायु, मनुष्यायु, देवायु ग्रोर उच्चं गोत्र इन परावर्तमान चौतीस ग्रुम
प्रकृतियोंके चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक ग्रोर दिस्थानिक श्रनुभागको बाँधते हैं। तथा उन्हीं श्रुव प्रकृतियोंका वन्ध
करनेवाले जीव ग्रसातावेदनीय, तीन वेद, हास्य, रित, ग्ररित, शोर्क, नरकायु नरकगतिद्विक, तिर्थञ्चगतिद्विक,
एकेन्द्रिय ग्रादि चार जाति, ग्रन्तके पाँच संस्थान, ग्रन्तके पाँच संहनन, ग्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर ग्रादि
दस ग्रीर नीचगोत्र इन परावर्तमान उनतालीस ग्रशुभ प्रकृतियोंके द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक ग्रीर चतुःस्थानिक
ग्रनुभागको बाँधते हैं। यह ग्रनुभाग स्वस्थानमें जवन्य स्थितिवन्ध ग्रादिके होनेपर बँधता है। क्षेताम्बर कर्म-

प्रकृतिमें भी यह विषय इसी प्रकारसे निबद्ध किया गया है। किन्तु महाबन्धके उक्त उल्लेखसे इस कथनमें श्रन्तर है। महावन्धमें विशुद्ध श्रीर संक्लेश परिणामोंके साथ केवल साता श्रीर श्रसाताके श्रन्वय व्यतिरेककी व्यवस्थाकी गई है श्रीर यहां सब शुभ श्रीर श्रशुभ प्रकृतियोंके साथ श्रन्वय व्यतिरेककी व्यवस्थाकी गई है। किन्तु विचार करनेपर महावन्धकी व्यवस्था ही उचित प्रतीत होती है। कारण कि गुण्स्थान प्रतिपन्न जीवोंमें जहां केवल विवक्षित ऋशुभ प्रकृतिका वन्ध न होकर उसकी प्रतिपक्षभृत शुभ प्रकृतिका ही वन्ध होता है वहां पर संक्लोश स्त्रौर विशुद्ध दोनों प्रकारके परिणामोंके सद्भावमं उस प्रकृतिका वन्ध सम्भव है। उदाहरणार्थ चतुर्थ गुणस्थानमं मात्र पुरुषवेदका वन्ध होता है। यहां यह तो कहा नहीं जा सकता कि इस गुणस्थानमं केवल विशुद्ध परिणाम ही होते हैं श्रीर यह भी नहीं कहा जा सकता कि यहां केवल रांक्लेश परिणाम ही होते हैं। परिगाम तो दोनों प्रकारके होते हैं, पर यहां स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकतेदका बन्ध सम्भव न होनेसे मात्र पुरुपवेदका ही वन्घ सम्भव है। यदि यह कहा जाय कि उत्कृष्ट स्थितिसे क्रमसे हानि होते हुए जधन्य स्थितिको ग्राँघनेवाले जीवके परिणामोंकी 'विशुद्धि' संशा है श्रीर जघन्य स्थितिसे क्रमसे वृद्धि होते हुए उपरिम स्थितियोंको बाँघनेवाले जीवके परिणामोंकी 'संक्लेश' संज्ञा है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर उत्क्रप्ट श्रीर जघन्य स्थितिका वन्य करानेवाले परिणामोंको छोड़कर शेप मध्यम स्थितियोंका वन्ध करानेवाले सव परिणाम संक्लेश ऋौर विशुद्धि उभयरूप प्राप्त होते हैं। परन्तु ऐसा मानना उचित नहीं है, क्योंकि एक ही परिणाम संक्लेश ग्रौर विशुद्धि उभयरूप नहीं हो सकता । इसलिए साता ग्रौर ग्रसाताके वन्धके साथ इन परिणामींकी जिस प्रकार व्याति घटित होती है उस प्रकार श्रन्य प्रकृतियोंके बन्धके साथ नहीं । यही कारण है कि महाबन्धमें सव संसारी जीवोंको दो भागोंमें विभक्त कर दिया है-सातवन्यक श्रीर श्रसातवन्यक। सातावन्यक जीव तीन प्रकारके हैं—चतुःस्थानवन्धक, त्रिस्थानवन्धक ग्रौर द्विस्थानवन्धक । इसी प्रकार ग्रसातावन्धक जीव भी तीन प्रकारके हैं-दिस्थानवन्धक, त्रिस्थानवन्धक ग्रौर चतुःस्थानवन्धक। इनमं जो साताके चतुःस्थानवन्धक जीव होते हैं वे सर्व विशुद्ध होते हैं, जो त्रिस्थानवन्घक जीव होते हैं वे संक्लिप्टतर होते हैं स्त्रीर जो द्विस्थानवन्घक जीव होते हैं वे इनसे भी संक्लिएतर होते हैं । इसी प्रकार जो असाताके द्विस्थानवन्यक जीव होते हैं वे सर्व-विशुद्ध होते हैं, जो त्रिस्थानवन्धक जीव होते हैं वे संक्लिष्टतर होते हैं श्रीर जो चतुःस्थानवन्धक जीव होते हैं वे इनसे भी संक्लिप्टतर होते हैं।

यहां साताके चतुःस्थाननन्यक जीवको श्रौर श्रसाताके द्विस्थानवन्थक जीवको सर्व विशुद्ध. श्रौर शेप सक्को संक्लिएतर कहा गया है। इस प्रकार संक्लिशरूप श्रौर विशुद्धिरूप परिणामों में मैद होकर भी उनका उल्लेख स्थितिवन्धके श्रनुसार सर्वविशुद्ध श्रौर संक्लिएतर इन्हीं शब्दोंके द्वारा किया जाता है, इसलिए जहां जिस पदसे जो विशेप श्रर्थ लिया गया हो वहाँ उसे जानकर हो उसका ग्रहण करना चाहिए।

यहां प्रसंगसे एक वात श्रौर कह देनी है। वह यह कि पाँच ज्ञानावरण श्रादि ४७ प्रकृतियोंका वन्ध श्रपनी श्रपनी वन्धन्युच्छिति होनेतक संक्लेशरूप श्रौर विशुद्धिरूप दोनों प्रकारके परिणामींसे सदा काल होता रहता है, इसलिए उन्हें श्रुववन्धिनी प्रकृतियां कहा गया है। वे सेंतालीस प्रकृतियाँ ये हैं—

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवरणाध्यो ।

सत्तेतालधुवाणं चधुदा सेसाणयं तु दुधा ॥ १२४ ॥ [गोम्मटसार कर्मकाण्ड]

ž

मोहनीयके विना तीन घातिकमोंकी १६ प्रकृतियाँ, मिध्यात्व, १६ कपाय, भयद्विक, तैजसद्विक, श्रगुरु-लघुद्विक, निर्माण श्रौर वर्णचतुष्क ये ४७ श्रु वबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं।

इस प्रकार यहाँ हमने महाबन्बके प्रस्तुत भागका सामान्य परिचय कराते हुए कुछ विशेष विषयोंकी ही पर्यालोचना की है। शेप विपयोंका यथास्थान विशेष कहापोह मृलमें किया ही है। यहाँ हमने पुनरुक्ति दोपके भयसे पुनः उनकी पर्यालोचना नहीं की है।

प्रस्तुत मुद्रित भागमें नूलप्रकृतिस्थितिवन्धका ग्रौर उत्तरप्रकृतिस्थितिवन्धके एक जीवकी ग्रपेक्षा श्रन्त-रानुगमतकके विषयका समावेश ही किया गया है।

विषय-सूची

वि	षय	पृष्ठ	विषय	
	मङ्गलाचरण्	१	वन्धान्तरके दो भेद	र्यूह
	स्थितिवन्धके भेद	१	उत्कृष्ट वन्धान्तर	५ ६–६६
मूल	प्रकृतिस्थितिवन्ध	१–२१=	जधन्य वन्धान्तर	६ ह – ७७
`	मूलप्रकृति स्थितिवन्धके चार		१५ वन्धसन्तिकर्ष	: ====================================
	श्रनुयोगद्वार	१–१६	वन्धसन्निकर्पके दो भेदः	৬৩
8	स्थितिवन्घस्थानप्ररूपणा	२-४ ं	उत्कृष्ट सन्निकर्प	المرابعة ا
	स्थितिवन्ध स्थान	२	जघन्य सन्निकर्प	て。
	संक्लेश विशुद्धिस्थान	ş	१६ नाना जीवोंकी श्रपेत	t
	स्थितिवन्ध स्रह्पबहुत्व	४-५	भङ्गविचय	حۇ-د ى
२	निपेक प्ररूपंगा	६–११	भङ्ग विचयके दो भेद	⊏३
	निपेकप्ररूपणाके दो श्रनुयोगद्व	ार ६	उत्कृप्ट भङ्गविचय	८ ३– ८ ६
	ग्रनन्तरोपनि धा	६–११	जघन्य भङ्गविचय	=\(\bar{\bar{\bar{\bar{\bar{\bar{\bar{
	परम्परोपनिधा	११-१२	१७ भागाभागप्रह्मणा	८८–९१
ş	ग्रावाधाकाण्डकप्ररूपणा	82-83	भागाभागके दो भेद	22
ષ્ટ	ग्रल्पवहुत्वप्ररूपणा	१३१६	उत्कृष्ट भागाभाग	<u> </u>
	मूलप्रकृति स्थितिवन्धके	• • • •	जघन्य भागाभाग	83-03
	२४ ग्रादि शेप ग्रनुयोगद्व	ां की	१८ परिमाणप्ररूपणा	९१–९४
	स्चना	१६	परिमाणके दो भेद	93
	२४ ग्रनुयोगद्वार	१६–१४४	उत्कृष्ट परिमाण	<i>\$3-</i> -\$3
१	ग्रह्मच्छेदप्ररूप णा	१७-२९	जघन्य परिमाण	<i>23</i> 53
`	श्रद्धाच्छेदने भेद	१७	१६ चेत्रप्ररूपण	९६–१०१
	अस्त-अस्त नर उत्कृष्ट श्रद्धाच्छेद	१७२३	न्तेत्रके दो भेद	३३
		२३–२९	उत्कृष्ट चेत्र	33~33
ກ.ສ	•••	30	जघन्य चेत्र	808-33
	सर्व-नोसर्ववन्धप्र॰	३०-३ १	१० स्पर्शन्यरूप्णा	१०१–११०
	उत्कृष्ट्-ग्रनुत्कृष्ट्यन्ध्रप्र०		स्पर्शनके दो भेद	१०१
-	जघन्य-ग्रजघन्यवन्धप्र०	३१ ३१ –३ २	उत्कृष्ठ स्पर्शन	१०१–१०८
	सादि-ग्रनादि-ध्रुव-ग्रध्रुव		जघन्य स्पर्शन	१०५-११०
१२	स्वामित्वप्ररूपणा स्वामित्वके दो भेद	३२–४६ ३२	२१ कालप्ररूपणा	११०-११८
	उत्कृष्ट स्वामित्व	३२-४०	कालके दो भेद	११०
	जघन्य स्वामित्व	४०–४६	उत्कृष्ट काल	११०-११५
		४७-४८	जघन्य कल	११५–११८
र २	वन्धकालप्रक्रपणा वन्धकालके दो भेद	80	२२ ग्रन्तर प्ररूपणा	११८-१२४
	वन्धकालक पा नप उत्कृष्ट वन्धकाल	૪७ – યૂર	ग्रन्तरके दो भेद	११८
	ज्ञान्य बन्धकाल	पूर्-पू ⊏	उत्कृष्ट ग्रन्तर	११८-१२२
27.4	ज्ञान्य वन्यकारा	યૂદ-૭૭	ज्ञवन्य ग्रन्तर	१२२–१२५

- Dome	पृष्ठ	विपय	पृष्ठ
विषय	१२४–१२ ६	ऋल्पबहु त्वानुगम	१७३–१७ १
२३ मावप्ररूपणा	१२५	पद्तिस्रेप	१७४-१८४
भावके दो भेद	१२५	पदनिच्चेपके तीन श्रनुयोगद्वार	१७६
उत्कृष्ट भाव	१२६	समुत्कीर्तना	१७५१७२
जघन्य भाव	१२६–१४४	स्वामित्व	१७६–१७६
२४ द्य ल्पवहुत्व स्रल्पबहुत्वके दो मेद	१२६	स्वामित्वके दो भेद	१७६
जीव श्रल्पबहुत्व	१२६–१३१	उत्कृष्ट स्वामित्व	१७६–१७६
जीवग्रहपबहुत्वके तीन भे		जघन्य स्वामित्व	१७६
उत्कृष्ट जीव श्रल्पबहुरव	१२६–१२७	ग्रल्पबहु त्व	१८०-१८१
जघन्य जीव ग्रल्पबहुत्व		त्राल्पवहुत्वके दो भेद	१८०
नघन्योत्ऋष्ट नीव श्रलपः		उत्ऋष्ट श्रल्पबहुत्व	१८०-१८१
स्थिति ग्राल्पबहुत्व	१३११३३	जघन्य ग्रल्पवहुत्व	१⊏१
स्थिति ग्रह्पबहुत्वके तीन	_	चृद्धिवन्ध	१८२-२०८
उत्कृष्ट स्थिति ग्रल्पबहुल	_	वृद्धिवन्धके १३ अनुयोगदा	र १८२
जघन्य स्थिति ऋल्पबहुत		समुत्कीर्तना	१८२-१८४
जघन्योत्कृप्ट स्थिति श्रल्य	बहुत्व १३१-१३३	स्वामित्वानुगम	१८४-१८७
भूयःस्थिति श्रल्पबहुत्व	१३३	काल	さてのーかして
भूयःस्थिति स्रल्पबहुत्ववे	दो भेद १३३	ग्रन्तर	१८८-१६४
खस्थान ऋल्पवहुत्व	१३३	नाना जीवोंकी ग्रपेक्षा भङ्गवि	वचय १६५
परस्थान स्रलपबहुत्व	१३३-१४४	भागाभाग	શ્ દ્ય
परस्थान ग्राल्पवहुत्वके	तीन भेद १३३	परिमाग्ग	१९६–१९७
उत्कृष्ट परस्थान श्रल्पव		च्चेत्र	१८७–१६⊏
जघन्य परस्थान ग्राल्पव	हुत्व १३६-१३८	स्पर्शन	१६८-२०१
जघन्योत्कृष्ट परस्थान		काल	२०१–२०२
ग्रल्पबहुत्व	१३८-१४४	श्चन्तर	२०२–२०३
भुजगारवन्घ	१४५–१७५	भाव	२०३
भुजगारवन्धके १३ ऋत्	रुयोगद्वार १४५	ग्रल्पबहुत्व	२०३–२०८
समुत्कीर्तनानुगम	१४५-१४७	ग्रध्यवसान समुद्राहार	
स्वामित्वानुगम	१४७-१४८	श्रध्यवसान समुदाहारके तीन	
कालानुगम	የ ४८ – የ <mark>५</mark> १	१ प्रकृतिसमुदाहार	305
श्रन्तरानुगम	१५१–१५७	प्रकृतिसमुदाहारके दो भेद	305
नाना जीवोंकी श्रपेक्षा		प्रमाणानुगम	२०६
भङ्ग विचयानुगम		श्रल्पब्रहुत्व	. २०६
भागाभागानुगम	१५६–१६०	२ स्थितिसमुदाहार	305
परिमाणानुगम चेचानगम	१६१–१६२ १६२–१६३	स्थितिसमुदाहारके तीन भेद	
त्तेत्रानुगम स्पर्शनानुगम	१६३ —१ ६६	प्रमाणानुगम श्रेणिप्ररूपणा व उसके दो	२०६–२१०
कालानुगम	१६६-१६६	भेद	२१०२११
ग्रन्तरा <u>न</u> ुगम	१६९-१७२	ग्रनन्तरोपनिधा	780
भावानुगम	१७५	परम्परोपनिधा	२ १०–२११
₹			

वि	षय	वृष्ठ	वि	षय	पृष्ठ
n.	श्रनुकृष्टि तीव्रमन्दता जीवससुदाहार जीवोंके दो भेद सातवन्धक जीवोंके तीन भेद श्रसातवन्धक जीवोंके तीन भेद	સ્કશ્ સ્કશ−સ્કશ સ્ક્ર સ્કર સ્કર સ્કર	av so	श्रनन्तरोपनिधा परम्परोपनिधा श्रावाधाकाण्डकप्ररूपणा श्राव्यद्धत्वप्ररूपणा उत्तर प्रकृति स्थितिबन्धके २५ श्रादि शेष श्रनुयोगद्वारोंकी सूचना	२२८ २२६ २२६ ,२३०
	उक्क जीवोंकी स्थितित्रन्ध व्यवस्था इनकी प्ररूपणा सम्बन्धी दो अनुयोगद्वार प्रतिज्ञा अनन्तरोपनिधा परम्परोपनिधा साता ग्रीर ग्रसाताके श्रना- कार ग्रीर साकार प्रायोग स्थान यवमध्यमें श्रल्पबहुत्व	२१२—२१३ २१३ २१३—२१४ २१५—२१६ य २१६ २१६	ર ૨-૨ ૪-૫ ૬-૭	श्रनुयोगद्वार श्रद्धाच्छेद श्रद्धाच्छेदके दो भेद उत्कृष्ट श्रद्धाच्छेद जवन्य श्रद्धाच्छेद सर्व-नोसर्वयन्ध उत्कृष्ट-श्रनुत्कृष्टबन्ध जयन्य-श्रज्ञघन्यवन्ध सादि-श्रनादि-ध्रव-	२३१ २३१-२४२ २३१ २३१-२४२ २४२-२५२ २५२-२५३ २४३
ड त्त १	प्र्वांक्त अर्थपदके अनुसार सातबन्धक और असातबन्ध जीवोंका अल्पबहुत्व र प्रकृति स्थितिवन्ध २' उत्तर प्रकृति स्थितिवन्धके चार अनुयोगद्वीर स्थितिबन्ध स्थान प्रकृपणा स्थितिबन्ध स्थान संक्लेशविश्चादिस्थान	^{यक} २१⊏ २१ –४ ३ ६ २२१–२३०	₹३	श्रध्रववन्ध स्वामित्व प्ररूपणा स्वामित्वके दो भेद उत्कृष्ट स्वामित्व वघन्य स्वामित्व वन्धकाल प्ररूपणा बन्धकालके दो भेद उत्कृष्ट वन्धकाल जघन्य वन्धकाल	244-363 244-364 244-364 344-364 344-364 344-364 348-364
૨	श्रह्पवहुत्व निपेक प्ररूपगा निपेक प्ररूपगाके दो श्रनु- योगद्वार	२२४–२२८ २२८–२२९ २२८ गंकेन	्रिस् विकास	श्रन्तरकाल प्ररूपणा श्रन्तरके दो भेद उत्कृष्ट श्रन्तरकाल जघन्य श्रन्तरकाल	35x-435 354-455 354-004

संकेत विवरगा

२	गा०	गाथा ै
ą	गो० क०	गोम्मटसार कर्मकायड
ሄ	मूलप्रति एवं श्रादर्शपति	मूल मेनुस्क्रिप्ट जिसके आधारसे अनुवाद
		श्रौर सम्पादन हुश्रा है
યૂ	जीव० चृ०	बीवस्थान चूलिका
Ę	घ० पु०	धवला पुस्तक
v	तत्त्वा०	तत्त्वार्थं सूत्र
È	बंघन क०	वन्धनकर्ण
3	मुद्रित प्रति	ज्ञानपीठसे प्रकाशित प्रकृतिवन्ध
	•	~~2005~~

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

बिदियो डिदिबंधाहियारो

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं। णमो उवज्भायाणं णमो लोए सन्वसाहूणं॥

१. एत्तो हिदिवंधो दुविधो—मूलपगिदहिदिवंधो चेव उत्तरपगिदिहिदिवंधो चेव । एत्तो मूलपगिदिहिदिवंधो पुन्तं गमिए जां । तत्थ इमािए चत्तारि अिएयोगद्दा-रािए खादन्वािए भवंति । तं जधा—हिदिवंधहाणपरूविणा खिसेयपरूविणा आवा-धाकंडयपरूविणा अप्पावहुगे ति ।

सव श्ररिहन्तोंको नमस्कार हो, सव सिद्धोंको नमस्कार हो, सव श्राचार्योंको नमस्कार हो, सव उपाध्यार्योको नमस्कार हो श्रीर लोकमें साधुश्रोंको नमस्कार हो ॥१॥

१. श्रागे स्थितिवन्धका विचार करते हैं। वह दो प्रकारका है—मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध श्रीर उत्तरप्रकृतिस्थितिवन्ध। श्रागे मूल प्रकृति स्थितिवन्धका पहले विचार करते हैं। उसके ये चार श्रमुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। यथा—स्थितिवन्धस्थानप्रकृपणा, निषेकप्रकृपणा, श्रावाधा-काण्डकप्रकृपणा श्रीर श्रव्यबहुत्व।

विशेपार्थ—राग, द्वेप श्रौर मोहके निमित्तसे श्रात्माके साथ जो कर्म सम्बन्धको प्राप्त होते हैं उनके श्रवस्थान कालको स्थिति कहते हैं। कर्मवन्धके समय जिस कर्मकी जो स्थिति प्राप्त होती है उसका नाम स्थितिवन्ध है। वह झानावरण श्रादि मूलप्रकृति श्रौर मित्रज्ञानावरण शादि उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे दो प्रकारका है। इस अनुयोगद्वारमें इन्हीं दो प्रकारके स्थितिवन्धोंका विविध प्रकरणों द्वारा विस्तारके साथ विचार किया गया है। सर्व प्रथम मूलप्रकृति स्थितिवंधका विचार किया गया है श्रौर तद्वनन्तर उत्तरप्रकृति स्थितिवन्धका विचार किया गया है। मूलप्रकृतिस्थितिवन्धका विचार करते हुए मुख्य रूपसे उसका चार श्रनुयोगद्वारोंके द्वारा विचार किया गया है। उपश्रनुयोगद्वार श्रमेक हैं। चार श्रनुयोगद्वारोंके नाम मूलमें ही दिये हैं। जिसमें स्थितिवन्धके स्थानोंका विचार किया जाता है वह स्थितिवन्धस्थानप्रकृषणा है। यहाँ स्थितिवन्धस्थान पदसे प्रत्येक कर्मके जघन्य स्थितिवंधस्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिवंधस्थानतकके कुल विकल्प

१. पंचर्सं० बंधनक० गा० ९९-१०० ।

द्विदिबंधद्वाणपरूवणा

२. हिद्वंधहाणपरूवणदाए सन्वत्थोवा' सुहुमस्स अपन्जत्तस्स हिद्वंधहाणाणि । वाद्रस्स अपन्तत्तस्स हिद्वंधहाणाणि संखेज्जगुणाणि । मुहुमस्स पज्जत्तस्स हिद्वंधहाणाणि संखेज्जगुणाणि । वाद्रस्स पज्जत्तस्स हिद्वंधहाणाणि संखेज्जगुणाणि । वेइंद्विअप्रजातस्स हिद्वंधहाणाणि असंखेज्जगुणाणि । तस्सेव पज्जत्तस्स हिद्वंधहाणाणि असंखेजगुणाणि । तस्सेव पज्जत्तस्स हिद्वंधहाणाणि । तेइंदि० अपज्ज० हिद्वंध० संखेजगुणाणि । तस्सेव पज्जत्त० हिद्वंध० संखेजगुणाणि । चहुरिंद्यअपज्ज० हिद्वंध० संखेजगुणाणि । तस्सेव पज्जत्त० हिद्वंध० संखेजगुणाणि । पंचिद्य-असणिणअपज्जत्त० हिद्वंध० संखे०गु० । तस्सेव पज्जत्त० हिद्वंध० संखे०गु० । पंचिद्य-सणिण-अपज्जत्त० हिद्वंध० संखे० गु० । तस्सेव पज्जत्त० हिद्वंध० संखेजगुणाणि ।

परिगृहीत किये गये हैं। एक समयमें वद्ध कमेंका उस समय प्राप्त स्थितमें जिस क्रमसे निचेप होता है उसकी निपेकरचना संज्ञा है। इसका विचार करनेवाली प्ररूपणाका नाम निपेकप्ररूपणा है। वँधनेवाले कर्म स्वभावतः या ग्रपकर्पण ग्रादिके निमित्तसे जितने काल वाद फल देनेमें समर्थ होते हैं उस कालका नाम ग्रावाधाकाल है ग्रीर जितने स्थितिविकल्पों के प्रति एक एक ग्रावाधाकाल प्राप्त होता है उतने स्थितिविकल्पों की एक ग्रावाधाकाल प्राप्त होता है उतने स्थितिविकल्पों की एक ग्रावाधा होनेसे उसकी ग्रावाधाकांडक संज्ञा है। इसका विचार जिस प्रकरण द्वारा किया जाता है उसे ग्रावाधाकांडकप्ररूपणा कहते हैं। ग्रल्पवहुत्व पदका ग्रर्थ स्पष्ट ही है। इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिवंधकी प्रकृपणा चार प्रकारकी होती है।

स्थितिवंधस्थानप्ररूपणा

2. अव सर्वप्रथम स्थितिवंधस्थानप्रस्पणाका विचार करते हैं। उसकी अपेता सुक्ष्म अपर्याप्तके स्थितवंधस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे वादर अपर्याप्तक स्थितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे वादर पर्याप्तक सिथितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे वादर पर्याप्तक सिथितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक सिथितवंधस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक सिथितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे विद्याद्याप्त संख्यातगुणे हैं। इनसे विद्याद्याप्त संख्यातगुणे हैं। इनसे विद्यादगुणे हैं। इनसे पर्वोद्रय असंकी अपर्याप्तक सिथितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे पर्वोद्रय संकी पर्याप्तक सिथितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे पर्वोद्रय संकी पर्याप्तक सिथितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे पर्वोद्रय संकी पर्याप्तक सिथितवंधस्थान संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यहाँ किसके कितने गुरो स्थित वन्धस्थान होते हैं इसका विचार चौदह जीवसमासोंके द्वारा किया गया है। सामान्यसे एकेन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक सागर श्रीर जधन्य पल्योपमका श्रसंख्यातवाँ भाग कम एक सागर होता है। द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पचीस सागर श्रीर जधन्य स्थितिवन्ध पल्यका संख्यातवाँ भाग कम पचीस सागर होता है। त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पचास सागर

१. गो० क० गा० १४८, १४९, १५०। पंचसं० द्वार ५ गा० ५६।

३, सन्तरथोवा सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तस्स संकिलेसिवसोधिद्वाणाणिः। वाद्रे-इंदिय-अपज्जत्त-संकिलेसिवसोधिद्वाणाणि असंखेज्जगुणाणि । सुहुमेइंदिय-पज्जत्तसं-किलेस-विसोधिद्वाणाणि असंखेज्जगुणाणि । वाद्रेइंदिय-पज्जत्तः संकिलेसिवसोधिद्वाणाणि असंखेजगुणाणि । वेइंदिय॰ अपज्ज॰ संकिलेसिवसोधिद्वाणाणि असंखेजगुणाणि । तस्सेव पज्जत्व॰ संकिलेसिवसोधिद्वाणाणि असंखे॰गु॰। तेइंदिय-अपज्ज॰ संकिलेसिवसोधिद्वाणाणि असंखे॰गु॰। तस्सेव पज्जत्व॰ संकिलेसिवसोधिद्वाणाणि असंखे॰गु॰। तस्सेव पज्जत्व॰ संकिलेसिवसोहि-द्वाणाणि अंखे॰गु॰। चतुरिंदि॰ अपज्ज॰ संकिलेसिवसोधिद्वाणाणि असंखे॰गु॰। तस्सेव पज्जत्व॰ संकिलेसिवसोधि॰ असखे॰गु॰। तस्सेव पज्जनः संकिलेसिवसोधि॰ असखे॰गु॰। तस्सेव पज्जनः संकिलेसिवसोधि॰ असखे॰गु॰। तस्सेव पज्ज॰ संकिलेसिवसोधि॰ अस॰गु॰।

श्रीर जघन्य स्थितिवंघ पर्यका संख्यातवाँ भाग कम पचास सागर होता है। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय श्रीर श्रमंक्षी पंचेंद्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवंघ क्रमसे सी श्रीर एक हजार सागर तथा जघन्य स्थितिवंघ पर्यका संख्यातवाँ भाग कम श्रपनी-श्रपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है। इस हिसावसे विचार करने पर एकेंद्रियके कुल स्थितिवंघविकरप पर्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण श्रीर द्वींदियसे लेकर श्रसंक्षी पंचेंद्रिय तक प्रत्येकके पर्यके संख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होते हैं। यहाँ एकेंद्रियके चार श्रीर द्वींद्रिय श्रादि प्रत्येकके दो दो मेदोंमें प्रत्येकके स्थितवंघ विकरप पर्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण हैं पर उनका श्रस्पवहुत्व किस क्रमसे है यही यहाँ वतलाया गया है। द्वीन्द्रियसे लेकर श्रसंबीतक प्रत्येकके दो दो मेदोंमें स्थितिवंघ विकरप पर्यके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं पर एकेन्द्रियके स्थितिवंघविकरपंचिकरपं पर्यके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं पर एकेन्द्रियके स्थितिवंघविकरपंचिकरपं पर्यके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं पर एकेन्द्रियके स्थितिवंघविकरपंचिकर

३. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक संक्लेशिवशुद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे स्वां प्रयाप्ति संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे वादर एकेंद्रिय पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे वादर एकेंद्रिय पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे झींद्रिय पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे झींद्रिय पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे झींद्रिय पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे चतुरिद्रिय अपर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे चतुरिद्रिय अपर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे चतुरिद्रियपर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे पंचेंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंज्ञी पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्तके संक्लेशिवशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।

१. पंचसं द्वार ५ गा० ५६ टीका म०।

४. सन्तत्थोवा' संजदस्स जहएएएओ हिदिवंथो । वादरएइंदिय-पज्जत्तस्स जहएएएओ हिदिवंथो असंखेजागुणो । सुहुम-एइंदिय-पज्जत्तस्स जहएएएओ हिदिवंथो विसेसाहिओ । वादर-एइंदिय-अपज्ज जहएएए० हिदिवं० विसे० । सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तस्स
जह० हिदिवं० विसे० । तस्सेव अपज्ज० उक्क० हिदिवं० विसे० । वादरएइंदि० अपज्ज०
उक्क० हिदिवं० विसे० । सुहुमएइंदि० पज्जत्त० उक्क० हिदिवं० विसे० । वादर
एइंदि० पज्जत्त० उक्क० हिदिवं० विसे० । वेइंदि० पज्जत्त० जह० हिदिवं० संखेगु० ।
तस्सेव अपज्ज० जह० हिदिवं० विसे० । तस्सेव अपज्ज० उक्क० हिदिवं० विसे० ।
तस्सेव पज्ज० उक्क० हिदिवं० विसे० । तह्सेव अपज्ज० जह० हिदिवं० विसे । तस्सेव
अपज्ज० जह० हिदिवं० विसे० । तह्सेव अपज्ज० उक्क० हिदि० विसे० । तस्सेव पज्जत्त०
उक्क० हिदि० विसे० । चहुरिंदिय-पज्जत्त० जह० हिदि० विसे० । तस्सेव पज्जत्त० उक्क०
हिदि० विसे० । तस्सेव अपज्ज० उक्क० हिदि० विसे० । तस्सेव पज्जत्त० उक्क०
हिदि० विसे० । पंचिंदिय-असिएए-पज्जत्त० जह० हिदि० विसे० । तस्सेव अपज्ज०
जह० हिदि० विसे० । तस्सेव अपज्ज० उक्क० हिदि० विसे० । तस्सेव पज्जत्त० उक्क०

विशेपार्थ—ज्ञानावरण ग्रादि कर्मीके वन्ध योग्य परिणामीकी संक्लेशविशुद्धिस्थान संज्ञा है। इनमेंसे जो साताके वंध योग्य परिणाम होते हैं। ग्रथित जिन परिणामोंके होनेपर ग्रसाता प्रकृतिका वंध न होकर साता प्रकृतिका वंध होता है उनकी विशुद्धि संज्ञा है ग्रीर ग्रसाताके वंधके योग्य जो परिणाम होते हैं उनकी संक्लेश संज्ञा है। यहाँ स्थितिविकल्पोंको ध्यानमें रखकर संक्लेशविशुद्धिस्थानोंका यह ग्रत्यबहुत्व कहा गया है।

४. संयतके जघन्य स्थितिवंघ सवसे स्तोक हैं। इससे वादर एकेंद्रिय पर्यप्तिके जघन्य स्थितिवंघ त्रसंख्यातगुणा है। इससे सुदम एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिवंध विशेष त्रिधिक है। इससे वादर एकेंद्रिय ऋपर्याप्तके जघन्य स्थितिवंध विशेष ऋधिक है। इससे सूत्तम एकेंद्रिय श्रपर्याप्तके जघन्य स्थितिवंघ विशेष श्रधिक है। इससे सूदम एकेंद्रिय श्रपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थिति-वंध विशेष अधिक है। इससे वादर एकेंद्रिय अपर्याप्तके उत्कृप्ट स्थितवंध विशेष अधिक है। इससे सूक्म एकेंद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवंध विशेष ऋधिक है। इससे वादर एकेंद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष ग्रिधिक है। इससे द्वींद्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। इससे द्वींद्रिय अपर्याप्तके जघन्य स्थितिवंध विशेष अधिक है। इससे द्वींद्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवंघ विशेष अधिक है। इससे द्वींद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थिति-वंध विशेष अधिक है। इससे त्रींद्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिवंध विशेष अधिक है। इससे त्रींद्रिय ग्रपर्याप्तके जघन्य स्थितिवंध विशेष ग्रधिक है। इससे त्रींद्रिय ग्रपर्यापके उत्कृष्ट स्यितिवंघ विशेष श्रधिक है। इससे जींद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवंघ विशेष श्रधिक है। इससे चतुरिंद्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितियंध विशेष ऋधिक है। इससे चतुरिंद्रिय अपर्याप्त के जघन्य स्थितिवंध विशेष अधिक है। इससे चतुरिंद्रिय अपर्याप्तके उत्कृप्ट स्थितिवंध विशेप अधिक है। इससे चतुरिंद्रिय पर्याप्तके उत्कृप्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे पंचेंद्रिय श्रसंक्षी पर्याप्तके जघन्य स्थितिवंध संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय श्रसंक्षी अपर्याप्तके जघन्य स्थितिवंध विशेष अधिक है। इससे पंचेंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवंघ विशेष ग्रिधिक है। इससे पंचेंद्रिय ग्रसंही पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवंध विशेष

१. 'पंचसं० वंधनक० गा० ९९-१००।

हिदि॰ विसे॰। संजदस्स उक्क॰ हिदि॰ संखे॰ गुणो। संजदासंजदस्स जह॰ हिदि॰ संखे॰जगुणो। तस्सेव उक्क॰ हिदिवं॰ संखे॰जगु॰। श्रसंजदसम्मादिहि-पङ्जत्तस्स जह॰ हिदि॰ संखे॰जगु॰। तस्सेव श्रपङ्ज॰ जक्क॰ हिदि॰ संखे॰जगु॰। तस्सेव श्रपङ्ज॰ उक्क॰ हिदि॰ संखे॰जगु॰। पंचिदिय-सिएए-मिच्छा-दिहि-पङ्जत्त॰ जह॰ हिदि॰ संखे॰ज॰। तस्सेव श्रपङ्ज॰ जह॰ हिदि॰ संखे॰ज॰। तस्सेव श्रपङ्ज॰ उक्क॰ हिदि॰ संखे॰ज॰। तस्सेव श्रपङ्ज॰ उक्क॰ हिदि॰ संखे॰ज॰। एवं हिदि॰ संखे॰ज॰। ससेव श्रपङ्ज॰ उक्क॰ हिदि॰ संखे॰ज॰। एवं हिदिवंधहाएपङ्विणा समत्ता।

श्रधिक है। इससे संगतके उत्हृए स्थितिवंघ संख्यातगुणा है। इससे संयतासंयतके जघन्य स्थितिवंघ संख्यातगुणा है। इससे संयतासंयतके उत्हृए स्थितिवंघ संख्यातगुणा है। इससे श्रसंयतसम्यग्हिए श्रप्याप्त (निर्वृत्यपर्याप्त) के जघन्य स्थितिवंघ संख्यातगुणा है। इससे श्रसंयतसम्यग्हिए श्रप्याप्त (निर्वृत्यपर्याप्त) के जघन्य स्थितिवंघ संख्यातगुणा है। इससे श्रसंयतसम्यग्हिए श्रप्याप्तके उत्हृए स्थितिवंघ संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय संक्षी मिथ्याहिए पर्याप्तके जघन्य स्थितवंघ संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय संक्षी मिथ्याहिए श्रप्याप्तके जघन्य स्थितवंघ संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय संक्षी मिथ्याहिए श्रप्याप्तके जघन्य स्थितवंघ संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय संक्षी मिथ्याहिए श्रप्याप्तके उत्हृए स्थितवंघ संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय संक्षी मिथ्याहिए श्रप्याप्तके उत्हृए स्थितवंघ संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय संक्षी मिथ्याहिए श्रप्याप्तके उत्हृए स्थितवंघ संख्यातगुणा है।

विशेषार्थ--यहाँ संयतके जघन्य स्थितिवंधसे लेकर संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि के उत्कृष्ट स्थितिवंध तक श्रह्पवहुत्वका विचार किया गया है। संयतके वेदनीयका बारह मुहुर्त, नाम ग्रीर गोत्रका ग्राठ मुहुर्त तथा शेष चार कर्मोंका ग्रन्तर्मुहुर्त जघन्य स्थितिवंध कहा है श्रीर वादर एकेंद्रिय पर्याप्तके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय श्रीर श्रन्तरायका एक सागरका पत्यका श्रसंख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग होता है। मोहनीयका पत्यका श्रसंख्यातवाँ भाग कम एक सागर होता है श्रीर नाम श्रीर गोत्रका एक सागरका पत्यका श्रसंख्यातवाँ भाग कम दो वटे सात भाग होता है। यही कारण है कि संयतके जघन्य स्थितिवंघसे वादर एकेंद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिवंध श्रसंख्यातगुणा कहा है। वादर एकेंद्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट स्थितिवंघ एक सागर होता है और द्वीद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिवन्ध पल्यका संख्यातवां भाग कम पत्रीस सागर होता है। यह कुछ कम पत्रीस गुणा है। यही कारण है कि वादर एकेंद्रिय पर्यातके उत्क्रप्ट स्थितिवंधसे द्वीद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिवंध संख्यातगुणा कहा है। झींद्रिय पर्याप्तका उत्कृप्ट स्थितिवंध पूरा पचीस सागर है और त्रींद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध पत्यका संख्यातवाँ भाग कम पचास सागर है। यह दूनेसे कुछ कम है। यही कारण है कि द्वींद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितवंधसे त्रींद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिवंध विशेष श्रधिक कहा है। त्रींद्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट स्थितिवंघ पचास सागर है ग्रीर चतुरिद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिवंघ पल्यका संख्यातवाँ भाग कम सौ सागर है। यह दूनेसे कुछ कम है। इसीसे त्रींद्रिय पर्याप्तके उत्कृप्ट स्थितिवंधसे चतुरिदिय पर्याप्तका जयन्य स्थितिवंध विशेष अधिक कहा है। चतुरिद्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट स्थितिवंध सौ सागर है श्रीर श्रसंक्षी पंचेंद्रिय पर्याप्तका जधन्य स्थितिवंध पत्यका संख्यातवाँ भाग कम एक हजार सागर है। यह कुछ कम दसगुणा है। इसीसे चतुरिंद्रियं पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवंधसे असंशी पंचेंद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिवंध संख्यातगुणा कहा है। शेष कथन सुगम है। इस प्रकार स्थितिवंधस्थानकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

गिसेगपरूवगा

५. शिसेगपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अशियोगदाराशि—अशंतरोवशिधा परंपरोविण्या य । अणंतरोविण्याए पंचिदियाणं सएणीणं भिच्छादिहीणं पज्ज-त्ताणं णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-श्रंतराइगाणं तिण्णि वस्ससहसाणि श्रावाधा' मोत्तुण जं पढमसमए परेसग्गं णिसित्तं तं वहुगं। जं विदिय-समए परेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। एवं विसेसहीएं विसेसहीएं जाव उक्तस्सेण तीसं सागरोवमकोडाकोडीत्रो चि । पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छादिद्दीणं पज्जनाणं मोहणीयस्स सत्तवस्ससहसाणि त्रावाधा मोत्तरण जं पढमसमए पदेसग्गं शिसित्तं तं बहुगं । विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्तस्सेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीत्रो ति। सिएणभिच्छादिहिस्स वा सम्मादिहिस्स वा श्रायुगस्स पुन्व-कोडितिभागं श्रावाधा मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं शिसित्तं तं बहुगं। जं विदि-यसमए परेसम्मं शिसित्तं तं विसेसहीणं। जं तदियसमए परेसम्मं शिसित्तं तं विसेसहीएं। एवं विसेसहीएं विसेसहीएं जाव उक्तस्सेए तेत्तीसं सागरोवमािए। पंचिंदियाणं सएणीणं मिच्छादिहीणं पज्ज॰ णामागोदाणं वेवस्ससहसाणि

निपेकप्ररूपगा

थ. अब निपेकप्ररूपणाका विचार करते हैं। उसके ये दो अनुयोगद्वार हैं---- अनंत-रोपनिधा श्रौर परम्परोनिधा। श्रनंतरोपनिधाकी श्रपेक्षा पंचेंद्रिय संक्षी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीवोंके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय ग्रीर अंतराय कमेंकि ग्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्म परमाणु निचित्र होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें निचित्र होते हैं वे विशेष हीन हैं। जो तीसरे समयमें निचिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार तीस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक विशेष हीन विशेष हीन कर्म परमाणु निचित्र होते हैं। पंचेन्द्रिय संक्षो मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीवोंके मोहनीयके सात हजार वर्ष प्रमाण् श्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निचित्त होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण उत्क्रप्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक विशेपहोन विशेषहीन कर्मपरमागु निचिप्त होते हैं। पंचेद्रिय संज्ञी मिथ्यादिए या सम्यग्हिए जीवके ग्रायु कर्मके एक पूर्वकोटिकी त्रिभागप्रमाण ग्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निचिप्त होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निचिप्त होते हैं वे विशेपहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाशु निचिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट श्रायुके प्राप्त होनेतक विशेपहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं। पंचेद्रिय संशी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीवके नाम ग्रीर गोत्र कर्मके दो हजार

१, पंचसं ० द्वार ५ गा० ५०। गो० क०, गा० १६१, १६२। २. गो० क०, गा० १६०।

श्रावाधा मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं वहुगं। जं विदिय० तं विसे०। जं तिदय० तं विसे०। जं तिदय० तं विसे०। एवं विसेसहीणं विसेस० जाव उकस्सेण वीसं सागरोवम-कोडाकोडीश्रो ति।

वर्षमाण त्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्म-परमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार वीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं।

विशेषार्थ — अनन्तरका अर्थ व्यवधान रहित और उपनिधाका अर्थ मार्गणा है। जिस प्रकरणमें अव्यवधान रूपसे वस्तुका विचार किया जाता है वह अनन्तरोपनिधा अनुयोगद्वार है। यहां यह वतलाया गया है कि प्रति समय जो कर्म वंधते हैं वे अपनी स्थित के अनुसार किस क्रमसे निचित्त होते हैं। मूलमें इतना ही निर्देश किया गया है कि प्रथम समयमें वहुत कर्मपरमाणु निचित्त होते हैं। दूसरे समयमें एक चय कम कर्मपरमाणु निचित्त होते हैं। इस प्रकार अपनी अपनी उत्हाए स्थितिके प्राप्त होने तक सव समयोंमें एक एक चय कम कर्मपरमाणु निचित्त होते हैं। इसका विशेप खुलासा इस प्रकार है—मान लो किसी जीवने ६३०० कर्म परमाणुओंका वंध किया और उनकी उत्हाए स्थिति ११ समय पड़ी। यहाँ तीन समय आवाधाके हैं इसलिये उन्हें छोड़कर धाकीके ४८ समयोंमें उक्त ६३०० कर्म परमाणुओंको निचित्त करना है जो उत्तरोत्तर विशेषहीन क्रमसे दिये जाते हैं। प्रथम गुणहानिमें चयका जो प्रमाण होता है दूसरीमें उससे आधा होता है। इस तरह अंतिम गुणहानिके अन्तिम निपेकतक उत्तरोत्तर चय आधा-आधा होता होता है। १८ समयोंमें निचित्त परमाणुओंको निचेक रचना इस प्रकार होती है—

1 -0 (1.1	4444			_	
४१२	२५६	१२८	६४	, , ३२	१६
४८०	२४०	' १२०	६०	રૂં	१४
୧୪=	२२४	११२	४६	સ્	१४
ક શ્દ	२०८	१०४	४२	, २६	्र ^१ १३
३८४	१६२	९६	૪૮	રક	र२
३४२	१७६	1 66	ક્ષક	्र .२ २	११
३२०	१६०	50	So	२०	१०
२८८	१४४	७२	३६	१८	९
	1			\	[

इस रचनामें प्रथम निपेकसे दूसरा निषेक विशेषहीन दिखाई देता है और यह कम श्रन्तिम निपेक तक चला गया है। अन्य कमौंसे श्रायु कर्ममें यही अन्तर है कि अन्य कमौं की श्रायाधा स्थिति वन्धके भीतर परिगंशित की जाती है पर श्रायु कर्ममें उसे स्थितिवन्ध से श्रलग गिना जाता है — यथा इस उदाहरणमें ४१ समयका स्थितिवन्ध मानकर ३ समय श्रायाधाके लिये छोड़ दिये गये हैं। इस प्रकार श्रायु कर्मके स्थितिवन्धके जितने समय

- ६. पंचिदियस्स सिएएस्स अपज्जत्तयस्स आयुगवज्जाणं सत्तरणं कम्माणं अंतोमुहुत्तं आवाधा मोत्तूण जं पदमसमए० तं वहुगं। जं विदियसमए० तं विसे०। जं तिदयसमए० तं विसे०। एवं विसे० विसेसहीणं जाव उक्तस्सेण अंतोकोडाकोडि ति।
 आयुग० अंतोमुहुत्तं आवाधा मोत्तूण जं पदमसमए० तं वहुगं। जं विदिय० तं विसे०।
 जं तिदयस० तं विसेस०। एवं विसे० विसेसहीणं याव उक्तस्सेण पुन्वकोडि ति।
- ७. पंचिदिय-असिएए-पज्जत्ताएं आयुगवज्जाएं सत्तरएं कम्माएं अंतोमु॰ आवाधा मोत्तूरा जं पढमसम॰ तं वहुगं। विदियसम॰ तं विसे॰। तदियसम॰ तं विसेस॰। एवं विसे॰ विसे॰ जाव उक्करसेरा सागरोवम-सहस्स० तिरिएए-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा, वेसत्त भागा पिडपुरएए। ति। आयुगस्स पुन्वकोडितिभागं आवाधा मोत्तूरा जं पढमसम॰ तं वहुगं। जं विदियसम॰ तं विसे॰। जं तिद्यस॰ तं विसे॰। एवं विसे॰ विसे॰ जाव उक्करसेरा पलदोवमस्स असंखेजिदिभागे ति।
 - ८. पंचिदिय-असिएए-अपज्जत्ताएं सत्तरएं कम्माएं आयुगवज्जाएं अंतोष्ठ-

होते हैं उनमेंसे श्राबाधाके समय छोड़कर शेपमें निपेक रचना नहीं होती किन्तु जो स्थिति वन्ध होता है उन सबमें निपेक रचना होती है। प्रथम निपेकसे दूसरा श्रोर दूसरेसे तीसरा निषेक कितना हीन है इस प्रकार व्यवधानके विना यहां विचार किया गया है इस- / लिये इसे श्रानतरोपनिधा कहते हैं।

- ६. पंचेंद्रिय सं इश्वी अपर्याप्तक के आयु कर्मके सिवा शेप सात कर्मों के अंतर्मुहूर्त प्रमाण आवाधाको छोड़ कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निव्वित होते हैं वे यहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्म परमाणु निव्वित होते हैं वे विशेषहोन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निव्वित होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार अंतः कोटाकोटि प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन निव्वित होते हैं। आयुकर्मके अंतर्मुहूर्त प्रमाण आवाधाको छोड़ कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निव्वित होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें निव्वित होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्व कोटिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन निव्वित होते हैं।
- ७. पंचेंद्रिय ग्रसंबी पर्याप्तकोंके श्रायुकर्मके सिवा शेष सात कमें के ग्रंतमुंहूर्तप्रमाण श्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार एक हजार सागरके तीन वटे सात भाग, एक हजार सागरके सात वटे सात भाग ग्रीर एक हजार सागरके दो वटे सात भाग प्रमाण परिपूर्ण स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं। श्रायुक्तिके पूर्वकोटिके त्रिभागप्रमाण ग्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं। जो तूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं।
 - पंचेंद्रिय असंशो अपर्याप्तकोंके आयुक्तमेके सिवा शेष सात कर्मोंके अंतर्मुहूर्तप्रमाख

हुत्तं आवाधा मोतूण जं पहमसम० तं वहुगं। विदियस० तं विसे०। जं तिद्यस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० सागरोवमसहस्सस्स तिरिण-सत्त भागा सत्त-सत्तभागा वे-सत्तभागा पिलदोवमस्स संखेज्जिदि भागेण ऊणिया ति। आयुगस्स अंतोमु० आवाधा मोत्तूण जं पहमस० तं वहुगं। जं विदियसम० तं विसे०। जं तिद्य-स० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० पुन्वकोडि ति।

- ६. चदुरिंदि०-तेइंदि० पज्जत्ताणं सत्तरणं कम्माणं आयुगवज्जाणं अंतोयु० आवाधा मोत्तूण जं पढमसमए तं वहुगं । विदियस० तं विसे० । जं तदि-यस० तं विसे० । एवं विसे० विसे० जाव उक्कस्सेण सागरोवमसदस्स सागरोवमपण्णारसाए सागरोवमपण्णवीसाए तिषिण-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा वे-सत्त भागा पिंडिपण्णा ति । आयुगस्स वे मासं सोलस रादिंदियाणि सादिरेयाणि चत्तारि वस्साणि आवाधा मोत्तूण जंपढम स० तं वहुगं । जं विदियस० तं विसे० । जं तिदयस० तं विसे० । एवं विसे० जाव उक्कस्सेण पुन्वकोडि ति ।
 - १०. चदुरिंदि०-तेइंदिय०-वेइंदिय० अपज्जत्तार्णं सत्तरणं कम्मार्णं आयुगवज्जार्णं

भावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेपहीन हैं। इस प्रकार एक हजार सागरके पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग प्रमाण, एक हजार सागरके पल्यका संख्यातवाँ भाग कम सात वटे सात भागप्रमाण और एक हजार सागरके पल्यका संख्यातवाँ भाग कम सात वटे सात भागप्रमाण और एक हजार सागरके पल्यका संख्यातवाँ भाग कम दो वटे सात भागप्रमाण उत्हार स्थितिके ग्रंतिम समयतक विशेपहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं। श्रायुक्तिके ग्रंतिम समयतक विशेपहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेपहीन होते हैं। इस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाण उत्हाप स्थितिके ग्रन्तिम समयतक विशेपहीन विशेपहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं।

- ९. चतुरिंद्रिय पर्याप्त, श्रींद्रिय पर्याप्त और द्वींद्रिय पर्याप्त जीवोंके श्रायुकर्मके सिवा सात कर्मोंके श्रंतर्मुहर्त प्रमाण श्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार क्रमसे सौ सागरका, पवास सागरका श्रीर पचीस सागरका तीन वटे सात भागप्रमाण, सात वटे सात भागप्रमाण श्रीर दो वटे सात भागप्रमाण परिपूर्ण उत्कृष्ट स्थितिके श्रन्तिम समय तक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं। श्रायुकर्मके क्रमसे दो माह, साधिक सोलह दिनरात श्रीर चार वर्षप्रमाणु श्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाणु उत्कृष्ट स्थितिके श्रांतिम समय तक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं।
 - १०. चतुरिंद्रिय, त्रींद्रिय और द्वींद्रिय अपर्याप्तकोंके आयुके सिवा सात कर्मींके अंत-

श्रंतोमु॰ श्रावाधा मोत्तूण जं पहमसम॰ तं वहुगं। जं विदियसम॰ तं विसे॰। जं तिद्यसम॰ तं विसे॰। एवं विसे॰ विसे॰ जाव उक्क॰ सागरोवमसदस्स सागरोवमपण्णारसाए सागरोवमपण्णवीसाए तिएिण-सत्त भागा सत्त-सत्तभागा वे-सत्त भागा पितदोवमस्स संखेज्जिदिभागेण ऊणिया। श्रायुगस्स श्रंतोमु॰ श्रावाधा मोत्तूण जं पहमसमए॰ तं वहुगं। जं विदियसमए तं विसे॰। जं तिदिय स॰ तं विसे॰। एवं विसे॰ विसे॰ याव उक्कस्सेण पुन्वकोडि ति।

११. वादरएइंदियाणं पंजात्ताणं सत्तएणं कम्माणं आयुगवन्ताणं अंतोमु॰ आवाधा मोत्तूण नं पढम स॰ तं वहुगं, नं विदियस॰ तं विसे॰। नं तिदयस॰ तं विसे॰। एवं विसे॰ विसे॰ नाव उक्क॰ सागरोवमस्स तििएण-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा वे-सत्त भागा पिंडपुएणा ति । आयुगस्स सत्तवस्ससहस्साणि सादि रेयाणि आवाधा मोत्तूण नं पढमस॰ तं वहुगं। नं विदियस॰ तं विसे॰। एवं विसे॰ विसे॰ नाव उक्क॰ पुन्वकोडि ति।

१२. वादरएइंदियअपज्जत्ताणं सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं च सत्तरणं कम्माणं आयुगवज्जाणं अंतोसु॰ आवाधा मोत्तूण जं पढमस॰ तं वहुगं। जं विदियस॰ तं

मुंहूर्तप्रमाण श्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार कमसे सो सागरका, पचास सागरका श्रीर पचीस सागरका पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग, पल्यका संख्यातवाँ भाग कम सात वटे सात भाग श्रीर पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके श्रंतिम समय तक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं। श्रायुकर्मके श्रंतर्मुहूर्तप्रमाणु श्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटि-प्रमाणु उत्कृष्ट स्थितिके श्रंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन निक्तित होते हैं।

११. वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके आयुके सिवा सात कर्मोंके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आवाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्म निक्ति होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्म निक्ति होते हैं वे विशेषहीन कर्म निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार एक सागरके तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग और दो वटे सात भाग प्रमाण परिपूर्ण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं। आयुकर्मके साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण आवाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं वे विशेषहीन हैं। हस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाणु उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्ति होते हैं।

१२. वाद्र एकेद्रिय श्रपर्यात, सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्यात श्रीर सूक्ष्म एकेंद्रिय श्रपर्यात जीवोंके श्रायुकर्मके सिवा सात कर्मोंके श्रन्तर्मुहूर्तंप्रमाण श्रावाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्तिप्त होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्तिप्त

विसे॰। जं तदियस॰ तं विसे॰। एवं विसे॰ विसे॰ जाव उक्क॰ सागरोवमस्स तिष्णि-सत्त भागा, सत्त-सत्त भागा, वे-सत्त भागा पितदोवमस्स असंखेजनिदभागेण जिल्निगा जिल्निगा

१२. परंपरोविषाधाए' पंचिदिय-सिएण-असिएएपज्जत्ताणं अहएएं कम्माणं उक्क॰ आवाधा मोत्तूण जं पहमसमए पदेसग्गादो पिलदोवमस्स असंखेज्जिदि-भागं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया द्विदि ति।

१४. पंचिदियाणं सिएण-असिएणअपज्जताणं चतुरिंदि०-तेइंदि०-चेइंदि०-

होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निचिष्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार एक सागरका पत्यका असंख्यातवां भागकम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो वटे सात भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निचिष्त होते हैं। आयुकर्मके अंतर्मुहर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निचिष्त होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निचिष्त होते हैं वे वहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निचिष्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाणु उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निचिष्त होते हैं।

विशेषार्थ—संज्ञी पंचेद्रियसंवंघी दोनों जीवसमासोंके बंघनेवाले कर्मपरमाणुश्रोंका सव स्थितियों में किस क्रमसे निज्ञेप होता है इसका पहले विचार कर श्राये हैं। यहाँ श्रेप जीवसमासों में विचार किया गया है। सव जीवसमासों में वंघनेवाले कर्मपरमाणुश्रोंके निज्ञेपका क्रम एक ही है, उसमें कोई श्रन्तर नहीं है, फिर भी सब जीवसमासों निज्ञेप क्रमका पृथक् पृथक् विवेचन करनेका कारण यह है कि प्रत्येक जीवसमासमें श्राठों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवंघ श्रलग अलग होता है इसलिये जिसके जिस कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवंघ जितना हो वहाँ तक ही प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर विशेषहीन क्रमसे निज्ञेपविधि जाननी चाहिये। मात्र श्रावाधाकालमें निपेकरचना न होनेसे वहां कर्मपरमाणुश्रोंका निज्ञेप नहीं होता है इतना विशेष जानना चाहिये।

इस प्रकार श्रनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

१३. परम्परोपनिघाकी त्रपेत्ता पंचेन्द्रिय संक्षी पर्याप्त त्रौर पंचेन्द्रिय असंक्षी पर्याप्त के आठां कर्मोंके आवाधाको छोड़कर प्रथम समयमें नित्तिष्त हुए कर्ममरमाणुओंसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणहीन होते हैं अर्थात् आधे रह जाते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते जाते हैं।

१४. पंचेन्द्रिय संक्षी अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय असंक्षी अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वाद्रिय पर्याप्त, वाद्र एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त स्वर्थन स्वर्य स्वर्थन स्वर्थन स्वर्थन स्वर्य स्वर्थन स्वर्थन स्वर्य स्वर्थन स्वर्थन स्वर्य स्वर्थन स्वर्य स्वर्य स्वर्थन स्वर्य स्वर्य स्वर्य स्वर्य स्वर्य स्वर्य स्वर्य स्वर्य स्वर्थन स्वर्य स्वर्य

१, पद्मसं० पञ्चम द्वार गा० ५१।

वादरएइंदिय॰-सुहुमएइंदिय॰ पञ्जत्तापञ्जत्ताणं सत्त्त्रणं कम्माणं आयुगवञ्जाणं उक्कसिया आवाधा मोत्तूण ज' पढमसमयपदेसग्गादो तदो पिलदोवमस्स असंखेज्जिद भागं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा दुगुण॰ जाव उक्कस्सिया द्विदि त्ति।

१५. एयपदेसियदुगुणहाणिहाणंतराणि असंखेज्जाणि पितदोवमवग्गमूलाणि । णाणापदेसदुगुणहाणिहाणंतराणि पितदोवमस्स वग्गमूल० असंखेज्जिद्भागो ।

१६. णाणापदेसदुगुणहाणिहाणंतराणि थोवाणि । एयपदेसदुगुणहाणिहाणंतरं असंखेज्जगुणं ।

आबाधाकंडयपरूवगा

१७. त्रावाधाकंडयपरूवणदाएं पंचिदियसिएण-त्रसिएण-चतुरिंदिय-तेइंदिय-वेइंदिय-वादरएइंदिय-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तएणं कम्माणं त्रायुगवज्जाणं उक्कस्सादो द्विदीदो समये समये पितदोवमस्स असंखेज्जिदिभागं त्रोसिरिद्ण एयमा-विद्य अपर्याप्त जीवोंके आयुक्कमेंके सिवा सात कमेंकि उत्कृष्ट आवाधाको छोड़कर प्रथम समयमें निविष्ठ हुए कर्मपरमाणुओंसे पत्योपमके असंख्यातवं भागप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणहीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते जाते हैं।

१४. एकप्रदेशिद्वगुणहानिस्थानान्तर पत्योपमके श्रसंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण हैं। नानाप्रदेशिद्वगुणहानिस्थानान्तर पत्योपमके प्रथम वर्गमूलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

१६. नाना प्रदेश द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एक प्रदेश द्विगुणहानि स्थानान्तर श्रसंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—पहले प्रथम निषेकमें कितना द्रव्य होता है श्रौर द्वितीयादिक निषेकों में वह कितना कितना कम होता जाता है इसका विचार कर श्राये हैं। यहाँ प्रथम निषेक के द्रव्यसे कितने स्थान जानेपर वह उत्तरोत्तर श्राधा श्राधा रहता जाता है इसका विचार किया गया है। सूलमें वतलाया है कि प्रथम समयमें निक्ति हुए कर्म परमाणुश्रोंसे पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जानेपर वे आधे रह जाते हैं। इस प्रकार पुनः-पुनः पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जानेपर वे उत्तरोत्तर श्राधे-श्राधे शेष रहते हैं। यहां नाना-प्रदेश गुणहानि स्थानन्तर पदसे नाना गुणहानियां ली गई हैं श्रौर एकप्रदेशगुणहानिस्था- नान्तरपदसे एक गुणहानिके निषेक लिए गये हैं।

ञ्रावाधाकाएडकप्ररूपणा

१९. श्रव श्रावाधाकाग्रहककी प्रक्षपणा करते हैं। इसकी श्रपेक्षा पंचेित्द्रय संज्ञी पर्याप्त, पंचेित्द्रय संज्ञी श्रपर्याप्त, पंचेित्द्रय श्रसंज्ञी श्रपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतित्द्रय पर्याप्त, चीित्द्रय पर्याप्त, चीित्द्रय पर्याप्त, चीित्द्रय पर्याप्त, चाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त, वाद्र एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त, चाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त, वाद्र एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त, चाद्र एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त, चाद्र एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवोंमें श्रायुक्तमंके सिवा सात कर्मीका उत्कृष्ट स्थितिसे समय समय उत्तरते हुए पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्थित उत्तर कर एक श्रावाधाकाग्रह करता

१. पञ्चसं० पञ्चम द्वार गा० ५३ ।

वाधाकंडयं करेदि। एस कमो जाव जहिएएया द्विदि ति।

अप्पाबहुगपरूवगा

'१८. अप्पावहुगे ति पंचिदियाणं संग्णीणं पञ्जत्तापञ्जत्ताणं णाणावरणीयस्स सन्वत्थोवा जहिएणया आवाधा'। आवाधहाणाणि आवाधाखंडयाणि च दो वि तुल्लाणि संखेञ्जगुणाणि। उक्किस्सिया आवाधा विसेसाहिया। णाणापदेसगुणहाणिहाणंतराणि असंखेञ्जगुणाणि। एयपदेसगुणहाणिहाणंतरं असंखेञ्जगुणं। एय-मावाधाखंडयमसंखेञ्जगुणं। जहण्णाओ हिदिवंधो असंखेञ्जगुणो। हिदिवंधहाणाणि संखेञ्जगुणाणि। उक्कस्सओ हिदिवंधो विसेसाधिओ। एवं छण्णं कम्माणं।

है श्रीर यह क्रम जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक चालू रहता है।

विशेषार्थ—यहाँ कितनी स्थितिकी कितनी आवाधा होती है इसका विचार किया गया है। कर्मस्थितिविकल्प वहुत हैं और आवाधाके विकल्प थोड़े हैं, इसलिये जितने स्थिति-विकल्पोंके प्रति एक आवाधाका विकल्प प्राप्त होता है उसे आवाधाकाएडक कहते हैं। एक आवाधाकाएडक यहाँ पल्पके असंख्यातयें भागप्रमाण वतलाया है इसका अभिप्राय यह है कि पल्पके असंख्यातयें भागप्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्रति एक आवाधाविकल्प प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ—सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण दर्शनमोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिको ६४ मान लिया जाय, सात हजार वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आवाधाको १६ मान लिया जाय और पल्पके असंख्यातयें भागको ४ मान लिया जाय तो—६४, ६३, ६२ं और ६१ इन चारकी १६ समय आवाधा होगी। यह एक आवाधाकाण्डक है। तथा ६०, ४९, ५८ और ४७ की १४ समय आवाधा होगी यह दूसरा आवाधाकाण्डक है। इस तरह जघन्य स्थितिके प्राप्त होनेतक एक एक आवाधाकाण्डकके प्रति आवाधाकाण्डक पक समय कम होते हुए जघन्य स्थितिकी जघन्य आवाधा रह जाती है।

अल्पवहुत्वप्ररूपणा

१८, अव अल्पवहुत्वका विचार करते हैं। उसकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय संक्षी पर्याप्त और पंचेन्द्रिय संक्षी अपर्याप्त जीवोंके क्षानावरणीयकी जघन्य आवाधा सबसे स्तोक है। इससे आवाधास्थान और आवाधाकाएडंक ये दोनों समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट आवाधा विशेष अधिक है। इससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे एक-प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इससे एक आवाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है। इससे जघन्यस्थितवन्ध असंख्यातगुणा है। इससे स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इससे उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष अधिक है। इसो प्रकार छह कर्मों का अल्पवहुत्व जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ श्रवतक स्थितिवन्धस्थानप्ररूपणा, निपेकप्ररूपणा श्रीर श्राबाधा-काराडकप्ररूपणा इन तीन श्रिधिकारोंमें जिन विषयोंकी चरचा की है उनमें कीन कितना श्रवप है श्रीर कीन कितना बहुत है यह तुलनात्मक ढंगसे वतलाया गया है। यह श्रव्प-वहुत्वं जघन्य श्राबाधासे प्रारम्भ होकर उत्कृष्ट स्थितिपर समाप्त होता है। मात्र इसमें

१. पञ्चसं० बन्धनक० गा० १०१-१०२ ।

संयतकी अपेचा जघन्य स्थितिका निर्देश नहीं किया है। ज्ञानावरणकी जघन्य स्थिति संयतके होती है श्रीर सबसे जघन्य श्रावाधा उसीकी हो सकती है। इसलिये यह प्रश्न होता है कि इस ग्रल्पवहुत्वमें यह जघन्य ग्राबाधा किसकी ली गई है। श्रागे उत्तरप्रकृति स्थितियन्धर्मे ग्रहपबहुत्वका निर्देश करते हुए कहा है कि 'सवसे स्तोक जघन्य ग्रावाधा है ग्रीर उससे जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे वहाँ तो जघन्य श्रावाधा किसकी ली गई है इसका पता लग जाता है पर यहाँका प्रश्न इस दृष्टिसे विचारणीय रहता है। यहाँ शाना-वरगुके ग्रत्पबहुत्वको कहनेके वाद 'एवं छुण्गुं कस्माणं' ऐसा कहा है। संयतके ज्ञपक सूक्ष्म-साम्परायके श्रन्तिम समयमें छह कर्मोंका वन्घ तो होता है पर मोहनीयका नहीं होता। इस-लिये इस निर्देशसे यही ज्ञात होता है कि इस ग्रल्पबहुत्वमें संयतकी जघन्य स्थितिका कथन श्रविविच्चित रहा है । माॡ्रम पड़ता है कि यहाँ मिथ्यादृष्टिको जघन्य स्थितिकी श्रावाधा ली गई है, क्योंकि इस ग्रल्पवहुत्वमें इस स्थितिका ग्रहण भी किया है। यह सबसे स्तोक होती है। त्रावाधके कुल विकल्प त्रावाधास्थान कहलाते हैं त्रीर इतने ही आवाधा-काण्डक होते हैं। ज्ञानावरणकी उत्कृप्ट ग्रावाधा तीन हजार वर्षमेंसे जघन्य ग्रावाधा ग्रन्त-मुंहूर्तको कम कर एक मिला देनेपर कुल ग्रावाधाके विकल्प होते हैं। ये विकल्प श्रन्तमुंहूर्त-प्रमाण जघन्य त्रावाधासे संख्यातगुर्णे होनेके कारण त्रावाधास्थान श्रीर त्रावाधाकाण्डकीं-को जघन्य श्रावाधासे संख्यातगुणा कहा है। श्रानावरणकी उत्कृप्ट श्रावाधा पूरी तीन हजार वर्ष प्रमाण है जो श्राबाधास्थानोंमें श्रन्तमु हूर्तके जितने समय हों एक कम उतने समयीके मिलानेपर प्राप्त होती है। इसीसे उक्त दोनों पदोंसे उत्कृप्ट श्रावाधाको विशेष श्रधिक कहा है। नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरोंका प्रमाण पहले पल्यके प्रथम वर्गमूलके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण वतला ग्राये हैं। यह प्रमाण तीन हजार वर्षके समयोंसे । ग्रसंख्यातगुणा है। इसीसे उत्क्रप्ट श्रावाधाके प्रमाणसे यह प्रमाण श्रसंख्यातगुणा कहा है। एकप्रदेशगुण-हानिस्थानान्तरका प्रमाण पहले पल्पके असंख्यात प्रथम वर्गसूलोंके वरावर वतला आये हैं। यह प्रमाण नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरके प्रमाणसे श्रसंख्यातगुणा है यह स्पष्ट ही है। नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरके प्रमाणसे इसे श्रसंख्यातगुणा कहा है। एक श्रावाधाकाण्डकका प्रमाण पत्यके श्रसंख्यातचे भागप्रमाण होता है यह एकप्रदेशद्विगुण-हानिस्थानान्तरसे असंख्यातगुणा होनेके कारण असंख्यातगुणा कहा गया है। मिथ्यादिके ज्ञानावरणकर्मकी जघन्य स्थिति श्रन्तःकोटाकोटिसागर्प्रमाण होती है जो एक श्रावाधा-काण्डकके प्रमाण्से असंख्यातगुणी होती है। इसीसे आवाधाकाएडकसे जघन्य स्थितिको श्रसंख्यातगुणी कहा है। उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटिसागरमेंसे श्रन्तःकोटाकोटिसागर-को कम करके जो लब्ध त्रावे उसमें एक मिलानेपर स्थितिस्थान प्राप्त होते हैं। यतः ये जघन्य स्थितिके प्रमाणसे संख्यातगुणे हैं ग्रतः जघन्य स्थितिके प्रमाणसे स्थितिस्थानोंका प्रमाण संख्यातगुणा कहा है। उत्कृप्ट स्थितिवन्ध पूरा तीस कोटाकोटिके समय प्रमाण होता है श्रीर स्थितस्थान इसमेंसे श्रन्तःकोटाकोटिके समयोंको घटाकर एक मिलाने-पर प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि स्थितिस्थानके प्रमाणुसे उत्कृष्ट स्थिति विशेष श्रिधिक है। इसीसे स्थितिस्थानके प्रमाणसे उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण विशेष अधिक कहा है। यह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकी मुख्यतासे ऋल्पबहुत्वका खुलासा है। मात्र इसमें इन्हींके अपर्याप्तकी श्रपेत्ता प्राप्त होनेवाला श्रत्पवहुत्व गर्भित है। श्रायुक्ते सिवा दर्शनावरण श्रादि शेष छुह कमोंके उक्त सब पदोंका श्रत्पबहुत्व इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके उत्कृप्ट स्थितिवन्ध ग्रादिमें ग्रन्तरके होनेपर भी उससे ग्रल्पवहुत्वमें कोई ग्रन्तर नहीं ग्राता।

- १६. पंचिदियसिएण-त्रसिएण-पञ्जत्ताणं सन्वत्थोवा' आयुगस्स जहिएणया आवाधा । जहएणत्रो हिदिवंधो संखेज्जगुणो । आवाधाहाणाणि संखेज्जगुणाणि । उक्किस्सिया आवाधा विसेसाधिया । णाणापदेसगुणहाणिहाणंतराणि असंखेज्ज-गुणाणि । एयपदेसगुणहाणिहाणंतरं असंखेज्जगुणां । हिदिवंधहाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि । उक्कस्सओ हिदिवंधो विसेसाहिओ ।
- २०. 'पंचिदियाणं असएणीणं पज्जत्तापज्जत्ताणं चलरिदिय०-तेइंदि०-वेइंदि० पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तणं कम्माणं आयुगवज्जाणं आवाधाहाणाणि आवाधात्वंदयाणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि । जहिएणया आवाधा संखेज्जगुणा । जक्किस्या आवाधा विसे० । णाणापदेसगु० असंखे०गु० । एयपदेसगु० असं०गु० । एयं आवाधाखंदयं असं०गु० । हिदिवंधहाणाणि असंखेज्जगुणाणि । जहएणओ हिदिवंधो संखेज्जगुणो । उक्क० हिदिवंध विसे० ।
- २१. वादरएइंदिय-सुहुमएइंदिय-पञ्जत्तापञ्जत्ताणं सत्तर्णं कम्माणं त्रायुग-वञ्जाणं त्रावाधाद्वाणाणि त्रावाधात्वंडयाणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि । जहिएण-
- १९. पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त जीवोंके आयुकर्मकी जघन्य श्रावाधा सवसे स्तोक है। इससे जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे आवाधास्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट आवाधा विशेष अधिक है। इससे नाना-प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं। इनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इससे स्थितवन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष अधिक है।
- २०. पंचेन्द्रिय असंशी पर्याप्त, पंचेन्द्रिय असंशी अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, जीन्द्रिय पर्याप्त, जीन्द्रिय अपर्याप्त, जीन्द्रिय पर्याप्त, जीन्द्रिय अपर्याप्त, जीन्द्रिय पर्याप्त और जीन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके आयुक्ते सिवा सात कर्मोंके आवाधास्थान और आवाधाकाण्डक ये दोनों तुल्य होकर सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है। इससे उत्क्रप्ट आवाधा विशेष अधिक है। इससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणी हैं। इनसे एक प्रवाधाकाण्डक असंख्यातगुणी है। इससे एक आवाधाकाण्डक असंख्यातगुणी है। इससे एक आवाधाकाण्डक असंख्यातगुणी है। इससे उत्कृप्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणी है। इससे उत्कृप्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणी है। इससे उत्कृप्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणी

विशेपार्थ-यहाँ स्थितिवन्धस्थान पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण हैं श्रीर जघन्य स्थिति पत्यका संख्यातवाँ भाग कम श्रपनी श्रपनी उन्हण्ट स्थितिप्रमाण है । इसीसे यहाँ स्थिति-स्थानोंके प्रमाणसे जघन्य स्थितिको संख्यातगुणा कहा है। शेष कथन सुगम है।

२१. वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त, बाद्र एकेन्द्रिय ग्रपर्याप्त, सूह्म एकेन्द्रिय पर्याप्त श्रीर सूक्ष्म एकेन्द्रिय ग्रपर्याप्त जीवोंके श्रायुकर्मके सिवा सात कर्मोंके श्रावाधास्थान श्रीर श्रावाधास्थान श्रीर श्रावाधास्थान ये दोनों तुल्य होकर स्तोक हैं। इनसे जघन्य श्रावाधा श्रसंख्यातगुणी है। इससे

या त्रावाधा त्रसं॰गु॰ । उन्क॰ त्रावाधा विसे॰ । ग्याणापदेसगु॰ त्रसं॰गु॰ । एयपदेसगु॰ त्रसं॰गु॰ । एयं त्रावाधाखंडयं त्रसं॰गु॰ । द्विदिवंधद्वाणाणि त्रसं॰-गु॰ । जह॰ द्विदि॰ त्रसं॰गु॰ । उन्क॰ द्विदि॰ विसे॰ ।

२२. अवसेसाणं वारसण्णं जीवसमासाणं आयुगस्स सन्वत्थोवा जहण्णिया आवाधा। जह० द्विदिवं० संखेज्जगु०। आवाधाद्वाणाणि संखेज्जगुणाणि। उनक० आवाधा विसेसा०। द्विदिवं० संखेज्जगुणाणि। उनक० द्विदि० विसेसा०।

एवमप्पावहुगं समत्तं

चउवीस-ऋगिऋोगद्दारपरूवणा

२३. एदेण श्रह्ठपदेण तत्य इमाणि चर्डवीसमिणयोगद्दाराणि खाद्व्वाणि भवंति । तां जहा, श्रद्धाच्छेदो सव्ववंधो खोसव्ववंधो उनक० श्रणुक्क० जह० श्रजह०सादि,० श्रुववं० श्रुववं० एवं याव श्रप्पावहुगे ति । भुजगारवंधो पद्णिक्खेश्रो विद्वियो श्रद्भावसाणसम्बद्धाहारे जीवसमुद्दाहारे ति ।

उत्हृष्ट त्रावाधा विशेष त्रधिक है। इससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर त्रसंख्यातगुणे हैं। इससे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर त्रसंख्यातगुणे हैं। इससे एक त्रावाधाकाण्डक त्रसंख्यातगुणा है। इससे स्थितवन्धस्थान त्रसंख्यातगुणे हैं। इससे जधन्य स्थितवन्ध त्रसंख्यातगुणा है। इससे उत्हृष्ट स्थितवन्ध विशेष त्रिधिक है।

विशेपार्थ—इन जीवोंके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्ध एक सागरके भीतर होता है श्रीर श्रावाधा, श्रावाधाकाएडक श्रादि उसी हिसावसे होते हैं। यही कारण है कि इनके सात कमोंके सव पदोंका श्रह्पबद्धत्व उक्त प्रमाणसे होता है।

२२. अवशेप रहे वारह जीवसमासोंके श्रायुकर्मकी जघन्य श्रावाधा सवसे स्तोक है। इससे जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे श्रावाधास्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्हम्ट श्रावाधा विशेष श्रधिक है। इससे स्थितिवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्हम्ट स्थिति विशेष श्रधिक है।

विशेषार्थ—यहाँ श्रत्पवहुत्वमें श्रावाधाकाण्डक, नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर, एकप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर श्रीर एक श्रावाधाकाण्डक परिगणित नहीं किये गये हैं। कारण कि इन वारह जीवसमासोंमें श्रायुकर्मका जितना स्थितिवन्ध होता है वह इतना श्रत्प है जिससे उसमें ये पद सम्भव नहीं हैं। श्रेप कथन सुगम है।

इस प्रकार ग्रल्पवहुत्व समाप्त हुग्रा।

चौवीस अनुयोगद्वारप्ररूपणा

२३. इस श्रर्थपद्के श्रनुसार यहाँ ये चौवीस श्रनुयोगद्वार ज्ञातन्य हैं। यथा— श्रद्धाच्हेद, सर्ववन्ध, नोसर्ववन्ध, उत्कृष्टवन्ध, श्रनुत्कृष्टवन्ध, ज्ञान्यवन्ध, श्रज्ञाचन्यवन्ध, सादिवन्ध, श्रनादिवन्ध, श्रुववन्ध श्रौर श्रृष्ठ्ववन्धसे तेकर श्रव्पवहृत्व तक। तथा भुज-गारवन्ध, पदिनचेप, वृद्धिवन्ध, श्रध्यवसानसमुदाहार श्रौर जीवसमुदाहार।

विशेषार्थ—ग्रधुववन्यसे छेकर अल्पवहुत्वतक ऐसा सामान्य निर्देश करके शेष वारह श्रमुयोगद्वार गिनाये नहीं हैं। वे ये हैं—स्वामित्व, वन्धकाल, वन्धान्तर, वन्ध

अद्धाच्छेदपरूवगा

२४. श्रद्धाच्छेदो दुविधो—जहएणश्रो उक्कस्सश्रो च । उक्कस्सगे पगदं । दुविधी णिदेसो—श्रोधेण श्रादेसेण य । तत्थ श्रोधेण णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-श्रंतराइगाणं उक्कस्सश्रो हिदिवंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीश्रो' । तिरिण वस्ससहस्साणि श्रावाधा । श्रावाधूणिया कम्महिदी कम्मणिसेगो' । मोहणीयस्स उक्कस्सश्रो हिदिवंधो सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीश्रो । सत्तवस्सहस्साणि श्रावाधा । श्रावाधूणिया कम्महिदी कम्मणिसेगो । श्रायुगस्स उक्कस्सश्रो हिदिवंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि । पुञ्चकोडितिभागं श्रावाधा । कम्मिहदी कम्मणिसेश्रो । णामागोदाणं उक्कस्सश्रो हिदिवंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीश्रो । वेवस्ससहस्साणि श्रावाधा । श्रावाधूणिया कम्मिहदी कम्मणिसेगो । एवमोधभंगो सवणिरय-तिरिक्ख४-मणुस०३-देवो याव सहस्सार ति पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-श्रोरालियका०-वेउ-वियका०-तिरिणवेद०-चत्तारिकसा०-मिद्धि-सरिण-श्राहारगत्ति । एवरी श्रायु० व्यव्यं०-पंचले०-भवसि०-श्रव्यक्ति-श्रव्यंन्यातिहि-सरिण-श्राहारगत्ति । एवरि श्रायु०

श्रन्तर श्रौर भाव। श्रागे इन चौवीस श्रनुयोगद्वारोंका श्राश्रय कर स्थितिवन्धका विचार करके पुनः उसका भुजगारवन्ध, पदिनत्तेष, वृद्धि, श्रध्यवसानसमुदाहार श्रौर जीवसमु-दाहार इन द्वारा श्रौर इनके श्रवान्तर श्रनुयोगों द्वारा विचार किया गया है।

ऋद्धाच्छेदमरूपणा

२४. ग्रद्धाच्छेद दो प्रकारका है—जघन्य ग्रौर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी ग्रापेचा निर्देश दो प्रकारका है--ग्रोघ ग्रीर ग्रादेश। उनमेंसे ग्रोघकी ग्रपेचा शानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय श्रौर श्रन्तराय कर्मका उत्क्रष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। प्रावाधा तीन हजार वर्ष प्रमाण है ग्रौर ग्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्य सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। सात हजार वर्षप्रमाण श्रावाघा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिश्रमाण कर्मनिषेक हैं। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध तेतीस सागर है। पूर्वकोटिका तीसरा भागप्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। नाम श्रीर गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध वीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है, दो हजार वर्षप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितित्रमाणु कर्मनिपेक हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच ग्रौर पंचेन्द्रिय योनिनीतिर्यंच ये चार प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य ग्रौर मनुष्यिनी ये तीन प्रकारके मनुष्य; देव, सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, श्रौदारिक-काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, श्रसंयत, चजुदर्शनी, श्रचजुदर्शनी, पांच लेश्यावाले, भन्यसिद्धिक, श्रभन्य-सिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और ब्राहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु ब्रायुकर्मके विषयमें

[्] १. जीव॰ चू॰ ६ । गो॰ क॰, गा॰ १२७ । २. गो॰ क॰, गा॰ १५६ । ३. गो॰ क॰, गा॰ १६० । ४. गो॰ क॰, गा॰ १५८ ।

विसेसो । देवणेरइगाणं श्रायुगस्स उक्कस्सश्रो हिदिवंधो पुन्वकोडी । छम्भासं श्रावाधा । कम्मिहिदी कम्मिणिसेगो । एवं वेउन्वियका० । चढुएणं लेस्साणं श्रायुगस्स उक्क० हिदिवंधो सत्तारस सागरोवमं सत्त सागरोवमं वे-श्रहारस सागरोवमं सादि० । पुन्व-कोडितिभागं श्रावाधा । कम्मिहिदी कम्मिणिसेश्रो ।

२५. पंचिंदिय-तिरिक्त-अपज्जत्ताणं सत्तणं कम्माणं उक्क० द्विदिवं० अंतो-कोडाकोडीओ । अंतोम्रहु० आवाधा । आवाधृिणया कम्मिट्टदी कम्मिणसेगो । आयु-गस्स उक्क० द्विदिवं० पुन्वकोडी । अतोम्रहुत्तं च आवाधा । कम्मिट्टदी कम्मिणसेगो । एवं मिणुसअपज्जत्त-पंचिंदिय-तसअपज्जत्त-ओरालियमिस्सा ति । एवं चेव आणद याव सन्वट्ठा ति वेउन्वियमिस्स०-आहार०-आहारिभि ०-कम्मइग०-आभिणि०-सुद्०-ओधि०-मणवज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद्—ओधिदं०—सुक्कले०-

कुछ विशेषता है। यथा—देव श्रौर नारिकयों के श्रायुकर्मका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध पूर्वकोटि-प्रमाण होता है, छह महीना की श्रावाधा होती है श्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। इसी प्रकार वैकिथिककाययोगवालोंके जानना चाहिये। नील ग्रादि चार लेश्यावालोंके श्रायुकर्मका उत्कृप्ट स्थितिबन्ध क्रमसे सन्नह सागरप्रमाण, सात सागरप्रमाण, साधिक दो सागरप्रमाण श्रौर साधिक श्रठारह सागरप्रमाण है, पूर्वकोटिका तीसरा भागप्रमाण श्रावाधा है श्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वप्रथम ग्रोघसे ग्राठों कमोंका उत्कृप्टस्थितवन्ध, उत्कृप्ट ग्रावाधा ग्रोर उत्कृप्ट निषेकरचनाका निर्देश करके यह श्रोधप्रकृपणा जिन जिन मार्गणाश्रोंमें सम्भव है उसका विचार किया गया है। श्रायुक्तमंके सिवा सात कर्मोंकी श्रावाधा स्थितवन्धमें गिमंत रहती है इसिलये इन कर्मोंकी निषेकरचना श्रावाधाको न्यून कर शेप स्थितिप्रमाण कही गई है। पर श्रायुक्तमंमें इस प्रकार स्थितवन्धके अनुसार प्रतिभागसे आवाधा नहीं प्राप्त होती है किन्तु जिस पर्यायमें विविद्यत श्रायुक्ता वन्ध होता है उस पर्यायकी श्रेप रही श्रायु ही वध्यमान श्रायुक्तमंकी श्रावाधा होती है, इसिलये श्रायुक्तमंके स्थितवन्धमं यह श्रावाधा गिमंत न रहनेसे श्रायुक्तमंकी उसका जितना स्थितवन्ध होता है तत्प्रमाण निपेकरचना होती है। यहाँ जिन मार्गणाश्रोंका निर्देश किया है उनमेंसे जिन मार्गणाश्रों में श्रायुक्तमंके वन्धके सम्बन्धमें श्रपवाद है उसका पृथक्से निर्देश किया ही है। कारण स्पप्त है।

२४. पंचेन्द्रिय तिर्यंच श्रपर्यातकोंके सात कर्मीका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रन्तःकोड़ा-कोड़ी है, श्रन्तमुंहूर्त श्राबाधा है श्रोर श्राबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध पूर्वकोटि है, श्रन्तमुंहूर्त श्रावाधा है श्रोर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। इसी प्रकार मनुष्य श्रपर्यात, पंचेन्द्रिय श्रपर्यात, श्रस श्रपर्यात श्रोर श्रोदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार श्रानत करणसे छेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, वैकियिकिमश्रकाययोगी. श्राहारककाययोगी, श्राहारकिमश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, आभिनिवोधिकिहानी, श्रुतहानी, श्रवधिहानी, मनःपर्ययहानी, संयत, सामायिकसंयत, खेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत, श्रवधिदर्शनी, श्रुक्त लेश्यावाले,

१. 'छुट्टगुणं वाहारे तम्मिस्ते गुरिथ देवाऊ ॥'-गो० क०, गा० ११८।

सम्मादिष्टि-खइगस०-वेदग०-उवसमस०-सासण०-सम्मामि०-अणाहारग ति । णविर आयुविसेसो । आणद् याव सन्बद्ध ति देवोघं । वेउन्वियमि०-कम्मइग०-उवसम०-सम्मामि०-अणाहार० आयुगं णित्थ । संजदासंजद० आयुग० उक्क० द्विदि० वावीसं सागरोवमं । पुन्वकोडितिभागं आवाधा। कम्मिट्टदी कम्मिणसेगो । सासणे आयुग० उक्क० एक्कत्तीसं सागरोवमं । पुन्वकोडितिभागं आवाधा। कम्मिट्टदी' कम्मिणसेगो । आहारकायजोगी आदिं कादृण आयु० ओघं।

सम्यग्दिष्ट, ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट, उपश्मसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट, सम्यक् मिथ्यादिष्ट श्रौर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु श्रायुकर्मके विषयमें कुछ विशेषता है। यथा—श्रानत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक देवोंके श्रायुकर्मका कथन सामान्य देवोंके समान है। तथा वैकियिकमिश्रकाययोगी, कार्मण्काययोगी, उपशमसम्यग्दिष्ट, सम्यग्मिथ्यादिष्ट श्रौर श्रनाहारक जीवोंके श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता। संयतासंयतोंके श्रायुकर्मका उत्हृष्ट स्थितवन्ध वाईस सागर होता है। पूर्वकोटिका तीसरा भाग प्रमाण श्रावाधा है श्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। सासादनमें श्रायुकर्मका उत्हृष्ट स्थितवन्ध इकतीस सागर होता है, पूर्वकोटिका तीसरा भागप्रमाण श्रावाधा है श्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। श्राहारककाययोगीसे लेकर शेषके श्रायुकर्मका विचार श्रोधके समान है।

विशेपार्थ-यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त पदसे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव लिये गये हैं। अन्तःकोटाकोटी सागरसे आगेका स्थितवन्ध संशी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि-के ही होता है। किन्तु यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें जो पर्याप्त श्रवस्थासे सम्वन्ध रखनेवाली मार्गणाएँ हैं वे मिथ्यादृष्टि नहीं श्रीर जो मिथ्यात्व श्रवस्थासे सम्वन्ध रखनेवाली मार्गणाएँ हैं वे पर्याप्त नहीं, श्रतः इन सब मार्गणाओंमें श्रायुके सिवा शेष सात कर्मीका उत्क्रप्ट स्थितिवन्ध अन्तःकोटाकोटी सागरप्रमाण वन जाता है। आयुकर्मके स्थितिवन्धके सम्बन्धमें जो विशेषता है वह अलगसे कही है। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देवोंके ग्रायकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पूर्वकोटिप्रमाण ही होता है, परन्तु उत्कृष्ट श्रावाधा श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण न होकर छह महीनाकी होती है, इसलिये इनके श्रायुकर्मे के स्थितिबन्धका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्यातकोंके समान न कह कर सामान्य देवोंके समान कहा है। वैकियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, उपशमसम्यग्हिए, सम्यग्मिश्या-दृष्टि ग्रीर ग्रनाहारक जीवोंके ग्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता यह स्पष्ट ही है। यहाँ जिस प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगमें श्रायुवन्धका निपेध किया है उस प्रकार श्राहारकमिश्रकाय-योगमें आयुवन्धका निषेध नहीं किया। इतना ही नहीं किन्तु इस व आगेके प्रकरणींको देखनेसे विदित होता है कि महावन्धके अनुसार आहारककाययोगके समान आहारक-मिश्रकाययोगमें भी श्रायुवन्ध होता है। किन्तु गोम्मटसार कर्मकाएडमें श्राहारकमिश्रकाय-योगमें आयुवन्धका निपेध किया है। संयतासंयत जीवोंका गमन सोलवें कल्पतक श्रीर सासादनसम्यदृष्टियोंका गमन अन्तिम ग्रैवेयकतक होता है। इससे इनके श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध क्रमसे वाईस ग्रौर इकतीस सागर प्रमाण वतलाया है। शेष कथन सुगम है।

१. मूलप्रती –हिटी कम्माणं सेसाणं। श्राहार–इति पाठः।

२६, एइंदिएसु वादर-वादरपज्जत्तस्स सत्तराणं कम्माणं उक्क॰ द्विदिवंधो सागरोवमस्स तिरिण सत्तभागा सत्त सत्तभागा वे सत्तभागा । श्रंतोसुहुत्तं श्रावाधा । श्रावाधूरिणया कम्मद्विदी कम्मिणसंगो । श्रायुगस्स उक्कस्सिद्विदंघो पुन्वकोडी । सत्तवस्ससहस्साणि सादिरेयाणि श्रावाधा । कम्मद्विदी कम्मिण । वादरएइंदि-यश्रपज्जत्त-श्रुप्वजत्त-श्रुप्वजत्तनाणं सत्तराणं कम्माणं उक्क॰ द्विदिवं॰ सागरोवमस्स तिरिण सत्तभागा सत्त सत्तभागा वे सत्तभागा पिलदोवमस्स श्रसंखेव्वदिभागेण करिणया । श्रंतोसुहुत्तं श्रावाधा । श्रावाधूरिणया कम्मद्विदी कम्म॰ । श्रायुगस्स उक्क॰ द्विदिवं॰ पुन्वकोडी । श्रंतोसुहुत्तं श्रावाधा । कम्मद्विदी कम्म॰ । सन्वपुद्द०-श्राउ॰-तेष्ठ०-वाष्ठ०-वणप्फिद्दि॰-वाद्रवणप्फिद्दिपत्तेगसरीर॰ ए दियमंगो । णविर श्रायु॰ उक्क॰ द्विदि॰ पुन्वकोडी । सत्तवस्ससहस्साणि सादि॰ वेवस्ससहस्साणि सादि॰ एक्करादिंदिया॰ एक्कवस्ससहस्सा॰ तिणिणवस्तसह-स्साणि सादि॰ श्रावाधा । कम्म॰ कम्मणिसेगो । णिगोद्जीवाणं सत्तरणं कम्माणं पुद्दिकाइयमंगो । श्रायु॰ सन्विणयोदाणं सुद्दुम्पइंदियभंगो ।

२६. एकेन्द्रियोंमें बादर श्रीर वादर पर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक सागरका तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भागप्रमाण होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा होती है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्म-निपेक होते हैं। श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है, साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण श्राबाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। वादर एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त, सुक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त श्रौर सूक्ष्म एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवींके सात कमाँका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक सागरका पत्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भागप्रमाण है। श्रन्तर्मुहर्तं प्रमाण श्रावाधा है, श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। श्रायुकर्मका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। सब पृथिवीकायिक, सव जलकायिक, सव श्रग्निकायिक, सव वायुकायिक, सव वनस्पतिकायिक श्रौर वादर वन-स्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंके सर्व कमौंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध ग्रादि एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रायुकर्मका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है, श्रावाधा क्रमसे साधिक सात हजार वर्ष, साधिक दो हजार वर्ष, एक दिनरात, एक हजार वर्ष श्रौर साधिक तीन हजार वर्ष प्रमाण है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। निगोद जीवोंके सातों कर्मोंका स्थितिवन्ध ग्रादि पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। तथा सव निगोद जीवोंके आयुकर्मका स्थितिबन्ध ब्रादि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्यराय कर्म-का उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक सागरका तीन वटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा एक सागरप्रमाण होता है और नाम और गोत्रका एक सागरका दो वटे सात भागप्रप्राण होता है। पर्याप्त एकेन्द्रियोंके और वादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंके इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध इसी प्रकार होता है। शेष वादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियोंके इसमेंसे पत्यका असंख्यातवाँ भाग कम कर देनेपर उत्कृष्ट स्थिति- २७. वेइंदि०-तेइंदि०-चडिरंदि० तेसिं चेव पज्जत्ताणं सत्तरणं कम्माणं उनक० हिदि० सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपण्णासाए सागरोवमपर्या तिरिण सत्त-भागा सत्त सत्तभागा वे सत्तभागा । अंतोग्र० आवाधा । [आवाह्णिया] कम्महिदी कम्म० । आयुग० उनक० हिदि० पुन्वकोडी । चत्तारिवस्साणि सोलसरादिंदियाणि सादिरेयाणि वे मासं च आवाधा । कम्महिदी कम्म० । तेसिं चेव अपज्जत्ताणं सत्तरणं कम्माणं उनक० हिदिंव० एवं चेव । एवरि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणियं । [अंतोग्रहत्तमावाधा ।] कम्महिदी कम्म० । आयु० पंचिंदिय-तिरिक्ति० अपज्जत्तभंगो ।

वन्ध होता है। एकेन्द्रियोंमें सात कमोंके स्थितिवन्धका यह वीजपद है। इसी वीजपदके अनुसार पृथिवी कायिक आदिके वादर, सूक्ष्म और इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सर्वत्र एक पूर्वकोटिप्रमाण होता है। मात्र आवाधामें अन्तर है; क्योंकि सव जीवोंकी आयु अलग अलग कही है। इसिलेये जिसको जितनी उत्कृष्ट आयु कही है उसके अनुसार उसके आयुकर्मका उत्कृष्ट आवाधाकाल जानना चाहिये। यह उक्ष कथनका तात्पर्य है।

२७. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय ग्रीर चतुरिन्द्रिय तथा इन्होंके पर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कर्मसे पञ्चीस, पचास ग्रीर सौ सागर का तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग ग्रीर दो वटे सात भागप्रमाण होता है। ग्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण ग्रावाधा होती है ग्रीर आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। ग्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पूर्वकोटिप्रमाण होता है, चार वर्ष, साधिक सोलह रातदिन ग्रीर दो महीना प्रमाण उत्कृष्ट ग्रावाधा होती है तथा कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। इन्हों ग्रपर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध इसी प्रकार होता है। इतनी विशेषता है कि वह पत्यका संख्यातवाँ भाग कम होता है। ग्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण ग्रावाधा होती है ग्रीर ग्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। ग्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध ग्रादि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच ग्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रय श्रौर द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके श्वानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय श्रौर श्रन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पच्चीस सागरका तीन वटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा पच्चीस सागरप्रमाण होता है तथा नाम श्रौर गोत्रका पच्चीस सागरका दो वटे सात भागप्रमाण होता है। द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके सर्वत्र पत्थका संख्यानवाँ भाग कम करनेपर उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। त्रीन्द्रिय श्रौर त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके शानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय श्रौर अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पचास सागरका तीन वटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा पचास सागरप्रमाण होता है तथा नाम श्रौर गोत्रका पचास सागरका दो वटे सात भागप्रमाण होता है। त्रीन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके सर्वत्र पत्थका संख्यातवाँ भाग कम करनेपर उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। चतुरिन्द्रिय श्रौर चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकोंके श्रानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय श्रौर श्रन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सौ सागरका तीन वटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा सौ सागरमाण होता है तथा नाम श्रौर गोत्रका सौ सागरका दो वटे सात भागप्रमाण होता है तथा नाम श्रौर गोत्रका सौ सागरका दो वटे सात भागप्रमाण होता है। चतुरिन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके सर्वत्र पत्थका संख्यातवाँ भाग कम करनेप्रमाण होता है। चतुरिन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके सर्वत्र पत्थका संख्यातवाँ भाग कम करनेप्रमाण होता है। चतुरिन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके सर्वत्र पत्थका संख्यातवाँ भाग कम करने

२८. अवगद् णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइगाणं उनक० हिदिवं० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अंतोग्र० आवाथा। आवाध्यणिया कम्महिदी कम्म०। वेदणीय-णामागोदाणं उनक० हिदि० पिलदोनमस्स असंखेज्जिदभागो। अंतोग्र० आवा०। आवाध्० कम्मिदिही कम्मिणि०। मोहणीय० उनक० हिदीवं० संखेज्जाणि वाससदाणि। अंतोग्रहुत्तं आवा०। आवाध्णि० कम्मिहिदी कम्म०। ग्रहुमसंप० तिएणं कम्माणं उनक० हिदिवं० ग्रहुत्तपुथत्तं। अंतोग्र० आवा०। आवाध्० कम्मिहिदी कम्म०। वेदणीय-णामा-गोदाणं उनक० हिदिवं० मासपुथत्तं। अंतोग्र० आवाथ। आवाध्० कम्मिहिदी कम्म०।

२६. श्रसग्णीसु सत्त्रणं कम्पाणं उक्क० हिदिवं० सागरोवमसहस्सस्स तिग्ण सत्त्रभागां सत्त सत्त्रभागा वे सत्त्रभागा । श्रंतोसुहृतं श्रावा० । श्रावाधू० कम्महिदी कम्म० । श्रायुग० उक्क० हिदिवं० पित्तदोवमस्स श्रसंसे०भागो ।

पर उत्कृप्ट स्थितिवन्घ होता है। श्रावाधा सर्वत्र श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। श्रायुकर्मका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध सर्वत्र एक पूर्वकोटिप्रमाण है। मात्र इसकी श्रावाधामें श्रन्तर है, सब भेदोंकी उत्कृप्ट श्रायु श्रलग श्रलग कही है। इसिलये जिसकी जितनी उत्कृष्ट श्रायु है उसके श्रवसार उसके श्रायुकर्मका उत्कृष्ट श्रावाधाकाल जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

२८. श्रवगतचेदवाले जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तराय कर्मका उत्हण्ट स्थितिवन्ध संख्यात हजार वर्पप्रमाण होता है, श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रका उत्हण्ट स्थितिवन्ध पल्यका श्रसंख्यातवाँ भागप्रमाण होता है, श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा होती है धौर श्रावाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। मोहनीय कर्मका उत्हण्ट स्थितवन्ध संख्यात सो वर्पप्रमाण होता है, श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। स्क्ष्मसाम्यराय संयत जीवोंके तीन कर्मोंका उत्हण्ट स्थितवन्ध मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण होता है, श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रका उत्हण्ट स्थितवन्ध मासपृथक्त्वप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं।

विशेषार्थ—यहाँ जो अपगतवेदी जीवके और स्हमसाम्परायसंयत जीवके कर्मीका उत्हर स्थितिवन्ध वतलाया है वह उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवके स्हमसाम्परायके अन्तिम समयमें और अपगतवेदके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है। स्हमसाम्पराय गुणस्थानमें मोहनीयका और श्रेणिमें आयुकर्मका वन्ध नहीं होता, इसलिये स्हमसाम्परायसंयतके मोहनीय और आयुकर्मके उत्हर स्थितिवन्धका और अपगतवेदी जीवके मात्र आयुकर्मके उत्हर स्थितवन्धका और अपगतवेदी जीवके मात्र आयुकर्मके उत्हर स्थितवन्धका श्रोर अपगतवेदी जीवके मात्र आयुकर्मके उत्हर स्थितवन्धका निर्देश नहीं किया। शेष कथन सुगम है।

२९. ग्रसंबी जीवोंमें सात कमोंका उत्क्रप्ट स्थितिवन्ध एक हजार सागरका तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भागप्रमाण होता है, ग्रन्तर्मुहर्त प्रमाण श्रावाधा होती है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। श्रायुकर्मका पुञ्वकोडितिभागं च त्रावाथा । कम्मद्विदी कम्म० । एवमुक्कस्सत्रो त्राद्वच्छेदो समत्तो ।

३०. जहएएगे पगदं । दुविधो णिहेसी— अघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण णाणावर०-दंसणावर०-मोहणीय०-अंतराइगाणं जहएएओ हिदिवंधो अंतो० । अंतोम्रहुत्तं आवाधा । आवाध्० कम्महिदी कम्म० । वेदणीयस्स जहएएाओ हिदिवंधो वारस मुहुत्तं । अंतोम्र० आवाधा । आवाध्० कम्महिदी कम्म० । आयुग० जह० हिदिवं० खुहाभवग्गहणं । अंतो० आवा० । कम्महिदी कम्म० । [णामागोदाणं जहएएाओ हिदिवंधो अह मुहुत्तं । अंतोम्रहुत्तमावाधा । आवाध्यिया कम्महिदी कम्मणिसेगो ।] एवसोधमंगो मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचविच०-कायजोगि-ओरालियका०-अवगदवे०-लोभक०--आभ०-मुद०-ओधि०-मणप्जव०-संजद-चक्खदं०-अवक्खदं०-ओधिदं०-सम्मादि०-त्वइगस०-सार्पण-आहारग ति । णेवरि अवगदवे० आयुगं एत्थि । आभि०-मुद०-ओधिदं०-सम्मादि०-त्वइगस० आयुग० जह० हिदि० वासपुधत्तं । अंतोम्र० आवाधा । कम्महिदी कम्मणिसेगो । मणप्जव०-संजदा० आयुग० जह० हिदिवं० पितदोवमपुधत्तं । अंतोम्र० आवाधा । वत्कप्ट स्थितिवन्ध पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, पूर्वकोटिके त्रिभागप्रमाण आवाधा होती है और कर्मस्थितप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं ।

विशेषार्थ—असंक्षी जीवोंके मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितवन्ध एक हजार सागरप्रमाण, क्षानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायका एक हजार सागरका तीन बटे सात भागप्रमाण तथा नाम और गोजका एक हजार सागरका दो वटे सात भाग प्रमाण होता है। असंक्षी जीव मरकर प्रथम नरकमें और भवनिज्ञकों भी उत्पन्न होते हैं, इसिलए इस हिएसे इनके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्रुए ग्रद्धाच्छ्रेद समाप्त हुग्रा।

३०. श्रव ज्ञान्यका प्रकर्ण है। उसकी श्रपेक्ता निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे झानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय श्रीर श्रन्तराय कर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध स्थान्तम्भं हुर्तप्रमाण है, श्रन्तमुं हुर्तप्रमाण श्रावाधा है और श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। वेदनीय कर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध वारह मुहूर्त है, श्रन्तमुं हुर्त श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितप्रमाण कर्मनिपेक हैं। श्रायुकर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध सुल्लकमवग्रहण प्रमाण है, श्रन्तमुं हुर्त श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थितप्रमाण कर्मनिपेक हैं। नाम श्रीर गोत्र कर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध श्रन्तमुं हुर्त है, श्रन्तमुं हुर्त श्रावाधा है श्रीर श्रावाधा है श्रीर श्रावाधा है श्रीर श्रावाधा हे श्रीर श्रावाधा होता, श्रुत्तवानी, श्रवधानी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, चनुदर्शनी, श्रवनुदर्शनी, श्रवचित्रवानी, सम्यग्दि, क्षायिकसम्यग्दि, संशी श्रीर श्राहारक जीवोंके इसी प्रकार श्रीघके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी जीवोंके श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता। श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुत्त्वानी, श्रुत्त्वानी, श्रुत्त्वानी, सम्यग्दि श्रीर क्षायिकसम्यग्दि जीवोंके श्रायुकर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध वर्षपृथक्तवप्रमाण होता है, श्रन्तमुं हुर्त प्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर कर्मस्थितप्रमाण कर्मनिपेक होते हैं। मनःपर्यवानी श्रीर संयत

कन्मिहिदी कम्मि । सुक्केले॰ आयु॰ जह् हिदिबं॰ मासपुयत्तं। अंतोमु॰ आवाया। कम्मिहिदी कम्मिणिसेगों ।

३१. आहेसेण णिरयगईए ग्रेरइएम सत्तरणं कम्माणं नहः द्विदिनं सागरो-वनसहस्तस्त निष्णि-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा वे-सत्त भागा पलिदोः संकेटनिक्भागेण ऊणियं। अंनोमुः आवाया। आवाधृः कम्मिट्दी कम्मः। आयुगः नहः हिदिनं अंतोः। अंनोमुः आवाया। कम्मिट्दी कम्मः। एवं पहम-

र्जावॉके ब्रायुकर्मका जवन्य स्थितिवन्य पत्योपनपृथक्त्यप्रमाए होता है, ब्रन्तर्मुहर्त प्रमाण् ब्रावाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण् कर्मनिपेक होते हैं। सुक्तलेक्ष्यावालींके ब्रायुक्तिका जधन्य स्थितिवन्य नासपृथक्त्वप्रमाण् होता है, ब्रन्तर्मुहर्तप्रमाण ब्रावाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण् कर्मनिषेक होते हैं।

विशेषार्य—होशन्ते झानावरण, दर्शनावरण, वेश्नीय, नाम, गोत्र होर अन्तराय कर्मका जबन्य स्थितिवन्य ज्ञपक स्क्तसाम्यरायके अन्तिम समयम होता है। मोहनीयका जयन्य स्थितिवन्य ज्ञपक श्रनिवृत्तिकर एके श्रन्तिम समयमें होता है श्रीर श्रायु-कर्नेका जबन्य स्थितिवन्य मिख्यात्व गुणस्थानमें होता है। यहाँ ब्रन्य जिन मार्गणाओं में ब्रोधप्रकृपट्। कही है उनमें ब्रायुके लिवा सात कर्मीका तो ब्रोधके समान स्थितिवन्य वन जाता है, क्योंकि उन सब मार्गपाओंमें जपकश्रेपिकी प्राप्ति सम्मव है । किन्तु उक्त मार्गणाओं-मेंसे जिन मार्गरात्रोंमें मिथ्यात्व गुएस्यानकी प्राप्ति सम्मव नहीं है उनमें आयुकर्मके स्यितिवन्धके सम्बन्धमें कुछ विशेषता है जिसका निवंदा मूलमें ही किया है। खुलासा इस प्रकार है—ग्रे एिन श्रायुवन्य नहीं होता इसतिये श्रपगतवेदीके श्रायुकर्नके वन्धका नियेध किया है। हामिनिवोधिक हान, श्रुतहान, अवधिहान, सम्यन्द्रष्टि श्रीर ज्ञायिकसन्यन्द्रष्टि ये नार्गणाएँ मनुष्यगति होर तिर्येचगतिके समान नरकगति होर देवगतिम भी सन्मव हैं। यतः नरकगर्दिमं सन्यक्त्व ऋवस्थामं जघन्य स्थितिवन्य वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है ऋतः इत मार्गे एक्ट्रोंमें ऋषुकर्मको जधन्य स्थितिवन्ध वर्षपृथक्तवप्रमाण कहा है। मनःपर्ययज्ञानी श्रीर संयव मनुष्य ही होते हैं। इनके संहोश परिएामोंकी वहुतता होनेपर छठवें गुणस्थानमें पल्योपनपृथक्त्वप्रनाल ह्यायुवन्ध होता है। इसीसे इन मार्पलाह्योंमें ह्यायुकर्मका जघन्य स्थितियन्य, उक्त प्रमाए कहा है। गुक्तलेखा मिय्यात्व गुएस्थानमें भी सन्मव है। यदि गुक्ततेश्यात्य परिएमोंके हायमान होनेपर श्रायुवन्य हो तो मासप्रयक्तव प्रमाल स्थिति-यन्य सम्मन है। इसीसे गुक्ततेश्यामें उक्त प्रमाण जयन्य स्थितिवन्य कहा है। शेष कथन स्राम है।

३१. छादेशसे नरकगितमें नारिकयों से सात कर्मोका जधन्य स्थितिवन्य एक हजार सागरका पत्यका संख्यातवां भागकम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग और दो बटे सात भाग होता है, अन्तर्मुहर्तप्रमाण आवाधा होती है और आवाधासे न्यून कर्मिस्यितिप्रमाण कर्मिने देव होते हैं। आयुकर्मका जधन्य स्थितिवन्य अन्तर्मुहर्त प्रमाण होता है, अन्तर्मुहर्तिप्रमाण कर्मिने होते हैं। इति है और आवाधासे न्यून कर्मिस्यितिप्रमाण कर्मिने होते हैं। इसी प्रकार प्रथम पृथिवी देव, भवनवासीदेव और अन्तर देवोंमें जानना

१. सीट इल, सा० इट्ट ।

पुढवीए देवा-भवण०-वाणवें० । एवं चेव सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसग्रपज्जत्त-पंचिं-दियत्रपज्जत्ता० । एवरि श्रायु० श्रोघं ?

३२. विदियाए याव सत्तमा ति सत्तएणं कम्माणं जह० हिदिवं० श्रंतोकोडा-कोडी । श्रंतोग्रुहुत्तं श्रावाधा । श्रावाधू० कम्महिदिकम्म० । श्रायु० णिरयोघं । एवं जोदिसिय याव सव्वह ति वेजिव्यका०-वेजिव्यमि०-श्राहार०-श्राहारमि०-विभंग०-पिरहार०-संजदासंजद०-तेजले०-पम्मले०-वेदगस०-सासण०-सम्मामि० । णविर एदेग्र श्रायु० विसेसो । जोदिसिय-सोधम्मीसाण० श्रायु० जह० हिदि० श्रंतो० । सणक्कुमार-माहिंद० ग्रुहुत्तपुधत्तं । वह्म-वह्मुत्तर-लंतव-काविद्व० दिवसपुधत्तं । ग्रुक्क-महाग्रुक-सदर-सहस्सार० पक्खपुधत्तं । श्राणद-पाणद-श्रारण-श्रच्चुद० मासपुधत्तं । जविर याव सव्वह ति वासपुधत्तं । श्रंतोग्रु० श्रावा० । कम्मिहदी कम्म० । वेज-

चाहिये। तथा इसी प्रकार सव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य श्रपर्याप्त श्रौर पंचेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवों के जानना चाहिये। किंतु इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुकर्मका कथन श्रोघके समान है।

विशेषार्थ— असंज्ञी जीव मर कर नरकमें उत्पन्न हो सकता है और ऐसे जीवके अपर्याप्त अवस्थामें असंज्ञीक योग्य वन्ध होता रहता है। इसीसे नरकमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध उक्त प्रमाण कहा है। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त गर्भजकी जघन्य आयु अन्तर्म हुर्त प्रमाण होनेसे नरकमें आयुक्तमंका जघन्य स्थितिवन्ध अन्तर्म हुर्त प्रमाण कहा है। असंज्ञी जीव मर कर प्रथम नरक, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हो सकता है। इसीसे इन मार्गणाओंमें सामान्य नारिकयोंके समान जघन्य स्थितिवन्ध कहा है। सव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त इन मार्गणाओंमें यद्यपि एकेन्द्रिय जीव भी मर कर उत्पन्न होता है पर इन मार्गणाओंमें उत्पन्न होनेके वाद अपर्याप्त अवस्था में सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध असंज्ञीके होनेवाले स्थितवन्धसे कम नहीं होता ऐसा नियम है। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें भी सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध उक्त प्रमाण कहा है। ईन मार्गणाओंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितवन्ध अद्भक्तभव स्थितिन्ध प्रमाण होनेसे आयुकर्मकी प्रकृपणा ओघके समान कही है। शेष कथन सुगम है।

३२. दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सातों कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध ग्रन्तःकोडीकोडीसागरप्रमाण होता है, ग्रन्तमुं हूर्तंप्रमाण ग्रावाधा होती है ग्रीर ग्रावाधासे न्यून कर्मिस्थितप्रमाण कर्मनिषेक होता है। ग्रायुक्मंका कथन सामान्य नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थिसिद्ध तकके देवोंके तथा वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, ग्राहारककाययोगी, ग्राहारकिमिश्रकाययोगी, विभङ्गहानी, परिहारियुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दिए सासादनसम्यग्दिए श्रीर सम्यग्मध्यादिए जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाश्रोंमें ग्रायुक्मंके सम्बन्धमें कुछ विशेषता है—ज्योतिषी देव तथा सौधर्म श्रीर पेशान कल्पमें ग्रायुक्मंका जघन्य स्थितवन्ध ग्रन्तमुं हूर्तंप्रमाण होता है। सानत्क्रमार श्रीर माहेन्द्रमें मुहूर्तंपृथक्तवप्रमाण होता है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर श्रीर लान्तव कापिएमें दिवसपृथक्तवप्रमाण होता है। श्रक्न महाग्रक श्रीर श्रतार सहस्रारमें पच्चपृथक्तवप्रमाण होता है। श्रानत प्राणत श्रीर श्रीर श्रारण श्रच्युतमें मासपृथक्तवप्रमाण होता है। श्रागे सर्वार्थसिद्ध तक वर्षपृथक्तवप्रमाण श्रीर श्रारण श्रच्युतमें मासपृथक्तवप्रमाण होता है। श्रागे सर्वार्थसिद्ध तक वर्षपृथक्तवप्रमाण

विवयका० आयु० देवोघं । आहार०-आहारिम० आयु० जह० द्विदिवं० पिलदोवम-पुधत्तं । अंतोम्र० आवाधा । कम्मद्विदी कम्म० । एवं परिहार०-संजदासंजदा० ति । विभंगे आयु० ओघं । तेउलेस्सिया० सोधम्मभंगो । पम्माए सणक्कुमारभंगो । वेदगे आयु० ओधिभंगो । सासणे देवोघं ।

३३, तिरिक्खेसु सत्तरणं कम्माणं जह० हिदि० सागरोवमस्स तिरिणसत्त भागा सत्तसत्त भागा वेसत्त भागा पिलदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण जिल्या । अंतोष्ठ० आवा० । आवाधू० कम्मिहदी क० । आयु० ओघं । एवं तिरिक्खभंगो सन्वएइंदिय-सन्वणंचकाय-ओरालियमि०-कम्मइ०-मिद०-सुद०-असंजद०-किएण०-णील-काड०-अन्भसि०-मिच्छादि०-असिएण-अणाहारग ति । एवरि कम्मइ०-अणाहार० आयुगं णित्थ ।

होता है। ग्रन्तमुँ हूर्तप्रमाण ग्रावाधा होती है ग्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। वैिक्त विका काययोगमें ग्रायुकर्मका विचार सामान्य देवोंके समान है। ग्राहारककाययोगी ग्रौर ग्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें ग्रायुकर्मका जधन्य स्थितिवन्ध पत्योपमपृथक्त्वप्रमाण होता है। ग्रन्तमुँ हूर्तप्रमाण ग्रावाधा होती है ग्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। इसी प्रकार परिहारविश्विद्धसंयत ग्रौर संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये। विभंगज्ञानमें ग्रायुकर्मका कथन ग्रोधके समान है। पीतहेश्यावालोंके ग्रायुकर्मका कथन सौधर्मकत्पके समान है। पक्षतेश्यावालोंके ग्रायुकर्मका कथन सौधर्मकत्पके समान है। पक्षतेश्यावालोंके ग्रायुकर्मका कथन सानत्कुमार कल्पके समान है। वेदकसम्यग्दिध्योंके ग्रायुकर्मका कथन ग्रविश्वानियोंके समान है ग्रौर सासादनमें ग्रायुकर्मका कथन सामान्य देवोंके समान है।

विशेषार्व—संज्ञी पंचेन्द्रियपर्यप्तिके जघन्य स्थितवन्ध अन्तःकोडाकोडीसे कम नहीं होता। इसी नियम कोध्यानमें रखकर इन दूसरी पृथिवी आदि मार्गणाओंमें सात कमौंका स्थितिवन्ध कहा गया है। यद्यपि दूसरी पृथिवी आदिक मार्गणाओंमें निवृत्त्र्यपर्याप्त अवस्था भी होती है पर यहां संज्ञी जीव ही मर कर उत्पन्न होता है इसिलये यहां किसी भी हालतमें इससे कम स्थितिवन्ध सम्भव नहीं है। आयुक्रमेंके स्थितिवन्धमें जहां जो विशेषता कहीं है वह जानकर समक लेना चाहिये।

३३. तिर्यंचोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवां भाग कम तीन वटे सात भाग, सातवटे सात भाग और दो वटे सात भागप्रमाण होता है। अन्तर्मुहर्तप्रमाण आवाधा होती है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होता है। आयुकर्मका कथन ओघके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब पांचों कायवाले, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, रूप्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अना-हारक जीवोंके तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके आयुकर्मका वन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ — तिर्यंचगितमें जघन्य स्थितिवन्धके विचारमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यता है। उनके जो जघन्य स्थितिवन्ध होता है वही तिर्यंचगितमें समसना चाहिये। यहां ग्रन्थ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं वे सव एकेन्द्रिय जीवोंके सम्भव हैं, इसिलये उन मार्गणाश्रोंमें भी यही व्यवस्था जाननी चाहिये। इन सव मार्गणाश्रोंमें श्रायुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध श्रुख्लकभवप्रमाण होता है इसिलये श्रायुकर्मका कथन श्रोधके समान कहा है।

३४. वीइंदि॰-तीइंदिय-चडिरंदि॰ तेसिं चेव पज्जत्तापज्जतागं सत्तग्णं क॰ जह॰ हिदिवं॰ सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपर्मात्तिएणसत्त भागा सत्तसत्त मागा वेसत्त भागा पिलदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणियं। श्रंतोम्च॰ श्रावाधा। श्रावाधू॰ कम्महिदी कम्म॰। श्रायुगस्स श्रोघं। तसपज्जत्त ॰ वीइंदियभंगी।

३५. इत्थि०-णवुंस० णाणावर०-दंसणावर०-श्रंतराइ० जह० हिद्वं० संखेजाणि वस्ससहस्साणि । श्रंतोग्र० श्रावा० । श्रावाधू० कम्महिद्दिक० । वेद-णीय-णामा-गोदाणं जह० हिद्वं० पित्तदो० श्रसंखेज्जदिभागो । श्रंतो० श्रावा० । श्रावाधू० कम्महिद्दी क० । मोहणी० जह० हिद्वं० संखेजाणि वस्ससदाणि । श्रंतो० श्रावा० । श्रावाधू० कम्महिद्दी क० । श्रायु० श्रोघं । पुरिसवं० छएणं कम्माणं जह० हिद्वं० संखेजाणि वस्ससहस्साणि । श्रंतो० श्रावा० । श्रावाधू० कम्महिद्दी कम्म० । मोहणीय० सोलस वासाणि । श्रंतो० श्रावाधा । श्रावाधू० कम्महिद्दी क० । श्रायु० श्रोघं । श्रधवा णाणावर०-दंसणावर०-श्रंतराइगाणं जह० हिद्वं० संखेजाणि वस्ससदाणि । श्रंतो० श्रावाध । श्रावाधू० कम्महिद्दी क० ।

३४. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय ग्रीर चतुरिन्द्रिय जीवोंके तथा इन्होंके पर्याप्त ग्रीर ग्रपर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका जधन्य स्थितिवन्ध क्रमसे पच्चीस सागरका, पचास सागरका ग्रीर सौ सागरका पर्व्यका संख्यातवां भाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग ग्रीर दो वटे सात भागप्रमाण होता है, ग्रन्तमुं हुर्तप्रमाण ग्रावाधा होती है ग्रीर ग्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होता है। ग्रायुकर्मका विचार ग्रोधके समान है। जस-पर्याप्तका विचार द्वीन्द्रयोंके समान है।

३४. स्त्रीवेदी श्रीर नपुंसकवेदी जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और श्रन्तराय कर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध संख्यात हजार वर्णप्रमाण होता है, श्रन्तमुं हूर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होता है। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध पल्यका श्रसंख्यातवां भागप्रमाण होता है, श्रन्तमुं हूर्त श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होता है। मोहनीय कर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध संख्यात सौ वर्णप्रमाण होता है, श्रन्तमुं हुर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होता है। श्रायुकर्मका विचार श्रोधके समान है। पुरुपवेदवाले जीवोंके छः कर्मोंका ज्ञान्य स्थितवन्ध संख्यात हजार वर्णप्रमाण होता है, श्रन्तमुं हुर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होता है। मोहनीय कर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध सोलह वर्षप्रमाण होता है, श्रन्तमुं हुर्तप्रमाण श्रावाधा होती है, श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक होता है। श्रायुकर्मका विचार श्रोधके समान हे। अथवा, ज्ञानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तराय कर्मका ज्ञान्य स्थितवन्ध संख्यात सौ वर्षप्रमाण होता है, श्रन्तमुं हुर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितप्रमाण श्रावाधा होती है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितवन्ध संख्यात सौ वर्षप्रमाण कर्मनिपेक होता है।

विशेपार्थ—तीन चेदचाले जीवोंके सात कमींका यह जघन्य स्थिति वन्ध ज्ञपक श्रेणीमें प्राप्त होता है श्रोर आयु कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राप्त होता है, क्योंकि श्रोधके समान क्षुल्लक भवप्रमाण जघन्य स्थितिवन्ध वहींपर सम्भव है। श्रन्यत्र

٠,٢

३६. कोध-माण-माय॰ छएणं कम्माणं संखेजाणि वस्ससहस्साणि । श्रंतोग्र॰ श्रावा॰ । श्रावाधू॰ कम्मिहदी कम्म॰ । मोहणीय॰ जह॰ हिदिवं॰ कोधे वे मासा, माणे मासं, मायाए पक्लं । सन्वाणं श्रंतो॰ श्रावा॰ । श्रावाधू॰ । श्रायु॰ श्रोधं । श्रधवा कोधे सत्तरणं कम्माणं पुरिसभंगो । एवरि, मोह॰ जह॰ हिदिवं॰ वेमासं । श्रंतो॰ श्रावा॰ । श्रावाधू॰ कम्मिहि॰ । माणे तिरिणक॰ जह॰ हिदिवं॰ वासपु-धत्तं॰। श्रंतो॰ श्रावा॰। [श्रावाधूणिया कम्म॰।] वेदणीय-णामा-गोदाणं जह॰ हिदिवं॰ संखेजाणि वाससदाणि । श्रंतोग्र॰ श्रावा॰ । श्रावाधू॰ । मोहणीय॰ जह॰ मासं । श्रंतो॰ श्रावाधा॰ । [श्रावाधूणिया कम्म॰ ।] वेदणीय-णामा-गोदाणं जह॰ मास-पुधत्तं । श्रंतो॰ श्रावाधा॰ । [श्रावाधूणिया कम्म॰ ।] वेदणीय-णामा-गोदाणं जह॰ वासपुधत्तं । श्रंतो॰ श्रावाधा॰ । [श्रावाधूणिया कम्म॰ ।] मोहणी॰ जह॰ पक्तं । श्रंतो॰ श्रावाध । श्रावाधू॰ ।

श्रायुकर्मका इतना कम स्थिति बन्ध नहीं होता। यहाँ पुरुषवेदमें 'श्रथवा' कहकर विकल्पान्तरकी सूचना की है सो विचारकर इस कथनका सामंजस्य विठला लेना चाहिए। दूसरे विकल्पद्वारा इसी बातकी सूचना की है। इसीसे पुरुषवेदमें वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रका जधन्य स्थितिवन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तरायका जघन्य स्थिति वन्ध संख्यात सौ वर्ष प्रमाण कहा है।

३६. क्रोध, मान और माया कपायवाले जीवोंके छह कसींका जघन्य स्थितियन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है। ग्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा होती है ग्रौर आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्म निषेक होता है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध क्रोधकषाय-चालेके दो महीना, मान कषायवालेके एक महीना श्रीर माया कपायचालेके एक पद्मप्रमाण होता है। सब कर्मी की अन्तर्सुहूर्तप्रमाण श्रावाधा होती है श्रौर श्रावाधांसे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक होता है। श्रायु कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध श्रोघके समान है। अथवा क्रोधकषायवालेके सात कर्मीका जघन्य स्थितिवन्ध पुरुष वेदवालेके समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध दो महीना है। श्रन्तर्सुहुर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर त्राबाधासे न्यून कर्म स्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। मानकषायवालेके तीन कर्मी का जघन्य स्थितिवन्ध वर्षप्रयक्तव प्रमाण है। ऋन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है श्रौर श्राबाधसे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वेदनीय. नाम श्रीर गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मु हर्राप्रमाण आबाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध एक महीना है। अन्तमु हूर्तंप्रमाण आवाधा है और श्रावाघसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनियेक है। माया कषायवालेके तीन कर्मका जघन्य स्थितिवन्घ मासपृथक्त्वप्रमाण है। अन्तर्सु हुर्तप्रमाण ग्रावाघा है श्रीर श्रावाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वेदनीय, नाम ग्रौर गोत्रकर्मका जघन्य स्थितियन्घ वर्ष-पृथक्तवप्रमाण है। श्रन्तमु हूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध पन्न प्रमाण है। श्रन्तमु हुर्तप्रमाण श्रावाघा है श्रौर श्रावाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाग कर्मनिषेक है।

विशेषार्थ— उक्त तीन कषायवाले जीवोंके सात कमों का जघन्य स्थितिवन्ध चपक-

३७. सामाइय-च्छेदोवहावण०तिष्णि कम्माणं जह० ग्रुहुत्तपुधत्तं। ग्रंतो० ग्रावा०। [त्रावाधूणि०]। वेदणीय-णामा-गोदाणं मासपुधत्तं। ग्रंतो७ त्रावा०। [त्रावाधू०।] मोह० त्रोघं। त्रायुग० जह० पितदोवमपुधत्तं। त्रंतोग्र० त्रावाधा०। [कम्मिहदी कम्म०।] सुहुमसंप० व्रणणं कम्माणं त्रोघं।

३८. उवसमस॰ चदुएएां कम्माएां जह० [वे अंतोम्रहु०] अंतो॰ आवा०। [आवाधू०।] वेदएा। जह० चडवीसं म्रहुत्तं। अंतो० आवाधा०। [आवाधू०।] एवं जहएएाओ आद्यावाध्वा । [आवाधू०।] एवं जहएएाओ अद्युच्छेदो समत्तो।

एवं अद्भच्छेदो समत्तो !

श्रे गीमें श्रीर श्रायु कर्मका मिथ्यात्व गुग्स्थानमें होता है यहाँ भी विकल्पान्तरके सम्बन्धमें वही वात जाननी चाहिए जिसका निर्देश पुरुषवेदके समय कर श्राये हैं।

३७. सामायिक श्रौर छेदोपस्थापनाग्रुद्धिसंयत जीवोंके तीन कर्मों का जघन्य स्थिति-बन्ध मुहूर्तप्रथक्तवप्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति-प्रमाण कर्मनिपेक है। वेदनीय, नाम श्रौर गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध मासपृथक्तव-प्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध, श्रावाधा श्रौर निपेक रचना श्रोधके समान है। श्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध पत्यपृथक्तवप्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। सूक्ष्मसाम्प्रराथ संयतके छह कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध, श्रावाधा श्रौर निपेक रचना श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—उक्क दोनों संयम छठवें गुणस्थानसे लेकर नौवें गुणस्थान तक होते हैं। इसलिये चपकश्रेणीके नौवें गुणस्थानमें जहाँ जिस कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध होता है वहाँ इनमें जघन्य स्थितिवन्ध जानना चाहिये। श्रायुकर्मका पल्योपमपृथक्तवप्रमाण जघन्य स्थितिवन्ध प्रमत्तसंयतके संक्लेश परिमाणोंकी प्रचुरताके होनेपर होता है। श्रोधसे छह कर्मों का जघन्य स्थितिवन्ध श्रादि चपक स्क्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें ही प्राप्त होता है। इसीसे स्क्ष्मसाम्पराय स्थितवन्ध श्रादि क्षेत्र कर्मों का जघन्य स्थितवन्ध श्रादि श्रोधके समान कहा है।

३८. उपरामसम्यग्दि जीवोंके चार कर्मों का जघन्य स्थितिबन्ध दो अन्तर्मु हूर्त प्रमाण है, अन्तर्मु हूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध चौवीस मुहूर्त है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिवन्ध सोलह मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

विशेपार्थ—उपशम सम्यग्दिष्टिके यह जघन्य स्थितिबन्ध उपशमश्रे गीमें प्राप्त होता है जो चपक श्रे गिमें प्राप्त हुए जघन्य स्थितिबन्धसे दूना होता है।

इस प्रकार जघन्य श्रद्धाच्छेद समाप्त हुशा।

सव्य-गोसव्यबंधपरूषगा

३६. यो सो सन्ववंधो [णोसन्ववंधो] णाम तस्स इमो णिहेसो—श्रोघेण श्रादे-सेण य। तत्थ श्रोघेण णाणावरणीयस्स द्विदिवंधो किं सन्ववंधो णोसन्ववंधो ? सन्व-वंधो वा णोसन्ववंधो वा। सन्वाश्रो द्विदी वंधिद त्ति सन्ववंधो । तदो [उणियं] द्विदि वंधिद त्ति णोसन्ववंधो। एवं सत्त्त्तरणं कम्माणं। एवं श्राणाहारम त्ति णेदन्वं।

उक्कस्स-ऋग्रुक्कस्सबंधपरूवग्रा

४०. यो सो उक्कस्सवंधो अणुक्कस्सवंधो णाम तस्स इमो णिदेसो—ओवेण आदे-सेण य । तत्थ ओवेण णाणावरणीयस्स हिदिवंधो किं उक्कस्सवंधो अणुक्कस्सवंधो ? उक्कस्सवंधो वा अणुक्कस्सवंधो वा । सञ्जुक्कस्सियं हिदिं वंधदि त्ति उक्कस्सवंधो ।

सर्ववन्ध नोसर्ववन्धप्ररूपणा

३९. जो सर्ववन्ध ग्रीर नोसर्ववन्ध है उसका यह निर्देश है—ग्रीघनिर्देश ग्रीर ग्रादेशनिर्देश। इनमेंसे ग्रोघकी ग्रपेक्षा ज्ञानवारणीयके स्थितवन्धका क्या सर्ववन्ध होता है या नोसर्ववन्ध होता है ? सर्ववन्ध भी होता है ग्रीर नोसर्ववन्ध भी होता है। सब स्थितियोंको वाँधता है इसिलये सर्ववन्ध होता है ग्रीर उससे न्यून स्थितियोंको वाँधता है इसिलये सर्ववन्ध होता है ग्रीर उससे न्यून स्थितियोंको वाँधता है इसिलये नोसर्ववन्ध होता है। इसी प्रकार सात कर्मों का कथन करना चाहिए। इस प्रकार ग्रनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ —यहाँ ज्ञानावरण श्रादि श्राठों कमों के स्थितिवन्धका सर्ववन्ध भी होता है श्रीर नोसर्ववन्ध भी होता है यह वतलायो है। जव विविद्यत कमेकी सब स्थितियों का वन्ध होता है तव सर्ववन्ध होता है, श्रन्थथा नोसर्ववन्ध होता है। उदाहरणार्थ — श्रोधसे ज्ञानावरणकी सब स्थितियों तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण हैं। जव इन सब स्थितियों का वन्ध होता है तव सर्ववन्ध कहलाता है श्रीर जब इससे न्यून वन्ध होता है तव नोसर्ववन्ध कहलाता है। इसी प्रकार श्रन्य सात कमोंकी श्रलग श्रलग सब स्थितियों का विचार कर सर्ववन्ध श्रीर नोसर्ववन्धका कथन करना चाहिये। मार्गणाश्रों विचार करते समय जिन मार्गणाश्रों यह श्रीध प्रकरणा घटित हो जाय वहाँ श्रोधके समान जानना चाहिये श्रीर जिन मार्गणाश्रों श्रोधकरणणा घटित हो वहाँ श्रादेशसे जहाँ जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसे ध्यानमें रखकर सर्ववन्ध श्रीर नोसर्ववन्धका विचार करना चाहिये। उदाहरणार्थ — चारों गित, पंचिन्द्रय जाति, श्रसकाय, तीन योग, तीन वेद, चार कषाय, मत्यक्षान, श्रताज्ञान, विमंगज्ञान, श्रसंयत, चजुदर्शन, श्रचजुदर्शन, रुष्णादि तीन लेश्या, भव्य, ग्रमव्य, मिथ्यात्व संज्ञी श्रीर श्राहारक इन मार्गणाश्रोंमें श्रोधके समान सर्ववन्ध श्रीर नोसर्ववन्ध होता है। तथा श्रेष मार्गणाश्रोंमें श्रादेशसे सर्ववन्ध और नोसर्ववन्ध घटित करना चाहिये।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टवन्धप्ररूपगा

४०. जो उत्कृष्टवन्ध और अनुत्कृष्टवन्ध है उसका यह निर्देश है—ग्रोघ ग्रीर ग्रादेश। ग्रोघसे ज्ञानावरणीयके स्थितिवन्धका क्या उत्कृष्टवन्ध होता है या ग्रमुत्कृष्टवन्ध ? उत्कृष्ट वन्ध भी होता है श्रीर ग्रमुत्कृष्टवन्ध भी। सवसे उत्कृष्ट स्थितिको वाँधता है इसिलए तदो ऊणियं वंधदि ति त्रणुकस्सवंधो । एवं सत्तरणं कम्माणं । एवं त्रणाहारग ति णेदव्वं ।

जहराग्-अजहराग्बन्धपरूवगा

४१. यो सो जहएएवंथो अजहएएवंथो एगम तस्स इमो िएदेसो—अधेए आदेसेए य। तत्थ ओघेए एगएवरणीयस्स हिदिवंथो किं जहएए० अजहएए० १ जहएएवंथो वा अजहएएवंथो वा। सन्वजहिएएएयं हिदि वंथमाणस्स जहएएवंथो। तदो उविर वंथमाणस्स अजहएएवंथो। एवं सत्तर्णं कम्माणं। एवं याव अणाहारग ति ऐदिवं। िएरएस आयुग॰ अजहएएवंथो। एवं सन्वअपज्जत्ताणं सत्तरणं कम्माणं अजहएएवंथो। केइ अपप्पणो [हिदिं पहुच्च परूवेंति। एवं] याव अणाहारग ति ओघं।

सादि-अगादि-धुव-अद्धुवबंधपरूवगा

४२. यो सो सादियवंधो अणादियवंधो धुववंधो अद्धुववंधो णाम तस्स इमो णिदेसो—अोघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तरणं कम्माणं उक्कस्स० अणुक्कस्स०

उत्कृप्टवन्ध होता है ग्रौर उससे न्यून स्थितिको वाँधता है इसिलये श्रमुत्कृप्टवन्ध होता है। इसी प्रकार सात कर्मोंका कथन करना चाहिये। इस एकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सबसे उत्कृष्ट स्थितिवन्धकी उत्कृष्टवन्ध संज्ञा है। जैसे, ज्ञानावरणका तीस कोड़ेकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिवन्ध होने पर अन्तिम निपेककी उत्कृष्टस्थितिवन्ध संज्ञा है और इससे न्यून स्थितिवन्ध होने पर वह अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध कहलाता है। शेष विचार सर्ववन्ध और नोसर्ववन्धके समान जानना चाहिये।

जघन्य-अजघन्यवन्धप्ररूपणा

४१. जो जघन्यवन्ध ग्रौर ग्रजघन्यवन्ध है उसका यह निर्देश है—ग्रोघ ग्रौर ग्रादेश । श्रोघसे ज्ञानावरणीयके स्थितवन्धका क्या जघन्यवन्ध होता है या ग्रजघन्यवन्ध होता है ? जघन्यवन्ध भी होता है ग्रौर ग्रजघन्य वन्ध भी होता है । सबसे जघन्य स्थितिको वाँधनेवालेके जघन्य वन्ध होता है ग्रौर इससे ग्रधिक स्थितिको वाँधनेवालेके श्रजधन्य वन्ध होता है । इसी प्रकार सात कर्मोंका कथन करना चाहिये । इस प्रकार ग्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि नारिकयों में ग्रायुकर्मका ग्रजघन्य स्थितिवन्ध होता है । इसी प्रकार सव ग्रपर्याप्तकोंके सात कर्मोंका ग्रजघन्यवन्ध होता है । कितने ही ग्राचार्य ग्रपने ग्रपने स्थितवन्धकी ग्रपेचा जघन्यवन्ध ग्रौर ग्रजघन्यवन्धका कथन करते हैं । इसी प्रकार ग्रनाहारक मार्गणा तक ग्रोघको ध्यानमें रख कर कथन करना चाहिए ।

सादि-अनादि-भ्रुव-अभ्रुववन्धपरूपणा

४२. जो सादिवन्ध ग्रनादिवन्ध, ध्रुववन्ध ग्रीर ग्रध्रुववन्ध है उसका यह निर्देश है-ग्रीघ ग्रीर ग्रादेश। उनमें से ग्रोघसे सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध, ग्रनुत्कृष्ट स्थितवन्ध

१. मूलप्रतौ श्रायुग० गोसन्वबंधो इति पाठः । े २. मूलप्रतौ कम्माणं णोसन्ववंधो इति पाठः ।

८ ३. मूलप्रतौ अपप्पणोः "" 'याव इति पाठः ।

जहराणवंधो किं सादि॰ अणादिय॰ धुव॰ अद्धुव॰ १ सादिय-अद्धुववंधो । अज-हराणवंधो किं सादि॰ ४ १ सादियवंधो वा अणादियवंधो वा धुववंधो वा अद्धुव-वंधो वा' । आयुगस्स चत्तारिं वि सा- [दिय-अद्धुववंधो । एवं अ—] चक्खुदं०-भवसि॰ । णवरि भवसि॰ धुवं णित्थ । एवं सेसाणं याव अणाहारग ति ओघेण साधूद्ग णेदन्वं ।

सामित्तपरूवगा

४३. सामित्तं दुविधं, जहएणयं उनकस्सयं च। उनकस्सेण पगदं। दुविधो णिदेसो-

श्रीर जघन्य स्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या श्रनादि है, क्या श्रुव है या क्या श्रप्नुव है ! सादि है श्रीर श्रध्नुव है । श्रन्नघन्यस्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या श्रनादि है, क्या श्रुव है या क्या श्रप्नुव है ! सादि है, श्रनादि है, श्रुव है श्रीर श्रध्नुव है । श्रायुकर्मके चारों ही सादि श्रीर श्रध्नुव होते हैं । इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक शेष सव मार्गणाश्रीमें सादिस्थितिबन्ध श्रादि श्रोधसे साध कर जानना चाहिये।

विशेषार्थ—कर्मका जो चन्ध रुककर पुनः होता है वह सादिवन्ध कहलाता है ग्रौर वन्धव्युच्छित्तिके पूर्व तक श्रनादि कालसे जिसका वन्ध होता श्रा रहा है वह श्रनादिवन्ध कहलाता है। भ्रुववन्ध श्रमन्योंके श्रीर श्रभ्रुववन्ध भन्योंके होता है। ये चारों ही उत्कृष्ट, श्रनुत्कृष्ट, जघन्य श्रीर श्रजघन्य इन चार भेदोंमें घटित करने पर सोलह प्रकारके होते हैं। श्रागे श्राठों कर्मीका श्राश्रय कर इसी विषयका खुलासा करते हैं — श्रायुके विना ज्ञानावरण श्रादि सात कर्मोंके उत्कृष्ट, स्थितिबन्ध कादाचित्क होते हैं तथा जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसलिये ये तीनों सादि और अधुवके भेदसे दो दो प्रकार के होते हैं किन्तु इस तरह अजघन्य स्थितवन्धं कादाचित्क नहीं होता, क्योंकि जघन्य स्थितिवन्धके प्राप्त होनेके पूर्वतक ग्रनादि कालसे जितना भी स्थितिबन्ध होता है वह सब ग्रजघन्य कहलाता है। तथा उपश्रम श्रेणिमें उक्क सात कर्मींकी वन्धव्युद्धित्ति होने पर पुनः उनका ग्रजधन्य स्थितिवन्ध होने लगता है इसलिए अजघन्य स्थितिवन्धमें सादि, अनादि, धुव और अधुव ये चारों विकल्प वन जाते हैं। श्रायुक्तमें उत्क्रप्ट श्रादि चारों विकल्प सादि श्रोर अध्रुव दो ही प्रकारके हैं यह स्पष्ट ही है, क्योंकि श्रायुकर्मका सव जीवोंके कादाचित्क बन्ध होता है। श्रचश्चदर्शन श्रीर भव्य मार्गणा एक तो कादाचित्क नहीं हैं श्रौर दूसरे ये क्रमसे ज्ञीणमोह श्रौर श्रयोगिकेवली होने तक रहती हैं, इसलिये इनमें सादि श्रादि प्ररूपणा पूर्ववत् वन जाती है, इसलिये इन मार्गणात्रोंमें उक्त प्ररूपणा पूर्ववत् कही है। केवल भन्य मार्गणामें भ्रुवविकल्प नहीं होता। कारण स्पष्ट है। शेष संव मार्गशाश्रोंमें ये उत्कृष्ट स्थितिवन्ध ग्रादि चारों सादि और श्रधुव ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि श्रन्य सब मार्गणाएँ यथासम्भव बदलती रहती हैं या सादि हैं इसलिए उनमें अनादि और ध्रुव ये विकल्प नहीं वनते। यद्यपि अभव्य मार्गणा भ्रुव है फिर भी उसमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रादिके श्रनादि श्रीर भ्रुव न होनेसे सादि श्रीर श्रिध्रुव ये दो ही विकल्प घटित होते हैं।

स्वामित्वप्ररूप्णा

५३. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य श्रौर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश

१. गो० क०, गा० १५२। २. मूलप्रतौ चत्तारि वि सो चक्खुदं इति पाठः ।

श्रोघेण श्रादेसेण य। तत्थ श्रोघेण सत्तरणं कम्माणं उक्कस्सिट्टिवंघो कस्स होदि ? श्रिण्णदरस्स पंचिदियस्स सिण्णस्स मिच्छादिहिस्सं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तन्त्र स्तर्म सागारजागारस्रदोवज्जत्तस्स उक्किस्सियाए हिदीए उक्किस्सिटिद्संकिलेसेण वहमाणयस्स श्रथवा ईसिमिज्भिमपरिणामस्स वा। श्रायुगस्स उक्किस्सिश्रो हिदिवंघो कस्स होदि ? श्रिण्णदरस्स मणुसस्स वा पंचिदियतिरिक्लजोणिणीयस्स वा सिण्णस्स सम्मादिहिस्स मिच्छादिहिस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागारस्रदोवज्जत्तस्स तप्पाश्रोग्गविसुद्धस्स वा तप्पाश्रोग्गसंकिलिहस्स वा उक्किसियाए श्रावाधाए उक्कस्सगे हिदिवंघे वहमाण्यस्स।

४४. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएस सत्तरणं कम्माणं उनकस्सओ हिदिवंधो कस्स होदि ? अएणदरस्स नि मिच्छादिहिस्स सागारजागारस्दोवजुत्तस्स उनकस्सियाए हिदीए उनकस्सए हिदिसंकिलेसे वहमाणस्स अधवा ईसिमज्भिमपरिणामस्स । आयुगस्स उक्क हिदि कस्स ? अएणदरस्स सम्मादिहिस्स वा मिच्छादिहिस्स वा सागारजागार विख्यादिहिस्स उनकस्सियाए आवाधाए उनकस्सिए हिदिवंधे वहमाणस्स । एवं सन्त्रासु पुढवीसु । एवरि सत्तमाए पुढवीए आयु० मिच्छादिहिस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स ।

दो प्रकारका है—ग्रोघ ग्रीर ग्रादेश। उनमेंसे ग्रोघकी ग्रपेक्षा सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थिति-वन्धका स्वामी कौन है ? जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, उत्कृप्ट स्थितिवन्धके साथ उत्कृप्टस्थितिवन्धके योग्य संक्लेश परिणामवाला है ग्रथवा ईषत् मध्यम परिणामवाला है ऐसा कोई एक संश्ली पंचेन्द्रिय मिथ्यादिष्ट जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्ध-का स्वामी है। ग्रायुक्तमंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो संश्ली है, सम्यग्दिष्ट या मिथ्यादिष्ट है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्त्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला है या तत्त्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और उत्कृप्ट ग्रावाधाके साथ उत्कृप्ट स्थितिवन्ध कर रहा है ऐसा कोई एक मनुष्य या पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च योनिवाला जीव ग्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामो है।

विशेषार्थ—यहां श्रोघसे श्राठों कमोंके उत्हिए स्थितिवन्धके स्वामीका निर्देश किया गया है। विशेष वक्षव्य इतना ही है कि तेतीस सागर प्रमाण नरकायुका उत्हिए स्थिति-वन्ध मूलमें दिये गये विशेषणोंसे युक्त मनुष्य श्रीर तिर्यंच दोनोंके होता है किन्तु तेतीस सागरप्रमाण उत्हिष्ट देवायुका वन्ध मात्र मनुष्यके ही होता है।

४४. त्रादेशकी अपेचा नरकगितमें नारिकयों में सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादि है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, उत्कृष्ट स्थितवन्धके साथ उत्कृष्टस्थितवन्धके योग्य संक्लेश परिगामवाला है या ईषत् मध्यम परिगामवाला है ऐसा कोई एक नारिक सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ?जो सम्यग्दिष्ट है या मिथ्यादि है, साकार और जागृत उपयोगवाला होकर भी विशुद्ध परिगामवाला है और उत्कृष्ट आवाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितवन्ध कर रहा है ऐसा कोई एक नारिक आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सातों पृथिवियों में जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मिथ्यादिष्ट तत्प्रायोग्य विशुद्ध

१. गो० क०, गा० १३४।

४५. तिरिक्तेसु सत्तरणं कम्माणं त्रोघं। त्रायुगस्स मिच्छादिहिस्स तप्पात्रोग्ग-संकितिहस्स। एवं पंचिदियतिरिक्तः ३। पंचिदियतिरिक्तः प्रपणं कम्माणं उक्कः हिदिः कस्स ? त्र्रणादरस्स सिएणस्स सागारजागारसुदोवज्ञत्तस्स तप्पात्रोग्गउक्किस्सयाए हिदीए उक्कस्सए हिदिसंकित्तेसे वद्दमाणस्स। त्रायुगस्स उक्कः हिदिः कस्सः ? त्र्रणादः सिएणस्स वा त्रागारजागारसुदो-वज्जदस्स तप्पात्रोग्गविसुद्धस्स उक्कः त्रावाधाए उक्किस्सए हिदिवंधे वद्दमाणस्स।

४६. मणुस०४-पंचिदिय०२-तस० २-पंचमण०-पंचवचि०-'कायजोगि-श्रोरालि-यका०-कोधादि०४-मदि०--मुद०--विभंग०-श्रसंज०--चक्खुदं०--श्रचक्खुदं०--भवसि०-श्रभवसि०-भिच्छादिहि-सिण्ण-श्राहारग त्ति श्रोधभंगो । एवरि संजमविरहिदाणं तप्पाश्रोग्गविसुद्धो त्ति ए भाणिद्व्वं । श्रायुगस्स मणुसश्रपज्ज०-पंचिदिय-तसश्रप-

परिणामवाला नारकी जीव श्रायु कर्मके उत्क्रप्ट स्थितवन्धका स्वामी होता है।

विशेषार्थ—नरकमें त्रायुक्तमेका उत्कृप्ट स्थितवन्ध पूर्वकोटि प्रमाण होता है। तथा प्रारम्भके छह नरकोंमें सम्यग्दि ग्रीर मिथ्यादि दोनों प्रकारके नारिकयोंके यह स्थिति-वन्ध सम्भव है किन्तु सातवें नरकमें यह स्थितिवन्ध मिथ्यादि हो होता है। यह उक्ष कथनका तात्पर्य है। शेप कथन सुगम है।

४४. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितवन्घके स्वामीका कथन श्रोघके समान है। श्रायु कर्मके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला तिर्यञ्च होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिक उत्कृप्ट स्थितवन्धके स्वामी होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंमें सात कर्मों के उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है? जो संबी है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य उत्कृप्ट स्थितवन्धके साथ उत्कृप्ट स्थितवन्धके योग्य संक्षेशपरिणामवाला है ऐसा कोई एक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्त जीव सात कर्मों के उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी है। श्राय्कर्मके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है श्रो संबी है, या श्रसंबी है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला है श्रोर उत्कृप्ट श्रावाधाके साथ उत्कृप्ट स्थितवन्ध कर रहा है ऐसा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्त जीव श्रायुक्तमंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—संज्ञी या ग्रसंज्ञी दोनों प्रकारके पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्त जीव उनके योग्य पूर्वकोटि प्रमाण उत्क्रप्ट श्रायुका वन्ध करते हैं इसिलये श्रायुकर्मके उत्क्रप्ट स्थिति-वन्धका स्वामी दोनोंको वतलाया है। शेष कथन सुगम है।

४६. मनुष्य चतुष्क, पञ्चेन्द्रयद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, त्रौदारिक काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, विभङ्ग-क्षानी, त्रसंयत, चलुदर्शनी, त्रचलुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, त्रभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी श्रीर श्राहारक जोवोंके सव कर्मों के उत्कृष्ट स्थितवन्धके स्वामित्वका कथन श्रोधके समान करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें जो मार्गणाएँ संयम रहित हैं उनमें तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामचाला जीव श्रायु कर्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी होता है यह नहीं कहना चाहिये। तथा मनुष्य अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त श्रीर त्रस श्रपर्याप्त मार्गणाश्रोमें

१. मूलप्रतौ काजोगि इति पाठः।

ज्जत्ता॰ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

४७. देवाणं णिरयभंगो याव सहस्सार ति । श्राणद याव उविरमगेवज्ञा ति सत्तरणं कम्माणं उनक विदि कस्स ? श्राण्यद मिच्छादिहिस्स सागारजागार विष्णाश्रोग्गसंकिलिहस्स । श्रायु वेवभंगो । श्रणुदिस जाव सन्वह विस्तारणं कम्माणं उनक हिदि कस्स ? श्राण्यदरस्स तप्पाश्रोग्गसंकिलिहस्स । श्रायु [उनक हिदि कस्स । श्राणु विस्तु क्सा विस्तु क्

श्रायुक्तर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तके समान जानना चाहिये।

विशेपार्थ - पहले स्रोघ प्ररूपणामें स्रायु कर्मके उत्कृप्ट स्थित वन्धके स्वामीका कथन करते समय यह कह श्राये हैं कि जो संज्ञी हैं, सम्यग्दिए या मिथ्यादिए है, सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला या तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है श्रीर उत्कृष्ट श्रावाधासे युक्त होकर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है ऐसा मनुष्य या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिवाला जीव श्रायुकर्मके उत्कृप्ट स्थिति-वन्धका स्वामी होता है। सो यह कथन अविकल रूपसे यहाँ कही गईं सभी मार्गणाओं में घटित होता है क्या यह एक प्रश्न है जिसका समाधान करते हुए यहाँ मूलमें कहा गया है कि जो मार्गणाएँ संयम रहित हैं उनमें यह कथन श्रविकलरूपसे घटित नहीं होता. क्योंकि संयम रहित मार्गणात्रोंमें त्रायुकर्मका तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितवन्ध विद्युद्ध परिगामवालेके न होकर तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिगामवालेके ही होता है। वे मार्गगाएँ ये हैं—मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, ग्रसंयत, ग्रभव्य ग्रौर मिथ्यादिए। ऐसा नियम है कि मनुष्यायु, देवायु श्रीर तिर्यञ्चायुके सिवा शेष रहीं ११७ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवालोंके या तत्प्रायोग्य ईषत् मध्यम परिणामवालोंके ही होता है। इस नियमके श्रनुसार नरकायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध विशुद्ध परिणामवालेके नहीं हो सकता और इम मार्गणाओं में त्रायका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नरकायुका ही होता है, क्योंकि इन मार्गणात्रोंमें संयमकी प्राप्ति सम्मव न होनेसे देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं हो सकता। इसीलिये इन मार्गणात्रोंका वारण करनेके लिये मूलमें उक्र कथन किया है। शेषु कथन सुगम है। किन्तु मनुष्य श्रपर्याप्त जीव भी संही ही होते हैं, इसिलये इनमें श्रायु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका कथन करते समय असंबी विशेषण लगाना चाहिये।

४७. देवोंमें सहस्रार कल्पतक ग्राटों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी नारिकयोंके समान है। ग्रानत कल्पसे लेकर उपिरम ग्रैवेयकतकके देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ! मिथ्यादृष्टि साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त ग्रौर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला कोई भी देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। यहाँ ग्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका कथन सामान्य देवोंके समान है। ग्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका कथन सामान्य देवोंके समान है। ग्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके देवोंमें सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ! तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला ग्रन्यतर देव सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। ग्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ! जो साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रावाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

४८. एइंदिएसु सत्ताणं कम्भाणं उनक विदि कस्स ? अएणदर वादरस्स सन्वाहि पञ्जत्तीहि पञ्जत्तगस्स सागारजागार तप्पाओग्गसंकि लिहस्स । आयु उनक हिदि कस्स ? अएणद तप्पाओग्गविसुद्धस्स । एवं एइंदियवादरसुहुमपञ्जत्ता-पज्जत्त-वीइंदि -तेइंदि -चहुरिंदि । पज्जत्तापज्जत्त सन्वपुढवि -आउ -तेउ - वाउ - वण-प्कित्-पत्तेय - िणयोद - वादर -सुहुमपज्जत्तापज्जत्त । एवरि पज्जत्तए पञ्जत्तगहणं कादन्वं । अपज्जत्तए अपज्जत्तगहणं कादन्वं ।

४६. श्रोरालियका॰ सत्ताएं कम्माएं श्रोघं। एवरि दुगदियस्स। श्रायु॰श्रोघं। श्रोरालियमिस्से सत्ताएं कम्माएं उनक॰ दिदि॰ कस्स॰ १ श्राएपद॰ दुगदियस्स मिच्छादिहिस्स सिएएस्स तप्पाश्रोग्गसंकिले॰ से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि ति तप्पाश्रोग्ग॰ उनक॰ संकिलेसे वद्दमाएगस्स। श्रायु॰ उनक॰ दिदि॰ कस्स १

विशेषार्थ—यहाँ देवोंमें आठों कमींके उत्कृष्ट स्थितवन्धके स्वामीका कथन करते समय तीन विभाग कर दिये हैं—पहला सहस्रार स्वर्ग तकका, दूसरा नौ ग्रेवेयकतकका ग्रोर तीसरा सर्वार्थसिद्धि तकका। नौ ग्रेवेयक तक मिथ्यादि ग्रीर सम्यग्दि दोनों होते हैं तथा सहस्रार कल्पतक सात कमींका उत्कृष्ट स्थितवन्ध ग्रोघके समान वन जाता है, इसलिए ये विभाग किये गये हैं। बाकीकी सव विशेषताएँ ग्राठों कमोंके उत्कृष्ट स्थितवन्ध ग्रद्धाच्छेदको देखकर समक्ष लेनी चाहिए।

४८. एकेन्द्रियोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो वादर है, सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश-परिणामवाला है ऐसा अन्यतर एकेन्द्रिय जीव सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। आयुक्मेंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। आयुक्मेंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय जीव आयुक्मेंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय वादर और सुदम तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा झीन्द्रिय, जीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्रिकायिक, सब वायुकायिक, सव वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा निगोद जीवोंके और इनके वादर और सुक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिय। इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोंका कथन करते समय 'पर्याप्त' पदका ब्रह्मण करना चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादि इन मार्गणाश्रोंमें सब कर्मीका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रद्धाच्छेद पहले कह श्राये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहाँ उत्कृष्ट स्थितवन्धके स्वामीका विचार कर लेना चाहिये। यहाँ केवल इतना हो वतलाया गया है कि विवित्तत मार्गणामें किस योग्यताके होनेपर उत्कृष्ट स्थितवन्ध होता है।

४९. श्रौदारिकाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धके स्वामीका कथन श्रोधके समान-है। इतनी विशेषता है कि यह दो गितके जीवोंके होता है। श्रायुक्रमेंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी श्रोधके समान है। श्रौदारिक मिश्रकाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादिष्ट है, संश्ली है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम-वाला है, तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होनेवाला है श्रीर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशक्षप परिणामोंसे युक्त है ऐसा श्रन्थतर दो गितका जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थिति-

त्रपणदः तप्पात्रोग्गविद्युदः उक्कः । वेउव्वियः सत्तपणं कम्माणं उक्कः हिदिः कस्स ? त्रपणदः देवस्स वा णेरइगस्स उक्कस्ससंकिलिद्दः । त्रायुः उक्कः हिदिः कस्स ? त्रपणदः सम्मादिहिः मिच्छादिहिः तप्पात्रोग्गविद्युद्धस्स । वेउव्वियमिः सत्तपणं कम्माणं उक्कः हिदिः कस्स ? त्रपणदः देवस्स वा णेर्इयस्स वा मिच्छादिहिस्स से काले सरीरपञ्जती गाहिदि ति । त्राहारकाः सत्तपणं कम्माणं उक्कः हिदिः कस्स ? त्रपणदः पमत्तसंजदस्स तप्पात्रोग्गसंकिलि-द्दस्स । त्रायुः [उक्कः हिदिः कस्स ? त्रपणदः] तप्पात्रोग्गविद्युद्धस्स । एवं त्राहारमिः। णविर से काले पञ्जती गाहिदि ति भाणिदः वं। कम्मइः सत्तपणं कम्माणं उक्कः हिदिः कस्स ? त्रपणदः चढुगदियस्स पंचिदियस्स सिण्यस्स मिच्छा-दिहिस्स सागारजागार-तप्पात्रोग्ग-उक्कस्ससंकिलहस्स ।

५०. इत्थि०-पुरिस० सत्तरणं कम्माणं उक्क० हिदि० कस्स ? तिगदियस्स संकितिहरस मिच्छादिङ्घि० सागारजागार० उक्क०संकि०। आयु० ओघं। एवं रावुं-सगवेदे। अवगदवे० सत्तरणं कम्मा० उक्क० हिदि० कस्स० ? अरणद० उवसम-

वन्धका स्वामी है। श्रायुकर्मके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? तत्रायोग्य उत्कृप्ट विशुद्धिसे युक्त प्रन्यतर जीव त्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। वैक्रियिककाय-योगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामींसे युक्क ग्रन्यतर देव या नारकी जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । ग्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला श्रन्यतर सम्यग्दिष्ट या मिश्यादृष्टि वैक्रियिककाययोगी जीव श्रायु कर्मके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी है। वैकियिकमिश्रकाययोगमें सात कर्मीके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो देव या नारकी ग्रनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा ऐसा अन्यतर वैक्रियिकमिश्रकाय-योगी जीव सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। श्राहारक काययोगमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रन्यतर प्रमत्त-संयत जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रायु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध का स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। ग्राहारकिमश्रकाययोगमें इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि तदनन्तर समयमें पर्याप्तिको प्राप्त होगा ऐसी स्थितिमें इसके उत्क्रष्ट स्वामित्व कहना चाहिये। कार्मणुकाययोगमें सात कर्मीके उत्क्रप्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो चार गतिका जीव पञ्चेन्द्रिय है, संश्री है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिगामवाला है ऐसा अन्यतर कार्मग् काययोगी जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

४०. स्त्रीवेदवाले श्रौर पुरुषवेदवाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो तीन गतिका जीव संक्लिप्ट परिणामवाला है, मिथ्यादिष्ट है श्रौर साकार जागृत उपयोगसे उपयुक्त है वह सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी है। श्रायुक्तमेंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी श्रोधके समान है। इसी प्रकार नपुंसकवेदमें जानना चाहिये। श्रिपगतवेदवाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? उपशम श्रेणिसे पतित होनेवाला जो श्रन्थतर श्रिनवृत्ति उपशमक जीव तदनन्तर समयमें सवेदी होगा

गस्स परिवद्माणस्स अणियद्दिस्स से काले सवेदो होहिदि ति चरिमे उनक हिदिवंधे

पृशे. श्राभि०-सुद् ०-श्रोधि० सत्ताणं कम्माणं उक्क० हिदि० कस्स ? श्राण् चढुगद्यस्स श्रसंजद्सं० मिच्छत्ताभिमुहस्स चरिमे उक्कस्सए हिदिवंधे वह-माणस्स । श्रायु० उक्क० हिदि० कस्स ? पमत्तसंज० तप्पाश्रोग्गविसुद्धस्स । एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-वेदगसं० । मणपज्जव० सत्ताणं कम्माणं उक्क० हिदि० पमत्त-संजदस्स तप्पाश्रोग्गसंकिलिष्ठस्स श्रसंजमाथिमुहस्स चरिमे उक्क० हिदि० वहमा० । श्रायु० श्रोधिमंगो । एवं संजदा-सामाइ०-छेदोव० । एवरि मिच्छत्ताभिमुहस्स ।

५२. परिहार॰ सत्ताएणं कम्माणं उक्क॰ हिदि॰ पमत्तसंजदस्स सामाइय-च्छेदोवहावणाभिग्रहस्स । आयु॰ पमत्तसंजदस्स तप्पाओग्गविग्रद्धस्स । ग्रुहुमसंप॰ इस प्रकार जो श्रन्तिम उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है ऐसा श्रपगतवेदी जीव सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

विशेपार्थ—नारकी नपुंसक होते हैं ग्रतः यहां स्त्रीवेद ग्रीर पुरुपवेदमें सात कमेंकि उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामित्व नरक गतिके सिवा ग्रन्य तीन गतियोंके जीवोंके कहना चाहिए। नपुंसकवेदकी ग्रपेचा देवगतिके स्थानमें नरकगतिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि देव नपुंसक नहीं होते। शेष कथन सुगम है।

४१. श्रामिनिवोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रविधि शानी जीवों में सात कमें के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो श्रन्यतर चतुर्गितका श्रसंयतसम्यग्दिष्ट जीव मिथ्यात्वके श्रमिमुख है और श्रन्तिम उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें विद्यमान है वह सात कमें के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्श्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला प्रमत्तसंयत जीव श्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । इसी प्रकार श्रविध्वर्शनी, सम्यग्दिष्ट श्रीर वेदकसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए । मनःपर्यथक्षानी जीवोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य संक्षेश्यपरिणामवाला है, श्रसंयमके श्रमिमुख है श्रीर श्रन्तिम उत्कृष्ट स्थितवन्धमें श्रवस्थित है वह मनःपर्यथक्षानी जीव सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । श्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी श्रवधिक्षानीके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिक संयत श्रीर छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेपता है कि इनमें मिथ्यात्वके श्रमिमुख हुए जीवके सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामित्व कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सात कर्मीका उत्कृप्ट स्थितवन्घ संक्लेशपरिगाममें होता है इसिलये उक्त मार्गणात्रोंमें जिस मार्गणासे जहां के लिये पतन सम्भव है उसके सन्मुख हुए जीवके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामित्व कहा है। पर इन मार्गणात्रोंमें त्रायुकर्मका उत्कृप्ट स्थितवन्ध विशुद्ध परिणामोंसे होता है, इसिलये उत्कृप्ट त्रायुवन्धके योग्य जहां विशुद्ध परिणाम सम्भव हैं उसे ध्यानमें रख कर सब मार्गणात्रोंमें त्रायुकर्मके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी कहा है।

४२. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सात कमोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव सामायिक और छेदोपस्थापना संयमके ग्रिभमुख है वह परिहारविशुद्धि संयत सात कमोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रायुक्तमंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह परिहारविशुद्धि-

छएएं कम्माएं उक्क॰ हिदि॰ उवसामगस्स । संजदासंजद॰ सत्तएएं कम्माएं उक्क॰ हिदि॰ दुगदियस्स मिच्छत्ताभिग्रहस्स । श्रायु॰ तप्पात्रोग्गविग्रद्धस्स ।

- ५३. किएणाए सत्तएणं कम्माणं उनक० हिंदि० कस्स ? तिरिनलस्स सिएणस्स मिच्छादिहिस्स सन्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागार० उनकस्स-संकिलिहस्स । आयु० उनक० हिदि० तिरिन्त्वस्स वा मणुसस्स वा सिएणस्स पज्जत्तस्स तप्पाओग्गसंकिलिहस्स । णील-काऊणं सत्तएणं कम्माणं उनक० हिदि० कस्स० ? अएण० णेरइगस्स । आयु० किएणभंगो । तेउले० सत्तएणं कम्माणं उनक० हिदि० कस्स ? अएणद० सोधम्मीसाणंतदेवस्स । आयु० आधिभंगो । पम्माए सत्तएणं कम्माणं उनक० हिदि० कस्स ? अएण० सहस्सारंतस्स मिच्छादिहि० । आयु० तेउले०भंगो । सुनकाए सत्तएणं क० उनक० हिदि० कस्स ? अएण० आणद०—देवस्स मिच्छादिहिस्स तप्पाओग्गसंकिलिहस्स । आयु० पमत्तस्स० ।
- ५४. खइगस॰ सत्तराणं क॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स १ अएरा॰ चदुगदियस्स असंजदसम्मादिद्विस्स तप्पात्रोग्गसंकित्तिद्वस्स। आयु॰ पमत्तसंज॰। उपसमसम्मा॰

संयत जीव श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। स्क्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी उपशामक होता है। संयतासंयतोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी मिथ्यात्वके श्रिभमुख हुश्रा दो गतिका जीव होता है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य विश्वद्ध परिणामवाला संयतासंयत जीव होता है।

५३. कृष्णुलेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो तिर्यंचगतिका जीव संशी है, मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत उपयोगसे उपयुक्त है श्रौर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है वह सात कर्मीके उत्कृष्ट स्थिति वन्धका स्वामी है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो तिर्यंच या मनुष्य संज्ञी है, पर्याप्त है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह आयुकर्मके उत्क्रप्ट स्थिति-वन्धका स्वामी है। नील श्रीर कापोतछेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? कोई एक नारकी सात कमींके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। त्रायुकर्मके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका स्वामी कृष्णुलेश्याके समान है। पीतलेश्यामें स्रात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? कोइ एक सौधर्म श्रीर ऐशान कल्पतकका देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी श्रविधिक्षानीके समान है। पद्मिलेश्यामें सात कर्मीके उत्कृप्ट स्थितिवन्ध का स्वामी कौन है ? अन्यतर सहस्रार कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव सात कर्मीके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। त्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी पीतलेश्याके समान है। शुक्ल लेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर श्रानत कल्पका मिथ्यदृष्टि और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा प्रमत्तसंयत जीव श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है।

५४. ज्ञायिकसम्यग्दिष्योंमें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव श्रसंयतसम्यग्दिष्ट है श्रीर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। श्रायुक्मके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका स्वामी

सत्तरणं कम्माणं उनकः हिदिः कस्स ? अएणः असंजदसंम्माः तप्पाश्रोग्ग-उनकस्ससंकिलिङ्कस्स मिच्छत्ताभिग्रहस्स । सासणे सत्तरणं कम्माणं उनकः हिदिः कस्स ? अएणः चतुगदियस्स सन्वसंकिलिङ्कस्स मिच्छत्ताभिग्रहस्स । आयुः उनकः हिदिः कस्स ? अएणदः मणुसस्स तप्पाश्रोग्गविग्रद्धस्स । सम्मामिः सत्तरणं कम्माणं उनकः हिदिः कस्सः ? अएणदः चतुगदियस्स उनकस्ससंकिलिङ्कस्स मिच्छत्ताभिग्रहस्स ।

५५. श्रसिएए०। सत्तएएं कम्माएं उनक० हिदि० कस्स ? श्रएएद० पंचि-दियपज्जत्तस्स सन्वसंकिलहस्स । श्रायु० उनक० हिदि० कस्स ? तप्पाश्रोग्गसंकिलि-हस्स । श्रणाहार० कम्मइगभंगो । एवं उकस्ससामित्तं समत्तं ।

५६. जहएणगे पगदं । दुविधो णिहेसो—श्रोवेण श्रादेसेण य । तत्थ श्रोवेण छएणं कम्माणं जहएणश्रो ड्विदिवंधो कस्स होदि ? श्रएणदरस्स खवगस्स सुहुमसं-पराइगस्स चरिमे ड्विदिवंधे वद्टमाणस्स । मोह० जह० द्विदि० कस्स ? श्रएणद०

कौन है ? प्रमत्तसंयत जोव आयुक्तमें उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । उपराम सम्यग्दिए-योंमें सात कमींके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो ग्रन्यतर असंयतसम्यग्दिए तत्प्रायोग्य उत्ह्रप्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके ग्रिममुख है वह सात कमींके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । सासादन सम्यग्दिएयोंमें सात कमींके उत्ह्रप्टस्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो ग्रन्यतर चार गतिका जीव सबसे ग्रिधक संक्लेश परिणामवाला है ग्रीर मिथ्यात्वके ग्रिममुख है वह सात कमींके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । ग्रायुक्तमेंके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो ग्रन्यतर ममुष्य तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह ग्रायुक्तमेंके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । सम्यग्मिथ्यादिएयोंमें सात कमींके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो ग्रन्यतर चार गतिका जीव उत्ह्रप्ट संक्लेश परिणाम-वाला है और मिथ्यात्वके ग्रिममुख है वह सात कमींके उत्ह्रप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है ।

४४. असंशियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर पञ्चेन्द्रिय जीव पर्याप्त है और सबसे अधिक संक्लेश परिणामवाला है वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला असंशी जीव है वह आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। अनुहारकोंमें सव कथन कार्मण काययोगियोंके समान है।

विशेपार्थ— ग्रसंक्षी जीव मरकर भवनवासी ग्रीर व्यन्तर देव भी होते हैं ग्रीर प्रथम नरकमें भी जाते हैं। यहां ग्रसंक्षियोंके ग्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे ही कराया है। इससे विदित होता है कि ग्रसंक्षियोंके देवायुकी ग्रपेक्षा नरकायुका स्थितिबन्ध ग्रधिक होता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

५६. श्रव जघन्य स्वामीका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। उनमें श्रोघकी श्रपेत्ता छह कमें के जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है? जो श्रन्यतर सहमसाम्परायिक त्रपक जीव श्रन्तिम स्थितवन्धमें श्रवस्थित है वह छह कमें के जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है। मोहनीयके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है? जो श्रन्यतर श्रितवन्धका स्थामी कौन है? जो श्रन्यतर श्रितवन्धका अपक जीव श्रिन्तिम जघन्य स्थितवन्धमें श्रवस्थित है वह मोहनीयके जघन्य

खवगत्रशियहिस्स चिरमें जह॰ वहमाणस्स । श्रायु॰ जह॰ हिदि॰ कस्स १ श्रणण्द॰ तिरिक्षस्स वा मणुस्सस्स वा एइंदि॰ वेइंदि॰ तेइंदि॰ पंचिदियस्स वा सिण्ण॰ श्रसिण्णं बादर॰ सुहुम॰ पज्जत्तस्स वा श्रपज्जत्तस्स वा सागार्जागर॰ तप्पाश्रोगासंकिलिहस्स जहिएणयाए श्रावाधाए जहएणए हिदिबंधे वहमाण्यस्स । एवं मणुस॰ ३-पंचिदिय-तस॰ २-पंचमण्ण॰ पंचविचि॰ कायजोगि-श्रोरालियका॰ श्रवगद॰ लोभक॰ श्रामि॰ सुद० श्रोधि॰ मण्पपज्जव॰ संजद॰ चक्खुदं॰ श्रवक्खुदं॰ श्रोधिदं॰ सुक्ले॰ भवसि॰ सम्मादिहि सहग॰ सिण्ण-श्राहारग ि । णवरि श्रायु॰ विसेसो जाणिद्व्वो। श्रवगद॰ श्रायुगं णिथा। श्रामि॰ सुद० श्रोधि॰ श्रोधिदं॰ सम्मादि० - सहग॰ श्रायु॰ जह॰ हिदि॰ कस्स १ श्रण्णद॰ देवस्स वा णेरइयस्स वा तप्पाश्रोग्गसंकिलि॰ जहिण्णयाए श्रावाधाए जह॰ हिदि॰ वहमाणगस्स । मण्पज्जव॰ संजद॰ श्रायु॰ जह॰ हिदि॰ कस्स १ श्रण्णद॰ पेमत्तसंज॰ तप्पाश्रोग्गसंकिलिहस्स । सुक्काए श्रायु॰ जह॰ हिदि॰ कस्स १ श्रण्णद॰ देवस्स मिच्छादि॰ तप्पाश्रोग्गसंकि॰ जह॰ श्रावाधा॰ जह॰ हिदि॰ वहमाणस्स । सेसाणं श्रोधभंगो।

स्थितवन्धका स्वामी है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो श्रन्यतर तिर्यंच, मनुष्य, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, संबी, श्रसंबी, बादर सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त जो भी हो, साकार जागृत है, तत्वायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आवाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह आयु-कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रस-द्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, ग्रौदारिककाययोगी, ग्रपगतवेदी, लोभकषायी, ग्राभिनिबोधिकहानी, श्रुतहानी, ग्रवधिहानी, मनःपर्ययहानी, चक्षुदर्शनी, ग्रचक्षुदर्शनी, ग्रवधिदर्शनी, ग्रुक्कलेश्यावाले, भन्यसिद्धिक, सम्यग्दिए, ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट, संज्ञी श्रौर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु श्रायुके सम्यन्धमें कुछ विशेषता है। यथा—ग्रपगतवेदी जीवके ग्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। ग्रामिनि-वोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दिष्ट श्रौर ज्ञायिकसम्यग्दिष्ट जीवोंमें श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव या नारकी जो तत्त्रायोग्य संक्लेश परिगामवाला है और जघन्य आवाधाके साथ जघन्य स्थितिका वन्ध कर रहा है वह श्रायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। मनःपर्ययक्षानी श्रीर संयत जीवोंमें त्रायु कर्मके जघन्य स्थितियन्धका स्वामो कौन है ? त्रान्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। शुक्ललेश्यामें श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव जो मिथ्या-दृष्टि है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है श्रीर जघन्य श्राबाधाके साथ जघन्य स्थितिका बन्ध कर रहा है वह त्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। शेष मार्गणात्रोंमें त्रायु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी श्रोघके समान है।

. विशेषार्थ—यहाँ श्रोघसे श्राठों कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धके स्वामीका विचार किया गया है। सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध चपक श्रेणिमें जहाँ जिस कर्मकी बन्धन्युच्छित्ति ५७. त्रादेसेण णिरयगईए णेरइएस उक्क॰ कम्म॰ हिदि॰ कस्स १ त्र्रणादं असिएणपंचिंदि॰ सागारजागा॰ सन्विवसुद्धस्स पढम-विदियस॰ वृद्दमाणः । त्र्रायु॰ जह॰ हिदि॰ कस्स १ त्र्रणणः मिच्छादि॰ तप्पात्रो॰ जह॰ सं॰ जह॰ त्र्रावा॰ जह॰हिदि॰ वृह॰। एवं पढमाए मग्रुसत्रप्रजत्त-देवा-भवणः —वाणवें॰। विदियाए याव सत्तमाए सत्ताणं कम्माणं जह॰ हिदि॰ कस्स १ त्र्रणणः असं-जद॰ सन्विवसुद्धस्स । त्रायु॰ पढमपुढविभंगो। एवं जोदिसिय याव सन्वह ति । एवरि त्र्रणुदिस याव सन्वह ति त्र्रायुगः सम्मादिहि॰।

होती है वहाँ होता है। इस हिसाव से छह कमोंका जयन्य स्थितवन्य चपक सूक्ष्मसाम्पर्म श्रायके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है और मोहनीयका चपक अनिवृत्तिकरण्में, क्यों कि स्क्ष्म साम्परायमें मोहनीय कर्मका वन्ध नहीं होता। तथा आयु कर्मका जयन्य स्थितवन्ध सब प्रकारके मनुष्य और तिर्थेचोंके होता है, क्योंकि इन सबके आसंचेपाद्धाकाल प्रमाण आयुकर्मके वन्ध होनेमें कोई वाधा नहीं आती। यहाँ अन्य वे मार्गणाएँ गिनाई हैं जिनमें चपक श्रेणीकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यह ओध प्रक्षपणा वन जाती है। मात्र इन सब मार्गणाओंमें ओधके समान आयुकर्मका जयन्य स्थितिबन्ध नहीं प्राप्त होता, क्यों कि इनमेंसे आभिनिवोधिक आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें मिथ्यात्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं और शक्रिक्यामें मिथ्यात्वकी प्राप्ति भी हो गई तो वहाँ परिणामोंकी इतनी उज्वलता रहती है जिससे वहाँ आयुका आसंचेपाद्धा काल प्रमाण वन्ध नहीं होता। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें आयु कर्मके जयन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है इस वातका अलगसे निर्देश किया है।

५७. श्रादेशसे नरकगितमें नारिकयोंमें सात कमोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर जो श्रसंक्षी पञ्चेन्द्रियचर जीव साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है श्रीर प्रथम द्वितीय समयमें स्थित है वह सात कमोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है। श्रायुक्रमें जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर जो मिथ्यादृष्टि तत्प्रायोग्य जघन्य संक्रेश परिणामवाला है श्रीर जघन्य श्रावाधाके साथ जघन्य स्थितिका घन्ध कर रहा है वह श्रायु कर्मके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें, मनुष्य श्रपर्याप्त सामान्य देव, भवनवासी श्रीर व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकयोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रसंयतसम्यग्दृष्टि सर्व विशुद्ध परिणामवाला जीव सात कर्मोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है। श्रायु कर्मके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी पहली पृथिवीके समान है। इसी प्रकार ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि श्रनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि श्रनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सम्यग्दृष्टि जीव श्रायु कर्मके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—नरकमें ग्रसंक्षी जीव भी मरकर उत्पन्न होता है ग्रौर उसके ग्रपर्याप्त ग्रवस्थामें असंक्षीके योग्य स्थितिवन्ध होता है। इसीसे सामान्यसे नरकमें ग्रसंक्षी पञ्चेन्द्रियचर जीवको सात कमोंके जधन्य स्थितिवन्धका स्वामी कहा है। प्रथम नरक, देव, भवनवासी ग्रौर व्यन्तर देव इन मार्गणात्रोंमें भी ग्रसंक्षी जीव मरकर उत्पन्न होता है, इसिलिये यहाँ सामान्य नरकके समान प्रक्रपणा की है। द्वितीयादि नरकोंमें मिथ्यादृष्टिकी ग्रपेचा सम्यन्दृष्टिके सात कमोंका स्थितिवन्ध न्यून होता है। श्रेष रहे देवोंमें भी ऐसा ही जानना

४८. तिरिक्खेसु सत्त्त्रणं कम्माणं जह० हिदि० कस्स १ अएण० वाद्र— एइंदि० पज्जत्त० सन्वविसुद्धस्स जह० हिदि० वृह्मा० । आयु० ओघं । एवं सन्व-एइंदि०-सन्वपंचकाय-ओरालियमि०-कम्मइग०-मिद०-सुद०-असंज०-किएण०-णील०-काड०-अञ्भवसि०-मिच्छादि०-असिएण-अणाहारग ति ।

५६. पंचिदियतिरिक्ख०३ सत्त्तरणं क० जह० द्विदि० कस्स ? अएण० असिएणस्स सन्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागारसन्वविद्यद्धस्स जह० द्विदि० वद्दमाणयस्स । आयुगस्स जह० द्विदि० कस्स ? अएण० सिएणस्स वा असिएणस्स वा पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा सागारजागार-तप्पाओग्गसंकिलि० जह० द्विदि० वद्दमाणयस्स । एवं पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-पंचिदियअपज्जत्ता ति ।

चाहिये, इसिलये इन मार्गणाश्रोंमें सर्व विशुद्ध परिणामवाले सम्यग्दिएको सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कहा है। श्रनुदिशसे लेकर श्रागे सव देव सम्यग्दिए ही होते हैं, इसिलये वहाँ तो सम्यग्दिए तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंके होनेपर श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी होता है, पर यहाँ जो श्रन्य मार्गणाएँ गिनाई है उनमें श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धकी योग्यता मिथ्यादिएके ही पाई जाती है, क्यों कि यहाँ मिथ्यादिएके श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धके योग्य संक्लेश परिणाम हो सकते हैं उतने श्रन्य गुणस्थानवालेके नहीं।

५८. तिर्यञ्चोंमें सात कमेंकि जयन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो वादर एकेन्द्रिय जीव पर्याप्त है, सर्व विशुद्ध है और जयन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह सात कमेंकि जयन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। आयु कमेंके जयन्य स्थितिवन्धका स्वामी छोधके समान है। इसी प्रकार सव एकेन्द्रिय, सव पाँचों स्थावरकाय, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणुकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताञ्चानी, असंयत, कृष्णुलेश्यावाले,नीलिश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादिष्ट, असंशी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेपार्थ—तिर्यंचोंमें सात कर्मोंका सबसे कम स्थितिवन्ध वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके होता है। इसीसे यहाँ तिर्यञ्चगितमें सात कर्मोंके जघन्य स्थिति वन्धके स्वामीका कथन उनकी मुख्यतासे किया है। यहाँ ग्रन्य जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें प्रायः यह स्थितिवन्ध सम्भव होनेसे उनका कथन ओघ तिर्यंचोंके समान करनेका निर्देश किया है। इन सब मार्गणाओं में ग्रायु कर्मका जुल्लक भव ग्रहणप्रमाण जघन्य स्थितिवन्ध सम्भव है, इसिलेये ग्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामीका कथन ग्रोघके समान किया है।

४९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकमें सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो असंही जीव सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिका वन्ध कर रहा है वह सात कमोंके जघन्य स्थितिक स्वामी है। श्रायु कमेंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर संही या असंही जीव जो कि पर्याप्त हो, या अपर्याप्त हो, साकार जागृत हो, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला हो और अघन्य स्थितिवन्ध कर रहा हो वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तके जानना चाहिए।

- ६०. वेइंदि०-तेइंदि०-चढुरिंदि० सत्तराणं क० जह० द्विदि० कस्स १ अएए० पज्जत्तस्स सागारजागारसञ्बविसुद्धस्स जह० द्विदि० वट्ट० । आयु० जह० द्विदि० कस्स १ आएए० पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा तप्पाओग्गसंकित्ति० जह० आवा० जह० द्विदि० वट्ट०। एवं तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ता०। 'तसअपज्जत्ता० वेइंदियअपज्जत्तभंगो।
- ६१. वेजिव्यका० सत्ताएणं कम्माणं जह० द्विदि० कस्स १ अएणद० देवणे-रहगस्स सम्मादिष्टि० सागारजागारसव्विवसुद्धम्स जह० द्विदि० वृहमाणयस्स । आयु० जह० द्विदि० कस्स १ अएणद० देवणेरइगस्स तप्पाओग्गसंकि० मिच्छादि० । एवं वेजिव्यमिस्स० । एवरि सत्ताएणं कम्माणं से काले सरीरसज्जत्ती गाहिदि ति । आहार०-आहारमि० सत्ताएणं क० जह० द्विदि० कस्स १ अएण० पमत्तस्स सागा-रजागारसव्विवसुद्धस्स । आहारमिस्से से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि ति । आयु० जह० द्विदि० कस्स० १ अएण० तप्पाओग्गसंकिलिद्धस्स ।
- ६२. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० सत्तराणं कम्माणं जह० द्विदि० कस्स ? अएण० अणियद्वित्ववगस्स जह० द्विदि० वद्दमाणयस्स । आयु० ओघं। णवरि इत्थि०-पुरिस०
- ६०. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय ग्रीर चतुरिन्द्रिय जीवोंमें सात कमोंके जघन्य स्थितियन्धका स्वामी कौन है ? जो ग्रन्यतर ग्रपयित जीव साकार जागृत है, सर्विवशुद्ध है ग्रीर जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह सात कमोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । ग्रायुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो ग्रन्थतर जीव पर्याप्त है या ग्रपयित है, तत्प्रायोग्य संक्षेत्र परिणामवाला है ग्रीर जघन्य ग्रावाधाके साथ जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह ग्रायु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार इन तीनोंमें पर्याप्त ग्रीर ग्रपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । तथा त्रस श्रपर्याप्तकोंमें द्वीन्द्रिय ग्रपर्याप्तकोंके समान भक्ष है ।
- ६१. वैक्रियिककाययोगमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितवन्धका सामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जीव जो कि सम्यग्दिष्ठ है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका सामी है । श्रायुक्रमेंके जघन्य स्थितिवन्धका सामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जीव जो कि तत्प्रायोग्य संक्षेश परिणामवाला है श्रीर मिथ्यादिष्ठ है वह श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका सामी है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसमें जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका सामी होता है । श्राहारककाययोग श्रीर श्राहारक मिश्रकाययोगमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ! श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है श्रीर सर्वविशुद्ध है वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । श्राहारकमिश्र काययोगमें जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाला जीव श्रायुक्रमेंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है ।
- ् ६२. स्त्रीवेद, पुरुपवेद श्रौर नपुंसकवेदमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्त्रामी कौन है ? जो श्रन्यतर श्रितवृत्तिचपक जीव जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितबन्धका स्वामी श्रोधके समान है।

१. मूलप्रतौ तसपजन्ता० इति पाठः ।

त्रायु॰' सिएणस्स वा त्रसिएणस्स वा [पज्जत्तस्स । एवुंस॰ सिएणस्स वा त्रसिएणस्स वा] पज्जत्तस्स वा त्रपञ्जत्तस्स वा । एवं कोधमाण-माय॰ ।

६३, विभंगे सत्ताएं कम्माएं जह० द्विदि० कस्स ? अएए० मणुसस्स संजमाभिम्रहस्स सागारजागारसन्विवसुद्धस्स जह० द्विदि० वद्दमाणयस्स । आयु० जह० द्विदि० कस्स ? अएए० तिरिक्खस्स वा मणुसस्स वा सागारजागार-संकिलि० जह० आवा०।

६४. सामाइ०-छेदोव० सत्त्राणं कम्माणं जह० द्विदि० कस्स ? अएण० अणियद्वित्वनगस्स चरिमजइ० द्विदि० वृहमा० । आयु० जह० द्विदि० पमत्तसंज-दस्स तप्पाओग्गसंकित्ति० । परिहारे सत्त्राणं कम्माणं जइ० द्विदि० अप्पमत्त० सन्वित्यद्व्यस्स । आयु० जह० द्विदि० आहारकायजोगिभंगो । सुहुमसंपराइ० छएणं कम्माणं ओघं । संजदासंजद० सत्त्राणं क० जह० द्विदि० कस्स ? अएण० मणुसस्स संजमाभिमुहस्स सागारजागारसन्वित्तिस्द्वस्स । आयु० दुगदियस्स तप्पाओग्गसंकित्ति।

६५. तेउले ०-पम्मले ० सत्तारणं क ० जह ० द्विदि ० कस्स १ त्रारण ० त्रपमत्त-

इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद श्रोर पुरुषवेदमें जो संग्नी हो, श्रसंग्नी हो श्रोर पर्याप्त हो वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। नपुंसक वेदमें संग्नी हो, श्रसंग्नी हो, पर्याप्त हो या श्रपर्याप्त हो वह 'श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार कोध, मान श्रीर माया कपायमें भी जानना चाहिए।

६३. विभङ्गज्ञानमें सात कमीं के जघन्य स्थितिवन्धको स्वामी कौन है ? जो ग्रन्यतर मनुष्य संयमके ग्रिभमुख है, साकार जागृत है, सर्वविद्युद्ध है ग्रीर जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह सात कमीं के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । ग्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । ग्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो ग्रन्यतर तिर्यञ्च या मनुष्य साकार है, जागृत है, संक्लेश परिणामवाला है ग्रीर जघन्य ग्रावाधाके साथ जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह ग्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है ।

६४. सामायिक श्रौर छेदोपस्थापना संयममं सात कमंकि जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कीन है ? जो श्रन्यतर श्रिनवृत्तिचपक श्रन्तिम जघन्य स्थितवन्ध कर रहा है वह सात कमंकि जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह श्रायुक्रमंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह श्रायुक्षमंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो श्रप्रमत्तसंयत जीव सर्वविशुद्ध है वह सात कमोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है । श्रायुक्षमंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्राहारक काययोगीके समान है । स्थ्मसाम्पराय संयममें छह कमोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्रोधके समान है । संयता-संयतोंमें सात कमोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो श्रन्यतर मनुष्य संयमके श्रिममुख है, साकार जागृत है श्रौर सर्वविशुद्ध है वह सात कमोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । श्रायुक्षमंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो दो गितका जीव तत्प्रायोग्य संक्षेश परिणामवाला है वह श्रायुक्षमंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? जो दो गितका जीव तत्प्रायोग्य संक्षेश परिणामवाला है वह श्रायुक्षमंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है ।

६४. पीतलेश्या श्रौर पद्मलेश्यामें सात कर्मीके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ?

१. श्रायु० संकिलिइस्स वा श्रसचिख्स्स इति पाठः ।

संजदस्स सागारजागारसन्वविद्यद्धस्स । अथवा दंसगामोहखवगस्स से काले कद्-करिणज्जो होहिदि त्ति । आयुगस्स जह॰ द्विदि॰ कस्स ? अएगा॰ देवस्स मिच्छा-दिद्विस्स तप्साओग्गसंकिलिङ्कस्स जह॰ आवाधा॰ जह॰ द्विदि वट्टमा॰ ।

६६. वेदगसम्मा० सत्तरणं क० तेजले०भंगो । श्रायु० देवणेरइयस्स तप्पाश्रोगस्स संकिलिष्टस्स । जवसमस० छरणं क० जह०द्विदि० कस्स ? श्ररण०
स्रहुमसंपराइग० चिरमे जह० द्विदि० वृहमा०।मोहणी० जह० द्विदि० कस्स ? श्ररण०
श्रिणियद्विज्वसमस्स चिरमे जह० द्विदि० वृहमा० । सासणे सत्तरणं क० जह०
द्विदि० कस्स ? श्ररण० चढुगदियस्स सव्विवसुद्धस्स जह० द्विदि० वृहमा०।
श्रथवा संजमादो परिवदमाणस्स । श्रायु० जह० द्विदि० कस्स ? श्ररण० चढुगदियस्स तप्पात्रोग्गसंकिलि० जह० द्विदि० वृहमा०। सम्मामिच्छा० सत्तरणं क०
जह० द्विदि० कस्स ? श्ररण० सागारजागारसव्विवसुद्धस्स से काले सम्मत्तं पिक्व

जो अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव साकार जागृत है और सर्वविग्रद्ध है वह सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। अथवा जो दर्शनमोहका क्षपक जीव तदनन्तर, समयमें कृतकृत्यवेदक-सम्यग्दिए होगा वह सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। आयुक्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। आयुक्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? जो अन्यतर देव मिथ्यादृष्टि है, तत्य्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आवाधाके साथ जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह आयुक्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है।

६६. वेदकसम्यग्दिएयोमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी पीतलेश्याके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कीन है ? जो देव श्रीर नारकी जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। उपशम-सम्यग्दि प्रयोमें छह कर्मों के जघन्य स्थितिबन्धका खामी कीन है ? जो ग्रन्यतर सूक्ष्मसाम्प-रायिक जीव श्रन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह छह कर्मीके जघन्य स्थिति-वन्धका खामी है। मोहनीय कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? जो श्रन्यतर श्रनिवृत्ति उपशामक जीव श्रन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह मोहनीयकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। सासादनसम्यक्त्वमें सात कर्मीके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो श्रन्यतर चार गतिका जीव सर्वविशुद्ध है श्रीर जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। अथवा संयमसे गिरकर जो सासादनसम्यग्दि हुन्ना है वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। न्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका सामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और त्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है। वह त्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। सम्यग् मिथ्यादृष्टियों सात कमींके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? जो अन्यतर साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होगा वह सात कमाँके जघन्य स्थितियन्धको स्वामी है।

१. मूजप्रती—माग्रस्स । श्रायु० जह० द्विदि० चट्टमा०। श्रथवा संजमादो परिवदमाणस्स । श्रायु० जह० द्विदि० कस्स ? श्रग्ग्ण० चदुगिद्यस्स तप्पाश्रोग्गसंकित्ति०। सम्मामिच्छा० इति पाठः।

बंधकालपरूवगा

६७. वंधकालं दुविधं—जहराणयं उनकरसयं च । उनकरसए पगदं । दुविधो ि सि सो—अधिण आदेसेण य । तत्थ ओधेण सत्तरणं कम्माणं उनकरसओ द्विविधो केविचरं कालादो होदि ? जहराणेण एगसमओ, उक्करसेण अंतोग्रहुत्तं । अणु॰ जह॰ अंतो॰, उनक॰ आणंमकालमसंखे॰ । आगु॰ उनक॰ केविचरं कालादो॰ ? जहराणु॰ एग॰ । अणुक्क॰ जहराणु॰ अंतो । एवं मिद्०-सुद्०-असंज॰-अचनखुदं०-भविसि॰-अव्भवसि॰-मिच्छादिष्टि त्ति ।

विशेषार्श—पहले सव मार्गणात्रोंमें जघन्य स्थितिबन्धके श्रद्धाच्छेदका कथन कर श्राये हैं। यहाँ उनके खामीका निर्देश किया है। इसिलये जहाँ जितना जघन्य स्थितिवन्ध कहा है उसे ध्यान में रखकर उक्क प्रकारसे उसके खामित्वको घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार वन्धस्वामित्वका कथन समाप्त हुआ।

वन्धकाल प्ररूपणा

६७. वन्धकाल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृप्ट । उत्कृप्टका प्रकरण है । उसकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघसे सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थिति-वन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृप्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । आयुक्तमेंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृप्ट काल एक सयय है । अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृप्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, श्रसंयत, अचनुदर्शनी, भन्य, अभन्य और मिथ्यादि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेपार्थ—स्थितिवन्ध पहले उत्कृष्ट, ग्रानुत्कृष्ट, जघन्य ग्रौर ग्रजधन्यके भेदसे चार प्रकारका वतला श्राये हैं। इनमें यहाँ सर्वप्रथम एक जीवकी श्रपेना उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिचन्ध कमसे कम कितने काल तक ग्रौर ग्रधिकसे ग्रधिक कितने काल तक होता रहता है इसका विचार किया जा रहा है। यहाँ उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट् काल श्रन्तर्मुहूर्त वतलाया है। इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणाम श्रन्तर्मुहूर्तसे श्रधिक काल तक नहीं रहते। उसमें भी उन परिणामींसे उतने काल तक उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होना ही चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है। किसी जीवके एक समय तक उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होकर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध होने लगता है श्रौर किसीके अन्तर्मुहर्त काल तक उत्कृप्ट स्थितिवन्ध होता रहता है। यही कारण है कि यहाँ सात कमोंके उत्कृप्ट स्थिति-वन्धका जघन्य काल एक समय ग्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त कहा है। इन कर्मोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितियन्थका जघन्य काल अन्तर्भुहुर्ते है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितियन्थ होकर पुनः वह श्रन्तर्मुहुर्त कालके पहले कभी नहीं होता। इसका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है; क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवका उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रानन्त काल है। त्रायुकर्मका उत्कृष्ट् स्थितिवन्ध एक समय तक श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रन्तर्मुहुर्त काल तक होता है। इससे ग्रधिक काल तक त्रायुकर्मका बन्ध ही नहीं होता। यही कारण है कि श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय तथा श्रनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल ग्रन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ मत्यज्ञानी ग्रादि जितनी मार्गेणाएँ

६८. त्रादेसेण ऐरइएस सत्तरणं कम्माणं उक्क॰ त्रोघं। त्रणुक॰ जह॰ एगस॰, उक्क॰ तेत्तीसं सागरोव॰। त्रायु॰ त्रोघं। एवं सत्तस पुढवीस । एवरि त्रणुक्कस्स॰ क्रव्यप्पणो हिंदी भाणिद्वा ।

६६. तिरिक्लेसु ओघं। पंचिंदियतिरिक्ल० २-मणुस० २-देवा याव सन्बद्ध ति यथासंखाए सत्तरणं कम्माणं उक ० द्विदि० जह० एगस०, उक ० अंतोस्र०। अणुक० जह० एग०, उक १० [तिरिण पित्तदोवमाणि पुन्वकोडिपुधत्तेणव्भिहयणि] तिरिण पित्तदो० पुन्वकोडिपु७ तेत्तीसं सागरो० देवाणं अप्पष्पणो हिदी०। आयु० ओघं।

७०. पंचिदियतिरिक्खञ्चपञ्जत्त-मगुसञ्चपञ्जत्त-विगलिदि०-पंचिदिय-तसञ्चप-ज्जत्ता० सत्तराणं कम्माणं उक्क० त्रगुक्क० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। त्रायु श्रोघं।

गिनाईं हैं उनमें ग्राठों कमौंका यह काल ग्रविकल घटित हो जाता है, इसलिये इनके कथनको ग्रोघके समान कहा है।

६८. त्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मीके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृप्ट काल तेतीस सागर है। श्रायुक्रमंका काल श्रोधके समान है। इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृप्ट काल श्रपनी श्रपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्यसे श्रीर प्रत्येक नरकमें श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी स्थितिप्रमाण कहा है। सो इसका कारण यह है कि जिस जीवने पूर्व भवमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करनेके बाद श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध किया। इसके वाद वह मरकर नरकमें गया श्रीर वहाँ निरन्तर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता रहा। इस प्रकार श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल प्रति प्रति कर तेना चाहिए।

६६. तिर्यञ्चोंमें ग्रोघके समान काल है। पञ्चेद्रिय तिर्यञ्चित्रक, मनुष्यित्रक, सामान्य देव ग्रोर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कमोंकी उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट काल कमसे पूर्वकोटि पृथक्तव ग्रिधक तीन पत्य, पूर्वकोटि पृथक्तव ग्रिधक तीन पत्य, तेतीस सागर ग्रीर देवोंके ग्रपनी ग्रपनी उत्कृप्ट स्थितिप्रमाण है। ग्रायु-कर्मका ग्रोघके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय बतलानेका कारण यह है कि विविच्ति पर्यायमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध किया श्रीर दूसरे समयमें श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके मरकर श्रन्य पर्यायमें चला गया। इससे यहाँ सर्वत्र स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। शेष कथनका श्रनुगम पूर्ववत् है।

७०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य श्रपर्याप्त, विकेलन्द्रिय अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त श्रीर श्रस श्रपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट और श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रायुकर्मका श्रोघके समान है।

१. मूलप्रती उक्क० घणंतकालमसंखेजपोगगत्त० तिथिए इति पाठः।

७१. एइंदिएसु सत्तरणं कम्मारणं उक्क० हिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणुक्क० जह० अंतो, उक्क० अअंखेज्जा लोगा। वादरएइंदि० अणुक्क० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे। वादरएइंदि० पज्जत० अणुक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अपज्ज० अणु० जह०एग, उक्क० अंतो०। सुहुमएइंदि० अणुक्क० जह० अंतो, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। पज्जत्ते अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अपज्ज० अणु० जहरणु० अंतो। सन्वेसि उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो। सन्वेसु आयु० आधं।

७२.वेइंदि०-तेइंदि०-चडरिंदि०तेसिं चेव पज्जता० सत्तराएं कम्माएं उक्क०जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रणुक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। श्रायु० श्रोघं ।

विशेपार्थ—इन सव पर्यायोंमें एक जीवके रहनेका उत्कृप्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

०१. एकेन्द्रियों सात कर्मों वित्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। अनुत्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्यकाल अन्तर्मुह्रते है और उत्कृप्टकाल असंख्यात लोक प्रमाण है। वादर एकेन्द्रियों में अनुत्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्यकाल एक समय है और उत्कृप्टकाल अङ्गलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वादर एकेन्द्रिय पर्यान्तकों अनुत्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों में अनुत्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। सूक्ष्म एकेन्द्रियों अनुत्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल अन्तर्मुह्रते है। सूक्ष्म एकेन्द्रियों अनुत्रुप्ट स्थितवन्यका जयन्य काल अन्तर्मुह्रते है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यानकों अनुत्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों अनुत्रुप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। इन सवके उत्कृप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। दथा इन सवके उत्कृप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। तथा इन सवके उत्कृप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। तथा इन सवके अत्कृप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। तथा इन सवके अत्कृप्ट स्थितिवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुह्रते है। तथा इन सवके अत्कृप्ट स्थितिवन्यका काल और समान है।

विशेपार्थ—खुद्दावन्धमें एकेन्द्रिय जीवका उत्क्रप्टकाल असंख्यात पुद्रल परिवर्तन-प्रमाण अनन्तकाल दिया है और इसी प्रकार स्क्ष्म एकेन्द्रियका उत्क्रप्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण दिया है किन्तु यहां पर इनमें अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उक्षप्ट काल कमसे असंख्यात लोकप्रमाण और अङ्गलके असंख्यातचें भागप्रमाण बतलाया है। इसका कारण क्या है यह विचारणीय है। इन जीवोंका खुद्दावन्धमें जो उत्क्रष्ट काल बतलाया है उतने काल तक सात कमोंका अनुत्कृष्ट स्थितबन्ध नहीं होता, इसीसे यह काल दिया है। शेष कथन सुगम है। आगे सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदिका जो अनुत्कृष्ट स्थितबन्धका उत्कृष्ट काल कहा है वहां भी इसी प्रकार विचारणा कर लेनी चाहिए।

७२. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय ग्रीर चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट काल ग्रन्तर्मुहर्त है। ग्रनुत्कृप्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। ग्रायुक्तिका काल ग्रोधके समान है।

७३. पंचिदिय-तसदोएएां सत्तरएां कम्माएां उनक० जह० एग०, उनक० ग्रंतो० । त्रणुक्क०जह० एग०, उक्क० [ग्रप्पपणो सगद्विदीत्रो ।] त्रायु०ग्रोघं ।

७४. पुढिवि०-आड०-तेड०-वाड० सत्तरणं कम्माणं उक्क० आर्घ । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेडजा लोगा । वादरे कम्मिटिदी । वादरपञ्जत्ते संखेडजा-िण वस्ससहस्साणि । सुहुमे० अंगुलस्स असंखे० । पञ्जत्ते उक्कस्स-अणुक्कस्स-वंधा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । वणप्फिदि० एइंदियभंगो । पत्तेगे कम्मिटिदी । पञ्जत्ते संखेडजाणि वस्ससहस्साणि । णिगोदेसु एइंदियभंगो । णवरि वादरे कम्मिटिदी । सुहुमवणप्फिदि०-सुहुमणिगोदअपङ्जत्तं मोत्तूण सेसं अपङ्ज० पंचिदिय-अपङ्जत्तभंगो । आयु० ओघं ।

७५. पंचमण्ड-पंचवचिक सत्तराणं कम्माणं उक्क अणुक जहरू एम, उक्क अंतोक । श्रायुक्क अंग्रेष्टे । श्रायुक्त अंग्रेष्टे

७३. पञ्चेन्द्रिय श्रौर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रस श्रौर त्रस पर्याप्त जोवोंमें सात कमोंके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृप्ट काल श्रपनी श्रपनी उत्कृप्ट स्थितिप्रमाण है। श्रायुकर्मका काल श्रोधके समान है।

७४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रानिकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंमें सात कमेंंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक
समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। इन चारोंके वादरोंमें श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका
उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। इनके वादरपर्याप्त जीवोंमें श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका
उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। उनके सूक्ष्म जीवोंमें श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट
काल श्रङ्कुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट
स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल श्रन्तमु हुर्त है। वनस्पतिकायिकोंमें उत्कृष्ट व श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल एकेन्द्रियोंके समान है। वनस्पति प्रत्येक
कायिकोंमें श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। इनके पर्याप्तकोंमें
श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। निगोद जीवोंमें उक्त स्थितिवक्षका काल एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके वादरोंमें श्रमुत्कृष्ट स्थिति
वन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। सूक्त वनस्पतिकायिक श्रपर्याप्त और सूक्त्मिनगोद
श्रपर्याप्त जीवोंको छोड़ कर शेष श्रपर्याप्त जीवोंमें उक्त स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय
श्रपर्याप्त जीवोंके समान है। श्रायुका काल श्रोधके समान है।

७५. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृप्ट और अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके
उत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय
है और उत्कृप्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार वैक्रियिक काययोगी, आहारक काययोगी
और क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंके जानना चाहिए। काययोगी जीवों में सात कर्मोंके
उत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक

एग०, उक्क॰ अणंतकालमसंखे॰ । आयु॰मणजोगिभंगो । एवं खबुंस०-असिएण० । आयु॰ ओघं । ओरालियकाजो॰ सत्तएणं क॰ उक्क॰ ओघं । आयु॰ ज॰ एग॰, उक्क॰वावीसं वस्ससहस्साणि देस्रणाणि । आयु॰मणजोगिभंगो । ओरालियमि॰-वेउ- विवयगि॰-आहारमि॰ सत्तएणं कम्माणं उक्क॰ जह० एग॰, उक्कस्सेण अंतोग्रहुत्तं । आयु॰ जहए खु॰ अंतो । ओरालियमि॰ आयु॰ ओघं। आहारमिस्से मणजोगिभंगो। कम्मइगका॰-अणाहा॰ सत्तएणं कम्माणं उक्क॰जह० एग॰, उक्क॰ वेसम॰ । आणुक्क॰ जह० एग॰, उक्क॰ विरिणस॰।

७६. इत्थि॰-पुरिस॰ सत्तरणं क॰ उक्क॰ श्रोघं। श्रणुक्क॰ जह॰ एगस॰, उक्क॰ पित्तदोवमसदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं। श्रायु॰ श्रोघं। श्रवगद॰ मणजोगि-भंगो। एवं सुहुमसं॰ इएएणं कम्माणं।

समय है श्रीर उत्छए श्रनन्त काल है जो श्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। श्रायुकर्मका काल मनोयोगियों समान है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी श्रीर श्रसंक्षी जीवों के जानना चाहिए। इनके श्रायुकर्मका काल श्रोघके समान है। श्रीदारिक काययोगी जीवों में सात कर्मों के उत्छए स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रायुक्तर्मका काल मनोयोगियों समान है। श्रीदारिक काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है। श्रायुक्तर्मका काल मनोयोगियों के समान है। श्रीदारिक मिश्रकाययोगी, वैकियिक मिश्रकाययोगी श्रीर श्राहारक मिश्रकाययोगी जीवों सं सात कर्मों के उत्छए स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्छए काल श्रन्तर्मुह्त है। श्रीदारिक मिश्रमें श्रायुक्तर्मका काल श्रोर उत्छए काल श्रन्तर्मुह्त है। श्रीदारिक मिश्रमें श्रायुक्तर्मका काल श्रोघके समान है श्रीर श्राहारक मिश्रकाययोगों श्रायुक्तर्मका काल मनोयोगियों से समान है। कार्मण्काययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवों सं सात कर्मों के उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल दो समय है। श्रवुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल दो समय है। श्रवुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल तीन समय है।

विशेपार्थ—श्रौदारिक मिश्रकाययोगमें श्रायुवन्ध लब्ध्यपर्यातकों के ही होता है, इसलिए यहाँ श्रायुकर्मके अनुत्रुष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान वन जाता है। शेष जिन योगोंमें श्रायुकर्मका वन्ध कहा है उनका जधन्य काल एक समय होनेसे उनमें श्रायुकर्मके श्रमुत्रुष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय कहा है। किन्तु श्राहारक मिश्रकाययोगमें कुछ विशेपता है। उसका यद्यपि जधन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त होता है तथापि वहाँ श्रायुकर्मके श्रमुत्रुष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय कहनेका कारण यह है कि कोई जीव श्राहारक मिश्रकाययोगका एक समय काल शेष रहनेपर भी श्रायुकर्मका वन्ध कर सकता है इसिल्य वहाँ एक समय काल वन जाता है। कार्मणुकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें उत्रुप्ट स्थितिवन्धका खामी कौन होता है इसका पहले विचार कर श्राये हैं। उसे देखते हुए ज्ञात होता है कि ऐसा जीव श्रधिकसे श्रधिक दो विग्रह लेकर ही उत्पन्न होता है। इसीसे यहाँ पर सात कमोंके उत्रुप्ट स्थितिवन्धका उत्रुप्ट काल दो समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

७६. स्त्रीवेद ग्रौर पुरुपवेदमें सात कमींके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल ग्रोधके समान है। ग्रानुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है ग्रौर उत्कृप्ट काल कमसे पल्योपम- शतपृथक्त्वप्रमाण ग्रौर सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है। ग्रायुकर्मका काल ग्रोधके समान है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायमें छह कमींका काल होता है।

७७. विभंगे सत्तरणं क० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवम० देस् ० । आयु० ओघं । आभि०-सुद०-ओधि० सत्तरणं क० उक्क० जह० उक्क० अंतो० । अणु० जह०अंतो०, उक्क० आविद्यागरो०सादिरे० । आयु० ओघं । मण्यपज्ज० सत्तरणं कम्माणं उक्क० जह० उक्क० अंतो० । अणु० जह० एगस०, उक्क० पुन्वकोडी देस् ० । आयु० ओघं । एवं संजद-सामाइ०-छेदोव०-परिहार०। संजदासं-जदाणं सत्तरणं क० उक्क० जहरणु० अंतो०। अणु० जह० अंतो, उक्क० पुन्वकोडी देस् ० । आयु० ओघं । चक्खदं० तसपज्जत्तभंगो । ओधिदंसणि—सम्मादिद्वि० ओधिभंगो ।

७८. किएए। -एतिल - काउ० सत्तएएं कम्माएं उक्क० श्रोघं। श्रग्रु० जह० श्रंतो, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोव० सादि०। श्रायु० श्रोघं। एवं तेउ०-पम्मले०-सुक्कलेस्साए सत्तएएं कम्माएं उक्क० श्रोघं। श्रग्रु० जह० एग०, उक्क० वे श्रद्वारस तेत्तीसं साग०। श्रायु० श्रोघं।

विशेषार्थ—अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसिलए यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

७७. विभक्ष ज्ञानमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल ग्रोधके समान है। ग्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट काल कुछ कम तेतीस सागरीपम
है। ग्रायु कर्मका काल ग्रोधके समान है। ग्रामिनियोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान ग्रीर ग्रवधिज्ञानमें
सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृप्ट काल ग्रन्तमुंहुर्त है। ग्रानुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल ग्रन्तमुंहुर्त है ग्रीर उत्कृप्ट काल साधिक छ्यासट सागरीपम है। ग्रायुकर्मका काल ग्रोधके समान है। मनःपर्यथज्ञानमें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य
ग्रीर उत्कृप्ट काल ग्रन्तमुंहुर्त है। ग्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर
उत्कृप्ट काल कुछ कर्म पूर्वकोटि प्रमाण है। ग्रायुक्तमेका काल ग्रोधके समान है। इसी
प्रकार संयत, सामायिक, छुदोपस्थापना और परिहारविश्विद्ध संयत जीवोंके जानना चाहिए।
संयतासंयतोंमें सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट काल ग्रन्तमुंहुर्त
है। ग्रानुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल ग्रन्तमुंहुर्त है ग्रीर उत्कृप्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है। ग्रायु कर्मका काल ग्रोधके समान है। चक्षुदर्शनमें उक्त काल त्रसपर्यातकोंके
समान है। ग्रवधिदर्शनी और सम्यग्दिप्रयोंने उक्त काल ग्रवधिज्ञानियोंके समान है।

७५. कृष्ण, नील श्रीर कापोत लेश्यामें सात कर्मीके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोध-के समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहुर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर श्रीर साधिक सात सागर है। श्रायु कर्मका काल श्रोधके समान है। इसी प्रकार पीत, पद्म श्रीर श्रुक्त लेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर, साधिक श्रठारह सागर श्रीर साधिक तेतीस सागर है। श्रायुकर्मका काल श्रोधके समान है।

१. मूलप्रतो श्रोघं। श्रायु श्रोघं। श्रग्रु० जह० एग०, उक्क० वे श्रहारस तेत्तीसं साग०। खद्दगसं० इति पाठः।

७६. खइगस० सत्तरणं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रणु० जह० श्रंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। श्रापु० श्रोघं। वेद्गसम्मा० सत्तरणं कम्माणं उक्क० जह० उत्तो०। श्रणु० जह० श्रंतो०, उक्क० श्राविसाग०। श्रापु० श्रोघं। उवसमस०-सम्मामि० सत्तरणं क० उक्क० श्रापु० जह० उक्क० श्रंतो०। सासण० सत्तरणं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रणुक० जह० एग०, उक्क० श्राविणात्रो। श्रापु० श्रोघं।

द्र. सिएए॰ पंचिदियपज्जत्तभंगो । एवं **उक्कस्सवंधकालो समत्तो** ।

द्र नहराणए पगदं । दुविधो शिद्देसो—ऋोघेश आदेसेश य । तत्थ श्रोघेश सत्तरां क० नहराणि दिवंधकालो केवचिरं कालादो होदि १ नह० उक्क० श्रंतो०। अनहराण० केवचिरं कालादो० १ अशादियो अपज्जवसिदो ति भंगो । यो सो सादि० नह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियटं । आयु० उक्कस्सभंगो। एवं याव आहारगि । आयु० श्रोघभंगो।

७९. चायिकसम्यग्दियोंमें सात कमेंकि उत्हार स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्हार काल अन्तर्मुहर्त है। ग्रानुत्हार स्थितवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहर्त है ग्रीर उत्हार काल साधिक तेतीस सागरोपम है। ग्रायु कर्मका काल ग्रोघके समान है। वेद्कसम्यग्दियोंमें सात कर्मोंके उत्हार स्थितवन्धका जघन्य ग्रीर उत्हार काल ग्रन्मुहर्त है। ग्रानुत्हार स्थितवन्धका जघन्यकाल ग्रन्तर्मुहर्त है ग्रीर उत्हार काल छथासठ सागर है। ग्रायु कर्मका काल ग्रोघके समान है। उपशमसम्यग्दियों ग्रीर सम्यग्मिश्यादियोंमें सात कर्मोंके उत्हार ग्रीर ग्रानुत्हार स्थितवन्धका जघन्य ग्रीर उत्हार काल ग्रन्तर्मुहर्त है। सासादनमें सात कर्मोंके उत्हारिस्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्हार काल ग्रन्तर्मुहर्त है। ग्रानुत्हार स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्हार काल ग्रान्तर्मुहर्त है। ग्रानुत्हार स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्हार काल ग्रान्तर्मुहर्त है। ग्रानुत्हार स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्हार काल ग्रह ग्राविल है। ग्रायु कर्मका काल ग्रोघके समान है।

८०. संशियोंमें सब कमेंका उक्त काल पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट वन्धकाल समाप्त हुआ।

८१. श्रव जघन्य वन्ध कालका प्रकरण है। उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है— '
श्रोध श्रीर श्रादेश। उनमेंसे श्रोधकी श्रपेत्ता सात कर्मोंके जघन्य स्थितवन्धका कितना काल
है ! जघन्य श्रीर उत्हर काल अन्तर्मुहूर्त है। श्रजधन्य स्थितवन्धका कितना काल है !
एक श्रनादि-श्रनन्त भङ्ग है श्रीर दूसरा सादि। उनमेंसे जो सादि भङ्ग है उसका जघन्य
काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्हर काल श्रधपुद्रलपरिवर्तनप्रमाण है। श्रायु कर्मका काल
उत्हर के समान है।

विशेषार्थ—सात कमोंका जघन्य स्थितवन्ध चपकश्रेणिमें होता है और वह अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है। इसीसे सात कमोंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य और
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यद्यपि सात कमोंका अनादि कालसे अजघन्य स्थितिवन्ध
ही होता है, पर जिसने अर्धपुद्रल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपश्मश्रेणिपर आरोहण किया
है उसके उनका अजघन्य स्थितवन्ध सादि होता है। अब यदि यह अजघन्य स्थितवन्ध
अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर पुनः श्रेणि पर आरोहण करनेसे छूट जाता है तो इसका

८२. श्रादेसेण ऐरइएस सत्तरणं कम्माणं जह० जह० एग०, उक्क० वेसम० । अन्ज जह दसवस्ससहस्साणि विसमयूणाणि, उनक तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं पढमाए पुढवीए। एविर सगिंदियी। विदियाए याव सत्तमा ति उक्कस्सभंगो । एवरि सत्तमाए अज॰ जह॰ अंतो॰ ।

८३. तिरिक्खेसु सत्तरणं कम्माणं जह० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह॰ एग॰, उक्क॰ असंखेज्जा लोगा। पंचिदियतिरिक्खं३ जहएएां तिरिक्खोघं। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ सगिंदिशि॰। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत॰ जह॰ अजह॰

उकस्सभंगो ।

ज्यात्रा काल ग्रन्तर्सु हुर्त उपलब्ध होता है ग्रोर यदि ऐसा जीव कुछ कम ग्रर्धपुद्रल परिवर्तन काल तक पुनः श्रेणी पर नहीं चढ़ता है तो इसका काल कुछ कम श्रर्धपुद्रल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है। यही कारण है कि सात कर्मोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तमु द्वर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्थपुद्रल परिवर्तन प्रमाण कहा है।

८२. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल दो समय कम दस हजार वर्ष है श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृप्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए । दूसरो पृथिवीसे लेकर सातवीं तक कालकी प्ररूपणा उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हुर्त है।

विशेषार्थ—जो तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला ग्रसंक्षी जीव मरकर नरकमें उत्पन्न होता है उसके एक या दो समय तक सात कमोंका जघन्य स्थितिवृन्ध होता है। इसीसे यहां सात कमींके जघन्य स्थितिबन्घका जघन्य काल एक समय और उत्कृप्ट काल दो समय कहा है। दस हजार वर्षप्रमाण नरककी जघन्य स्थितिमेंसे ये दो समय कम कर देनेपर वहां ग्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल होता है। उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। पहली पृथिवीकी श्रपेक्षा यह प्ररूपणा इसी प्रकार है। कारण कि श्रसंबी जीव पहली पृथिवीमें ही उत्पन्न होता है। मात्र यहां श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृप्ट काल यहां की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण कहना चाहिए। शेष पृथिवियोंमें जघन्य स्थितिबन्ध के कालका विचार उत्कृष्ट स्थितिवन्धके कालके समान कर लेना चाहिए।

८३। तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें जघन्य स्थितिवन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। ग्रजधन्य स्थितिबन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल ग्रपनी ग्रपनी स्थितिप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ग्रपर्यातकोंमें जघन्य ग्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके समान है ।

विशेषार्थ—यद्यपि तिर्यञ्च गतिमें एक जीवके रहनेका उत्कृष्ट काल ग्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है तथापि ऐसा जीव तिर्यंच गतिकी सव योनियोंमें परिभ्रमण कर लेता है इसिलए सात कर्मोंके अजधन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल इतना उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि इस जीवके पर्याप्त एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने पर जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है ग्रतः यहां स्हम एकेन्द्रियोंके कालकी मुख्यतासे ग्रजधन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल ग्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेप कथन सुगम है।

- ८४. मगुस३ जह० जहरागु० श्रंतो०। श्रज० जह० एग०, उक्क० सग-दिदी०। मगुसश्रपञ्ज० सत्तरागं क० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। श्रज० खुदाभव० विसमयूगं, उक्क० श्रंतो०।
- ८४. देवार्णं शिरयोघं । भवरण०-वारणवें० पढमपुढविभंगो । शावरि सगिहदी०। जोदिसिय याव सन्वह त्ति उक्कसभंगो ।
- ्रद. सन्वएइंदिएसु सत्तएएां क॰ जह॰ तिरिक्खोघं । अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ असंखेज्जा लोगा । वादर॰ अंगुलस्स अंसखेज्जदि॰ । पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । वादरअपज्ज॰ जह॰ एगसमयं, उक्क॰ अंतो॰। सुहुमेइंदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंगुलस्स असंखे॰ । पज्जत्तापज्ज॰ जह॰ एगस॰, उक्क॰ अंतो०।

८४. मनुष्यत्रिकमें सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुह्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी स्थितिप्रमाण है। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंमें सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल दो समय कम खुद्दाभवग्रहणुप्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुह्त है।

विशेपार्थ—मनुष्यित्रिकमें सात कमींका जघन्य स्थितिबन्ध चपकश्रेशीमें उपलब्ध होता है ग्रीर वह श्रन्तर्भुहर्त काल तक होता है। इसीसे यहाँ इसका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हुर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

द्ध. देवोंमें सामान्य नारिकयोंके समान काल है। भवनवासी श्रीर व्यन्तरोंमें पहली पृथिवीके समान काल है। इतनी विशेषता है कि यहाँ श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट स्थितिव्रमाण कहना चाहिए। ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें इन्हींके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके कालके समान काल कहना चाहिए।

८६. सव पकेन्द्रियों सात कमाँके जघन्य स्थितवन्धका काल सामान्य तिर्यं क्वोंके समान है। ग्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके वादरों में ग्रजघन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल अंगुलके ग्रसंख्यात मागप्रमाण है। वादर पर्याप्तकों में ग्रजघन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। वादर ग्रपर्याप्तकों में ग्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट काल ग्रन्तमुं हुत है। सूक्ष्म पकेन्द्रियों में ग्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृष्टकाल ग्रंगुलके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इनके पर्याप्तकों ग्रीर ग्रपर्याप्तकों में ग्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल ग्रन्तमुं हुत है।

विशेषार्थ—सामान्य एकेन्द्रियोंमें अजघन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार तिर्यञ्जोंमें घटित करके वतला आये हैं उस प्रकार से घटित कर लेना चाहिए। तथा एकेन्द्रियके शेष अवान्तर भेदोंमें यह काल उस उसकी कायस्थिति जान कर समभ लेना चाहिए। मात्र सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें यह काल अपनी कायस्थिति प्रमाण प्राप्त न होकर अञ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण उपलब्ध होता है इतना विशेष जानना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

८७. वेइंदि॰-तेइंदि॰-चढुरिंदि॰ तेसिं चेव पज्जत्ताणं सत्तएणं क॰ जह॰ तिरि-क्लोधं । अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । अपज्ज॰ पंचिदियतिरिक्खअपज्जतभंगो । पंचिदिय-तस॰ तेसिं चेव पज्जत्ताणं सत्तरणं॰ क॰ जह॰ ओधं। अज॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ सगिष्ठदी॰ । अपज्जत्ता॰ पंचिदियतिरिक्ख-अपज्जतभंगो ।

८८. सन्वपुढवि०-त्राउ०-तेउ०-वाउ-वराष्फदि-पत्तेय०-शिगोद० सत्तरणं क० जह० एइंदियभंगो । त्रजह० जह० एग०, उक० त्रशुक्तस्तमंगो ।

दह. पंचमण०-पंचवचि० सत्तारणं क० जह० अजह० जह० एग०, उक्क० अंतो। कायजोगि० सत्तारणं कम्माणं जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अजह० जह० एग०, उक्क० अर्णंतका० । ओरालियका० सत्तारणं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अजन० जह० एग०, उक्क० वावीसं वस्ससहस्साणि देस्र० । ओरालियमि०-वेजिवयमि०-आहारिम० उक्कस्सभंगो । वेजिवयका० मणजोगिभंगो । एवं आहारका०। कम्मइ०- अणाहार० उक्कस्सभंगो ।

८% द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय श्रौर चतुरिन्द्रिय तथा इन्होंके पर्यप्तिकोंमें सात कमींके जघन्य स्थितवन्धका काल सामान्य तिर्यश्चोंके समान है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। द्वीन्द्रिय श्रादि तीनों श्रप्पितकोंमें पश्चेन्द्रिय तिर्यं ज्व श्रप्यप्तिकोंके समान काल है। पञ्चेन्द्रिय श्रौर त्रस तथा इनके पर्यप्त जीवोंमें सात कमींके जघन्य स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुं हुर्त है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी स्थितिप्रमाण है। इनके श्रपयितकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्यप्तिकोंके समान काल है।

८८. सव पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब ग्राग्निकायिक, सब वायुकायिक, वनस्पितकायिक, सब वनस्पितकायिक प्रत्येकशरीर ग्रोर सब निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल एकेन्द्रियोंके समान है। इनमें ग्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रोर उत्कृष्ट काल ग्रजुत्कृष्ट स्थितिबन्धके उत्कृष्ट कालके समान है।

दर, पाँचों मनोयोगी श्रीर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मों के जधन्य श्रीर श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हुर्त है। काय योगी जीवोंमें सात कर्मों के जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल श्रनन्तकाल है। श्रोदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल श्रनन्तकाल है। श्रोदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हुर्त है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुक्तमुं हुर्त है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। श्रीदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्तियकमिश्रकाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रपने उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समान काल है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मनोयोगियोंके समान काल है। इसी प्रकार श्राहारकाययोगियोंके जानना चाहिए। कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारकोंमें श्रपने अपने उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समान काल है।

६०. इत्थि॰-पुरिस॰-एावुंस॰ सत्तारणं क॰ जह॰ स्रोघं । स्रज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ पिलदोवमसदपुधत्तं । जह॰ स्रंतो॰, उक्क॰ सागरोवमसदपुधत्तं । जह॰ एग॰, उक्क॰ स्राणंतकालमसंखे॰ । स्रवगद॰ सत्तारणं क॰ जह॰ स्रोघं । स्रज॰ जह॰ एगस॰, उक्क॰ स्रंतो॰ । एवं सुहुमसंप॰ इराणं कम्मार्णं।

६१. कोधादिश सत्तरणं क॰ मराभंगो।

६२. मदि०-सुद० सएत्तएएां क० जह० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० ज० श्रंतो०, उक्क० श्रसंखेज्जा लोगा । विभंगे सत्तएएां क० जह० जह० उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू० । श्राभिणि०-सुद०-

विशेषार्थ—काययोगमें जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनमें श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रपनी काय स्थितिप्रमाण घटित हो जाता है जो कि श्रनन्त काल श्रथीत् श्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण उपलब्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

हैं। स्त्रीवेद, पुरुपवेद और नपुंसकवेदमें सात कर्मों के जघन्य स्थितिवन्धका काल ख्रोघके समान है। स्त्रीवेदमें अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्तवप्रमाण है। पुरुपवेदमें जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्तवप्रमाण है। तथा नपुंसकवेदमें जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है। अपगतवेदमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका काल शोधके समान है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयममें छह कर्मोंका काल है।

विशेषार्थ—जो जीव पुरुषवेदसे उपशमश्रेणि पर श्रारोहण करता है वह उपशमश्रेणिमें मरण कर नियमसे पुरुषवेदी ही होता है, इसिलये इसमें श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध नहीं होता। यही कारण है कि पुरुषवेदमें सातों कमोंके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय वपलब्ध नहीं होता। यही कारण है कि पुरुषवेदमें सातों कमोंके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय नहीं कहा। फिर भी यह काल कैसे प्राप्त होता है यह घटित करके वतलाते हैं—एक पुरुपवेदी जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ा श्रीर उतर कर वह सात कमोंका श्रज्ञघन्य स्थितवन्ध करने लगा। पुनः श्रन्तमु हूर्तके वाद वह उपशमश्रेणि पर चढ़ा और श्रनिवृत्तिकरणके श्रन्तिम समयमें उसने मोहनीयकी तथा सूदमसाम्परायके श्रन्तिम समयमें उसने श्रेप छह कमोंकी वन्धन्युन्छित्ति की। इस प्रकार यदि देखा जाय तो यहाँ सात कमों के श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्यकाल श्रन्तमु हूर्त उपलब्ध हो जाता है। यही कारण है कि पुरुषवेदमें यह काल उक्त प्रकारसे कहा है। शेष कथन सुगम है।

९१. क्रोधादि चारमें सात कर्मोंका उक्त काल मनोयोगियोंके समान है। तात्पर्य यह है क्रि जिस प्रकार मनोयोगियोंके सात कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजधन्य स्थितिबन्धका काल कह श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए।

९२. मत्यद्यानी और श्रुताद्यानी जीवोंमें सात कमोंके जधन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्क्रप्टकाल श्रन्तर्मु हुत है। श्रजधन्य स्थितवन्धका जघन्य काल श्रन्मु हुत है और उत्क्रप्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। विभङ्गद्यानमें सात कमोंके जधन्य स्थितवन्धका जधन्य श्रीर उत्क्रप्ट काल श्रन्तर्मु हुत है। श्रजधन्य स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्क्रप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। श्राभिनिवोधिक

त्रोधि॰-मण्पण्डन॰-संजद-सामाइ॰-छेदो॰-परिहार॰-संजदासंजद॰ जनकस्सभंगो । असंजद॰-अन्भवसि॰-मिच्छादिष्टि मदिभंगो ।

- ६२. चक्खुदं ॰ तसपज्जत्तभंगो । अचक्खु ॰ -भवसि ॰ ओघं । एवरि भवसि ॰ अणादियो अपज्जवसिदो एत्थि । ओधिदं ॰ -सम्मादि ॰ -खइग ॰ -वेदग ॰ उक्कस्सभंगो ।
- ६४. किएएा-एविन्काउ० उक्कस्सभंगो । तेउले०-पम्मले० सत्तरएां क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० अंतो०, उक्क० वे अद्वारस सागरोव० सादिरे०। सुक्काए सत्तरएां क० जह० जह० उक्क० अंतो० । अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरे०।
- ६५. उवसम् सत्तराणं क॰ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ श्रंतो॰ । श्रज॰ जह॰ उक्क॰ श्रंतो॰ । सासरास॰ श्रहराणं क॰ सम्मामि॰ सत्तराणं क॰ उक्कस्सभंगो । सिराण॰ पंचिदियपज्जत्तभंगो । श्रसिराण॰ तिरिक्खोपं ।
- ६६. त्राहार॰ सत्तराएं क॰ जह॰ जह॰ उक्क॰ त्रंतो॰ । अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ त्रंगुलस्स असंखेजनिद्भागो । एवं वंधकालो समत्तो ।

क्षानी, श्रुतक्षानी, श्रवधिक्षानी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविश्रुद्धिसंयत श्रौर संयतासंयत इनमें जघन्य स्थिति वन्धका काल उत्कृप्रके समान है। श्रसंयत, श्रभन्य श्रौर मिथ्यादृष्टियोंमें मत्यक्षानियोंके समान है।

९३. चक्षुदर्शनवालोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान है। श्रचनुदर्शनवाले श्रीर भव्य जीवोंमें श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि भव्योंमें श्रनादि-श्रपर्यवसित विकल्प नहीं होता। श्रवधिदर्शनी, सम्यग्हिए, न्नायिकसम्यग्हिए श्रीर वेदकसम्यग्हिए जीवोंमें कालश्रपने श्रपने उत्कृषके समान है।

९४. कृष्ण, नील ग्रोर कापोत लेश्यामें काल ग्रपने उत्कृप्टके समान है। पीत ग्रीर पद्मलेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट काल ग्रन्तमु हूर्त है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल ग्रन्तमु हूर्त है तथा उत्कृप्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर ग्रीर साधिक ग्रठारह सागर है। ग्रज्ञछेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृप्ट काल ग्रन्तमु हूर्त है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल ग्रन्तमु हूर्त है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल ग्रन्तमु हूर्त है तथा उत्कृप्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

९४. उपशमसम्यग्दि श्यों सात कर्मों के जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। सासादनसम्यग्दि श्यों आठ कर्मों का और सम्यग्मिण्यादि श्यों सात कर्मों का काल उत्कृष्टके समान है। संक्षियों में पंचेन्द्रियपर्यातकों के समान काल है और असंक्षियों में सामान्य तिर्यञ्चों के समान काल है।

^{९६}. ग्राहारकोंमें सात कमेंकि जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट काल ग्रन्त-मुं हुत है । ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रंगुलके श्रसंख्यातवें मागप्रमाण है ।

१. मूलप्रतौ उक्क० जह० श्रंतो इति पाठः।

अंतरपरूवगा

६७. वंधंतरं दुविधं—जहएणयं उनकस्सयं च । उनकस्सए पगदं । दुविधो ि एवि सो-त्रोघेण त्रादेसेण य । तत्थ त्रोघेण सत्तएणं कम्माणं उनकस्सिट्टिदिवंधंतरं जह व्रातो , उनक त्राणंतकालमसंखे । त्राणु जह एग , उनक त्रांतो । त्राणु उनक जह पुन्वकोडिदसवस्ससहस्साणि समयूणािण, उनक त्रांतो । त्राणु उनक जह पुन्वकोडिदसवस्ससहस्सािण समयूणािण, उनक त्रांतो । त्राणु जह त्रांतो , उनक त्रेतीसं साग सािद्रे ।

विशेषार्थ-इस प्रकरणमें जहाँ जो विशेषता थी उसका हम स्पष्टीकरण कर आये हैं। साधारणतः सर्वत्र श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी कायस्थिति प्रमागु प्राप्त होता है श्रीर जहाँ भवस्थित ही कायस्थित है वहाँ तत्प्रमाग् प्राप्त होता है। वहुत सी ऐसी भी मार्गणाएँ हैं जिनमें भवस्थिति श्रौर कायस्थितिका प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, इसलिए वहाँ उस मार्गणाका जो उत्कृप्ट काल हो तत्प्रमाण श्रजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृप्ट काल कहना चाहिए। मात्र कुछ मार्गणाएँ इस नियमका अपवाद है। उदाहरणार्थ मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानका उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तन प्रमाण है पर इनमें श्रज्ञघन्य स्थितिवन्ध का उत्कृष्ट काल ग्रसंख्यात लोक प्रमाण ही प्राप्त होता है। सो इसका खुलासा सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जान हेना चाहिए। तथा इसी प्रकार सर्वत्र सब कर्मोंके जघन्य स्थिति-वन्धके जघन्य ग्रौर उत्कृप्ट कालका तथा ग्रजघन्य स्थितिवन्धके जघन्य कालका खुलासा ग्रोघ प्ररूपणाको ग्रौर वन्धस्वामित्वको देखकर कर छेना चाहिए। यहाँ इतना विशेष कहना है कि यहाँ सर्वत्र ग्रायुकर्मके जधन्य श्रीर ग्रजधन्य स्थितियन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल नहीं कहा है। सो इसका कारण यह है कि जहाँ श्रायुकर्मका वन्ध सम्भव है वहाँ श्रायुकर्म के जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्क्रप्ट काल एक समय तथा श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट काल ग्रन्तमु हुर्त प्रमाण उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इसका कहीं भी निर्देश नहीं किया है।

इसप्रकार वन्धकाल समाप्त हुन्ना। अन्तरप्ररूपणा

९७. वन्धका ग्रन्तरकाल दो प्रकारका है—जघन्य ग्रीर उत्कृप्ट । सर्वप्रथम उत्कृप्टका प्रकरण है । इसकी ग्रपेता निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ ग्रीर ग्रादेश । उनमें से ग्रोघकी ग्रपेता सात कमें के उत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमुं हुर्त है ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर ग्रन्त काल है जो ग्रसंख्यात पुद्रलपरिवर्तनप्रमाण है । ग्रानुत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर ग्रन्तमुं हुर्त है । ग्रायुकर्मके उत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय कम पूर्वकोटि ग्रीर दस हजार वर्ष है ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर ग्रन्त काल है जो ग्रसंख्यात पुद्रलपरिवर्तनप्रमाण है । ग्रानुत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमुं हुर्त है ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होनेके वाद पुनः उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कमसे कम ग्रन्तमु हुर्त कालके वाद होता है, इसिलए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तमु हुर्त कहा है। तथा जो संक्षी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके एकेन्द्रिय ग्रीर विकेन्द्रिय पर्यायमें ग्राविलके ग्रसंख्या- तवें भागमात्र पुद्रल परिवर्तनकाल तक परिश्रमण कर पुनः संक्षी पंचेद्रिय पर्याप्त होकर उक्त कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता है उसके उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका

६८. त्रादेसेण ऐरइगेस सत्तरणं कम्माणं उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० देस्०। श्रणुक्क० जह० एग०, उक्क० श्रंतो। श्रायुग० उक्क० णित्य श्रंतरं। श्रणुक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रम्मासं देस्०। एवं सत्तपु- द्वीस श्रपपणो द्विदी देसूणा।

उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। इसीसे यहाँ उक्त कर्मींके उत्कृप्ट स्थितिवन्घका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकोल अर्थात् असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण कहा है। सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृप्ट काल अन्ध हुर्त होनेसे यहाँ इनके अनु-त्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय और उत्कृप्रग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त कहा है। ग्रोघसे श्रायुकर्मका उत्कृप्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिकी श्रायुवाला तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य श्रपने प्रथम त्रिभाग कालके शेप रहने पर करता है। यदि ऐसा जीव उत्कृप्ट स्थितिवन्ध करके श्रीर उसको त्रपकर्षण द्वारा दश हजार वर्ष प्रमाण करके प्रथम नरकमें या भवनवासी ग्रौर व्यन्तरोंमें उत्पन्न होकर तथा वहां क्रमसे पूर्व कोटिप्रमाण श्रायुका वन्ध करके पुनः मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होकर पुनः प्रथम त्रिभागमें तेतीस सोगर प्रमाण उत्कृप्ट श्रायुका वन्ध करता है तो श्रायुकर्मके उत्ह्रप्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम पूर्वकोटि श्रौर दस हजार वर्ष प्रमाण उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इसका जघन्य ग्रन्तर उक्त-प्रमाण कहा है। उत्कृप्ट अन्तर अनन्तकाल है यह स्पप्ट ही है। जो जीव अन्तर्मु हुर्तके अन्तरसे आयुकर्मका अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता है उसके उसका जघन्य अन्तर अनुर्हहूर्त उपलब्ध होता है श्रीर जिस मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चने प्रथम त्रिभागमें श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया तथा इसके वाद द्वितियादि समर्थोमें अनुत्कृप्ट स्थितिवन्ध किया। श्रनन्तर उत्कृष्ट स्थितिके साथ वह देव या नारकी हुआ। पुनः वहाँ उसने आयुके अन्तमें अन्मु हूर्व काल शेष रहनेपर पुनः श्रायुका अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध किया तो उसके श्रायुकर्मके श्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धका साधिक तेतीस सागर उत्कृष्ट ग्रन्तर काल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यहाँ श्रायुकर्मके श्रनुत्कृप्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त ग्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है।

९८. श्रादेशकी श्रपेक्षा नारिकयों में सात कमों के उत्कृष्टं स्थितवन्धका जद्यन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रामुत्कृष्ट स्थितवन्धका जद्यन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। श्रामुक्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर तहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जद्यन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सात पृथिवियों जानना चाहिए। इतनी विशेपता है कि प्रत्येक पृथिवों सत्त कमों के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रम्त पृथिवों सत्त कमों के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रपनी श्रमी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—सातों पृथिविथोंमें सातों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रन्तमुं हूर्तके श्रन्तरसे या कुछ कम श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट श्रायुके श्रन्तरसे हो सकता है। इसीसे यहाँ सातों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तमुं हूर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर सामान्यसे कुछ कम तेतीस सागर तथा प्रत्येक पृथिवीको श्रपेत्ता कुछ कम श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण कहा है। यहाँ श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रवसर यदि श्राता है तो एकवार ही श्राता है। इसीसे श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

- ६६. तिरिक्लेग्र सत्तरणं कम्माणं श्रोघभंगो । श्रायु० उक्क० णित्य श्रंतरं । श्रयुक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० तिरिण पित्ति। सादि० । पंचिदियतिरिक्त०३ सत्तरणं क० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । श्रयु० श्रोघं । श्रायु० तिरिक्तोघं । पंचिदियतिरिक्तश्रपज्ज० संत्तरणं कम्माणं उक्क० जहरायु० श्रंतो० । श्रयु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रायु० उक्क० जह० श्रंतो० सम्पूणं, उक्क० श्रंतो० । श्रयुक्क० जहरायुक्क० श्रंतो० । एवं सन्वश्रपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं णाद्वं । मणुस०३ पंचिदियतिरिक्तभंगो ।
- १००. देवेसु सत्तरणं कम्माणं उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रहारससागरो० सादिरे० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो । श्रायु० णिरयभंगो । एवं सन्वदेवाणं श्रप्पप्पणो हिदी देसूणा कादन्वा ।
 - १०१. एइंदिएस सत्तरएां क० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रसंखेज्जा लोगा।
- ९९. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका ग्रन्तर श्रोघके समान है। आयुक्मंके उत्हृष्ट स्थिति-वन्धका ग्रन्तर नहीं है। श्रायुक्मंके श्रवुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है और उत्हृष्ट श्रन्तर साधिक तीन पल्य है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रकमें सात कर्मोंके उत्हृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है श्रीर उत्हृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है। श्रवुत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रायुक्मंके उत्हृष्ट श्रीर श्रवुत्कृष्ट स्थिति वन्धका श्रन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपयाप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तमुं हुर्त है। श्रायुक्मंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है। श्रायुक्मंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका का जघन्य श्रन्तर एक समय कम श्रन्तमुं हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तमुं हुर्त है। श्रवुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है। इसी प्रकार श्रस श्रीर स्थावर सव श्रपर्याप्तकोंके जानना चाहिए। मनुष्यंत्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ग्रपर्याप्तकोंकी कायस्थिति ग्रन्तमु हुर्त प्रमाण होनेसे इनमें ग्रायुक्तमेंके उत्कृष्ट स्थितियन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल ग्रन्तमु हुर्त उपलब्ध हो जाता है।

१००. देवोंमें सात कमोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृप्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृप्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुक्तमंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार सब देवोंके सात कमोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका उत्कृप्ट अन्तर काल कहते समय वह कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृप्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विशेपार्थ—देवोंमें सात कर्मीका श्रोघ उत्क्रंप्ट स्थितिबन्ध बारहवें कल्पतक होता है। इसीसे यहाँ सामान्य रूपसे देवोंमें सात कर्मीके उत्क्रंप्ट स्थितिबन्धका उत्क्रंप्ट श्रन्तरकाल साधिक श्रठारह सागर प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०१. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक अणु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰ । आयु॰ उक्क॰ जह॰ वावीसं वस्ससहस्साणि समयूणाणि, उक्क॰ अर्णतकालमसंखे॰ । अणुक्क॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ वावीसं वस्ससहस्साणि सादि॰ । वादर॰ सत्तरणं क॰ उक्क॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ अंगुलस्स असंखे॰ । पज्जत्ते संखेंज्जाणि वस्ससहस्साणि । अणु॰ जह॰ एगस॰, उक्क॰ अंतो॰ । सुहुम॰ सत्तरणं क॰ उक्क॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ अंगुलस्स असंखे॰ । पज्जत्ते अंतोस्ठ॰ । आणु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰ । आयु॰ सन्वेसिं उक्क॰ जह॰ भविद्धिदी समयू॰ । उक्कस्सेण सगिद्धिदी । अणु॰ पगिद्अंतरं ।

१०२. वेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० तेसि चेव पज्जत्ता० सत्तरणं क० उक्क० जह० ग्रंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। ग्रणु० ग्रोघं। ग्रायुग० उक्क० जह० वारस वस्साणि एगूणवरणरादिंदियाणि छम्मासाणि समयूणाणि। उक्क० कायिहदी। श्रणुक्क० जह० ग्रंतो०, उक्क० वारसवस्साणि एगूणवरणरादिंदियाणि छम्मासाणि सादिरेयाणि।

समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। श्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम बाह्स हजार वर्ष है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तकाल है जो श्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक वाहस हजार वर्ष है। वादर एकेन्द्रियोंमें सात कमौंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें यह उत्कृष्ट श्रन्तर संख्यात हजार वर्ष है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। सूक्ष्म-एकेन्द्रियोंमें सात कमौंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। सूक्ष्म-एकेन्द्रियोंमें सात कमौंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। इन सबके श्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रम्ती-श्रपनी कायस्थित प्रमाण है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर प्रकृतिबन्धके श्रन्तर प्रमाण है।

१०२. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय श्रीर चतुरिन्द्रिय जीवोंमें तथा इन्होंके पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर संख्यात हजार वर्ष है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर कमसे एक समय कम बारह वर्ष, एक समय कम उनचास रात्रिदिन श्रीर एक समय कम छह महीना है। तथा उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थिति प्रमाण है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कमसे साधिक वारह वर्ष, साधिक उनचास दिन श्रीर साधिक छह महीना है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्तकांको उत्कृष्ट भवस्थिति वारह वर्ष, त्रोन्द्रिय ग्रीर जीन्द्रिय पर्याप्तकांको उत्कृष्ट भवस्थिति उनचास दिन रात तथा चतुरिन्द्रिय ग्रीर चतु-रिन्द्रिय पर्याप्तकांको उत्कृष्ट भवस्थिति छह महीना है ग्रीर इन सबकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष हैं। इस स्थितिको ध्यानमें रखकर यहां सात कमांके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका

१. घ० पु ७ पु० १४१।

१०३. पंचिंदिय-तस० तेसिं चेव पज्जत्ता० सत्तराणं क० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० सगष्टिदी । श्राणु० श्रोघं । श्रापु० श्रोघं । एविर उक्करसं कायद्विदी ।

१०४. पुढ्वि॰-श्राउ॰-तेउ॰-वाउ॰-वराण्फिदि-पत्तेय॰-शियोद॰ सत्तराणं क॰ उक्क॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ श्रसंखेज्जा लोगा। पत्तेगे कायद्विदी। श्रग्रु॰ श्रोघं। श्रायु॰ उक्क॰ जह॰ वावीसं वस्ससहस्साणि सत्तवस्ससह॰ तिरिण रादिंदियाणि तिरिण वस्ससह॰ दसवस्ससह॰ श्रंतो॰ समयू॰, उक्क॰ कायद्विदी। श्रग्रु॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ भवद्विदी सादिरे॰। एवमेदेसि वादराणं। एवरि सत्तरणं कम्माणं

उत्कृष्ट श्रन्तर तथा श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रीर जघन्य श्रन्तर तथा इसके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल मूलमें कही हुई विधिसे ले श्राना चाहिए। यायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम श्रपनी-श्रपनी भवस्थिति प्रमाण कहा है सो इसका कारण यह है कि पूर्व पर्याय में जिस समय उत्कृष्ट श्रायुवन्ध हुश्रा श्रगली पर्यायमें उसी समय उत्कृष्ट श्रायुवन्ध होनेपर एक समय कम श्रपनी-श्रप्नी भवस्थिति प्रमाण जघन्य श्रन्तर-काल श्रा जाता है। श्रेष कथन सुगम है।

१०३. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस ग्रीर त्रस पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रपनी-ग्रपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। ग्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तर ग्रोघके समान है। आयु कर्मके उत्कृष्ट और ग्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तर ग्रोघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि ग्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर ग्रपनी-ग्रपनी कायस्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थित पूर्वकोटिपृथक्त अधिक सागरोपमसहस्त्रप्रमाण, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी पूर्वकोटिपृथक्त अधिक सौ सागर पृथक्तप्रमाण,
असकायिकोंकी उत्कृष्ट कायस्थित पूर्वकोटिपृथक्त अधिक दो हजार सागरप्रमाण और
असकायिकपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति दो हजार सागर प्रमाण है। इस कायस्थितिको
ध्यानमें रखकर यहाँ सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितियन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल च आयुकर्मके
उत्कृष्ट स्थितियन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१०४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रशिकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर श्रौर निगोद जीवोंमें सात कमोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहुर्त है श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। प्रत्येक वनस्पतिकायकोंमें उत्कृप्ट श्रन्तर
उनकी कायस्थितिप्रमाण है। श्रमुत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर ओघके समान
है। श्रायुकर्मके उत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर कमसे एक समय कम वाईस हजार
वर्ष, एक समय कम सात हजार वर्ष, एक समय कम तीन रात-दिन, एक समय कम तीन
हजार वर्ष, दोमें एक समय कम दस हजार वर्ष श्रौर एक समय कम श्रन्तमुंहुर्त प्रमाण है।
तथा उत्कृप्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। श्रमुत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्तप्रमाण है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक भवस्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार इनके वादरोंमें
श्रन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कमोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका
उत्कृप्ट श्रन्तरकाल कमेस्थितिप्रमाण है तथा वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्ररोरमें सात

१. घ० पु० ७ पु० १४२ व १५०।

उक्क॰ हिदि॰ उक्कस्सं कम्महिदी । वादरवणप्पदि॰ श्रंगुलस्स श्रसंसे॰ । एदेसि पज्जत्ताणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । श्रायुग॰ उक्क॰ हिदि॰ जह॰ भवहिदी समयू॰, उक्क॰ समहिदी॰ । सन्वसुहुमाणं सुहुमेईदियभंगो ।

१०५. पंचमण०-पंचवचि० सत्ताएणं क० उक्क णित्थ श्रंतरं। श्रणु० जह० एग०, उक्क श्रंतो०। श्रायुग० उक्क० श्रणु० णित्थ श्रंतरं। एवं वंउव्वियका०-श्राहारका०-कोधादि४। कायजोगि-श्रोरालि० एवं चेव। णविर श्रायु० उक्क० णित्थ श्रंतरं। श्रायु० जह० श्रंतो०, उक्क० वावीसं वस्ससहस्साणि सत्तवस्सहस्साणि सादिरे०। श्रोरालियमि०-वेउव्वियमि०-श्राहारमि०-कम्मइग०-श्रणाहारगेस्र सत्तरणं क० उक्क०

कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा इनके पर्याप्तकों में सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात हजार वर्ष है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम भवस्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर श्रंपनी स्थितिप्रमाण है। सब सूद्मकायिकों सूद्म एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक, जलकायिक, ग्रानिकायिक ग्रीर वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति प्रत्येककी श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। तथा निगोद जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति हाई पुद्रलपरिवर्तनप्रमाण है। वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर श्रानिकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वनस्पति प्रत्येकश्ररीर तथा वादर निगोद इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है। तथा इन सव वादर पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि वादर निगोद पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रन्तमु हुर्त प्रमाण है। इन सब सूदम जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रसंख्यात लोकप्रमाण है श्रीर इनके पर्याप्तकोंकी श्रन्तमु हुर्तप्रमाण है। इस प्रकार इस कायस्थितिको ध्यानमें रखकर यहाँ श्राठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल ले श्राना चाहिए। श्रेष कथन सुगम है।

१०४. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर का अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार विक्रियककाययोगी, आहारककायोगी और कोधादि चार कपायमें जानना चाहिए। काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कमसे साधिक वाईस हजार वर्ष और साधिक सात हजार वर्ष है। औदारिकिमिश्रकाययोगी वैक्रियिकिमिश्रकायोगी, आहारकिमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। औदारिकिमिश्रकाययोगमें आयुकर्मके उत्कृष्ट श्रीर

१. घ० पु० ७ पु० १४३ । २. घ० पु० ७ पु० १४८ । ३. घ० पु० ७ पु० १४४ और १४९ । ८. घ० पु० ७ पु० १४७ ।

श्रमुक्त॰ स्वति श्रंतरं । श्रायु॰ श्रोरालियमि॰ उक्त॰ श्रमु॰ बादरएइंदियश्रपज्जत्त-भंगो । श्राहारिमस्स॰ श्रायु॰ स्वतिथ श्रंतरं ।

१०६. इत्थि॰-पुरिस॰-एावुंस॰ सत्त्तरणं कम्माणं उक्क॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ पिलदोवमसदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं श्रणंतकालमसंखे॰। श्रणु॰ श्रोघं। श्रायु॰ तिएणं वि उक्क॰ जह॰ पुन्वकोडिदसवस्ससहस्साणि समयू॰। उक्क॰ श्रप्पपणो कायद्विदी। श्रणु॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्कस्सेण पणवएणं पिलदो॰ सादि॰ तेत्तीसं-सादि॰। श्रवगद॰ सत्तरणं क॰ उक्क॰ एत्थि श्रंतरं। श्रणु॰ जह॰ उक्क॰ श्रंतो।

श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके श्रन्तरका निर्देश वाद्र एकेन्द्रिय श्रपयितकोंके समान है। तथा श्राहारकिमश्रकाययोगमें श्रायुकर्मके उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ — जिस जीवके प्रारम्भमें सात कर्मोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर वीचमें एक समयके लिए उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है उसके पांचों मनोयोग और पांचों वचन-योगमेंसे कोई एक योगमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय उपलब्ध होता है और उपशम श्रेणिपर चढ़कर और पुनः उतरकर विविद्यत योगमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर्म हुर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध होता है। इन योगोंमेंसे प्रत्येकका काल इतना अरूप है जिससे इनमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिबन्ध या दो बार उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट आयुक्रमेंका वन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरका तथा आयुक्षमेंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरका निपेध किया है। काययोगमें आयुक्षमेंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरका निपेध किया है। काययोगमें आयुक्षमेंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल सम्भव नहीं है यह तो स्पष्ट ही है, क्योंकि जो पिछली बार काययोगमें आयुक्षमेंका उत्कृष्ट स्थितिबन्धक वार योगपरिवर्तन होकर मन, वचन और काय तीनों योग हो लेते हैं। हाँ, औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष प्रमाण होनेसे सामान्यसे काययोगमें साधिक वाईस हजार वर्ष प्रमाण आयुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल अवश्य बन जाता है। शेष कथन सुगम है।

१०६. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर तीनों वेदोंमें क्रमसे सौ पल्य पृथक्त्व' सौ सागरपृथक्त्व' और असंख्यात पुद्रल परिवर्तनोंमें लगनेवाले कालके वरावर अनन्त काल' है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। तीनों हो वेदोंमें आयुक्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम एक पूर्वकोष्टि और दस हजार वर्ष है। तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर स्त्रीवेदमें साधिक पचपन पत्थ तथा शेष दो वेदोंमें साधिक तेतीस सागर है। अपगतवेदमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पत्यपृथक्तव, सौ सागरपृथक्तव श्रौर श्रनन्त काल है। इसीसे यहाँ सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम उक्त

१. मूलप्रती जह० जह० अंती इति पाटः। २. घ० पु० ७ पृ० १५३।

इ. यु पु ७ पु १ पद । ४. यु पु ७ पु १ ५७। ५. देखो घ० पु ० ५ ५ १ ५ ६ ।

१०७. मदि०-सुद०-असंज०-भविसः -अव्भविसः -िमच्छादि० मूलोघं । विभंगे सत्तराणं क० उक्क० जह० त्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० देस्० । अणु० त्रोघं । आयु० शिरयोघं । आभि०-सुद०-ओधि० सत्तराणं कम्मा० उक्क० णित्य अंतरं । अणु० ओघं । आयु० उक्क० जह० पितदो० सादि०, उक्क० छाविद्याग० देस्० । अणु० ओघं । एवं ओधिदं०-सम्मादि० । मरापज्जव० सत्तराणं क० उक्क० रात्यि अंतरं । अणुक्क० जह० यात्यि अंतरं । अणुक्क० जह० यात्य अंतरं । अणुक्क० जह० परिश्र अंतरं । अणुक्क० जह० सत्तराणं । सामाइ०-छेदो०-परिहार० सत्तराणं क० उक्क० अणु० शित्य अंतरं । आयु० मरापज्जवभंगो । एवं संजदासंजदा० ।

प्रमाण कहा है। श्रायुकर्मके उत्हृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर काल श्रोघ मक्ष्पणामें जिस प्रकार घटित करके बतला श्राये हैं उस प्रकार यहाँ भी घटित कर छेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी श्रपेला उत्हृष्ट नरकायुका श्रोर स्त्रीवेद तथा पुरुपवेदकी श्रपेला उत्हृष्ट देवायुका वन्ध कराके यह श्रन्तर काल लाना चाहिए। स्त्रीवेदी जीवकी उत्हृष्ट भवन्थित पचपन पल्यप्रमाण श्रोर पुरुषवेदी व नपुंसकवेदीकी उत्हृष्ट भवन्थित तेतीस सागर प्रमाण होनेसे श्रायुकर्मके श्रमुत्हृष्ट स्थितिवन्धका उत्हृष्ट अन्तर स्त्रीवेदमें साधिक पचपन पल्य तथा पुरुषवेद श्रोर नपुंसकवेदमें साधिक तेतीस सागर कहा है। श्रपगतवेदमें सात कर्मोंका उत्हृष्ट स्थितिबन्ध उपशमश्रेणीसे उत्तरते समय होता है। तथा इसके वाद वह सवेदी हो जाता है। इससे श्रपगतवेदमें उत्हृष्ट स्थितिवन्धके श्रन्तरकालका निषेध किया है। तथा मरणके विना उपशान्त मोहका जघन्य श्रोर उत्हृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त होनेसे श्रमुत्हृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रोर उत्हृष्ट श्रम्म है।

१०७. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, भन्य, ग्रभन्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें त्राठों कर्मोंके उत्कृप्ट श्रीर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तरकाल मृलोघके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिवृन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्सुहूर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर' है। श्रमुत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्हुए अन्तरकाल श्रोघके समान है। तथा श्रायुकर्मके उत्कुए श्रीर श्रमुत्कुए स्थितवन्धका जघन्य और उत्कृप्ट अन्तर सामान्य नारिकयोंके समान है। आमिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रौर श्रविषद्मानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर नहीं है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुक्सके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर साधिक पत्यप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी श्रीर सम्यग्दिष्ट जीवोंमें जानना चाहिए। मनः पर्ययहानी जीवोंमें सात कर्मींके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर् अन्तर्भुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवोंमें जानना चाहिये। सामायिक संयत छेदोपस्थापना संयत श्रौर परिहारविशुद्धि संयतोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है ।

१. मूलप्रती आयु० जह० उक्क० जह० इति पाठः। २. घ० पु० ७ ए० १६३।

रे. तत्त्वा०, श्र० ४ स्० ३३। ४. घ० पु० ७ पू० १ म०।

स्रुहुमसंप॰ छएएां कम्मा॰ उक्क॰ श्रग्रु॰ एत्थि श्रंतरं।

१०८ चनखुदंसणी॰ तसपज्जत्तभंगो। अचनखुदं० श्रोघं।

१०६ किएए-एोल-काउ॰ सत्तरएं क॰ उक्क॰ जह॰ श्रंतो, उक्क॰ तेत्तीसं साग॰ सादि॰ सत्तारस-सत्तसागरो॰ देस् ॰ । श्राणु॰ श्रोघं । श्रापु॰ उक्क॰ एत्थि श्रंतरं । श्राणु॰ जह॰ श्रंतो, उक्क॰ छम्मासं देस्एं। तेउ-पम्माए सत्तरएं क॰ उक्क॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ वे श्रद्वारस सागरो॰ सादिरे॰। सेसं देवोघं । सुकाए सत्तरएं

श्रायुकर्मका भंग मनःपर्ययद्वानके समान है। इसी प्रकार संयतासंयतोंके जानना चाहिए। स्क्ष्मसाम्पराय श्रुद्धिसंयतोंमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रुनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—विभङ्ग ज्ञानका उत्कृष्ट काल सातवें नरकमें उत्कृष्ट श्रायुवाले नारकीके कुछ कम तेतीस सागर होता है। इसीसे इसमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा है। श्राभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान श्रीर श्रवधिज्ञानमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मिथ्यात्वके सम्मुख हुए ग्रविरत सम्यग्हिएके होता है। यही कारण है कि इनमें उत्कृप्ट स्थितियन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। सौधर्म और ऐशान कल्पकी जघन्य स्थिति साधिक पल्यप्रमाण होती है। इसीसे इन तीन ज्ञानोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर साधिक पत्यप्रमाण कहा है। भवनित्रकर्मे सम्यग्दृष्टिका उत्पाद नहीं होता, इसिलए इससे कम अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होता। मात्र यहाँ पूर्व-कोटिके श्रायुवाले मनुष्यके प्रथम त्रिभागमें तेतीस सागरप्रमाण उत्क्रप्ट श्रायुका वन्ध करावे । पुनः श्रपकर्पण द्वारा श्रायुको साधिक पल्यप्रमाण स्थापित कराके सौधर्म श्रौर पेशान करपमें उत्पन्न करावे। श्रनन्तर पुनः पूर्वकोटि प्रमाण श्रायुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न कराके प्रथम त्रिभागमें तेतीस सागर प्रमाण उत्कृप श्रायुका बन्ध कराके यह श्रन्तरकाल छे श्रावे। इनमें श्रायुक्तमंके उत्क्रप्ट स्थितिवन्धका उत्क्रप्ट श्रन्तरकाल जो कुछ कम छ्यासठ सागरप्रमाण कहा है सो यह वेदकसम्यक्त्वके उत्कृष्ट कालको ध्यानमें रखकर कहा है। यहाँ वेदकसम्यक्तवको प्राप्त कराके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करानेसे यह अन्तरकाल शप्त होता है। शेप कथन सुगम है।

१०८. चक्षुदर्शनी जीवोंमें जस पर्याप्तकोंके समान भंग है और अचजुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान है।

विशेषार्थ—त्रस पर्याप्तकोंके समान चचुदर्शनी जीवोंकी कायस्थिति है, इसिलये इनमें आठ कमोंके उत्क्रप्ट और अनुत्कृप्ट स्थितियन्धका जधन्य और उत्क्रप्ट अन्तरकाल त्रसपर्थी- प्रकोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०९. कृष्ण, नील श्रीर कापीत लेश्यावालों सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थितबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर श्रीर कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर श्रोधके समान है। श्रायुक्तमं के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर महीं है, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। पीत श्रीर पद्मलेश्यामें सात कर्मों ने उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक दो सागर श्रीर साधिक अठारह सागर है। श्रेष अन्तर सामान्य देवोंके समान है। श्रुक्त-

क॰ उक्क॰वं॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ श्रद्धारस साग॰ सादि॰। श्रशुक्क॰ श्रोघं। श्रायु॰ देवभंगो तिएएं पि।

११० खइगस० सत्तरणं क० उक्क० जह० श्रंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। श्रणु० श्रोघं। श्रायु० उक्क० णित्य श्रंतरं। [श्रणुक्क० पगिदश्रंतरं।] वेदग० सत्तरणं क० उक्क० श्रणु० णित्य श्रंतरं। श्रायु० उक्क० जह० पित्रदो० सादिरे०, उक्क० श्राविष्ठसाग० देस्व०। श्रणु० पगिदश्रंतरं। उवसमस० सत्तरणं क० श्रोधिभंगो। सासणस० सम्मामि० श्रहरणं क० सत्तरणं क० उक्क० श्रणु० णित्य श्रंतरं।

लेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मका भंग तीनों ही लेश्याओं में सामान्य देवोंके समान है।

विशेषार्थ— कृष्ण, नील और कापोत लेश्याका उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। इसीसे इन लेश्याओं सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा है। मात्र नील और कापोत लेश्यामें यह कुछ कम उपलब्ध होता है। इन लेश्याओं का इतना चढ़ा काल नरकमें ही उपलब्ध होता है और नरकमें आयुकर्मका बन्ध अधिक से अधिक छह माह काल शेप रहनेपर होता है। इसीसे इन लेश्याओं में आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थिति वन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम छह माह कहा है। पीत और पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। तथा अक्ललेश्याका काल यद्यपि साधिक तेतीस सागर है पर अक्ललेश्यामें सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सहस्रार कल्पमें ही होता है यही कारण है कि इन तीन लेश्याओं सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमसे साधिक दो सागर साधिक अठारह सागर कहा है।

११०. चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुद्धर्त है, उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृति वन्धके अन्तरके समान है। वेदकसम्यग्यदृष्टियोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर साधिक पत्यप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर प्रमाण है। अनुकृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिअन्तरके समान है। उपश्मसम्यग्दृष्टियोंमें सात कमोंका अन्तर अवधिक्षानीके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मध्यादृष्टियोंमें कमसे आठ और सात कमोंके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ— चायिकसम्यग्दिष्टके अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे सात कर्मोका अपने योग्य उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव है। कारण कि उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध इससे कम अन्तरकाल से नहीं होता। तथा इसके साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी सात कर्मोका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव है। कारण कि चायिक सम्यग्दर्शनके होने पर यह जीव संसारमें साधिक तेतीस सागर कोलसे अधिक काल तक नहीं रहता। यतः यह जीव जायिकसम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेके प्रारम्भमें और अन्तमें सात कर्मोका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करे और मध्यमें अनुकृष्ट स्थितिवन्ध करता रहे तो यह अन्तरकाल उपलब्ध हो जाता है। यही कारण है कि इसके सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य

- १११ सिएए॰ पंचिदियपज्जत्तभंगो। असिएए० सत्तरएां क॰ मूलोघं। आयु॰ उक्क॰ एत्थि अंतरं। अणु॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ पुव्वकोडी सादिरे॰।
- ११२. त्राहार॰ सत्त्तपणं क॰ उक॰ जह॰ श्रंतो॰, उक॰ श्रंगुलस्स असंखे। श्रणु॰ श्रोघं। श्रायु॰ श्रोघं। एवरि सगिहदी भाणिद्वा। एवं उकस्सिट्ठिद्विंधं-तरं समत्तं।
- ११३. जहरूएए पगदं । दुविधो शिहेसो—श्रोघेश श्रादेसेश य। तत्थ श्रोघेश सत्तरूणं कम्माणं जह० शत्थि श्रंतरं । श्रज० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रायु०-जह० जह० खुद्दाभव० समयूणं, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि सादि० । श्रज० जह०

श्रन्तरकाल श्रन्तर्मुह्तं श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। ज्ञायिकसम्य-क्त्वमें देवायुके प्रकृतिवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर एकपूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कह श्राये हैं। वही यहां श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट श्रन्तर काल उपलब्ध होता है। इसीसे यहां श्रायुकर्मके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल प्रकृतिवन्धके श्रन्तरकालके समान कहा है शेष कथन सुगम है।

१११. सं ही जीवों में श्राठों कमों के उत्कृप श्रीर श्रमुत्कृप स्थितवन्धका श्रन्तर पञ्चे द्विय पर्याप्तकों के समान है। श्रसं ही जीवों में सात कमों के स्थितवन्धका श्रन्तर मूलोधके समान है। श्रायुकर्मके उत्कृप स्थितवन्धका श्रन्तर नहीं है। श्रमुत्कृप स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है श्रीर उत्कृप श्रन्तर साधिक पूर्वकोटि है।

विशेपार्थ—पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति सौ सागरपृथक्तव है। यही संक्षियोंकी कायस्थिति है। इसीसे यहां संक्षियोंमें ग्राठों कमौंके उत्कृप्ट व श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका ग्रन्तर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान कहा है। मूलोघ प्रकृपणामें सात कमौंके श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका उत्कृप्ट श्रन्तर ग्रसंक्षियोंकी मुख्यतासे कहा है। यही कारण है कि यहां सात कमौंके स्थितिबन्धका ग्रन्तरकाल मूलोघके समान घटित हो जाता है। शेष कथून सुगम है।

११२. श्राहारक जीवोंमें सात कमेंकि उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रगुत्कृष्ट श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट व श्रगुत्कृष्ट स्थितिवंधका श्रन्तर श्रोघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि श्रपनी स्थिति कहनी चाहिए।

विशेषार्थ—ग्राहारकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति ग्रंगुलके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण होती है। यहां इससे असंख्यातासंख्यात उत्सिर्पणी श्रवसिर्पणी काल लिया गया है। यही कारण है कि सात कमींके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर काल उक्ष प्रमाण कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिवन्धान्तर समाप्त हुआ।

११३. अव जघन्य अन्तरकालका प्रकरण है। इसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—
श्रोघ श्रीर श्रादेश। उनमेंसे श्रोधकी अपेत्ता सात कर्मोंके जघन्य स्थितवन्धका अन्तर नहीं
है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है।
श्रायुक्तमंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम श्रुद्रक भवप्रमाण है श्रीर
उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागर है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु-

१, देखो घ० पु.० ७ पृ. १८३।

अंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं सागरो॰ सादिरे॰। एवं अचक्खुदं॰-भवसि॰।

११४. आदेसेण णेरइएस सत्तरणं क० जह० अज० णित्थ अंतरं । आयु० जह० गित्थ अंतरं । अज० उक्तस्सभंगो । एवं पढमपुढवि-देवोधं-भवण०-वाणवं० । एवं चेव विदियाए याव सत्तिमि ति । एवरि सत्तरणं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० समिद्धदी देसुणा । अजहरणण० अणुक्तस्सभंगो ।

हुर्त है श्रीर उत्क्रप्र श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार श्रचनुदर्शनी श्रीर भस्य जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—श्रोघसे सात कर्मोंका जघन्य स्थितवन्ध सपक श्रेणिमें होता है, इसलिए यहाँ सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धके अन्तरका निपेध किया है। जो जीव उपरामश्रेणिमें सात कर्मोंका एक समयके लिए श्रवन्धक होकर दूसरे समयमें मरगुकर पुनः उनका वन्ध करने लगता है उसके सात कर्मोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर काल उपलब्ध होता है श्रीर जो सन्तम् हुर्तके लिए ग्रवन्थक होकर पुनः उनका वन्ध करता है उसके सात कमेंकि ग्रजधन्य स्थितिवन्धको उत्कृष्ट ग्रन्तर काल उपलब्ध होता है। इसीसे यहाँ ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर काल एक समय और उत्कृप्ट ग्रन्तर काल ग्रन्तर्मुहूर्त कहा है। श्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध क्षुद्रक भवग्रहण प्रमाण है। एक जीवने पूर्व भवमें जघन्य श्रायुका वन्ध किया। पुनः वहीं जीव दूसरे भवमें उसी समय जघन्य आयुका वन्घ करता है। इसीसे श्रायु कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय कम जुद्रकभवग्रहण प्रमाण कहा है। त्रस पर्यायमें रहनेका उत्ह्रप्ट काल साधिक दो हजार सागर है। किसी जीवको इतने कालतक जघन्य श्रायुका वन्ध नहीं होता। यही कारण है कि जघन्य श्रायुके स्थितिवन्धका उत्कृप्ट अन्तर काल साधिक दो हजार सागर कहा है। जघन्य स्थितवन्धके सिवा अजघन्य स्थितवन्ध है। इसका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त और उत्कृप्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है। इसी से यहाँ आयुकर्मके अज्ञघन्य स्थितिवन्धका यह अन्तर काल कहा है। त्रांगे जहाँ श्रोघके समान अन्तर काल आवे उसे इसी प्रकार घटित करना चाहिए।

११४. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कमोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार प्रहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी श्रीर वानव्यन्तर देवोंके जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुँ हुते है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम अपनी श्रपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रनुत्कृष्टके समान है।

विशेपार्थ—नरकमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितियन्घ श्रसंक्षीचर जीवके प्रथम श्रौर द्वितीय समयमें सम्भव है श्रौर इसके वाद श्रजघन्य स्थितियन्घ होता है। तथा जो श्रसंक्षी-चर नहीं है उसके सर्वदा श्रजघन्य स्थितियन्घ होता है। इसीसे सामान्यसे नरकमें सात कर्मोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितियन्घके श्रन्तरकालका निपेध किया है। श्रायुकर्मका जघन्य स्थितियन्घ सवसे जघन्य श्रावाधा कालके रहने पर होता है। इसके वाद पुनः श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता। यही कारण है कि यहाँ श्रायुकर्मके जघन्य स्थितियन्धके श्रन्तरकालका भी निपेध किया है। श्रजघन्य स्थितियन्धका श्रन्तरकाल उत्क्रप्रके समान है यह स्पष्ट ही है।

११५. तिरिक्षेसु सत्तरणं क० जह० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रसंखेज्जा लोगा । श्रज० श्रोघं । श्रायु० जह० जह० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० पित्तदोक० श्रसंखे०। श्रज० जह० श्रंतो०, उक्क० तिरिण पित्तदो० सादिरे० । पंचिदियतिरिक्तव०३ सत्तरणं क० जह० जह० श्रंतो, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । श्रज० श्रोघं । श्रायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । श्रज० श्रणुक्तस्सभंगो । णविर पज्जत-जोणिणीसु श्रायु० जह० णत्थि श्रंतरं । श्रज० पगिदश्रंतरं । पंचिदियतिरिक्तश्रप-ज्जत० सत्तरणं क० जह० जह० उक्क० श्रंतो० । श्रज० श्रोघं । श्रायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जहण्णु० श्रंतो० । एवं सन्वश्रपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च । णविर मणुसश्रपज्जत्त० सत्तरणं क० जह० श्रज० णित्थ श्रंतरं । मणुस०३ सत्तरणं क०जह० श्रजह० णित्थ श्रंतरं । श्रायु०पंचिदियतिरिक्तव भंगो । जोदिसिय याव सन्वष्ट त्ति उक्कस्सभंगो ।

यतः श्रसंही जीव प्रथम नरकमें तथा भवनवासी श्रौर व्यन्तर देवोंमें उत्पन्न होता है अतः प्रथम नरक, सामान्य देव, भवनवासी श्रौर व्यन्तर देवोंमें सामान्य नरकके समान प्ररूपणा वन जाती है। यही कारण है कि इन मार्गणाश्रोंमें सामान्य नरकके समान श्रन्तरकाल कहा है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिबन्ध कभी भी सम्भव है। इसीसे इनमें जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुत्रं श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट स्थितिव्रमाण कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

११४. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तम् हूर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रसंख्यात लोकप्रमाण है। ग्रजघन्य स्थितिबन्धका ग्रन्तर ग्रोघके समान है। त्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम क्षुत्तकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृप्ट ग्रन्तर पल्यके ग्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मु हुर्त है। ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक तीन पन्य प्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रकमें सात कमींके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तवप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रायु-कर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम श्रुह्मकभवग्रहण प्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तवप्रमाण है। ग्रजघन्य स्थितवन्धका ग्रन्तर ग्रनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्त ग्रौर योनिनी जीवोंमें श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तथा श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंमें सात कर्मीके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्क्रप्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्रजञ्ञन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय कम भ्रुत्लकभवग्रह्ण प्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस श्रीर स्थावर सव श्रपर्याप्तकोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य श्रपर्या-प्तकोंके सात कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्घका श्रन्तरकाल नहीं है। मनुष्य त्रिकमें सात कर्मोंके जघन्य और ग्रजघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। ग्रायुकर्मके स्थितिवन्ध-का ग्रन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थंसिद्धितक ग्रन्तर उत्क्रप्रके समान है।

११६. एइंदिएस सत्तरणं क॰ जह॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ असंखेजा लोगा। अज॰ ओधं। आयुग॰ जह॰ जह॰ खुद्दाभव॰ समयु॰, उक्क॰ पिलदो॰ असं॰। अज॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ वावीसं वस्ससह॰ सादिरे॰। वादरएइंदिय॰ सत्तरणं क॰ जह॰ जह॰ अंगुलस्स असंखे॰। अज॰ ओघं। सेसं तं चेव। वादरपज्जते सत्तरणं क॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ संखेजाणि वस्ससहस्साणि। अज॰ ओघं। आयु॰ जह॰ णित्थ अंतरं। अज॰ पगिद्अंतरं। सन्ववादरे पज्जत्त॰ आयु॰ जह॰ णित्थ अंतरं। अज॰ पगिद्अंतरं। सन्ववादरे पज्जत्त॰ आयु॰ जह॰ णित्थ अंतरं। अज॰ पगिद्अंतरं। सुदुमेइंदि॰ सत्तरणं क॰ जह॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ अंगुलस्स असंखे॰। अज॰ ओघं। आयु॰ जह॰ जह॰ खुद्दाभव॰ समयू॰, उक्क॰ पिलदो॰ असंखे॰। अज॰ जहए खुक्क॰ अंतो। पज्जते सत्तरणं क॰ अपज्जत्मंगो। आयु॰ जह॰ णित्थ अंतरं। अज॰ जह० जह० खुताे॰।

विशेषार्थ—यद्यपि तिर्यञ्च सामान्यकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त कालप्रमाण है पर यह सव तिर्यञ्चोंकी है। इसीसे इनमें जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उनकी कायस्थितिप्रमाण न कहकर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है, क्योंकि जो तिर्यञ्च स्कूम एकेन्द्रिय होकर परिश्रमण करते हैं उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण होती है और इनमें सामान्य तिर्यञ्चोंकी अपेक्षा सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध सम्भव नहीं है। तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे जघन्य आयुका वन्ध अधिकसे अधिक पत्यके असंख्यान्त्वें भागप्रमाण काल तक नहीं होता। इसीसे इनमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवें काल प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

११६. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मु हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम चुल्लकमव-त्रहण्प्रमाण् है त्रौर उत्कृष्ट ऋन्तर पल्यके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण् है। ऋजघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक वाईस हजार वर्ष है। वादर एकेन्द्रियोंमें सात कर्मीके जघन्य स्थितिवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रङ्गुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। शेप ग्रन्तर वही है। वादर पर्याप्तके सात कर्मींके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर संख्यात हजार वर्ष है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है। सब वादर पर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें सात कर्मीके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर काल अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समयकम क्षुल्लक भवग्रहग्रमाग् है और उत्कृष्ट श्रन्तर पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। सूदम एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में सात कर्मोंके जघन्य श्रौर उत्कृष्ट स्थितिवन्यका श्रन्तर श्रपर्याप्तकोंके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तरकाल श्रन्तमु हूर्त है।

११७. वेइंदि॰-तेइंदि॰-चदुरिंदि॰ श्रद्वएएं कम्माएं उक्कस्सभंगो। श्रायु॰ जह॰ जह॰ जोवं। उक्कस्सं सगद्विदी। श्रज॰ श्रणुक्कस्सभंगो। एवं पज्जत्ता॰। एवरि श्रायु॰ जह॰ एत्थि श्रंतरं।

११८. पंचिदिय-तस०२ सत्तरणां कम्माणां मूलोघं । आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयूणां, उक्क० सगद्दिदी । पज्जत्ते णात्थि अ'तरं । अज० ओघं ।

विशेपार्थ सहम एकेन्द्रिय जीवकी उत्छए कायस्थित ग्रसंख्यात लोकप्रमाण है। इसी वातको ध्यानमें रखकर एकेन्द्रियोंमें सात कमोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्छए ग्रन्तर-काल ग्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। ग्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धके उत्छए ग्रन्तरकालका खुलासा सामान्य तिर्यञ्चोंकी प्ररूपणांके समय कर ही ग्राये हैं। एकेन्द्रिय जीवकी उत्छए भवस्थिति वाईस हजार वर्ष प्रमाण है। इसीसे इनके ग्रायुकर्मके ग्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्छए ग्रन्तर साधिक वाईस हजार वर्षप्रमाण कहा है। वादर एकेन्द्रियोंकी उत्छए कायस्थिति ग्रहुलके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे इनमें ग्राटों कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्छए ग्रन्तरकाल ग्रहुलके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनके पर्यातकोंकी उत्छए कायस्थित संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। यही कारण है कि इनके सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्छए ग्रन्तरकाल संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। इनके ग्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्धका उत्छए ग्रन्तर काल संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। इनके ग्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्धक होने पर मर कर वे वादर पर्यात्त नहीं होते। इसीसे इनके जघन्य स्थितिवन्धके ग्रन्तरकालका निपेध किया है। ग्रेप कथन स्पए ही है किन्तु यहाँ ग्रीर सर्वत्र इतना विशेष समक्षना चाहिए कि जहाँ जिसको कायस्थिति ग्रादिप्रमाण ग्रन्तरकाल कहा है वहाँ उस स्थितिके ग्रारम्भ ग्रीर ग्रन्तमें विचित्तत स्थितिका वन्ध कराकर इस प्रकार ग्रन्तरकाल ले ग्रावे।

११७. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय ग्रीर चतुरिन्द्रिय जीवोंमें ग्राठों कमोंके जघन्य ग्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल उत्कृष्ट के समान है। ग्रायुक्तमके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तरकाल ग्रोधके समान है और उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल ग्रपनी ग्रपनी स्थितिप्रमाण है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल ग्रनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार इनके पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके ग्रायुक्तमके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेपार्थ—द्वीन्द्रिय ग्रादि पर्याप्तकोंके जघन्य श्रायु क्षुल्लक भवग्रहण्प्रमाण वँधती है जिससे वे भवान्तरमें पर्याप्त नहीं रहते। इससे इनमें जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता। यही कारण है कि इनमें श्रायुक्तमेंके जघन्य स्थितिवन्धके ग्रन्तरकालका निपेध किया है। शेप कथन स्पष्ट है।

११८. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मों के ज्ञान्य श्रीर श्रज्ञाचन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल श्रोधके समान है। श्रायुकर्मके ज्ञान्य स्थितिवन्धका ज्ञान्य श्रन्तरकाल एक समय कम ख़ुल्लक भवग्रहण प्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकों में श्रायुकर्मके ज्ञान्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तथा सबके श्रज्ञाचन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तथा सबके श्रज्ञाचन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल श्रोधके समान है।

विशेपार्थ—पञ्चेन्द्रियोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्तव श्रधिक एक हजार सागर है, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्तव है, त्रस कायिकोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्तव है, त्रस कायिकोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्तव श्रधिक दो हजार सागर है श्रीर त्रसकायिक पर्याप्तकोंको उत्कृप्ट कायस्थिति दो हजार सागर है। इसे ध्यानमें रखकर इन चारोंमें श्रायुक्मके जघन्य

११६. पुढिवि॰ आउ॰ -तेउ-वाउ-वराप्फिदि-पत्तेग॰ सत्तरार्णं क॰ उक्कस्सभंगो । आयु॰ जह॰ जह॰ खुद्दाभव॰ समयूर्णं, उक्क॰ पिलदो॰ असंखे॰ । पज्जत्तगे रात्थि अंतरं । अजह॰ पगिदअंतरं । रिणोदेस सत्तरार्णं कम्मार्णं एइंदियभंगो । आयुग॰ सहुमेइंदियभंगो । वादरिणगोद॰ सत्तरार्णं कम्मार्णं जह॰ जह॰ अंतो, उक्क॰ कम्म-हिदी । अज॰ ओधं । आयु॰ जह॰ [जह॰] खुद्दाभव॰ समयू॰, उक्क॰ पिलदो॰ असंखे॰ । अज॰ जहरायु॰ अंतो॰ । वादरिणगोदपज्ज॰ वादरपञ्जत्तभंगो । सहुमिणगोद॰ सत्तराणं क॰ जह॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ अंगुलस्स असंखे॰ । आयु॰ जह॰ जह॰ खुद्दाभव॰ समयू॰, उक्क॰ पिलदो॰ असंखे॰ । अज॰ अगुक्कस्सभंगो । सहुमिणगोदपञ्जत्ता॰ सहुमएइंदियपज्जत्तभंगो ।

१२० पंचमण०-पंचवचि० जह० अज० णत्थि अंतरं। एवं कोधादि०४। णवरि लोभें मोहणी० ओघं।

स्थितिवन्यका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। इनके पर्याप्तकोंमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्यके अन्तरकालके निषेधका वहीं कारण है जो झीन्द्रिय आदि पर्याप्तकोंमें अन्तर-कालका कथन करते समय वतला आये हैं। शेप कथन सुगम है।

११९. पृथिवीकायिक, जलकायिक, ग्राग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक श्रौर वनस्पति प्रत्येकशरीर जीवोंमें सात कर्मोंके जवन्य श्रीर श्रजवन्य स्थितिवन्धकां श्रन्तरकाल उत्क्रप्रके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण्प्रमाण् है श्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण् है। इनके पर्याप्तकोंमें श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थिति-वन्धका श्रन्तरकाल एकेन्द्रियोंके समान है। तथा श्रायुकर्मके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थिति-वन्धका श्रन्तरकाल स्हम एकेन्द्रियोंके समान है। वादर निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्भुहुर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कर्मस्थितिप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अुल्लकभवग्रहण्यमाण है और उत्हुए अन्तरकाल प्यके श्रसंख्यातवें भागप्रभाग है। तथा श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्त-र्मुहूर्त है। बादर निगोद पर्याप्त जीवोंमें श्राठों कर्मोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्घका श्रन्तरकाल वादर एकेन्द्रिय पर्यासकोंके समान है। सूक्ष्म निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहुर्त है ग्रौर उत्कृप्ट ग्रन्तर श्रङ्गलके श्रसंख्यातवें भाग-प्रमाण है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ऋतर एक समय कम क्षुल्लक भव-त्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातचें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थि-तिवन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। सूक्ष्मिनगोद पर्याप्तकोंमें आठों कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर सूदम एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है।

१२०. पाँचों मनोयोगी श्रौर पाँचों वचनयोगी जोवोंमें श्राठ कमींके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार कोधादि चार कवायवाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि लोभकपायमें मोहनीयका भङ्ग श्रोधके समान है।

विशेपार्थ — लोभकपाय दसवें गुण्स्थानतक होता है, इसलिए इसमें श्रोघके समान

१२१. कायजोगि० सत्तएएं क० श्रोघं । श्रोरालियका० सत्तएएं क० मणजोगिभंगो । श्रायु० उक्तस्सभंगो । श्रोरालियिमस्स० सत्तएएं क० उक्तस्सभंगो । श्रायु० मणुसत्रपञ्जत्तभंगो । वेउिव्वयका० सत्तएएं क० जह० एतिथ श्रंतरं । श्रायु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० ! श्रायु० जह० श्रजह० एतिथ श्रंतरं । एवं श्राहा-रकायजो० । वेउिव्वयमि० सत्तएएं क० श्राहारिम० श्रष्टराएं क० कम्मइ०-श्राणा-हार० सत्तएएं क० जह० श्रजह० एतिथ श्रंतरं ।

१२२. इत्थि॰-पुरिस॰-एावुंस॰ सत्त्त्रणं क॰ जह॰ अजह॰ एात्थि अ'तरं। आयु॰ जह॰ एात्थि अ'तरं। अज॰ अणुकस्सभंगो। एविर एावुंस॰ आयु॰ जह॰ जह॰ जह॰ खुद्दाभव॰ समयूणं, जकस्सं सागरोवमसदपुधत्तं। अवगद॰ सत्तर्एएं० क॰ एत्थि अंतरं। अज॰ जह॰ उक्क॰ अंतो॰।

मोहनीय कर्मके अजवन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-र्मुहुर्त घटित हो जाता है। शेप कथन सुगम है।

१२१. काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रीदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य श्रीर अजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल मनोयोगियोंके समान है। तथा श्रायुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। तथा श्रायुकर्मका भङ्ग मनुष्य-श्रपर्यातकोंके समान है। वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तरकाल नहीं है। श्रायुकर्मके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रायुकर्मके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार श्राहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके तथा कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

१२२. स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी श्रीर नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रायुक्तमंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तथा ग्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल श्रनुत्रुष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदमें श्रायुक्तमंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय कम जुलक भवशहण प्रमाण है श्रीर उत्रुप्ट श्रन्तरकाल सौ सागर पृथक्तव प्रमाण है। श्रपगतवेदमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है तथा श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्रुप्ट श्रन्तरकाल श्रन्तर्मुहर्त है।

विशेषार्थ—तीनों वेदोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितवन्ध चपकश्रेणिमें होता है इसलिए इनमें सात कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजधन्य स्थितवन्धके श्रन्तरकालका निषेध किया है।
नपुंसकवेदमें श्रायुकर्मके जघन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल सौ सागर पृथक्तव प्रमाण्
बतलानेका कारण यह है कि इतने कालतक यह जीव संक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्यायमें रह सकता है
जिससे इसके योग्य श्रायुकर्मका जघन्य स्थितवन्ध न हो। इसके बाद यह एकेन्द्रिय पर्यायमें
जाकर यथायोग्य काल श्रानेपर जघन्य श्रायुका वन्ध करता है। श्रेष कथन स्पष्ट ही है।

१. मूलप्रती श्रोघं पृद्दंदियभंगो । श्रोरालियका० इति पाठः ।

१२३. मदि-सुदत्रप्रणा॰ सत्तरणां क० तिरिक्खोघं। त्रायु० मूलोघं। एवं असंजद०-अन्भवसि०-मिच्छादिष्टि त्ति । विभंगे शिरयोघं । आभि०-सुद०-स्रोधि० सत्तरणं क० जह० सत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक० अंतो० । श्रायु० जह० जह॰ पलिदो० सादिरे०, उक्क० छाविहसागरो० सादि० । अज० अणुकस्सभंगो । एवं श्रोधिदं०-सम्मादिहि॰ । मणपज्जव०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०-संजदासंजदा० उक्कस्सभंगो । चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो ।

१२४. इएएां लेस्साएां सत्तरएां क० जह० एतिथ अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क अंतो । आयु उक्कस्सभंगो । एविर तेउ-पम्माएं यदि दंस एमोहखवगस्स

दिज्जिद सत्तराएं क० जह० एात्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० अंतो०।

१२५. खइग० सत्तरणं क० श्रोघं । श्रायु० जह० एत्थि श्रंतरं । श्रज प्रादिश्रंतरं । वेदगस०सत्तरणं क० जह० एत्थि श्रंतरं । श्रज० जह० उक्क० श्रंतो० ।

१२३. मत्यज्ञानी श्रौर श्रुताज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थिति-वन्धका अन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तथा आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल मूलोघके समान है। इसी प्रकार असंयत, अभन्य और मिथ्या दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । विभङ्गशानमें ग्राठों कर्मोंके जघन्य ग्रीर श्रजघन्य स्थिति-वन्धका अन्तरकाल सामान्य नारिकयोंके समान है। श्रिभिनवोधिक श्रानी, श्रुतशानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं हैं। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुर्त है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर साधिक एक पत्यप्रमाण श्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक छयासठ सागर प्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार श्रविघदर्शनी श्रीर सम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिक संयत, ह्रेद्रोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धि संयत, सूच्मसाम्पराय संयत श्रीर संयता-संयत जीवोंमें इनके उत्कृष्टके समान श्रन्तरकाल है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

१२४. छह तीश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर नहीं है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रायु-कर्मका भङ्ग उत्कृपके समान है। इतनी विशेषता है कि पीत श्रीर पद्मलेश्यामें यदि दर्शन मोहनीयकी क्षपणा होती है तो इनमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल तो नहीं ही है पर अज्ञघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहुर्त है।

विशेषार्थ—पहले जघन्य स्थितिवन्धके स्वामीका निर्देश कर श्राये हैं। वहाँ पीत श्रौर पद्मलेश्यामें जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी दो प्रकारका जीव वतलाया है—एक प्रमत्त-संयत जीव श्रौर दूसरा दर्शन मोहनीयकी स्तपणा करनेवाला जीव। इसी वातको ध्यानमें रखकर यहाँ सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल दो प्रकारसे कहा है। शेष कथन सुगम है।

१२५. ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य स्थितियन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तथा श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल प्रकृतिवन्धके श्रन्तरकालके समान है। वेदक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितियन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितियन्धका आयु० उक्कस्सभंगो । अज० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । उवसमस०-सासण०-सम्मामि० उक्कसभंगो । साणिण० पंचिंदियपज्जत्तभंगो । असणिण० सत्तरणं क० तिरिक्लोघं । आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पिलदो० असंखे०। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी सादिरे०। आहाराणुवादेण आहारा० अहएणं कम्माणं ओघं । एवं वंधंतरं समत्तं ।

बन्धसरिएयासपरूवणा

१२६. वंधसिएणयासं दुविधं—जहएणयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो िण्यदं सो—श्रोघेण श्रादेसेण य। तत्थ श्रोघेण णाणावरणीयस्स उक्कस्सिट्टिं वंधंतो छएणं कम्माणं िणयमा वंधगो। तं तु उक्कस्सा वा श्रणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो श्रणुक्कस्सा समयूणमादिं कादृण पिलदोवमस्स श्रसंखेज्जदिभागूणं वंधदि। श्रायुगस्स सिया वंधगो िसया श्रवंधगो, िणयमा उक्कस्सा। श्रावाधा पुण भयणिज्जा। एवं छएणं कम्माणं। श्रायुगस्स उक्कस्सिट्टिं वंधंतो सत्तरणं कम्माणं िणयमा वंधंगा। तं तु उक्कस्सा वा श्रणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो श्रणुक्कस्सा तिद्टाणपदिदं वंधदि—श्रसंखे-

जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रायुक्तमंके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। तथा श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। उपशम सम्यग्दिए, सासादन सम्यग्दिए श्रीर सम्यग्-मिथ्यादिए जीवोंमें सभी कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। संज्ञी जीवोंमें श्राठों कर्मोंका भङ्ग पञ्चिन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। श्रसंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तथा श्रायुक्तमंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय कम जुल्लक भवश्रहण्यमाण है श्रीर उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तरकाल श्रन्तमुंहर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल साधिक एक पूर्वकोटि प्रमाण है। श्राहार मार्गणाके श्रनुवादसे श्राहारक जीवोंमें श्राठों कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है।

इस प्रकार वन्धान्तर समाप्त हुआ।

वन्धसन्निकर्षप्ररूपणा

१२६. वन्ध सिन्नकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश । उनमेंसे श्रोघकी श्रपेक्षा क्षाना-वरणीयकी उत्कृष्ट स्थितिको वाँघनेवाला छह कर्मोंका नियमसे वन्धक होता है, परन्तु उसे उत्कृष्ट वांघता है या श्रमुत्कृष्ट वाँघता है । यदि श्रमुत्कृष्ट वांघता है तो उत्कृष्टकी श्रपेक्षा एक समयसे छेकर पल्यका श्रसंख्यातवां भाग न्यूनतक बांघता है । यह जीव श्रायु कर्मका कदावित् वन्धक होता है श्रीर कदाचित् वन्धक नहीं होता है । यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट वांघता है, परन्तु श्राबाधा भजनीय होती है । इसी प्रकार छह कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए । श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे वन्धक होता है । परन्तु उसे उत्कृष्ट वांघता है श्रथवा श्रमुत्कृष्ट बांधता है । यदि श्रमुत्कृष्ट बांधता है तो उत्कृष्टकी श्रपेक्षा वह तीन स्थान पतित वांधता है । श्रसंख्यातवां

ज्जिदिभागहीणं वा संखेज्जिदिभागहीणं वा संखेज्जगुणहीणं वा । एवं श्रोघभंगो तिरि-क्ल-पंचिदियतिरिक्ल०२-मणुस०२-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०—पंचवचि०-कायजोगि-श्रोरालियका०-इत्थि०-पुरिस०-णवुं स०-कोधादि०४-मिद-सुद०-विभंगणा०-श्रसंजद०-चक्खुदं०-[श्रचक्खुदं०-] किएणले०-भवसि०--श्रव्भवसि०--मिच्छादि०--सिएण०--श्राहारग ति ।

१२७. त्रादेसेण णिरयगईए णेरइएस सत्तरणं कम्माणं श्रोघं । णवरि श्रायु० ण वंधदि । श्रायु० एक० वंधतो सत्तरणं क० णियमा वंधगो । णियमा श्रग्रु०

भाग हीन वांघता है अथवा संख्यातवां भाग हीन वांघता है अथवा संख्यात गुणहीन वांघता है। इस प्रकार ओघके समान तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिक, मनुष्यित्रक, पञ्चेन्द्रिय द्विक, असिक, पांचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रीदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, कोघादि चार कपायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, विभक्षनित, श्रसंयत, चन्नुदर्शनी, श्रचनुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिथ्यादि, संक्षी श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—एक पदार्थके साथ दूसरे पदार्थको मिलाकर विचार करना सन्निकर्ष है। यहाँ वन्धका प्रकरण है और सामान्यसे श्राठों कर्मोंके स्थितवन्धका विचार चल रहा है, इसलिए इस सन्निकर्ष अनुयोग द्वारमें यह वतलाया गया है कि किस किस कर्मका कितना स्थितवन्ध होनेपर अन्य किन कर्मींका कितना स्थितिवन्ध होता है। पहिले श्रोधसे विचार किया गया है। सब कर्म श्राठ हैं, उनमेंसे ज्ञानावरणीय कर्मकी उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध होने पर श्रायुके सिवा श्रन्य शेष छह कर्मोंका स्थितिवन्ध नियमसे होता है। कारण कि ज्ञानावर-गीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मिथ्यात्वमें होनेसे वहाँ दर्शनावरणादि शेष छह कर्मीका भी वन्ध होता है। यह तो मानी हुई वात है कि एक कर्मके स्थितिवन्धके योग्य उत्कृप्ट परिणाम होने पर अन्य कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके योग्य परिणाम हों अथवा न भी हों इसलिए जव ज्ञाना-वरणीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है तब ग्रन्य छह कर्मीका स्थितिवन्ध उत्कृष्ट भी होता है और श्रनुत्कृष्ट भी होता है। यही बात दर्शनावरण श्रादिकी श्रपेत्तासे भी जान लेनी चाहिए। यह वात सुनिश्चित है कि श्रायुकर्मका वन्ध त्रिभागके पहिले नहीं होता, त्रिभागमें भी यदि श्राय्वन्धके योग्य परिणाम होते हैं तो ही होता है श्रन्यथा नहीं, इसलिए जो जीच ज्ञाना-वरणकर्मकी उत्क्रप्ट स्थितिका वन्ध करता है वह त्रायुकर्मका स्थितिवन्ध करता भी है त्रौर नहीं भी करता है। यदि करता है तो उत्कृष्ट स्थितिवन्ध ही करता है अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता है। ग्रब रहा ग्रायुकर्म, सो ग्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जीव सात कर्मीका निथमसे वन्धक होता है यह तो सुनिस्थित है। केवल देखना यह है कि शेष फर्मोंकी स्थिति कितनी वँधती है सो यह वात उन उन कर्मोंके वन्धके योग्य परिणामी पर निर्भर है इसलिए यहाँ यह वतलाया है कि आयुकर्मकी उत्क्रप्ट स्थितका वन्ध करनेवाला शेष सात कर्मोंकी उत्कृप्ट स्थिति भी बाँघता है ग्रथवा त्रमुत्कृप्ट स्थिति भी बाँघता है। यहाँ कुछ श्रन्य मार्गणाएँ गिनाई हैं जिनमें यह श्रोघप्ररूपणा श्रविकल घटित हो जाती है। यहाँ इन मार्गणात्रोंके संकलनमें इस वातका ध्यान रक्खा गया है कि जिन मार्गणात्रोंमें त्राठीं-कर्मीका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव है वे मार्गणायं ही यहाँ ली गई हैं।

१२७. श्रादेशसे नरक गतिमें नारिकयों में सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका सन्निकर्ष श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। श्रायुकर्मका संखेजागुणहीणं वंधदि । एवं सन्विण्रिय-पंचिदियतिरिक्खत्रप्रजा०-मणुसत्रप्रजा०-सन्वदेव-पंचिदिय-तसत्रप्रजा०-त्रोरालियमि०-वेडिन्वियका०-त्राहारका०-त्राहारमि०-ग्राभि०-सुद०-न्रोधि०-मणपज्ज०-संजदा-सामाइ०-न्नेदो०-परिहार०-संजदा'संजद-ग्रोधिदं०-णील०-काउ०-तेउ०-पम्म०-सुक्कलेस्सा-सम्मादिष्टि-खइगस०-वेदगस०-सास-ण० । उवसम० सत्त्रणं क० ।

१२८. एइंदिएसु सत्तारणं क० श्रोघं। श्रायुगं स्व वंधिद् । श्रायुग० उक्क० वंधितो सत्तारणं क० सियमा श्रायु०। उक्क० श्रायु० श्रसंखेजनभागहीसं वंधिद् । एवं सव्वएइंदिय-विगलिदिय-पंचकायासं सिदोदासं च। स्विर विगलिदिएसु श्रायु० उक्क० वंधितो सत्तारसं क० संखेजनभागहीसं वंधिद् ।

१२६. वेउव्वियमि ०-कम्मइ०-सम्मामि०-श्रणाहार० सत्तरणं० क० मूलोघं उत्कृप्ट स्थितवन्ध करनेवाला जीव सात कर्मीका नियमसे वन्धक होता है। परन्तु नियमसे संख्यातगुणो हीन श्रनुत्कृप्ट स्थितिको वाँघता है। इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्यात, मनुष्य श्रपर्यात, सब देव, पञ्चेद्रिय अपर्यात, त्रस श्रपर्यात, श्रौदारिकमिश्र-काययोगी वैक्रियिक काययोगी, श्राहारक काययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, श्रामिनवोधिक-

यानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययद्यानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, श्रवधिदर्शनी, भीललेश्यावाले, काणेतलेश्यावाले, पीत-लेश्यावाले, प्रक्षेत्रयावाले, शुक्कलेश्यावाले, सम्यग्दिष्ट, ज्ञायिकसम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट, श्रीर सासादनसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। तथा उपशमसम्यग्दिष्ट जीवोंके सात

कर्मोका इसी प्रकार सन्निकर्प है।

विशेपार्थ—एक उपश्रम सम्यग्हिए मार्गणाको छोड़कर यहाँ कही गई शेष सब मार्ग-णाश्रोंमें सात या श्राठ कर्मीका वन्ध सम्भव है। िकन्तु इन मार्गणाश्रोंमें स्रोत कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितियन्धके योग्य परिणामोंके होने पर श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता। श्रीर यह बात उत्कृष्ट स्थितियन्धके स्वामीका निर्देश करनेवाले श्रमुयोगद्वारसे भलो भांति जानी जा सकतो है।

१२८. एकेन्द्रिय जीवोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका सिन्नकर्ष श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि यह श्रायुक्तमंका वन्ध नहीं करता। श्रायुक्तमंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करनेवाला जीव सात कमोंका नियमसे श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता है। तथापि उत्कृष्टकी श्रपेचा श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध असंख्यातवें भागहीन करता है। इसी प्रकार सव एकेन्द्रिय, सब व्यक्तेन्द्रिय, पाँच स्थावरकायिक श्रोर निगोद जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि विक्लेन्द्रियोंमें श्रायुक्तमंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करनेवाला जीव सात कमोंकी स्थिति श्रपने उत्कृष्ट स्थितिवन्धकी श्रपेचा संख्यातवें भागहीन वाँधता है।

विशेपार्थ—एकेन्द्रियों ग्रीर पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सात कर्मोंमेंसे प्रत्येकके विशेपार्थ—एकेन्द्रियों ग्रीर पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें पांच संख्या-स्थितिवन्धके कुल भेद पत्यके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण हैं ग्रीर विकलत्रयोंमें पत्यके संख्या-तवें भागप्रमाण हैं। इसलिए एकेन्द्रियों और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें ग्रसंख्यात भाग-तवें भागप्रमान ग्रसंख्यात भागहानि ही सम्भव हैं तथा विकलत्रयोंमें दो वृद्धियोंके समान दो वृद्धिके समान ग्रसंख्यात भागहानि ही सम्भव हैं तथा विकलत्रयोंमें दो वृद्धियोंके समान दो हानियाँ भी सम्भव हैं। यही कारण है कि यहाँ उक्त जीवोंमें इस वातको ध्यानमें रखकर सिन्नकर्पका निर्देश किया है।

अक्षपका । नद्रशासाय ए ए १२९. वैक्रियिकमिश्रकाथयोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि श्रौर श्रनाहारक त्रायु॰ वज्ज॰ । ऋवगद॰ गाणावर॰ उक्त॰ वंधंतो छएएां कम्माणं गियमा वंधगो । णियमा उक्कस्सा । एवं छएएां कम्माणं । एवं सुहुमसंप॰ छएएां क॰ ।

१३०. असिएए० सत्तएएं कम्माएं श्रोघं । श्रायु० उनक० सत्तएएं कम्माएं िएयमा वंधगो । तं तु उनक० श्रणु० विद्वाणपदिदं वंधित्—श्रसंखेजनभागहीएं संखेजभागहीएं वा । एवम्रुक्कस्सश्रो वंधसिएएयासो समत्तो ।

१३१. जहएएए पगदं । दुविधो िए सो—श्रोघेए आदेसेए य । तत्थ श्रोघेए एएए। वर्षायस्स जहएएं द्विदं वंधतो पंचएएं कम्भाएं िएयमा वंधदि । एएयमा जहएए० । दोएएं पगदीएं श्रवंधगों । मोह० जहएएडिदवंधगो

जीवों में सात कमों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका सन्निकर्प मूलोघके समान है। किन्तु इतनी विशे-पता है कि इन मार्गणाश्रों में श्रायुक्तमें का वन्ध नहीं होता। श्रपगतवेद में शानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाला जीव छह कमोंका नियमसे वन्धक होता है। तथा नियमसे उत्कृष्ट स्थितिका वन्धक होता है। इसी प्रकार शेप छह कमोंके श्राश्रयसे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार स्कृमसाम्परायसंयतके छह कमोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणाएँ ग्रहण की हैं उन सबसे श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता यह स्पष्ट है। श्रपगतवेद श्रीर स्क्ष्मसाम्परायमें एक समयका परिणाम एक सी विशुद्धिको लिये हुए होता है, इसलिए एक कर्मका उत्रुप्ट स्थितिवन्ध होनेपर सवका उत्रुप्ट स्थितिवन्ध होता है। यही कारण है कि यहाँ उत्रुप्ट स्थितिवन्धके साथ श्रनुत्रुप्ट स्थितिवन्धके सिनक्षिक विधान नहीं किया। तथा मोहनीयका वन्ध नौवें गुणस्थान तक ही होता है इसलिए स्क्ष्मसाम्परायमें मोहनीयके विना छह कर्मका सिनकर्ष कहा है।

१३०. श्रसंज्ञी जीवोंमें सात कमोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका सन्निकर्प श्रोधके समान है। श्रायुक्तमंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाला सात कमोंका नियमसे वन्धक होता है। किन्तु उसे श्रमुत्कृष्ट वाँधता है जो उत्कृष्टकी श्रपेक्षा दो स्थानपतित वाँधता है। या तो श्रसंख्यातवाँ भागहीन वाँधता है।

विशेषार्थ—असंक्षियों में एकेन्द्रियसे लेकर असंक्षी पञ्चेन्द्रिय तक जीव लिये गए हैं। जो द्वीन्द्रियादिक जीव हैं वे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते समय शेष कमोंका अपने उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते हैं और जो एकेन्द्रिय जीव हैं वे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते समय अपने उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे असंख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते हैं। इसीसे असंक्षी जीवोंमें उक्त प्रकारसे सन्निकर्ष कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट वन्धसम्निकर्प समाप्त हुआ।

१३१. श्रव जघन्य सिन्नकर्षका प्रकरण है। उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका हैश्रोघ श्रीर श्रादेश। उनमेंसे श्रोघकी श्रपेत्ता ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करने
वाला पाँच कर्मोंका नियमसे वन्धक होता है। जो नियमसे जघन्य स्थितिका बन्धक होता
है श्रीर दो प्रकृतियोंका श्रवन्धक होता है। मोहनीयकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाला

१. मूलप्रतो श्रणु० वंघदि विद्वाण-इति पाठः । २. मूलप्रतौ श्रवंधगो एवं पंचिदि० जहराणुक्क० मोह० इति पाठः ।

व्यागं क॰ णियमा वं॰ | णियमा अज॰ | जह॰ अज॰ संखेज्जगुण्वमिह्यं वंधित् | आयुगं ण वंधित् | आयु॰ जह॰ द्विति॰ वंधंतो सत्तरणं कम्माणं णियमा वंधित् | णियमा अज॰ | जह॰ अज॰ असंखेज्जगुण्वमिह्यं वंधित् | एवं ओघभंगोमणुस॰ ३-पंचित्य-तस॰२-पंचमण॰-पंचविच॰-कायजोगि-ओरालियका०-इत्थिवे॰-पुरिसवे॰-णुंचित्य-तस॰२-पंचमण॰-पंचविच॰-कायजोगि-ओरिल्यका०-इत्थिवे॰-पुरिसवे॰-णुं स०-अवगंदवे॰-कोधादि॰४-आभि॰-सुद०-ओधि०-मणपज्जव॰-संजदा-चक्खुदं॰-अचक्खुदं-ओधिदं॰-सुक्कले॰-भवसि॰-सम्मादि॰-खइगस॰-खवसम॰-सिण्ण-आहारगित्ति । णवरि इत्थिवे॰ णाणाव॰ जह॰ छएणं कम्माणं णियमा जहण्णा । आयुगं ण वंधित् । एवं छएणं कम्माणं । एवं पुरिस॰-णवुंस॰-कोध-माण-मायाकसायाणं । १३२. आदेसेण णिरणसु णाणावरणीयं जह॰ द्विती वं॰ छएणं क॰

जीव छह कमींका नियमसे वन्धक होता है किन्तु अजधन्य स्थितिका वन्धक होता है। जो श्रजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिकी श्रपेक्ता संख्यातगुणी श्रधिक बाँघता है। यह आयुकर्मको नहीं वाँधता। श्रायुक्तमंकी जघन्य स्थितिका यन्ध करनेवाला जीव सात कर्मौंका नियमसे वन्धक होता है। किन्तु श्रजधन्य स्थितिका वन्धक होता है। जो जधन्यकी श्रपेना श्रजधन्य स्थिति श्रसंख्यातगुणी श्रधिक वाँधता है। इस प्रकार श्रोधके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रि-यहिक, जसहिक, पांचों मनोयीगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रौदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी, श्रपगतवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, श्रामिनिवोधिक-हानी, श्रुतकानी, श्रवधिकानी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, चजुदर्शनी, श्रवश्लदर्शनी, सम्यग्दप्टि, ज्ञायिकसम्यग्दप्टि, शुक्ललेश्यावाले, भन्य, श्रवधिदर्शनी सम्यग्दप्रि, संबी ग्रौर ग्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदमें क्षानावरणकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाला छह कर्मोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका चन्धक होता है। किन्तु यह त्रायुकर्मको नहीं बाँधता। इसी प्रकार छह कर्मौकी त्रपेत्ता जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार पुरुपवेद, नपुंसकवेद, क्रोधकषाय, मानकषाय श्रौर मायाकपायवाले जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ— ज्ञपक स्वमसाम्परायके अन्तिम समयमें ज्ञानावरणादि छह कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध होता है और मोहनीयका जघन्य स्थितिवन्ध ज्ञपक अनिवृत्तिकरणमें होता है किन्तु तव शेप छह कर्मोंका अजघन्य स्थितिवन्ध होता है। तथा आयुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध मिथ्यात्व गुण स्थानमें होता है। इसी वीजपदको ध्यानमें राक्षकर यहां ओघसे सिक्षकर्ष कहा है। यहां अन्य जितनी मार्गणार्पे गिनाई हैं उनमेंसे कुछ को छोड़कर शेष सव मार्गणाओं यथासम्भव यह ओघप्रकणा बन जाती है। किन्तु जिन मार्गणाओं छुछ विशेषता है उसे जानकर उस मार्गणामें उतनी विशेषता कहनी चाहिए। उदाहरणार्थ उपशमसम्यग्दिए मार्गणामें उपशम श्रेणिकी अपेत्वा ज्ञानावरण आदिका स्थितसिक्षकर्ष कहना चाहिए और इसमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता इस लिए इसकी अपेत्वासे सिक्षकर्षका कथन नहीं करना चाहिए। छीवेद आदि मार्गणाओं जो विशेषता है वह अलगसे कही ही है।

१३२. त्रादेशसे नारिकंयोंमें ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव छुद्द

णियमा० । तं तु जहण्णा' वा०२ समजत्तरमादिं काद्ण पिलदोवमस्स असंखेज्जिदि-भागन्मिहियं वंधिद । आयु० अवंधगा । एवं छण्णां कम्माणां । आयु० जह० द्विदि० वं० सत्तर्णां क० र्णियमा० अज० संखेज्जगुण्णान्मिहयं वंधिद । एवं सन्विण्रिय-मणुसअपज्जत्त-सन्वदेव-वेजिवयकायजोगि-आहारका०-आहारिम०-विभंग०-पिरहार०-संजदासंजद०-तेज०पम्म०-वेदग०-सासण् ति ।

१३३. तिरिक्लेस सत्तारणं क० शिरयभंगो । आयु० जह० दिदि०वं० सत्तारणं क० शियमा अज० तिद्वाणपदिदं—असंखेजजभागव्महियं वा [संखेजजभागव्महियं वा] संखेजजगुणब्महियं वा वंधदि । एवं पंचिदियतिरिक्ख०४ । श्वविर जह० द्विदि० वं० सत्तारणं क० शियमा० अज० विद्वाशपदिदं—संखेजजियगाव्महियं वा संखेजज-

कर्मोंका नियमसे वन्धक होता है। किन्तु उनकी जघन्य स्थितिका वन्धक होता है प्रथवा श्रजघन्य स्थितिका वन्धक होता है। यद श्रजघन्य स्थितिका वन्धक होता है। यह जीव समयसे लेकर पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रधिक स्थितिका वन्धक होता है। यह जीव श्रायुकर्मका श्रवन्धक होता है। इसी प्रकार छह कर्मोंकी श्रपेक्षा कथन करना चाहिए। श्रायुकर्मकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंकी नियमसे श्रजघन्य स्थितिका वन्धक होता हुआ भी जघन्यकी श्रपेक्षा नियमसे संख्यातगुणी श्रधिक श्रजघन्य स्थितिका वन्धक होता है। इसी प्रकार सव नारकी, मनुष्य श्रपर्यात, सव देव, वैकिथिककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकमाययोगी, श्राहारकमाययोगी, प्राहारकमाययोगी, प्राहारकमाययोगी, प्राहारकमाययोगी, प्राहारकमाययोगी, प्राहारविश्रिद्धसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पञ्चलेश्यावाले, वेदकसम्यन्दिए श्रीर सासादनसम्यन्दिए जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अन्य कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध होते समय आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका वन्ध होते समय अन्य कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध होते समय अन्य कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध नहीं होता यह सामान्य नियम है जो ओघ और आदेश दोनों प्रकारसे घटित होता है। इसलिए आयुकर्मके जघन्य स्थितिवन्धके साथ अन्य कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका सन्निकर्ष घटित नहीं होता यह स्पष्ट ही है। साथ ही श्रेणिके सिवा अन्यत्र शेष सात कर्मोंमेंसे किसी एककी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाला जीव अन्य कर्मकी अजघन्य स्थितिका ही बन्ध करता है यह भी नियम है। इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर यहाँ उक्त प्रकारसे सन्निकर्ष कहा है।

१३३. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका सिन्नकर्ष नारिकयोंके समान है। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाला जीव सात कर्मकी नियमसे तीन स्थानपितत अजघन्य स्थितिका वन्धक होता है। जो या तो असंख्याततवाँ भाग अधिक अजघन्य स्थितिका वन्धक होता है आयवा स्थितिका बन्धक होता है आयवा संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका वन्धक होता है। इसी प्रकार पञ्चे निद्रय तिर्यञ्च स्तुष्कके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाला जीव सात कर्मकी नियमसे दो स्थानपितत अजघन्य स्थितिका वन्धक होता है। वह

१. जहरूणा वा ४ सम-इति पाठः । २.मूलप्रतौ क० णियमा० णियमा० श्रज० इति पाठः । २. श्रज० विद्वाणपदिदं इति पाठः ।

गुणव्महियं वा । एवं पंचिदिय-तसञ्चपज्जत्ताः । तिरिक्लोघभंगो ञ्रोरालियिमः मिदः -सुदः -असंजदः -किएणः -पीलः -काडः -अव्भवसिः -मिच्छाः -असिएणः ति । एवं चेव एइंदियः -वेइंदियः -तेइंदिः -चदुरिंदियः -पंचकाः -िणयोदाणं च। णविर एइं-दिय-थावरकाएसः आयुः जहः द्विदिवं सेसं असं भागव्महियं वंधदि । विगलिदिः संसेज्जिदिभागव्महियं वंधदि ।

१३४. वेडिव्यिमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-ऋणाहार० आयु० वज्ज णिरयभंगो । अवगद्वे० सत्तरणं क० सुहुमसंप० छरणं कम्भाणं श्रोघं । एवं जहरणसरिणयासो समत्तो । एवं वंधसिएणयासो समत्तो ।

गागाजीवेहि भंगविचयपरूवगा

१३५. खाखाजीवेहि भंगविचयं दुविधं—जहएखयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । तत्थ इमं अष्ठपदं—ये खाखावरखीयस्स उक्कस्सियाए द्विदीए वंधगा जीवा ते अखुक्कस्सियाए अवंधगा । ये अखुक्कस्सियाए द्विदीए वंधगा जीवा ते उक्कस्सि-

या तो संख्यातवाँ भाग श्रधिक श्रजघन्य स्थितिका बन्धक होता है श्रथवा संख्यातगुणी श्रधिक श्रजघन्य स्थितिका वन्धक होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त श्रीर त्रस श्रपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। श्रीदारिकिमिश्रकाययोगी, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, श्रसंयत, स्रुप्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि श्रीर श्रसंक्षी जीवोंके सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जानना चाहिए। तथा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, श्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय श्रीर निगोद् जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय श्रीर स्थावरकायिक जीवोंमें श्रायुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव शेप कर्मोंकी श्रसंख्यातवाँ भाग श्रधिक श्रजघन्य स्थितिका बन्धक होता है तथा विकलेन्द्रयोंमें संख्यातवाँ भाग श्रधिक श्रजघन्य स्थितिका बन्धक होता है।

विशेपार्थ—तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय श्रीर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवोंका समावेश होता है। इसीसे यहाँ श्रायुकी जघन्य स्थितिके वन्धके समय शेष कर्मोंका जो वन्ध होता है वह जघन्यसे श्रजघन्य तीन स्थानपतित होता है ऐसा कहा है। एकेन्द्रियों श्रीर विकल- श्रयके कथनका स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है।

१३४. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिश्यादृष्टि श्रौर अनाहारक जीवोंमें श्रायुक्तमंके सिवा शेप सन्निकर्ष नारिकयोंके समान है। श्रपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मीका तथा सूदमसाम्परायिक संयतोंमें छह कर्मीका सन्निकर्ष श्रोघके समान है।

विशेपार्थ—यहाँ कही गई मार्गणात्रोंमें त्रायु कर्मका बन्ध नहीं होता, इसिलए यहाँ त्रायुकर्मको छोड़कर ऐसा कहा है। शेष कथन सुगम है। इस प्रकार जघन्य सिक्षकर्ष समात हुत्रा।

इस प्रकार बन्धसन्निकर्ष समाप्त हुआ। नाना जीवोंकी अपेत्ता भङ्गविचयपरूपणा

१३४. नाना जीवोंकी अपेता भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्कृष्ट i उत्कृष्टका प्रकरण है। उसमें यह अर्थप्रद है—जो ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्धक जीव होते हैं वे उसकी श्रमुत्कृष्ट स्थितिके अवन्धक होते हैं। जो ज्ञानावरणकी श्रमुत्कृष्ट

याए हिदीए अवंधगा। एवं पगदिं वंधंति तेस पगदं, अवंधगेसुं अव्ववहारो। एदेण अहपदेण दुविधो णिहं सो—अोघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अहएणं कम्माणं उक्किस्सियाए हिदीए सिया सव्वे अवंधगा, सिया अवंधगा य वंधगो य, सिया अवंधगा य वंधगो य। एवं अणुक्कस्से वि। णविर पिडलोमं भाणिदव्वं। एवमो-घभंगो तिरिक्लोधं-कायजोगि-ओरालियकाय०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुं सय०-को-धादि०४-मिद०-सुद०-असंजद०-अचक्खु०-किएण०-णील्रले०-काउ०-भवसि०-अव्भव-सि०-मिच्छादि०-असिएण-आहार०-अणाहारग ति। णविर कम्मइ०-अणाहार० सत्त-एणं कम्माणं भाणिदव्वं।

स्थितिके वन्धक जीव होते हैं वे उसकी उत्कृष्ट स्थितिके अवन्धक होते हैं । इस प्रकार जो जीव प्रकृतिका वन्ध करते हैं उनका यहां प्रकरण है। अवन्धकों का प्रकरण नहीं है। इस अर्थपदकी अपेन्ना निर्देश दो प्रकारका है—ओच और आदेश। उनमें से ओघकी अपेन्ना आठों कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिके कदाचित् सब जीव अवन्धक हैं, कदाचित् वहुत जीव अवन्धक हैं और एक जीव वन्धक है तथा कदाचित् वहुत जीव अवन्धक हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धमें भी कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वहां इससे प्रतिलोम रूपसे कथन करना चाहिए। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकिमअकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यक्षानी, अताक्षानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेक्या वाले, नोललेक्यावाले, काणोतलेक्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादिष्ट, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनो विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंका मङ्गविचय कहना चाहिए।

विशेषार्थ-भङ्गविचय शब्दका ऋर्थ है भेदोंका वर्गीकरण करना। यहां उत्कृष्ट ऋौर अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंके अवन्धकोंके साथ किस प्रकार कितने भङ्ग होते हैं यह वतलाया गया है । ब्राठों कर्मोंकी ब्रोघ उत्कृष्ट स्थितिके वन्धक जीव कदाचित् एक भी नहीं होता, कदाचित् एक होता है और कदाचित् नाना होते हैं। तथा इसकी अनुत्कृष्ट स्थितिके वन्धक जीव कदाचित् सब होते हैं. कदाचित् एक कम सव होते हैं श्रीर कदाचित् नाना होते हैं। इसिलए ग्रवन्धकोंको मिलाक़र इनके भक्त लानेपर इस प्रकार होते हैं— कदाचित् ज्ञानावरणको उत्कृष्ट स्थितिके सव अवन्धक होते हैं, कद।चित् बहुत जोव अवन्धक होते हैं श्रीर एक जीव बन्धक होता है तथा कदाचित् वहुत जीव श्रवन्धक होते हैं और यहुत जीव वन्धक होते हैं। ग्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धकों अपेन्ना कदाचित् सब जीव बन्धक होते हैं। कदाचित् बहुत जीव बन्धक होते हैं श्रीर एक जीव श्रवन्धक होता है तथा कदा-चित् वहुत जीव वन्धक होते हैं श्रीर वहुत जीव श्रवन्धक होते हैं। यहां श्रन्य जितनी मार्गणाएँ गिनोई हैं उनमें यह श्रोघ प्ररूपणा श्रविकल घटित हो जाती है इसलिए उनके कथनको श्रोघके समान कहा है। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाश्रोंमें उत्कृप्ट श्रोर श्रनु-त्रुष्ट स्थितिवन्ध जहां जो सम्भव हो वह छेना चाहिए। मात्र कार्मणुकाययोग श्रौर श्रना-हारक इन दो मार्गणात्रोंमें त्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें सात कर्मीकी ऋषेज्ञा भङ्गविचय कहना चाहिए।

१३६. आदेसेण णेरइएस सत्तरणं कम्माणं ओघं । आयु० उक्क० आणु० अहमंगो । उक्कस्सं अवंधपुन्वं, अणुक्कस्सं वंधपुन्वं । एवं सन्विण्यय-सन्वपंचि-दियितिर्क्कि०-सन्वमणुस्स०-सन्वदेवा०-वेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिदि० तेसि पज्जता-पज्जता० पंचिदिय-तस० तेसि पज्जतापज्जता०-वादरपुढिविकाइय-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरवणप्फिदपत्तेयसरीर-पज्जता० पंचमण०-पंचविच०-वेउन्वियका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्जव-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद्वक्ष्युदं०-ओधिदं०-तेउले०-पम्मले० सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-सिएण ति । एवं चवरीदा अह भंगा कादन्वा। एवं आहार०-आहारमि०-सासण ति । एवं चेव वेउन्वियमिस्स०-अवगद०-सुहुमसं० उवसम०-सम्मामि० अप्पप्पगदी०।

१३७, एइंदिए॰ सत्तरणं क॰ उक्क॰ अणुक्क॰ अत्थि वंधगा य अवंधगा य । आगु॰ ओघं। एवं बादर-मुहुमपज्जत्तापज्जत्त॰ वादर-पुढविकाइय-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरवरणप्फदिपत्तेय॰अपज्जत्त॰ सन्वसुहुमपुढवि॰-आउ०-तेउ०-वाउ०-सब्ब-

१३६. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मींका भङ्गविचय श्रोधके समान है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्टके श्राठ भङ्ग होते हैं। उत्कृष्ट स्थितिवन्धके भङ्ग श्रवन्धपूर्वक कहने चाहिए श्रीर श्रनुत्कृप्ट स्थितवन्धके भङ्ग वन्धपूर्वक कहने चाहिए। इसी प्रकार सव नारकी सब पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब देव, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा इन तीनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, पञ्च न्द्रिय और इनके पर्याप्त अपर्याप्त, त्रस और इनके पर्याप्त अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकश्ररीर पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विमङ्गज्ञानी, श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चश्चदर्शनी, श्रवधिदर्शनी, पीत लेश्यावाले, पद्मलेश्या-वाले, शुक्कतेश्यावाले, सम्यग्दिए, ज्ञायिकसम्यग्दिए वेदकसम्यग्दिए श्रीर संश्री जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकों में आठ कमौंके विपरीत क्रमसे श्राठ भङ्ग करने चाहिए। मनुष्य श्रपर्याप्तकांके समान श्राहारक काययोगी, श्राहारकमिश्र-काययोगी और सासादनसम्बन्दिए जीवोंके श्राठ भङ्ग कहने चाहिए। तथा इसी प्रकार वैक्रि-यिकमिश्रकाययोगी, श्रपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंके श्रपने श्रपने कर्मोंके श्रनुसार भङ्ग कहने चाहिए।

१३७. एकेन्द्रियों में सात कमोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिके श्रनेक जीव वन्धक हैं श्रीर श्रनेक जीव श्रवन्धक हैं। श्रायुक्तमंका भङ्गविचय श्रोधके समान है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा इन दोनोंके पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिक श्रपर्याप्त, बादर जलकायिक श्रपर्याप्त, बादर श्रिशकायिक श्रपर्याप्त, वादर वायुकायिक श्रपर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर श्रपर्याप्त, सब सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सब सूक्ष्म जलकायिक, सब सूक्ष्म श्रीनिकायिक, सब सूक्ष्म वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, श्रीर सब निगोद

वणप्फदि-णिगोदाणं च । पुढवि ० - त्राउ० - तेउ० - वाउ० तेसिं वादर० वादरवणप्फदि-पत्तेय० त्रहण्णं कम्माणं मूलोघं । एवं उक्कस्सं समत्तं ।

१३८. जहएएगो पगदं। तं चेव अहपदं कादव्वं। तस्स दुविधो णिदेसो— श्रोघेण श्रादेसेण य। तत्थ श्रोघेण सत्तरणं कम्माणं उक्कस्सभंगो। श्रायु० जह० श्रजह० श्रत्थि वंधगा य श्रवंधगा य। एवं श्रोघभंगो पुढवि०-श्राउ०-तेउ०वाउ० तेसिं चेव वादर० वणप्फिदिपत्तेय०-कायजोगि-श्रोरिलयका०-एवुंस-कोधादि०४-श्रचक्खु०-भवसि०-श्राहारग त्ति।

जीवोंके जानना चाहिए। पृथिवीकायिक, जलकायिक, ग्राग्निकायिक, वायुकायिक ग्रौर इन चारोंके वादर तथा वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर जीवोंके श्राठों कमोंका भङ्गविचय मूलोघके समान है।

विशेषार्थ—श्रोधप्ररूपणामें उत्कृष्ट स्थितवन्धकी श्रपेत्ता कदाचित् सव जीव श्रवन्धक होते हैं , कदाचित् नाना जीव श्रवन्धक होते हैं श्रीर एक जीव वन्धक होता है तथा कदा-चित् नाना जीव श्रवन्धक होते हैं श्रीर नाना जीव वन्धक होते हैं। तथा श्रनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धकी श्रपेत्ता कदाचित् सव जीव बन्धक होते हैं, कदाचित् नाना जीव वन्धक होते हैं श्रीर एक जीव श्रवन्धक होता है श्रीर कदाचित् नाना जीव वन्धक होते हैं श्रीर नाना जीव श्रवन्धक होते हैं यह वतला श्राये हैं। प्रकृतमें श्रायुक्तमंकी श्रपेत्ता इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए, यह उक्क कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार उत्कृष्ट भङ्गविचय समाप्त हुग्रा।

१३८. अव जघन्य भङ्गविचयका प्रकरण है। यहाँ अर्थपद पूर्वोक्त ही जानना चाहिए। इसकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेचा सात कमोंका भङ्गविचय उत्कृष्टके समान है। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अनेक जीव बन्धक हैं और अनेक जीव अवन्धक हैं। इस प्रकार ओघके समान पृथिवी-कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इन चारोंके बादर, वनस्पतिकायिक, प्रत्येकशरीर, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचचु-दर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां श्रोघसे सात कर्मोंका भक्कविचय उत्कृष्टके समान है। सो इस कथन का यह श्रमिप्राय है कि जिस प्रकार श्रोघसे सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका भक्कविचय कह श्राये हैं उस प्रकार यहां जघन्य स्थितिवन्धका कहना चाहिए और जिस प्रकार श्रोघसे सात कर्मोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका भक्कविचय कह श्राये हैं उस प्रकार यहां श्रजघन्य स्थितिवन्धका कहना चाहिए। इसके श्रमुसार निम्न भक्क उपलब्ध होते हैं—कदांचित् सव जीव जघन्य स्थितिके श्रवन्धक होते हैं, कदांचित् यहुत जीव श्रवन्धक होते हैं श्रोर एक जीव वन्धक होता है, कदांचित् यहुत जीव श्रवन्धक होते हैं। श्रजघन्यकी श्रपेचा—कदांचित् सब जीव अजधन्य स्थितिके वन्धक होते हैं, कदांचित् बहुत जीव वन्धक होते हैं, श्रौर एक जीव श्रवन्धक होता है तथा कदांचित् वहुत जीव वन्धक होते हैं श्रीर वहुत जीव श्रवन्धक होते हैं। श्रायुकर्मका विचार स्पष्ट है, क्योंकि उसकी जधन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिके वन्धक श्रोर श्रवन्धक होते हैं। यहां श्रन्य जीतनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह ओघप्रकपणा श्रविकल घटित हो जाती है इसलिए उनका कथन श्रोघके समान कहा है।

१३६. आदेसेण णेरइएस अट्टण्णं वि कम्माणं उक्कस्सभंगो । एवं सन्वित्य-सन्वपंचिदिय-सन्वपंचिदिय-सन्वपंचिदिय-तस्वयण्यस्य-सन्वदेव-सन्वविगत्तिदय-सन्वपंचिदिय-तस्वयण्यस्य प्रज्ञत्ताणं पंचमण्णः पंच-विन्वयक्षाः विवयम् । विवयम्यम् । विवयम् । विवयम्यम् । विवयम् । विवयम् । विवयम् । विवयम् । विवयम् । विवयम् । विवयम

१४०. तिरिक्लेसु श्रहण्णं क० जह० श्रजह० श्रत्थि वंधगा य श्रवंधगा य। एवं सन्वएइंदिय-वादरपुढवि०-श्राड०-तेड०-वाड०-वादरवणप्पदिपत्तेय० श्रपज्जत्ता तेसिं सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० सन्ववरणप्पदि-ियगोद-श्रोरालियिय०-कम्मइ०-मिद्०-सुद०- श्रसंज०-किएएले-एील०-काड०-श्रव्भविस०-भिच्छादि-श्रसिएए-श्रणाहारग ति। एवं एएएजीवेहि भंगविचयं समत्तं।

१३६. श्रादेशसे नारिकयों में श्राठों ही कमोंका मङ्ग उत्क्रप्रके समान है। इसी प्रकार सव नारिका, सव पञ्चे निद्रय तिर्यञ्च, सव मनुष्य, सव देव, सव विकलेन्द्रिय, सव पञ्चे निद्रय, सव त्रस, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर श्रानिकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, श्रपगतवेदी, विभङ्गक्षानी, श्रामिनवोधिकक्षानी, श्रुतज्ञानी, श्रविज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिक्युद्धिसंयत, स्दमसाम्परायसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, श्रवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट, सम्यग्मध्यादिष्ट श्रीर संश्री जीवोंके जानना चाहिए।

१४०. तियंश्चोंमें त्राठों कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिके श्रनेक जीव वन्धक हैं श्रीर श्रनेक जीव श्रवन्धक हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, वाद्रपृथिवीकायिक श्रपर्याप्त, वाद्र जलकायिक श्रपर्याप्त, वाद्र अग्निकायिक श्रपर्याप्त, वाद्र वायुकायिक श्रपर्याप्त, वाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्ररीर श्रपर्याप्त, इनके स्क्ष्म तथा इनके पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुता- श्रानी, श्रसंयत, कृष्णतेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, श्रभव्य, मिथ्यादिष्ट, श्रसंशी श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ग्राशय यह है कि इन मार्गणात्रोंमें सर्वदा जघन्य स्थितिके वन्धक नाना जीव हैं ग्रीर ग्रजघन्य स्थितिके वन्धक नाना जीव हैं। इसिलए यहां अन्य भङ्ग सम्भव नहीं हैं।

इसं प्रकार नानाजीवोंकी श्रपेचा भङ्गविचय समाप्त हुआ।

भागाभागप्परूवगा

१४१. भागाभागं दुविधं—जहएएएयं उनकस्सयं च । उनकस्सए पगदं । दुविधो िएदेसो—ग्रोघेए ग्रादेसेए य । तत्य ग्रोघेए ग्रहएएं वि कम्माएं उनकस्सिटिदिवंधगा सन्वजीवाएं केविडयो भागो ? ग्रणंतभागो । ग्रणुक्कस्सिटिदिवंधगा जीवा सन्वजीवाएं केविडग्रो भागो ?' ग्रणंता भागा । एवं ग्रोघभंगो तिरिक्खोधं काय-जोगि०-ग्रोरालियका०-ग्रोरालियमि०-कम्मइ०-एवं स०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-ग्रसंज०-ग्रचक्खदं०-किएए०-एगेल०-काउले०-भवसि-ग्रव्भवसि०-मिच्छादि०-ग्रस-एएग्राहार०-ग्राएगहरग ति ।

१४२. आदेसेण ऐरइएसु अहएएां कम्माणं उक्क० वंध० केव० ? असंखेज्जदि-भागो । अणुक्क० वंध० केव० ? असंखेज्जा भागा । एवं सन्वऐरइय-सन्वपंचि-दियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्जत्त-देव-भवणादि याच सहस्सार त्ति आणद याव अणुत्तरा त्ति सत्तरणं कम्माणं सन्वविगत्तिदिय-पंचिदिय-तसपज्जत्तापज्जत्त-सन्व-

भागाभागप्ररूपणा

१४१. भागाभाग दो प्रकारका है-जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध श्रीर आदेश । उनमेंसे श्रोधकी श्रपेक्षा श्राठों हो कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिको वाँधनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं ? श्रनन्तवें भाग प्रमाण हैं । श्रनुक्ष्ण स्थितिको वाँधनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? श्रनन्त वहुभाग प्रमाण हैं । इस प्रकार श्रोधके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मण काययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताह्वानी, श्रसंयत, श्रवश्चदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भन्य, श्रभन्य, सिथ्यादिष्ट, श्रसंक्षी, श्राहारक श्रीर अनाहारक जीवोंका भागाभाग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले कुल जीव श्रसंख्यात होते हैं। श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले श्रमन्त होते हैं। इस संख्याको ध्यानमें रख कर ही यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके श्रमन्तवें भाग प्रमाण कहे गये हैं और श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके श्रमन्त वहु भाग प्रमाण कहे गये.हैं। यहाँ पर गिनाई गईं श्रन्य मार्गणाश्रोंमें यह भागाभाग घटित हो जाता है इसलिए उनकी प्रकृपणा श्रोधके समान कही है।

१४२. त्रादेशसे नारिकयोंमें त्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सय नारिकयोंके कितने माग प्रमाण हैं ? श्रसंख्यातवें माग प्रमाण हैं । श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले नारिक जीव कितने भाग प्रमाण हैं ? श्रसंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सव नारिक सव पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य श्रपर्याप्त, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव श्रायुक्मके बिना सात कर्मोंके वन्धकी श्रपेत्रा श्रानतिकल्पसे लेकर श्रनुत्तर विमानवासी देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त, सव पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक सव

१. मूजप्रतौ श्रणंतभागो इति पाठः ।

पुढिवि ०-- श्राडि ०-- तेडि ०-- वाडि ०-- वादि रवप्पदिपत्तेय ०-- पंचमण-- पंचवचि ०-- वेडि व्विय० --वेडि व्वियमि ०-- इतिथ ०-- पुरिस ०-- विभंग ०-- श्राभि ०--- स्रोधि ०-- संजदासंजद ०--चक्खुदं ०-- श्रोधिदं ०-- तेडि ०-- पम्मले ०-- सुक्कले ०-सम्मादि ०-- खड्ग ०-- वेद्ग ०-- खवस-मस०--सासण ०-- सम्माभिच्छादि ०-- सिएण त्ति ।

१४२. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अद्वरणं कम्माणं उक्क० द्विदि० केविड० १ संखेज्जिदिभागो । अर्णुक्क० वंध० केव० १ संखेज्जा भागा । एवं सव्वद्व-आहार०-आहारिक-अवगदवे०-मणपज्जव०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० ।

श्राग्निकायिक, सब वायुकायिक, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर, पाँचौं मनोयोगी, पाँचौं वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, प्रामिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिवर्शनी, संयतासंयत, चश्चदर्शनी, श्रवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, श्रुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दिए, चायिकसम्यग्दिए, वेदकसम्यग्दिए, उपशमसम्यग्दिए, सासादनसम्यग्दिए, सम्यग्मिश्यादिए श्रीर संज्ञी जीवोंका भागा-भाग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्यसे त्राठों कर्मोंकी उत्क्रप्ट स्थितका वन्ध करनेवाले नारकी जीव तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव संख्यात हैं फिर भी उत्कृष्टसे अनु-त्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव श्रसंख्यात गुरो हैं। यही कारण है कि यहाँ श्राठों कर्मोंकी उत्क्रप्टस्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव सब नारकी जीवोंके श्रसं-. ख्यातवें भाग कहे हैं श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारको जीव सव नारकी जीवोंके ग्रसंख्यात बहुभाग प्रमाण कहे हैं। यहाँ गिनाई गईं ग्रन्य सब मार्गणात्रोंमें यह प्रकृपणा श्रविकल घटित हो जाती है इसी लिए उनके भागाभागका कथन सामान्य नारिक-योंके समान कहा है। मात्र श्रायुकर्मकी श्रपेचा श्रानतकलपसे लेकर श्रपराजित तकके देव, शुक्ललेश्यावाले श्रीर लायिक सम्यग्दिए इन मार्गणाश्रोमें भागाभागके प्रमाणमें कुछ विशे-षता है जिसका निर्देश ग्रागे करनेवाले हैं। यहाँ मूलमें 'ग्रनुत्तरा' ऐसा पाट है, इससे पाँच श्रवुत्तर विमानोंका ग्रहण होना चाहिए, किन्तु सर्वार्थसिद्धिका भागाभाग स्वतन्त्र रूपसे कहा है इसिलए इस पद द्वारा चार श्रनुत्तर विमान ही लिए गए हैं। दूसरे सर्वार्थसिद्धिके श्रहमिन्द्रोंकी संख्या संख्यातप्रमाण ही है श्रीर यहाँ पर श्रसंख्यात संख्यावाली मार्गणाश्रोंका भागाभागे कहा गया है, इसलिए भी श्रतुत्तर पदसे यहाँ पर सर्वार्थसिद्धिका श्रहण नहीं होता है। इस प्रकरणमें उपशमसम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये दो ऐसी मार्गणाएँ भी गिनाई हैं जिनमें श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता, इसलिए उनमें सात कर्मौकी श्रपेचा यह भागाभाग जानना चाहिए।

१४३. मनुष्यपर्याप्त श्रीर मनुष्यितयों श्राठों कमोंकी उत्कृष्टिस्थितिका वन्ध करने-वाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यातवें भाग प्रमाण हैं । श्रनुत्कृष्ट स्थितिका विश्व करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सर्वार्थ-सिद्धिके देव श्राहारककाययोगी, श्राहारकिमश्रकाययोगी, श्रापगतवेदी, मनःपर्ययहानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत श्रीर सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चादिए।

विशेषार्थ—ये सव मार्गणापे संख्यात संख्यावाली हैं, इसीलिए उक्क प्रमाण भागाभाग

१४४. श्राणद याव श्रपराजिदा त्ति सुक्कले - खइग० श्रायु० सन्बद्धभंगो । १४५. एइंदिएस सत्तरणं कम्माणं णिरयभंगो । श्रायु० श्रोघं । एवं वर्णप्फदि- णियोदेस । एवं उक्कस्सं सम्मत्तं ।

१४६. जहराणां पगदं । दुविधो णिइ सो—श्रोघेण श्रादेसेण य । तत्थ श्रोघेण सत्तराणं कम्माणं जह० अजह० उक्कस्सभंगो । श्रायु० जह० हिदिवंध० केव- हियो भागो ? श्रसंखेज्जदिभागो । श्रजह० हिदि० केविड० ? श्रसंखेज्जा भागा । एवं श्रोघभंगो कायजोगि—श्रोरालियका०—एवं स०-कोधादि०४-श्रचक्खुदं०-भविस०- श्राहारग ति ।

वन जाता है। मात्र इनमेंसे श्रपगतवेदी श्रौर सूदमसाम्परायसंयत इन दो मार्गणाश्रोंमें श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें सात कर्मीकी श्रपेना मागाभाग जानना चाहिए।

१४४. श्रानतकल्पसे लेकर श्रपराजित विमान तकके देव शुक्ल लेश्यावाले श्रीर ज्ञायिक सम्यग्दिए जीवोंमें श्रायकर्मका भागाभाग सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान है।

विशेषार्थ—ये सव मार्गणापे यद्यपि श्रसंख्यात संख्यावाली हैं तथापि इनमें श्रायुक्तमिकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनमें श्रायुक्तमिकी श्रपेक्षा सर्वार्थसिद्धिके समान भागाभाग हो जाता है।

१४५. एकेन्द्रियोंमें सात कमोंका भागाभाग नारिकयोंके समान है। आयुकर्मका भागाभाग ओघके समान है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यद्यपि ये मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली हैं तथापि इनमें सात कर्मोंकी उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अपनी अपनी जीवराशिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं और अनुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात वहुभाग प्रमाण हैं इसलिए इनका भागाभाग नारिकयोंके समान कहा है। मात्र इनमें आयुकर्मकी अपेक्षा भागाभाग का विचार छोघके समान करना चाहिए, क्योंकि इन मार्गणाओं अध्युकर्मकी उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण ही होते हैं और शेष अनन्त वहुभाग प्रमाण जीव अनुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले होते हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभाग समाप्त हुआ।

१४६. अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—
अग्नेघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका
वन्ध करनेवाले जीवोंका भागाभाग उत्कृष्टके समान है। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका
वन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।
अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यात बहुभागप्रमाण
हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि
चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पहिले उत्कृष्ट भागाभागका विचार कर आए हैं उसी प्रकार यहाँ भी विचार कर लेना चाहिए। मात्र आयुकर्मकी अपेद्धा इस भागाभागमें कुछ अन्तर है। यहाँ आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सव जीव राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं इसीलिए आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका वाँचतिको बाँचनेवाले जीव सव जीवराशिके

१४७. मणुसपज्जत-मणुसिणीम त्राणद याव सन्वह ति त्राहार०-त्राहारिम०-त्रवगदवे०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-मुहुमसंप०-मुक्कले०-खइग० जह० त्रजह० उक्कस्सभंगो। सेसाणं सन्वेसिं सन्वपगदीणं जह० द्विदि० केव०१ त्रासं०भागो। त्रज० हिदि० केव०१ त्रासंखेज्जा भागा। एवं भागाभागा समत्तं।

परिमागापरूवगा

१४८. परिमाणं दुविधं, जहरण्यं उनकस्सयं च। उनकस्सगे पगदं। दुविधं— श्रोघेण आदेसेण य। तत्थ श्रोघेण श्रहण्णं कम्माणं उनक० हिदिबंध० केव-दिया १ श्रसंखेज्ञा। श्रणुक्क० हिदि० केव० १ श्रणंता। एवं श्रोघभंगो तिरि-क्लोघं कायजोगि-श्रोरालियका०-श्रोरालियमि०-कम्मइ०-णवुं स०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-श्रसंज०-श्रचक्खु०-किर्ण्ण०-णील०-काउले०-भवसि०-श्रव्भवसि०-मिच्छादि०-श्रसिण्ण०-श्राहार०-श्रणाहारग त्ति।

श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहे हैं श्रौर श्रजधन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात यहभाग प्रमाण कहे हैं।

१४७. मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, श्रानत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, श्राहारक काययोगी, श्राहारक मिश्रकाययोगी, श्रपगतवेदी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामा- यिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्रुद्धिसंयत, स्क्ष्मसाम्परायसंयत, श्रुक्ल- लेश्यावाले श्रीर क्षायिक सम्यग्दिए जीवोंमें जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भागाभाग उत्कृष्टके समान है। श्रेष सब मार्गणाश्रोमें जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं श्रुसंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं श्रुसंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।

विशेषार्थ—यहां जितनी मार्गणाएँ कहीं है उनमेंसे किन्हींकी संख्या संख्यात है, किन्हींकी श्रसंख्यात है श्रीर किन्हींकी अनन्त है। जिन मार्गणाश्रोंका भागाभाग उत्कृष्टके समान कहा है उनमें वहुतोंकी संख्या संख्यात है श्रीर कुछकी श्रसंख्यात हत्यादि सब वातोंको ध्यानमें रखकर भागाभागका विचार कर छेना चाहिए।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाशाप्ररूपशा

१४८. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—जोघ और आदेश । उनमें से ओघकी अपेचा आठों कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? श्रमंज्या क्यांचित्र काययोगी, कामण काययोगी, नपुंसक वेदी, कोधादि औदारिक काययोगी, श्रीदारिक मिश्र काययोगी, कामण काययोगी, नपुंसक वेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भन्य, अभन्य, मिथ्यादिष्ट, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितवन्धके स्वामीको देखते हुए स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रोधसे श्रीर इन मार्गणाश्रीमें उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातसे श्रधिक नहीं हो १४६. त्रादेसेण ऐरइएस ब्रह्मणं कम्माणं उक्क० श्रणु० हिदिवंध० केव० ? ब्रसंखेजा। एवं सन्विण्रिय-सन्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसञ्चपज्जत्त० देवा भवणादि याव सहस्सार ति सन्विवगिलिदिय-सन्वपंचिदिय-तस-सन्वपुढवि०-श्राउ०-, तेउ०-वाउ०-वादरवणप्फिद्पत्तेय०-पंचमण०-पंचविच०-वेउन्वियका०-वेउन्वियमि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-[तेउले०-]पम्मले०-सिएण ति । एवरि तेउ-पम्म० उक्क० संखेज्जा।

१५०. मणुस्तेस अद्वराणं कम्माणं उक्क० द्विदि० वंघ० केव० ? संखेज्जा । अणुक्क० द्विदि० वंघ० केव० ? असंखेजा । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीस सन्बद्द०-आहार०-आहारिम०-अवगद्वे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सहुमसं० सत्तरणं क० उक्क० अणुक्क० द्विदिवंघ० केव० ? संखेजा ।

१५१. सन्वएइंदि॰ सत्तराएां क॰ उक्क॰ ऋगुक्क॰ हिदिवंध॰ केव॰ ?

सकते। उदाहरणार्थ—ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त संक्लेश पिरिणामवाला मिथ्यादृष्टि जीव करता है। गणनाकी अपेद्धा ये असंख्यात ही होते हैं। यही कारण है कि यहांपर आठों कमौंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात वतलाए हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्त कहे हैं।

१४६. श्रादेशसे नारिक्योंमें श्राठों कमौंकी उत्कृप्ट और श्रनुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार सव नारिकी, सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च, मनुष्य श्रपर्याप्त, देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सव विकलेन्द्रिय, सव पञ्चेन्द्रिय, सव त्रस, सव पृथ्वीकायिक, सव जलकायिक, सव श्रिनकायिक, सव वायुकायिक, सव वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, विमंगञ्चानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले श्रीर संज्ञी जीवोंका परिमाण जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पीत लेश्यावाले श्रीर पद्मलेश्यावाले जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात होते हैं।

विशेषार्थ—ये सब मार्गणाएँ श्रसंख्यात संख्यावाली हैं श्रीर इनमें उत्कृष्ट स्थिति व श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात वन जाते हैं, इसलिए इनका उक्त प्रमाण परिमाण कहा है। जिन दो मार्गणाश्रोमें श्रपवाद है उनका निर्देश श्रलगसे किया ही है।

१४०. मनुष्योंमें श्राठों कर्मोंकी उत्क्रप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले कितने हैं ? संख्यात हैं । श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, सर्वार्थसिद्धिके देव, श्राहारकाकययोगी, श्राहारक मिश्रकाययोगी, श्रपगतवेदी, मनःपर्ययश्चानो, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धि संयत श्रीर सूक्षम सामपराय संयत जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—ये मनुष्य पर्याप्त आदि सब मार्गणाएँ संख्यात संख्यावाली हैं इसलिए इनमें उक्त प्रमाण घटित हो जाता है।

१४१. सव एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले

त्रणंता । त्रायु० उक्क० हिदिवं० केव० ? त्रसंखेजा । त्रायु० हिदिबं० केव० ? त्रणंता । एवं सन्ववराप्फदि-णिगोदाणं ।

१५२. त्राभि०-सुद०-त्रोधि० सत्तारणं क० उक्क० त्रामुक्क० द्विदिवं० केव० ? त्रसंखेजा । त्रायु० उक्क० संखेजा । त्रायु० द्विदं० त्रसंखेजा । एवं संजदासंजद०-त्रोधि०-सम्मादि०-वेदग०-सासण०-सम्मामिच्छा० । त्राणद याव अवराइदा ति सुक्कले०-खइग० सत्तारणं क० उक्क० त्रामुक्क० त्रसंखेज्जा । त्रायु० मणुसिभंगो ।

१५२. जहएएए पगदं। दुविधो एिद सो—श्रोघेए श्रादेसेए य। तत्थ श्रोघेए सत्तएएं क॰ जह॰ द्विदिवंध॰ केत्तिया ? संखेज्जा। श्रजह॰ के॰ ? श्रएंता। श्रायु॰ जह॰ श्रज॰ द्विदि॰ श्रएंता। एवं कायजोगि-श्रोरालियका॰-एावुंस॰-कोधादि॰४-श्रचक्खु॰-भवसि॰-श्राहारग ति।

जीव कितने हैं ? ग्रनन्त हैं। ग्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? ग्रसंख्यात हैं। ग्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? ग्रनन्त हैं। इसी प्रकार सव वनस्पति ग्रीर सव निगोदिया जीवोंका परिमाण जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यद्यपि ये मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली हैं तथापि इनमें आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भाग प्रमाण ही होते हैं, इसलिए यहां इनकी संख्या असंख्यात वतलाई है। शेष कथन सुगम है।

१४२. श्राभिनियोधिकहानी, श्रुतहानी श्रीर श्रविधहानी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं । श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं । इसी प्रकार संयतासंयत, श्रविधदर्शनी, सम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट, सासा- 'दन सम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मध्यादिष्ट जीवोंका परिमाण जानना चाहिए । श्रानत करपसे लेकर अपराजित तकके देव, शुक्ल लेश्यावाले श्रीर ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं । तथा श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव मनुष्यिनियोंके समान हैं ।

विशेषार्थ—यहां गिनाई गई सव मार्गणाएँ श्रसंख्यात संख्यावाली हैं तथापि इनमें श्रायुक्तमंकी श्रपेक्षा कुछ विशेषता है जिसका निर्देश श्रलग श्रलग मूलमें किया ही है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाण समाप्त हुआ।

१५३. अब जघन्य परिमाणका प्रकरण है। उसकी अपेता निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेता सात कर्मोंकी जघन्य स्थितका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंका परिमाण जानना चाहिए।

विशेपार्थ—सात कमोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसलिए यहां

१५४. त्रादेसेण ऐरइएसु॰ उक्कस्सभंगो । तिरिक्षेसु श्रष्टरणं कम्माणं जह॰ श्रजह॰ द्विदिवं॰ केव॰ १ श्रणंता । एवं सन्वएइंदिय-वर्णफिदि-िणगोद-श्रोरालियमि॰-कम्मइ॰-मिद॰-सुद॰-श्रसंज॰-किएण॰-णील॰-काड॰-श्रव्भवसि॰-मिच्छादि-श्रसिएण-श्रणाहारग ति ।

१५५. सन्वपंचिदियतिरिक्त-सन्वमणुस-सन्वदेव-विगलिदिय-सन्वपुढवि०-श्राड०-तेड०वाड०-बादरवणण्फिदिपत्तेय०-वेडिन्वय०-वेडिन्वयिम०-श्राहार०-श्राहार-मि०-मणपज्ज०-श्रवगदवे०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० उक्कस्सभंगो । एवरि मणुसोधं श्रायु० जह० श्रजह० श्रसंखेज्जा ।

१५६. पंचिदिय-तस०२ सत्तरणं कम्माणं जह० वंध० संखेज्जा। अजह० असं-खेज्जा। आयु० जह० अजह० असंखेज्जा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-

सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं। वाकी सव जीव अनन्त हैं, इसिलए अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्त कहे हैं। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एकेन्द्रिय आदि अधिकतर जीव इन दोनों आयुओंका बन्ध करते हैं। यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है इसीलिए उनका परिमाण ओघके समान कहा है।

१५४. श्रादेशसे नारिकयोंमें श्राठों कमोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण उत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चोंमें श्राठों कमोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? श्रनन्त हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, श्रीदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताशानी, श्रसंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंज्ञी श्रीर श्रनाहारक मार्गणाश्रोंमें परिमाण जानना चाहिए।

१४४. सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब देव, विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सव जलकायिक, सव ग्राग्निकायिक, सव वायुकायिक, सब बादर वनस्पति प्रत्येक श्रीर, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी, श्रपगतवेदी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धि-संयत श्रीर सुदमसाम्परायसंयत मार्गणाश्रोंमें श्राठों कर्मोंकी जघन्य श्रीर अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण श्रपने श्रपने उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि सामान्य मनुष्योंमें श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले मनुष्य श्रसंख्यात हैं।

विशेषार्थ—श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले मनुन्योंमें श्रपर्याप्त मनुन्योंकी मुख्यता है इसलिए यहां इनका परिमाण श्रसंख्यात कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५६ पञ्चे न्द्रिय, पञ्चे न्द्रिय पर्याप्त, त्रस ग्रौर त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। श्रजधन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रौर श्रजधन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभक्ष-

पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद०-चक्खुदं०-सिएए ति ।

१५७. श्राभि०-सुद०-श्रोधि० श्रष्टराणं कम्माणं जह० संखेज्जा । श्रज० श्रसं-खेज्जा । एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-वेदगस० ।

१५८. तेउ०-पम्मले० सत्त्राएं क० जह० संखेज्जा। अजह० असंखेज्जा। आयुग० जह० अज० असंखे०।

१५८. सुक्कले॰-खइग॰ सत्तरणं क॰ जह॰ संखेज्जा। अज॰ असंखेज्जा। आयु॰ जह॰ अज॰ संखेज्जा।

१६०. सासण् सम्मामि० अद्वरणं कम्माणं सत्तरणं कम्माणं जह० अजह० असंखेज्जा । एवं परिमाणं समत्तं ।

क्षानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी श्रौर संज्ञी मार्गणात्रोंमें परिमाण जानना चाहिए।

विशेपार्थ—जो विभङ्गज्ञानी श्रौर संयतासंयत जीव संयमके श्रिममुख होता है उसीके सात कमेंकी जघन्य स्थितिका वन्ध सम्भव है। यतः ऐसे जीव संख्यात होते हैं श्रतः इन दोनों मार्गणाश्रोंमें सात कमेंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

१५७. ग्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी ग्रौर ग्रवधिज्ञानी जीवोंमें ग्राठों कमोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव ग्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार ग्रवधिदर्शनी, सम्यग्दिष्ट ग्रौर वेदसम्यग्दिष्ट मार्गणात्रोंमें परिमाण जानना चाहिए।

१४८. पीतलेश्या श्रौर पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंको जघन्य स्थितिका बन्ध करने वाले जीव संख्यात हैं। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं।

विशेपार्थ—सर्वविग्रुद्ध अप्रमत्तसंयत जीव जो पीत श्रौर पद्मलेश्यावाले होते हैं उनके सात कर्मीका जघन्य स्थितिवन्ध होता है। इस श्रपेक्षासे इन दोनों मार्गणाश्रोंमें सात कर्मीकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं। शेप कथन सुगम है।

१४९. शुक्कतेश्यावाले श्रीर ज्ञायिक सम्यग्दिष्टियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। श्रजधन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं तथा श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजधन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं।

विशेपार्थ—दर्शनमोहनीयकी चपणाका प्रारम्भ मनुष्य हो करते हैं ग्रौर वे संख्यात होते हैं। यद्यपि ग्रन्य तीन गतियों में सञ्चयकी श्रपेचा ये श्रसंख्यात होते हैं पर गति और ग्रागतिकी श्रपेचा ये संख्यातसे ग्रधिक नहीं होते। यही कारण है कि चायिक सम्यग्दिएयों में ग्रायुक्तमेकी जघन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिका चन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं। इसी प्रकार ग्रुक्तलेश्यामें या तो देवायुका चन्ध होता है या मनुष्यायु का। इसीसे इसमें ग्रायुक्तमें की जधन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिका चन्ध करनेवाले संख्यात कहे हैं।

१६०. सासादनसम्यग्दि श्रीर सम्यग्मिथ्यादि जीवोंमें क्रमसे श्राठों कमों श्रीर सात कमोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात होते हैं।

विशेपार्थ—इन दोनों मार्गणात्रोंमेंसे प्रत्येक मार्गणावाले जीवोंकी संख्या पल्यके श्रसंख्यातवें सागप्रमाण कही हैं। इससे यहाँ सात कमौंकी जघन्य श्रीर अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंकी श्रसंख्यात संख्याके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं श्राती।

.इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ ।

वेत्तपरूवगा

१६१. खेत्तं दुविधं—जहएएएयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुविधो िएदं सो—ग्रोधेए ग्रादेसेए य । तत्थ ग्रोधेए ग्रहरूएएं कम्माएं उक्क॰ हिदि वंध० खेविद्येते ? लोगस्स ग्रसंखेज्जिदिभागे । ग्रापुक्क॰वंध० केव० ? सन्वन्तोगे । एसि परिमाणे उक्क॰हिदिवंधगा ग्रसंखेज्जा त्रापुक्क॰वंध० ग्रापंता तेसि उक्कस्स०वंध० केव० खेते ? लोगस्स ग्रसं७, ग्रापु॰ सन्वलोगे एइंदिय-पंचका-याएं मोत्तूण । सेसाएं सन्वेसि सन्वे भंगा उक्क॰ ग्रापु॰वंध० लोगस्स ग्रसंखेजा० ।

१६२. एइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त० सत्तर्गां कम्माणं उक्क० अणु० सव्वलोगे । आयु० उक्क० लोगस्स असं० । अणु० सव्वलोगे । वादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्त० सत्तर्गां कम्माणं उक्क० अणु०वंध० केव० ? सव्वलो० । आयु०

नेत्र प्ररूपणा

१६१. त्रेत्र दो प्रकारको है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है उसकी अपेत्रा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेत्रा आठों कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका कितना त्रेत्र है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग त्रेत्र है । अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका कितना त्रेत्र है ? सव लोक त्रेत्र है । जिनकी संख्या उत्कृष्ट स्थितिके वन्धकी अपेत्रा असंख्यात है और अनुत्कृष्ट स्थितिके वन्धकी अपेत्रा अनन्त है उनका उत्कृष्ट स्थितिके वन्धकी अपेत्रा कितना त्रेत्र है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग त्रेत्र है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवालोंका सव लोक त्रेत्र है । मात्र एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकाय जीवोंको छोड़कर यह त्रेत्र कहा है । शेष सब जीवोंके सव भक्ष अर्थात् उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले शेष जीवोंका त्रेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ — श्रोघसे सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध संक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्याद्दि जीवके संक्लेशक्तप परिणामोंके होने पर होता है। तथा श्रायुक्तमंकी उत्कृष्ट स्थिति का वन्ध इसके या सर्व विश्वद्ध परिणामवाले संयतके होता है। यतः इनका त्रेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है श्रतः श्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब प्रमाण त्रेत्र कहा है। तथा श्राठों कर्मोंकी श्रतुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक त्रेत्र है यह स्पष्ट हो है। यहाँ शेष सब मार्गणाश्रोंको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है। एकेन्द्रिय श्रोर पाँच स्थावरकायिक जीवोंको स्वतंत्र छोड़ दिया है, क्योंकि इनका त्रेत्र श्रागे कहनेवाले हैं। शेष श्रनन्त संख्यावाली मार्गणाश्रोंका त्रेत्र यहीं बतला दिया है श्रोर शेष जितनी श्रसंख्यात श्रोर संख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ बचती हैं उन सबमें सब पर्दोकी श्रपेत्रा त्रेत्र लोकके श्रसंख्यात मार्गणाय बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

१६२. एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके पर्याप्त आपर्याप्त जीवोंमें सात कमेंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक चेत्र है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण चेत्र है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक चेत्र है। बाद्र एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंमें सात कमेंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना चेत्र है ? सब लोक चेत्र है। आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले

उनकः लोगस्स असंखेज्जः । अणुः लोगः संखेज्जदिभागे ।

१६२. पुढवि॰-आउ॰-तेउ॰ अद्वरणं कम्माणं मूलोघं। तेसि सुहुमपञ्जत्ताप-ज्जत्त॰ एइंदियभंगो। वादरपुढवि॰-आउ॰-तेउ॰ सत्तरणं क॰ उक्क॰ लोगस्स असं॰। अणु॰ सन्वलोगे। आयु॰ उक्क॰ आणु॰ लोगस्स असंखेज्जदि॰। बादर-पुढवि॰-आउ॰-तेउ॰पज्जत्ता॰ अद्वर्णणं क॰ उक्क॰ आणु॰ लोगस्स असं॰। वादर-पुढवि॰-आउ॰-तेउ॰अपज्जत्ता॰ सत्तरणं क॰ एइंदियभंगो। आयु॰ उक्क॰ आणु॰ लोगस्स असं॰।

जीवोंका चेत्र लोकके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। ग्रानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है।

१६३. पृथिवीकायिक, जलकायिक श्रीर श्रिय्रकायिक जीवों में श्राठों कमें की उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र मूलोधके समान है। इन्होंके सहम तथा पर्याप्त श्रपर्याप्त जीवों में श्राठ कमें की उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र एकेन्द्रियोंके समान है। वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक श्रीर वादर श्रिय्रकायिक जीवों में सात कमें की उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र सव लोकप्रमाण है। श्रायुक्तमंकी उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त श्रीर वादर श्रिय्रकाचिक पर्याप्त जीवोंमें श्राठों कमोंकी उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। वादर पृथिवीकायिक श्रपर्याप्त, वादर जलकायिक श्रपर्याप्त श्रीर वादर श्रिय्रकायिक श्रपर्याप्त श्रीर वादर श्रय्रक्तिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र एकेन्द्रियोंके समान है। श्रायुक्तमंकी उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र एकेन्द्रियोंके समान है। श्रायुक्तमंकी उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र एकेन्द्रियोंके समान है। श्रायुक्तमंकी उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—पृथिचीकायिक, जलकायिक और श्रिप्तकायिक जीवोंका चेत्र सव लोक है, इसलिए इनमें आठों कमोंकी अपेक्षा क्षेत्र ओघके समान कहा है। पहले एकेन्द्रिय सूक्म और उनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंमें ग्राठों कर्मोंकी ग्रपेचा चेत्रका विचार कर त्राये हैं। उसी प्रकार सूदम पृथिवीकायिक, श्रौर इनके पर्याप्त श्रपर्याप्त जीवोंमें श्राठों कर्मोंकी श्रपेत्ता त्तेत्र प्राप्त होता है, इसलिए इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा है। बादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक श्रौर चाद्र श्रक्षिकायिक जीवोंका मारणान्तिक श्रौर उपपाद्यदकी श्रपेचा सर्व लोकप्रमाण चेत्र होते हुए भी खस्थान चेत्र लोकके ग्रसंख्यातचें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें सात कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका व श्रायुकी उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवालोंका लोकके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहा है। सात कर्मीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र सर्व लोक है यह स्पष्ट ही है। वादर पृथिची कायिक पर्याप्त, वाद्र जलकायिक पर्याप्त श्रीर वाद्र श्रशिकायिक पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान, समुद्धात व उपपाद सभी पदोंकी श्रपेत्ता लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्र है, इसलिए इनमें ग्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट ग्रीर ग्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। यद्यपि बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक ग्रपर्याप्त ग्रौर वादर ग्रग्निकायिक ग्रपर्याप्त जीवींका खस्थान चेत्र लोकके श्रसंख्यातचें भागप्रमाण श्रौर मारणान्तिक समुद्धात व उपपादपदकी श्रपेचा सर्वलोक चेत्र है

१६४. वाउ० सत्तारणं क० उक्क० वं० केव० ? लोग० संखेज्जदिभागे । अणु० सन्वलो० । आयु० ओघं । वादरवाउ० सत्तारणं क० उक्क० लोग० संखेज्ज० । आगु० सन्वलो० । आयु० उक्क० लोग० असं० । अणु० लोगस्स० संखेज्ज० । वादरवाउपज्जता० सत्तारणं क० उक्क० आणु० लोग० संखेज्ज० । आयु० उक्क० लोग० असं० । आणु० लोग० संखेज्ज० । वादरवाउअपज्ज० सत्तारणं क० उक्क० आणु० सन्वलोगे । आयु० उक्क० लोग० असंखे० । अणु० लोग० संखेज्जदि० । सहुमवाउपज्जतापुरुजता० सत्तारणं क० उक्क० आणु० सन्वलोगे । आयु० ओघं ।

तथापि इनमें सात कमौंकी श्रपेत्ता उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र एकेन्द्रियोंके समान प्राप्त होता है, इसिलए इस ज्ञेत्रको एकेन्द्रियोंके समान कहा है। पर इनका स्वस्थान ज्ञेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है इसिलए इन्में, श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका ज्ञेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है।

१६४. वायुकायिक जीवोंमें सात कमौंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य करनेवाले जीवोंका ज्ञेव कितना है ? लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका द्मेत्र सव लोक है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका च्चेत्र ग्रोघके समान है। बाद्र वायुकायिक जीवोंमें सात कमोंकी उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने-वाले जीवोंका चेत्र सब लोक है। श्रायुकर्मकी उत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। ग्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मीकी उत्कृष्ट ग्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवींका स्रेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। ग्रायुकर्मको उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका द्वेत्र लोकके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रतुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। वाद्र-वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मीकी उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र सब लोक है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका ज्ञेत्र लोकके संख्यातमें भागप्रमाण है। सूक्ष्म वायुकायिक श्रीर इनके पर्याप्त तथा श्रपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृप और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सेत्र सब लोक है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका होत्र श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—वादरवायुकायिक श्रौर उनमें ग्रपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान होत्र लोकका संख्यातवां भागप्रमाण तथा मारणान्तिक समुद्धात श्रौर उपपाद पदकी श्रपेहा सर्वलोक होत्र है। वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान समुद्धात श्रौर उपपादपदकी श्रपेहा लोकका श्रसंख्यातवां भागप्रमाण होत्र है। इसी विशेषताको ध्यानमें रख कर इन जीवोंमें सात कर्मोंके व श्रायुकर्मके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट होत्र का विचार कर लेना चाहिए। मात्र श्रायुकर्मके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट होत्र का विचार कर लेना चाहिए। मात्र श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका होत्र सर्वत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

. . ;

१. मूलप्रतौ भ्रणु० उक्क० संखेजा० इति पाठः ।

१६५. वर्णप्फदि-िणगोद० तेसिं सुहुमपन्जत्तापन्जत्त० सत्तराणं क० उक्क० अर्णु० सन्वलोगे । आयु० ओघं । वादरवर्णप्फदि-िणगोद० सत्तराणं क० सुहुमभंगो । आयु० मणुसिभंगो । वादरवर्णप्फदिपत्तेय० वादरपुढिवकाइयभंगो । एवं उक्कस्सयं समत्तं ।

१६६. जहएएगो पगदं । दुविधो िएइ सो—त्रोधेए आदेसेए य । तत्थ श्रोधेए सत्तरएं क॰ जह॰ द्विदिवंध॰ केव॰ १ लोगस्स असंखेज्ज॰ । श्रज॰ सन्वलोगे । श्रायु॰ जह॰ अजह॰ सन्वलो॰ । एवं श्रोधभंगो कायजोगि-श्रोरािलयका॰-एवं स०-

१६५ वनस्पतिकायिक श्रीर निगोद तथा इनके सक्ष्म और पर्याप्त श्रपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र श्रोधके समान है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट श्रीर श्रन्तकृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र श्रोधके समान है। वादर वनस्पतिकायिक श्रीर वादर निगोद जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र स्क्षम जीवोंके समान है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र मनुष्यिनियोंके समान है वादरवनस्पति प्रत्येक श्रीर जीवोंमें श्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र वादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ-वनस्पतिकायिक और निगोद तथा इनके सूक्ष्म श्रौर उनके पर्याप्त श्रपर्याप्त जीवोंका सव लोक च्रेत्र है। इसीसे इनमें सात कमींकी उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सव लोक दोत्र कहा है। श्रोघसे श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध कर-नेवाले जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर श्रतुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र सब लोकप्रमाण बतला त्राये हैं। उक्क मार्गणवाले जीवोंका चेत्र सब लोक होनेसे इनमें भी ग्रोधप्रकृपणा घटित हो जाती है, इसलिए इनमें ग्रायुकर्मकी उत्कृष्ट ग्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र श्रोधके समान कहा है। पहले सूक्ष्म एके-न्द्रिय जीवोंका चेत्र वतला श्राये हैं। वह चेत्र यहां वाद्रवनस्पतिकायिक श्रौर वाद्र निगोद जीवोंमें श्रविकल घटित हो जाता है इसलिए सात कमोंकी श्रपेत्ता इनकी प्ररूपणाको सूक्ष्म जोवोंके समान कहा है। वादर वनस्पतिकायिक श्रोर वादर निगोद जीवोंका स्वस्थान चेत्र लोकके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण है श्रीर मनुष्यिनियोंका स्वस्थान चेत्र भी इतना ही है, इसिलए इन मार्गगात्रोंमें त्रायुकर्मकी क्रपेक्षा मनुष्यिनियोंके समान क्षेत्र कहा है। वादर पृथिवीकायिकोंका स्वस्थान चेंत्र लोकके श्रसंख्यातचें भागप्रमाण श्रौर मारणान्तिक समुद्धात व उपपाद पदकी श्रपेचा सर्वलोक चेत्र हैं। बाद्रवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंका चेत्र भी इतना ही है। इसीसे इनमें ग्राठों कमोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्रेत्र बादरपृथिवीकायिक जीवोंके समान कहा है।

इस प्रकार उत्रुष्ट स्नेत्र समाप्त हुआ।

१६६. श्रव जघन्य चे त्रका प्रकरण है। उसकी श्रपेचा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध श्रीर श्रादेश। उनमें श्रोघकी श्रपेचा सात कर्मीकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना चेत्र है? लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका कितना चेत्र है? सब लोक चेत्र है। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका कितना चेत्र है? सब लोक चेत्र है। इसी प्रकार श्रोघके

कोधादि०४-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग ति ।

१६७. त्रादेसेण ऐरइएस उक्तस्सभंगो । एवं सन्विणरय० ।

१६८. तिरिक्तेसु सत्तारणं क० जह० लोग० संत्वे० । अज० सन्वलोगे । आयु० ओघं । एवं एइंदिय-वाड०-श्रोरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-किएण० णील०-काड०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असिएण-अणाहारग ति ।

१६८. वादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्त० सत्तरएां क० जह० लोग० संखेज्ज० । ग्रज० सव्वलो० । श्रायु० जह० श्रज० लोग० संखेज्ज० । सुहुमेइंदि०पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमपुढवि०-श्राउ०-तेउ०-वाउ०-सुहुमवण०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त०श्रद्वरएां क०

समान काययोगी, श्रौदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोघादि चार कपायवाले, श्रचचुदर्शनी, भव्य श्रौर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ —सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध चएकश्रेणीमें होता है, इसलिए इसका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा। तथा श्रजघन्य स्थितिका बन्ध शेष सबके होता है श्रौर वे समस्त लोकमें व्याप्त हैं इसलिए सात कर्मोंकी श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवालोंका सब लोक क्षेत्र कहा। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थिति एकेन्द्रियादि श्रधिकतर जीव वाँधते हैं श्रौर वे सब लोकमें व्याप्त हैं, इसलिए श्रायुकर्मकी जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक चेत्र कहा है। यहां श्रन्य जितनो मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह श्रोघ व्यवस्था श्रविकल उपलब्ध होती है, इसलिए उनका कथन श्रोघके समान कहा है।

१६७. त्रादेशसे नारिकयोंमें त्राठों कर्मीकी जघन्य त्रीर त्रजघन्य स्थितका वन्ध करने-वाले जीवोंका चेत्र उत्क्रप्रके समान है। इसी प्रकार सब नारकी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ —आश्य यह है कि सामान्यसे श्रीर प्रत्येक पृथिवीके अलग श्रलंग नारकी जीव श्रसंख्यात हैं तथा इनका सेत्र भी लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए श्राठों कर्मीकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले उक्त नारिकयोंका उत्कृष्टके समान ही सेत्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रागे भी प्रत्येक मार्गणामें उस मार्गणाके सेत्रको ध्यानमें लेकर विचार कर लेना चाहिए।

१६८. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्त्रेत्र लोक-के श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक स्त्रेत्र है। श्रायुक्तमेंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सेत्र श्रोघके समान है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, वायुकायिक, श्रीदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मण्काययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, कृष्णलेश्यावाळे, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंज्ञी श्रीर श्रनाहारक मार्गणाश्रोंमें जानना चाहिए।

१६९. बादर एकेन्द्रिय श्रीर इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका खेत्र लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका खेत्र सब लोक है। आयुकर्मकी जघन्य श्रीर अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका खेत्र लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण है। सूद्म एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त श्रीर अपर्याप्त, सूद्म पृथ्वीकायिक, सूद्म जलकायिक, सूद्म श्रीनिकायिक, सूद्म बायुकायिक, सूद्म वनस्पतिकायिक, सूद्म निगोद तथा इन सबके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें

. उंकस्सफोसगुप रूवगां

जह० अजह० सन्वलो० । वादरपुढवि०-आउ०-तेउ० तेसि के किंदिन सिंध के विकास के प्राप्त के प्राप

फोसग्रपरूपगा

१७०. फोसणं दुविधं—जहरण्ययं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुविधं— श्रोघेण श्रादेसेण य । तत्थ श्रोघेण सत्तरणं कम्माणं उक्कस्सिटिदिवंधगेहि केविडियं खेत्तं फोसिदं १ लोगस्स श्रसंखे० श्रद्ध-तेरह चोदसभागा। श्रणुक्क० वंध० सन्वलो० । श्रायु० उक्क० श्रणु० खेत्तभंगो । एवं श्रोघभंगो कायजोगि०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-श्रसंज०-श्रचक्खुदं०-भवसि०-श्रब्भवसि०-मिच्छादि०-श्राहारग ति ।

श्राठ कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र सब लोक है। वादर पृथ्वीकायिक, वादर जलकायिक, वादर श्रग्निकायिक श्रीर इनके अपर्याप्त, वादर वनस्पितकायिक, वादर निगोद श्रीर इनके पर्याप्त तथा श्रप्याप्त, वादर वनस्पितकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके श्रप्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र श्रोघके समान है। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र नारिक्योंके समान है। वादर पृथ्वीकायिक, पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर श्रानकायिक पर्याप्त श्रोर श्रजघन्य स्थितिका वादर वनस्पित प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें श्राठ कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र सामान्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र लोकके संख्यातवें मागप्रमाण है। वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें श्राठ कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका त्रेत्र लोकके संख्यातवें मागप्रमाण है। श्रेष सब मार्गणाश्रीमें सब भङ्ग होते हैं। इस प्रकार त्रेत्र समाप्त हुश्रा।

स्पर्शनप्ररूपणा

१७०. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य ग्रीर उत्कृप्ट। उत्कृप्टका प्रकरण है। उसकी ग्रिपेचा निर्देश दो प्रकारका है—ग्रीघ ग्रीर श्रादेश। उनमेंसे ग्रीघकी ग्रिपेचा सात कर्मोंकी उत्कृप्ट स्थितका वन्ध करनेवाले जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके ग्रसंख्या-तवं भाग, कुछ कम ग्राठवटे चौदह राजु ग्रीर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। ग्रानुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोकका स्पर्शन किया है। ग्रानुकर्मकी उत्कृप्ट ग्रीर ग्रानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। इस प्रकार ग्रीघके समान काययोगी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यकानी, श्रताक्षानी, ग्रसंथत, श्रचश्चदर्शनी, भव्य, ग्रमव्य, मिथ्यादिए ग्रीर ग्राहारक मार्गणात्रोंमें स्पर्शन जानना चाहिए।

१७१. त्रादेसेंग गेरइएस सत्तरणं क० उक्क० त्रगु० इच्चोद० । त्रायु० खेत्तभंगो। पढमाए खेत्तभंगो। विदियाए याव सत्तमा ति सत्तरणं क० उक्क० त्रगु० वे-तिरिग्ग-चत्तारि-पंच-इच्चोदस०। त्रायु० खेत्तभंगो। तिरिक्खेस सत्तरणं क० उक्क० इच्चोद्द०। त्रायु० सन्वलोगो। त्रायु० खेत्तभंगो। एवं खावुं स०-किरणले०।

१७२. पंचिदियतिरिक्ख०३ सत्तराणं क० उक्क० छच्चोद० । ऋणु० लोग० असंखे० सञ्चलो० । ऋायु० खेत्तभंगो ।

विशेषार्थ—सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्घ संझी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त संक्लेश पिरिणामवाले जीव करते हैं, इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत कालीन स्पर्शन विहारवत्स्वस्थानकी अपेका कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेका तेरह वटे चौदह राजु है। यही जानकर यहां उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७१. श्रादेशसे नारिकयों से सात कर्मों को उत्हार श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुक्तमंकी उत्हार श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। पिहली पृथ्वीमें श्राठों कर्मोंकी उत्हाप श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तकके नारिकयोंमें सात कर्मोंकी उत्हाप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने क्रमसे कुछ कम एक वटे चौदह राजु, कुछ कम दो वटे चौदह राजु, कुछ कम वार वटे चौदह राजु, कुछ कम पांच वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मका भङ्ग चेत्रके समान है। तिर्थञ्चोंमें सात कर्मोंकी उत्हाप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मका भङ्ग चेत्रके समान है। हा चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मका भङ्ग चेत्रके समान है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी श्रीर कृष्ण लेश्यावों जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्य नारिकयोंका श्रतीत कालीन स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु है। प्रथम पृथिवीमें लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्शन है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें कुछ कम पक वटे चौदह राजु आदि स्पर्शन है। इसे ध्यानमें रखकर सामान्यसे नरकमें श्रीर प्रत्येक पृथिवीमें सात कमौंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चोंमें जो नीचे सातवीं पृथिवीतक मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उन्हींके सात कमौंकी उत्कृष्ट स्थितिकी श्रपेत्ता उत्कृष्ट स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु उपलब्ध होता है यह जानकर उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

१७२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें सात कर्मोको उत्क्रप्टस्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण श्रीर सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मका भक्ष चेत्रके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें कुछ कम छह बटे चौदह राजुका स्पष्टीकरण सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंका चर्तमान निवास लोकके ग्रसं- ख्यातवें भागप्रमाण है श्रौर श्रतीत कालीन निवास मारणान्तिक श्रौर उपपादपदकी श्रपेद्या सर्व लोक है। यह जानकर इनमें सात कर्मोंकी श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले उक्र

१७३. पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता० सत्तर्ग्णं क० उक्क० अणु० लोग० असंखे० सन्वलोगो वा । आयु० खेत्तभंगो । एवं मगुसअपज्जत्त-सन्वविगलिदिय-पंचिदिय-तसअपज्जत्ता० वादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०पज्जत्ता० बादरवग्ग-प्फिदि०पत्तेयपज्जत्ता० ।

१७४. मणुस० सत्त्राणं क० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० लोग० असंखे० सन्वलो० । अ।यु० खेत्तभंगो । देवेसु सत्त्राणं क० उक्क० अणु० अह-णवचोदस० । आयु० उक्क० अणु० अहचोदस० । एवं सन्वदेवाणं अपप्पणो फोसणं कादन्वं ।

१७५. एइंदिएस सत्तरणं क० उक्क० ऋणु॰ सव्वलोगो । आयु० उक्क० लोग० असंखे० । अर्थु० वंध० सव्वलोगो । एवं वादरएइंदियपज्जत्तापज्जता० । स्विर

तिर्यञ्जोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेप कथन सुगम है।

१७३. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों में सात कर्मीं की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्तमंका भक्त चेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सव विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, अस अपर्याप्त, वादरपृथ्वीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अपिनकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त और वादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

विशेपार्थ—पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंका वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्या-तवें भागप्रमाण और मारणान्तिक व उपपाद पदकी अपेचा अतीतकालीन स्पर्शन सव लोक है। यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनका स्पर्शन इसी प्रकार है, इसलिए इनमें सात कमोंकी उत्कृप्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेप कथन सुगम है।

१७४. मनुष्य त्रिक्षमें सात कर्मोंकी उत्ह्रप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्त्रिक्षे समान हैं। ग्रानुत्क्रप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग ग्रीर सवलोक स्त्रेक्षा स्पर्शन किया है। ग्रायुकर्मका स्पर्शन स्त्रेक्षे समान है। देवोंमें सात कर्मोंकी उत्ह्रप्ट ग्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ बटे चौद्द्द राजु ग्रीर कुछ कर्म नो बटे चौद्द्द राजु स्त्रेक्षा स्पर्शन किया है। ग्रायुकर्मकी उत्कृष्ट ग्रीर ग्रानुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठवटे चौद्द्द राजु स्त्रेक्षा स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके ग्रपना ग्रपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेपार्थ—देव विहारवत्स्वस्थानकी अपेता कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेता कुछ कम नौ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन करते हैं। किन्तु मारणान्तिक समुद्धात के समय आयुवन्ध नहीं होता इसलिए इनके आयुक्मंकी अपेत्ता केवल कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्शन कहा है। भवनवासी आदि देवोंमें अपने अपने स्पर्शनको जानकर यहां यथासम्भव स्पर्शनका निर्देश करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१७४. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंकी उत्क्रप्ट ग्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक दोत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मकी उत्क्रप्टस्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण दोत्रका स्पर्शन किया है। श्रमुत्कृष्ट त्रायु० त्रायु० लोग० संखे० । स्रुहुमएइंदियपज्जत्तापज्ज० सत्तरणं क० उक्क० त्रायु० सन्वलो० । त्रायु० उक्क० लोग० त्रसंखे० सन्वलो० । त्र्रयु० सन्वलोगो । एवं सन्वस्रुहुमाणं ।

१७६, पंचिंदिय-तस०२ सत्तारणं क० उक्क० श्रष्ट-तेरह० । श्रणु० श्रष्टचोदस० सन्वोलोगो वा । श्रायु० उक्क० खेत्तभंगो। [श्रणुक्क०-]श्रष्टचोदस०। एवं पंचमण०- पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदंसणि ति ।

स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूच्म एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सवलोक चेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्मिकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्टस्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सवलोक चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्टस्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सवलोक चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब सूच्म जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां सूद्म एकेन्द्रिय श्रौर उनके पर्याप्त श्रपर्याप्त जीवोंमें श्रायुकर्मकी उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन दो प्रकारका कहा है सो उसमें से लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन वर्तमान कालकी श्रपेत्ता कहा है श्रौर सव लोकप्रमाण स्पर्शन श्रतीत कालकी श्रपेत्ता कहा है। श्रेप कथनका विचार इन मार्गणाश्रोंके स्पर्शनको देखकर कर लेना चाहिए।

१७६. पञ्चेन्द्रियः पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस त्रौर त्रस पर्याप्त जीवोंमें सात कमें की उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम त्राठ वटे चौदह राजु ग्रौर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु खेत्रका स्पर्शन किया है। ग्रानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु ग्रौर सव लोक खेत्रका स्पर्शन किया है। ग्रागुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन खेत्रके समान है। ग्रानुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु खेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगक्षानी ग्रौर चक्षुदर्शनी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ विहारवत्स्वस्थानकी अपेला कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेला कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु स्पर्शन उपलब्ध होता है। यह सात कमाँकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धकी अपेला स्पर्शन है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धकी अपेला तो कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक स्पर्शन उपलब्ध होता है। इनमेंसे कुछ कम आठ वटे चौदह राजु स्पर्शनका खुलासा पूर्ववत् है और सब लोकप्रमाण स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धातकी अपेला जानना चाहिए। कारण कि अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले उक्त जीव सब लोकमें मारणान्तिक समुद्धात करते हुए उपलब्ध होते हैं। आयुकमेंकी अपेला स्पर्शनका विचार करते हुए अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन केवल कुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है सो इसका कारण यह है कि मारणान्तिक समुद्धातके समय आयुकमेंका वन्ध नहीं होता, अतएव विहारवत्स्वस्थानकी अपेला कुछ कम आठ वटे चौदह राजु स्वर्श सम्भव है, इससे अधिक नहीं।

१७७. पुढवि०-श्राउ-तेउ० तेसिं च वादर० सत्तरणं क० उक्क० लोग० श्रसंखे० सन्वलो०। श्रणु० सन्वलो०। श्रायु० खेत्तभंगो। वादरपुढवि०-श्राउ०-तेउ० श्रपज्ज-त्ता० सत्तरणं क० उक्क० श्रणु० सन्वलो०। श्रायु० खेत्तभंगो। वादरवणप्किदपत्तेय० वादरपुढविभंगो। वाउ० पुढवि०भंगो। एविर जिम्ह लोगस्स श्रसंखे० तिम्ह लोगस्स संखेज्ज०। वणप्किद-णिगोद० पुढविकाइयभंगो। एविर सत्तरणं क० उक्क० सन्वलो०।

१७८. श्रोरालियका० सत्तराणं क० उक० छच्चोदस० । श्राणु० सव्वलो० । श्रापु०खेत्तभंगो।श्रोरालियिक श्रष्टराणं क० उक० लोग० श्रसंखे०।श्राणु० सव्वलो०। वेउव्वियका० सत्तराणं क० उक० श्राणु० श्रष्टतेरह'० । श्रापु० उक० श्राणु० श्रष्ट-

१७७. पृथिचीकायिक, जलकायिक, श्रिय्यक्तियिक श्रीर इनके वाद्र जीवींमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सव लोक स्नेत्रका स्पर्शन किया है। श्रानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक स्नेत्रका स्पर्शन किया है। श्रानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक स्नेत्रका याद्र जलकायिक श्रपर्याप्त श्रीर वाद्र श्रियकायिक श्रपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक स्नेत्रका स्पर्शन किया है। श्रानुकर्मका भक्त स्नेत्रके समान है। वाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्रीर जीवोंमें श्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन वाद्र पृथिवीकायिकके समान है। वायुकायिक जीवोंमें श्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन पृथिवीकायिकके समान है। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकका श्रसंख्यातवाँ भाग कहा है वहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग लेना चाहिए। वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें श्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन पृथ्वीकायिकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक स्नेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ पृथिवीकायिक श्रादि जीवोंमें सात कर्मीकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन वर्तमान कालकी श्रपेचासे कहा है। शेष स्पर्शन यहाँ कही गई मार्गणाश्रोंके स्पर्शनका ध्यान रखकर जान छेना चाहिए।

१७८. ग्रीदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह यहे चौदह राजु दोत्रका स्पर्शन किया है। ग्रानुत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक दोत्रका स्पर्शन किया है। ग्रानुकर्मका भक्क दोत्रके समान है। ग्रीदारिकमिश्रकाययोगवाले जीवोंमें ग्राठ कर्मोंकी उत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके ग्रसंख्यातवें भाग दोत्रका स्पर्शन किया है। ग्रानुत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक दोत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिककाययोगवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृप्ट ग्रीर ग्रानुत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ बहे चौदह राजु ग्रीर ग्रानुत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ बहे चौदह राजु ग्रीर ग्रानुत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ बहे चौदह राजु ग्रीर ग्रानुत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वहे चौदह राजु दोत्रका स्पर्शन किया है।

१, मूलप्रतौ –तेरह० । ग्रायु० उक्क० श्रणु० श्रहतेरह०, श्राउ० इति पाठः ।

चोइस० | वेजिव्वयमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-मणपज्ज०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० खेत्तभंगो । कम्मइ०-अणाहार० सत्तरणं क० जक० वारहचोइस० । अणु० सन्वलोगो ।

१७६. ग्राभि०-सुद०-श्रोधि० सत्ताराणं क० उक्क० श्रापु० श्रष्टचोदस०। श्रायु० उक्क० खेत्तभंगो। श्रापु० श्रष्ट०। एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदगस०-उवसमस०।

१८०. संजदासंजद॰ सत्तरायां कम्मायां उक्क॰ खेत्त॰ । ऋणु० छच्चोदस० । आयु॰ उक्क॰ ऋगु॰ खेत्तभंगो ।

१८१. गीलं∘-काड सत्तरणं क० उक० चत्तारि-वे-चोइस०। ऋणु० सव्वलो०,

वैक्रियिक मिश्रकाययोगवाले, श्राहारककाययोगवाले श्राहारकमिश्रकाययोगवाले, श्रपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, हेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत श्रीर सूक्तमसम्परायसंयत जीवोंमें श्राठ कमेंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्य करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्त्रेन समान है। कार्मणकाययोगवाले श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कमेंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य करनेवाले जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजु स्त्रेनका स्पर्शन किया है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्य करनेवाले जीवोंने सव लोक स्त्रेनका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य करनेवाले श्रोदारिक काययोगी जीव नीचे सातवीं पृथिवी तक मारणान्तिक समुद्धात करते हैं इसिलए इनका कुछ कम छह यहे चौदह राजु प्रमाण स्पर्शन कहा है। श्रोदारिकमिश्रकाययोगमें श्राठीं कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध उक्क योगवाले सव जीवोंके न होकर कितपय जीवोंके ही होता है। जिनका कुल स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाणसे श्रधिक नहीं होता इसिलए इनका उक्क प्रमाण स्पर्शन कहा है। मारणान्तिक समुद्धातमें श्रायुवन्ध नहीं होता इसिलए वैकियिककाययोगमें श्रयुकर्मकी उत्कृष्ट और श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन केवल कुछ कम श्राठ यहे चौदह राजुप्रमाण कहा है।

१७९. श्राभिनिवोधिकहानी, श्रुतहानी और अवधिहानी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु'सेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुक्तमंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन सेत्रके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनो, सम्यग्द्दि, स्रायिक सम्यग्द्दि, वेदक-सम्यग्द्दि श्रीर उपशमसम्यग्द्दि जीवोंमें स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उक्त मार्गणात्रोंमें कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन यथासम्भव विहारवत्स्वस्थान ग्रादि पदोंकी ग्रपेक्षा होता है। शेष कथन सुगम है।

१८० संयतासंयतोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ संयतासंयतोंका मारणान्तिक समुद्धातकी श्रपेचा कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन होता है।

१८१. नीललेश्यावाले ग्रौर कापोत लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कमसे कुछ कम चार वटे चौदह राजु ग्रौर कुछ कम दो बटे चौदह त्रायु॰ त्रोघं । तेउ॰-पम्म॰-सुक्कले॰ सत्तराणं क॰ उक्क॰ ऋणु॰ ऋह-णवचोदस॰ श्रष्टचोदस॰ छच्चोदस॰ । श्रायु॰ उक्क॰ खेत्त॰ । श्रायु॰ श्रष्टु॰ श्रद्घचोदस॰ छच्चोदस॰ ।

१८२. सासण् सत्तरणं क० उक्क० अणु० अह-वारह०। आयु० उक्क० खेत्त-भंगो। अणु० अहचोदस०। सम्मामि० सत्तरणं क० उक्क० अणु० अहचोदस०। असरिण् खेत्त०। एवं उक्कस्सफोसणं समत्तं।

राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्रुष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मकी अपेचा स्पर्शन श्रोधके समान है। पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और श्रुक्ठलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर अनुत्रुष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने पीतलेश्याकी अपेचा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु व कुछ कम नौ बटे चौदह राजु चेत्रका, पद्मलेश्याकी अपेचा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु चेत्रका और श्रुक्ठलेश्याकी अपेचा कुछ कम अठ बटे चौदह राजु चेत्रका और श्रुक्ठलेश्याकी अपेचा कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अयुत्रुष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कमसे कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेपार्थ—पाँचवीं पृथिवी यहाँसे कुछ कम चार राजु और तीसरी पृथिवी कुछ कम दो राजु है। इसी वातको ध्यानमें रखकर नील और कापोतलेश्यामें कमसे उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका कुछ कम चार राजु और कुछ कम दो राजु स्पर्शन कहा है। यह स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा उपलब्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट है। इतनी विशेपता है कि पीतलेश्यामें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु होता है। कारण कि मारणान्तिक समुद्धातके समय आयुवन्ध नहीं होता इसलिए यहाँ कुछ कम नौ वटे चौदह राजु स्पर्शन उपलब्ध नहीं होता।

१८२. सासादन सम्यग्दिएयों में सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजु चेत्र का स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु चेत्र का स्पर्शन किया है। सम्यग्मिथ्यादिए जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रसंशियोंमें श्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ—सासादनमें विहारवत्स्वस्थान ग्रादिकी अपेक्षा कुछ कम ग्राट वटे चौदद्द रांजु ग्रौर मारणान्तिक समुद्धातकी ग्रपेक्षा कुछ वारद्द बटे चौदद्द राजु स्पर्शन होता है। ग्रायुका बन्ध होते समय मारणान्तिक समुद्धात नहीं होता। इन बातोंको ध्यानमें रखकर सासादनमें उक्त स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार उत्कृप्ट स्पर्शन समाप्त हुया।

१८३. जहएएगे पगदं । दुविधो एिंद सो—अघेए आदेसेए य। तत्थ ओघेए आहुएएं क० जह० अज० खेत्तभंगो । एवं पहमपुद्धवि०-तिरिक्ख-सञ्चएइंदिय-पुद्धवि०-आड०-तेड०-वाड० तेसि वादर-वादरअपज्जत्ता० सञ्चवएएफदि-णिगोद०-सञ्चसुदुम० कायजो०-ओरालियका०-ओरालियमि०-वेडिव्वयमि०-आहार०-आहारमि०-कम्मइय० एावु स०-अवगदवे०-कोधादि०४-मदि०-सुद्द०-परापज्जव०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं०-असंजद०-अचक्खुदं०-किएए०-एगिल०-काड०-भवसि०-अ०भ-वसि०-अ०भ-वसि०-असण्ए-आहार०-अर्णाहारग ति ।

१८४. त्रादेसेण ऐरइएसु सत्तरणं कम्माणं जह० खेत्तभंगो । त्रज० त्रणुक्कस्स-भंगो । त्रायु० खेत्तभंगो । विदियाए याव सत्तमा त्ति सत्तरणं क० जह० खेत्त० । त्रज० त्रणु०भंगो । त्रायु० खेत्त० ।

१८३. अव जघन्य स्पर्शनका प्रकरण है। इसकी अपेन्ना निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेन्ना आठ कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन नेत्र के समान है। इसी प्रकार पहली पृथ्वी, तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इन पृथिवी आदिके, वादर और वादर अपर्याप्त, सब वनस्पति, सब निगोद, सब स्क्ष्मकायिक, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारककाययोगी, आहारककाययोगी, निपंक्तियक्षिश्रकाययोगी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्चिस्तंयत, स्क्ष्मसाम्परायसंयत, असंयत, अचक्षुदर्शनी, इत्पलेक्यावाले, नील लेक्यावाले, भन्य, अन्य, मिथ्यादि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सात कमींकी जघन्य स्थितिका बन्ध च्रपक श्रेणिमें होता है श्रीर इनका स्पर्शन चेत्रके समान ही है, क्योंकि इन जोवोंने त्रिकालमें लोकके श्रसंख्यातवें भागसे श्रधिक चेत्रका स्पर्शन नहीं किया। तथा सात कमींकी श्रजघन्य श्रीर श्रायुक्तमंकी जघन्य व श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान सव लोक है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एकेन्द्रिय श्रादि सव जीवोंके ये स्थितियाँ यथायोग्य उपलब्ध होती हैं। यहाँ पहली पृथिवी श्रादि श्रन्य मार्गणाश्रोंमें स्पर्शन प्रक्षपणा इसी प्रकार जानना चाहिए यह कहा है सो इस कथनका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार श्रोध स्पर्शन श्रपने चेत्रके समान है उसी प्रकार पहली पृथिवी श्रादि मार्गणाश्रोंमें प्राप्त होनेवाला स्पर्शन श्रपने चेत्रके समान है। उदाहरणार्थ पहली पृथिवीमें श्राठों कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। यहाँ प्राप्त होनेवाला स्पर्शन भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

१८४. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्त्रेत्रके समान है। श्रजघन्यस्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन श्रजुत्कृष्टके समान है। श्रायुकर्मका भङ्ग स्त्रेत्रके समान है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकयोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्त्रेत्रके समान है। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन श्रजुत्कृष्टके समान है। श्रायुक्मिका भङ्ग स्त्रेत्रके समान है। श्रायुक्मिका भङ्ग स्त्रेत्रके समान है।

१८५. पंचिदियतिरिक्त ०४-सन्वमग्रुस-सन्वदेव-सन्विवग्तिदिय-सन्वपंचिदिय-तस-वादरपुढिव०-आड-तेड०-वाड०-पज्जत्ता० वादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव पज्जत्ता-पज्जत्त० पंचमण्०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-आभि०-सुद०-ओधि०-संजदा-संजद-चक्खुदं०-ओधिदं०-तेड०-पम्भत्ते०-सुक्कले०--सम्मादि०-खइग०--वेदगस०-उवस-मस०-सिण्ण त्ति एदेसिं सन्वेसिं सत्त्राणं क० जह० खेत्त० । अज० अपप्पणो अग्रुक्तस्सफोसणभंगो । एवरि आयु० एसिं जह० द्विदंबं० खुद्दाभवग्गहणं तेसिं जह० खेत्तभंगो । अज० अणु०भंगो । सेसाणं उक्कस्सभंगो । एवरि जोदिसियादिजवरि-मदेवाणं सत्त्रणं क० जह० सन्वदेवाणं आयु० जहण्णयस्स च विहारविदफोसणं कादन्वं ।

विशेषार्थ—जो असंक्षी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्होंके जघन्य स्थितिबन्ध सम्मव है। इसीसे नरकमें जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-कारण कि ये प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं अतः इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण ही होता है। इनके सिवा शेष सव नारिकयोंके अजघन्य स्थितिबन्ध होता है। यही कारण है कि अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीवोंका स्पर्शन अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंके समान कुछ कम छह बटे चौदह राजु कहा है। यह सामान्य नारिकयोंके स्पर्शनका विचार है। इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर प्रत्येक पृथिवीके नारिकयोंके स्पर्शनका विचार कर लेना चाहिए। मात्र प्रत्येक पृथिवीमें अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले, नारिकयोंका स्पर्शन अपने अनुत्कृष्टके समान प्रत्येक पृथिवीके स्पर्शनके अनुसार कथन करना चाहिए।

१८४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्क, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब जस, वाद्र पृथिवीकायिकपर्याप्त, वाद्रजलकायिकपर्याप्त, वाद्रज्ञिन-कायिकपर्याप्त, वाद्रज्ञिकायिक पर्याप्त, बाद्रवनस्पितकायिक प्रत्येक श्रीर ज्ञौर इन्होंके पर्याप्त-अपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, ग्राभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, ग्राभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, ग्राभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, ग्रुवधिज्ञानों, सम्यग्दृष्टि, वायिकसम्यग्दृष्टि, वेद्रकसम्यग्दृष्टि, उपश्मसम्यग्दृष्टि श्रीर संज्ञी इन सब जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्थान है। ग्रुजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन ग्रुपने श्रुतुत्कृष्ट स्पर्शनके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें जिनके श्रायुक्तमका जघन्य स्थितिबन्ध सुद्रक भवग्रह्ण प्रमाण होता है उनके जघन्य स्थितिकी श्रोपेत्ता स्पर्शन क्रेनके समान है। तथा श्रुजघन्य स्थितिकी श्रपेत्ता स्पर्शन क्रेनके समान है। तथा श्रुजघन्य स्थितिकी श्रपेत्ता स्पर्शन क्रोनके समान है। तथा श्रुजघन्य स्थितिकी श्रपेत्ता स्पर्शन श्रुतकृष्टिके समान है। श्रेष सब जीवोंके श्रायुकर्मकी अपेता स्पर्शन उत्कृष्टिके समान है। इतनी विशेषता है कि स्योतिषियोंसे लेकर अपरके देवोंके सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रीर सब देवोंके श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका श्रीर सब देवोंके श्रायुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका विहारवत् स्वस्थान पदके समान स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सात कर्मीका जघन्य स्थितवन्ध उत्पत्तिके प्रथम और द्वितीय समयमें उपलब्ध होता है, क्योंकि इनमें असंही जीव मरकर उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन दो प्रकारके देवोंको छोड़कर ज्योतिषियोंसे लेकर शेप सब देवोंके सात कर्मीकी जघन्य स्थितिका बन्ध और सब देवोंके आयुक्रमैकी जघन्य स्थितिका बन्ध विहार

१८६. वेउन्वियका० सत्तराणं क० जह० अहचोदस० । अज० अह-तेरह० । आयु० जह० अज० अहचोदस० । सासण० सत्तराणं क० जह० अज० अह-वारह० । आयु० जह० अहचोदस० । सम्माभिच्छादि० सत्तराणं क० जह० अज० अह-चोदस० । एवं फोसणं समत्तं ।

कालपरूवगा

१८७. कालं दुविधं—जहराणयं उकस्सयं च। उकस्सए पगदं। दुविधो िणदे सो— त्रोघेण त्रादेसेण य। तत्थ त्रोघेण सत्तरणं क० उक्क० द्विदिवं० केवचि० १ जह० एगस०, उक्क० पिलदोव०त्रसंखे०। त्रणुक्क० द्विदिवं० केवचि० १ सव्बद्धा।

वत्स्वस्थानमें सम्भव होनेसे इनकी अपेता जहाँ विहारवत्स्वस्थानकी अपेता जो स्पर्शन हो उतना स्पर्शन होता है। इसी बातको ध्यानमें रखकर मूलमें इस स्पर्शनका विशेष रूपसे अलगसे उल्लेख किया है। शेष सब मार्गणाओं सम्बन्धमें जहाँ जो विशेष बात कही है उसे ध्यानमें रखकर स्पर्शन प्राप्त कर लेना चाहिए।

१८६. वैक्रियिककाययोगवाले जीवोंमें सात कमेंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठवटे चौदह राजु स्नेत्रका स्पर्शन किया है। ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठवटे चौदह राजु ग्रोर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु स्नेत्रका स्पर्शन किया है। ग्रायु कर्मकी जघन्य ग्रोर ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु स्नेत्रका स्पर्शन किया है। सासादन सम्यग्दि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य ग्रोर ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु बोत्रका स्पर्शन किया है। ग्रायुकर्मकी जघन्य ग्रोर ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछकम ग्राठ वटे चौदह राजु स्त्रका स्पर्शन किया है। सम्यग्मिथ्यादि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य ग्रोर ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछकम ग्राठ वटे चौदह राजु स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगमें कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धातकी अपेचा उपलब्ध होता है। यहां इस अवस्थामें सात कमींकी जघन्य स्थितिका व आयुक्रमंका वन्ध नहीं होता अतः इस अपेचासे उक्त मार्गणामें यह स्पर्शन नहीं कहा है। किन्तु सासा दनमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सात कमींका जघन्य स्थितिवन्ध सम्भव है, इसलिए इसमें सात कमींकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राज कहा है। मात्र मारणान्तिक समुद्धातके समय यहां आयुक्रमंका वन्ध नहीं होता, इसलिए इस अपेचासे कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण ही स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुन्ना।

कालप्ररूपया

१८७. काल दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेत्रा निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। उसमें से ओघकी अपेत्रा सात कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना

श्रायु० उक्क० जह० एग०, उक्क० श्रावित्याए श्रसंखेज्जिद्०। श्रणु० सन्बद्धा। एवं श्रोधभंगो तिरिक्लोधं पुढवि-श्राड०-तेड०-वाड०-वाद्रवणप्फिद्पित्ते०-कायजोगि-श्रोराित्यका०-श्रोराित्यिम०-कम्मइग०-णवुंस०-कोधादि०४-मिद्०-सुद०-श्रसंजद०-श्रचक्तु०-किएण०-णीत्त०-काड०-भवसि०-श्रव्यवसि०-मिच्छादि०-श्रसिएण-श्राहार-श्रणाहारग ति। एवरि कम्मइ०-श्रणाहार० सत्तरणं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० श्रावित्याए श्रसंखेज्जिद्भागो।

१८८. आदेसेण ऐरइएस सत्तरणं कम्माणं मूलोघो । आयु० उक्कस्स० ओघ-भंगो । आयु० जह० अंतो०, उक्क० पितदो० असंखे० । एवं सव्विणिरय-सव्वर्णचिदियति-रिक्ख० देवा याव सहस्सार त्ति सव्विविगलिदिय-सव्वर्णचिदिय-तस-वादरपुढिव०-आड०-तेड०-वाड०पज्जत्ता० वाद्रवरणप्पदिपत्तेय०पज्जत्ता० पंचमण०-पंचविव०-

काल है ? सब काल है । श्रायुकर्मकी उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रावितके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । श्रमुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है । इसी प्रकार श्रोधके समान सामान्य तिर्वञ्च, पृथिवी कायिक, जलकायिक, श्रिप्तकायिक, वायुकायिक, वादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, काय्योगी, श्रोदारिककाययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यद्यानी, श्रुताझानी, श्रसंयत, श्रचलुदशैनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, मव्य, श्रमव्य, मिथ्यादिए, श्रसंझी, श्राहारक श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोकी उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रावलिके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

विशेपार्थ—एक जीवकी अपेता कालका विचार पहले कर आये हैं। यहाँ नाना जीवोंकी अपेता कालका विचार किया गया है। आश्रय यह है कि नाना जीव अन्तरके विना आठों कर्मोंकी जघन्य और उत्छए स्थितिका कमसे कम कितने काल तक और अधिकसे अधिक कितने काल तक वन्ध करते रहते हैं इसी वातका इस अनुयोगद्वारमें निर्देश किया है। यहाँ अनुत्रुए स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है यह तो स्पए ही है, क्योंकि ओघसे अनन्तानन्त जीव और यहाँ गिनाई गई मार्गणाओं मेंसे प्रत्येक मार्गणावाले यथासम्भव अनन्त या असंख्यात जीव प्रति समय आठों कर्मोंकी उत्छएके सिवा किसी न किसी स्थितिका अवश्य वन्ध करते हैं। उत्छए स्थितिका वन्ध काल मूलमें निर्दिए किया ही है। इसका आश्य यह है कि जिस स्थितिका जघन्य या उत्छए जो काल कहा है उतने काल तक किसी न किसी जीवके उस स्थितिका निरन्तर वन्ध होता रहता है। आगे अन्तरकाल आ जाता है।

१८८. श्रादेशसे नारिकयों सात कमोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध्र करनेवाले जीवोंका काल मूलोघके समान है। श्रायुक्तमंके उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध्र करनेवाले जीवोंका काल श्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध्र करनेवाले जीवोंका जधन्य काल श्रम्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, देव, सहस्रार कल्पतकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब श्रस, बादर पृथिवोकायिकपर्याप्त, वादरजलकायिकपर्याप्त, वादर श्रायकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त, वादर वनस्पति प्रत्येक

वेउिवय०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-तेउ०-पम्म०-सिएए ति । एवरि पंच-मण्य०-पंचवचि०-वेउिवयका० आयु० अर्णु० जह० एग० ।

१८६. मणुसेसु सत्तारणं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रणु० सम्बद्धा। श्रायु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम०। श्रणु० शिरयभंगो। मणुसपज्जत-मणुसिणीसु सत्तारणं क० मणुसोधं। श्रायु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम०। श्रणु० जह० उक्क० श्रंतो०। एवं सम्बद्धे। मणुसश्रपज्ज० सत्तारणं क० उक्क० श्रणु० जह० एग०, उक्क० पितदो० श्रसंखे०। श्रायु० शिरयभंगो।

शरीर पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, विभंगज्ञानी, चचुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले श्रीर संज्ञी जीवोंमें स्पर्शन जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी श्रीर वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें श्रायुकर्मकी श्रमुतकृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—नरक्षमें सव जीवराशि असंख्यात है और आयुकर्मका वन्ध प्रत्येक जीवके अन्य कर्मके समान सर्वदा होता नहीं, इस लिए वहाँ आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सर्वदा काल न होकर वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पत्यके असंख्यात्वें भागप्रमाण होता है ऐसा यहाँ समस्तना चाहिए। तथा पाँच मनोयोग, पाँच वचनयोग और वैकियिककाययोग इनमेंसे प्रत्येक योगका जघन्य काल एक समय होनेसे इन योगोंमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय वन जाता है। शेष कथन सुगम है।

१८०, मनुष्योंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। श्रायुकर्मको उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल नारिकयोंके समान है। मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यितियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल सामान्य मनुष्योंके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। मनुष्य श्रपर्यप्तकोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पत्यक्ति श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पत्यक्ति श्रमुक्ति भागप्रमाण है। श्रायुकर्मका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

विशेपार्थ—मनुष्योंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध पर्याप्त अवस्थाके होने पर ही होता है और पर्याप्त मनुष्य संख्यात है। यही कारण है कि मनुष्योंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जोवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मृहर्त कहा है। सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध कमसे कम एक समय तक होता है सिलिए जघन्य काल एक समय कहा है तथा एक जीवकी अपेना उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। अब मान लो संख्यात मनुष्य एकके बाद एक उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रारम्भ करते हैं तो उस सब कालका जोड़ अन्तर्मुहर्त ही होगा। इसलिए उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त कहा है। यतः

- १६०. आणद याव अवराजिदा त्ति सत्तराणं कम्प्राणं ओघं। आयु० मणु-सिभंगो। एवं सुकले ०-खइग०।
- १६१. सन्वएइंदिय-वादंरपुढवि०-आड०-तेड०-वाड०-वादरवणप्फदिपत्तेय० अ-पज्जत्ता तेसिं चेव सन्वसुहुम० सन्ववणप्फदि-णिगोदाणं च सत्तरणं क० उक्क० अणु०

मनुष्यगति मार्गणाके जीव निरन्तर उपलब्ध होते हैं श्रतः इनमें श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध सर्वदा पाये जानेके कारण इसका काल सर्वदा कहा है। श्रायुकर्मकी उत्कृप्ट स्थितिका यन्ध एक समय तक होता है, इसलिए यदि कोई एक मनुष्य प्रथम समयमें श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता है श्रीर द्वितीयादि समयोंमें कोई श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नहीं करता तो मनुष्योंमें श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका एक समय काल उपलब्ध होता है श्रीर यदि संख्यात समय तक निरन्तर संख्यात मनुष्य श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते रहते हैं तो श्रायुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका संख्यात समय काल उपलब्ध होता है। यहाँ श्रायु-कर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका इससे अधिक काल उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि पर्याप्त मनुष्य ही उत्कृप्ट श्रायुका बन्ध करते हैं श्रीर वे संख्यात होते हैं। यही कारण है कि सामान्य मनुष्योंमें श्रायुकर्मके उत्क्रप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्क्रप्ट काल श्रन्तर्मु-हर्त कहा है। ग्रायुकर्मके ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल ग्रन्तर्मुहर्त है यह तो स्पष्ट ही है, फ्योंकि एक वारमें एक जीवके आयुकर्मका वन्ध अन्तर्मुहर्त काल तक होता रहता है। तथा उत्कृष्ट काल पत्यके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि निरन्तर इतने काल तक नाना जीव श्रायुवन्ध कर सकते हैं। इसमें लब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी प्रधानता होनेसे यह काल उप-लब्ध होता है। यही कारण है कि मनुष्योंमें श्रायुकर्मके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मृहर्ते श्रीर उत्कृष्ट काल पल्यके श्रसंख्यातचे भागप्रमाण कहा है। यह सामान्य मनुष्योंकी श्रपेना काल घटित करके वतलाया है। मनुष्योंके शेष भेदोंमें इस कालको ध्यानमें रखकर कालका विचार कर लेना चाहिए। सर्वार्थसिद्धिके देव संख्यात होते हैं इसलिए उनमें मतु-ष्यिनियोंके समान ग्राठों कमाँके उत्कृष्ट ग्रीर ग्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धकी श्रपेचा काल उपलब्ध होता है यह स्पष्ट ही है।

१९०. ग्रानत कल्पसे लेकर श्रपराजित विमान तकके देवों में सात कमींकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका चन्ध्र करनेवाले जीवोंका काल श्रोधके समान है। श्रायु कर्मका मंग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले श्रीर ज्ञायिक सम्यग्दिष्टयोंमें काल जानना ज्ञाहिए।

विशेषार्थ—इन मार्गणाश्रोंमें लगातार श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं इसलिए इनमें श्रायु कर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान कहा है। मनुष्यपर्याप्तकोंके समान न कहकर मनुष्यिनियोंके समान कहनेका कारण यह है कि मनुष्य पर्याप्तकोंसे मनुष्यिनियोंकी संख्या तिगुनी होती है जिससे उत्कृष्ट काल श्रिधक उपलब्ध होता है।

१६१. सव एकेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर ग्राग्निकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके ग्राप्यांत ग्रोर इन्होंके सव स्क्ष्म, सव वनस्पतिकायिक ग्रोर सब निगोद जीवोंमें सात कमोंकी उत्कृष्ट ग्रीर ग्रानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। ग्रायु कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध

सन्बद्धा। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० आविति० असंखे०। अणु० सन्बद्धा। १६२. वेउन्वियमि० सत्त्राएं कम्माएं उक्क० अणु० द्विदिवं० कालो जह० अंतो०, उक्क० पित्तदो० असंखे०। आहारका० सत्तरएं क० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमया। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आहारमि० सत्तरएं क० उक्क० अणु० जह० उक्क० अंतो०। आयु० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० अंतो०। अवगदवे० सहम० सत्तरएं क० अर्ए क० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०!

१६३. श्राभि०-सुद०-श्रोधि० सत्तरणं क० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० पिलादो० श्रसंखे० । श्रणु० सव्वद्धा । श्रायु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेजा० । श्रणु० शिरयभंगो । एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-वेदग० ।

१६४. मणपज्ज० सत्तरणं क० उक्क० जह० उक्क० अंतो० | अणु० सन्वद्धा | आयु० मणुसिभंगो | एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार० | संजदासंजदा० अट्टरणं करनेवाले जीवोंका काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सव काल है।

१९२. वैकियिकमिश्रकाययोगवाले जीवोंमें सात कमोंकी उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल श्रन्तमुंहूर्त है श्रौर उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्राहारककाययोगवाले जोवोंमें सात कमोंकी उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रायुक्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्राहारकिमश्रकाययोगवाले जीवोंमें सात कमोंकी उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रायुक्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रायुक्मकी उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल कमसे संख्यात समय श्रौर श्रन्तमुंहूर्त है। श्रप्रगतवेदवाले श्रौर स्ट्मसाम्परायसंयत जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रमसे सात श्रौर छह कर्मकी उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रमसे सात श्रीर छह कर्मकी उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है।

१९३. श्राभिनिबोधिकहानी, श्रुतहानी श्रीर श्रविधिहानी जीवोंमें सात् कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य काल ग्रन्तर्मुहुर्त श्रीर उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। श्रायुक्तर्मको उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार श्रविधदर्शनी, सम्यग्दिष्ट श्रीर वेदकसम्यग्दिष्ट जीवोंमें काल जानना चाहिए।

१९४. मनःपर्ययशानवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल र्श्नन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। आयुकर्मका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार संयत, कम्माणं श्रोधिभंगो । उवसम॰-सम्मामि० सत्तरणं क० उक्क० श्रणु० जह० श्रंतो०, उक्क० पित्तदो० । सासण० सत्तरणं क० मणुसश्रपज्जत्तभंगो । श्रायु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० । श्रणु० देवोघं । एवं उक्कस्सकालं समत्तं ।

१६५. जहएएगो पगदं । दुविधो एिइ सो—ग्रोघेए ग्रासेरा य । तत्थ ग्रोघेए सत्तरएं क० जह० द्विदिवंध० जह० जक० ग्रंतो० । ग्रज० सन्वद्धाः । ग्रायु० जह० ग्रज० सन्वद्धाः । एवं ग्रोघभंगो एवुंस०-कोधादि०४-ग्रचक्खु०-भवसि०-ग्राहारग ति ।

१६६. आदेसेण ऐरइएस सत्तरणं क० जह० जह० एग०, उक० आविल० असंखे०। अज० सन्वद्धा। आयु० उक्कस्सभंगो। एवं पढमाए देव-भवण०-वाणवें०। विदियादि याव सत्तमा त्ति उक्कस्सभंगो।

सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत श्रीर परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंमें काल जानना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें श्राठों कर्मोंका भङ्ग श्रविध्वानियोंके समान है। उपशम सम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मध्यादिष्ट जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल श्रन्तर्मुहुर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। सासादन सम्यग्दिष्ट्योंमें सात कर्मोंका भङ्ग मनुष्य श्रपर्याप्तकोंके समान है। श्रायुकर्मको उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सामान्य देवोंके समान है।

१९४. श्रव जघन्य कालका प्रकरण है। उसकी अपेना निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और श्रादेश। उनमेंसे श्रोघकी अपेना सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहर्त है तथा श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। श्रायु कर्मकी जघन्य श्रोर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार श्रोधके समान नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, श्रचन्तु-दर्शनी, भव्य श्रोर आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसिलए इसका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहुर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९६. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मीकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावितके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। आयुकर्मका भन्न उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी श्रीर व्यन्तर देवोंके जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक सब कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—यदि एक या नाना श्रसंक्षी जीन मरकर नरकमें एक साथ उत्पन्न होते हैं
श्रीर वहां तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका एक समय बन्ध करते हैं तो सात कर्मोंके जघन्य
स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है श्रीर श्राविक श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उत्पन्न होते रहते हैं तो इतना काल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि
नरकमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल
श्राविक श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रथम पृथिवी, सामान्य देन, भवनवासी श्रीर

१६७. तिरिक्षेम् अट्ठाणं क० जह० अज० सन्वद्धा । एवं सन्वएइंदिय-वादरपुढवि०-आड०-तेड०-वाड०अपज्ज० तेसिं च सन्वसुहुम० सन्ववणप्कदि-णिगोद०-वादरवण०पत्तेय०अपज्जत्ता० ओरालियमि०-कम्मइ०-मिद०-सुद०-असंज०-किएण०-णील०-काड०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असिएण-अणाहारग ति । पंचिदिय-तिरिक्त०४ अट्ठएणं क० जह० अज० उक्कस्सभंगो ।

१६८. मणुसेसु सत्तरणं क० श्रोघं। श्रायु० जह० जह० एग०, उक्क० श्रावित्व श्रसंखे०। श्रज जह० श्रंतो०, उक्क० पित्तदो० श्रसंखे०। एवं मणुस-पज्जत्त-मणुसिणीसु। णवित्र श्रायु० उक्कस्सभंगो। मणुसग्रपज्ज० सत्तरणं क० जह० जह० एग०, उक्क० श्रावित्याए श्रसंखे०। श्रज० जह० खुद्दाभवग्गहणं विसमयूणं, उक्क० पित्तदो० श्रसंखे०। श्रायु० उक्कस्सभंगो।

व्यन्तर देवोंमें यह काल इसी प्रकार उपलब्ध होता है, इसलिए इन मार्गणाश्रोंमें यह काल उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१९७. तिर्यञ्चोंमें त्राठों कर्मोंकी जघन्य त्रीर ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक ग्रपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर ग्रानकायिक ग्रपर्याप्त, बादर वायुकायिक ग्रपर्याप्त तथा इन्होंके सब स्क्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्ररीर ग्रपर्याप्त, ग्रीदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, ग्रसंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, ग्रभव्य, मिथ्यादिष्ट, ग्रसंकी ग्रीर ग्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्कमें ग्राठों कर्मोंकी जघन्य ग्रीर ग्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृष्के समान है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्जोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध एकेन्द्रियोंके होता है श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध यथासम्भव सबके होता है तथा श्रायुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध यथासम्भव सबके होता है श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध भी सबके होता है, इसिलये यहां इनका सब काल बन जाता है। यहां गिनाई गई श्रन्य मार्गणाश्रोंमें भी इसी प्रकार सब काल घटित कर लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रनाहारकोंके श्रायुकर्मकी स्थितिके बन्धका काल नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इनके श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। शेष कथन सुगम है।

१९८० मनुष्यों में सात कर्मों की जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवों का काल श्रोधके समान है। श्रायुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्हृष्ट काल श्राविलेके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य काल श्रन्तमुंहूर्त है श्रीर उत्हृष्ट काल पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियों में जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रायुकर्मका भङ्ग उत्हृष्टके समान है। मनुष्य श्रपर्याप्तकों में सात कर्मों की जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्हृष्ट काल श्राविलेके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य काल दो समय कम खुद्रक भवश्रहण प्रमाण है श्रीर उत्हृष्ट, काल पल्यके भसंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा श्रायुकर्मका भङ्ग उत्हृष्टके समान है।

- १६६. जे।दिसिय यात्र सन्बद्घा ति उक्कस्सभंगो । सन्वित्तगिलिदिय-पंचिदिय-तस०अपज्जत्त-बादरपुढिवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०पज्जत्ता० वादरवर्णण्फिदिपत्तेय०पज्ज-त्ताएं च मूलोघं । एवं पुढिवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं वादर० वर्णण्फिदिपत्तेय०। एवरि आयु० ओघं ।
- २००. पंचिंदिय-तस०२ सत्ताएणं क० मूलोघं। त्र्रायु० शिरयभंगो। एवं इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद०-चक्खुदं०-तेड०-पम्मले०-सिएए ति ।
- २०१. पंचमण०-पंचविच सत्त्त्रणं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० | अज० सन्वद्धा | आयु० उक्कस्सभंगो | कायजोगि-श्रोरालियका० सत्तरणं क० मणजोगिभंगो | आयु० मूलोघं | वेजिन्वयिम०-आहार०-आहारिक-मणपज्ज० संजद-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सम्मामि० जह० अज० उक्कस्सभंगो | अवगद०

विशेषार्थ—मनुष्योंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धमें चपक श्रेणिको प्राप्त मनुष्योंकी मुख्यता है श्रीर श्रजघन्य स्थिति वन्धमें शेष सब मनुष्योंकी मुख्यता है इस्लिए यहाँ सात कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रोधके समान कोल वन जाता है। श्रायुक्तमेंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धमें यथासम्भव सब मनुष्योंकी मुख्यता है इस्लिए यहाँ श्रायुक्तमेंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका मूलमें कहा हुश्रा काल बन जाता है। मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यितिबन्धका संख्या संख्यात होनेसे इनमें श्रायुक्तमेंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्टके समान ही घटित होता है।

१९९. ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य श्रीर अजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृष्टके समान है। सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्यात, त्रस अपर्यात, वादर पृथिवीकायिक पर्यात, वादर जलकायिक पर्यात, वादर श्रिकायिक पर्यात, वादर वायुकायिक पर्यात श्रीर बादर धनस्पति प्रत्येक शरीर पर्यात जीवोंका भक्ष मूलोघके समान है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रिकायिक, वायुकायिक श्रीर इनके बादर तथा वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीवोंके जानना चाहिए। इतमी विशेषता है कि इनमें श्रायुकर्मका भक्ष श्रोघके समान है।

२००. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस श्रीर त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग मूलोघके समान है। श्रायुकर्मका भङ्ग नारिकयोंके समान है, इसी प्रकार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गहानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले श्रीर संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

२०१. पाँचों मनोयोगी ग्रीर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कमोंकी जघन्य ग्रीर ग्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। श्रायुकर्मका भङ्ग उत्कृप्टके समान है। काययोगी त्रीर श्रीदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग मनोयोगियोंके समान है। श्रायुकर्मका भङ्ग मूलोधके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी श्राहारककाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदो-पस्थापनासंयत, परिहारविश्वद्धिसंयत श्रीर सम्यग्मिथ्यादिष्ट जीवोंमें श्राठों कर्मोंकी जघन्य श्रीर अजधन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृप्टके समान है। श्रपगतवेदी

सत्तराणं क॰ सुहुम॰ छराणं क॰ जह॰ मूलोघं। अज॰ अग्रु॰भंगो।

२०२. त्राभि०-सुद०-त्रोधि०-सुक्क०-सम्मा०-खइगसम्मा०-वेदगस० सत्तरणं क० मूलोघं । सुकाए खइग० त्रायु० मणुसिभंगो । सेसाणं उक्कस्सभंगो ।

२०३. उवसमस० सत्तारणं क० जह० जह० एग०, उक० श्रंतो०। श्रज० जह० श्रंतो०, उक० पत्तिदो० श्रसंखे०। सासण० सत्तारणं क० जह० श्रज० जह० एग०, उक० पत्तिदो० श्रसंखे०। श्रायु० णिरयमंगो। एवं कालं समत्तं।

अंतरपरूवणा

२०४. ग्रंतरं दुविधं—जहएणयं उक्तस्सयं च । उक्कास्सए पगदं । दुविधो णिद्दे सो—ग्रोधेण त्रादेसेण य । तत्थ त्रोधेण त्रहण्णं क० उक्कस्सिट्टिदिवंधंतरं जह० एग०, उक्क० त्रंगुलस्स श्रसंखे० श्रसंखेजात्रो श्रोसिपिणि-उस्सिपिणीत्रो । श्रणु० णित्थ श्रंतरं । एवं श्रोधभंगो तिरिक्खोधं पुढवि०-श्राउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव वादर० वादर०वण०पत्तेय० कायजोगि-श्रोरालियका०-श्रोरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-

जीवोंमें सात कमोंकी श्रौर सृक्ष्मसाम्परायिक जीवोंमें छह कमोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल मूलोघके समान है। श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल श्रनुत्कृष्टके समान है।

२०२. श्राभिनिवोधिक हानी, श्रुतहानी, श्रवधि हानी, श्रुक्क लेश्यावाले, सम्यग्दिए, ज्ञायिक-सम्यग्दिए और वेदकसम्यग्दिए जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग मूलोधके समान है। श्रुक्क लेश्या-वाले श्रीर ज्ञायिक सम्यग्दिए जीवोंमें श्रायुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है तथा शेष मार्गणा श्रोमें श्रायुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

२०३. उपशमसम्यग्दिष्ट जीवोंमें सात कमींकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल एल्यके श्रसंख्यातवें भाग-प्रमाण है। सासादन सम्यग्दिष्ट जीवोंमें सात कमींकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल एल्यके श्रसंख्यातवें भाग-प्रमाण है। श्रायुक्मका भक्ष नारिकयोंके समान है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

२०४. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्हृष्ट । उत्हृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश । उनमें से श्रोघकी श्रपेक्षा श्राटों कमोंकी उत्हृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्हृष्ट अन्तर श्रङ्गलके श्रसंख्यातचें भागप्रमाण है जो श्रसंख्यात उत्सिर्पणी श्रीर श्रवसिर्पणीकालके बराबर है । श्रजुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यञ्च, पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रिक्षायिक, वायुकायिक श्रीर इनके बाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्रीर, काययोगी, श्रीदारिककाययोगी, श्रीदारिकमिश्रकाययोगी,

कोधादि ०४-मदि०-सुद०-श्रसंज०-श्रचक्खु-किएए।०ए।।त०-काउ०-भवसि०-श्रब्भ-वसि०-मिच्छादि०-श्रसिएए।०-श्राहाराणाहारग ति ।

०५. त्रादेसेण ऐरइएसु सत्तरणं कम्माणं उक्क० त्रणु० हिदिवंधंतरं त्रोघो । त्रायु० उक्क० जह० एग०, उक्क० त्रंगुल० त्रंसखे० त्रसं० त्रोसिष्० उस्सिष्प० । त्रणु० जह० एग०, उक्क० चउवीसं सुहु० त्रडदालीसं सुहुतं पक्खं मासं वे मासं चत्तारि मासं लम्मासं वारसमासं ।

२०६. पंचिदिय-तिरिक्ख० सत्तरणां क० त्रोघं। त्रायु० उक्क० त्रोघं।

कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, श्रसंयत, श्रचश्चदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिथ्यादिष्ट, श्रसंक्षी, श्राहारक श्रौर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ नाना जीवोंकी अपेचा आठों कर्मोंके उत्कृप्ट और अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धके अन्तर कालका निरूपण किया गया है। ओघसे सात कर्मोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृप्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण है। सो इसका यह अभिप्राय है कि यदि सात कर्मोंका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध न हो तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक सात कर्मोंमेंसे प्रत्येक कर्मकी उत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव नहीं होता। परन्तु अनुकृप्ट स्थितिके वन्धके लिए यह बात नहीं है। उसका वन्ध करनेवाले सव या बहुत जीव सर्वदा पाये जाते हैं। यह ओघ प्रकृपणा अन्य जिन मार्गणाओं से सम्भव है उनका निरूपण ओघके समान है ऐसा कहकर यहाँ उनका नाम निर्देश किया है। मात्र इनमेंसे कितनी ही मार्गणाओं अधि उत्कृप्ट स्थितिवन्ध होता है खतना वहाँ विशेष जानना चाहिए।

२०४. ग्रादेशसे नारिकयों में सात कमोंकी उत्कृष्ट ग्रोर ग्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका ग्रन्तर ग्रोधके समान है। ग्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर ग्रंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है जो ग्रसंख्यात उत्सिपंणी ग्रोर श्रवसिपंणी कालके बराबर है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य ग्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट ग्रन्तर कमसे चौबीस मुहूर्त, श्रद्धतालीस मुहूर्त, एक पन्न, एक मिहना, दो मिहना, चार मिहना, छह मिहना श्रोर वारह मिहना है।

विशेषार्थ—नरक सामान्य, श्रीर प्रथम पृथिवी श्रादि सात पृथिवियों में श्रायुकर्मके श्रमुत्कृष्ट स्थितियन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर काल श्रलग सलग है जो उक्त श्राट स्थानों में उत्पत्तिके श्रन्तर कालके समान है। तात्पर्य यह है कि यदि कोई जीव मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो कमसे कम एक समय श्रीर श्रधिकले श्रधिक बांह मुहूर्त तक नहीं उत्पन्न होता। इसके वाद कोई न कोई जीव किसी न किसी नरकमें श्रवश्य ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार प्रथमादि पृथिवियों में कमसे श्रव्हतालीस मुहूर्त श्रादि काल प्रमाण उत्कृष्ट उत्पत्तिका श्रन्तर है। जो यह उत्पत्तिका श्रन्तर है वही श्रमुत्कृष्ट स्थितियन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। श्रेष कथन सुगम है।

२०६. पञ्चे द्रिय तिर्यं इच चतुष्कमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोघके समान है। श्रायुकर्मकी

त्र्रणु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ श्रंतो॰। पज्जत्त-जोिएएशिस्र चडवीसं सुहुत्तं । श्रपज्जत्ते श्रंतो॰।

२०७. मणुस०३ सत्तराणं क० श्रोघं । श्रायु० उक० श्रोघं । श्रयु० िएरय-भंगो । मणुसश्रपज्ज० पंचिदियतिरिवखश्रपज्जत्तभंगो । एविर श्रष्टराणं क० श्रयु० जह० एग०, उक्क० पितदो० श्रसंखे० ।

२०८. देवा॰ शिरयभंगो । शवरि सन्वड्ठे आ्रायु॰ अशुक्त॰ जह॰ एग॰, उक्त॰ पत्तिदो॰ संखेज्ज॰।

२०६. सन्वएइंदि०-बादरपुढवि०-म्राउ०-तेउ०-वाउ० मपज्जत्ता तेसि चेव सन्वस्रुहुम० सन्ववणप्पदि-णिगोद० वादरवण०पत्तेय० मपज्जत्त० सत्तरणं क०
उक्क० म्रणु० णित्थ श्रंतरं । श्रायु० मूलोघं । सन्वविगलिदिय-सन्वपंचिदिय-तस०
सन्वपंचिदियतिरिक्खभंगो । वादरपुढवि०-म्राउ०-तेउ०पज्जत्ता० वादरवणप्पदि-

उत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। पर्याप्त तिर्यञ्चोंमें उत्कृप्ट श्रन्तर चौवीस मुहूर्त है। तथा श्रपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें श्रन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहां पर्याप्त तिर्यञ्च श्रीर योगिनी तिर्यञ्चोंमें चौवीस मुहूर्त श्रायुकर्मके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कहा है। तथा सामान्य श्रीर श्रपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें यह श्रन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सो इस कथनका यह तात्पर्य प्रतीत होता है कि यदि इस वीच श्रायुक्ती उत्कृष्ट स्थितिका भी वन्ध न हो तो जिसका जितना श्रन्तरकाल कहा है उतने कालतक उस उस मार्गणामें श्रायुकर्मका वन्ध करनेवाला एक भी जीव नहीं होता।

२०%. मनुष्य त्रिकमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोघके समान है। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तर श्रोघके समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट स्थितिका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्राठों कर्मोंकी श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पत्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है।

२०८. देवोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सर्वर्धसिद्धिमें ग्रायुक्तमेकी ग्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण् है।

२०२. सव एकेन्द्रिय, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादरअग्निकायिक अपर्याप्त, वादरवायुकायिक अपर्याप्त और उन्हींके सब सूक्ष्म, सब वनस्पति, सव निगोद, बादर वनस्पतिप्रत्येकश्चरीर अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मका भङ्ग मूलोधके समान है। सव विकलेन्द्रिय, सव पञ्चेन्द्रिय और सव असोंका भङ्ग सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, वादरजलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक वादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक

पज्जता॰ पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवरि तेउ० श्रायु० श्रग्णु० जह० एग०, उक्क० चडवीसं ग्रहुत्तं ।

२१०. पंचमण०-पंचवचि०-वेजिव्यका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सिएए० मणुसभंगो । वेजिव्यमि० सत्तराएं क० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० वारस मुहुत्तं' । आहार०-आहारिम० अहएएं कम्माएं उक्क० ओघो । अणु० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं' ।

२११. अवगद०-सुहुमसं० सत्त्त्राणं क० इक० जह० एग, उक० वासपुथतं । अणु० जह० एग०, उक० इम्मासं ।

२१२. श्राभि०-सुद्०-श्रोधि० सत्तरणं क० श्रोघं । श्रायु० उक्क० श्रोघं । अर्यु० जह० एग०, उक्क० मासपुधत्तं । एवं श्रोधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइगस०-पर्याप्त जीवोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अन्तिकायिक पर्याप्त जीवोंमें श्रायुकर्मकी श्रवुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर चौबीस मुहुर्त है।

२१०. पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभक्षक्षानी, चक्षुदर्शनी और संही जीवोंका भक्ष मजुष्योंके समान है। वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कमोंके उत्रुप्ट स्थितिवन्धका भक्ष श्रोधके समान है। श्रजुत्रुप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उत्रुप्ट श्रन्तर वारह मुहूर्त है। श्राहारककाययोगी और श्राहारक मिश्रकाययोगी जीवोंमें श्राटों कमोंकी उत्रुप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका भक्ष श्रोधके समान है। श्रजुत्रुप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उत्रुप्ट श्रन्तर वर्ष पृथक्तव है।

विशेषार्थ—लोकमें चैक्तियिक भिश्रकाययोग कमसे कम एक समयतक ग्रौर ग्रधिकसे ग्रधिक वारह मुहूर्ततक नहीं होता। इसी प्रकार ग्राहारक काययोग ग्रौर ग्राहारक मिश्र-काययोगका जघन्य श्रन्तर एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर वर्षपृथक्त प्रमाण है। इसीसे चैक्तियिक मिश्रकाययोगमें सात कमींके श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय ग्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर वारह मुहूर्त कहा है। तथा ग्राहारक काययोग श्रौर ग्राहारक मिश्रकाययोगमें श्राठों कमींके श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय ग्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

२११. श्रवगतवेदी श्रीर सूक्ष्म साम्परायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात श्रीर छह कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर वर्पपृथक्तव है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर छह महीना है।

विशेषार्थ—उक्त मार्गणाओं में उत्कृष्ट स्थितवन्यका ग्रान्तर उपश्रम श्रेणिके ग्रान्तरकी ग्रीर ग्रानुत्कृष्ट स्थितवन्धका ग्रान्तर ज्ञपकश्रेणिके ग्रान्तरकी ग्रापेज्ञासे कहा है।

२१२. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग श्रीधके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग श्रीधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर

१. घ० पु० ७ पू० ४६५ । २. घ० पु० ७ पू० ४६५ ।

वेदग० | एविर खइग० आयु० आयु० उक० वासपुधत्तं । मएपण्ज सत्तरणं कम्माणं ओघं । आयु० उक० ओघं । अयु० जह० एग०, उक० वासपुधत्तं । एवं परिहार०-संजद-सामाइ०-छेदो० । संजदासंजदा० ओधिभंगो ।

२१३. तेड॰-पम्प॰ सत्तारणं क॰ श्रोघं । श्रायु॰ उक्क॰ श्रोघं । श्रायु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ श्रडदालीसं ग्रुहुत्तं पक्तं । उनसम॰ सत्तरणं क॰ उक्क॰ श्रोघं । श्रायु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ सत्त रादिंदियाणि । सासरण॰-सम्मामि॰ मणुसश्रपज्जत्तभंगो । २१४. जहराणए पगदं । दुविघो शिहेसो-श्रोघेण श्रादेसेण य । तत्थ श्रोघेण

उत्कृष्ट ग्रन्तर मास पृथक्त है। इसी प्रकार ग्रवधिदर्शनी, ग्रुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दिए, ज्ञायिक सम्यग्दिए ग्रीर वेदक सम्यग्दिए जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ज्ञायिक सम्यग्दिए जीवोंमें ग्रायुकर्मकी ग्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट ग्रन्तर वर्षपृथक्त है। मनःपर्ययज्ञानो जीवोंमें सात कर्मोका भङ्ग ग्रोधके समान है। आयुक्त उत्कृष्ट स्थितिवन्धका भङ्ग ग्रोधके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जद्यन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर वर्षपृथक्त है। इसी प्रकार परिहार-विशुद्धिसंयत, सामायिकसंयत श्रीर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। संयता-संयतोंका भङ्ग ग्रविध्वानियोंके समान है।

विशेषार्थ—यहां जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं वे सव निरन्तर मार्गणाएँ हैं, इसलिए इनमें सात कमोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव निरन्तर पाये जाते हैं यह तो स्पष्ट ही है। पर आयुकर्मका बन्ध सर्वदा न होकर त्रिभागमें तद्योग्य परिणामोंके होनेपर ही होता है, इसलिए आयुकर्मके स्थितिवन्धकी अपेत्ता अन्तरकाल प्राप्त होनेमें कोई वाधा नहीं आती। फिर भी वह अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धकी अपेत्ता कितना होता है यह ही स्वतन्त्र रूपसे यहां वतलाया गया है। शेष कथन सुगम है।

२१३. पीत लेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कमोंका भङ्ग ग्रोघके समान है। ग्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ग्रोघके समान है। ग्रायुक्तर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य ग्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कमसे ग्राइतालीस मुहूर्त ग्रोर एक पत्त है। उपशम सम्यग्दिए जीवोंमें सात कमोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ग्रोघके समान है। ग्रायुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ग्रोघके समान है। ग्रायुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रान्तर सात दिन-रात है। सासादन-सम्यग्दिए ग्रीर सम्यग्मध्यादिए जीवोंका भङ्ग मगुष्य ग्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—पीत श्रीर पद्मलेश्या भी निरन्तर मार्गणाएँ हैं। तथापि इनमें श्रायुकर्मका सर्वदा बन्ध नहीं होता। इसलिए उत्कृष्ट स्थितबन्धका श्रन्तर तो ओघके समान है श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितबन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कितना है यही बात यहां स्वतन्त्र रूपसे वतलाई गई है। यहां कही गई उपशम सम्यग्दिष्ट, सासादन सम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिथ्या-दिष्ट ये तीन सान्तर मार्गणाएँ हैं, इसलिए इनका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट जो अन्तरकाल है वही इनमें श्रपने-श्रपने कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य और उत्कृष्ट श्रन्तर है। उसमें भी सासादन सम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिथ्यादिष्टका श्रन्तर मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है इस-लिए इनका कथन सनुष्य श्रपर्याप्तकोंके समान है इस-लिए इनका कथन सनुष्य श्रपर्याप्तकोंके समान कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

२१४. जघन्य अन्तरका प्रकरण है। उसकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ और

सत्तरणं क॰ जह॰ द्विदिवं॰ जह॰ एग॰, उक॰ छम्मासं। अज॰ णत्थि अंतरं। आयु॰ जह॰ अजह॰ णत्थि अंतरं। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरा-लियका॰-कोधादि०४-अचक्खुदंसणि-आहारग ति।

२१५. सञ्विषारय-सञ्वपंचिदियितिरिक्त्व-मणुसञ्चपज्ज०-सञ्वदेव-सञ्विवगिति-दिय-पंचिदिय-तसञ्चपज्ज०-वेजिव्व ०-वेजिव्वयिम०-ञ्चाहार ०-ञ्चाहारमि०-विभंग०-परि-हार०-संजदासंजद०-तेज०-पम्म०-वेदग०-सासण्य०-सम्मामि० एदेसि जक्कस्सभंगो।

२१६. तिरिक्लेसु श्रहण्णं क॰ जह॰ श्रज॰ स्थात्थ श्रंतरं । एवं सन्वए-इंदिय-बादरपुढवि०-श्राड०-तेड०-वाड०श्रपज्जत्ता० तेसि चेव सन्वस्रहुम० सन्ववस्य-प्फिदि—िएयोद०—बादरवर्ण०पत्ते०श्रपज्जत्त०—श्रोरालियमि०—कम्मइ०—मिद०—सुद०-श्रसंज०-किएस-सील-काड०-श्रब्भवसि०-मिच्छादि०-श्रसिएस-श्राहरग त्ति ।

श्रादेश। उनमेंसे श्रोघकी श्रपेद्धा सात कर्मीकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर छह महिना है। श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तरकाल नहीं है। इसीप्रकार श्रोघके समान काययोगी, श्रीदारिककाय-योगी, कोधादि चार कषायवाले, श्रवश्चदुर्शनी श्रीर श्राहारक जोवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ— चपक श्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महिना प्रमाण है। यही कारण है कि यहाँपर जघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महिना प्रमाण कहा है। सात कर्मोंकी अजघन्य स्थितिका बन्ध और आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव निरन्तर उपलब्ध होते हैं इसिलिए इनका अन्तर नहीं कहा है। यहाँ गिनाई गई अन्य मार्गणाओं यह व्यवस्था वन जाती है इसिलिए उनका अन्तर ओघके समान कहा है।

२१४. सव नारकी, सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मजुष्य ग्रपर्यात, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय ग्रपर्यात, त्रस ग्रपर्यात, वैक्षियिक काययोगी, वैक्षियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारक-काययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, विभक्षक्षानी, परिहारविद्युद्धिसंयत, संयतासंयत, पीत-लेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिथ्यादिष्ट इन मार्गणाश्रोंका भक्ष उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ — आश्रय यह है कि उत्कृष्ट काल प्ररूपणामें जिस प्रकार इन मार्गणाश्रोंमें श्राठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्राटा कहा है उसी प्रकार यहांपर जघन्य स्थितिबन्धका श्राटा काल जानना चाहिए श्रीर जिस प्रकार वहां श्राटुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रान्तर काल जानना चाहिए श्रीर जिस प्रकार वहां श्राटुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रान्तर काल जानना चाहिए।

२१६. तिर्यञ्जोंमें ग्राठों कमोंकी जघन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका ग्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, बाद्र पृथिवीकायिक ग्रपर्याप्त, बाद्र जलकायिक ग्रपर्याप्त, बाद्र जलकायिक ग्रपर्याप्त, बाद्र जलकायिक ग्रपर्याप्त, बाद्र वनस्पतिकायिक ग्रपर्याप्त ग्रौर उन्हींके सब स्क्ष्म, वनस्पतिकायिक, निगोद, बाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक ग्ररीर अपर्याप्त, ग्रौदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, ग्रसंयत, कृष्णलेश्यावाले, ग्रीदारिक विश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, ग्रभव्य, मिथ्यादिष्ट, ग्रसंक्षी ग्रौर ग्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२१७. मणुस०३ सत्तरणं क० त्रोघं । णवरि मणुसिणीसु वासपुधत्तं । त्रायु० उक्तरसभंगो । मणुसपज्जत्तभंगो पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खुदंसणि ति । णवरि पुरिस० सत्तरणं क० वासं सादिरेयं ।

र्शट. पुढिवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं वादर० वादरवणप्पिदिपत्तेय० सत्तराणं क० उक्कस्सभंगो । आयु० अजह० जह० गित्थ अंतरं । तेसिं पज्जत्ता० उक्कस्सभंगो । इत्थि० उक्कस्सभंगो । गाविर सत्तराणं क० जह० जह० ए०, उक्क० वासपुधत्तं । एवं गावुंस० । गाविर आयु० ओधं । अवगदवे०-सुहुम० सत्तराणं क० अगणं क० जह० अज० जह० एगस०, उक्क० अम्मासं ।

२१६. श्राभि०-सुद्०-श्रोधि० सत्तरणं क० श्रोघं। एवरि श्रोधि० वासपु-

२१७. मनुष्यत्रिकमें सात कमोंका भङ्ग ग्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें सात कमोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट ग्रन्तर वर्षपृथक्त्व-प्रमाण है। ग्रायुक्तमेका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, पुरुषवेदी ग्रोए चजुदर्शनी जीवोंमें ग्रन्तरकाल मनुष्य-पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल साधिक एक वर्ष है।

विशेषार्थ—वैसे पुरुषवेदकी श्रपेत्ता त्तपकश्रेणीमें उत्हृप्ट श्रन्तर साधिक एक वर्ष है पर 'मनुष्य पर्याप्त' शब्दसे पुरुषवेदी श्रीर नपुंसकवेदी मनुष्योंका श्रहण होता है इसिलए मनुष्य पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका चन्ध करनेवाले जीवोंका उत्हृप्ट श्रन्तर श्रोधके समान छह महीना कहा है। त्तपकश्रेणिमें स्त्रीवेदका उत्हृप्ट श्रन्तर वर्षपृथक्तव है, इसिलये मनुष्यिनयोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका यह उत्हृप्ट श्रन्तर कहा है। श्रेष कथन स्पष्ट है।

२१८. पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्राग्निकायिक, वायुकायिक श्रोर इनके वादर तथा वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। श्रायुकर्मकी जघन्य श्रोर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तरकाल नहीं है। इनके पर्याप्त जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। श्रावेदवाले जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। श्रति विशेपता है कि स्थिविदयोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रायुकर्मका भङ्ग श्रोधके समान है। श्रपगतवेदी श्रीर स्था साम्परायसंयत जीवोंमें कमसे सात कर्मों श्रीर छह कर्मोंकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर छह महीना है।

विशेषार्थ—चपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होनेसे अपगतवेद और सुदमसाम्परायसंयतका यही अन्तर उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इन दोनों मार्गणाओं में क्रमसे सात और छह कमौंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण अन्तर काल कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

२१६. श्राभिनिबोधिकश्रानी, श्रुतशानी श्रीर श्रवधिश्वानी जीवोंमें सात कर्मीकी जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तर श्रोधके समान है। इतनी विशेषता धत्तं । श्रायु० उक्कस्सभंगो । एवं श्रोधिदं० । सुक्क०-सम्मादि०-खइग० श्राभिणि०-भंगो । मणपज्ज० सत्तर्णं क० जह० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । सेसार्णं उक्कस्सभंगो ।

२२०.संजदे सत्तरणं क० श्रोधं। श्रायु० उक्कस्सभंगो। एवं सामाइ०-छेदो०। परिहार० मणपज्जवभंगो। उवसम० सत्तरणं क० जह० जह० एग०, उक्क० वास-पुघ०। श्रज० जह० एग०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि । एवं श्रंतरं समत्तं।

भावपरूवगा

२२१. भावाणुगमेण दुविधं—जहएणयं उकस्सयं च । उक्क० पगदं । दुवि०— श्रोघे० श्रादे० । तत्थ श्रोघेण श्रष्टएणं कम्माणं उक्कस्साणु०वंधगा ति को भावो ? श्रोदइगो भावो । एवं श्रणाहारग ति सोदव्वं ।

है कि अवधिज्ञानमें जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। अवधिज्ञानी जीवोंके समान अवधिदर्शनी जीवोंके जानना चाहिए। शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दिए और ज्ञायिक सम्यग्दिए जीवोंका भङ्ग आभिनिवोधिक ज्ञानियोंके समान है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कमौंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। शेषका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—ज्ञपकश्रेणीकी श्रपेजा श्रवधिक्षान, मनःपर्ययक्षान श्रोर श्रवधिदर्शनका उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होनेसे इन मार्गणाश्रोमें सात कर्मोकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

२२०. संयतोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ग्रोघके समान है। ग्रायु कर्मका भङ्ग उत्क्रष्टके समान है। इसी प्रकार सामायिक संयत ग्रौर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। परिहारविश्चिद्धसंयतोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानके समान है। उपशमसम्यग्दष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका चन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य ग्रन्तर एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर वर्षपृथक्त्व है। ग्रजघन्य स्थितिका चन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य ग्रन्तर एक समय ग्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर सात दिन-रात है।

विशेषार्थ—उपशम श्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तव प्रमाण होनेसे यहां उपशमसम्यक्त्वमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात होनेसे इसमें इन्हीं सात कर्मोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात कहा है। शेष कथन सगम है।

इस प्रकार अन्तर काल समाप्त हुआ।

भावप्ररूपणा

२२१. भावानुगम दो प्रकारका है—जघन्य ग्रौर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ ग्रौर ग्रादेश । उनमेंसे ग्रोघकी श्रपेत्ता ग्राठों कर्मोंका उत्कृष्ट ग्रीर ग्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करनेवाले जीवोंका कौन-सा भाव है ? ग्रौदियक भाव है ! उसी प्रकार ग्रानाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

१. घ० पु० ७ पु० ४६१, ४६२ ।

२२२. जह॰ पगदं । दुवि॰—श्रोघे॰ श्रादे॰। तत्थ श्रोघेण श्रद्धगणं क॰ जह॰ श्रज॰ को भावो ? श्रोदइगो भावो । एवं याव श्रणाहारग त्ति ऐदव्वं ।

जीवऋप्पाबहुगपरूवगा

२२३. अप्पावहुगं दुविधं—जीवअप्पावहुगं चेव दिदिअप्पावहुगं चेव । जीवअप्पावहुगं तिविधं—जहरागं उक्तस्सं जहरागुक्तस्सयं च । उक्तस्सए पगदं । दुवि०—
ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सन्वत्थोवा अद्वरणं क० उक्तस्सगद्विद्वंधगा
जीवा । अणु०द्विदंबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं ओघभंगो तिरिक्लोघं कायजोगिओरालिय०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किराग०-णील०-काड०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असिराग०-आहार०अणाहारग ति ।

२२२. श्रव जघन्य भावानुगमका प्रकरण है। उसकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ श्रोर श्रादेश। उनमेंसे श्रोघकी श्रपेक्षा श्राठों कर्मीकी जघन्य श्रोर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कौनसा भाव है ? श्रीदियक भाव है। इसी प्रकार श्रन।हारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यद्यपि ज्ञानावरण श्रादि श्राठों कर्मोंकी उत्क्रप्ट, श्रनुत्कृष्ट, जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कोई भी भाव होता है पर यहां पर स्थितिवन्ध के कारणभूत भावका श्रहण किया है। यह भाव सिवा श्रीदियकके श्रन्य नहीं हो सकता, इसीसे यहां एक मात्र श्रीदियक भावका निर्देश किया है। श्रन्यत्र भी स्थितिवन्ध श्रीर श्रनुभागबन्धका कारणभूत भाव एकमात्र कषाय बतलाया है। इससे भी उक्त कथनकी ही पृष्टि होती है।

इस प्रकार भावप्ररूपणा समाप्त हुई।

जीव अल्पबहुत्व प्ररूपणा

२२३. श्रव्यबहुत्व दो प्रकारका है—जीव श्रव्यबहुत्व श्रीर स्थित श्रव्यबहुत्व । जीव श्रव्यबहुत्व तीन प्रकारका है—जधन्य, उत्कृष्ट श्रीर जधन्योत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेक्षा निदेश दो प्रकारका है—श्रोध श्रीर श्रादेश । उनमेंसे श्रोधकी श्रपेक्षा श्राठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रमन्तगुणे हैं । इसी प्रकार श्रोधके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, श्रीदारिककाययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, श्रसंयत, श्रचश्चदर्शनी, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भन्य, श्रभन्य, मिथ्यादिष्ट, श्रसंक्षी, श्राहारक श्रीर श्रनाहारक मार्गणाश्रीमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ ऋल्पबहुत्व दो प्रकारका कहा है—जीव श्रल्पबहुत्व और स्थिति अल्पबहुत्व। कर्मोंकी उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट तथा जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका श्रोघ श्रीर श्रादेशसे श्रल्पबहुत्व जिस प्रकरणमें कहा गया है वह जीव श्रल्पबहुत्व प्रक्रपणा है श्रीर जिस प्रकरणमें कर्मोंकी उत्कृष्टादि स्थिति, उनकी श्राबाधा श्रादिका श्रल्पबहुत्व कहा गया है वह स्थिति श्रल्पबहुत्व है। उनमेंसे सर्वप्रथम जीव श्रल्प

२२४. आदेसेण णेरइएस सन्वत्थोवा श्रहण्णं क॰ उक्क॰वंघ॰ । [अणुक्कस्स-] हिदिवं॰ जीवा श्रसंखेज्जगुणा । एवं णिरयभंगो सन्वेसि असंखेज्जगुसीणं । मणु-सपज्जत्त-मणुसिणीस सन्वत्थोवा श्रहण्णं क॰ [उक्कस्सहिदि-] बं॰ जीवा । अणु॰वं॰ जीवा संखेजजुणा । एवं सन्वेसि संखेजजगुसीणं । एइंदिय-वणप्फदि-णियोदेस आयु॰ मृलोवं । सत्त्त्रणं कम्माणं णिरयभंगो ।

२२५. जहएएए पगदं | दुवि०—श्रोघे० श्रादे० | श्रोघेए—सत्तरएां क० सन्वत्थोवा जह० | श्रज०-वंध० जीवा श्रएंतगु० | श्रायु० सन्वत्थोवा जह० | श्रज०-वंध० जीवा श्रएंतगु० | श्रायु० सन्वत्थोवा जह० | श्रज०-वंध० जीवा श्रसंत्रे जागु० | एवमोघभंगो कायजोगि-श्रोरालियका०-एवुं स०-कोधादि०४-श्रचवस्तुदं०-भवसि०-श्रणाहारग ति | सेसाएं सन्वेसिं परित्तापरित्ताएं रासीएं चित्तूण श्रहरूएं सत्तरएं पि सन्वत्थोवा जह०हिदिवं० | श्रजह०हिदिवं० जीवा श्रसंत्रे जागुणा | संत्रे जारासीएं पि सन्वत्थोवा जह० | श्रजह० संत्रे जागु० |

२२६. जहरागुक्कस्सए पगदं | दुवि०—श्रोघे० श्रादे० | श्रोघेगा सन्वत्थोवा वहुत्वंका श्राश्रय लेकर उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका श्रव्यबहुत्व कहा गया है। श्रोघसे श्राठों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्ध करनेवाले जीव श्रमंख्यात हैं। श्रेष कथन स्पष्ट है।

२२४. श्रादेशसे नारिकयों में श्राठों कमौंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार नारिकयों के समान सब श्रसंख्यात राशियों का श्रल्पबहुत्व जानना चाहिए। मनुष्यपर्यात श्रीर मनुष्यपर्यामें श्राठों कमौंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। श्रनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सब संख्यात राशियों का श्रल्पबहुत्व जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक श्रीर निगोद जीवों में श्रायुकर्मका श्रल्पबहुत्व मूलोधके समान है। तथा सात कमौंका श्रल्पबहुत्व नारिकयों के समान है।

२२४. जघन्य श्रन्पबहुत्वका प्रकरण है। उसकी श्रपेका निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध श्रीर श्रादेश। श्रोधसे सात कमोंकी जघन्यस्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुर्णे हैं। इसीप्रकार श्रोधके समान काययोगी, श्रौदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषाय वाले, श्रचश्चदर्शनी, भव्य, श्रौर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। शेष सब परीतापरीत राशियोंको श्रहणकर श्राठ कमों श्रौर सात कमोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। श्रजघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुर्णे हैं।

२२६. जघन्योत्कृष्ट अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है— स्रोघ निर्देश स्रोर आदेश निर्देश । उनमेंसे स्रोघकी अपेत्ता सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका

१. मूलप्रती मोत्तृण इति पाठः । २. मूलप्रती अजह० श्रसंखेज्जगु० इति पाठः ।

सत्तराणं क० जह०द्विदिवं० जीवा । उक्कस्सद्विदंध० जीवा असंखेळागुणा । अज-हराणमणुक्कस्सद्विदंबं० जीवा अर्णातगु०। आयुग० सव्वत्थोवा उक्क०द्विदिवं० जीवा । जह०द्विदिवं० जीवा अर्णातगु० । अज०अणु० असंखेळागु०। एवं ओघभंगो काय-जोगि-ओरालियका०-णवुं स०-कोधादि०४-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग ति ।

२२७. त्रादेसेण ऐरइएस सन्वत्थोवा सत्तरणं क० जह०द्विदिवं० । उक्क०-द्विदिवं० त्रसंखेज्जग्र० । त्रज०त्रणु० त्रसं० ग्र० । त्रायु० सन्वत्थोवा उक्क० । जह०द्विदिवं० त्रसं०ग्र० । त्रजहरण्णमणु०वं० त्रसं०ग्र० । एवं सन्विणरय० देवाणं याव सहस्सार त्ति ।

२२८. तिरिक्लेसु सन्वत्थोवा अहएएां कम्माएां उक्क०हिदिवं० जीवा । जह०-हिदिवं० जी० अएांतगु० । अज०मणु० हिदिवं० असं०गु० । पंचिदियतिरिक्ल०४ सन्वत्थोवा अहएएां कम्माएां उक्क० । जह० असं०गु० । [अज०मणु० असं०गु० ।] एवं पंचिदिय-तसअपज्ज० ।

२२६. मणुसेसु सत्तराणं कम्माणं थोवा जह०हिदिवं० । उक्क०हिदिवं० संखेजागु० । त्रज०मणु० असं०गु० । आयु० णिरयभंगो । एवं मणुसपज्जत्त-मणु-

वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्या-तगुणे हैं। इनसे अजधन्यानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करने वाले जीव सबसे स्तोक हैं। जधन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अजधन्यानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात गुणे हैं। इसी प्रकार ओधके समान काययोगी, औदारिक काययोगी,नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, अचनुदर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंके जानवा चाहिए।

२२७. श्रादेशसे नारिकयों में सात कमीं की जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगु हैं। इनसे श्रजघन्य श्रजुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगु हैं। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगु हैं। इनसे श्रजघन्य श्रजुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगु हैं। इससे श्रजघन्य श्रजुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगु हैं। इससे श्रजघन्य श्रजुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगु हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य देव, सहस्रारकल्प तकके देवोंके जानना चाहिए।

२२८. तिर्यञ्चोंमें आठों कर्मोंकी उत्छए स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्कमें आठों कर्मोंकी उत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्तातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

२२९. मनुष्योंमें सात कमींकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुर्णे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुर्णे हैं। आयुकर्मका भक्त नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असं-

१. मूलप्रतौ सन्वत्थोवा सत्तरणं क० उक्क० इति पाठः।

सिणीसु । णवरि संखेजं कादव्वं । एवं सव्वद्धे । मणुसञ्चपज्जत्ता० णिरयभंगो ।

२३०. त्राणद याव एवगेवज्जा ति सत्तरएएं क० थोवा उक्क०हिदिवं०।[जह०] संखे०गु० । त्रजह०मणु० त्रसंखेज्जगु० । त्रायु० मणुसिभंगो । त्रणुहिसादि याव त्रवराइदा ति सत्तरएां क० थोवा जह०हिदिवं० । उक्क०हिदिवं० संखेज्जगु० । त्रायु० मणुसिभंगो ।

२३१. एइंदिएस सत्तरणं क० थोवा जह०द्विदिवं०। उक्क०द्विदिवंध० संखेज्जगु०। अज०मणुद्विदिवं० असंखेज्जगु०। आयु० मूलोधं। एवं सन्वएइंदिय-सन्विवगिलंदिय-सन्वपुढिव०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्कदि-णियोद०-वादरवणप्क०पत्तेय०। एवरि वणप्कदि-णियोदेसु आयु० एइंदियभंगो। सेसाणं पंचिदियतिरिक्सभंगो।

२३२. पंचिदिय-तस० सत्तरणं क० सन्वत्थोवा जह०द्विदिवं० । उक्कद्विदिवं० असंखेज्जगु० । अज०मणु०द्विदिवं० असं०गु० । आयु० पंचिदियतिरिक्लभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-वेजिवयका०-वेजिवयिम०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदा—संजद०-चक्खदं०-तेज०-पम्म०-सम्मामि०-सिएण ति । ओरालियमि० सन्वत्थोवा

ख्यातके स्थानमें संख्यात कहना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंका भङ्ग नारिकयोंके समानहें।

२३०. श्रानतकरूपसे लेकर नव श्रैवेयक तकके जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले देव सवसे स्तोक हैं। इनसे जधन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले देव संख्यात-गुणें हैं। इनसे श्रजधन्य श्रजुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले देव श्रसंख्यातगुणें हैं। श्रायुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनयोंके समान है। श्रनुदिशसे लेकर श्रपराजित तकके देवोंमें सात कर्मोंकी जधन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले देव सवसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले देव सवसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले देव श्रसंख्यातगुणें हैं। श्रायुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनयोंके समान है।

२३१. एकेन्द्रियोंमें सात कमोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृप्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणें हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणें हैं। आयुकर्मका भक्त मूलोघके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्रिकायिक, सव वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक श्रिर जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें आयुकर्मका भक्त एकेन्द्रियोंके समान है और शेष मार्गणाओंमें आयुकर्मका भक्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

२३२. पञ्चेन्द्रिय श्रौर असकायिक जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करने-वाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य श्रवुत्कृप्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। श्रायुकर्मका. मङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैकियि-ककाययोगी, वैकियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गक्षानी, संयतासंयत, चश्च-दर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, सम्यग्मिथ्यादिष्ट श्रौर संशी जीवोंके जानना चाहिए। श्रहण्णं क० उक्क० दिविं । जह० दिविं श्रणंतग्र० । श्रज० मणु० दिविं ० श्रमं ०गु० । एवं कम्मइ० - मदि० - मुद० - श्रमं ज० - किण्ण० - णील० - का ७० - भविक्षावि० - श्रमण्णि - श्रणाहारग ति । श्राहार० - श्राहारमि० सत्तण्णं क० सव्व-त्थोवा जह० दिवं । उक्क० दिवं ० संखे ज्ञग्र० । श्रज० मणु० दिवं ० सं० ग्र० । श्रायु० मणु सिभंगो । एवं मण्प ज्ञव - संजद - सामाइ० - छेदो ० - परिहारग ति । श्रवग-द्वे० - सुहु मसं० सत्तण्णं क० छण्णं क० उक्क० दिविं ० थोवा । जह० दिवं ० संखे ज्ञाग्र० । श्रज० मणु० दिविं वं ० संखे ज्ञाग्र० ।

२३३. त्राभि-सुद०-श्रोधि० सत्तारणं क० सन्वत्योवा जह०हिदिवं० । उककि हिदिवं० श्रसं०गु० । श्रज०मणु०हिदिवं० श्रसं०गु० । श्रायु० सन्वत्योवा उककि हिदिवं० । जह०हिदिवं० संखेज्जगु० । श्रज०मणु०हिदिवं० श्रसं०गु० । एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-वेदगसम्मादि० ।

२३४. मुक्को० सत्तराएं क०सन्वत्थोवा जह०हिदिवं०। उक्क०हिदिवं० असं०गु०।

श्रीदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंमें श्राठ कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सवसे स्तोक है। इनसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रमन्तगुणें हैं। इनसे अजघन्य श्रमुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इसीप्रकार कार्मण्काययोगी, मत्यक्षानी, श्रुताह्यानी, श्रसंयत, कृष्णु लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भन्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंही श्रीर श्रमाह्यक जीवोंके जानना चाहिए। श्राह्यक काययोगी श्रीर श्राह्यक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अत्वर्ध स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजः घन्य श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणें हैं। श्रायुकर्मका भङ्ग ममुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययहानी, संयत, सामायिक संयत, होदोपस्थापनासंयत, श्रीर परिहारविश्चिद्धसंयत जीवोंके जानना चाहिए। श्रपगतवेदी श्रीर सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें कमसे सात कर्म श्रीर छह कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणें हैं।

२३२. श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रविध्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। श्रायुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य श्रमुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इसी प्रकार श्रविध्वर्शनी, सम्यग्दिष्ट श्रीर वेदकसम्यग्दिष्के जानना चाहिए।

२३४. शुक्कलेश्यावाले जीवोंमें सात कमौंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे

१' मूलपतौ हिदिवं० ऋसं० गु० इति पाठः ।

अजि॰मणु॰हिदिवं॰ असं॰गु॰। श्रायु॰ मणुसिभंगो। एवं खइगस०। उवसम० सत्तरणं क॰ सन्वत्थोवा जह॰हिदिवं॰। उक्क॰ असं॰गु॰। अजि॰मणुहिदिवं॰ असंखे॰गु॰। सासणि॰ सन्वत्थोवा सत्तरणं क॰ जह॰हिदिवं॰। उक्क॰हिदिवं॰ असं॰गु॰। अजि॰मणु॰हिदिवं॰ असं॰गु॰। श्रायु॰ सन्वत्थोवा उक्क॰हिदिवं॰। जह॰हिदिवं॰ असं॰गु॰। श्रायु॰ सन्वत्थोवा उक्क॰हिदिवं॰। जह॰हिदिवं॰ असं॰गु॰। एवं जीवअप्पावहुगं समत्तं।

द्विदि**ऋप्पाबहुगपरूव**गा

२३५. द्विदिश्रप्पाबहुगं तिविधं—जहरूण्ययं उक्कस्सयं जहरूणुक्कस्सयं च । उक्क-स्सए पगदं । सन्वत्थोवा श्रद्धरूणं कम्माणं उक्कस्सश्रो द्विदिवंधो । यद्विदिवंधो विसेसाधियो । एवं याव श्रणाहारग ति णेदन्वं ।

२३६. जहरायाए पगदं । अहरायां कम्मायां सन्वत्थोवा जहरायाओ हिदिवंघो । यहिदिवंघो विसेसाधियो । एवं याव अस्याहारग ति सोदन्वं ।

२३७. जहराणुकस्सए पगदं। दुवि - अोघे० आदे०। ओघेण अहराणं कम्माणं सन्वत्थोवा जहराणिहिदवंधो । यहिदिवंधो विसेसाधियो । उकस्सिहिदवंधो असंखे- जारा० । यहिदिवंधो विसेसा० । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-

श्रजघन्य श्रजुत्हृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। श्रायुकर्मका भङ्ग मनुप्यिनियोंके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार चायिक सम्यग्दिएयोंके जानना चाहिए।
उपशमसम्यग्दिए जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे
स्तोक हैं। इनसे उत्हृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य
श्रजुत्हृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। सासादन सम्यग्दिए
जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्हृष्ट
स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य श्रजुत्हृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य करनेवाले जीव सबसे
स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इनसे श्रजघन्य
श्रजुत्हृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं।

इस प्रकार जीव श्रल्णबहुत्व समाप्त हुआ।

स्थिति अल्पहुत्वप्ररूपणा

२३४. स्थिति श्रस्पवहुत्व तीन प्रकारका है—जघन्य, उत्क्रप्ट और जघन्य उत्कृष्ट । उत्कृप्टका प्रकरण है । इसकी श्रेपेका श्राठों कर्मीका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । यिस्थितिबन्ध विशेप श्रिधिक है । इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

२३६. जघन्यका प्रकरण है। उसकी श्रपेचा श्राठों कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

२३७. जघन्य उत्कृष्टका प्रकर्ण है। उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर आदेश। श्रोघकी श्रपेत्ता श्राठ कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है। यत्स्थिति-वन्ध विशेष श्रधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार श्रोघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों पंचवचि॰-कायजोगि-श्रोरालियका॰-इत्थि॰-पुरिस॰-एाबुंस॰-कोधादि०४-श्राभि०-सुद॰-श्रोधि॰-चक्खुदं॰-श्रचक्खुदं॰-श्रोधिदं॰-सुक्कले॰-भवसि॰-सम्मादि॰-खइगस०-उवसम॰-सिएए-श्राहारग ति ।

२३८. आदेसेण ऐरइएसु अट्ठएणं क० सन्वत्थोवा जह०द्विवंधो । यद्विदिवंधो विसेसाहिओ । उक्क०द्विदिवं७ संखे०गु० । यद्विदिवंधो विसेसाधिओ । एवं सन्विण्य-पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-सन्वदेव-पंचिदिय-तस-अपज्ज०-ओरालियमि०-वेडिवियमि०-आहार०-आहारिश०-कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहारग ति ।

२३६. तिरिक्षेसु सत्तरणं क० सन्वत्थोवा जह० हिदिवंथो। यहिदिवंथो विसे०। उक्क० हिदिवं० सं०ग्र०। यहिदिवं० विसेसा०। आग्रु० जह० हिदिवं० सन्वत्थोवा। यहिदिवंथो विसेसाधिओ। उक्क० हिदिवं० असंखे०ग्र०। यहिदिवं० विसे०। एवं तिरिक्खोधभंगो पंचिदियतिरिक्ख० ३-मिद्०-सुद०-विभंग०-असंज०-किर्ण्य०-गील०-काड०-तेउले०-पम्मले०-अञ्भवसि०-सासण्०-मिच्छादिहि ति।

२४०. एइंदिएस सत्तरणं कम्माणं सन्वत्थोवा जह०द्विदिवं०। यद्विदिवं०

मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसक-वेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रविद्यानी, चचुदर्शनी, श्रवचुदर्शनी, श्रविदर्शनी, श्रुक्कलेश्यावाले, भन्य, सम्यग्दिष्ट, चायिकसम्यग्दिष्ट, उपशम-सम्यग्दिष्ट, संज्ञी श्रोर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२३८. श्रादेशसे नारिकयों में श्राठों कमोंका जघन्य स्थितवन्ध सवसे स्तोक है। इससे यिस्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इसी प्रकार सव नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्यात, मनुष्य श्रपर्यात, सव देव, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्यात, त्रस श्रपर्यात, श्रौदारिकिमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, कार्मणुकाथयोगी, सम्यग्मिथ्या- इप्रि श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेपार्थ—वैकियिकमिश्रकाययोगी और सम्यग्मिश्यादृष्टि इन दो मार्गणाओं श्रीयु-कर्मका वन्ध नहीं होता, इसिलए इनमें सात कर्मोंकी श्रपेचा श्रत्पवहुत्व कहना चाहिए।

२३९. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध सवसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिवन्ध वन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्ह्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष अधिक है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध सवसे स्तोक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्ह्य स्थितवन्ध असंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्ह्य स्थितवन्ध असंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष अधिक है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चिक, मत्यक्कानी, श्रुता-क्कानी, त्रसंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पश्चेश्यावाले, अभव्य, सासादनसम्यग्दिष्ट और मिथ्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

२४०. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध

विसे॰ । जक्क ० हि दिवं० विसे॰ । यहि दिवं० विसेसा० । आयुग० णिरयभंगो । एवं सन्वएइं दिय-विगलिं दिय-पंचकायाणं ।

२४१. अवगदवे० णाणाव०-दंसणाव०-मोह०-अंतराइंग० सन्वत्थोवा जह०-हिदिवं० । यहिदिवं० विसे० । उक्त०हिदिवं० संखेज्जगु० । यहिदिवं० विसे० । वेदणीय-णामा-गोदाणं सन्वत्थोवा जह०हिदिवं० । यहिदिवं० विसे० । उक्त०-हिदिवं० असं०गु० । यहिदिवं० विसे० ।

२४२. मणपज्ज० सत्तराणं क० श्रोघं। श्रायु० शिरयभंगो। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०।

२४३, सुहुमसं० छएएां कम्माएां सन्वत्थोवा जह०द्विदिवं० । यद्विदिवं० विसे० । उक्क०द्विदिवं० संखेज्जग्र० । यद्विदिवं० विसे० ।

२४४. परिहार०-संजदासंज०-वेदगस० देवभंगो । एवरि वेदग० आयु० त्रोधभंगो । असिएए० सत्तएएं क० पंचिदियतिरिक्खभंगो । आयु० मूलोघभंगो । एवं द्विदिअप्पावहुगं समत्तं ।

२४५. भूयो हिदिश्रप्पावहुगं दुविधं—सत्थाणश्रप्पावहुगं चेव परत्थाणश्रप्पावहुगं चेव । सत्थाणश्रप्पावहुगं हिदिश्रप्पावहुगभंगो । परत्थाणपावहुगं तिविधं—

विशेष श्रधिक है। श्रायुकर्मका भङ्ग नारिकयोंके समान है। इस प्रकार सव एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय श्रीर पाँच कायवाले जीवोंके जानना चाहिए।

२४१. श्रापगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय श्रीर श्रन्तराय कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यित्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्णातगुणा है। इससे यित्स्थितबन्ध विशेष श्रधिक है। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्र कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यित्स्थितबन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यित्स्थितबन्ध विशेष श्रधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितबन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यित्स्थितबन्ध विशेष श्रधिक है।

२४२. मनःपर्ययज्ञानमं सात कर्मीका भङ्ग ग्रोघके समान है। ग्रायुकर्मका भङ्ग नारिकर्योके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत ग्रोर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए।

२४३. सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंमें छह कर्मीका जघन्य स्थितवन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है।

२४४. परिद्वारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत श्रीर घेदक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें सामान्य देवोंके समान श्रलपबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दिष्ट जीवोंमें श्रायुकर्मका भङ्ग श्रविष्ठानी जीवोंके समान है। श्रसंक्षी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों- के समान है श्रीर श्रायुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है।

इस प्रकार स्थिति ग्रह्मवहुत्व समाप्त हुग्रा।

२४४. पुनः स्थिति ग्रलपबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान ग्रलपबहुत्व ग्रौर परस्थान अलपबहुत्व। स्वस्थान ग्रलपबहुत्व स्थिति ग्रलपबहुत्वके समान है। परस्थान ग्रलपबहुत्व

जहराण्यं उक्तस्सयं जहराणुक्तस्सं च । उक्तस्सए पगदं । दुवि०—श्रोघेण श्रादेसेण य । तत्थ श्रोघेण सन्वत्थोवा श्रायु० उक्तिदिवं० । यद्विदिवं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्त०द्विदं० संखेज्जग्रं० । यद्विदिवं० विसे० । चदुएणं क० उक्त०द्विदं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदं० विसे० ।

२४६. त्रादेसेण ऐइरएस सन्वत्थोवा त्रायु० उक्क०हिदिवं० । यद्विदिवं० विसे०। गामा-गोदाणं उक्क०हिदिवं० त्रसं० ए०। यद्विदिवं० विसे०। चहुएणं क० उक्क०हिदिवं० विसे०। यहिदिवं० विसे०। मोह० उक्क०हिदिवं० संखेज्जगु०। यहिदिवं० विसे०। एवं सन्विण्य-पंचिदियितिरिक्खत्रपज्ज०-मणुसत्रपज्ज०-सन्व-एइंदिय-विगलिदिय-पंचकायाणं पंचिदिय-तसत्रपज्ज०-त्रोरालियिम०-वेउन्वियका०- त्रासिएण ति।

२४७. त्रोघभंगो तिरिक्ख०४-मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-त्रोरालियका०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०-ग्रसंज०-चक्खुदं०-ग्रचक्खुदं०-किएण०-णील०-काड०-तेड०-पम्मले०-सुक्कले०-भव-सि०-ग्रब्भवसि०-भिच्छादि०-सिएण-ग्राहारग ति ।

२४८. सन्वदेवा० णिरयभंगो । णविर अणुदिस याव सन्वहा ति उविर तीन प्रकारका है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्य उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेला निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेला आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थिति-वन्ध सबसे स्तोक है । इससे यित्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यित्स्थितबन्ध विशेष अधिक है । इससे चार कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितबन्ध विशेष अधिक है । इससे यित्स्थितवन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यित्स्थितवन्ध विशेष अधिक है ।

२४६. श्रादेशसे नारिकयों में श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध सबसे स्तोक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रसंख्यात-गुणा है। इससे यित्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे चार कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्थञ्च श्रपर्यात, मनुष्य श्रपर्यात, सब पकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पांचों स्थावरकाय, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्यात, अस श्रपर्यात, श्रीदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक काययोगी श्रीर श्रसंक्षी जीवोंके जानना चाहिए।

२४७. तिर्यञ्च चतुष्क, मनुष्यित्रक, पञ्चेन्द्रियद्विक, प्रसिद्वक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, श्रौदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, कोधादि -चार कषायवाले, मत्यहानी, श्रुताहानी, विभंगहानी, श्रसंयत, चक्षुदर्शनी, श्रचक्षुदर्शनी, हृष्णुलेश्यावाले, मिललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, श्रुक्लेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि, संझी श्रौर श्राहारक जीवोंके श्रोघके समान भङ्ग हैं।

२४८. सब देवोंमें नारिकयोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे

१. मूलप्रतौ उवरि वहुर्त्तं० मोह् इति पाठः ।

मोह० उक्क॰ द्विदि० विसे० । यहिदिवं० विसे० ।

२४६. त्राहार०-त्राहारिम० सन्वहभंगो । एवरि एामा-गोदा० संखेज्जगु० । वेजिव्यिम० सन्वत्थोवा एामा-गोदा० उक्क० द्विदिवं० । यहिदिवं० विसे० । चढुएएं क० उक्क० हिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । मोह० उक्क० हिदिवं० सं०गु० । यहिदिवं० विसे० । एवं कम्मइ०-सम्मामि०-त्र्यणाहारग ति । एवरि सम्मामि० मोह० उक्क० हिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० ।

२५०. अवगद० सन्वत्थोवा मोह० उक्क० द्विदिवं० । यद्विदिवं० विसे० । गाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० उक्क० द्विदिवं० सं०ग्र० । यद्विदिवं० विसे० । गामा-गोदाणं उक्क० द्विदिवं असं०गु० । यद्विदिवं विसे० । वेदणी० उक्क० द्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० ।

२५१. श्राभि०-सुद्०-श्रोधिदं० श्रद्धण्णं क० मूलोघं । एवरि मोह० उक्क०- हिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । एवं मणपञ्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परि- हार०-संजदासंजद०-श्रोधिदं-सम्मादि०-खइग० वेदग०-उवसम०-सासण त्ति । एवरि उवसमे श्रायु० एत्थि ।

लेकर सर्वार्थिसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

२४६. ग्राहारककाययोगी ग्रीर ग्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिहिक समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि नाम ग्रीर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। वैक्रियकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नाम ग्रीर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है। इससे मोहनीयकर्मका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है। इससे प्रकार कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादिष्ट ग्रीर ग्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यादिष्ट जीवोंमें मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है।

२५०. अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सवसे स्तोक है। इससे यित्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे झानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका उत्कृष्टस्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्स्थितबन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इससे यित्स्थितबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

२५१. श्राभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रौर श्रविधिज्ञानी जीवोंमें श्राठों कर्मीका भङ्ग मूलोधिक समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यित्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इसी प्रकार मनःपर्यथञ्जानी, संयत, सामायिक-संयत, छुदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, श्रविधिदर्शनी, सम्यग्दिष्ट, ज्ञायिकसम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट, उपशमसम्यग्दिष्ट श्रौर सासादनसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उपशमसम्यक्त्वमें श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता।

१. मूलप्रतौ खड्ग० यहिदिबं० वेदग इति पाठः।

२५२. सुहुमसंप० सन्त्रथोवा णाणाव ०-दंसणाव०-श्रंतराइ० उक्क०द्विदिवं०। यिद्विदं० विसे०। गामा-गोदाणं उक्क०द्विदिवं० सं०गु०। यद्विदिवं० विसे०। वेदणी० उक्क०द्विदिवं० विसे०। [यद्विदिवं० विसेताहिश्रो।] एवं उक्करसं समत्तं।

२५३. जहएएएगे पगदं। सन्वत्थोवा आयु॰ जह० हिदिवं०। यहिदिवं० विसे०।
मोह० जह० हिदिवं० संखे० ए०। यहिदिवं० विसे०। एएए। वर्णावर०-दंसणावर०अंतराइ० जह० हिदिवं सं० ए०। यहिदिवं० विसे०। एए। पामागोदाएं जह० हिदिवं०
सं० ए०। यहिदिवं० विसे०। वेदएी० जह० हिदिवं० विसे०। याहिदिवं० विसे०।
एवं ओघभंगो मणुस० ३- पंचिदिय-तस०२ — पंचमण — पंचवचि० — कायजोगि — ओरालियका० - पुरिस० - कोधादि० ४ - चक्खुदं० - अचक्खुदं० - भवसि० - सिएए। आहारग ति।

२५४. त्रादेसेण ऐरइएस उक्कस्सभंगो । एवरि विदियादि याव सत्तमा ति मोह० जह०द्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० ।

२५५. तिरिक्लेसु सन्वतिरिक्ल-मणुसञ्चपज्ज०-सन्वदेव-सन्वएइंदिय-विगर्लि-दिय-पंचिदिय-तसञ्चपज्ज०-सन्वपंचकायाणं श्रोरालियमि०-मदि०-सुद०-विभंग०-श्रसंजद०-पंचले०-श्रव्भवसि०-भिच्छादि०-श्रसणिण त्ति एदेसि सन्वेसि णिरयोघं।

२५२. सूद्रम साम्परायसंयत जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तरायकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सवसे स्तोक है। इससे यितस्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्र कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यितस्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे येतस्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे येतस्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे येतस्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है।

इस प्रकार उत्कृष्ट ऋल्पवहुत्व समाप्त हुआ।

२५३. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा आयुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है। इससे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे आनावरण, दर्शना वरण और अन्तरायकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे यित्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीयकर्मको जघन्य स्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इससे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इसमे यित्थितिवन्ध विशेष अधिक है। इसमे यित्थितवन्ध विशेष अधिक है। इसीप्रकार ओघके समान मनुष्यित्रक, पञ्चेन्द्रियद्विक, असद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, पुरुषवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, चजुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भन्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२४४. त्रादेशसे नारिकयों में त्रलपवहुत्वका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मका जघन्य स्थिति बन्ध विशेष प्रिधिक है। इससे यत्स्थितबन्ध विशेष अधिक है।

२४५. तिर्यञ्जोमें सब तिर्यञ्ज, मनुष्य ग्रपर्याप्त, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विक-लेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय ग्रपर्याप्त, त्रसमपर्याप्त, सब पाँच स्थावरकाय, ग्रौद्रारिकमिश्रकाययोगी, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, विभक्षक्षानी, ग्रसंयत, पाँचलेश्यावाले, ग्रभन्य, मिथ्यादृष्टि ग्रौर ग्रसंक्षी णवरि जोदिसिय याव सन्वद्दा त्ति वेडन्वियका०-तेड०-पम्मले० विदियपुढविभंगो । एवं वेडन्वियमि० । णवरि श्रायु० णत्थि ।

२५६. कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहारग ति उकस्सभंगो । आहार०-आहारमि०-उकस्सभंगो ।

२५७. इत्थि०-णवुंस० सन्वत्थोवा आयु॰ जह० हिदिबं॰। यहिदिवं॰ विसे०। मोह० जह०हिदिवं॰ सं०गु०। यहिदिवं॰ विसे०। णाणाव०-दंसणाव०- श्रंतराइ० जह०हिदिवं॰ संखे०गु०। यहिदिबं० विसे०। णामा-गोदाणं जह०हिदिवं० असंखे०गु०। यहिदिवं० विसे०। गिहिद्वं० विसे०। यहिदिवं० विसे०। अवगदवे० मूलोघं। णविर आयुगं णित्थ। एवं सुहुमसं०। णविर मोह० वज्ज०।

२५८. श्राभि०-सुद्०-श्रोधि० सन्वत्थोवा मोह० जह०द्विदिवं०। यद्विदिवं० विसे०। खाखाव०-दंसखाव०-श्रंतराइ० जह०द्विदिवं० सं०गु० । यद्विदिवं० विसे०। खामा-गोदाखं जह०द्विदिवं० सं०गु०। यद्विदिवं० विसे०। यद्विदिवं० विसे०। यद्विदिवं० विसे०। यद्विदिवं० विसे०। श्रायु० जह०द्विदिवं० सं०गु०। यद्विदिवं० विसे०। एवं श्रोधिदं०-

इन सवके श्रव्यवहुत्वका भङ्ग नारिकयों के समान है। इतनी विशेषता है कि न्योतिषियों से लेकर सर्वार्थिसिद्ध तकके देव वैक्रियिककाययोगी, पीत लेश्यावाले श्रौर पद्म लेश्यावाले जीवों में श्रव्यवहुत्वका भङ्ग दूसरी पृथिवीके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुकर्मका भङ्ग नहीं होता।

२४६. कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि श्रौर श्रनाहारक जीवोंमें श्रल्पबहुत्वका भङ्ग उत्कृपके समान है। श्राहारककाययोगी श्रौर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रल्प-बहुत्वका भङ्ग उत्कृपके समान है।

२४७. स्रीवेदी श्रीर नपुंसकवेदो जीवोंमें श्रायुकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे श्रानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तरायकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष श्रिधक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। श्रपगतवेदी जीवोंमें श्रव्यवहुत्वका भक्त मूलोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परा-यिकसंयत जीवोंके कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके मोहनीय कर्मको छोड़कर श्रव्यवहृत्व कहना चाहिए।

२४८. ग्रामिनिवोधिकझानी, श्रुतझानी ग्रौर ग्रविध्वानी जीवोमें मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितबन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण ग्रौर ग्रन्तरायकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितबन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे नाम ग्रौर गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितबन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे य्रायुकर्मका जघन्य स्थितबन्ध संख्यान्हे। इससे यत्स्थितबन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे ग्रायुकर्मका जघन्य स्थितबन्ध संख्यान्हे।

सुक्तले०-सम्मादि०-खइग० । मणपज्जव०-संजद-सामाइ०-छेदो० श्रोधिभंगो । एवरि श्रायु० जह०द्विदिवं० श्रसं०गु० । यद्विदिवं० विसे० । परिहार० उक्कस्सभंगो । वेदगसम्मादि० विदियपुढविभंगो । उवसम० श्रायु० वज्ज मूलोघं । सासणे विदियपुढविभंगो । एवं जहएएएयं समत्तं ।

२५६. जहएणुकस्सए पगदं। दुवि०—श्रोघे० श्रादे०। श्रोघेण सन्वत्थोवा श्रायु० जह०हिदिवं० । यहिदिवं० विसे० । मोह० जह०हिदिवं० सं०गु० । यहिदि० विसे० । णाणाव०-दंसणा०-श्रंतराइ० जह०हिदिवं० सं०गु० । यहिदिवं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०हिदिवं० सं०गु० । यहिदिवं विसे० । वेदणीय० जह०हिदिवं विसे० । यहिदिवं० विसे० । श्रायु० उक्त०हिदिवं० श्रसं०गु० । यहिदिवं० विसे० । गामा-गोदाणं उक्त०हिदिवं० सं०गु० । यहिदिवं० विसे० । तीसिगाणं उक्तस्स-हिदिवं विसे० । यहिदिवं० सं०गु० । यहिदिवं० विसे० । एवं श्रोघभंगो मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०—कायजोगि-श्रोरालियका०-इत्थ०—पुरिस०-णवुंस०-कोघादि०४—चक्त्व०—श्रचक्त्व०—भविस०-

तगुणा है। इससे यत्स्थितवन्घ विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार श्रविधदर्शनी, शुक्क लेश्या-वाले, सम्यग्दिष्ट और क्षायिकसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययद्वानी, संयत, सामायिकसंयत श्रीर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें श्रलपवहुत्वका भङ्ग श्रविध्वानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रायुकर्मका जघन्य स्थितियन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितियन्घ विशेष श्रधिक है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें श्रलपवहुत्वका भङ्ग उत्कृपके समान है। वेदक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें श्रलपबहुत्वका भङ्ग दूसरी पृथिवीके समान है। उपशम-सम्यग्दिष्ट जीवोंमें श्रायुकर्मके सिवा शेषका श्रलपबहुत्व मूलोधके समान है। सासादन सम्यग्दिष्ट जीवोंमें श्रलपबहुत्व दूसरी पृथ्वीके समान है।

इस प्रकार जघन्य श्रत्पवहुत्व समाप्त हुश्रा।

२४९. जघन्य उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। ओघकी अपेत्ता आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यित्थ-तिबन्ध विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे बानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे विशेष अधिक है। इससे विशेष अधिक है। इससे विशेष अधिक है। इससे यित्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यित्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे प्रकार ओघके समान मनुष्य-त्रिक, पञ्चित्व, पञ्चित्व, पञ्चित्व, पञ्चित्व, पञ्चित्व, पञ्चित्व, क्षियोगी, क्रावेदी, क्षियोगी, क्रावेदी, प्रक्षवेदी, नपुंसकवेदी, क्रीधिद चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षु-र्शनी, अचक्षु-र्शनी, अव्यक्षेत्री, अव्यक्षेत्री और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि छीवेदी

सिएण-त्राहारग ति । एवरि इत्थि०-एावुंस० एामा-गोदा० जह०द्विदिवं० त्रसं०गु०। यद्विदिवं० विसे० ।

२६०. त्रादेसेण णेरइएसु सन्वत्थोवा त्रायु० जह० द्विदिवं० । यद्विदिवं० विसे० । उक्क० द्विदिवं० सं०ग्र० । यद्विदिवं० विसे० । णामा-गोदाणं जह० द्विदिवं० त्रसं०ग्र० । यद्विदिवं० विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-वेदणी०-त्रंतराइ० जह० द्वि-दिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । मोह० जह० द्विदिवं० सं०ग्र० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । विसिगाणं उक्क० द्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० निसे० । यद्विदिवं० संखे०ग्र० । यद्विदिवं० विसे० । एवं पढमपुढ वि०-देवोधं-भवण०-वाणवेतर त्ति । विदियाए याव सत्तमा त्ति एवं चेव । णविर मोह० जह० द्विदेवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदवं० विसे० । यद्विद्वं० विसे० । यद्वे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० विसे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० विसे० विसे० । यद्वेव विसे० विसे० विसे० विसे० ।

२६१. तिरिक्खेस सन्वत्थोवा आयु० जह०द्विदिवं०। यद्विदिवं० विसे०। गामा-गोदागां जह०द्विदिवं० असं०गु०। यद्विदिवं० विसे०। चदुगगां क० जह०-

श्रीर नपुंसकवेदी जीवोंमें नाम श्रीर गोत्रका जघन्य स्थितवन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है।

२६०. श्रादेशसे नारिकयोंमें श्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेप श्रधिक है। इससे श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्यितवन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय श्रीर श्रन्तरायका जघन्य स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थिति-बन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे नाम ग्रौर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रिधिक है। इससे तीसिय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी ग्रौर व्यन्तर देवोंके जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मोहनीयकर्मका ज्घन्य स्थितिवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे नाम श्रौर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिवन्घ संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे तीसिय कर्मीका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष ग्रिधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थिति-.बन्ध विशेष ग्रधिक है I

रियात आवक हा रिवास स्थात क्यां स्थाति वन्य स्वसे स्तोक है। इससे यत्स्थिति रिवास स्वसे स्तोक है। इससे यत्स्थिति रिवास स्थाति क्यां स्थाति वन्य स्थिति वन्य असंख्यात गुणा है। वन्य विशेष अधिक है। इससे नाम और गोन्नका ज्ञान्य स्थिति वन्य विशेष इससे यत्स्थिति वन्य विशेष इससे यत्स्थिति वन्य विशेष

हिदिबं विसे । यहिदिबं विसे । मोह जह हिदिबं संग्रा । यहिदिबं विसे । आयु जिल हिदिबं संग्रा । यहिदिबं विसे । ग्रामा-गोदाणं उक्त हिदिबं संग्रा । यहिदिबं विसे । ग्रामा-गोदाणं उक्त हिदिबं संग्रा । यहिदिबं विसे । विसे । यहिदिबं विसे ।

२६२. पंचिदियति०३-विभंगे० सन्वत्थोवा आयु० जह०हिदिवं। यहिदिवं० विसे०। उक्क०हिदिवं० आसं०गु०। यहिदिवं० विसे०। ग्रामा-गोदाणं जह०-हिदिवं० सं०गु०। यहिदिवं० विसे०। चढुएणं क० जह०हिदिवं० विसे०। यहिदिवं० विसे०। यहिदिवं० विसे०। गोदाणं उक्क०हिदिवं० सं०गु०। यहिदिवं० विसे०। ग्रामा-गोदाणं उक्क०हिदिवं० सं०गु०। यहिदिवं० विसे०। तीसिगाणं उक्क०हिदिवं० विसे०। यहिदवं० विसे०। यहिदवं० विसे०। गोह० उक्क०हिदिवं० सं०गु०। यहिदवं० विसे०। एवं असिएग्र०। ग्रविर ग्रामा-गोदाणं जह०हिदवं० आसंखे०ग्रणं काद्वं।

२६३. मदि०-सुद०-किएए।०-एील०-काड०-अब्भवसि०-मिच्छादि० तिरिक्लोघ-भंगो । पंचिदियतिरिक्लअप०-मणुसअप०-पंचिदिय-तसअप०-ओरालियमि० णिरय-भंगो । जोदिसिय-प्पहुडि याव उवरिमगेवज्जा त्ति विदियपुढविभंगो ।

श्रिधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे मोहनीयकर्मका जघन्य स्थिति-वन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे नाम श्रीर गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है।

२६२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रक श्रौर विभक्षशानी जीषों से श्रायुकर्मका जघन्य स्थिति-वन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे श्रायुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे गोत्रका जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे चार कर्मोंका जघन्य स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे नाम श्रौर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थिति-बन्ध विशेष श्रधिक है। इससे तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार श्रसंक्षी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी

२६३. मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, श्रिमच्य श्रीर मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चीके समान श्रव्यवहुत्व है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रिपर्यात, मनुष्य श्रपर्यात, पञ्चेन्द्रिय, श्रपर्यात, श्रस श्रपर्यात श्रीर श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नारिकर्योके समान श्रल्यवहुत्व है। ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम श्रैवेयक तकके देवोंमें

त्रगुदिस याव सन्वद्दा त्ति त्र्राणदभंगो। ग्रविर मोह० उक्क०द्दिदिवं० विसे०। यद्दिवं विसे ।

उक्क विदिवं व संवगुर । यदिदिवं विसे व गामा-गोदाणं जह विदिवं असंवगुर। यहिदिवं विसे । तेसिं चेव उक्तस्सिहिदिवं विसे । यहिदिवं विसे । चदु-एएां क० जह ० हिदिवं० विसे०। यहिदिवं० विसे०। तेसि चेव उक्क० हिदिवं० विसे । यहिदिवं विसे । मोह जह विदिवं सं गु । यहिदिवं विसे । तस्सेव उक्क विदिवं विसे । यहिदिवं विसे । एवं सन्वएइंदिय-सन्विवगिलं-दिय-सन्वपंचकायाणं।

२६५. वेजिव्यका० विदियपुढविभंगो । एवं वेजिव्यमि०। एवरि आयु० शात्थि । सम्मामिच्छादिद्दी० सन्बद्दभंगो । आयु० शात्थि । आहार०-आहारमि० सन्वहभंगो । एवरि एामा-गोदाएं जह०हिदिवं० सं०गु०। कम्मइ०-त्रणाहारग त्ति पहमपुहविभंगो । त्र्रायु० एत्थि ।

२६६. त्रवगदवे॰ सन्वथोवा मोह० जह० दिविवं०। यदिदिवं० विसे०।

दूसरी पृथिवीके समान श्रलपबहुत्व है। श्रनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें श्रानत कल्पके समान अल्पबहुत्व है। इतनी विशेपता है कि अनुदिशादिकमें मोहनीयका उत्ऋष्ट स्थितिवन्ध विशेष ग्रिधिक है। इससे यित्स्थितिवन्ध विशेष ग्रिधिक है।

२६४. एकेन्द्रियोंमें श्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थिति-यन्ध विशेष अधिक है। इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्य विशेष श्रिधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका जघन्य स्थितबन्ध श्रसंख्यात गुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे उन्हींका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे चार कर्मीका जधन्य स्थितिबन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे उन्हींका उत्कृप्ट स्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे मोहनीयका जघन्य स्थिति वन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे उसीका उत्कृष्ट स्थिति वन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सव विकतिन्द्रिय ग्रीर सव पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

२६४. वैकियिक काययोगी जीवोंमें दूसरी पृथिवीके समान श्रल्पवहुत्व है। इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवीमें सर्वार्थसिद्धिके समान श्रत्पवहुत्व है। किन्तु इनके श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। श्राहारककाययोगी श्रोर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान श्रन्पयहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें नाम श्रीर गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्घ संख्यातगुणा है। कार्मणुकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें पहली पृथिवीके समान अल्पवहुत्व है। पर इनके आयुकर्मका वन्ध नहीं होता।

२६६. श्रपगतवेदी जीवोंमें मोहनीय क्रमका जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्यितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे झानावरण, दर्शनावरण श्रीर अन्तरायकर्मका णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० जह० दिवं० सं०गु० । यदिदंवं० विसे० । णामा-गोदाणं जह० दिवं० सं०गु० । यदिदंवं० विसे० । वेदणी० जह० दिवं० विसे० । यदिदंवं० विसे० । वेदणी० जक० दिवं० विसे० । विदणी० जक० दिवं० विसे० । यदिदंवंथो विसेसाहियो ।]

२६७. श्राभि०-सुद०-श्रोधि॰ सन्वत्थोवा मोह० जह० हिदिवं० । यहिदिवं०-विसे० । ग्रागाव०-दंसगाव०-श्रंतराइ० जह० हिदिवं० सं०ग्र० । यहिदिवं० विसे० । ग्रामा-गोदाणं जह० हिदिवं० संखेळाग्र० । यहिदिवं० विसे० । वेदणीय० जह० हिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । श्रायु० जह० हिदिवं० सं०ग्र० । यहिदिवं० विसे० । तस्सेव उक्क० हिदिवं० श्रसं०ग्र० । यहिदिवं० विसे० । ग्रामा-गोदाणं उक्क० हिदिवं० सं०ग्र० । यहिदिवं० विसे० । ग्रामा-गोदाणं उक्क० हिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । ग्राह्म० हिदवं० विसे० । यहिदिवं० विसे० । ग्राह्म० इक्क० हिदिवं० विसे० । ग्राह्म श्राह्म । ग्राह्म श्राह्म श्राह्म । ग्राह्म श्राह्म श्राह्म । ग्राह्म श्राह्म श्राहम श्राह्म श्राह्म

जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यस्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे नाम श्रीर गीत्रका जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे शानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे वेदनीयका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है।

२६७. श्राभिनिबोधिकहानी, श्रुतहानी श्रीर श्रविधहानी जीवों में मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध सवसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे हाना-वरण, दर्शनावरण श्रीर अन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे वेदनीयका जघन्य स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे श्रीयुकर्मका जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे उसीका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। इससे प्रतिख्यतिवन्ध विशेष श्रिक है। इससे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि गुक्तलेश्यावाले जीवोंमें मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधक है। मनःपर्थश्रवानी,

सं०गु० । यहिदिवं० विसे० । मणपज्ज०-सामाइ०-छेदो० तं चेव । णवरि श्रायु० जह०हिदिवं० श्रसं०गु० । यहिदिवं० विसे० । तस्सेव उक्क०हिदिवं०, सं०गु० । यहिदिवं० विसे० ।

२६८. परिहार०-संजदासंजद० त्राहारकायजोगिभंगो । सुहुमसंप० सन्वत्थोवा णाणाव०-दंसणाव०-त्रंतराइ० जह० द्विदिवं० । यद्विदिवं० विसे० । णामा-गोदाणं जह० द्विदिवं० संखेळागु० ।', द्विदिवं० विसे० । वेदणी० जह० द्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-त्रंतराइ० उक्किटिदिवं० सं०गु० । यद्विदिवं० विसे० । वेदणी० उक्क०-द्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदिवं० विसे० । यद्विदवं० विसे० । यद्विदवं० विसे० । यद्विदवं० विसे० । यद्विदवं० विसे० । त्राह्मणाव० विसे० । व्यक्किक्यणाव० विसे० । विद्यां० विसे० । विद्यां० विसे० । विद्यां० विसे० । व्यक्किक्यणाव० विसे० । विद्यां० विद्यां० विसे० । विद्यां० विद्य

२६८. तेंड॰-पम्म॰ सन्वत्थोवा आयुग॰ जह॰ हिदिवं॰ । यहिदिवं॰ विसे॰ । तस्सेव उक्क॰ हिदिवं॰ असं॰गु॰ । यहिदिवं॰ विसे॰ । णामागोदाणं जह॰ हिदिवं॰ सं॰गु॰ । यहिदिवं॰ विसे॰ । णाणाव॰-दंसणाव॰-वेदणी॰-अंतराइ॰ जह॰ हिदिवं॰ विसे॰ । यहिदिवं॰ विसे॰ । सेसाणं तीसिगाणं

सामायिकसंयत ग्रोर हेदोपस्थापना संयत जीवोंके यही ग्रह्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनके ग्रायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध ग्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रिधक है। इससे उसोका उत्हृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष ग्रिधक है।

२६८. परिहारविशुद्धिसंयत श्रौर संयतासंयत जीवोंमें श्राहारक काययोगी जीवोंके समान श्रव्यवहुत्व है। सूदमसाम्परायिक संयत जीवोंमें श्रानावरण, दर्शनावरण श्रौर श्रन्तराय कमींका जघन्य स्थितिवन्ध सवसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे नाम श्रौर गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे विद्नीय कर्मका जघन्य स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यात्स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे वित्रिय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्र कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे विशेष त्रियतिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे विशेष त्रियतिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे विशेष त्रियतिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे विशेषितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे विशेष त्रियतिवन्ध विशेष श्रधिक है।

२६९. पीतलेश्या श्रीर पद्मलेश्यावाले जीवोंमें श्रायुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सवसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे उसीका उत्कृप्ट स्थितिबन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय श्रीर श्रन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रिधिक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितबन्ध संख्यानगुणा है। इससे यत्स्थितबन्ध विशेष श्रिधक है। इससे नाम श्रीर गोत्रका उत्कृष्ट स्थितबन्ध संख्यानगुणा है। इससे यत्स्थितबन्ध विशेष श्रिधक है। इससे श्रेष तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितबन्ध

उक्क ब्रिटिवं विसे । यहिदिवं विसे । मोह उक्क ब्रिटिवं संग्यु । यहिवं विसे । एवं वेदगस - सासण । ग्यविर मोह उक्क ब्रिटिवं विसे । यहिदिवं विसे ।

एवं परत्थाण् अप्पावहुगं समत्तं ।

एवं भूयो हिदि अप्पावहुगं समत्तं ।

एवं मूलपगदिहिदिवंधे चडवीसमिणियोगद्दारं समत्तं ।

-CATEBOX

विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार वेदक-सम्यग्दिष्ट श्रीर सासादनसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मोह-नीयका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है।

इस प्रकार परस्थान श्रहपवहुत्व समाप्त हुश्रा।

इस प्रकार भूयः स्थितिवन्ध श्रहपवहुत्व समाप्त हुश्रा।

इस प्रकार मूल प्रकृति स्थितिवन्धमें चौवीस श्रनुयोगद्वार समाप्त हुए।



भुजगारबंधो

२७०. भुजगारवंधे ति तत्थ इमं अद्वपदं-याओ एपिंग हिदीओ वंधदि श्रणंतरादिसकाविदविदिकंते समये श्रणदरादो वहुदरं वंधदि त्ति एसो भुजगार-वंधो एगम । अप्पद्रवंधे ति तत्थ इमं अहपदं—याओ एएएए हिदीओ वंधदि अर्णतरउस्सकाविद्विद्किते समए वहुदरादो अप्पदरं वंधदि ति एसो अप्पदर-वंधो साम । अविद्ववंधे ति तत्थ इमं अद्वपदं—यात्रो एरिस दिदीश्रो वंधदि अणंतरश्रोसकाविद-उस्सकाविदविदिकंते समए तत्तियाश्रो तत्तियाश्रो चेव वंधदि त्ति एसो अविद्वंधो णाम । अवत्तव्ववंधे ति तत्थ इमं अहपदं — अवंधदो वंधदि ति एसो अवत्तन्ववंधो खाम । एदेख अहपदेख तत्थ इमाखि तेरस अखियोगद्दाराखि-समुक्तिचणा सामित्तं जाव अप्पावहुगे ति ।

समुक्रित्तगागुगमो

२७१. समुक्तित्तणाए दुवि०—श्रोघेण श्रादेसेण य। श्रोघेण सत्तरणं क० श्रित्थि भुजगारवंधगा श्रप्पद्रवंधगा श्रविद्वंधगा श्रवत्तव्ववंधगा य ! श्राधुगस्स

भूजगारवन्धप्ररूपणा

२७०. भुजगारयन्ध यथा—उसके सम्बन्धमें यह श्रर्थपद है—वर्तमान समयमें जिन स्थितियोंको वाँघता है उन्हें ग्रनन्तर ग्रतिकान्त समयमें घटो हुई बाँघी गई ग्रहपतर स्थितिसे बहुतर वाँधता है यह भुजगार वन्ध है। ऋत्वतरवन्ध यथा-उसके विषयमें यह ऋर्थपद है-वर्तमान समयमें जिन स्थितियोंको वाँघता है उन्हें प्रनन्तर ग्रतिकान्त समयमें बढ़ी हुई वाँधी गई चहुतर स्थितिसे ग्रल्पतर वाँधता है यह ग्रल्पतरवन्ध है। ग्रवस्थितवन्ध यथा-इसके विषयमें यह प्रर्थपद है—वर्तमान समयमें जिन स्थितियोंको वाँघता है उन्हें ग्रनन्तर श्रितिकान्त समयमें घटी हुई या बढ़ी हुई वाँधी गई स्थितिसे उतनी ही उतनी ही बाँघता है यह अवस्थितवन्ध है। अवक्तव्यवन्ध यथा—उसके विषयमें यह अर्थपद है—वन्धका अभाव होनेके वाद पुनः वाँधता है यह अवक्रव्यवन्ध है। इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये तेरह श्रमुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना श्रीर स्वामित्वसे लेकर श्रव्पबहुत्व तक।

विशेपार्थ-यहाँ भुजगार ग्रादिके द्वारा बन्धका विचार किया जा रहा है। प्रथम समयमें अल्पका वन्ध करके अनन्तर वहुतका वन्ध करना भुजगारवन्ध है। इसी प्रकार बहुतका बन्ध करके ग्रहपका बन्ध करना ग्रहपतरबन्ध है। पिछले समयमें जितना बन्ध किया है, श्रगले समयमें उतना ही वन्ध करना श्रवस्थितवन्ध है श्रौर विवित्तित कर्मके यन्थका ग्रभाव होने पर पुनः वन्ध होना ग्रवक्षच्य वन्ध है। प्रकृतमें स्थितिवन्धका प्रकरण है इसिलिए ये चारों स्थितिबन्धकी अपेक्षा घटित करने चाहिए। यहाँ इसका विचार तेरह श्रनुयोगोंके द्वारा किया गया है। श्रनुयोगद्वार ये हैं—समुत्कीर्तना, खामित्व, काल, श्रन्तर, नाना जीवोंकी अपेद्या भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, तेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव

श्रीर श्रहपचहुत्व।

समुत्कीर्तनानुगम

२७१. समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है-श्रोघ श्रौर श्रादेश । उनमेंसे श्रोघकी श्रपेचा सात कर्मीका भुजगारवन्ध करनेवाले जीव हैं, ग्रल्पतरवन्ध करनेवाले जीव हैं, श्रवस्थित-वन्धं करनेवाले जीव हैं और अवक्रव्यवन्धं करनेवाले जीव हैं। आयुकर्मका अवक्रव्य वन्ध त्रत्थि त्रवत्तव्ववंधगा अप्पद्रवंधगा य । एवं श्रोधभंगो मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-श्रोरालियका०-श्राभि०-सुद०-श्रोधि०-गणपज्ज०-संजद-चक्खु०-अचक्खु०-श्रोधिदं०-सुक्कल०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-सणिण-श्राहारग ति ।

२७२. वेजिववयिष०-कम्मइ०-सम्मािष०-अणाहारग० सत्तरणं क० सहुमसं० छ० अत्थि भुज० अप्पद० अविद्व० । अवगद०-जवसमस० सत्तरणं क० अत्थि भुज० अप्पद० अविद्ववंधगा य । सेसाणं सव्वेसि सत्तरणं क० अत्थि भुज० [अप्पद०] अविद्ववंधगा य । आयु० मूलोघं। एविर लोभे मोहणी० ओघं।

करनेवाले जीव हैं श्रीर श्रन्पतरबन्ध करनेवाले जीव हैं। इसी प्रकार श्रोधके समान मतु-ष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रिय द्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रीदा-रिककाययोगी, श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चचु-दर्शनी, श्रवश्चदर्शनी, अवधिदर्शनी, श्रुक्कलेश्यावाले, भन्य, सम्यग्दिए, चायिकसम्यग्दिए, संज्ञी श्रीर श्राहारक जोवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ — आयुकर्मका प्रथम समयमें जो बन्ध होता है वह अवक्रव्य ही होता है, क्योंकि बन्धमें अन्तर पड़कर पुनः वन्ध होना इसीका नाम अवक्रव्य है। इसे भुजगार, अल्पतर या अवस्थितवन्ध नहीं कह सकते, इसिलए इसकी अवक्रव्य संहा है। तथा द्विती-यादि समयोंमें अल्पतर बन्ध होता है क्योंकि आयुकर्मका प्रथम समयमें जो स्थितवन्ध होता है उससे द्वितीयादि समयोंमें उत्तरोत्तर वह हीन हीनतर ही होता है ऐसा नियम है। यह तो आयुकर्मकी व्यवस्था हुई। अब रह गये शेप कर्म सो उनके भुजगार आदि चारों वन्ध सम्भव हैं। इनमें अवक्रव्य वन्ध तो उपशमश्रेणि पर चढ़कर पुनः प्रतिपातकी अपेद्या या मरणकी अपेद्या घटित कर लेना चाहिए। तथा शेष तीन किसीके भी हो सकते हैं। पिछले समयकी अपेद्या अगले समयमें स्थितवन्धकी दृद्धिके कारणभूत संक्लेश परिणामोंके होने पर भुजगार स्थितवन्ध होता है, स्थितवन्धकी हानिके कारणभूत विद्युद्ध परिणामोंके होने पर अल्पतर स्थितवन्ध होता है और अवस्थित स्थितवन्धके कारणभूत परिणामोंके होने पर अल्पतर स्थितवन्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

२७२. वैकियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्माका श्रीर सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें छुद्द कर्मीका भुजगार वन्ध करने वाले जीव हैं, श्रल्पतरवन्ध करनेवाले जीव हैं श्रीर श्रवस्थितवन्ध करनेवाले जीव हैं। श्रपगतवेदी श्रीर उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मीका भुजगारवन्ध करनेवाले जीव हैं, श्रवपत्वन्ध करनेवाले जीव हैं, श्रवस्थितवन्ध करनेवाले जीव हैं। श्रेष सव मार्गणाश्रोंमें सात कर्मीका भुजगारवन्ध करनेवाले जीव हैं। श्रवपतरवन्ध करनेवाले जीव हैं। श्रेष सव मार्गणाश्रोंमें सात कर्मीका भुजगारवन्ध करनेवाले जीव हैं। श्रवपतरवन्ध करनेवाले जीव हैं। श्रवस्थितवन्ध करनेवाले जोव हैं। तथा श्रायुकर्मका भङ्ग मूलोधके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मका भङ्ग श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—उपशमसम्यत्क्व श्रीर श्रपगतवेद उपशम श्रेणि पर चढ़ते श्रीर उतरते समय दोनों श्रवस्थाश्रांमें उपलब्ध होते हैं, इसलिए इन दोनों मार्गणाश्रोंमें सात कमौंके चारों पद होते हैं। लोभकषाय सूक्ष्यसाम्पराय गुणस्थान तक होता है, इसलिए इसमें मोहनीयकर्मके चारों पद सम्भव हैं, शेष छह कमौंके नहीं क्योंकि इस मार्गणामें शेष छह कमौंके मुजगार, श्रव्पतर श्रीर श्रवस्थित पद ही होते हैं। इसलिए इसमें मोहनीयका भक्ष

सामित्तागुगमो

२७३. सामित्तागुगमेण दुविहो णिद्देसो—श्रोघेण श्रादेसेण य । तत्य श्रोघेण सत्तरणं क० भुज० अप्पद० [अविह०] कस्स १ अण्णदरस्स । अवत्तव्ववंधो कस्स १ अण्णदरस्स । अवत्तव्ववंधो कस्स १ अण्णदरस्स ज्वसमणादो परिवदमाणगस्स मणुसस्स वा मणुसिणीण वा पढमसमय-देवस्स वा । एवं श्रोघभंगो मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवि० कायजोगि-श्रोरालियका०-अवगद०-आभि० सुद०-श्रोधि०-मणपज्ज०-संजद०-चव्ख०-श्राधिदं०-सुक्कले०-भविस०-सम्मादि०-खइग०-ज्वसंमस०-सिण्ण-आहारग ति । णविर मणुस०३-पंचमण०-पंचवि०-श्रोरालियका०-श्रवगद०-मणपज्ज०-संजदा० सत्तरणं क० अवत्तव्व० कस्स १ अण्णदरस्स ज्वसमणादो परिवदमाणस्स । एदेसिं सव्वेसिं श्रायु० अवत्तव्ववंधो कस्स १ अण्णदरस्स पढमसमण् श्रायुवंधमाणस्स । तेण परं अण्यदर्वंधो ।

२७४, वेडिवयमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-ऋणाहार० सत्तरणं क० भुज० अपि० अविहे० कस्स ? ऋएणद्रस्स । एवं सुहुमसं० छएणं कम्माणं । सेसाणं-

श्रोघके समान कहा है शेपका नहीं। इनके सिवा यहाँ श्रन्य जितनी मार्गणाश्रोंका निर्देश किया है उनमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति या उपशम श्रेणिके उपशान्त मोह गुणस्थानकी प्राप्ति होकर पुनः पतन सम्भव नहीं है, इसलिए उनमें सात कर्मोंके अवक्रव्य पदका विधान नहीं किया। शेप कथन सुगम है।

स्वामित्वानुगम

२७३. स्वामित्वानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—क्रोघ क्रीर क्रादेश। उनमेंसे ओघकी क्रपेचा सात कमेंके भुजगारवन्ध, अल्पतरवन्ध क्रीर क्रवस्थितवन्धका स्वामी कौन है ? क्रान्यतर जीव इनका स्वामी है। क्रवक्रव्यवन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनो उपशमश्रेणिसे गिर रहा है या उपशमश्रेणिमें मरकर प्रथम समयवर्ती देव हुक्रा है वह क्रवक्रव्यवन्धका स्वामी है। इस प्रकार क्रोघके समान मनुष्यित्रक, पञ्चेन्द्रिय-द्विक, त्रसद्विक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, क्रयगतवेदी, क्राभिनवोधिकक्षानी, श्रवक्षानी, क्रवधिक्षानी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, चक्षुदर्शनी, क्रवक्षुदर्शनी, क्रवधिदर्शनी, श्रवक्षतेविक्षयावाले, भव्य, सम्यग्दिष्ट, चायिकसम्यग्दिष्ट, उपशमस्यग्दिष्ट, संबी क्रोर क्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यित्रक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, क्रोदारिककाययोगी, क्रयगतवेदी, मनःपर्यक्षानी क्रोर संयत जीवोंमें सात कंमोंके क्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है ? क्रन्यतर जो उपशमश्रेणिसे पतित हो रहा है वह सात कर्मोंके क्रवक्तव्यवन्धका स्वामी है। इन सब मार्गणाश्रोमें क्रायुक्रमेंक क्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है ? क्रव्यतर जो प्रथम समयमें क्रायुक्रमेंका वन्ध कर रहा है वह क्रवक्रव्य वन्धका स्वामी है। इससे क्रागे क्रव्यत्वन्ध होता है।

२७४. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारवन्ध, श्रहपतरबन्ध श्रीर श्रवस्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर उक्त मार्गणावाला जीव स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छुह कर्मोंके भुजगार, श्रहपतर श्रीर श्रवस्थितबन्धोंका स्वामित्व जान लेना चाहिए। शेष सब

सन्वेसिं सत्तरणं कम्माणं भुज० अप्पद्० अविदिदि० कस्स १ अएणदरस्स । आयु० मृलोघं । एवरि लोभे मोह० ओघं ।

कालागुगमो

२७५. कालाणुगमेण दुविधो णिह सो—ग्रोघेण ग्रादेसेण य ।तत्थ श्रोघेण सत्तरणं क॰ भुज॰ केवचिरं कालादो होंति ? जह॰ एगस॰, उक्क॰चत्तारि सम॰। श्रपद॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ तिरिण सम॰। श्रविदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ श्रंतो॰। श्रवत्त जहरणु० एगस०। श्रापुं० श्रवत्त जहरणु० एगस०। श्रपद॰ जह॰ उक्क॰ श्रंतो॰। एवं श्रोघभंगो तिरिक्खोघं तस-तसपज्जत्ता०। एवरि तिरिक्खोघं श्रवत्तव्वं एत्थि।

मार्गणाश्रोंमें सात कर्मोंके भुजगार, श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर तत्तत्मार्गणावाला जीव स्वामी है। श्रायुकर्मका भङ्ग मृलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभकपायमें मोहनीय कर्मका भङ्ग श्रोघके समान है।

विशेपार्थ—यहाँ त्राठों कर्मोंके भुजगारिस्थितिबन्ध ग्रादिमेंसे किसका ग्रोध ग्रीर ग्रादेश से कीन स्वामी है इस बातका विचार किया गया है। ग्रोधसे इनके स्वामित्वका विचार सुगम है ग्रीर जिन मार्गणाग्रोंमें ग्रोधप्ररूपणा ग्रविकल घटित हो जाती है उनका विचार भी सुगम है। मात्र जिन मार्गणाग्रोंमें उपरामश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव नहीं वहां सात कर्मोंका श्रवक्षव्यवन्ध नहीं होता श्रीर जिन मार्गणाश्रोंमें श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता उनमें ग्रायुकर्मकी श्रपेक्षा भक्ष नहीं प्राप्त होते इतना विशेष जानना चाहिए।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुत्रा।

कालानुगम

२७४. कालानुगमकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—ओघ श्रौर श्रादेश। उनमेंसे श्रोघकी श्रपेत्ता सात कर्मोंके भुजगारवन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रव्पतरवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल तीन समय है। श्रवस्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्त- मुंहूर्त है। श्रवक्षव्यवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रायुकर्मके श्रवक्तव्यवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रायुकर्मके श्रवक्तव्यवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रव्यवक्षित्र जीर उत्कृष्ट काल थन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यञ्चांके सात कर्मोंका श्रवक्रव्यवन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ—यहां भुजगार आदि वन्धोंका जधन्य और उत्कृष्ट काल कितना है यह वतलाया गया है। भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका जधन्य काल एक समय है यह स्पष्ट ही है। मात्र इनके उत्कृष्ट कालका विचार करना है। ओधसे भुजगारबन्ध और अल्पतरवन्धका उत्कृष्ट काल दो पर्यायोंकी अपेला उपलब्ध होता है। जो एकेन्द्रिय आदि द्वीन्द्रिय आदिमें और पञ्चेन्द्रिय आदि चतुरिन्द्रिय आदिमें मरकर जन्म लेते हैं उनके कमसे भुजगारवन्धका उत्कृष्ट काल चार समय और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय उपलब्ध होता है। अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। कारण कि भुजगार या अल्पतर वन्ध होनेके बाद अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक समान स्थितबन्ध

२७६. णिरएस सत्तरणं क० भुज०-अपद०वं० जह० एग०, उक० वे सम०। अविद० ओघं। आयु० ओघो चेव। एवं सन्विण्रिय-सन्विम्सुस-सन्वदेव-सन्वए-इंदिय-सन्विवगितिदय-पंचकाय०-पंचमण०-पंचविच०-ओरालियिम०-वेडिन्वयका०-वेडिन्वयिम०-आहार०-आहारिक-विभंग०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परि-हार०-संजदासंजद०-सासण ति। एवरि आयु० जोगेसु अप्पद० जह० एग०। आभि०-सुद०-ओधि०--ओधिदं०-तेड०-पम्मले०--सुक्तले०-सम्मादि०-त्वइग०-वेदग०- उवसमस०-सिएण ति एवं चेव। एवरि भुज० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम०। एदेसिं सन्वेसिं सत्तरणं क० एसिं अवत्तन्ववं० यिन्ह अत्थि तेसिं ओघं कादन्वं।

होता रहता है। उपशान्तमोहसे सूक्तमसाम्परायमें श्रानेपर मोहनीय श्रौर श्रायुके विना छ्रह कर्मोंका तथा स्हमसाम्परायसे श्रिनवृत्तिकरणमें श्रानेपर मोहनीयका श्रथवा उपशान्त मोहमें मरकर देव होनेपर प्रथम समयमें श्रायुके विना सात कर्मोंका श्रवह्रव्यवन्ध होता है। इसीसे अवह्रव्यवन्धका जधन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है। यहां श्रन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें चारों पदोंका श्रोधके समान काल उपलब्ध हो जाता है इसिलए उनके कथनको श्रोधके समान कहा है। मात्र सामान्य तिर्यञ्चोंके उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे इनमें श्रवह्रव्य पदका निपेध किया है। श्रायुकर्मका मात्र त्रिभागमें या मरणके श्रन्तर्मुहर्त काल पूर्व श्रन्तर्मुहर्त कालतक बन्ध होता है। श्रीर वह बन्ध नियमसे प्रथम समयमें श्रवह्रव्य श्रीर इसके वाद श्रन्यतर ही होता है। यही कारण है कि इसमें श्रवह्रव्य श्रीर श्रन्यर्मे देवे पद कहकर इनका क्रमसे एक समय श्रीर श्रन्तर्मुहर्त काल कहा है।

२७६, नारिकयों में सात कमोंके भुजगार श्रौर श्रव्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रवस्थितवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रायुकर्मका भङ्ग श्रोघके ही समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सब मनुष्य, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पांचों स्थावरकाय, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्षियिककाययोगी, विक्षित्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्रिहारकिश्रकाययोगी, विभङ्गकानी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्रुद्धिसंयत, संयतासंयत श्रौर सासादनसम्यग्दि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि योगोंमें श्रायुकर्मके श्रव्यतरबन्धका जघन्य काल एक समय है। श्राभिनिवोधिकहानी, श्रवहानी, श्रवधिहानी, श्रवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, श्रुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दि, जायिकसम्यग्दि, वेदकसम्यग्दि, उपश्रमसम्यग्दि और संज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें भुजगारवन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल तीन समय है। तथा इन सब सामान्य नारकी श्रादि पूर्वोक्त मार्गणाश्रोंमें जिन मार्गणाश्रोंमें श्रवक्तव्यवन्ध है वहां उसका काल ओघके समान कहना चाहिए।

विशेषार्थ—एक पर्यायमें भुजगार श्रीर श्रत्पतरबन्ध लगातार श्रधिकसे श्रधिक दो समयतक होता है, इसिलए सामान्य नारिकयोंमें या जो मार्गणाएँ एक पर्यायतक सीमित हैं या एक पर्यायके भीतर बदलती रहती हैं उनमें भुजगार श्रीर श्रत्पतरबन्धका उत्रुप्ट काल दो समय कहा है। तथा श्राभिनिवोधिक हानो श्रादि मार्गणाएँ एक पर्यायतक ही सीमित नहीं हैं। पर्यायके बदलनेपर भी वे बनी रहती हैं, इसिलए इनमें भुजगार बन्धका

२७७. पंचिंदियतिरिक्लेसु सत्तरणं कम्माणं भुज०-श्रप्प० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम० । श्रविद्द० श्रायुगं मूलोघं । एवं पंचिंदियतिरिक्लपज्ज०-जोिरणणीसु पंचिंदियतिरिक्लश्रप० पंचिंदि० तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता० श्रोरालियमि०-इत्थि०- पुरिस०-श्रसिर्ण०-श्राहारग ति । एविर पंचिंदि० तस्सेव पज्ज० श्रवत्त० श्रोघं ।

२७८. कायजोगि-एवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद्०-असंज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-किएएा०-एोलि०-काड०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि० सत्तरणं क० भुज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । अप्पद० जह० एग०, उक्क० तिरिए सम० । अविद्वि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आयु० ओघं। एवरि सत्तरणं क० यिन्ह अवत्त० अत्थि तिम्ह ओघं।

२७६. कम्मइ०-अणाहा० सत्तारणं क० भुज०-अप्प० जहराणुक्क० एग०। अव-हि० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम०।

२८०. अवगद० सत्तारां क० भुज०-अपा०-अवत्तव्व० जहराणु० एग० । अविह०

उत्कृष्ट काल तीन समय उपलब्ध होनेसे वह तीन समय कहा है। साधारणतः श्रायु कर्मके श्रल्पतरवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त कह श्राये हैं पर किसी भी योगमें योग-परिवर्तनकी श्रपेत्ता या श्रन्य प्रकारसे उसका जघन्य काल एक समय घटित हो जाता है, इसलिए योगोंमें श्रायुकर्मके श्रल्पतरवन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है;

२००. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमं सात कर्मोंके मुजगार श्रीर श्रत्यतर वन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल तीन समय है। श्रवस्थित वन्धका श्रीर श्रायुकर्मका भक्त मूलोधके समान है। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च श्रपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय श्रीर उन्हींके पर्याप्त श्रपर्याप्त, श्रीदारिक मिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, श्रसंक्षी श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय श्रीर उनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके श्रवक्तव्य वन्धका काल श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और अन्य मार्गणाओं में भुजगार और अल्पतर-बन्धका उत्क्रप्ट काल तीन समय दो पर्यायोंकी अपेद्धा कहा है। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार आगे भी यथासम्भव कालका विचार कर लेना चाहिए।

२७८. काययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यकानी, श्रुताकानी, श्रसंयत, चलुदर्शनी, श्रचलुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, श्रमव्य श्रौर मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार बन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रव्यतर बन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल तीन समय है। श्रवस्थित बन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रायुकर्मका भङ्ग श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंका जिन मार्गणाओं अवकृत्य बन्ध है उनमें उसका काल श्रोधके समान है।

२७२. कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मीके भुजगार और अल्पतर वन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित वन्धका जघन्य काल एक समय अौर उत्कृष्ट काल तीन समय है।

२८०. श्रपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, श्रत्पतर श्रीर श्रवक्रव्य बन्धका

श्रोघं । सुहुमसं० छएएां क० भुज०-श्रप्प० जहएणु० एग० । श्रविह० श्रोघं । सम्मामि० सत्तरएां क० भुज०-श्रप्प० जह० एग०, उक्क० वे सम० । श्रविह० श्रोघं । श्रथवा श्राभि०-सुद०-श्रोधि०-सम्मादि०-खइगस०-सिएए-तिरिए ले० भुज० जह० एग०, उक्क० सत्थाएं दो लभिद । कालगदे एकं लभिद ।

एवं कालो समत्तो ।

अंतराग्रुगमो

२८१. श्रंतरं दुवि०—श्रोघे॰ श्रादे॰। श्रोघे॰ सत्तरणं कम्माणं भ्रज॰-श्रणद॰-श्रविद्यांतरं केविचरं ? जह० एग०, उक्क० श्रंतो॰। श्रवत्त॰वंध० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रद्धपोग्गल॰। श्रायु० श्रवत्त०-श्रप्प॰ जह० श्रंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं सा० सादि॰। एवं श्रोधभंगो श्रवक्खु०-भवसि॰।

जधन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रवस्थितवन्यका काल श्रोधके समान है। सूक्ष्म-साम्परायसंयत जीवोंमें छुद्द कमोंके भुजगार श्रौर श्रव्पतर बन्धका जधन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रवस्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें भुजगार श्रौर श्रव्पतरवन्धका जधन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रवस्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रथवा श्रामिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधि-ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी श्रौर तीन छेश्याश्रोंमें भुजगारवन्धका जधन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल स्वस्थानमें दो समय श्रौर मरनेपर एक समय उपलब्ध होता है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

अन्तरानुगम

२८१. अन्तर दो प्रकारका है—ग्रोघ और ग्रादेश। ग्रोघकी अपेचा सात कमींके भुज-गार, श्रहपतर और श्रवस्थित बन्धका अन्तर कितना है ? जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त है। श्रवक्तव्यवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम ग्रद्धपुद्गल परिवर्तनकाल है। श्रायुकर्मके श्रवक्रव्य और अल्पतर वन्धका जधन्य अन्तरअन्तर्भुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार श्रोघके समान श्रवश्चदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—भुजगार अल्पतर और अवस्थित वन्धों के परस्पर एक दूसरेसे एक समयके लिए व्यवहित होनेपर इनका जघन्य अन्तर एक समय उपलब्ध होता है। तथा अवस्थित वन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे भुजगार और अल्पतर वन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। जो जीव उपशमश्रेणीपर आरोहण करके अन्तर्मुहूर्त काल तक सात कर्मोंका वन्ध नहीं करता है उसके अवस्थित वन्धका अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है। एकवार उपशमश्रेणीपर आरोहण करने बाद उतरकर पुनः उपशम श्रेणीपर आरोहण करके उपशान्तमोह होनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और अधिकसे अधिक कुछ कम अर्द्धपुद्रल परिवर्तन काल लगता है। इसोलिए सात कर्मोंके अवक्षव्यवन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्द्धपुद्रलपरिवर्तन प्रमाण कहा है। एकवार आयुका बन्ध होनेके वाद पुनः दूसरी वार आयुके वन्ध होनेमें

२८२. त्रादेसेण ऐरइएस सत्ताएं क॰ सुज॰-अप० जह० एग०, उक० अंतो०। त्रविष्ठि॰ जह० एग०, उक्क० वे सम०। त्रायु० अवत्त०-अपद० जह० अंतो०, उक्कस्सेण छम्मासं देसूणं। एवं सन्विणिरय-सन्वदेव-वेउन्वियमि०-विभंग०।

र=३. तिरिक्लेसु सत्तराणं क० भुज०-अप्प० ओवं। अविष्ठ० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। आयु० अवत्त०-अप्पद० जह० अंतो०, उक्क० तिरिण पिलदो० सादिरे०। एवं राखुंस०-मदि०-सुद०-असंज०-किरण्ण०-णील०-काउ०-अव्भवसि०-मिच्छादि०। एवरि आयु० किरण्ण०-णील०-काउले० णिरयभंगो। सेसाणं मूलोवं।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल लगता है। इसीसे आयुक्मके अवक्षव्य और अल्पतरवन्धका जधन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। अचक्षुदर्शन और भन्य जीवोंमें यह व्यवस्था अविकल घटित हो जाती है इसलिए इनमें उक्ष पदोंका अन्तरकाल ओधके समान कहा है।

२८२. ग्रादेशसे नारिकयों से सात कर्मों के भुजगार श्रीर श्रव्यतरवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है। श्रवस्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। श्रायुकर्मके श्रवक्तव्य श्रीर श्रवस्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर अन्तर्मुहुर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सव नारकी, सव देव, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी श्रीर विभक्षकानी जीवोंके जानना चाहिए।

२८३. तिर्यञ्चीमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरवन्धका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयु-कर्मके अवक्षव्य और अल्पतरवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य है। इसी प्रकार नपुं सकवेदी, मत्यक्षानी, अताक्षानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य और मिथ्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें आयुकर्मके पदोंका अन्तर सामान्य नारिकरोंके समान है। तथा शेष मार्गणाओंमें आयुकर्मके पदोंका अन्तर मलोधके समान है।

विशेषार्थ— छण्ण, नील और कापोत लेश्याएँ नरकमें सतत वनी रहती हैं। अन्यत्र इनका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है, इसिलए आयुकर्मकी अपेचा दोनों पदोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छह महीना जैसा कि नारिकयोंके कह आये हैं उसी प्रकार इन लेश्याओंमें प्राप्त होनेसे इनका अन्तरकाल सामान्य नारिकयोंके समान कहा है। तथा ओघसे आयुकर्मके दो पदोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक ततीस सागर जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहां कही गई नपुंसकवेदी, मत्यक्षानी, अताक्षानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादिष्ट मार्गणाओंमें भी जान लेना चाहिए, क्योंकि नारिकयोंकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण होनेसे जिसने पूर्वभवमें पूर्वकोटिके त्रिभागमें आयुवन्ध करके पुनः नरकगितमें छह महीना कालके शेप रहनेपर आयुवन्ध किया है उसके आयुकर्मके दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है। इन मार्गणाओंमें इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है। शेप कथन सुगम है।

२८४. पंचिदियतिरिक्लेसु सत्तारणं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अविड० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम० । आयु० तिरिक्लोघं । एवं पंचि-दियतिरिक्लजोणिणी-पंचिदियतिरिक्लअप०-इत्थि०-पुरिस०-असरिण ति । एदेसिं आयु० विसेसो । पंचिदियतिरिक्ल अप० जहण्यु० अंतो०। इत्थि०-पुरिस०-असिएण० जह० अंतो०, उक्क० पणवएणं पलिदो०सादि०तेत्तीसं सा०सादि० पुन्वकोडी सादिरे०।

२८५. मणुस० सत्तरणं क० भुज०-अप्पद०-अविह० मूलोघं । अवत्त० जह० अंतो०, उक० पुन्वकोडिपुधत्तं । आयु० तिरिक्लोघं । मणुसअप० पंचिदियतिरिक्ल-अपज्जत्तभंगो । एवरि अविह० उक्क० वे० सम० ।

२८६. सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं त्रायु० मोत्तूण णिरयभंगो। सव्व-

२८४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके भुलगार और अल्पतरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। आयुकर्मके पदोंका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अप्याप्त, स्त्रोवेदी, पुरुषवेदी और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए किन्तु इनके आयुकर्मके पदोंके अन्तरमें विशेषता है। यथा—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक जीवोंमें आयुकर्मके पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर मुहूर्त है। तथा स्त्रीवेदी पुरुषवेदी और असंज्ञी जीवोंमें आयुकर्मके पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर्म द्वित और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक पचपन पल्य, साधिक तेतीस सागर और साधिक एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—यहाँ स्त्रीवेदी, पुंरुपवेदी श्रीर श्रसंधी जीवोंकी भवस्थितिको जानकर श्रायुकर्मके दोनों पदोंका उससे साधिक उत्कृष्ट श्रन्तरकाल कहा है। शेष कथन सुगम है।

२८४. मनुष्यित्रकमें सात कर्मोंके भुजगार, ग्रह्पतर ग्रीर ग्रवस्थित बन्धका अन्तर मूलोघके समान है। ग्रवक्षव्य बन्धका जधन्य अन्तर ज्ञन्तर्भुहर्त ग्रीर उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव है। ग्रायुकर्मके पदोंका अन्तर सामान्य तिर्थञ्जोंके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्थञ्च अपर्याप्तकोंके समान भक्ष है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित बन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

विशेषार्थ—मनुष्यित्रकमें सात कमें के अवक्षव्य बन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्तव कहनेका कारण इनकी अपनी अपनी कायस्थिति है। क्योंकि जिसने अपनी अपनी कायस्थिति है। क्योंकि जिसने अपनी अपनी कायस्थिति के प्रारम्भमें आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तका होने पर और अन्तर्में अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर उपशमश्रेणि पर आरोहण कर उतरते समय सात कमींका अवक्षव्य वन्ध किया है उसके इस पदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्षप्रमाण प्राप्त होता है। तथा मनुष्य अपर्याप्तमें भुजगार और अल्पतर बन्धका उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इसमें अवस्थित बन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार आगे भी यथा-सम्भव भुजगार आदि पदोंका काल और उस उस मार्गणाकी कायस्थित आदि जानकर अन्तरकाल छे आना चाहिए।

२८६. सव एकेन्द्रिय, सव विकलेन्द्रिय, पाँच स्थावरकाय जीवोंमें श्रायुकर्मको छोड़-कर शेष कर्मोंके पदौंका श्रन्तर नारिकयोंके समान है। सव स्क्ष्म श्रीर सव श्रपर्याप्तक मुहुम-सन्वत्रपञ्जत्ताणं च त्रायु० पंचिदियतिरिक्ख'त्रपञ्जत्तभंगो । सेसाणं त्रायु० त्रवत्त०-त्रप्प० जह० त्रंतो०, उक्क० वावीसं वस्ससहस्साणि सादि० वारसवस्साणि एगु-णवण्णरादिंदियाणि बम्मासं सादि० वावीसं वस्ससह० [सत्त वस्ससह०] तिण्णि रादिं-दियाणि • तिण्णिवस्ससह० दसवस्ससह० सादि०। सन्वणियोद० जहण्णुक्क० त्रंतो०।

२८७. पंचिदिय-तस० तेसि पज्जत्ता० सत्तराणं क० भुज०-अप्पद०-अविह० ओघं। अवत्तव्व० जह० अंतो०, उक्क० कायिद्वि । आयु० ओघं। एवं चक्खु०-सिर्णि ति। आहारगा० एवं चेव। णविर सत्तराणं क० अवत्तव्व० उक्क० अंगुलस्स असंखेज्जिदिभागो असंखे० ओसिपिणिडस्सिपिणीओ। पंचिदियअपज्जत्ता० पंचि-दियतिरिक्तअपज्जत्तभंगो। तसअपज्जत्तगे सत्तराणं कम्माणं भुज० अप्पद् ० जह० एगस०, उक्क० अंतो०। अविदि० जह० ए०, उक्क० चत्तारि समयं। आयु० पंचिदियअपज्जत्तभंगो।

२८८. पंचमण०-पंचवचि०-वेजिवयका०-आहारका०-आहारिम० सत्तर्णं क० भुज०-अप्प०-अविद्वि० देवोघं । आयु० अप्प०-अवत्त० सिथ अंतरं । स्विर्वर पंच-मण०-पंचवचि० अद्वर्णं क० अवत्त० सिथ अंतरं। कायजोगी० सत्तरसंक० भुज०-

जीवोंमें श्रायुक्तमंके पदोंका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान हैं। शेप मार्ग-णाओंमें श्रायुक्तमंके श्रवक्षव्य श्रीर श्रहपतर पदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर क्रमसे साधिक वाईस हजार वर्ष, साधिक वारह वर्ष, साधिक उनचास दिन-रात, साधिक छह महीना, साधिक वाईस हजार वर्ष, साधिक सात हजार वर्ष, साधिक तीन दिन-रात, साधिक तीन हजार वर्ष श्रीर साधिक दश हजार वर्ष है। सब निगोद जीवोंमें श्रायुक्तमंके सब पदोंका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है।

२८७. पञ्चेन्द्रिय श्रीर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस श्रीर त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मों के भुजगार, श्रव्पतर श्रीर श्रवस्थित वन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रवक्षव्य वन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तर्भुंहर्त और उत्कृष्ट श्रन्तर अपनी श्रपनी कायस्थित प्रमाण है। श्रायुकर्मका श्रन्तर ओधके समान है। इसी प्रकार चजुदर्शनी श्रीर संबी जीवोंके जानना चाहिए। श्राहारक जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके श्रवक्षव्य वन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। जो श्रसंख्यातासंख्यात उत्सिपणी श्रीर श्रवसिपणी कालके वरावर है। पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवोंमें श्राठों कर्मोंके सम्भव पदोंका श्रन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है। त्रस श्रपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रीर श्रव्यतर वन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्भुंहर्त है। श्रवस्थित वन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। श्रायुकर्मके पदोंका श्रन्तर पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके समान है।

२८८. पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित वन्धका श्रन्तर सामान्य देवोंके समान है। श्रायुकर्मके श्रत्यतर श्रीर श्रवक्रव्य पदका श्रन्तर नहीं है। इतनी विशेषता है कि पाँचों मनोयोगी श्रीर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें श्राठों कर्मोंके श्रवक्तव्य पदका श्रन्तर नहीं है। काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित

१. मूलप्रतौ—तिरिक्खपल्जत्तभंगो इति पाठः । २. मूलप्रतौ श्रप्पद्० जह० श्रप् ० जह० एगस० इति पाठः ।

अप्प०-अविहि॰ मूलोघं । अवत्त० एत्थि अंतरं । आयु॰ अप्पद०-अवत्त० जह॰ अंतो॰, उक्क॰ वानीसं वस्ससहस्साणि सादि॰ । ओरालि॰ सत्तएएं क॰ मण्०-भंगो । आयु॰ अप्पद॰-अवत्त॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ सत्तवस्ससहस्साणि सादिरे॰ । ओरालियिम॰ सत्तएएं कम्माएं भुज०-अप्पद० ओघं। अविहि॰ जह० एग॰, उक्क॰ तििएए सम॰ । आयु॰ अप॰भंगो । वेजिन्वयिम॰-सम्मामि॰ सत्तएएं क॰ एगि॰मंगो । कम्मइ०-अणाहा० सत्तएएं क॰ भुज०-अप्पद० एत्थि अंतरं । अविहि॰ जहएणु॰ एग॰।

२८६. अवगद० सत्तरणां क० भुज०-अप्प० जहराणु० श्रंतो०। अविह० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। अवत्त० सात्थि श्रंतरं।

२६०. कोधादि०४ सत्तरणं क० भुज०-श्रप्प० श्रोघं । श्रविष्ठ० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । श्रायु० मणजोगिभंगो । णवरि लोभे मोह० श्रवत्त० एत्थि श्रंतरं ।

पदोंका अन्तर मूलोघके समान है। अवक्तन्य पदका अन्तर नहीं है। आयुकर्मके अल्पतर और अवक्रन्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। औदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके पदोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है। आयुकर्मके अल्पतर और अवक्रन्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। औदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका अन्तर श्रोघके समान है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। आयुकर्मका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। वैकिथिकिमश्रकाययोगी और सम्यग्मिथ्याद्दि जीवोंमें सात कर्मोंके सम्भव पदोंका अन्तर नारिकयोंके समान है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका अन्तर नहीं है। अवस्थित पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

२८९. श्रपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रीर श्रल्पतर बन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्व है। श्रवस्थितवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्भुहुर्त है। श्रवह्रव्य बन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ — अपगतवेदमें अवस्थितवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त होने से यहां भुजगार और अल्पतरवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। किन्तु यहां भुजगार और अल्पतरवन्धका काल एक समय होने से अवस्थित वन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। तथा मोहनीयके बन्धकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तमोह से अन्तरित होकर और आयुके विना शेष छह कर्मों की अपेक्षा उपशान्तमोह से अन्तरित होकर अपगतवेदमें सात कर्मों का अवस्थितवन्ध भी होता है, इसलिए यहां सात कर्मों के अवस्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मु हुर्त कहा है। इन कर्मों का अवकृत्य वन्ध उपशामश्रेणिसे उतरते समय एक बार होता है, इसलिये यहां अवकृत्य बन्धके अन्तरका निषेध किया है।

२९०. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रौर श्रह्णतरवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रवस्थित पदका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। श्रायुकर्मका भङ्ग मनोयोगियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभक- वायमें मोहनीय कर्मके श्रवक्रव्यवन्धका श्रन्तर काल नहीं है।

२६१. आभि०-सुद्०-ओघि० सत्तरणं क० मुज०-अपद्०-अविह० ओघं। अवत्तव्व० जह० अंतो०, उक्क० छाविहसागरो० सादिरे०। आयु० ओघं। एवं ओधिदं-सम्माद्दि०-खइग०। एवरि खइग० अवत्त० उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे०। मण्याच्च० सत्तरणं कम्मा० भुज०-अप्य०-अविह० ओघं। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देसूणा। आयु० अवत्त०-अप्यद० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडितिभागं देसू०। एवं संजदा०। एवं चेव सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदा संजद०। एवरिस सत्तरणं क० अविह० वेसम०। अवत्त० एतिथ।

२६२. सुहुमसं० छएएां कम्माणं जहएणु० भुज-ऋपा० अंतो०। अविह० जहएणु'० एगस०।

२६३. तेउ॰-पम्म॰ सत्तरागं क॰ भुज॰-श्रप्पद० श्रोघं। श्रवहि॰ जह० एग०, उक्क॰ तिरिए सम०। श्रायु॰ देवोघं। एवं वेदगे। एवरि श्रायु॰ श्रोधिभंगो।

विशेपार्थ—यद्यपि लोभकषायमें मोहनीय कर्मका श्रवक्रव्य वन्ध होता है पर श्रन्तर काल उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि श्रन्तरकाल प्राप्त करनेके लिए दो वार उपशमश्रेणि पर श्रारोहण कराना पड़ता है पर प्रत्येक कषायका इतना वड़ा काल नहीं है। इसीसे यहाँ लोभ-कपायमें मोहनीयके श्रवक्रव्यवन्धके श्रन्तरका निपेध किया है। श्रेप कथन सुगम है।

२९१. श्रामिनिवोधिकहानो, श्रुतहानी श्रौर श्रवधिहानी जीवोंमें सात कर्मीके भुजगार, श्रुट्यतर श्रौर श्रवस्थितवन्यका ग्रन्तर श्रोधके समान है। श्रवहान्यवन्धका जघन्य
अन्तर श्रन्तर्मुहूर्त श्रौर उत्हृप्ट श्रन्तर साधिक छत्यासठ सागर है। श्रायुकर्मका भङ्ग श्रोधके
समान है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि श्रोर चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना
चाहिए। इतनी विशेषता है कि चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें श्रवहान्य वन्धका उत्हृप्ट श्रन्तर
साधिक तेतीस सागर है। मनःपर्ययहानी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, श्रुट्यतर श्रौर
श्रवस्थित वन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रवहान्य वन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त
श्रौर उत्हृप्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रायुकर्मके श्रवहान्य श्रौर श्रट्यतर एदका
जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त श्रौर उत्हृप्ट श्रन्तर कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण है। इसी
प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामायिकसंयत, होदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत सौर संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है
कि इनमें सात कर्मोंके श्रवस्थितवन्धका उत्ह्राप्ट अन्तर दो समय है। तथा इनके श्रवहान्यवन्ध नहीं है।

२९२. स्त्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें छह कमोंके भुजगार श्रीर श्रत्पतरवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर एक समय है।

२६३. पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कमोंके भुजगार और ग्रल्पतर-वन्धका ग्रन्तर ग्रोघके समान है। ग्रवस्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। ग्रायुकर्मका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इसी प्रकार वेदक-सम्यग्हिए जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके ग्रायुकर्मका भङ्ग ग्रविध-

१. मूलप्रतौ श्रवद्वि० जह ० एगस० इति पाठः ।

सुक्कले॰ सत्तरणं क॰ भुज॰-अपद॰-अवट्टि॰ ओघं। अवत्तव्व॰ सिंथ अंतरं। आयु॰ देवोघं।

२६४. उवसमस० सत्तरणं क० भुज०-अप्पद०-अवद्दि० श्रोघं । अवत्त० णत्थि अंतरं । सासणे सत्तरणं क० णिरयभंगो । आयु० दो वि पदा णत्थि अंतरं । एवं अंतरं समत्तं ।

णाणाजीवेहि भंगविचयागुगमो

२६५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणु॰ दुवि०—श्रोघे० श्रादे॰।श्रोघे० सत्तरणं क॰ भुज॰-श्रप्पद०-श्रविद्विधगा णियमा श्रत्थि। सिया एदे य श्रवत्तव्ववंधगो य, सिया एदे य श्रवत्तव्ववंधगा य। श्रायु० श्रवत्त॰ श्रप्पदरवंधगा य णियमा श्रत्थि। एवं श्रोघभंगो कायजोगि-श्रोरालियका०-श्रचक्खुदं०-भवसि०-श्राहारग ति।

२६६, त्रादेसेण णेरइएस सत्तरणं क० त्रवद्घि०बंघ० णियमा त्रत्थि । सेसपदाणि भयणिज्ञाणि ।

हानियोंके समान है। शुक्कलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार ग्रह्पतर श्रीर ग्रंवस्थित वन्धका ग्रन्तर ग्रोधके समान है। ग्रवक्षव्यवन्धका ग्रन्तर नहीं है। ग्रायुकर्मका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

२९४. उपरामसम्यग्दि जीवोंमें सात कमींके भुजगार, श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित-वन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रवक्षव्य वन्धका श्रन्तर नहीं है। सासादनसम्यग्दिए जीवोंमें सात कमींके सव पदोंका श्रन्तर नारिकयोंके समान है। श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका श्रन्तर नहीं है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

नाना जीवोंकी अपेता भङ्गविचयानुगम

२९४. नानाजीवोंका अवलम्बन कर भङ्गविचयानुगमकी अपेला निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोध और आदेश। श्रोधसे सात कर्मोंका भुजगार अल्पतर और अवस्थित बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये हैं और अवक्षव्यबन्ध करनेवाला एक जीव है। कदाचित् ये हैं और अवक्षव्यबन्ध करनेवाला एक जीव है। कदाचित् ये हैं और अवक्षव्य वन्ध करनेवाले अनेक जीव हैं। आयुकर्मका अवक्षव्य और अल्पतर वन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। इस प्रकार श्रोधके समान काययोगी, औदारिक काययोगी, अच्छुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ नाना जीवोंकी अपेका भुजगारवन्ध आदिके भक्त लाये गये हैं। ओधसे सात कर्मोंका भुजगार, अल्पतर और अवस्थित वन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। यह एक ध्रुव भक्त है। तथा ये और कदाचित् अवक्रव्य बन्ध करनेवाला एक जीव है अथवा ये और कदाचित् अवक्रव्य भक्तवाले नाना जीव हैं। इस प्रकार ये दो अध्रुव भक्त हैं। कुल भक्त तीन होते हैं। आयुकर्मकी अपेका अवक्रव्य और अल्पतरबन्धवाले जीव नियमसे हैं यही एक ध्रुव भक्त होता है। यहां काययोगी आदि जो मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था अविकल घटित हो जाती है इसिलए उनका कथन ओधके समान कहा है।

भयणिज्ञपदा तिग्रणा अएणोएणगुणा हवेज्ञ कादव्वा । धुवरहिदा रूवूणा' धुवसहिदा तत्तिया चेव ॥ १॥

२६७. श्रायुगस्स दो वि पदा भयणिजा। एवं सव्वणिरयस्स सव्वपंचिदियतिरिक्त-सव्वदेव-सव्वविगत्तिदिय-पंचिदिय-तस०श्रप०—वादरपुढ०—श्राउ०—तेउ०—
वाउ०-वादरवणप्पदि०पत्तेय०पज्जत्त०-वेउव्वियका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-सामा०छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-तेउ०-पम्म०-वेदग ति ।

२६८. तिरिक्षेस सत्तरणं क० भुज०-श्रणद०-श्रवद्वि० श्रायु० श्रवत्त०-श्रण-दर० णियमा श्रत्थ । एवं तिरिक्षोधभंगो सन्वएइंदिय-पुढिव०-श्राड०-तेड०-वाड०-वाद्रपुढिवि०-श्राड०-तेड०-वाड० तेसिं चेव श्रप० तेसिं चेव सन्वसुहुम-सन्व-वर्णण्किद्-णियोद्-वाद्रवर्णण्क०पत्तेय० तस्सेव श्रप०श्रोरालियमि०-णवुंस०-कोधादि०४-मिद्०-सुद्०-श्रसंज०-किएण०-णील०-काड०-श्रवभवसि०-मिच्छादि०-श्रसिएण ति ।

भजनीय पदोंका ११ इस प्रकार विरतन करके तिगुना करे। पुनः उसी तिगुनी विरित्त राशिका परस्परमें गुणा करे। इस क्रियाके करनेसे जो तन्ध श्राता है उससे श्रधुव भङ्ग एक कम होते हैं श्रीर ध्रुव भङ्ग सहित श्रधुवभङ्ग उक्न संख्याप्रमाण होते हैं ॥१॥

२९७. श्रायुक्तमंके दोनों ही पद भजनीय हैं। इसीप्रकार सव नारकी, सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सव देव, सव विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय श्राप्याप्त, त्रस श्राप्याप्त, वादर पृथिवी-कायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, बादर श्रीनकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, वैक्तियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, विभक्षकाती, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्चिद्धसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले श्रीर वेदकसम्यग्दिए जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सात कर्मोंकी अपेचा अवस्थित वन्धवाले जीव नियमसे हैं। यह एक ध्रुव भङ्ग है और भुजगार व अल्पतर ये दो पद भजनीय हैं। अतएव पूर्वोक्त गाथामें कहे गये नियमके अनुसार इन दो का १,१ इस प्रकार विरत्नकर तथा इन्हें ३,३ इस प्रकार तिगुना कर इनका परस्परमें ३×३=९ इस प्रकार गुणा करनेपर कुल ९ भङ्ग होते हैं। इनमें से ८ अध्रुव भङ्ग और एक ध्रुव भङ्ग है। ये ९ भङ्ग ज्ञानावरण आदि एक एक कर्मकी अपेचासे होते हैं। आयुकर्म के दोनों पद भजनीय हैं, इसलिए इनके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेचा एक संयोगी और दिसंयोगी कुल भाठ भङ्ग होते हैं।

२६८. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका भुजनार, ग्रल्पतर और ग्रवस्थितका वन्ध करनेवाले जीव तथा ग्रायुकर्मके ग्रवक्तव्य ग्रीर ग्रल्पतरका वन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके समान सव एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, ग्रान्नकायिक, वायुकायिक, वाद्र पृथिवीकायिक, वाद्र जलकायिक, वाद्र ग्रान्नकायिक, वाद्र वायुकायिक, वाद्र पृथिवीकायिक, वाद्र जलकायिक, वाद्र ग्रान्नकायिक, वाद्र वायुकायिक ग्रीर इन सवके ग्रप्यांत, तथा इनके ही सव स्टूम, सव वनस्पतिकायिक, सब निगोद, वाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्रीर ग्रीर इनके ही ग्रपर्यात, ग्रीदारिकिमश्रकाय-योगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, ग्रसंयत, कृष्णलेश्या-वाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, ग्रमन्य, मिथ्यादिष्ठ ग्रीर ग्रसंकी जीवोंके जानना चाहिए।

१. मूलप्रतौ-रहिदा रूवेण धुव इति पाठः ।

२६६. मणुस०३ सत्त्राणं क० अवद्विद्वंधगा णियमा अत्थि । सेसपदा भय- 'णिज्जा । आयु० दो वि पदा भयणिज्जा । एवं पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुकले०-सम्मादि०- खइग०-सण्णि ति ।

३००. मग्रुसञ्चप० ञ्रहण्णं क० सन्वपदा भयणिज्जा। एवं वेखन्वियमि०-त्राहार०-त्राहारमि०-त्रवगद०-सुहुमसं०-खवसम०-सासण्-सम्मामि०।

३०१. कम्मइग०-त्र्रणाहार० सत्तराणं क० भ्रुज०-त्र्रप्प०-त्रविटि०णियमा त्रस्यि।

भागाभागागुगमो

३०२. भागाभागाणु० दुवि०—श्रोघे० श्रादे०। श्रोघे० सत्तरणं क० भ्रुज०-अप्पद०वंधगा सन्वजीवेहि केविडयो १ श्रसंखेज्जिदिभागो । श्रवद्घि० केव० १ श्रसं-खेज्जा भागा । श्रवत्तन्ववंधगा केविड० १ श्रणंतभागो । श्रायु० श्रवत्त०वंध०-केविड० १ श्रसंखेज्जिदिभागो । श्रप्पद०वंध० केविड० १ श्रसंखेज्जा भागा । एवं

२९९. मनुष्यत्रिकमें सात कमोंके अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। आयुक्मके दोनों ही पद भजनीय हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, आभिनिवोधिक ज्ञानी, अत्रज्ञानी, अवधिदर्शनी, अक्ललेश्या-वाले, सम्यग्दिष्ट, ज्ञायिकसम्यग्दिष्ट और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां सात कर्मोंकी श्रापेका ३ पद भजनीय होनेसे प्रत्येक कर्मका ध्रुव १ श्रीर श्राध्रुव २६ कुल २७ भङ्ग होते हैं। श्रायुकर्मके दोनों पद भजनीय होनेसे कुल ८ श्रध्रुव भङ्ग होते हैं।

रें २००. मनुष्य श्रपर्याप्त जीवोंमें श्राठों कर्मोंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारक काययोगी, श्राहारक मिश्रकाययोगी, श्रपगतवेदी, सूक्ष्म-साम्परायसंयत, उपश्रमसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिथ्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन मार्गणात्रोंमेंसे जिसमें सात कर्मीकी अपेचा जितने पद सम्भव हों उनके अनुसार अध्व भङ्ग ले आने चाहिए। नियमका निर्देश पहले ही कर आये हैं।

३०१. कार्मणुकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, श्रव्पतर श्रीर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं।

इस प्रकार नाना जीवोंकी श्रपेक्षा भङ्गविचय। तुगम समाप्त हुश्रा।

भागाभागानुगम

३०२, भागाभागानुगमकी अपेत्वा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। ओघकी अपेत्वा सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थित पदवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। अवक्रव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आयुकर्मके अवक्रव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण

आयु० याव अणाहारग ति णेदव्वं। असंखेजजीविगाणं अणंतजीविगाणं वा एदेसिं सत्त्रणं पि कम्माणं ओघे चेव। णविर ये असंखेजा जीवा तेसिं सत्तरणं कम्माणं अवत्त० भ्रजगारेण सह भाणिदव्वं।

३०३. त्रादेसेण रोरइएस सत्तरणं क० सुज०-त्रप्यद० सन्वजीवे० केवडि०' ? त्रसंखेज्जदिभागो । त्रविडि० केव० ? त्रसंखेज्जा भागा । एवं सन्वेसि असंखेज्जरासीणं त्रर्णंतरासीणं वि अवत्तन्ववंधवज्जाणं ।

३०४. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु श्रोघं। संखेज्जं काद्व्यं। श्रवगद् सत्त्रण्णं क० भ्रुज०-श्रप्पद्०-श्रवत्त्व्यं केवं० १ संखेज्जदिभा०। श्रविह्विव्यं केव० १ संखेज्जादिभागो। श्रविह्वित्यं क० भ्रुज०-श्रप्प० संखेज्जदिभागो। श्रविह्वि संखेज्जा भागा। सेसाणं सन्वाणं संखेज्जजीविगाणं सत्त्रणं क० भ्रुज०-श्रप्प० संखेज्जदिभागो। श्रपद० संखेज्जदिभागो। श्रपद० संखेज्जा भागा। येसि सत्त्रणं क० श्रवत्त० श्रित्य तेसि संखेजजीविगाणं मणुसिभंगो।

हैं। श्रन्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव सव जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं। श्रसंख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार श्रायुकर्मकी श्रपेक्षा श्रनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। श्रसंख्यात जीववाली श्रोर श्रनन्त जीववाली मार्गणाओं सं सात कर्मोंका कथन श्रोधके समान ही है। इतनी विशेषता है कि जिनमें श्रसंख्यात जीव हैं उनमें सात कर्मोंके श्रवक्रव्य पदका कथन भुजगारके साथ करना चाहिए।

३०३. त्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रौर श्रत्यतर पदका वन्ध करने वाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हैं । श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? श्रसंख्यात वहुभाग प्रमाण हैं । श्रव-क्षत्य वन्धके सिवा श्रौर पदोंका वन्ध करनेवाली श्रौर जितनी श्रसंख्यात श्रौर श्रनन्त राशियाँ हैं उन सवका भागाभाग इसी प्रकार जानना चाहिए।

३०४. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यित्यों से सव पदोंका भागाभाग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ संख्यात कहना चाहिए। अपगतवेदी जीवों से सात कमों के भुजगार अख्पतर और अवक्तव्य पदोंका वन्ध करनेवाले जीव सव जीवों के कितने भागप्रमाण हैं। संख्यात यहुभाग प्रमाण हैं। स्वमसाम्परायसंयत जीवों के कितने भागप्रमाण हैं। संख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। स्वमसाम्परायसंयत जीवों के इह कमों के भुजगार और अल्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। संख्यातवें भागप्रमाण हैं, अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। शेष संख्यात संख्यातली सव मार्गणाओं से सात कमों के भुजगार और अल्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। शेष संख्यात संख्यातलें भागप्रमाण हैं। अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात वहुभागप्रमाण हैं। अल्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात वहुभागप्रमाण हैं। अल्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। जिन मार्गणाओं से सात कर्मोका अवक्षव्य पद होता है उनमें संख्यात संख्यावाली राशियोंका भक्ष मनुष्यितयोंके समान है। इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

३. मृलप्रतौ केविं १ श्रसंखेरजा भागा । श्रविं इति पाठः । २. मूलप्रतौ केव० संखेरजा भा० । श्रविं इति पाठः । ३. मूलप्रतौ संखेजदिभागो श्रायु० इति पाठः ।

परिमाणागुगमो

३०५. परिमाणाणुगमेण दुवि॰—श्रोघे० श्रादे०। श्रोघे० सत्ताणं क० भुज०श्रप्प०-श्रविट० केत्तिया ? श्रणंता । श्रवत्त० केत्तिया ? संखेजा । श्रायु० श्रवत्त०[श्रप्पद०] श्रणंता । एवमोघभंगो तिरिक्लोघं सन्वएइंदिय-सन्ववणप्किद-िणयोदकायजोगि-श्रोरालियका०-श्रोरालियिम०-णवुं स०-कोधादि०४-मिद०-सुद०-श्रसंज०श्रवक्खु०-किएण०-णील०-काउ०-भवसि०-श्रव्भवसि०-मिच्छादि०-श्रसिएण०-श्राहारग ति । एवरि कायजोगि-श्रोरालियका०-श्रवक्खु०-भवसि०-श्राहारग ति एदेसिं
सत्तरणं क० श्रवत्तव्व० लोभे मोह० श्रवत्तव्ववंधगा च श्रिथ ।

३०६. त्रादेसेण णेरइएस सत्तरणं क० भुज०-ऋपण०-अवद्वि० आयु० दो वि पदा असंत्रेज्ञा। एवं सन्विणरय-सन्वपंचिदियतिरिक्त-मणुसञ्चप० देवा याव सहस्तार त्ति सन्वविगलिदिय-सन्वपुढिव०-आड०-तेड०-वाड०-बादरवण०पत्ते०-पंचिदिय-तसञ्चप०-वेडिव्वयका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद०-तेड०-पम्मले०-वेदग०-सासण त्ति।

२०७. मणुसेस सत्तरणं क० भुज०-श्रप०-श्रवद्दि० असंखेजा। अवत्त०

परिमाणानुगम

३०४. परिमाणानुगमकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ निर्देश श्रीर श्रादेश निर्देश। श्रोघकी श्रपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार, श्रव्पतर श्रीर श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? श्रमन्त हैं। श्रवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। श्रायुकर्मके श्रवक्तव्य श्रीर श्रव्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रमन्त हैं। इसी प्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यञ्च, सब पकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, श्रसंयत, श्रवज्ञदर्शनी, शृज्यलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंक्षी श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेपता है कि काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, श्रवश्चदर्शनी, भव्य श्रीर श्राहारक का वांच्य करनेवाले जीव हैं।

३०६. श्रादेशसे नारिकयों सात कर्मों भुजगार श्रहपतर श्रोर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव तथा श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार सव नारिका, सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य श्रपर्याप्त, सामान्यदेव, सहस्रार कल्पतक देव, सव विकलेन्द्रिय, सव पृथिवीकायिक, सव जलकायिक, सव श्रानिकायिक, सव वायुकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्रीर, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दिष्ट श्रीर सासादनसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

३०७. मनुष्योंमें सात कर्मीके भुजगार, श्रत्पतर श्रीर श्रवस्थित पदका बन्ध करने-वां जीव असंख्यात हैं। श्रवक्षव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। श्रायुकर्मके संखेजा। त्रायु० दो वि पदा असंखेजा। एवं पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-श्राभि०-सुद०-श्रोधि०-चक्खुदं०-श्रोधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०। [एवरि सुक्कले०-खइगस०] त्रायु० दो पदा संखेजा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीस्न सन्त्रे भंगा संखेजा। एवं सन्वद्द-आहार०-आहारिम०-त्रवगदवे०-मणपज्ज०--संजद्०-सामाइ०-बेदो०-परिहार०-सुहुमसंपरा०।

३०८. कम्पइ०-श्रणाहार० सत्तरणं क० भुज०-श्रप०-श्रविट० श्रणंता। एवं परिमाणं समत्तं।

खेतागुगमो

३०६. खेत्तं दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सत्तरणं क० भुज०-श्रप्प०-श्रविद्वि॰ केविड खेत्ते १ सव्वलोगे । श्रवत्त० लोग० श्रसंखे०भागे । श्रायु० श्रवत्त०-श्रप्पद० सव्वलोगे । एवं सव्वश्रणंतरासीणं । एविर तेसिं चेव सत्तरणं क० -श्रवत्त० एत्थि । वादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्त० श्रायु० लोग० श्रसंखे० । वएप्पिदि-वादर-णियोद-पज्जत्तापज्जत्ता० श्रायु० लोग० श्रसं०भागे । पुढवि०-श्राउ०-तेउ०-

दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय द्विक, अस द्विक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, आभिनवोधिकश्चानी, श्रुतश्चानी, अवधिश्चानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्छछेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यावाले और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुक्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनयोंमें सभी पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारक काययोगी, आहारकिमश्रकाययोगी, श्रवगतवेदी, मनःपर्ययश्चानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सहस्मसाम्परायसंयत जीवोंके ज्ञानना चाहिए।

३०८ कार्मण काययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, श्रल्पतर श्रीर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रनन्त हैं।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

चेत्रातुगम

३०९. च्रेत्र दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघकी श्रपेक्ता सात कर्मोंके भुजगार, श्रव्यतर श्रीर श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना च्रेत्र है ? सब लोक
च्रेत्र है । श्रवक्रव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण च्रेत्र है ।
श्रायुकर्मके श्रवक्रव्य श्रीर श्रव्यतर पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका सव लोक च्रेत्र है । इसी
प्रकार सव श्रनन्त राशियोंका जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि यह उन्हींका जानना
चाहिए जिनके सात कर्मोंका श्रवक्रव्य पद नहीं होता । वादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त श्रीर श्रपयप्त जीवोंमें श्रायुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका च्रेत्र लोकके श्रसंख्यातवें
भाग प्रमाण है । बादर वनस्पति पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त तथा निगोद पर्याप्त तथा श्रपर्याप्त
जोवोंमें श्रायुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका च्रेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है । पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रिग्नकायिक श्रीर वायुकायिक तथा इनके बादर

वाड॰ तेसिं वादर-वादरत्रपञ्ज० तेसिं चेव सन्वसुहुम०बादरवर्णण्कदि०पत्ते॰ तस्सेव त्रपञ्ज० सन्वे भंगा सन्वलोगे । एवरि बादरेसु लोग० श्रसं० । वाड० लोगस्स सखे० । सेसाएं संखेज्ज-त्रसंखेज्जरासीएं सन्वे भंगा लोगस्स श्रसं० । एवरि वाड० पज्जत्ते लोगस्स संखेज्जदिभागे । एवं खेत्तं समत्तं ।

फोसणागुगमो

३१०. फोसणाणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे०। श्रोघे० सत्तरणं क० भुज०-श्रप्प०-श्रवद्घि०वंधगेहि केविडयं खेत्तं फोसिदं १ सन्वलोगो। श्रवत्त०ं लोग० श्रसं०। श्रायु० श्रवत्त०-श्रप्पद० सन्वलोगो। एवं श्रोधभंगो तिरिक्लोधं सन्वएइंदि०-पुढवि०-श्राड०-तेड०-वाड०-वादरपुढवि०-श्राड०-तेड०-वाड० तेसिं श्रपज्जत्ता० तेसिं

श्रीर बादर श्रपर्याप्त तथा इन्होंके सब सूक्ष्म बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इन्होंके अपर्याप्त जीवोंमें सब पदोंका त्तेत्र सब लोक है। इतनी विशेषता है कि बादरोंमें लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण त्तेत्र है श्रीर बादर वायुकायिकोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण त्तेत्र है। शेष रहीं संख्यात श्रीर असंख्यात राशियोंमें सब पदोंका लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण त्तेत्र है। इतनी विशेषता है कि वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण त्तेत्र है।

विशेषार्थ — यहां भुजगारवन्ध श्रादिकी श्रपेक्षा क्षेत्रका विचार किया गया है। लोकमें प्रायः एकेन्द्रियादि सभी जीव सात कर्मोंका भुजगार, श्रल्पतर श्रीर अवस्थितबन्ध करते हैं इसिलए इन पदोंका सामान्यरूपसे सब क्षेत्र कहा है। श्रवक्तव्यवन्ध उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवोंके या मोहनीयकी श्रपेक्षा स्क्रसाम्परायमें श्रीर सात कर्मोंकी श्रपेक्षा उपशान्तिमोहमें मरकर देव होनेवाले जीवोंके होता है, यतः इनका क्षेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है, श्रतः सात कर्मोंके श्रवह्मव्य पदका बन्धवाले जीवोंका उक्रप्रमाण क्षेत्र कहा है। तथा श्रायुक्तमंके दो पदोंकी प्राप्ति एकेन्द्रिय सब जीवोंके होती है, इसिलए श्रायुक्तमंके दोनों पदवाले जीवोंका भी सब लोक क्षेत्र कहा है। यहां शेष मार्गणाश्रोंमें सम्भव पदोंके क्षेत्रका सामान्यरूपसे संकेत किया ही है। सो उस मार्गणाके क्षेत्रको जानकर यथासम्भव उसे घटित कर लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिन मार्गणाश्रोंमें सात कर्मोंका बन्ध होता है उन सबमें सात कर्मोंका श्रवह्मव्य पद नहीं होता, किन्तु जिन मार्गणाश्रोंमें उपशमश्रेणिका श्रारोहण श्रीर श्रवरोहण सम्भव है उन्हींमें श्रवक्तव्य पद होता है। सो सर्वत्र इस पदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण ही है।

इस प्रकार चेत्रानुगम समाप्त हुआ।

३१०. स्पर्शनानुगमकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध श्रीर श्रादेश। उनमेंसे श्रोधकी श्रपेक्षा सात कर्मोंके भुजंगार, अल्पतर श्रीर श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोकका स्पर्श किया है । श्रवक्रव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातचें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । श्रायुक्तमंके श्रवंक्रव्य श्रीर श्रत्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । इसी प्रकार श्रोधके समान सामान्य तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रानकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर प्रिवीकायिक, बादर प्राप्तिकायिक, बादर वायुक्तियक, वादर प्रिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर श्रानकायिक, बादर वायुक्तियक, वादर प्राप्तिकायिक, बादर श्रानकायिक, बादर वायुक्तियक,

चेव सव्वसुहुम० सव्ववणप्पदि-णियोद-बादरवणप्पदिपत्तेय० तस्सेव अज्जत्ता०। सव्ववादराणं आयु० दो पदा .लोगस्स असं०। णविर बादरण्इंदि०-वादरवाउ० लोगस्स संखेज्ज०। कायजोगि-श्रोरालियका०-श्रोरालियमि०-णवुं स०-कोधादि०४-मिद०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किएण०-णील०-काउ०-भवसि०-अञ्भवसि०-भिच्छादि०-असिएण०-आहारग ति श्रोधं। णविर अवत्त० केसि चेव णित्थ। यसिमित्थ तेसिमोधं।

३११, ब्रादेसेण ऐरइएस सत्तरणं क॰ भुज॰-अप-अविह॰ छच्चोदसर्भा॰। आयु॰ खेत्तभंगो। पढमपुढवि॰ खेत्तभंगो। विदियादि याव सत्तमा ति एवं चेव। एवरि सगफोसणं।

३१२. सन्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसत्रपज्ज॰-सन्वविगलिदिय-पंचिदिय-तस॰ग्रपज्जत्ता॰ बादरपुढवि॰-ग्राड॰-तेड०-वाड॰-बादरवण०पत्ते॰पज्जत्ता॰ सत्तरणं क०भुज०-ग्रप्प०-ग्रविः लोगस्स ग्रसं० सन्वलोगो वा । एवरि बादरवाड॰ लोगस्स
संखे॰ सन्वलो॰ । ग्रायु० खेत्तभंगो। मणुस०३ सत्तरणं क० भुज०-ग्रप्प०-ग्रविः
ग्रपज्जत्तभंगो। श्रवत्त० ग्रोघं। श्रायु० खेत्तभंगो।

कायिक श्रीर इनके अपर्याप्त तथा इन्होंके सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, सव निगोद, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर श्रीर इनके अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु सब वादरोंके श्रायुकर्मके दो पदोंका स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय श्रीर वादर वायुकायिक जीवोंका श्रायुकर्मके दो पदोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। काययोगी, श्रीदारिक काययोगी, श्रीदारिक मिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, श्रसंयत, श्रचलुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिथ्यादिष्ट, श्रसंक्षी श्रीर श्राहारक जीवोंके सब पदोंका स्पर्शन श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमेंसे श्रवक्तव्य पद किन्होंके नहीं हैं। जिनके हैं उनके उसका स्पर्शन श्रोधके समान है।

३११. त्रादेशसे नारिकयोंमें सात कमौंके भुजगार, अल्पतर श्रीर अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान स्पर्शन है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी श्रपनी पृथिवीका स्पर्शन कहना चाहिए।

३१२. सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य श्रपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय श्रप्निम, त्रस श्रपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर श्रप्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त श्रीर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्ररीर प्रयीप्त जीवोंमें सात कमोंके भुजगार, श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित पदोंका स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सव लोक है। इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें उक्त पदोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक है। तथा इन सब मार्गणाश्रोमें श्रायुक्तमेंके दोनों पदोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। मनुष्यित्रकमें सात कमोंके भुजगार, श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित पदोंका स्पर्शन मनुष्य श्रपर्याप्तकोंके समान है। श्रवक्रव्य पदका स्पर्शन श्रोधके समान है। तथा श्रायुक्तमेंके दोनों पदोंका स्पर्शन श्रोधके समान है।

३१३. देवेसु सत्तरणं क॰ भुज॰-अष्ण॰-अविह॰ अह-णवचो० । आयु० दो वि पदा अहचो० । भवण०-वाणवें॰-जोदिसि॰ सत्तरणं क० भुज-अष्ण०-अविह॰ अद्धुह-अह-णवचो० । आयु० दो वि पदा अद्धुह-अहचो० । सोधम्भीसाणे देवोवं । सणक्कुमार याव सहस्सार ति सन्वे भंगा अहचो० । आणदादि अच्चुदा ति छच्चोह० । उविर खेतं ।

३१४. पंचिंदिय-तस॰ तेसिं पज्जता॰ पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि॰-पुरिस०-चक्खुदं०-सिएए ति सत्तएएं क० भुजं०-अप्प०-अविदे० अद्वची॰ सन्वलोगो वा । अवत्त० ओघं । आयु० दो वि पदा अद्वचो॰ ।

३१५. वेडिव्य० सत्तारणं क० भुज०-अप०-अविष्ठ० अह-तेरहचो० । आयु० दो वि पदा अहचो० । वेडिव्यिम०-आहार्०-आहारिम०-कम्मइ०-अवगद०-मण-पज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं०-अणाहारग ति खेत्तभंगो ।

३१६. विभंगे सत्तएएां क॰ भुज॰-अप्प॰-अविट॰ अद्द-तेरहचोद० सव्वलो॰। आयु० दो वि पदा अद्वचो०। आभि०-सुद०-ओधि० सत्तएएां क० तिरिएएपदा०

३१३. देवोंमें सात कमों के भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदों का स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और नौ वटे चौदह राजु है। आयुक्रमंके दोनों ही पदों का स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें सात कमों के भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदों का स्पर्शन कुछ कम साढ़े तीन वटे चौदह राजु, आठ वटे चौदह राजु और नौ वटे चौदह राजु है। आयुक्रमंके दोनों ही पदों का स्पर्शन कुछ कम साढ़े तीन वटे चौदह राजु और आठ वटे चौदह राजु है। सौधर्म और ऐशान कल्पमें सब पदों का स्पर्शन सामान्य देवों के समान है। सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवों में सब पदों का स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवों सव पदों का स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवों सव पदों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु है। इससे आगे के देवों सव पदों का स्पर्शन के किक समान है।

३१४. पञ्चेन्द्रिय, त्रस ग्रौर इन दोनोंके पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी ग्रौर संशी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, त्रलपतर ग्रौर ग्रवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम ग्राठ बटे चौदह राजु ग्रौर सब लोक है। ग्रवक्रव्य पदका स्पर्शन ग्रोघके समान है। ग्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछकम ग्राठ बटे चौदह राजु है।

३१५. वैकियिककाययोगी जीवोंमें सात कमौंके भुजगार, श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित पर्दोका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर तेरह वटे चौदह राजु है। श्रायुकमंके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु है। वैकियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारक काययोगी, श्राहारक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, श्रपगतवेदी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्रुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत श्रीर श्रनाहारक जीवोंके श्रपने सव पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

३१६. विभङ्गश्वानमें सात कर्मीके भुजगार, श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु, कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु श्रीर सब लोक है। श्रायु-कमके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु है। श्राभिनिवोधिकशानी, श्रुतश्वानी श्रीर श्रवधिश्वानी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे

श्रह्मो० । श्रवत्त० खेत्तभंगो । श्रायु० दो पदा० श्रहमो० । एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग० । संजदासंज० सत्तरणं क० तिरिण पदा० छम्मोद० । श्रायु० खेत्तं ।

३१७. तेउले० सत्तरणं क० भुज०-ऋष०-ऋबद्धि० ऋड-णवची०। ऋायु० दो वि पदा ऋहचो०। पम्माए सन्वे भंगा ऋहचो०। सुकाए सन्वे भंगा छच्चो०। गावरि सत्तरणं क० अवत्त० [खेत्त-] भंगो।

३१८. सासण् सत्तरणं क॰ भुज॰-अप०-अविट अह-वारह० । आयु॰ दो पदा० अहचो० । सम्माभि॰ सत्तरणं क॰ भुज॰-अप॰-अविट अहचोदस॰ । एवं फोसणं समत्तं ।

कालागुगमो

३१६. कालाग्रुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सत्तरणं क० भुज०-श्रप्प०-श्रविह केविचरं कालादो होदि ? सव्वद्धा । श्रवत्त० जह० एग०, उक० संखेज्जसमयं । श्रायु० दो वि पदा० सव्वद्धा । एवं सव्वाणं श्रणंतरासीणं सगपदाणं ।

चौदह राजु है। श्रवक्रव्य पदका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रायुक्तमंके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दिष्ट, चायिकसम्यग्दिष्ट और वेदकसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु है। श्रायुक्तमंके दोनों पदोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

३१७. पीतलेश्यावाले जीवोंमें सात कमोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नी वटे चौदह राजु है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है। पद्मलेश्यामें सब पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है। पद्मलेश्यामें सब पदोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजु है। इतनी विशेषता है कि इनके सात कमोंके अवक्षव्य पदका स्पर्शन केंत्रके समान है।

३१८. सासादन सम्यग्दि जीवोंमें सात कमोंके भुजगार, ग्रल्पतर श्रौर श्रवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजु है। श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कमोंके भुजगार, श्रल्पतर श्रौर अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु है। इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुशा।

कालानुगम

३१९. कालानुगमकी अपेना निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघकी अपेना सात कर्मोंके सुजगार, श्रल्पतर श्रीर श्रवस्थित पदोंका कितना काल है ? सब काल है। श्रवक्रव्य पदका वन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रायुकर्मके दोनों पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। इसी प्रकार सब श्रनन्त राशियोंके श्रपने श्रपने पदोंका काल जानना चाहिए।

३२०. श्रादेसेण ऐरइएस सत्तरणं क० मुज०-श्रप्प० जह० एग०, उक्क० श्राविति श्रमं०। श्रविटि॰ सन्वद्धा। श्रायु० श्रवत्त० जह० एग०, उक्क० श्राविति श्रमं०। श्रप्प० जह० श्रंतो, उक्क० पितदो० श्रमं०। एवं सन्वेसि श्रमंतेज्जरासीणं श्रवत्तव्वरिद्धाणं सांतररासी श्रमंतेज्जलोगरासी मोत्तूण। एवरि श्राणदादीणं श्रायु० श्रपदरवंध० जहरुणु० श्रंतो०। श्रवत्तव्व० जह० एग०, उक्क० संत्रेज्जसमं०।

३२१. मणुस-पंचिदिय-तस०२ पज्जत्त० सत्तराणं क० भुज०-श्रप्प० जह० एग०, एक० श्रावित्व श्रसं० । श्रविद्व० सन्वद्धा । श्रवत्त० श्रोघं । श्रायु० शिरयभंगो ।

विशेषार्थ—यहां नाना जीवोंकी अपेचा भुजगार आदि पदोंके कालका विचार किया जा रहा है। सात कर्मोंका अवक्षव्य पद उपशमश्रेणि पर चढ़कर उतरनेवाले और मरकर देव होनेवाले जीवोंके होता है। यतः उपशम श्रेणिपर चढ़नेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, इसलिए ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और

्र २०. श्रादेशसे नारिकयों सात कर्मीके भुजगार श्रीर श्रव्पतर पर्दोका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्रुप्ट काल श्राविक श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रवस्थित पदका काल सर्वदा है। श्रायुक्तमंके श्रवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्रुप्ट काल श्राविक श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रव्पतर पदका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त श्रीर उत्रुप्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार श्रवक्तव्य पदसे रहित सब श्रसंख्यात राशियों काल जानना चाहिए। किन्तु जो सान्तर राशियों हैं श्रीर श्रसंख्यात लोकप्रमाण संख्यावाली राशियां हैं उन्हें छोड़ देना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रानतादिक से श्रायुक में के श्रव्पतर पदका चन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य श्रीर उत्रुप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। तथा श्रवक्तव्य पदका चन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य काल एक समय श्रीर उत्रुप्ट काल संख्यात समय है।

विशेषार्थ—यह हम पहले ही चतला श्राये हैं कि श्रायुकर्मका वन्ध होनेके प्रथम समयमें श्रवक्तव्य पद होता है। श्रोर श्रनन्तर श्रव्पतर पद होता है, इसलिए यहां यह प्रश्न होता है कि श्रायुक्तमें के श्रवक्तव्य पदका उत्रुप्त काल श्राविक श्रमंख्यातवें भाग प्रमाण रहने पर श्रव्पतर पदका उत्रुप्त काल पृत्यक श्रमंख्यातवें भाग प्रमाण कैसे प्राप्त हो सकता है श्रमाधान यह है कि एक या नाना जीवोंने श्रायुक्तमें श्रवक्रव्यवन्ध किया श्रोर दूसरे समयसे वे श्रव्यतर्थन्ध करने लगे। पुनः श्रव्यतर्थन्ध कालके समाप्त होनेके श्रन्तिम समयमें दूसरे जीवोंने श्रवक्तव्यवन्ध किया श्रोर उसके दूसरे समयसे वे श्रव्यतर्थन्ध करने लगे। इसजिते श्रवक्तव्यवन्ध किया श्रोर उसके दूसरे समयसे वे श्रव्यतर्थन्ध करने लगे। इसजिते श्रवक्तव्यवन्ध किया श्रोर उसके दूसरे समयसे वे श्रव्यतर्थन्ध श्रसंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहां श्रव्यतर्थिम मनुष्यायुक्ता वन्ध करते हैं श्रीर भागप्रमाण कहा है। श्रानतसे लेकर अपरके देव नियमसे मनुष्यायुक्ता वन्ध करते हैं श्रीर गर्मज मनुष्य संख्यात होते हैं, इसलिए श्रानतादिमें श्रायुक्तमें श्रवक्तव्य पदका उत्रुप्त काल संख्यात समय कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

३२१. मनुष्य, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस ग्रौर त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार ग्रौर श्रत्यतर पदका जघन्य काल एक समय ग्रौर उत्कृष्ट काल आविलके श्रसंख्या-तवें भागप्रमाण है। श्रवस्थित पदका काल सर्वदा है। तथा श्रवक्रव्यपदका काल श्रोघके

१. मूलप्रतौ संखेजसम० णिरयभंगो । मणुस- इति पाठः ।

एवं पंचमण्य०-पंचवचि०-आभि-सुद्०-ओधि०-ओधिदं०-सम्मादिहि-चक्खुदं०-सिएण ति । णवरि पंचमण्य०-पंचवचि० आयु० अप्प० जह० एग० । सुकले०-खइग० एवं चेव । णवरि आयु० आणदभंगो ।

३२२. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सत्ताणं क० सुज०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमयं। अविह० सन्वद्धा। आयुग० अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमयं। अपद० जहण्णु० अंतो०। एवं 'सन्वसंखेज्जरासीणं। यसि सत्तरणं क० अवत्तन्त्रं णित्थ तेसि पि तं चेव णादन्वं। मणुसअपज्ज० सत्तरणं क० सुज०-अपप० जह० एग०, उक्क० आवित्व० असं०। अविह० जह० एग०, उक्क० पित्विते० असं०। आयु० एग० एवं चेव वेउन्वियमि०-सम्मामि०। आयु० णित्थ।

३२३. पुढवि॰-ग्राड०-तेड०-वाड॰-वादरपुढवि॰- ग्राड॰-तेड॰-वाड॰ तेसिं चेव ग्रपज्ज॰ तेसिं सुहुम॰ वादरवराप्पदिपत्तेय॰ तस्सेव ग्रपज्ज॰ संव्वे भंगा सन्वद्धा ।

समान है। श्रायुकर्मके दोनों पदोंका काल नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार पाँच मनो-योगी, पाँच वचनयोगी, श्राभिनियोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, श्रवधिद्रश्नी, सम्यग्दिष्ट, चजुदर्शनी श्रोर संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें श्रायुकर्मके श्रव्यतरपद्का जघन्य काल एक समय है। शुक्ललेश्यावाले श्रीर चायिकसम्यग्दिष्ट जीवोंमें भी इसी प्रकार काल है। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रायुकर्मके दोनों पदोंका काल श्रानत कल्पके समान है।

३२२.मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियों सात कर्मों के मुजगार श्रीर श्रवक्रव्य पद्का जघन्य काल एक समय श्रीर उत्हृष्ट काल संख्यात समय है। श्रवस्थित पद्का काल सर्वदा है। श्रायुक्तमं श्रवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्हृष्ट काल संख्यात समय है। श्रवपतर पदका जघन्य श्रीर उत्हृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। इसी प्रकार सव संख्यात राशियों का काल जानना चाहिए। तथा जिन संख्यात राशियों में श्रवक्रव्य पदका वन्ध नहीं होता उनमें भी यही काल जानना चाहिए। मनुष्य श्रपर्याप्तकों में सात कर्मों के भुजगार श्रीर श्रव्यतरपदका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्हृष्ट काल श्रावलिके श्रसंख्यातवें भाग-प्रमाण है। श्रवस्थित पदका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्हृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रायुक्तमं दोनों पदोंका काल नारिक्यों के समान है। मनुष्य श्रपर्याप्तकों के समान सासादनसम्यव्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार वैक्रियिकिमिश्रकाययोगी श्रीर सम्यग्मिथ्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुक्तमंका वन्ध नहीं होता।

३२३. पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्राग्निकायिक, वायुकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर श्राप्तिकायिक श्रीर वादर वायुकायिक तथा इनके श्राप्यीत श्रीर सूक्ष्म, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके श्रप्यीत जीवोंमें सम्भव सव पदोंका काल सर्वदा है।

१. मूलप्रतौ सन्वश्रसंखेजरासीणं इति पाठः ।

३२४. आहार॰-आहारमि० सत्त्त्राणं क॰ भुज॰-अप्पद्० जह॰ एग॰, उक्क॰ संखेज्जसम०। अविड० जह० एग॰, उक्क० अंतो॰। आयु॰ अवत्तव्व० जह० एग॰, उक्क० संखेज्जसम०। अप्प॰ जह॰ एग॰, उक्क अंतो॰।

३२५. अवगद० सत्ताएं क० भुज०-अप्प०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० । अविद्वि जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं सुहुमसं० छएएं क० । एविस् अवत्तव्वं एतिथ । कम्मइ०-अ'एगहा० सत्ताएं क० भुज०-अप्प०-अविद्वि सव्वद्धा । एवं कालं समत्तं ।

अंतरागुगमो

३२६. अंतराणुगमेण दुवि॰—श्रोघे॰ श्रादे॰ । श्रोघे॰ सत्तरणं क॰ भुज॰-अप्प॰-अविट॰ एत्थि अंतरं । अवत्तव्ववं॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ वासपुधत्तं । श्रायु॰ दो पदा एत्थि अंतरं । एवं कायजोगि-श्रोरालिका॰-श्रचक्खु॰-भवसि॰-श्राहारग ति ।

३२७. त्रादेसेरा रोरइएस सत्तरारां क॰ भुज॰-त्रप॰ जह॰ एग॰, उक॰

३२४. श्राहारककाययोगी श्रोर श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रीर श्रत्पतरपद्का जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रवस्थित-पद्का जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहर्त है। श्रायुकर्मके श्रवक्षव्यपद्का जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रत्यतर पद्का जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहर्त है।

३२४. श्रपगतवेदवाले जीवोंमें सात कर्मीके भुजगार, श्रल्पतर श्रौर श्रवक्रव्य पदोंका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रवस्थित पदका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सूदमसाम्परायिक संयत जीवोंमें छुह कर्मोंके पदोंका काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके श्रवक्रव्य पद नहीं होता। कार्मणकाययोगी श्रौर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, श्रल्पतर श्रौर श्रवस्थित पदोंका काल सर्वदा है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ। ।

अन्तरानुगम

३२६.श्रन्तरानुगमकी श्रपेचा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध और श्रादेश । श्रोधकी श्रपेचा सात कर्मोंके भुजगार, श्रल्पतर श्रोर अवस्थित पदोंका श्रन्तरकाल नहीं है । श्रवक्षव्य-पदका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्तव है । श्रायुकर्मके दो पदोंका श्रन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार काययोगी, श्रोदारिकाययोगी, श्रचचुदर्शनी, भन्य श्रोर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उपरामश्रेणिका जघन्य ग्रन्तरकाल एक समय ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल वर्षपृथक्त्व होने से यहां सात कर्मोंके ग्रवक्षन्यपदका श्रन्तर काल उक्षप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

-३२७. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रीर श्रत्पतर पदका जघन्य श्रन्तर

१. म्लप्रतौ कम्मद्द० श्रायु० सत्तरण्ं द्वति पाटः ।

श्रंतो । श्रविष्ठ णित्य श्रंतरं । श्रायु दो पदा जह एग , उक चरवीसं मुहुत्तं । एवं सन्वणेरइएस । श्रायु परिवादीए श्रडदालीसं मुहुत्तं पक्यं मासं वे मासं चत्तारिमासं छम्मासं वारसमासं । एवं चेव देवाणं पि कादन्वं । एवरि सन्बद्धे पितदोवमस्स संखेजा ।

३२८. तिरिक्लेसु सन्वे भंगा णित्थ अंतरं । एवं सन्वएईदिय-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वाउ०-वादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव अप०-सुहुम०-सन्ववण• प्फिदि-णियोद-वादरवणप्फिदिपत्तेय० तस्सेव अप० ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मिद०-सुद०-असंज०-किएण०-णील०-काउ०-अन्भव०-मिच्छा०असिएण-अणाहारग ति । णविर लोभे मोह० ओधं ।

३२६. सन्वपंचिदियतिरिक्ख० सत्तरणं क० भुज०-ऋप्पद० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अविष्ठ० णित्थ अंतरं। आयु० दो पदा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पज्जत्त-जोणिणीसु जह० एग०, उक्क० चडवीसं सुहु०। अपज्ज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

३३०, यगुसत्रप० सन्वे भंगा जह० एग०, उक्क० पित्तदो० त्रसं०। यगुस०३ काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुह्त है। अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं है। आयुक्तमेंके दोनों पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौवीस मुह्त है। इसी प्रकार सव नारिकयोंमें जानना चाहिए। किन्तु आयुक्तमेंके दोनों पदोंका कमसे अड़तालीस मुह्त, एक पत्त, एक माह, दो माह, चारमाह छह माह और वारह माह है। इसी प्रकार देवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें पल्यका संख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है।

३२८. तिर्यञ्चोंमें सम्भव सब पदोंका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार सव एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर वायुकायिक और इन्होंके अपर्याप्त व सूक्ष्म, सब वनस्पति-कायिक, सब निगोद, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि-चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत-लेश्यावाले, अभन्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि लोभकषायमें मोहकर्मके पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है।

३२९. सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रोर श्रव्पतर पदका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्तर्मुहर्त है। श्रवस्थित पदका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रायुक्तमेंके दो पदोंका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्त-मुंहर्त है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त श्रोर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें श्रायुक्तमेंके दो पदोंका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल चौवीस मुहर्त है। तथा श्रप्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें श्रपने पदोंका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्तर्मुहर्त है।

३२०. मनुष्य श्रपर्यात्रकोंमें सम्भव सब पदोंका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय श्रौर उत्रुप्ट श्रन्तरकाल पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यत्रिकमें सात कर्मीके सत्तराणं क० भुज०-अप्पद०-अविष्ठ० आयु०दो पदा० पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो । सत्तराणं क० अवत्त० ओघं । सन्वविगिलिदिय० पिचदियतिरिक्खभंगो । पंचि-दिय-तस० पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो । एविर सत्तराणं क० अवत्त० ओघं ।

३३१. वादरपुढवि०-म्राउ०-तेउ०-वाउ०-वादरवण०पत्तेयपज्जत्ता० विगलि-दियद्यपज्जत्तभंगो । णवरि तेउका० म्रायु० दो वि पदा जह० एग०, उक० चउवीसं मुद्दु० ।

३३२. पंचमण०-पंचवचि०-वेडिव्ययका०-इत्थिवे०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सिएण ति सगपदा० मणुसिभंगो । वेडिव्वयिमस्स० सन्वे भंगे जह० एग०, उक० वारसमु० । आहार०-आहारिम० सन्वे भंगे जह० एय०, उक्क० वासपुधत्तं ।

३३३. अवगदवे॰ सत्तराएं क॰ भुज॰-अवत्त॰ जह॰ एग॰, उक॰ वास-पुथत्तं। अप्प॰-अविह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अम्मासं। एवं सुहुमसं। सत्तराएं क॰ अवत्त॰ एत्थि अंतरं।

भुजगार, ग्रह्पतर ग्रीर ग्रवस्थित पर्दोका तथा ग्रायुक्तमंके दो पर्दोका ग्रन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान है। सात कर्मोंके ग्रवक्तव्य पदका ग्रन्तरकाल ग्रोघके समान है। सव विकलेन्द्रियोंमें सब पदोंका ग्रन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। तथा पञ्चेन्द्रिय ग्रीर त्रसोंमें सब पदोंका ग्रन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके ग्रवक्तव्य पदका ग्रन्तरकाल ग्रोघके समान है।

३३१. वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर श्रानिकायिक पर्याप्त, वादर प्राय्विक पर्याप्त श्रीर वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक श्रीर पर्याप्त जीवोंमें सव पर्योक्ता श्रान्तरकाल विकलेन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रानिकायिक पर्याप्त जीवोंमें श्रायुकर्मके दो पर्योक्ता जघन्य श्रान्तरकाल एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल चौवीस मुहुत है।

३३२. पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैकियिक काययोगी, स्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभक्षक्षानी, चक्षुदर्शनी ग्रोर संग्री जीवोंमें श्रपने ग्रपने पदोंका ग्रन्तरकाल मनुष्यिनियोंके समान है। वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब पदोंका जघन्य ग्रन्तर एक समय ग्रीर उत्रुप्ट ग्रन्तर वारह मुहुर्त है। ग्राहारककाययोगी ग्रीर श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सब पदोंका जघन्य ग्रन्तर एक समय ग्रीर उत्रुप्ट ग्रन्तर वर्षपृथक्तव है।

३३३. श्रपगतवेदमें सात कर्मोंके भुजगार श्रीर श्रवक्रव्य पदका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्छप्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्व है। श्रत्यतर श्रीर श्रवस्थित पदका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्छप्ट श्रन्तर छह महीनो है। इसी प्रकार सूहमसाम्पराय संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके सात कर्मोंके श्रवक्तव्य पदका श्रन्तर नहीं होता।

विशेषार्थ—भुजनार श्रीर श्रवक्षव्य पद उपरामश्रेणिमें होते हैं श्रीर उपरामश्रेणिका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। इसीसे यहां श्रपगतवेदी जीवोंके सात कर्मोंके मुजगार श्रीर श्रवक्षव्य पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है। सूदमसाम्पराय संयत जीवोंके श्रीर श्रवक्षव्य पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है। सूदमसाम्पराय संयत जीवोंके भुजगार पदका यह श्रन्तर मोहनीयके विना छह कर्मोंका प्राप्त होता है। श्रेष कथन सुगम है।

३३४. त्राभि०-सुद०-त्रोधि० सत्तरणं क० मणुसभंगो । त्रायु० दो वि पदा० जह० एग०, उक्क० मासपुध० । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-संजदासंजद-त्रोधिदं०-सम्मादि'०-वेदग० सगपदाणं । एवं चेव मणपज्ज० । णविर त्रायु० दो वि पदा० जह० एग०, उक्क० वासपुध० । एवं परिहार०-खइग० ।

३३५. तेड॰-पम्म० देवभंगो । आयु॰ दो वि पदा॰ जह० एग०, उक्क० अडदालीसं मुहु॰ पक्खं । सुकाए ओधिभंगो ।

३३६. उवसम० सत्तरणं क० भुज०-अपद०-अविह० जह० एग०, उक० सत्त रादिंदियाणि । अवत्त० ओघं । सासण० अहरणं क० सम्मामि० सत्तरणं क० सन्वपदा० जह० एग०, उक पिलदो० । एवं अंतरं समत्तं ।

भावागुगमो

३३७. भावाणुगमेण दुवि ॰ — ओघे ॰ आदे ॰ । ओघे ॰ अहरणां क ॰ सन्वपदाणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं जाव अणाहारग त्ति णादन्वं ।

३३४. श्राभिनिवोधिकहानी, श्रुतहानी श्रीर श्रवधिहानी जीवोंमें सात कर्मोंके सव पदोंका अन्तर मनुष्योंके समान है। श्रायुकर्मके दोनों पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर मासपृथक्तव है। इसी प्रकार संयत; सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना-संयत, संयतासंयत, श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि श्रीर वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके श्रुपने श्रुपने पदोंका श्रन्तर जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार मनःपर्ययहानी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुक्मके दोनों हो पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्तव है। मनःपर्ययहानियोंके समान परिहारविशुद्धिसंयत श्रीर क्षायिकसम्य-ग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

३३४. पीतलेश्यावाले श्रीर पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कमोंके श्रपने सव पदोंका श्रन्तर देवोंके समान है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका ज्ञचन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर क्रमसे श्रृड़तालीस मुहूर्त श्रीर एक पत्त है। श्रुक्ललेश्यामें सव पदोंका श्रन्तर श्रविश्वानियोंके समान है।

३३६. उपशम सम्यग्दिष्ट जीवोंमें सात कमोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पद-का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है। अवक्रव्य पदका अन्तर ओघके समान है। सासादन सम्यग्दिष्योंमें आठों कमोंके और सम्यग्मिथ्यादिष्योंमें सात कमोंके सब पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

भावानुगम

३३७. भावानुगमकी श्रपेचा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और श्रादेश। श्रोघसे श्राठों कर्मोंके सब पदोंका वन्घ करनेवाले जीवोंका कौनसा भाव है ? श्रोदियक भाव है। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

१. मूलप्रतौ सम्मामि वेदग इति पाठः।

अप्पाबहुगागुगमो

३३८. अपावहुगाणुगमेण दुवि०—अघि० आदे० । श्रोघे० सत्तरणं क० सन्वत्थोवा अवत्तव्ववंधगा । अप्पद०वंध० अणंतगु० । भुज०वं विसे० । अविह० वंध० असं०गु० । आयु० सन्वत्थोवा अवत्त०वंधगा । अप्पद० असं०गु० । एवं तिरिक्लोघं कायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-मिद०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किएण०-णील०-काड०-भविस०-अञ्भविस०-मिच्छादि०-आहारग ति । एविर एसं अवत्त० णित्थ तेसं सन्वत्थोवा अप्पद० । भुज० विसे० । अविह० असं०गु० ।

३३६. आदेसेण ऐरइएस सत्त्राणं क० सन्वत्थोवा भुज०-अप०। अविह० असं०गु०। आयु० ओघं। एवं सन्विएरय-सन्वपंचिदियतिरिक्त-मणुसअज्ज० देवा याव अवराजिदा ति सन्विवगिलिदिय-सन्वपंचकाय-ओरालियमि०-वेड-न्वियं०-वेडन्वियमि०-इत्थि०-पुरिस०-संजदासंजद-तेड०-पम्म०-वेदग०-सासण०-

विशेषार्थ—कर्मोंकी भुजगार ग्रादि स्थितिका बन्ध कवायसे होता है ग्रीर कवाय ग्रीदियक भाव है, इसिलए यहाँ एक ही भाव कहा है। यहाँ किसी भी मार्गणामें ग्रादेश प्ररूपणा सम्भवं नहीं है। ग्रीघके समान ही सर्वत्र जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार भावातुगम समाप्त हुआ। अल्पवहुत्वानुगम

३३८. श्रल्पबहुत्वानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध श्रोर श्रादेश। श्रोधसे सात कर्मों श्रेष्ठियत्यपदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रल्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रमत्वाले जीव श्रमत्वाले जीव विशेष श्रिष्ठिक हैं। इनसे श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। श्रायुक्तमें श्रवक्तव्यपदके वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यक्षानी, श्रताक्षानी, श्रसंयत, श्रवश्चदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, श्रमव्य, मिथ्यादि श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिन मार्गणाश्रोंमें सात कर्मोंका श्रवक्तव्य पद नहीं है उनमें श्रस्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगार पदका बन्ध करनेवाले जीव विशेष श्रिष्ठक हैं श्रीर इनसे श्रवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं।

३३९. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रौर श्रल्पतरपदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुर्णे हैं। श्रायुकर्मके पदोंका श्रल्पबहुत्व श्रोधके समान है। इसी प्रकार सव नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य श्रपर्यात, देव, श्रपराजित विमान तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, श्रौदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, ह्योवेदी, पुरुषवेदी, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दिष्ट, सासादन-सम्यग्दिष्ट, सम्यग्निथ्यादिष्ट श्रौर श्रसंही जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि

१. मूलप्रतौ वेदय० वेडब्वियमि० इति पाठः ।

सम्मामि॰ असिएए ति । एवरि आएदादि अवराजिदा ति आयु० संखेज्जं कादव्वं।

३४०. मणुसेस सत्तारणं क० सन्वत्थोवा अवत्ता । भुज०-अपद० असं०गु० । अविह० असं०गु० । आयु० ओघं। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीस । णविर संखेज्जं भाणिदन्वं । एवं सन्वह०-आहार०-आहारिम०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०- छेदोवहा०। णविर मणपज्ज०-संजद० सत्तारणं क० अवत्त० अत्थि सेसाणं गतिथ ।

३४१, पंचिंदय०२-पंचमण०-पंचवचि०-ग्राभि०-सुद०-ग्रोधि०-चक्खुदं०-ग्रोधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि त्ति मणुसभंगो। णवरि-सुक्कले०-खइग० त्रायु० मणुसिभंगो।

३४२. तस०२ त्रोघं! एवरि असंखेज्जं कादव्वं। एवं तसअप०। एवरि अवत्तव्वं एित्थ। ओरालियका० ओघं। एवरि भुज०-अप्प० तुल्लं। कम्मइ० सत्तरएं क० सव्वत्थोवा भुज०-अप्प०। अविदि० असं०गु०। अवगद० सत्तरएं क० सव्वत्थोवा अवत्त०। भुज० संखे०गु०। अप्पद० सं०गु०। अविदि० सं०गु०।

श्रानत कल्पसे लेकर श्रपराजित तकके देवोंमें श्रायुक्तमेके श्रल्पबहुत्वको कहते समय संख्यातगुणा कहना चाहिए।

३४०. मनुष्योंमें सात कर्मोंके श्रवक्तव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगार श्रोर श्रव्यतर पदका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। इनसे श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणें हैं। श्रायुक्तमेंके दोनों पदोंका श्रव्यवहुत्व श्रोधके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियोंके जानना जाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ श्रसंख्यातके स्थान पर संख्यात कहना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, श्राहारककाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिकसंयत श्रीर खेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनःपर्ययक्षानी श्रीर संयत जीवोंके सात कर्मोंका श्रवक्तव्य पद है, शेषके नहीं है।

३४१. पञ्चेन्द्रयद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, श्राभिनिवोधिकहानी, श्रुत-हानी, अवधिहानी, चचुदर्शनी, श्रवधिदर्शनी, श्रुक्कलेश्यावाले, सम्यग्दछि, चायिक सम्यग्दछि, उपशमसम्यग्दिए श्रीर संही जीवोंमें सव पदोंका श्रलपबहुत्व मनुष्योंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रुक्कलेश्यावाले श्रीर चायिकसम्यग्दिए जीवोंमें श्रायुकर्मके दोनों पदोंका-श्रल्प-बहुत्व मनुष्यिनियोंके समान है।

३४२. त्रसिद्धकमें सब पदेंका अल्पवहुत्व ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अनन्तके स्थानमें असंख्यात कहना चाहिए। इसी प्रकार त्रस अपयिष्ठकों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके सात कर्मोंका अवक्तव्य पद नहीं होता। औदारिक काययोगी जीवोंमें सब पदोंका अल्पवहुत्व ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव तुल्य होते हैं। कार्मणुकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगारपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

सुहुमसं॰ छएएां क॰ सन्वत्थोवा भुज० । अप्प॰ सं॰गु॰ । [अविद्दि० संखेजागु॰] । अर्णाहार० कम्मइगभंगो । एवं अप्पावहुगं समत्तं ।

पदिशाक्लेवो

३४२. पदणिक्लेवे ति तत्थ इमाणि तिणिण अणियोगदाराणि—समुक्तित्तणा सामित्तं अणावहुगे ति ।

समुक्कित्तगा

३४४. सम्रक्तित्तणं दुविधं—जहएण्यं उक्तस्सयं च। उक्तस्सए पगदं। दुवि०— श्रोघे० श्रादे०। श्रोघे० सत्तरणं क० श्रत्थि उक्तस्सिया वड्ढी उक्क० हाणी उक्क० श्रवहाणं। एवं याव श्रणाहारग ति खेदन्वं।

३४५. जहराएए पगदं । दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सत्तरएां क० श्रत्थि

जीवोंमें छह कमोंके भुजगारपदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अल्पतर पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। अनाहारक जीवोंमें सात कमोंके अपने पदोंका अल्पवहुत्व कार्मणकाय-योगवालोंके समान है।

इस प्रकार श्रलपबहुत्व समाप्त हुशा।

पदिनिच्चेप

३४३. ग्रव पदनिचेपका ग्रधिकार है। इसके ये तीन ग्रधिकार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व ग्रीर ग्रलपबहुत्व।

विशेषार्थ—यहाँ 'पद' शब्द से वृद्धि, हानि और अवस्थान इन तीन पदोंका प्रहण किया गया है। ये तीनों पद उत्छए भी होते हैं और जघन्य भी। आश्य यह है कि इस अनुयोगद्वारमें यह वतलाया गया है कि कोई एक जीव यदि प्रथम समयमें अपने योग्य जघन्य स्थितिवन्ध करता है और दूसरे समयमें वह स्थितिको बढ़ाकर वन्ध करता है तो उसके वन्धमें अधिकसे अधिक कितनी वृद्धि हो सकती है आरे कमसे कम कितनी वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार यदि कोई जीव उत्कृप्ट स्थितिवन्ध कर रहा है और अनन्तर समयमें वह स्थितिको घटा कर वन्ध करता है तो उस जीवके वन्धमें अधिकसे अधिक कितनी हानि हो सकती है और कमसे कम कितनी हानि हो सकती है यही सब विषय इस प्रकरणमें विविध अनुयोगोंके द्वारा दिखलाया गया है। वृद्धि और हानि होनेके वाद जो अवस्थित वन्ध होता है उसे यहाँ अवस्थित वन्ध कहा है। यह जिस प्रकारकी वृद्धि और हानिके वाद होता है उसका वही नाम पड़ता है।

सम्रत्कीर्तना

३४४. समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है-जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ श्रीर श्रादेश । श्रोघकी श्रपेत्ता सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि श्रीर उत्कृष्ट श्रवस्थान है । इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए ।

३४४. जघन्यका प्रकरण है। उसकी श्रपेचा निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ श्रीर

जहिएया वड्डी [जहिएएया हाएी] जह० अवद्वाएं। एवं याव अर्णाहारम ति ऐदिव्वं। सामित्तं

३४६. सामित्तं दुवि०—जहएएएयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०—ओवे० आदे० । ओवेण सत्तरणं क० उक्किस्सया वट्टी कस्स होदि १ याव दुहाणिययव मज्भस्स उविरं अंतोकोडाकोडिहिदिवंधमाणो उक्कस्सयं संकिलेसं गदो उक्कस्सयं दाहं गदो तदो उक्कस्सयं हिदिवंधो तस्स उक्किस्सया वट्टी । उक्किस्सया हाणी कस्स १ यो उक्कस्सिहिदवंधमाणो मदो एइंदियो जादो तपात्रोग्गजहएएए पिद्दो तस्स उक्किस्सया हाणी । उक्क० अवहाणं कस्स होदि १ उक्कस्सयं हिदिवंधमाणो सागार-क्लएए पिटिभग्गो तपात्रोग्गजहएएए हिदिवंधहाणे पिटिदो तस्सेव से काले उक्कस्सयमवहाणं। एवमोघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-भवसि०-अवभवसि०-मिच्छादि०-आहारग ति ।

श्रादेश। श्रोघकी श्रपेका सात कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि श्रीर जघन्य श्रवस्थान है। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

३४६. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य ग्रौर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेला निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ ग्रौर ग्रादेश । ग्रोघकी ग्रपेला सात कर्मोकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है १ जो दोस्थानिक यवमध्यके ऊपर श्रन्तकोटाकोटिसागरप्रमाण स्थितिका वन्ध करता हुग्रा उत्कृष्ट संक्लेश ग्रौर उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर श्रनन्तर उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करता है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है जो उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हुए मर कर एकेन्द्रिय हो गया ग्रौर वहां तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिवन्ध करने लगता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । उत्कृष्ट श्रवस्थान किसके होता है १ जो उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हुए साकार उपयोगके न रहनेसे संक्लेश परिणामींसे च्युत. होकर तत्प्रायोग्य जघग्य स्थितिवन्धस्थानको प्राप्त होता है उसके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इस प्रकार ग्रोघके समान काययोगी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी श्रताज्ञानी, ग्रसंयत, ग्रचश्चदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादिए ग्रौर ग्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्भ—यहां वन्धस्थितिकी वृद्धि, हानि और अवस्थानकी पदिनक्षेप संज्ञा है और जिस अनुयोगद्वारमें इसका विचार किया जाता है वह पदिनक्षेप अनुयोगद्वार है। यह वृद्धि, हानि और अवस्थान जघन्य भी होता है और उत्कृष्ट भी होता है। यहां सर्वप्रथम उत्कृष्टका विचार करते हुए वह किसके होता है। यह वतलाया गया है। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके जघन्य स्थितिवंध अन्तःकोटाकोटिसागरप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिवन्ध अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। अब एक ऐसा जीव लो जो जघन्य स्थितिवन्ध करते हुए उत्कृष्ट स्थितिवन्धके योग्य परिणामोंके होने पर उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करने लगता है तो यह स्थितिवन्धको उत्कृष्ट वृद्धि होगी। यह उत्कृष्ट वृद्धि स्वस्थानमें ही सम्भव है, परस्थानमें सम्भव नहीं, इसलिए यहां स्वस्थान की अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि बतलाई

३४७. त्रादेसेण ऐरइएस सत्तरणं क० उक्किस्सिया वड्डी-त्रवहाणे त्रोघं। उक्किस्सिया हाणी कस्स होदि ? यो उक्कस्सयं हिदि वंधमाणो सागारक्खएण पिडभगो तप्पात्रोग्गजहरूणए पिडदो तस्सेव उक्किस्सिया हाणी। एवं सव्विणिरय-पंचिदिय० तिरिक्ख०३-मणुस०३ देवा याव सहस्सार ति पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचविव०-त्रोरालि०-वेउव्वि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-विभंग०-चक्खुदं०-पंचले०-सिएण ति।

३४८. पंचिदियतिरिक्तअपज्ज॰ सत्त्तरणं क॰ उक्क॰ वड्डी कस्स॰ १ यो तप्पा-ओग्गजहरण्यं द्विदि वंधमाणो तप्पाओग्गजकस्सयं संकिलेसं गदो तप्पाओग्ग-उक्कस्सयं द्विदिवंधो तस्स उक्किस्सिया वड्डी । उक्किस्सिया हाणी कस्स होदि १ यो तप्पा-ओग्गजकस्सियं द्विदि वंधमाणो सागारक्त्वएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहरण्णए पदिदो तस्स उक्किस्सिया हाणी । तस्सेव सेकाले उक्कस्सयमवद्वाणं । एवं मणुसञ्च-

गई है। किन्तु उत्कृष्ट हानि परस्थानकी अपेन्ना प्राप्त होती है। कारण कि जो संक्षी पञ्चेनिद्रय मिथ्यादि पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कर रहा है वह मरकर एकेन्द्रिय भी हो
सकता है और वहां एकेन्द्रियके योग्य जधन्य स्थितिवन्ध करने लगता है। इस प्रकार
उत्कृष्ट वृद्धि अन्तःकोडाकोडी कम सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण प्राप्त होती है और उत्कृष्ट
हानि पल्यके असंख्यातवें भागसे न्यून एक सागर कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण
प्राप्त होती है। जो उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हुए साकार उपयोगके न्य होनेसे तत्प्रायोग्य
जधन्य स्थिति वाँध कर दूसरे समयमें पुनः उसी स्थितिका वन्ध करता है उसके उत्कृष्ट
अवस्थान होता है। परस्थानमें यह उत्कृष्ट अवस्थान सम्भव न होनेसे स्वस्थानको अपेन्ना
ही इसका निर्देश किया है। शेप व्याख्यान स्पष्ट है।

३४७. ग्रादेशकी प्रपेत्ता नारिकयों में सात कमोंकी उत्कृष्ट वृद्धि ग्रौर उत्कृष्ट ग्रवस्थान ग्रोघके समान है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो उत्कृष्ट स्थितका वन्ध करते हुए साकार उपयोगका त्तय होनेसे संक्लेश परिणामोंकी हानि होकर तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितका वन्ध करता है उसीके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार सव नारिकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिक मनुष्य त्रिक, देव, सहस्रार कर्णतकके देव, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसिद्धक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, ग्रौदारिककाययोगी, वैकियिककाययोगी, स्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, विभक्षक्षानी, चलुदर्शनी, पाँच लेक्यावाले ग्रौर संशी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले श्रोधकी श्रपेत्ता परस्थानका श्रवलम्बन लेकर उत्कृप्ट हानि वतलाई थी। यहाँ जो मार्गणा विवित्तत हो उसीमें उत्कृष्ट हानि लाना इप्ट है, इसिलए उत्कृप्ट स्थिति-वन्ध कराते हुए तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिवन्ध करा कर यह उत्कृप्ट हानि लाई गई है। यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई गई हैं इन सबमें संबी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि श्रवस्था सम्भव होनेसे उनकी श्रपेत्ता यह कथनी करनी चाहिए।

३४८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपयित्तकों सात कर्मोंकी उत्कृष्ट चृद्धि किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करते हुए तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उत्कृष्ट चृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए साकार उपयोग का चृय होनेसे संक्लेश परिणामोंकी हानिवश तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा इसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है।

पज्ज० आणदादि उवरि सन्वह त्ति सन्वएइंदिय-विगलिदिय-पंचिदिय-तसत्रपज्ज०-सन्वपंचका०-ओरालियमि०-वेडन्वियमि०-आहार०-आहारमि०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदोव०-परिहार०-संजदासंजद-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसमस०-सासण०-सम्मामि०।

३४६. कम्मइ०-अणाहार० सत्तरणं क० उक्कस्सिया वड्डी कस्स होदि ? यो तप्पाओगगजहरण्ययं हिदि वंधमाणो तप्पाओगगजकस्सयं संकिलेसं गदो तप्पा- अोगगजकस्सयं हिदिवंधो तस्स उक्कस्सिया वड्डी । उक्कस्सिया हाणी कस्स होदि ? यो तप्पाओगगजकस्सयं हिदि वंधमाणो सागारक्षण्य पिडिभगगो तप्पाओगगजह- एणए पिददो तस्स उक्क० हाणी । उक्कस्सयमवद्वाणं कस्स होदि ? वादरएइंदियस्स तप्पाओगगिहदीदो हाणी उक्कस्सयं काद्ण अविदिस्स तस्सेव से काले उक्कस्सयमवद्वाणं।

३५०. [अवगदवे०] सत्तरणं क० उक्क० वड्ढी कस्स होदि ? उवसायगस्स परि-वदमाणस्स अणियद्दिवादरसांपराइयस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्सयमवद्वाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स होदि ? उवसामय-

इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, श्रानत कल्पसे लेकर सर्वार्थ सिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावरकाय, श्रोदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्तियकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, श्रामिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, खेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्रुद्धिसंयत, संयतासंयत, श्रवधिद्र्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्हिए, ज्ञायिकसम्यग्हिए वेदकसम्यग्हिए, उपश्मसम्यग्हिए, सासादनसम्यग्हिए श्रीर सम्यग्मिथ्याहिए जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणात्रोंमें त्रादेश उत्कृष्ट स्थित वन्ध होता है, दूसरे यहाँ उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि त्रौर उत्कृष्ट त्रावस्थानका जो कारण वतलाया है वह सबमें घटित हो जाता है इसलिए इनकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि त्रौर उत्कृष्ट त्रावस्थान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रापयिक्तांके समान कहा है।

३४९. कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृप्ट वृद्धि किसके होतो है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका चन्ध करते हुए तत्प्रायोग्य उत्कृप्ट संक्लेशको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृप्ट स्थितिका चन्ध करता है उसके उत्कृप्ट वृद्धि होती है । उत्कृप्ट हानि किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृप्ट स्थितिका चन्ध्र करते हुए साकार उपयोगके चय होनेसे संक्लेश परिणामोंकी हानिवश तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका चन्ध्र करता है उसके उत्कृप्ट हानि होती है । उत्कृप्ट श्रवस्थान किसके होता है ? जो वादर एकेन्द्रिय तत्प्रायोग्य उक्तप्ट स्थितिमेंसे उत्कृप्ट हानि करके श्रवस्थित रहता है उसके तदनन्तर समयमें उत्कृप्ट श्रवस्थान होता है ।

३४०. श्रपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो उपशा-मक पतनको प्राप्त होता हुश्रा श्रनिवृत्तिवादर साम्परायको प्राप्त होकर श्रनन्तर समयमें वेदसहित होगा उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है श्रीर उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो उपशामक श्रनिवृत्तिवादर साम्पराय अणियद्दिवादरसांपराइयस्स पढमादो हिदिवंधादो विदिए हिदिवंधे वद्टमाणयस्स तस्स उक्क० हाणी । एवं सुहुमसांपराइ० इएएां क० ।

३५१. असिएए० सत्तरणं क॰ उक्कं वड्डी कस्स होदि १ एइंदियो असिएए-पंचिंदिएस उववरणो तस्स उक्क॰ वड्डी होदि। असिएएपंचिंदियो एइंदियेस उववरणो तस्स उक्क॰ हाणी। उक्कस्सयमवद्वाणं असिएएपंचिंदिय० सत्थाणं कादन्वं।

३५२. जहएएए पगदं । दुवि॰—श्रोघे॰ श्रादे० । श्रोघे॰ सत्तएएं क॰ जहएएएया वड्डी कस्स होदि १ यो समयूणडकस्सियं द्विदि वंधमाणो पुएएएए
द्विदंधगद्धाए डकस्सयं संकिलोसं गदो डकस्सयं द्विदिवंधो तस्स जहिएएया वड्डी ।
जहिएएया हाणी कस्स होदि १ यो समयुत्तरं जहएएएयं द्विदिवंधो तस्स जहिएएया
द्विदंधगद्धाए डकस्सयं विसोधि गदो तस्स जहएएएयं द्विदिवंधो तस्स जहिएएया
हाणी । एकदरत्थ श्रवहाणं । एवं सत्थाणं याव श्रणाहारग ति । एविर श्रवगद०साहुमसं० सत्तएएं क झएएं क॰ जहिएएया वड्डी कस्स होदि १ डवसामयस्स परिवदमाएएस विदिए द्विदवंधे वट्टमाएएस तस्स जह० वड्डी । जहिएएया हाणी कस्स० १
खवगस्स चिरमे द्विदवंधे वट्टमाएएस तस्स जह० हाणी । तिम्ह चेव जहिएएय
यमवहाणं ।

जीव प्रथम स्थितिवन्धके बाद द्वितीय स्थितिवन्धमें विद्यमान होता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार सुस्मसाम्परायिक जीवोंके छह क्रमौंकी अपेचा उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि श्रीर उत्कृष्ट अवस्थान जानना चाहिए।

३४१. श्रसं ज्ञी जोवों सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किससे होती है १ जो एकेन्द्रिय श्रसं ज्ञी पञ्चेन्द्रियों पञ्चेन्द्रियों पञ्चेन्द्रियों पञ्चेन्द्रियों उत्पन्न होता है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। जो श्रसं ज्ञी पञ्चेन्द्रिय एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उत्कृष्ट श्रवस्थान श्रसं ज्ञी पञ्चेन्द्रियके स्वस्थानकी श्रपेना कहना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

३५२. श्रव जघन्यका प्रकरण है। उसकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध श्रीर श्रादेश। श्रोधसे सात कमींकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हुए स्थितवन्धके कालके पूर्ण हो जानेपर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितवन्ध करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? जो एक समय श्रधिक जघन्य स्थितका वन्ध करते हुए जघन्य स्थितवन्धके कालके पूर्ण हो जानेपर उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर जघन्य स्थितवन्ध करता है उसके जघन्य हानि होती है। तथा इनमेंसे किसी एक जगह जघन्य श्रवस्थान होता है। इस प्रकार स्वस्थानकी श्रपेक्षा अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रपगतवेदी श्रीर स्क्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात श्रीर छह कर्मोक्षी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो उपशामक उपशम श्रेणिसे उतरते हुए दूसरे स्थितवन्धका प्रारम्भ करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किससे होती है ? जो जपक श्रन्तिम स्थितवन्ध कर रहा है उसके जघन्य हानि होती है श्रीर इसीमें जघन्य श्रवस्थान होता है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

ऋप्पाबहुगं

३५३. त्राणावहुगं दुवि० — जहएएएयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि — त्रोघे० त्रादे० । त्रोघे० सत्तरणं कम्माणं सन्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्डी । उक्कस्सयम-वद्वाणं विसेसाहियं। उक्क० हाणी विसेसा० । त्रोघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-मदि०-सुद्०-त्रसंज०-त्रचक्खु०-भवसि०-त्रब्भवसि०-मिच्छादि०-त्राहारग नि ।

३५४. शिरएस सत्तरणं क० सन्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्डी । उक्कस्सिया हाणी उक्कस्सियमवडाणं च दो वि तुल्ला विसे०। एवं सन्वाणं अर्णाहारग ति । एवरि तिएणं मिस्सगाणं सत्तरणं क० सन्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी । उक्कस्सिया वड्डी अवडाणं च दो वि तुल्लाणि संखेजागु०।

३५५. कम्मइ०-अग्राहा० सत्तरणं क० सन्वत्थोवा उक्कस्सयमवद्दाणं। उक्क० वड्डी० सं०ग्र०। उक्क० हाणी विसे०। अवगद० सत्तरणं क० सन्वत्योवा उक्क-िस्सया हाणी। उक्क० वड्डी अवद्दाणं असं०ग्र०। ग्रविर घादीणं संखेजजग्रणाए। एवं सुहुमसं० छरणं क०। ग्रविर सन्वेसिं घादीणं भंगो।

३५६. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तराणं क० सन्वत्थोवा उक्क० हाणी अवद्वाणं । उक्क० वट्टी सं०ग्र०। एवं मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-

३४३. ग्रह्मवहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य ग्रीर उत्हृप्ट। उत्हृप्टका प्रकरण है। उसकी ग्रमें विदेश दो प्रकारका है—ग्रोघ ग्रीर ग्रादेश। ग्रोघसे सात कमें की उत्हृप्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। इससे उत्हृप्ट ग्रवस्थान विशेष ग्रिधिक है। इससे उत्हृप्ट हानि विशेष ग्रिधिक है। इससे उत्हृप्ट हानि विशेष ग्रिधिक है। इसी प्रकार ग्रोघके समान काययोगी, कोधिद चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, ग्रसंयत, श्रवश्चदर्शनी, भन्य, ग्रभन्य, मिथ्याद्य ग्रीर ग्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३५४. नारिकयों में सात कर्मोंकी उत्कृप्ट वृद्धि सवसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दोनों तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक सवके अल्पवहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीनों मिश्रयोगवाले जीवोंके सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि सवसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान ये दोनों तुल्य होकर संख्यातगुरों हैं।

३५४. कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवों में सात कर्मोंका उत्कृष्ट श्रवस्थान सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यातगुणी है श्रीर इससे उत्कृष्ट हानि विशेष श्रधिक है। श्रपगतवेदी जीवों में सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि श्रीर श्रवस्थान श्रसंख्यातगुणे हैं। इतनी विशेषता है कि घाति कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि श्रीर श्रवस्थान संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सुदमसाम्परायसंयत जीवों में छहः कर्मोंके उक्त पदोंका श्रव्यवहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनके सब कर्मोंके उक्त पदोंका श्रव्यवहुत्व घाति-कर्मोंके समान है।

३४६. श्राभिनिवोधिकशानी, श्रुतक्षानी श्रौर श्रवधिक्षानी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि श्रौर श्रवस्थान सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यातगुणी है। इसी प्रकार मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिकसंयत, होदोपस्थापन।संयत, परिहारिवरृद्धिरंदत, संय- श्रोधिदं ॰ -सम्मादि ॰ -वेदगस ॰ -खनसम ॰ -सांसण ॰ -सम्मामि ॰ । णवरि णिरयभंगो यदि सत्थाणे सामित्तं दिज्जिद् । श्रथ मिच्छत्ताभिग्रहस्स तदो वड्ढी संके गुणं । खइगे णिरयभंगो । श्रसण्णि ॰ सन्वत्थोवा उक्क श्रवद्वाणं । उक्क वड्ढी सं ॰ गु॰ । उक्क ॰ हाणी विसेसाहिया । एवं उक्कस्सं समत्तं ।

३५७, जहराणए पगदं । दुवि—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघेण सत्तारणं क० जहरिएणया वड्डी जहरिएणया हाणी जहराणयमवहाणं तिरिएण वि तुल्लाणि । एवं याव श्रणाहारग ति । एवरि श्रव्रगद्वे० सन्वत्थोवा सत्तारणं कम्माणं जहरिएणया हाणी श्रवहाणं । जह० वड्डी सं०गु० । एवं सुहुमसंप० छएणं कम्माणं । एवं श्रप्णावहुगं समत्तं ।

एवं पद्शिक्खेवं समत्तं।

तासंयत, श्रविधदरांनी, सम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट, उपशमसम्यग्दिष्ट, सांसादनसम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिण्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यदि स्वस्थानकी श्रपेचा स्वामित्व प्राप्त किया जाता है तो नारिकयोंके समान श्रव्पवहुत्व है श्रीर यदि मिण्यात्वके श्रिमिस्त प्राप्त किया जाता है तो नारिकयोंके समान श्रव्पवहुत्व है श्रीर यदि मिण्यात्वके श्रिमिस्त हुए इन जीवोंका श्रव्पवहुत्व प्राप्त किया जाता है तो वृद्धि संख्यातगुणी है। चायिकसम्यग्दिष्ट जीवोंमें उक्त पदोंका श्रव्पवहुत्व नारिकयोंके समान है। श्रसंक्षी जीवोंमें उत्कृष्ट श्रवस्थान सवसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यातगुणी है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष श्रिषक है।

विशेपार्थ—यहाँ श्राभिनियोधिक हानी से लेकर सम्यग्मिण्याहिए तक जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं इन सब मार्गणायाले जीवोंका मिण्यात्व गुणस्थानमें भी गमन सम्भव है। उसमें भी सासादन गुणस्थानवाले तो नियमसे मिण्यात्वमें जाते हैं। इसलिए इन मार्गणाश्रोंमें श्राल्य हुत्व दो प्रकारका प्राप्त होता है। जवतक ये मिण्यात्वके श्रामे गुल नहीं होते हैं तव तक इनमें नारिक योंके समान श्राल्य हुत्व है। अर्थात् सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है श्रीर इससे उत्कृष्ट हानि व उत्कृष्ट श्रवस्थान ये दोनों तुल्य होकर विशेष श्रिधक हैं। श्रीर जव ये मिण्यात्वके श्रामे मुख होते हैं तब श्राल्य हुत्व इस प्रकार होता है—सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि श्रीर उत्कृष्ट श्रवस्थान दोनों तुल्य होकर सवसे स्तोक हैं श्रीर इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यात गुणी है। यहाँ श्रोघ श्रीर श्रादेशसे श्रायुकर्मका श्राल्य हुत्व नहीं कहा है सो इसका कारण यह है कि श्रायुकर्मके स्थितिवन्धमें इस तरहकी वृद्धि, हानि श्रीर श्रवस्थान सम्भव नहीं है। उसमें केवल प्रथम समयके वन्धके बाद हानि ही होती है, इसलिए उसमें श्राल्य हुत्व घटित नहीं होता। इस प्रकार उत्कृष्ट श्राल्य हुत्व समाप्त हुत्रा।

३५७. श्रव जघन्य श्रत्पबहुत्वका प्रकरण है। इसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ श्रोर श्रादेश। श्रोधसे सात कमोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि श्रोर जघन्य श्रवस्थान ये तीनों ही तुल्य हैं। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रपगतवेदी जीवोंमें सात कमोंकी जघन्य हानि श्रोर श्रवस्थान सबसे स्तोक है। इनसे जघन्य वृद्धि संख्यातगुणी है। इसी प्रकार सूदमसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कमोंका श्रस्प बहुत्व है। इस प्रकार श्रह्मबहुत्व समाप्त हुआ।

६स प्रकार पद्निचेप समाप्त हुआ।

१. मूलप्रती वड्डी समं गुणं इति पाठः ।

वड्डिबंधो ३५८. वड्डिवंधे ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगदाराणि—सम्रक्तित्तणा सामित्तं एवं याव अप्पावहुगे ति ।

समुक्तित्तगा

३५६. समुक्तित्तणदाए दुविधो णिद सो—श्रोघेण श्रादेसेण य। तत्थ श्रोघेण सत्तराणं क॰ अत्थि चत्तारिवड्ढि॰चत्तारिहाणि॰अविदः०अवत्तव्ववंधगा य । आयु॰ अत्थि अवत्तव्ववंधगा य असंखेजनभागहाणिवंधगा य । एवं आयु॰ याव अणाहारग ति । यथा त्रोघेण तथा मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-स्रोरात्तियका०-स्राभि०-सुद्०-स्रोधि०-मणप्रज्ज०-संजद्०-चक्खुदं०-स्रच-क्लुदं०-श्रोधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सिएए-श्राहारग ति ।

वृद्धिवन्ध

े ३४८. अव वृद्धिवन्धका प्रकरण है। उसमें ये तेरह श्रनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना श्रीर स्वामित्वसे लेकर श्रल्पवहुत्व तक ।

विशेषार्थ-जिसमें छहगुणी हानि वृद्धिका विचार किया जाता है उसे वृद्धि अनुयोग-द्वार कहते हैं। यहाँ वृद्धि पद उपलक्त्या है, इसलिए इस पदसे हानिका भी ग्रह्या हो जाता है। यहाँ स्थितिवन्धका प्रकरण होनेसे इसका नाम वृद्धिवन्ध पड़ा है। मुख्यरूपसे इसका विचार तेरह श्रनुयोगद्वारोंके द्वारा किया जाता है। प्रकृतमें प्रारम्भके समुत्कीर्तना श्रीर स्वा-मित्व ये दो तथा अन्तिम ऋल्पवहुत्व इन तीनका नाम निर्देश किया है। सव ऋनुयोगद्वारींके नाम ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी श्रपेद्मा काल, श्रन्तर, नाना जीवोंकी त्रपेत्ता भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, त्रेत्र, स्पर्शन, काल, श्रन्तर, भाव, श्रौर श्रह्पबहुत्व ।

सम्रत्कीर्तना

३४९. समुत्कीर्तनाकी अपेका निर्देश दो प्रकारका है—ओंघ और श्रादेश । उनमेंसे श्रोध-की अपेत्रा सात कर्मोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका वन्ध करनेवाले जीव हैं। आयुक्तमंके अवक्तव्यपद्का वन्ध करनेवाले श्रीर श्रसंख्यात भागहानिपद्का वन्ध करनेवाले जीव हैं । इसी प्रकार श्रायुकर्मकी श्रपेका श्रनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए । तथा शेप सात कर्मींकी अपेन्ना जिस प्रकार श्रोघमें कहा है उसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पञ्चे-न्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रीदारिक काययोगी, श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चचुद्रश्नी, श्रवधुद्रश्नी, श्रवधिदर्शनी, ग्रुक्कलेश्यावाले, भन्य, सस्यग्दष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दष्टि, उपश्रमसम्यग्दष्टि, सं**शी** श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

- विशेषार्थ—आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रीर जघन्य स्थितिवन्धका पहले निर्देश कर आये हैं। साथ ही यह भी वतला श्राये हैं कि श्रायुकर्मका श्रवक्तव्यवन्ध होनेके वाद श्रल्प-तरवन्ध ही होता है। इस प्रकार इन ग्राठों कर्मोंके स्थितिवन्धके कुल विकल्पोंको देखते हुए इनमें अनन्तभागवृद्धि अनन्तभागहानि तथा अनन्तगुणवृद्धि श्रौर अनन्तगुणहानि तो कथ-मिप सम्मव नहीं हैं, क्योंकि कुल स्थितिविकल्प श्रसंख्यात ही हैं, इसलिये इनमें ये दो वृद्धि ३६०. आदेसेण णेरइएस सत्तरणं क०' अत्थि तिरिणविहु० तिरिणहाणि० अविद्विंधगा य । एवं णिरयभंगो' सन्वतिरिक्त-मणुसअपज्जत्त-सन्वदेव-पंचिदिय-तसअपज्जत्त-ओरालियमि०-वेजिवि०-वेजिवि०-वेजिवियमि०-आहार०-आहारमि०-कम्मइ०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-पंचले०-अवभविस०-वेदगस०-सासणस०-सम्मा-मिच्छादिहि-असिण्ण-अणाहारग ति । णविर इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-सामाइ०-छेदो० सत्तरणं क० अत्थि चत्तारिविहु० चत्तारिहाणि० अविद्ववंधगा य । लोभक० मोह० अवत्तव्ववंधगा य ।

श्रीर दो हानि सम्भव नहीं। यही कारण है कि यहाँ श्रीघसे सात कमोंकी चार वृद्धि श्रीर चार हानियोंका निर्देश किया है। श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्यपद स्पष्ट ही हैं। श्रव रहा श्रायुक्तमें सो इसका जब वन्ध प्रारम्भ होता है तब प्रथम समयमें एक मात्र श्रवक्तव्य पद ही होता है श्रीर श्रनन्तर अल्पतर पद होता है। फिर भो उस श्रल्पतर पदमें कौनसी हानि होती है, यही वतलानेके लिए यहाँ वह श्रसंख्यातभागहानि ही होती है यह स्पष्ट निर्देश किया है। इस प्रकार श्राठों कमोंमें कौन कौन पद होते हैं यह स्पष्ट हो जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि नरकगित मार्गणासे लेकर श्रनाहारक मार्गणा तक सब मार्गणाश्रोंमेंसे जिसमें श्रायुकर्मका बन्ध होता है उसमें श्रवक्रव्य श्रीर श्रसंख्यातभागहानि ये दो पद ही होते हैं इसलिए इनकी प्रक्षपणा श्रीघके समान कही है पर स्नात कमोंकी श्रपेक्ता भी श्रन्य जिन मार्गणाश्रोंमें यह श्रोध प्रक्षपणा श्रीवकल घटित हो जाती है उनकी प्रक्षपणा भी श्रोघके समान कही है। ऐसी मार्गगाश्रोंका नाम निर्देश मूलमें किया ही है।

३६०. श्रादेशकी श्रपेत्ता नारिकयों में सात कमें ते तीन वृद्धि, तीन हानि श्रीर अवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव हैं। इसी प्रकार नारिकयों के समान सब तिर्यञ्च,
मनुष्य श्रपर्याप्त, सब देव, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त, त्रस श्रपर्याप्त, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, वैकियिककाययोगी, वैकियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, कार्मण्
काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी,
विभक्षक्षानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्वद्धिसंयत, संयतासंयत, श्रसंसंयत, पाँच लेश्यावाले, श्रभव्य, वेदकसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट, सम्यग्मिश्यादिष्ट,
श्रसंक्षी श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी,
नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें
सात कर्मोंके चार वृद्धि, चार हानि श्रीर श्रवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव हैं। तथा
लोभकपायमें मोहनीय कर्मके श्रवक्तव्यपदका वन्ध करनेवाले जीव हैं।

विशेपार्थ—यहां श्रसंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि श्रीर संख्यात गुणवृद्धि ये तीन वृद्धियां हैं। तथा असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि श्रीर संख्यात गुणहानि ये तीन हानियां हैं। इनमें श्रसंख्यात गुणवृद्धि और श्रसंख्यात गुणहानिके मिलानेपर चार वृद्धियां श्रीर चार हानियां होती हैं।

१. मूलप्रती क॰ श्रविष्ठ तिथिण इति पाठः। २. मूलप्रती—भंगो सन्वमणुसितिरिक्खश्रपज्ञत्त इति पाठः।

३६१. एइंदिय-पंचका० सत्तरणं क० अत्थि असंखेजनभागविद्ध-हाणि अविद्विधमा य । सन्विवालिदिएस सत्तरणं क० अत्थि असंखेजनभागविद्ध-हाणि०संखे-जनभागविद्ध-हाणि० अविद्विधमा य । अवगद० णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइ०-अत्थि संखेजनभागविद्ध-हाणि० संखेजनगुणविद्ध-हाणि० अविद्वि० अवत्तन्ववंधमा य । वेदणीय-णामा-गोदाणं अत्थि संखेजनभागविद्ध-हाणि० [संखेजनगुणविद्ध-हाणि०] असंखेजनगुणविद्ध-हाणि०अविद्व० अवत्तन्ववंधमा य । मोहणीय० अत्थि संखेजनभागविद्ध-हाणि० अविद्व० अवत्तन्ववंधमा य । मोहणीय० अत्थि संखेजनभागविद्ध-हाणि० अविद्व० अवत्तन्ववंधमा य । मह्मसंप० छएणं क० अत्थि संखेजनभागविद्ध-हाणि० अविद्ववंधमा य । एवं समुक्तित्तणा समत्ता ।

३६२. सामित्ताणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादेसे०। श्रोघेण सत्तरणं क० श्रसंखेन्जभागविड्ड-हाणि-श्रविद्वंधो कस्स होदि ? श्रणणदरस्स एइंदियस्स वीइंदि०
तीइंदि० चदुरिंदि० पंचिदि० सिण्णि'०श्रसिण्णि० पन्जत्त० श्रपन्जत्तगस्स वा।
संखेन्जभागविड्ड-हाणि० कस्स होदि ? श्रणणदरस्स वेइंदियस्स वा तेइंदि० चदुरिंदि०
पंचिदि० सिण्णि० श्रसिण्णि० पन्ज० श्रपन्ज०। संखेन्जगुणविड्ड-हाणिवंधो कस्स होदि ?
श्रणणदर० पंचिदियस्स सिण्णस्स वा पन्जत्तस्स वा श्रपन्जत्तस्स वा। श्रसंखेन्ज-

३६१. एकेन्द्रिय श्रीर पांचों स्थावरकाय जीवोंमें सात कमोंके श्रसंख्यात भागवृद्धि, श्रसंख्यात भागहानि श्रीर श्रवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव हैं। सव विकलेन्द्रियोंमें सात कमोंके श्रसंख्यात भागवृद्धि, श्रसंख्यात भागहानि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात श्रावृद्धि, संख्यात श्रावृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, श्रवंख्यातगुणवृद्धि, श्रसंख्यातगुणवृद्धि, श्रसंख्यातगुणवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागव्यात भागव्यात भागव्यात भागव्यात भागव्यात

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

३६२. स्वामित्वानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेचा सात कर्मोंका असंख्यात भागवृद्धि असंख्यात भागहानि और अवस्थित वन्ध किसके होता है ? अन्यतर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय संक्षी और पञ्चेन्द्रिय असंबी इन सब पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके होता है। संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानि वन्ध किसके होता है ? अन्यतर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय संक्षी और पञ्चेन्द्रिय असंबी इन सब पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके होता है। संख्यात गुणवृद्धि वन्ध और संख्यात गुणहानि वन्ध किसके होता है ? अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संबी पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय संबी अपर्याप्त जीवके होता है। असंख्यात गुणवृद्धिबन्ध किसके

१. सिएण त्ति असिएण० इति पाठः ।

गुणविहुवंघो कस्स होदि १ अग्णदरस्स उवसामणादो परिवदमाणस्स अणियिह-वादरसांपराइगस्स पढमसमयदेवस्स वा । असंखेज्जगुणहाणिवंघो कस्स होदि १ अग्णदरस्स उवसामगस्स वा खवगस्स वा अणियिहवादरसांपराइगस्स । अवत्तव्व-वंघो कस्स होदि १ अग्णदरस्स उवसामगस्स परिवदमाणस्स मणुसस्स वा मणुसि णीए वा पढमसमयदेवस्स वा । आयुगस्स अवत्तव्ववंघो कस्स होदि १ अग्णदरस्स पढमसमयआयुगवंधमाणस्स । तेण परं असंखेज्जभागहाणिवंघो । एवं कायजोगि-अचक्खु०-भवसि'०-आहारग ति ।

३६३. आदेसेण णेरइएस सत्तरणं कम्माणं तिरिणविट्ट-हाणि-अविट्टवंधो कस्स होदि ? अर्णवर्स्स । आयु० दो वि पदा ओघं । सन्वत्थ आयु० ओघमंगो । एवं भिद्द०-सुद०-असंज०-िक्सण०-णील०-काड०-अब्भविस०-िमच्छादिष्टि ति । सन्वपंचिदियतिरिक्त-मणुस्सअपज्जत्त-सन्वदेव-पंचिदिय-तसअपज्जत्ता-वेडिन्वय०-वेडिन्वयि०-आहार०-आहारिम०-विभंग०-परिहार०-संजदासंजद०-तेड०-पम्मले०-वेदग० सासण०-सम्मामि० णिरयभंगो कादन्वो । एइंदिएस सत्तरणं क० एगविट्टि-हाणि-अविट्टवंधो कस्स होदि ? अएणदरस्स । एवं पंचकायाणं । विगलिदिएस सत्तरणं क० दोिएणविट्ट-हाणि-अविट्टवंधो कस्स होदि ? अएणदरस्स । एवं

होता है ? श्रन्यतर जो उपशम श्रेणिसे गिरकर अनिवृत्तिवादरसाम्पराय हुआ है श्रथवा प्रथम समयवर्ती देव हुआ है उसके होता है । श्रसंख्यात गुणहानिवन्ध किसके होता है ? श्रन्यतर उपशामक श्रनिवृत्तिवादरसाम्परायिक जीवके श्रथवा ज्ञपक श्रनिवृत्तिवादर साम्परायिक जीवके होता है । श्रवक्षन्यवन्ध किसके होता है ? उपशमश्रेणिसे गिरनेवाले श्रन्यतर मनुष्य, मनुष्यमी श्रीर प्रथम समयवर्ती देवके होता है । श्रायुकर्मका श्रवक्षन्यवन्ध किसके होता है ? श्रन्यतर प्रथम समयवर्ती श्रायुकर्मका बन्ध करनेवाले जीवके होता है । इससे श्रागे आयुकर्मका श्रसंख्यात भागहानिवन्ध होता है । इसी प्रकार काययोगी, श्रचश्च-दर्शनी, भन्य श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३६३. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कर्मोंका तीन वृद्धिवन्ध, तीन हानिबन्ध श्रीर श्रव-स्थितवन्ध किसके होता है ? श्रन्यतरके होता है । श्रायुक्तमंके दोनों ही पदोंका स्वामित्व श्रोधके समान है । इसी प्रकार सर्वत्र श्रायुक्तमंके दोनों पदोंका स्वामित्व श्रोधके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रृताज्ञानी, श्रसंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, श्रभव्य श्रीर मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य श्रुपर्याप्त, सब देव, पञ्चेन्द्रिय श्रुपर्याप्त, त्रस श्रुपर्याप्त, विक्रीयक काययोगी, विक्रीयक मिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, परिहारिविश्रुद्धि-संयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि श्रीर सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके नारिकयोंके समान भङ्ग करना चाहिए। एकेन्द्रियों में सात कर्मोंका एक वृद्धिबन्ध, एक हानिवन्ध श्रीर श्रवस्थितवन्ध किसके होता है ? श्रन्य-तरके होता है। विक्रलेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके दो वृद्धियोंका बन्ध, दो हानियोंका बन्ध श्रीर

१. मूलप्रतौ मदसि॰ श्रणाहारग इति पाठः। २. मूलप्रतौ सन्वद्धा श्रायुश्रोध— इति पाठः। ३. मूलप्रतौ वेदग॰ सम्मादि॰ सासण॰ सम्मादि॰ णिरय—इति पाठः

असिएणः । एवरि संखेजनगुणविद्विषये कस्स होिद ? अएणदरस्स एईदियः विगलिदियस्स वा विगलिदिएस असिएएपंचिदिएस उववज्जमाणस्स । संखेज्ज-गुणहािण तिव्ववरीदं णेदव्वं ।

३६४. मणुस०३ सत्त्राणं क० ओघं। णवरि अवत्तव्ववंधो देवो ति ण भाणि-दव्वं। एवं ओरालियका०-मणपज्ज०-संजद०। ओरालियमि० तिरिक्लोघं कादव्वं।

३६५. पंचिदिय-तस० तेसिं पज्जत्त० सत्तरणं क० तिरिणविहु-हाणि-अविदि-वंशो कस्स होदि ? अएणदरस्स । असंखेज्जगुणविहु-हाणि-अवत्तव्वं ओघं । एवं आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादिष्टि-खइग०-सिरिण ति । पंचमण०-पंचविष्ठ मणुसभंगो ।

३६६. कम्मइ० सत्ताणं क० तिरिणविष्टु-हाणि-अविदे कस्स १ अण्णदरस्स । एवं अणाहार० । तिरिणवेद०—चत्तारिकसाय०-सामाइ०-छेदो० पंचिंदयभंगो । णविर अवत्तव्वगं णित्थ । लोभे मोहणी० अवत्तव्वं अत्थ । अवगद० णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइ० संखेज्जभागविष्टु-संखेज्जगुणविष्टु-अवत्तव्ववंधो

अवस्थित वन्ध किसके होता है ? श्रन्यतरके होता है । इसी प्रकार श्रसंक्षी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात गुणवृद्धिवन्ध किसके होता है ? जो कोई एक एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर विकलेन्द्रियोंमें श्रीर श्रसंक्षी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके होता है। इनके संख्यातगुणहानियन्धका कथन इससे विपरीत क्रमसे जानना चाहिए।

३६४. मनुष्य त्रिकमें सात कमांके सव पदोंका स्वामित्व ग्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्षव्य वन्धका स्वामी देव होता है यह नहीं कहना चाहिए। इसी प्रकार ग्रोदारिक काययोगी, मनः पर्ययक्षानी ग्रोर संयत जीवोंके जानना चाहिए। ग्रोदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सम्भव सव पदोंका स्वामित्व सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहना चाहिए।

३६४. पञ्चे न्द्रिय, त्रस ग्रौर इनके पर्याप्त जीवोंमें सात कमौंकी तीन वृद्धियोंका वन्ध, तीन हानियोंका वन्ध ग्रौर श्रवस्थितवन्ध किसके होता है ? श्रन्यतरके होता है । श्रसंख्यात गुणवृद्धिवन्ध, श्रसंख्यातगुणहानिवन्ध श्रौर श्रवक्तव्यवन्धका स्वामित्व श्रोधके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार श्रामिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, चजुदर्शनी, श्रवधि-दर्शनी, श्रुक्केश्यावाले, सम्यग्दिष्ट, ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी जीवोंके सव पदोंका स्वामित्व मनुष्योंके समान है।

३६६. कार्मण्काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियोंका वन्ध, तीन हानियोंका वन्ध और अवस्थितवन्ध किसके होता है ? अन्यतरके होता है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। तीन वेदवाले, चार कपायवाले, सामायिकसंयत और छेदोप-स्थापनासंयत जीवोंके सब पदोंका स्वामित्व पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्षव्यपद नहीं है। किन्तु लोभकषायमें मोहनीय कर्मका अवक्षव्य पद है। अवगतवेदी जीवोंमें शानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मकी संख्यातभाग वृद्धिका बन्ध,

१. मूलप्रतौ श्रवत्तव्वं ग्रात्थि इति पाठः ।

कस्स ? अएणदरस्स जनसामगस्स परिवदमाणगस्स । दोहाणि० अवहि० कस्स ? अएणदरस्स जनसामगस्स ना खनगस्स ना । एवं मोहणीयस्स संखेळाभागविहु-हाणि० अविहद० अवत्तन्ववंधगा य । वेदणीय-णामा-गोदाणं तििएणविहु-अवत्तन्ववंधो कस्स ? अएणदरस्स जनसामगस्स परिवदमाणस्स । तििएणहाणि-अविहदवंधो कस्स होदि ? अएणदरस्स जनसामगस्स ना खनगस्स ना । सुहुमसंप० अएणं क० संखेज्जभागविही कस्स ? अएणदरस्स जनसामगस्स परिवदमाणस्स । संखेळाभागहाणि-अविहदवंधो कस्स ? अएणदरस्स जनसामगस्स ना खनगस्स ना । जनसमसम्मादिही० ओधिभंगो। एविर खनग ति ए भाणिद्वनं । एवं सामित्तं समत्तं।

कालो

३६७. कालाणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे०। श्रोघेण सत्तरणं क० चत्तारि-विट्ट-तिरिणहाणिवंधो केव०? जह० एग०, जक० वेसम०। श्रसं०गुणहाणि-श्रवत्त०' जहरणुक्क० एग०। श्रविह० जह० एग०, जक्क० श्रंतो०। श्रायुग० दो वि पदा० भ्रजगारभंगो। एवं श्रोघभंगो एसिं चत्तारिविट्टि-हाणि० श्रविहद० श्रवत्तव्व-वंधगा य श्रत्थि तेसिं। एवरि मणुस०३-पंचमण०-पंचविच०-श्रोरालियका०-इत्थि०-

संख्यातगुणबृद्धिका वन्ध श्रीर श्रवक्तव्य वन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक गिरने वालेके होता है । दो हानियोंका वन्ध श्रीर श्रवस्थित वन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक श्रीर चपकके होता है । इसी प्रकार मोहनीयकी संख्यात मागवृद्धि, संख्यातभागहानि, श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी जानना चाहिए । वेदनीय, नाम श्रीर गोत्र कर्मकी तीन वृद्धियोंका वन्ध श्रीर श्रवक्तव्यवन्ध किसके होता है । किसी भी उपशामक गिरनेवालेके होता है । तीन हानियोंका वन्ध श्रीर श्रवस्थितवन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक श्रीर चपकके होता है । सूदमसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंकी संख्यातभागवृद्धिका वन्ध किसके होता है ! किसी भी उपशामक गिरनेवालेके होता है । संख्यातभागवृद्धिका वन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक गिरनेवालेके होता है । संख्यातभागवृद्धिका चन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक श्रीर चपकके होता है । उपशम सम्यग्हिए जीवोंमें सम्भव सव पदोंका स्वामित्व श्रवधिज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि यहाँपर 'चपकके होता है' ऐसा नहीं कहना चाहिए ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

काल

३६७. कालानुगमकी श्रपेना निर्देश दो प्रकारका है। श्रोघ श्रोर श्रादेश। श्रोघकी श्रपेना सात कमोंके चार वृद्धिवन्ध श्रोर तीन हानिवन्धका काल कितना है? जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृप्ट काल दो समय है। श्रमंख्यातगुणहानिवन्ध श्रोर श्रवक्तव्य वन्धका जघन्य श्रोर उत्कृप्ट काल एक समय है। श्रविश्यितवन्धका जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृप्ट काल श्रन्तमुँहूर्त है। श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका काल भुजगारवन्धके समान है। जिन मार्गणाश्रोंमें चारों वृद्धियों, चारों हानियों, श्रवस्थित श्रोर श्रवक्तव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव हैं उनमें सव पदोंका काल इसी प्रकार श्रोघके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यित्रक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, श्रोदारिक काययोगी, स्री-

१. मूलप्रतौ श्रवत्त० जह० एग० इति पाठः ।

णबु'स०-मणपज्जव-संजद-सामाइ०-छेदो० असंखेज्जगुणविहृवंघो० जहएणु० एगस० । ३६८. आदेसेण ऐरइएसु सत्तरणं क० तिरिणहाणि-अवद्विद० ओघं। कम्मइ०-अवगदवे०-सहुमसं०-अणाहार वज्ज सेसाणं सगपदा णिरयभंगो । णविर असरिण० संखेज्जगुणविहृ-हाणि० जहएणु० एगस० ।

३६६. अवगद० तिरिएक० दोविष्ट्व-हाणि० वेदणी०-णामा-गोदाणं तिरिएा-विष्टु-हाणि० मोहणी० एगविष्टु-हाणि० जहरणु० एगस० । सत्तरणं क० अविद्दि०-अवत्त० ओवं । सहस्रां० छरणं क० एगविष्ट्र-हाणि० जहरणुक्क० एग० । अविद्दि० ओवं । कम्मइ०-अणाहार० सत्तरणं क० तिरिएविट्टि-हाणि० जह० उक्क० एग० । अविद्दि० जह० एग०, उक्क० तिरिए समयं । एवं कालं समत्तं ।

अंतरं

३७०. श्रंतराणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे०। श्रोघेण सत्तरणं क० श्रसंखेजा-भागवड्डि-हाणि-श्रवद्दिवंधंतरं जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । दोवड्डि-हाणिवंधंतरं वेदी, नपुंसकवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामियकसंयत श्रीर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्धका जघन्य श्रीर उरकृष्ट काल एक समय है।

विशेपार्थ - उपशामकके अनिवृत्तिकरणमें प्रथमवार और उसी समयमें मरकर देव होनेपर दूसरे समयमें उस पर्यायमें दूसरी वार असंख्यातगुणवृद्धिवन्ध करनेसे असंख्यात-वृद्धिवन्धका दो समय उत्कृष्ट काल उपलब्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट है।

३६८. आदेशसे नारिकयोंमें सात कर्मोंकी तीन हानि और अवस्थितवन्धका काल क्रोंघके समान है। कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और अनाहारक इन मार्गणाओंको छोड़कर शेष मार्गणाओंमें अपने अपने पदोंका काल नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंबी जीवोंमें संख्यातगुणवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणहानिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

३६९. अपगतवेदी जीवोंमें तीन कमोंके दो वृद्धिवन्ध और दो हानिवन्धका, वेदनीय, नाम और गोत्र कमेंके तीन वृद्धिवन्ध और तीन हानिवन्धका तथा मोहनीयके एक वृद्धिवन्ध और एक हानिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा सातों कमोंके अवस्थित-वन्ध और अवस्तव्यवन्धका काल श्रोधके समान है। स्दमसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कमोंके एक वृद्धिवन्ध और एक हानिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कमोंके तीन वृद्धिवन्ध और तीन हानिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित वन्धका जघन्य काल एक समय है। अवस्थित वन्धका जघन्य काल एक समय है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ। अन्तर

३५०. ग्रन्तरानुगमकी श्रपेक्षा निर्देश दों प्रकारका है—श्रोध श्रीर ग्रादेश। श्रोधकी श्रपेक्षा सात कर्मोंके श्रसंख्यातभागवृद्धिवन्ध, श्रसंख्यातभागहानिवन्ध और श्रवस्थितवन्धका जयन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है। दो वृद्धिवन्ध श्रीर दो हानिवन्ध का जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है जो श्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तनके वरावर है। श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर

जह॰ एग॰, उक्क॰ अर्णंतकालमसंखेजजपुग्ग॰। असंखेजजगुणवट्टि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अद्धपोग्गलप॰। असंखेजजगुणहाणि-अवत्तन्ववंधंतरं जह॰ अंतो॰, उक्क॰ अद्धपोग्गल॰। आयु॰ गुजगारभंगों । एवं ओघभंगो अचक्खु॰-भवसि॰।

३७१. त्रादेसेण ऐरइएम्च सत्त्तरणं क० तिरिणविष्टु-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। त्रविष्टि० जह० एग०, उक्क० वेसम०। एवं सन्विण्रिय-मणुस-त्रप्रज्ञत्त-सन्वदेव० एइंदिय-विगलिंदियपंचकायाणं सगपदा० वेजिव्वय०-विभंग०-परिहार०-संजदासंजद-तेज०-पम्मले०-वेदगस०-सासण०-सम्मामि०।

३७२. तिरिक्लेसु सत्तरणं क० तिरिणविष्टु-हाणि० श्रोघं। अविष्ट जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। एवं मिद०-सुद०-श्रसंज०-श्रब्भविस०-मिच्छादि०। पंचिदियतिरिक्ल०३ सत्तरणं क० दोविष्टु-हाणि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। संखेजागुणविष्टु-हाणिवंधंतरं जह० एग०, उक्क० पुन्वकोिडपुधत्तं। श्रविद्धि० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम०। पंचिदियतिरिक्ल-श्रपज्ज० सत्तरणं क० तिरिण

कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन है। असंख्यातगुणहानिवन्ध और अवक्रव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुर्त और उत्कृप्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है। आयुकर्मके दोनों पदोंका अन्तर भुजगारवन्धके समाव है। इसी प्रकार ओधके समान अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जिन जीवोंने अन्तर्मु हुर्त काल तक अवस्थितवन्ध होता है उनके असंख्यात-भागहानि और असंख्यातभागवृद्धिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहुर्त उपलब्ध होता है। जो जीव अन्तर्मुहुर्त काल तक उपशान्त मोहमें रहकर गिरते हैं उनके अवस्थितवन्धका अन्तर्मुहुर्त उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है। संख्यातभागवृद्धिवन्ध और संख्यातगुण-वृद्धिवन्ध तथा संख्यातभागहानिवन्ध और संख्यातगुणहानिवन्ध ये एकेन्द्रियके नहीं होते इसी वातको ध्यानमें रखकर इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है और असंख्यातगुण-हानिवन्ध तथा असंख्यातगुणवृद्धिवन्ध यतः श्रेणिमें ही होते हैं अतः इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्रल परिवर्तन कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३७१. श्रादेशसे नारिकयोंमें सात कमीं तीन वृद्धि श्रौर तीन हानि वन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। श्रवस्थितबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर दो समय है। इसी प्रकार सव नारिकी, मनुष्य श्रपर्यात्र, श्रौर सव देवोंके तथा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय श्रौर पाँच स्थावरकाय जीवोंके श्रपने श्रपने पदौंका तथा विक्रियककाययोगी, विभक्षकानी, परिहारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदगसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट, श्रौर सम्यग्मिश्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

३७२. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धि श्रौर तीन हानिवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। श्रवस्थितवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। इसी प्रकार मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, श्रसंयत, श्रभव्य श्रौर मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रकर्मे सात कर्मोंके दो वृद्धि श्रौर दो होनिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय

१. संगो । सन्बद्धा एवं इति पाठः ।

विड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रविट ० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम० । एवं पंचिदिय'श्रपज्ज० ।

३७३. मणुस०३ सत्ताएणं क० तिरिणविद्ध-हाणिवंधंतरं जह० एग०, उक० अंतो०। एवं अविद्ध० । असं०गुणविद्ध-हाणि-अवत्तव्ववं० जह० अंतो०, उक० पुव्व-कोडिपुधत्तं ।

३७४, पंचिदिय-तसपज्जत्ता सत्तरणं क॰ दोण्णिवड्डि-हाणि-अविद्ववंधंत्रं जह० एग० उक्क० अंतो०। संखेज्जगुणवड्डि-हाणि० पंचिदियतिरिक्खभंगो। असंखेज्जगुणवड्डि-हाणि-अवत्तव्व० मूलोघं। णवरि सगद्विदि भाणिदव्वं। तस-१

श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। संख्यातगुण वृद्धि श्रीर संख्यागुण्हानिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। श्रवस्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर तीन समय है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंमें सात कमें के तीन वृद्धिवन्ध और तीन हानिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। श्रवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर तीन समय है। इसी प्रकार श्रथित पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले भुजगारवन्धका उत्हर काल चार समय वतला श्राये हैं, इसलिए यहाँ सामान्य तिर्यञ्चोंमें श्रवस्थित वन्धका उत्हर श्रन्तरकाल चार समय कहा है। परन्तु जो एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय विकलत्रय या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होगा उसके ही यह अन्तर काल सम्भव है। वैसे अवस्थितवन्धका उत्हर अन्तर काल तीन समयसे श्रिषक उपलब्ध नहीं होता। यही कारण है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रक श्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रक श्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रक श्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रक श्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रक्ता उत्हर काल पूर्वकोटि पृथक्त काल तीन समय कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रका उत्हर काल पूर्वकोटि पृथक्त प्रमाण है। इसीसे इनमें संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिबन्धका उत्हर अन्तर काल पूर्वकोटि पृथक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रकमेंसे किसीने कायस्थितिके प्रारम्भमें संख्यातगुणवृद्धिवन्ध या संख्यातगुणहानिबन्ध किया। पश्चात् अपनी कायस्थितिके अन्तमें यह वन्ध किया तो कुछ कम उक्त काल प्रमाण यह अन्तर श्रा जाता है। अन्य मार्गणश्चोंमें भी जहाँ कायस्थिति प्रमाण अन्तर कहा हो वहाँ इसी प्रकार यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

३७३. मनुष्यित्रकमें सात कमींके तीन चृद्धिवन्ध और तीन हानिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त है। इसी प्रकार अवस्थितवन्धका अन्तर है। असं- ख्यातगुण्वृद्धि, असंख्यातगुण्हानि और अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव प्रमाण है।

३७४. पञ्चेन्द्रियपर्याप्त श्रीर त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके दो वृद्धिबन्ध, दो हानि-वन्ध श्रीर श्रवस्थितवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। इनके संख्यातगुणवृद्धिवन्ध श्रीर संख्यान्तगुणहानिवन्धका श्रन्तर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है। तथा श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्ध, श्रसंख्यातगुणहानिवन्ध श्रीर श्रवक्षव्यवन्धका श्रन्तर मुलोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका उत्कृष्ट अन्तर कहते समय वह श्रपनी

१. मूलप्रतौ पंचिचिय-तिरिक्खग्रपण्जत्त०. इति पाठः । २. मूलप्रतौ तसपण्जत्त इति पाठः ।

अपज्जत्त॰ सत्तरणं क॰ तिरिणविहु-हाणि० जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰'। अविहि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ चत्तारिसमयं।

३७५. पंचमण०-पंचवचि० सत्तरणं क० तिरिणविष्ट्व-हाणि-अविद्ववं० णिरय-भंगो । असंखेज्जगुणविष्ट्व-हाणि० जहराणु० श्रंतो०। अवत्तव्वं गित्थि श्रंतरं । एवं कोधादि०४। णविर अविद्वि० चत्तारिसम०। अवत्तव्वं गित्थि। लोभे मोह० अवत्तव्वं गित्थि श्रंतरं।

३७६. कायजोगि० सत्ताएणं क० असंखेज्जभागविहु-हाणि-असंखेज्जगुणवृहु-अविद्वं जह० एग०, उक० अंतो० । दो विहु-हाणि० ओघं । असंखेज्जगुण-हाणि० मण०भंगो । अवत्तव्वं एत्थि अंतरं ।

३७७. श्रोरालियका० मण०भंगो । श्रोरालियमि०-[वेडव्वियमि०] पंचिदियश्रप-

श्रपनी कायस्थिति प्रमाण कहना चाहिए। त्रस श्रपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिवन्ध तीन हानिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रवस्थित-वन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर चार समय है।

३७४. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध, तीन हानिवन्ध और अवस्थितवन्धका अन्तर नारिकयोंके समान है। असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और असंख्यातगुणहानिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा अवक्तव्यवन्धका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार कोधादि चार कषायवाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। तथा इनके अवक्रव्यवन्ध नहीं होता। मात्र लोभ कपायमें मोहनीय कर्मका अवक्रव्यवन्ध होता है पर उसका अन्तर काल नहीं उपलब्ध होता।

विशेपार्थ—एकेन्द्रिय या विकलत्रयके मरकर विकलत्रय या पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने पर भवके प्रथमादि समयोंमें मनोयोग और वचनयोग नहीं होता, इसलिए इन योगवाले . जीवोंके अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर नारिकयोंके समान दो समय कहा है किन्तु चारों कपायवाले जीवोंके उक्त प्रकारसे मरकर अन्य पर्यायमें उत्पन्न होते समय एक कपायका सद्भाव वना रहता है, इसलिए इनके अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर चार समय घटित हो जानेके कारण वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३७६. काययोगी जीवोंमें सात कर्मीके ग्रसंख्यातभागवृद्धिवन्ध, ग्रसंख्यातभागहानिवन्ध ग्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्ध ग्रौर ग्रवस्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मृहूर्त है। दो वृद्धिवन्ध ग्रौर दो हानिवन्धका ग्रन्तर ग्रोधके समान है। ग्रसंख्यातगुण-हानि वन्धका ग्रन्तर मनोयोगियोंके समान है। इनके ग्रवक्तव्यवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—िकसी एक काययोगी जीवने उपशमश्रेणिसे उतरकर अनिवृत्तिकरणमें श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्ध किया श्रीर एक समयका श्रन्तर देकर वह मरकर देव हो गया। इस प्रकार श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय देखकर यह श्रन्तर उक्त प्रमाण कहा है। श्रेष कथन स्पष्ट ही है।

३७७. श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें सव पदोंका श्रन्तर मनोयोगियोंके समान है।

१. म्बप्रतौ अंतो॰ । श्रवद्दिद॰ जह० एग० उक्क० श्रंतो॰ । श्रद्धि॰ इति पाठः ।

ज्जत्तभंगो । वेजिव्यमि० आयु० सिथ । आहार०-आहारमि० सत्तरासं क० सिरयभंगो । कम्मइ० सत्तरासं क० तिरिखवड्डि-हासिवं० सिथ अंतरं । अविट० जहरासु० एगस० ।

३७८. इत्थि॰-पुरिस॰ सत्तरणं क॰ वेवड्डि-हाणि० जह० एग॰, उक्क॰ अंतो॰ । संखेजनगुण-[वड्डि]हाणिवंधं॰ जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । अविद्वि॰ जह० एग॰, उक्क॰ तिरिण सम॰ । इत्थि॰ असंखेजनगुणवड्डिहाणि० जहरणु॰ अंतो॰ । एवं पुरिस॰ । णविर असंखेजन॰वड्डि॰ जह० एग॰, उक्क॰ सागरोवमसद-पुधत्तं । असंखेजनगुणहाणि॰ जह॰ अंतो॰ उक्क॰ तेत्तीसं साग० सादि॰ । णवुंस॰ सत्तरणं क० तिरिणवड्डि-हाणि० ओधं । अविद्विद० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं । असंखेजनगुणवड्डि-हाणि० जहण्णु० अंतो॰ । अवगद० णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइ० संखेजनगणवड्डि-हाणि॰ संखेजनगुणवड्डि-हाणि॰ वेदणीय-णामानगोदाणं तिरिणवड्डि-हाणि॰ मोह० संखेजभागवड्डि-हाणि॰ जहरणु० अंतो० ।

श्रौदारिक मिश्रकाययोगी श्रौर वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रपने पदोंका श्रन्तर पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके संमान है। वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। इनमें तथा आहारककाययोगी श्रौर श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके श्रपने पदोंका श्रन्तर नारिकयोंके समान है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके 'तीन वृद्धिवन्ध श्रौर तीन हानिबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रवस्थितवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

३७८. स्त्रीवेदी श्रौर पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके दो वृद्धिवन्ध श्रौर दो हानिवन्ध-का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। संख्यातगुणवृद्धिचन्ध और संख्यातगुणहानिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृप्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्तव प्रमाण है। श्रवस्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर तीन समय है। स्रीवेदमें श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्घ श्रौर श्रसंख्यातगुणहानिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मु हुर्त है। इन दोनों पदोंका अन्तरकाल इसी प्रकार पुरुषवेदमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणवृद्धिवन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ सागरपृथक्तव है। असंख्यातगुराहानियन्थका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेदवाले जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिवन्ध और तीन हानिवन्धका अन्तर ग्रोधके समान है। अव-स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। श्रसंख्यातगुण-वृद्धिवन्ध और असंख्यातगुणहानिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। अप-गतवेदवाले जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तराय कर्मके संख्यातभागवृद्धिबन्ध, संख्यातभागहानिवन्ध, संख्यातगुणवृद्धिवन्ध श्रौर संख्यातगुणहानिबन्धका; वेदनीय, नाम श्रौर गोत्रकर्मके तीन वृद्धिवन्ध श्रौर तीन हानिवन्धका तथा मोहनीय कर्मके संख्यातमाग-वृद्धिवन्ध श्रौर संख्यातभागहानिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है। तथा

१. मूजप्रती संस्रजगुणहाणिवंधं० इति पाठः । २. मूजप्रती इत्थि० संस्रेजगुण—इति पाठः ।

सत्तरएएं क॰ अविह० जह० एग०, उक्क॰ अंतो० । अवत्तव्वं एत्थि अंतरं।

३७६. श्राभि॰-सुद०-श्रोधि॰ सत्तरणं क० तिरिणविष्टु-हाणि-श्रविदि० जह॰ एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रसंखेज्जगुणविष्टु-हाणि-श्रवत्तव्व० जह॰ श्रंतो०, उक्क० द्याविष्टु-हाणि-श्रवत्तव्व० जह॰ श्रंतो०, उक्क० द्याविष्टु-सागरो० सादि०। एवं विद्यु० एग०। एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०। एवं विद्यु०। णविर तेत्तीसं साग० सादिरे०। मणपज्ज० सत्तरणं क० तिरिणविष्टु-हाणि-श्रविद्यु० श्रंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देस्०। एवं संजद०।

सात कर्मोंके अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। अवक्रव्यवन्धका अन्तर काल नहीं है।

विशेषार्थ—यद्यपि स्त्रीवेदी श्रौर नपुंसकवेदी जीव उपशमश्रेखिपर श्रारोहण करते समय श्रीर उतरते समय उपशमश्रेणिमें इन वेदोंके साथ मरण करते हैं पर उनका मरणोत्तर कालमें वेद वदत्त जाता है इसलिए इन दोनों चेदोंमें ग्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्ध श्रौर श्रसंख्यातगुण-हानिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्तमु हूर्तसे श्रधिक नहीं प्राप्त होता। किन्तु पुरुपचेदी जीवका मरणोत्तर कालमें वही वेद बना रहता है, इसलिए इसमें श्रसंख्यातगुण-वृद्धिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल कुछ कम सौ सागरपृथक्त प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि जो पुरुपवेदी जीव उपशमश्रेणिपर श्रारोहण कर श्रनिवृत्तिकरण या सुक्ष्मसाम्परायमें मरकर देव होकर श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्धका प्रारम्भ करता है। पश्चात् पुरुषवेदके साथ कुछ कम सौ सागरपृथक्तव कालतक परिभ्रमण करते हुए श्रपनी कायस्थितिके श्रन्तमें पुनः उपशम-श्रेणिपर चढ़कर उतरते समय पुनः श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्ध करता है उसके श्रसंख्यातगुण-वृद्धिवन्धका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल उपलब्ध होता है। तथा इसके ग्रसंख्यातगुण-हानिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक तेतीस सागर कहनेका कारण यह है कि जो पुरुषवेदी उपशमश्रेणिपर श्रारोहण कर ग्रौर श्रनिवृत्तिकरणमें असंख्यातगुणहानिवन्ध कर पश्चात् मरकर तेतीस सागर श्रायुके साथ देव होता है। पश्चात् वहांसे श्रांकर श्रीर पुनः पुरुपवेदके साथ उपशमश्रे णिपर श्रारोहणकर श्रनिवृत्तिकरणमें श्रसंख्यातगुणहानिवन्ध करता है उसके इस पदका उक्त काल प्रमाण उत्कृप्ट ग्रन्तर काल उपलब्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट है।

३७९. ग्राभिनिवोधिक शानी, श्रुत शानी ग्रीर ग्रविध शानी जीवों में सात कमों के तीन वृद्धिवन्ध, तीन हानिवन्ध ग्रीर ग्रविश्यतवन्धका जधन्य ग्रन्तर एक समय ग्रीर उत्रुष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। ग्रसंख्यात ग्रुण वृद्धिवन्ध, ग्रसंख्यात ग्रुण हानिवन्ध ग्रीर ग्रवक्षव्यवन्धका जधन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त ग्रीर उत्रुप्ट ग्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। इतनी विशेषता है कि ग्रसंख्यात ग्रुण वृद्धिवन्धका जधन्य ग्रन्तर एक समय है। इसी प्रकार ग्रविध दर्शनी ग्रीर सम्यग्दि जीवों के जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार ग्रायिक सम्यग्दि जीवों के जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार ग्रायिक सम्यग्दि जीवों के जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके साधिक छ्यासठ सागरके स्थानमें साधिक तेतीस सागर कहना चाहिए। मनः एर्य यहानी जीवों में सात कर्मों के तीन वृद्धिवन्ध, तीन हानिवन्ध ग्रीर ग्रविस्थित वन्धका ग्रन्तर ग्रविध होनियों के समान है। ग्रसंख्यात ग्रुण वृद्धिवन्ध, ग्रसंख्यात ग्रुण होनिवन्ध ग्रीर ग्रवक्षव्यवन्धका जधन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त ग्रीर उत्रुप्ट ग्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवों के जानना चाहिए।

३८०. सामाइ०-छेदो० सत्तारणं क० णिरयभंगो । एविर असंखेळागुण-विहु-हाणि० जहराजु० अंतो० । परिहार०-संजदासंजद० सत्तारणं क० णिरयभंगो । सुहुमसंप० छराणं कम्माणं संखेळाभागविहु-हाणि० जह० जिक्क० अंतो० । अविह० जहराजु० एग० । चक्खुदं० तसपळात्तभंगो ।

३८१. तिष्णिले॰ सत्तरणं क० णिरयभंगो । णवरि अविह॰ जह॰ एग० उक्क॰ चत्तारि समयं । सुकाए आणदभंगो । णवरि असंखेज्जगुणविहु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰ । असंखेज्जगुणहाणि० जहण्णु॰ अंतो॰ । अवत्त ० णित्थ अंतरं ।

३८२. उवसम० सत्ताणं क० चत्तारि विट्टि-हाणि-अविट्टि०-अवत्त० सुकाए भंगो | असएणीसु विट्टि-हाणि० ओघं | अविटि० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम० | संखेजनगुणविट्टि-हाणि० जह० खुद्दा०, उक्क० अणंतकालमसं० | सिरिण० पंचिदिय-पज्जत्तभंगो | एवरि संखेजनगुणविट्टि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० | आहारा० ओघं | एवरि सगिटिदि भाणिद्व्वं | अणाहारा० कम्मइगभंगो | एवं अंतरं समत्तं |

३८०. सामायिकसंयत श्रीर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें सात कमोंके श्रपने पदोंका श्रन्तर नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्ध श्रीर श्रसंख्यातगुणहानिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। परिहारिवशुद्धिसंयत श्रीर संयतासंयत जीवोंमें सात कमोंके श्रपने पदोंका श्रन्तर नारिकयोंके समान है। सूदमसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कमोंके संख्यातभागवृद्धिवन्ध श्रीर संख्यातभागहानिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। श्रवस्थितवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है। चनुदर्शनी जीवोंमें सात कमोंके श्रपने पदोंका श्रन्तर श्रसपर्यातकोंके समान है।

३८९. तीन लेश्यावाले जीवोंमें सात कमोंके अपने पदोंका अन्तर नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। शुक्छलेश्यामें सात कमोंके अपने पदोंका अन्तर आनत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुण्वृद्धिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातगुण्वृद्धिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा अवक्तव्यवन्धका अन्तरकाल नहीं है।

३८२. उपशमसम्यग्दि जीवोंमें सात कर्मोंके चार वृद्धिवन्ध, चार हानिवन्ध, श्रव-स्थितवन्ध श्रीर श्रवक्रव्यवन्धका अन्तर श्रुक्ललेश्याके समान है। श्रसं ज्ञी जीवोंमें वृद्धिवन्ध श्रीर हानिवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। श्रवस्थितवन्धका जधन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्हृष्ट अन्तर तीन समय है। संख्यातगुणवृद्धिवन्ध श्रीर संख्यातगुणहानिवन्धका जधन्य अन्तर जुल्लक भवग्रह्णप्रमाण श्रीर उत्हृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। संश्री जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर पञ्चेन्द्रिय पर्यातकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिवन्ध श्रीर संख्यातगुणहानिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्हृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त है। श्राहारक जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर थोधके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां श्रसंख्यातगुणवृद्धिवन्ध श्रीर असंख्यातगुणहानिवन्धका उत्हृष्ट अन्तर कहते समय वह अपनी उत्हृष्ट कायस्थिति-प्रमाण कहना चाहिए। अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके श्रपने पदोंका अन्तर कार्मणकाय-योगी जीवोंके समान है। इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

णाणाजीवेहि भंगविचयो

३८३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो दुविघो-श्रोघेण श्रादेसेण य । श्रोघेण सत्त्राणं कम्माणं श्रसंखेजनभागविहु० हाणि० श्रविद्वंधगा य णियमा श्रित्थ । सेसाणि पदाणि भयणिज्जाणि । श्रायु० दो वि पदा णियमा श्रित्थ । एवं श्रोध-भंगो तिरिक्लोघादि सन्वेसि श्रणंतरासीणं सगपदाणि ।

३८४. मणुसत्रपञ्जत्त-वेजिवयमि०-त्राहार०-त्राहारमि०-त्रवगद०-सुहुमसं०-जनसम०-सासण०-सम्मामि० सन्वपदाणि भयणिज्जाणि ।

३८५. पुढवि०-त्राउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं च वादर० वादरत्रप्रजित्ता० तेसिं सन्व-सुहुम० वादरवर्णा०पत्तेय० तस्सेव अपज्जत्त० अहराएां क० सन्वपदाणि णियमा अत्थि। सेसाएां णिरयादि याव सरिण त्ति सत्तराएां क० अविह० णियमा अत्थि। सेसाणि। पदाणि भयणिज्जाणि। आयु० दो पदाणि भयणिज्जाणि। एवं भंगविचयो समत्तो।

नाना जीवोंकी अपेद्या भङ्गविचय

३८३. नाना जीवोंकी अपेता भक्षविचयानुगम दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे सात कमेंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि श्रीर श्रवस्थितपदका चन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। इस प्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यञ्चोंसे लेकर सव श्रनन्तं राशियोंके श्रपने-श्रपने पदोंके श्रनुसार भक्ष जानने चाहिए।

विशेषार्थ—कुल पद १० हैं—चार वृद्धिवन्ध, चार हानिवन्ध श्रवस्थितंबन्ध श्रौर श्रवक्षन्यवन्ध। इनमें से श्रोधसे तीन पदवाले जीव नियमसे हैं इसलिए यह एक ध्रुव भङ्ग है। तथा सात पद भजनीय होने से ३×३×३×३×३×३×३=२१८७-१=२१८६ श्रधुव भङ्ग होते हैं। तथा इनमें १ ध्रुव भङ्ग मिलानेपर ध्रुव श्रौर श्रधुव कुल भङ्ग २१८७ होते हैं।

३८४. मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकिमश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्तमसाम्परायसंयत, उपश्रमसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिथ्यादिष्ट इन मार्गणाश्रोंमें सव पद भजनीय हैं।

विशेपार्थ—मनुष्य अपर्याप्तकों के पद, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी के उपद, श्राहारक-काययोगी के उपद, श्राहारकमिश्रकाययोगी के उपद, अपगतवेदी के द्र, स्हमसाम्परायसंयत के ३, उपशमसम्यग्दि के १०, सासादनसम्यग्दि के उश्रीर सम्यग्मिश्यादि के उपद होते हैं। श्रतः सात पदवालीं जितनी मार्गणापँ हैं उनमें से प्रत्येक में २१८६, अपगतवेद मार्गणामें ६४४८, स्हमसाम्परायसंयत मोर्गणामें २६ श्रीर उपशम सम्यग्दि मार्गणामें ५९०४८ श्रिश्रवमङ्ग होते हैं। इन भङ्गों के लाने की विधि पहले कह श्राये हैं।

३८४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, ग्राग्निकायिक ग्रौर वायुकायिक तथा इनके वाद्र ग्रौर वाद्र ग्रपर्याप्त तथा इनके सब सूच्म, वाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येकश्ररीर ग्रौर इनके अपर्याप्त जीवोंमें ग्राठ कमौंके ग्रपने ग्रपने सब पदवाले जीव नियमसे हैं। नारिकशोंसे लेकर संझीतक शेष सब मार्गणात्रोंमें सात कमोंके ग्रवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं। तथा शेष पद भजनीय हैं। तथा ग्रायुकमैंके दोनों ही पद भजनीय हैं।

इस प्रकार भङ्गविचयानुगम समाप्त हुम्रा।

१. मूलप्रती सेसाणं पदाणि इति पाठः ।

भागाभागो

३८६. भागाभागाणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सत्तएणं क० श्रासंतेज्जभागविष्ट्-हाणिवंधगा सन्वजीवाणं केविडयो भागो ? श्रसंतेज्जिदभागो । श्रविद्वंध० केविडयो भागो ? श्रसंतेज्जा भागा । सेसाणं पदाणं वंध० सन्व० केव० ? श्रणंतभागो । श्रायु० भ्रजगारभंगो सन्वत्थ । एवं श्रणंतरासीणं सन्वेसि । एवरि सगपदाणि जाणिदन्वाणि । सेसाणं श्रसंतेज्जीवाणं श्रविद्ध० श्रसंतेज्जा भागा । सेसपदाणि श्रसंतेज्जिदभागो । संतेज्जिवाणं पि श्रविद्ध० संतेज्जा भागा । सेसपदा० संतेज्जिदभागो । एवं भागाभागं समत्तं ।

परिसागां

३८७. परिमाणाणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० श्रसंखेज्जभागविहु-हाणि-श्रविद्वंधगा केत्तिया १ श्रणंता । दोविहु-हाणिवंध० श्रसंखेज्जा । श्रसं-खेज्जगुणविद्वहाणि-श्रवत्तव्ववंधगा संखेजा । श्रायु० दो पदा श्रणंता । एवं श्रोध-भंगो तिरिक्खोघं एइंदिय-वणप्फदि-णियोद-कायजोगि-श्रोरालियका०-श्रोरालियमि०-

भागाभाग

३८६. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ और श्रादेश। श्रोघसे सात कर्मोकी असंख्यातभागवृद्धि श्रोर श्रसंख्यात भागद्दानिका वन्ध करनेवाले जीव सव जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? श्रसंख्यात भागप्रमाण हैं । श्रवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव सव जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? श्रसंख्यात वहुभागप्रमाण हैं । श्रेष पदोंका वन्ध करनेवाले जीव सव जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? श्रनन्तवें भागप्रमाण हें । श्रायुक्तमें दोनों पदोंका भागभाग सर्वत्र भुजगार वन्धके समान है । इसी प्रकार सव श्रनन्त राश्चियांका भागभाग जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि श्रपने श्रपने पदोंको जानकर भागभाग कहना चाहिए । श्रेष श्रसंख्यात जीवप्रमाण मार्गणाओं श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रपनी श्रपनी राशिके श्रसंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा श्रेष पदोंका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हैं । संख्यात संख्यावाली मार्गणाओं में भी श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रपनी श्रपनी श्रपनी राशिके संख्यात वहुभागप्रमाण हैं श्रोर श्रेप पदोंका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाण

२८७. परिमाणानुगमको अपेका निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। ओघसे असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । दो वृद्धियों और दो दानियोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं । असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं । आयुक्रमंके दोनों पदोंका वन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, श्रीदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यकानी,

कम्मइ०-एावुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किएएा०-एग्लि०-काछ०-भवसि०-मिच्छादि०-असिएएा-आहारग ति । एविर सगपदािए जािएदव्वािए ।

३८८. मणुसेस सत्तर्रणं क० तिरिणविष्ट्व-हाणि-अविष्ठ० आयु दो पदा० असंखेजा। [सत्तर्रणं कम्माणं सेसपदा० संखेजा।] एवं पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचविच०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-सिरण ति। एवरि इत्थिवे०-पुरिस० सत्तर्रणं क० अवत्त० एत्थि। सुक्कले०-खइग० आयु० संखेजा।

३८६. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु' [सन्वपदा] आहार०-आहारिम०-अवगद०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० सगपदा० संखेज्जा । सेसाणं णिरयादीणं अहण्णं क० सगपदा० असंखेजा । णवरि आणदादि उवरिमदेवेसु आयु० दो वि पदा०' संखेजा । उवसमस० मणुसोघं । एवं परिमाणं समत्तं ।

खेत्तं

३६०. खेत्ताग्रुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सत्तरणं कम्माणं याणि पदाणि परिमाणे श्रणंता श्रसंखेजा लोगाणि ताणि सन्वलोगे । सेसाणि पदाणि

श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचश्चदर्शनी, रुष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भन्य, मिथ्यादिष्ट, श्रसंज्ञी ग्रौर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रपने श्रपने पद जानकर परिमाण कहना चाहिए।

३८ मनुष्योंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका तथा आयुकर्मके दोनों पदोका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। तथा सात कर्मोंके शेष तीन पदोंका
वन्ध करनेवाले जीव संख्यात है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियद्विक, असद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों
वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिवोधिक इति, श्रुत इति, अवधिवानी, चक्षुदर्शनी,
अवधिदर्शनी, श्रुक्षलेश्यावाले, सम्यग्दिए, द्वायिक सम्यग्दिए, और संझी जीवोंके जानना
चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका
वन्ध करनेवाले जीव नहीं हैं। तथा शुक्ललेश्यावाले और जायिक सम्यग्दिए जीवोंमें आयुकर्मके दोनों पदोंका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं।

३८९. मनुष्यपर्याप्त श्रौर मनुष्यिनियोंमें सब पदोंका तथा श्राहारककाययोगी, श्राहार किमश्रकाययोगी, श्रपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना-संयत, परिहारिवशुद्धिसंयत श्रौर सूद्मसाम्पराय संयत जीवोंमें श्रपने अपने पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। श्रेष नारकादि मार्गणाश्रोंमें श्राठों कर्मोंके श्रपने श्रपने पदोंका वन्ध करनेवाले जीवश्रसंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि श्रानतादि ऊपरके देवोंमें श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। उपशमसम्यग्दि जीवोंमें सब पदोंका वन्ध करनेवाले जीवनें सामान्य मनुष्योंके समान है। इस प्रकार परिमाण समाप्त हुश्रा। करनेवाले जीवोंका परिमाण सामान्य मनुष्योंके समान है। इस प्रकार परिमाण समाप्त हुश्रा। चेत्र

३९०. चेत्रानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघकी अपेचा सात कर्मोंके जिन पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण श्रनन्त श्रौर असंख्यात

१. मूलप्रतौ मणुसिणीसु सद्ध० श्राहार० इति पाठः । २. मूलप्रतौ पदा० श्रसंखेज्जा इति पाठः ।

लोगस्स असं० | आयु० दो वि पदा सन्वलोगो | एवरि वादरएइंदिय-वादरवाड॰ आयुग० दो वि पदा० लोगस्स संखेज्ज० | वादरवाड॰ पज्जत्ता सन्वे भंगा लोगस्स संखेज्ज० | सेसवादर-वादरअपज्जत्ता० लोगस्स असंखेज्जदिभागे | सेसाम्र सन्वेसि सन्वे भंगा लोग० असंखेज्जदिभागे | एवं खेत्तं समत्तं |

फोसगां

३६१. फोसणाणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे०। श्रोघे० सत्तरणं क० श्रसं-खेज्जभागवड्डि-हाणि-श्रवद्विदंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सन्वलोगो। दोवड्डि-हाणि० श्रद्धचोद्दस० सन्वलोगो वा। सेसपदा० खेत्तं। श्रायु० दो वि पदा० सन्वलोगे।

३६२. त्रादेसेण णेरइएस सत्तरणं क० तिरिणवड्डि-हाणि-त्रवद्दिक इचोदस०। त्रायु० खेत्तं ।

लोकप्रमाण है उनका क्षेत्र सब लोक है। तथा शेष पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। इतनी विशेषता है कि वाद्र एकेन्द्रिय और वाद्र वायुकायिक जीवोंमें आयुक्रिके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। वाद्र वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें सब पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। शेष रहे वाद्र और वाद्र अण्यित जीवोंमें सब पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष रहीं सब मार्गणाओंमें सब कर्मोंके सब पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके आसंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार ज्ञेत्र समाप्त हुग्रा।

स्पर्शन

३९१. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ ग्रीर ग्रादेश। ग्रोघकी श्रपेक्षा सात कर्मोंकी ग्रसंख्यात भागनुद्धि, ग्रसंख्यात भागन्नानि ग्रीर ग्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है। दो नृद्धियों ग्रीर दो हानियोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राठ वटे चौदह राजु ग्रीर सव लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। श्रेष पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। ग्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—संख्यात भागवृद्धि श्रीर संख्यात भागहानिका वन्ध द्वीन्द्रिय श्रादि जीवोंके होता है तथा संख्यातगुणवृद्धि श्रीर संख्यातगुणहानिका वन्ध पञ्चिन्द्रयोंके होता है यह पहले कह श्राये हैं। इस दृष्टिसे इन पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु और सब लोक कहा है। विशेष खुलासा खुद्दावन्धको देखकर कर लेना चाहिए। शेप कथन सुगम है।

३६२. त्रादेशसे नारिकयोंमें सात कमोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों श्रीर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु स्त्रेत्रका स्पर्श किया है। श्रायु-कर्मके दोनों पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्त्रेत्रके समान है।

१. मूलप्रतौ खेर्च । एवं भुजगारभंगो तिरिक्खेसु इति पाठः ।

३६३. तिरिक्लेस सत्तरणं क॰ वेबहि-हाणि० लोग० असं० सव्वलो०। सेसं ओघं। सव्वपंचिदियतिरिक्लेस सत्तरणं क० तिरिणविह-हाणि-अविह० लोग० असं० सव्वलो०। आयु० लेत्तं। एवं मणुसअप०। विगलिदि० वेबहि-हाणि-अविह० तं चेव। पंचिदिय-तसअप०-मणुस०३ सत्तरणं क० तिरिणविह-हाणि-अविह० पंचिदियतिरिक्लभंगो। सेसं लेत्तं। देवेस सजगारभंगो।

३६४. सन्वएइंदिय-पुढवि०-श्राड०-तेड०-वाड०-वणप्फिदिपत्तेय०-णियोदेसु श्रहण्णं क० सन्वपदा० सन्वलोगो । एवरि सन्ववादरएइंदिय-वादरपुढवि०-श्राड०-तेड०-वाड०-वादरवणप्फिदि-णियोद-वादरवणप्फिदिपत्तेय० श्रायु० खेत्तं । वादर-पुढवि०-श्राड०-तेड०पज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खश्रपज्जत्तभंगो । एवं वादरवाड० पज्ज०। एवरि लोग० संखेज्ज०।

३६५. पंचिंदिय-तस॰२ सत्त्तरणं क॰ तिरिणविङ्ग-हाणि-अविङ्घि॰ अहचोइस॰ सन्वलोगो वा । सेसपदा॰ खेत्तं । आयु॰ दो वि पदा अहचो०। एवं पंचमण०-पंच-

३९३. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी दो वृद्धियों श्रोर दो हानियोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका श्रोर सव लोक चेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन श्रोधके समान है। सव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों तीन हानियों श्रोर श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग श्रीर सव लोक चेत्रका स्पर्श किया है। श्रायुक्तमेंके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य श्रपर्यात जीवोंके जानना चाहिए। विकलेन्द्रियोंमें श्रपने पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन इसी प्रकार है। पञ्चेन्द्रिय श्रपर्यात, त्रस श्रपर्यात श्रोर मनुष्यित्रकमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों श्रोर श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। श्रेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन से समान है। देवोंमें सब पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन सुजगारानुगम के समान है।

३९४. सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रग्निकायिक, वायुकायिक, वतस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर श्रीर निगोद जीवोंमें श्राठों कमोंके सब पदोंका वन्ध करनेवाले
जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है कि सब बादर एकेन्द्रिय, सब वादर
पृथिवीकायिक, सब बादर जलकायिक, सब बादर श्रग्निकायिक, सब बादर वायुकायिक,
सब बादर वनस्पतिकायिक, सब बादर निगोद श्रीर सब बादर वनस्पतिकायिक
प्रत्येकशरीर जीवोंमें श्रायु कर्मके दोनों पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन
चेत्रके समान है। बादर पृथिवीकायिक पर्यात, बादर जलकायिक पर्यात और बादर श्रग्निकायिक पर्यात जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्यातकोंके समान मङ्ग है। इसी प्रकार बादर
वायुकायिक पर्यात जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोकका
संख्यातवाँ भागप्रमाण स्पर्शन है।

३९४. पञ्चेन्द्रियद्विक ग्रौर त्रसद्विकमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों ग्रौर ग्रवस्थित पदका वन्य करनेवाले जीवोंने कुछ कम ग्राट वटे चौदह राजु ग्रौर सव लोक चेत्रका स्पर्श किया है। ग्रेप पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

वचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सिएए०। श्रोधभंगो कायजोगि-कोधादि०४-मिट्०-सुद्०-श्रसंज०-श्रचक्खुदं०-भवसि०-श्रब्भवसि०-मिच्छादि०-श्राहारग ति । एवं चेव श्रोरालि०-श्रोरालियमि०-एावुंस०-किएए०-एील०-काउ० । एवरि तिरिक्लोघो कादन्वो ।

३८६. वेडिव्यकायजो० सत्ताएणं क० तिएिएविड्डि-हािए-अविडि० अहतेरह०। कम्मइ० खेत्तं। एविरि वेविड्डि-हािए० केव० खेत्तं फोसिदं १ लोग० असं० एका-रहचो०। विभंगे अहचो०भा० सव्वलोगो०।

३६७. श्राभि०-सुद०-श्रोधि० सत्ताएएं क० तिएएवडि॰-हाणि-श्रविट्ठ० श्रायु० दो वि पदा श्रहचो० । सेसं खेत्तं । एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदगस०-उवसम० ।

३६८. तेउ० देवोघं । पम्मले० सन्वे भंगा ऋहचो० । सुकाए छच्चोदस० ।

श्रायु कर्मके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, चक्षु-दर्शनी श्रौर संही जीवोंके जानना चाहिए। काययोगी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यझानी, श्रुताझानी, श्रसंयत, श्रवश्चदर्शनी, मन्य, श्रमन्य, मिथ्यादि श्रौर श्रहारक जीवोंमें स्पर्शन श्रोघके समान है। तथा इसी प्रकार श्रौदारिककाययोगी, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले श्रौर कापोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाश्रोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान स्पर्शन जानना चाहिए।

३९६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों श्रीर श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ घटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम तेरह घटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सव पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि दो वृद्धियों श्रीर दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके श्रसंख्यातवें भाग व कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है। विभङ्गद्याती जीवोंमें श्रपने पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु, कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु श्रीर सव लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है।

३९७. श्राभिनिवोधिकश्वानी, श्रुतश्वानी श्रौर श्रवधिश्वानी जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों तीन हानियों श्रौर श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने तथा श्रायुकर्मके दोनों हो पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठवटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अवधि-दर्शनी सम्यग्दिष्ट, ज्ञायिकसम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट श्रौर उपश्मसम्यग्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

३९८. पीतलेश्यावाले जीवोंने अपने सव पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन सामान्य देवोंके समान है। पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सव पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्श किया है। शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें अपने सब पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्श किया है।

१. मूलप्रतौ श्रद्धतेरह वा० सन्व- इति पाठः ।

३६६. सासणे सत्तरणं क॰ तिरिणवड्डि-हाणि-श्रवद्धि॰ श्रद्ध-वारहचो॰। श्रायु॰ दो वि पदा श्रद्धवा॰। सम्मामि॰ सत्तरणं क॰ तिरिणवड्डि-हाणि-श्रवद्धि॰ श्रद्धचो॰।

४००. असिएए० सत्तरणं क० एकविड्ड-हािए-अविड्ड० सन्वलो०। दोविड्डि-हािए० लोग० असं० सन्वलो०। आयु० दो वि पदा सन्वलो०। आणाहार० सत्तरणं क० असंखेजजभागविड्ड-हािए-अविड्ड० सन्वलो०। वेविड्डि-हािए० लोग० असं० एकारसचो०। वेडिन्वियिमस्सादि सेसं खेतं। एवं फोसणं समत्तं।

कालो

४०१. कालाग्रुगमेग दुवि०-श्रोघे० श्रादे०। श्रोघे० सत्तरणं क० श्रसंखेज्ज-भागविष्ट्व-हािण-श्रविद्ववंघगा केव० १ सव्वद्धा। वेविष्ट्व-हािणवंध० जह० एग०, उक्क० श्रावित्वि० श्रसंखेज्जिदिभागो। श्रसंखेज्जगुणविष्ट्व-हािण-श्रवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमयं। एवं जिम्ह श्रसंखेज्जगुणविष्ट्व-हािण-श्रवत्त० तिम्ह याव

३९९. सासादनसम्यग्दि जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों श्रीर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम वारह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है। श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु केत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिथ्यादि जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों श्रीर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु केत्रका स्पर्श किया है।

४००. श्रसंही जीवोंमें सात कर्मोंकी एक वृद्धि, एक हानि श्रोर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक चेत्रका स्पर्श किया है। दो वृद्धियों श्रोर दो हानियोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग श्रोर सव लोक चेत्रका स्पर्श किया है। श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्श किया है। श्रमहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी श्रसंख्यात भागवृद्धि, श्रसंख्यात भागहानि श्रोर श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंने सव लोक चेत्रका स्पर्श किया है। दो वृद्धियों श्रोर दो हानियोंका वन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग श्रोर कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्श किया है। वैक्रियिकिमिश्र श्रादि श्रेप मार्गणाश्रोंमें श्रपने पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

काल

४०१. कालानुगमकी अपेन्ना निर्देश दो प्रकार का है—श्रोघ श्रोर आदेश। श्रोघसे सात कर्मोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि श्रीर अवस्थित पदका बन्ध करने-वाले जीवोंका कितना काल है ? सव काल है । दो वृद्धियों श्रोर दो हानियोंका बन्ध करने-वाले जीवोंका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावलिके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है । श्रसंख्यातगुणवृद्धि, श्रसंख्यातगुणहानि श्रोर श्रवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । जिन मार्गणाश्रोंमें श्रसंख्यात

अशाहारग ति शादव्वं । आयु० दो वि पदा सव्वद्धा । एवं अशांत-असंखेज्जली-गरासीशां अष्पष्पशो पदाशि ।

४०२. आदेसेण णेरइएस सत्तरणं क० तिरिणविष्टु-हाणि० जह० एग०, उक० आविति० असंखेळा०। अविष्टि० सव्वद्धा। आयु० भुजगारभंगो। एवं सव्वाणं असंखेळारासीणं। सव्वाणं संखेळारासीणं पि तं चेव। णविर यिन्ह आवितियाए असंखेदिभागो तिम्ह संखेळासमयं। भयिएळारासीस अविष्टि० जह० एग०, उक० पगिदकालो। तिरिक्खगदीए सेसेस ओघभंगो जािणदूण णेदव्वं। एवं कालं समत्तं।

अंतरं

४०३. अंतराणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सत्तरणं क० श्रसंखेजा-भागविहु-हाणि-श्रविद्धि णित्थि श्रंतरं । वेबिहु-हाणि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । एवं श्रणंतरासीणं सन्वपदाणि । श्रसंखेज्जगुणविहु-श्रवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं । श्रसं०गुणहाणि० जह० एग०, उक्क० छम्मासं । एवं याव श्रणाहारग

गुण्वृद्धि श्रसंख्यात गुणहानि श्रीर श्रवक्रव्य पद होते हैं उनमें श्रनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार काल जानना चाहिए। श्रायुक्तमें दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार श्रनन्त राशियों श्रीर श्रसंख्यात लोकप्रमाण राशियोंका श्रपने श्रपने पदोंकी श्रपेका काल जानना चाहिए।

४०२. आदेशसे नारिकयों में सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों श्रीर तीन हानियोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृप्ट काल श्रावलिके श्रसंख्यातवें भाग- प्रमाण है। श्रवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। श्रायुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल भुजगार वन्धके समान है। इसी प्रकार सव श्रसंख्यात राशियोंका काल जानना चाहिए। तथा सब संख्यात राशियोंका काल भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि जहाँ श्रावलिके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ संख्यात समय काल कहना चाहिए। तथा जितनी भजनीय राशियाँ हैं उनमें श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृप्ट काल श्रपने श्रपने प्रकृतिवन्धके कालके समान है। तिर्यञ्च गतिमं तथा शेष मार्गणाश्रोंमें श्रोधके समान काल जानकर कथन करना चाहिए।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तर .

४०३. अन्तरानुगमकी अपेजा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कमोंकी असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदका वन्ध करने वाले जीवोंका अन्तर काल नहीं है। दो वृद्धियों और दो हानियोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त है। इसी प्रकार अनन्त राशियोंके सब पदोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्रव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्तव है। असंख्यात गुणहानिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि

त्ति । यावरि असंखेजाग्रणहाणि जाणिदव्वं । एदेसि आयुगं दो पदा भुजगारभंगो । ४०४. णिरएस सत्त्रणं क० तिरिणविट्ट-हाणि जह० एग०, उक्क० अंतो । अविट णित्थ अंतरं । आयु० भुजगारभंगो । यिम्ह दो बिट्ट-हाणि० अत्थि तिम्ह तेसिं ओघं । सेसपदा० सव्वत्थ भुजगारभंगो । यावरि सांतररासीणं सव्वपदा० पगिदिअंतरं । एवं अंतरं समत्तं ।

भावो

४०५. भावाणुगमेण दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सत्तरणं क० चत्तारिविहृ-हाणि-श्रविह०-श्रवत्त०वंधगा श्रायु० श्रवत्त०-श्रसंखेज्जभागहाणिवंधगा ति को भावो १ श्रोदइगो भावो । एवं याव श्रणाहारग ति गोदव्वं । एवं भावं समत्तं ।

ऋप्पाबहुगं

४०६. अप्पावहुगं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तराणं क० सन्वत्थोवा अवत्तन्ववंधगा । असंखेज्जगुणवड्डिवंधगा संखेज्जगुणा । असंखेज्जगुणहाणिवंधगा

इनमें श्रसंख्यात गुणहानिका श्रन्तर काल जानकर कहना चाहिए। इन सब जीवोंके श्रायु कर्मके दोनों ही पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका श्रन्तर काल भुजगार वन्धके समान है।

४०४. नारिकयों में सात कमोंकी तीन चुिद्धयों और तीन हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित एदका वन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर काल नहीं है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर काल भुजगारवन्धके समान है। जिन मार्गणाओं में दो चुिद्धयाँ और दो हानियाँ हैं उनमें उनका अन्तर काल ओघके समान है। तथा शेप पदोंका अन्तर काल सर्वत्र भुजगारवन्धके समान है। इतनी विशेषता है कि सान्तर राशियों के सब पदोंका अन्तर काल प्रकृतिवन्धके अन्तरकालके समान है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

भाव

४०४. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। श्रोघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी चार वृद्धियों, चार हानियों, श्रवस्थित श्रोर अवक्रव्य पदका वन्ध करनेवाले जीवोंका तथा आयुकर्मके अवक्रव्य श्रीर असंख्यात भागहानिका वन्ध करनेवाले जीवोंका कौन-सा भाव है १ श्रोदियक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ !

अल्पवहुत्व

४०६. श्रव्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और श्रादेश। श्रोघसे सात कर्मीके श्रवक्तव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रसंख्यात गुणवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रसंख्यात गुणहानिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि श्रीर संख्यातगुणहानिका वन्ध

संखेजगुणा। संखेजगुणविहु-हाणिवंधगा दो वि तुल्ला असंखेजगुणा। संखेज-भागविहु-हाणिवंधगा दो वि तुल्ला असं०गु०। असंखेजभागविहु-हाणिवंधगा दो वि तुल्ला अणंतगुणा। अविदृद्ध असं०गु०। आयु० सन्वत्थोवा अवत्त०-वंधगा। असंखेजभागहाणि० असं०गु०। आयु० एवं याव अणाहारग ति। णविर जिम्ह संखेज्जभागहाणि० असं०गु०। आयु० एवं याव अणाहारग ति। णविर जिम्ह संखेज्जा जीवा तिम्ह संखेज्जगुणं काद्व्वं। एवं ओधभंगो कायजोगि-अोरालियकायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भविस०-आहारग ति। णविर णवुंस०-कोध-माण-माया० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा असंखेजजगुणविहुवंध०। असंखेजजगुणहाणिवं० संखेजजगु०। जविर ओघं। एवं लोभे। णविर मोहणी० ओघं।

४०७. आदेसेण णेरइएस सत्ताएणं क० सन्वत्थोवा संखेज्जगुणविह-हाणिवंध०। संखेजजभागविह-हाणिवंधगा दो वि तुल्ला संखेजजगु०। असंखेजजभागविह-हाणिवंधगा दो वि तुल्ला संखेजजगु०। अविह०वंध० असं०गु०। एवं सन्विणेरइएस मणुसअपज्जत्त-सन्वदेव-वेडिव्वय०-वेडिव्वयिश-विभंग०-तेड०-पम्म०-वेदगस०-सासण०-सम्मामि०। एवरि सन्वहे संखे० देवा।

करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि श्रीर संख्यात भागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर श्रनन्तगुणे हैं। इनसे श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। श्रायुकर्मके श्रवक्रन्य पदका वन्ध करनेवाले जीव स्वसं स्तोक हैं। इनसे श्रसंख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। श्रायुकर्मकी श्रपेचा इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिस मार्गणामें संख्यात जीव हैं उसमें संख्यातगुणे कहना चाहिए। इसी प्रकार श्रोधके समान काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, श्रचजुदर्शनी, भव्य श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी, कोध कपायवाले, मान कपायवाले श्रीर माया कपायवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी श्रसंख्यात गुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे श्रसंख्यातगुणहानिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। तथा इसके श्रागेका श्रस्पवहुत्व श्रोधके समान है। इसी प्रकार लोभ कपायमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें मोहनीय कर्मके सव पदोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका श्रस्पवहुत्व श्रोधके समान है।

४०७. ग्रादेशसे नारिकयों में सात कमींकी संख्यातगुण्वृद्धि ग्रीर संख्यातगुण्हानिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि ग्रीर संख्यातभागवृद्धि ग्रीर वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे ग्रसंख्यातभागवृद्धि ग्रीर ग्रसंख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे ग्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव ग्रसंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, मनुष्य ग्रपर्यात, सब देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभक्षश्चानी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट ग्रीर सम्यग्मिथ्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें देव संख्यातगुणे हैं।

४०८. तिरिक्षेसु सत्तरणं क० सन्वत्थोवा संखेजगुणविहु-हाणि०। संखेज-भागविहु-हाणिवंध० दो वि तुल्लाणि असं०गु०। असंखेजभागविहु-हाणिवं० दो वि तुल्ला अर्णतगु०। अविदि० असं०गु०। एवं ओरालियिम०-मिद०-सुद०-असंज०-किरण०-णील०-काड०-अब्भविस०-मिच्छादिद्वि ति । पंचिदियितिरिक्षेसु सत्तरणं क० सन्वत्थोवा [संखेजगुणविहु-हाणिवंधया।] संखेजभागविहु-हाणिवंधया।] संखेजभागविहु-हाणिवंधव दो वि तुल्ला असं०गु०। असंखेजभागविहु-हाणिवं० दो वि तुल्ला संखे-जागु०। अविदिवंध० असं०गु०। एवं पंचिदियितिरिक्खअपजत्त-पंचिदिय-तस-अपज्ज०। पंचिदियितिरिक्खपजत्त-जोणिणीसु एवं चेव । एवरि संखेजभागविहु-हाणिवंध० संखेजगुणं कादव्वं।

४०६. मगुसेसु सत्ताएगं क० सन्वत्थोवा अवत्तन्व० । असं०गुणविह० संखेजनगुणा । असंखेजनगुणहाणि० संखेजनगु० । संखेजनगुणविह्न-हाणि० दो वि तुल्ला [असंखेजनगुणा ।] संखेजनभागविह्न-हाणिवं० दो वि तुल्ला संखेजनगु० । [असंखेजनगुणा ।] अविह०वं० सं०गु० । एवं मगुसपज्जत्त-मगुसिणीसु । एवरि संखेजनगुणं कादव्वं ।

४०८. तिर्यश्चोंमें सात कर्मों की संख्यात गुणवृद्धि श्रीर संख्यातगुणहानिका वन्ध करनेवाले जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि श्रीर संख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार श्रीदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रताञ्चानी, श्रसंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, श्रमव्य, श्रीर मिथ्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चोंमें सात कर्मोंकी संख्यातगुणवृद्धि श्रीर संख्यातगुणहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागहानिका वन्ध्य करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर श्रसंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार संख्यातगुणे हैं। इससे श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार संख्यातगुणे हैं। इससे श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्यात, पञ्चेन्द्रिय श्रपर्यात श्रीर प्रस श्रपर्यात जीवोंके जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्यात श्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्यात श्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च स्त्रीर पश्चेन्द्रिय तिर्यञ्च स्त्री संख्यातभागवृद्धि श्रीर संख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीवोंको संख्यातगुण करना चाहिए।

अवाका त्रावाण त्रावाण कर्मा कर्मों अवक्तव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव सवसे स्तोक हैं। ४०९, मनुष्यों में सात कर्मों के अवक्तव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुण हैं। इनसे असंख्यातगुण हानि इनसे असंख्यातगुण हुद्धि और संख्यातगुण हानिका का वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुण हैं। इनसे संख्यातगुण हैं। इनसे संख्यातभाग हुद्धि वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे और संख्यातभाग हानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातभाग हुद्धि और असंख्यातभाग हानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातभाग हुद्धि और असंख्यातभाग हुद्धि जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार संख्यातगुणे हैं। इससे अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार संख्यातगुणे हैं। इससे अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनयों जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणे करना चाहिए।

४१०. एइंदिय-पंचकायाणं सत्त्त्रणां क० सन्वत्थोवा असंखेज्जभागविष्ट्हाणिवं० ! अविष्ठ० असं०ग्र० । विगलिदिएस सत्त्रणां क० सन्वत्थोवा संखेज्जभागविष्ट्-हाणिवं० । असंखेज्जभागविष्ट्-हाणिवं० संखेज्जग्र० । अविष्ठ० असंखेज्जग्र० । पंचिदिय-तस० सत्त्रणां क० [सन्वत्थोवा अवत्तन्ववंथया ।
असंखेज्जग्रणविष्ट्ववंथया संखेज्जग्रणा ।] असं०ग्रणहाणि० संखेज्जग्र० । संखेज्जग्रणविष्ट्-हाणिवं० असं०ग्र० । संखेज्जभागविष्ट्-हाणि० दो वि तुल्ला असं०ग्रणा ।
असंखेजजभागविष्ट्-हाणिवं० दो वि तुल्ला संखेज्जग्र० । अविष्ठ० असं०ग्र० ।
पंचिदिय-तसपज्जत्तेसु तं चेव । एवरि संखेज्जभागविष्ट्-हाणिवं० संखेज्जग्रणं कादव्वं।
एवं पंचक्षण०-पंचविच०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खदं०-सिण्णि त्ति । एवरि इत्थि०-पुरिस०
सत्त्रणं क० अवत्तव्वं णित्था कम्मइगा० तिरिक्लोघं। आहार०-आहारिम०सव्वद्दमंगो।
४११. 'अवगद० णाणावर०-दंसणावरण-अंतराय० सव्वत्थोवा अवत्तव्वं०।

ं ४१०. एकेन्द्रिय श्रीर पाँच स्थावरकाय जीवोंमें सात कमींकी श्रसंख्यातमागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुर्णे हैं। विकलेन्द्रियोंमें सात कर्मीकी संख्यातमागवृद्धि और संख्यातमागहानिका वन्घ करनेवाले जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे श्रसंख्यातमागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यात भागहानिका वन्घ करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रवस्थितपदका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुर्णे हैं। पञ्चेन्द्रिय श्रौर त्रसंकायिक जीवोंमें श्रवक्षव्यपदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इससे श्रसंख्यातगुणवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुरो हैं। इनसे श्रसंख्यातगुराहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुरो हैं। इनसे संख्यात गुणवृद्धि श्रौर संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर ग्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे ग्रसंख्यातभागवृद्धि ग्रौर ग्रसंख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुरो हैं। इनसे ग्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुर्णे हैं। पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और जसकायिक पर्याप्त जीवोंमें इसी प्रकार ग्रह्पवद्धत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात भागवृद्धि ग्रौर संख्यात भागहानि-का वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुरो करने चाहिए। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदो, पुरुषवेदी, चजुदश्नी श्रीर संशी जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशे-शेषता है कि स्त्रीवेदी स्त्रीर पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मीका स्रवहन्य पद नहीं है। कार्मणुकाय-योगी जीवोंमें अपने पदोंका अल्पवहुत्व सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । आहारककाययोगी श्रौर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रपने पदोंका श्रत्पवहुत्व सर्वार्थसिद्धिके समान है।

४११. श्रपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण श्रीर श्रन्तराय कर्मके श्रवक्रव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यात गुणवृद्धिका वन्ध करनेवाले

१. मूलप्रती श्रवगद् गागावर०-श्रवत्तव्ववं । संखेजमागविद्ध श्रसंखेजागु । संखेजगुणविद्धवं संखेजगु । संखेजमागहाणिवं । संखेजगु । संखेजगुणहाणिवं । संखेजगु । श्रविद्ध संखेजगु । मोह० सन्वत्थोवा श्रवत्त । संखेजमागविद्धवं धंखेजगु । संखेजगुणविद्धवं । संखेजगु । श्रसंखेजगु । श्रसं । ग्राविद्धवं । संखेजगु । संखेजमागहाणिवं । संखेजगु , संखेजगुणहाणि वं । संखेजगु । श्रसंखेजगुणहाणिवं । संखेजगु । श्रसंखेजगुणहाणिवं । श्रस

संखेजगुणविद्वं॰ संखेजगु० । संखेजगागविद्वं॰ संखेजगु० । संखेजगुणहाणि-बं॰ संखेजगु॰ । संखेजगागहाणिवं॰ संखेजगु॰ । अविदे॰ संखेजगु॰ । वेदणीय-णामा-गोदाणं सन्वत्थोवा अवत्तन्ववं० । असंखेजगुणविद्वं॰ संखेजगु॰ । संखे-जगुणविद्वं॰ संखेजगु॰ । संखेजगागविद्वं॰ संखेजगु॰ । असंखेजगुणहाणिवं॰ संखेजगु॰ । संखेजगुणहाणिवं॰ संखेजगु॰ । संखेजगागहाणिवं॰ संखेजगु॰ । अविदेवं॰ संखेजगु॰ । मोह० सन्वत्थोवा अवत्त० । संखेजगागविद्वं॰ संखेजगु॰ । जगु॰ । संखेजगागहाणिवं॰ संखेजगु॰ । अविदेवं॰ संखेजगु॰ ।

४१२. श्राभि०-सुद् ०-श्रोधि० सत्ताएणं क० सन्वत्थोवा श्रवत्तन्ववं०। श्रसं-खेज्जगुणवड्ढि० सं०गु०। सेसं इत्थिभंगो। एवं श्रोधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०। मणपज्जव-संजद० मणुसिभंगो। एवं सामाइ०-छेदो०। णविर श्रवत्तन्वं णित्थ। परिहार० सन्वद्दभंगो।

४१३. [स्रुहुमसंपरायसंजदेस छएएां कम्माएां संखेज्जभागविहृवंधगा जीवा सन्वत्थोवा । संखेज्जभागहाणिबंधगा जीवा संखेज्जगुएा । अविद्ववंधगा जीवा

जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात गुणहानिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात भागहानिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अवक्षव्य पदका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे असंख्यात गुणवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात गुणवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात भागहानिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। मोहनीय कर्मके अवक्षव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे संख्यात भागवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात भागवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात भागवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

४१२. श्राभिनिवोधिकक्षानी, श्रुतक्षानी श्रीर श्रवधिक्षानी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जोव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रसंख्यात गुणवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इससे श्रागे श्रेष श्रलपबहुत्व स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, श्रुक्कलेश्यावाले सम्यग्दिए श्रीर चायिक सम्यग्दिए जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययक्षानी श्रीर संयत जीवोंमें श्रपने सब पदोंका श्रलपबहुत्व मनुष्यिनयोंके समान है। इसी प्रकार सामायिकसंयत श्रीर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्य पद नहीं है। परिहारविश्वद्धिसंयत जीवोंके श्रपने पदोंका श्रलपबहुत्व सर्वार्थसिद्धिके समान है।

४१३. स्हमसाम्परायसंथत जीवोंमें छह कर्मोंकी संख्यात भागवृद्धिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे ग्रवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। संयतासंयत जीवोंमें सातकमौंकी संख्यात- संखेजनगुणा।] 'संजदासंजद० सत्तरणं क० सव्वत्थोवा [संखेजनगुणवड्डि-हाणि०। संखेजनभागवड्डि-हा० दो वि तुल्ला सं०गु०। असंखेजनभागवड्डि-हा० दो वि तुल्ला संखेजनगु०। अवद्विदवं० असंखेजनगुणा।]

४१४. असएगीस सत्तरणं क० सन्वत्थोवा संखेजनगुणविहु-हा०। संखेजनभाग-विद्द-हा० दो वि तुल्ला असं०गु०। असंखेजनभागविद्द-हाणिवं० दो वि तुल्ला अर्णत-गुणा। अविद्ववं० असंखेजनगु०। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं अप्पावहुगं समत्तं। एवं विद्ववंधे ति समत्तं।

अज्भवसाण्समुदाहारो

४१५. ऋष्मवसाणसमुदाहारवंधे ति । तत्थ इमाणि तिणिण ऋणिया-गद्दाराणि—पगदिसमुदाहारो हिदिसमुदाहारो तिन्वमंददा ति ।

गुणवृद्धि श्रीर संख्यातगुणहानिका वन्ध करनेवाले जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभाग वृद्धि श्रीर संख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यातगुणे हैं।

४१४. ग्रसंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंकी संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका वन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि ग्रौर संख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर ग्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे ग्रसंख्यातभागवृद्धि ग्रौर ग्रसंख्यातभागहानिका वन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर ग्रनन्तगुणे हैं। इनसे ग्रवस्थित पदका वन्ध करनेवाले जीव ग्रसंख्यातगुणे हैं। ग्रनाहारक जीवोंमें ग्रपने सब पदोंका अल्पवहुत्व कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है।

इस प्रकार श्रह्पबद्धत्व समाप्त हुश्रा । इस प्रकार वृद्धिवन्ध समाप्त हुश्रा ।

अध्यवसानसमुदाहारवन्ध

४१४. श्रव श्रध्यवसानसमुदाहारवन्धका प्रकरण है। उसमें ये तीन श्रनुयोगद्वार होते हैं—प्रकृतिसमुदाहार, स्थितसमुदाहार श्रीर तीवमन्दता।

विशेषार्थ—यहाँ स्थितवन्धके कारणभूत परिणामोंकी अध्यवसान संज्ञा है और जिस अनुयोगद्वारमें इनकी अपेजा वर्णन किया गया है उसकी अध्यवसानसमुदाहार संज्ञा है। इन परिणामोंके निमित्तसे प्रत्येक कर्मके कितने विकल्प हो जाते हैं, एक एक स्थितिके प्रति कितने कितने परिणाम कारण होते हैं तथा उनकी तीवता और मन्दता किस प्रकारकी है इन्हीं सब प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए यहाँ इस अनुयोगद्वारके तीन भेद किये गये हैं— प्रकृतिसमुदाहार, स्थितसमुदाहार और तीवमन्दता। पहले अनुयोगद्वारमें परिणामोंके अनुसार प्रत्येक कर्मके प्रकृतिविकल्प और उनका अल्पवहुत्व दिखलाया गया है। दूसरे अनुयोगद्वारमें प्रत्येक स्थितिके प्रति अध्यवसानोंका परिमाण, जघन्य स्थितिसे लेकर उत्तरोक्तर वे कितने अधिक हैं इसका परिमाण और उनकी अनुकृष्टि रचनाका निर्देश किया गया

१. संजदासंजद०.....सत्तरणं क० सन्वत्थोवा श्रवत्तबं०,श्रसंखेज्जगुराविहृहाणि दो वि तुल्ला संखेज्जगु०, संखेजगुराविह्नहा० श्रसं०गु० । श्रसंखेजगुणविह्नहा० श्रसंखेज्जगु० इति पाठः। २. मूलप्रतौ श्रज्झवसार्य... वंधे ति । तत्थ इमाणि तिष्णि श्रशियोगदाराणि.....पगदिसमुदाहारे ति... तत्थ इमाणि दुवे इति पाठः ।

पगदिसमुदाहारो

४१६. पगदिसमुदाहारे ति । तत्थ इमाणि दुवे त्र्राणियोगदराणि—पमाणाणु-गमो अप्पावहुगे ति । पमाणाणुगमेण दुवि॰—अघि० आदे० । अघिण शाणावर-णीयस्स केत्तिगाओ पगदीओ ? असंखेज्जलोगपगदीओ। एवं सत्तरणं कम्माणं। एवं याव त्र्रणाहारग त्ति खादव्वं । खवरि त्रवगद०-सुहुमसं० एगेगपरिखद्धार्णं । एवं पमाणाग्रागमो समत्तो ।

४१७. अपावहुगं दुवि०-- श्रोघे० आदे० । श्रोघेण सन्वत्थोवा श्रायुगस्स पगदीओ'। णामा-गोदाणं पगदीत्रो त्रसंखेज्जगुणात्रो । णाणावरणीय-दंसणावर-खीय-वेदखीय-त्रंतराइगाणं चदुएहं वि पगदीत्रो त्रसंखेज्जगुणात्रो । मोहखीयस्स पगदीओ असंखेजनगुणाओ । एवं याव अणाहारग ति णेदव्वं ।

द्विदिसमुदाहारो

४१८. हिदिसमुदाहारे ति । तत्थ इमाणि तिणिण अणियोगदाराणि-पमा-णाणुगमो सेहिपरूवणा अणुकङ्किपरूवणा चेदि। णाणावरणीयस्स जहिएणयाए हिदीए हिदिवंधन्भवसाणहाणाणि ऋसंखेन्जा लोगा । विदियाए हिदिवंधन्भवसाण-है। तथा तीसरे श्रनुयोगद्वारमें उनके तीव मन्द श्रनुभागका विचार किया गया है। इस प्रकार इस श्रतुयोगद्वारका क्या श्रमिप्राय है श्रीर उसमें कितने विषयोंका संकलन किया गया है इस बातका विचार किया।

प्रकृतिसमुदाहार

४१६. प्रकृतिसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये दो श्रनुयोगद्वार हैं—प्रमाणानुगम श्रीर श्रत्पवहुत्व। प्रमाणानुगमकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे शानावरण कर्मकी कितनी प्रकृतियाँ हैं ? श्रसंख्यात लोकप्रमाण प्रकृतियाँ हैं। इसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। तथा इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ग्रपगतवेदी श्रीर सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें एक एक भेटसे सम्बद्ध प्रकृतियाँ हैं।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

४६७. श्रत्पवद्धत्व दो प्रकारका है-श्रोघ श्रौर श्रादेश । श्रोघसे श्रायुकर्मकी प्रकृतियाँ सवसे स्तोक हैं। इनसे नाम श्रीर गोत्रकर्मकी प्रकृतियाँ श्रसंख्यातगुणी हैं। इनसे ज्ञाना-वरणः दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्म इन चारों कर्मोंकी प्रकृतियाँ असंख्यातगुणी हैं। इनसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियाँ श्रसंख्यातगुणी हैं। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गेणा तक जानना चाहिए ।

> इस प्रकार ऋल्पबहुत्व समाप्त हुआ। इस प्रकार प्रकृतिसमुदाहार समाप्त हुआ।

स्थितिसम्रदाहार

४१८. श्रव स्थिति समुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं— .भमाणातुगम, श्रेणिप्ररूपणा श्रोर श्रतुरुष्टि प्ररूपणा । ज्ञानावरणकर्मकी जघन्य स्थितिके स्थिति बन्धाध्यवसाय स्थान श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। दूसरी स्थितिके स्थिति बन्धाध्यवसाय

१. पद्मसं० वन्धनक० गा० १०७ । २. मृतप्रती खेजा भागा विदियाए इति पाठः ।

हाणाणि असंखेजना लोगा। तिदयाए हिदीए हिदिवंधज्भवसाणहाणाणि असं-खेजना लोगा। एवं असंखेजना लोगा असंखेजना लोगा याव उक्कस्सिया हिदि ति। एवं सत्तरणं कम्माणं। एवं याव अणाहारण ति। णविर अवगद०-सुहुमसं० एगे-गपिरणद्धाणं। एवं पमाणाणुगमो समत्तो।

४१६. सेढिपक्वणा दुविधा—अणंतरोविणिधा परंपरोविणिधा चेदि । अणंतरोविणिधाए णाणावरणीयस्स जहिएणयाए हिदिवंधक्भवसाणहाणिषा थोवाणि ।
विदियाए हिदीए हिदिवंधक्भवसाणहाणाणि विसेश विसेसाधियाणि । तिद्याए हिदीए हिदिवंधक्भवसाणहाणाणि विसेश । एवं विसेश विसेसाधियाणि याव उक्किस्सियाए हिदी ति । एवं अगणं कम्माणं । आयुगस्स जहिएणयाए हिदीए हिदिवंधक्भवसाणि हिणाणि स्ववत्थोवाणि । विदियाए हिदीए हिदिवंधक्भवसाणहाणाणि असंखेळ्जगुणाणि । तिदयाए हिदीए हिदिवंधक्भवसाणहाणाणि असंखेळ्जगुणाणि । एवं याव असंखेळ्जगुणाणि असंखेळ्जगुणाणि असंखेळ्जगुणाणि याव उक्किस्सया हिदि ति । एवं याव अणाहारग ति णेदव्वं ।

४२०. परंपरोविणधाए णाणावरणीयस्स जहिएणयाए हिदीए हिदिवंधज्भव-

स्थान ग्रसंख्यात लोकप्रमाण हैं। तीसरी स्थितिके स्थितिवन्धाध्यवसायस्थान ग्रसंख्यात लोकप्रमाण हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके स्थितिवन्धाध्यवसायस्थान ग्रसंख्यातलोक ग्रसंख्यातलोक प्रमाण जानना चाहिए। इसी प्रकार सात कर्मोंके जानना चाहिए। इस प्रकार ग्रनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ग्रपगतवेदी ग्रीर सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंके एक एक परिणाम हैं।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

श्रेगिप्ररूपगा

४१९. श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकारकी है—श्रनन्तरोपनिधा श्रीर परम्परोपनिधा। श्रनन्तरोपनिधाको अपेन्ना ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके स्थितवन्धाध्यवसाय स्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे दूसरो स्थितिके स्थितवन्धाध्यवसाय स्थान विशेष श्रधिक हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके तीसरी स्थितिके स्थितवन्धाध्यवसाय स्थान विशेष श्रधिक हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिके स्थितिवन्धाध्यवसाय स्थान विशेष श्रधिक विशेष श्रधिक हैं। इसी प्रकार छह कर्मोंके जानना चाहिए। श्रायुकर्मको जघन्य स्थितिके स्थितवन्धाध्यवसाय स्थान सबसे स्तोक हैं। इससे दूसरी स्थितिके स्थितवन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात गुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितवन्धाध्यवसाय स्थान श्रसंख्यात गुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान श्रसंख्यातगुणे श्रसंख्यात गुणे हैं। इस प्रकार श्रसंख्यात गुणे हें। इस प्रकार श्रमाहारक मार्गणातक कथन करना चाहिए।

इस प्रकार ग्रनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

४२०. परम्परोपनिधाकी श्रपेक्षा ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके स्थितवन्धाध्यवसाय

१. पञ्चसं० बन्धनक० गा० १०५। २. मूलप्रती-हाणाणि श्रसंखेळागुणाणि । विदियाए इति पाठः ।

साणहाणेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेजनभागं गंतूण दुगुणविद्वतः'। एवं याव वंधजभवसाणदुगुणविद्वि-[हाणि-]हाणंतरं पलिदोवमस्स असंखेजनिदभागो। णाणा-हिदिवंधजभवसाणदुगुणविद्वि-हाणिहाणंतराणि अंगुलवग्गमूलच्छेदणयस्स असंखे-जनिदभागो। णाणाहिदिवंधजभवसाणदुगुणविद्वि-हाणिहाणंतराणि थोवाणि। एयिह-दिवंधजभवसाणदुगुणविद्वि-हाणिहाणंतरं असंखेजनगुणं। एवं णादव्वं।

४२१. अणुकड्डीए णाणावरणीयस्स जहिएणयाए हिदीए हिदिवंधज्भव-साणहाणाणि याणि ताणि विदियाए हिदीए हिदिवंधज्भवसाणहाणाणि अपुव्वाणि। विदियाए हिदीए हिदिवंधज्भवसाणहाणाणि याणि ताणि तिदयाए हिदीए हिदि-वंधज्भवसाणहाणाणि अपुव्वाणि च। एवं अपुव्वाणि अपुव्वाणि याव उक्किस्सियाए हिदि ति। एवं सत्तरणं कम्माणं।

तिव्वमंददा

४२२. तिन्वमंददाए णाणावरणीयस्त' जहिएणयाए हिदीए जहिएणयं हिदि-वंधज्भवसाणहाणं सन्वमंदाणुगभागं। तस्स जक्कस्सए अणंतगुणं। विदियाए हिदीए जहएण्यं हिदिवंधज्भवसाणहाणं अणंतगुणं। तिस्से उक्कस्सयं अणंतगुणं। स्थानोंसे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार वन्धाध्यवसायहिगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और नानास्थिति-वन्धाध्यवसायहिगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर अंगुलके वर्गमूलके अर्धन्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थितवन्धाध्यवसायहिगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर अंगुलके वर्गमूलके अर्धन्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थितवन्धाध्यवसायहिगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार शेष कर्मोंके जानना चाहिए।

४२१. श्रमुकृष्टिका कथन करनेपर ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके जो स्थितिबन्धा-ध्यवसाय स्थान हैं वे स्थितिवन्धाध्यवसाय स्थान दूसरी स्थितिके श्रपूर्व हैं। दूसरी स्थितिके जो स्थितिवन्धाध्यवसाय स्थान हैं वे स्थितिवन्धाध्यवसाय स्थान तीसरी स्थितिके श्रपूर्व हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिके स्थितवन्धाध्यवसाय स्थान श्रपूर्व अपूर्व हैं। इसी प्रकार सात कमाँके विपयमें जानना चाहिए।

विशेपार्थ—जहां ग्रागेके परिणामोंकी पिछले परिणामोंके साथ समानता होती है वहां ग्रमुकृष्टि रचना होती है। यहां प्रत्येक स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान ग्रपूर्व ग्रपूर्व हैं इसिलए ग्रमुकृष्टि रचना सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ ग्रधःकरणमें जैसी ग्रमुकृष्टि रचना होती है वैसी यहां सम्भव नहीं है। किन्तु यहांकी रचना श्रपूर्वकरणके समान जाननी चाहिए।

तीत्र-मन्दता

४२२—तीव्र मन्द्ताकी अपेत्रा ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका जघन्य स्थितिवन्धा-ध्यवसाय स्थान सबसे मन्द अनुभागको लिये हुए है। इसका उत्कृप्ट स्थितिवन्धाध्यवसाय स्थान ग्रनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इससे दूसरी स्थितिका जघन्य स्थितिवन्धा-ध्यवसाय स्थान ग्रनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए हैं। इससे इसीका उत्कृप्ट स्थितिवन्धा-ध्यवसायस्थान ग्रनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इससे तीसरो स्थितिका जघन्य

१. पञ्चसं० बन्धनक० गा० १०६। १. पञ्चसं० बन्धनक० गा० १०८।

तिद्याए हिदीए जहरूरायं अर्णतगुर्णं । तिस्से उक्कस्सयं अर्णतगुर्णं । एवमणंतगुरणम-र्णतगुर्णं याव उक्कस्सियाए द्विदि ति । एवं सत्तरूर्णं कम्मार्णं ।

श्रज्भवसाणसमुदाहारो समत्तो ।

जीवसमुदाहारो

४२३. जीवसमुदाहारे त्ति । तत्थ ए एाणावरणीयस्स वंधगा जीवा ते दुविहा—सादवंधा चेव असादवंधा चेव । ए ते सादवंधगा जीवा ते तिविधा—चढुहाणवंधगा तिहाणवंधगा विहाणवंधगा । तत्थ ये ते असादवंधगा जीवा ते तिविधा—विहाणवंधगा तिहाणवंधगा चढुहाणवंधगा । सन्वविमुद्धा सादस्स चढुहाणवंधगा जीवा । तिहाणवंधगा जीवा संकिलिहतरा । तिहाणवंधगा जीवा संकिलिहतरा । सन्वविमुद्धा असादस्स विहाणवंधगा जीवा । तिहाणवंधगा जीवा संकिलिहतरा । चढुहाणवंधगा जीवा संकिलिहतरा । चढुहाणवंधगा जीवा संकिलिहतरा । चढुहाणवंधगा जीवा संकिलिहतरा ।

४२४. सादस्स चढुहाणवंधगा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णयं हिदि वंधंति । तिहाणवंधगा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्णाणुकस्सयं हिदि वंधंति । विहाणवंधगा जीवा सादावेदणीयस्स उक्कस्सयं हिदि वंधंति । असाद० विहाणवंधगा जीवा सहाणेण णाणावरणीयस्स जहण्णयं हिदि वंधंति । तिहाणवंधगा जीवा णाणावर-

स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इससे इसीका उत्कृष्ट स्थितिवन्धाध्यवसाय स्थान अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिवन्धाध्यवसाय स्थान उत्तरोत्तर अनन्तगुणे अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इसी प्रकार सात कर्मोका जानना चाहिए। इस प्रकार तीवमन्दताका विचार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रध्यवसानसमुदाहार समाप्त हुत्रा।

जीव समुदाहार

४२३. श्रव जीव समुदाहारका प्रकरण है। उसकी श्रपेत्ता जो ज्ञानावरणकर्मका वन्ध करनेवाले जीव हैं वे दो प्रकारके हैं—सातबन्धक श्रौर श्रसातबन्धक। जो सातवन्धक जीव हैं वे तीन प्रकारके हैं—स्वतुःस्थानवन्धक, त्रिस्थानवन्धक श्रौर द्विस्थानवन्धक। जो श्रसात-वन्धक जीव हैं वे तीन प्रकारके हैं—द्विस्थानवन्धक, त्रिस्थानवन्धक श्रौर चतुःस्थानवन्धक। जो सबसे विशुद्ध होते हैं वे साताके चतुःस्थानवन्धक जीव हैं। इनसे त्रिस्थानवन्धक जीव संक्लिएतर होते हैं श्रौर इनसे द्विस्थानवन्धक जीव संक्लिएतर होते हैं। जो सबसे विशुद्ध होते हैं वे श्रसाताके द्विस्थानवन्धक जीव संक्लिएतर होते हैं। जो सबसे विशुद्ध होते हैं वे श्रसाताके द्विस्थानवन्धक जीव हैं इनसे त्रिस्थानबन्धक जीव संक्लिएतर होते हैं श्रौर इनसे चतुःस्थानबन्धक जीव संक्लिएतर होते हैं।

४२४. साताके चतुःस्थानवन्धक जीव ज्ञानावरण कर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करते हैं। त्रिस्थानवन्धक जीव ज्ञानावरणकर्मकी ग्रजघन्यानुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं। द्विस्थान-वन्धक जीव साता वेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं। त्रसाताके द्विस्थानवन्धक जीव स्वस्थानकी ग्रेपेना ज्ञानावरण कर्मकी जघन्य स्थितिका वन्ध करते हैं। त्रिस्थानवन्धक

णीयस्स अनहएणमणुकस्सयं द्विदि वंधंति । चदुद्वाणवंधगा जीवा असादस्स चेव उकस्सिया हिदिं वंधंति।

४२५. एदेसि परूवरादाए तत्थ इमार्णि दुवे ऋणियोगद्दाराणि---ऋणंतरोवणिधा परंपरोविणिधा य । अर्णंतरोविणिधाए सादस्स चदुङाण० तिहाण० विद्वाण् विद्वाणवंधगा णाणावरणीयस्स जहिएणयाए द्विदीए जीवा थोवा। विदियाए हिदीए जीवा विसेसाधिया। तदियाए हिदीए जीवा विसेसाधिया। एवं विसेसाधिया२ याव सागरोवमसदपुधत्तं । तेरा परं विसेसहीरा। एवं विसेस-हीणा विसेसहीणा याव सागरोवमसदपुधत्तं। सादस्स विद्वार्णवंधगा जीवा श्रसादस्स चदुहाणवंधगा जीवा णाणावरणीयस्स जहणिणयाए द्विदीए जीवा थोवा। विदियाए हिदीए जीवा विसेसाधिया। तदियाए द्विदीए जीवा विसेसाधिया । एवं विसेसाधिया विसेसाधिया याव सागरोवमसदपुधत्तं । तेण परं विसेसहीणा । एवं विसेसहीणा २ याव सादस्स असादस्स य उकस्सिया द्विदि ति । जीव हानावरण कर्मकी श्रजघन्य श्रनुत्रुष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं। चतुःस्थानबन्धक जीव

श्रसाता वेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं।

४२४. इनकी प्ररूपणा करनेपर ये दो अनुयोगद्वार होते हैं--- अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। श्रनन्तरोपनिधाकी श्रपेत्ता साताके चतुःस्थानवन्धक श्रौर त्रिस्थानवन्धक तथा श्रसाताके द्विस्थानवन्धक श्रीर त्रिस्थानवन्धक जितने जीव हैं उनमेंसे ज्ञानावरण कर्मकी श्रपने श्रपने योग्य जघन्य स्थितिमें स्थित श्रर्थात् श्रपने श्रपने योग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितमें स्थित जीव विशेष श्रधिक हैं। इनसे तीसरी स्थितिमें स्थित जीव विशेष श्रिधिक हैं। इस प्रकार सौ सागरप्रथक्त प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेष श्रधिक विशेष श्रधिक जीव हैं। तथा इससे त्रागे प्रत्येक स्थितिमें विशेषद्दीन जीव हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेषहीन विशेषहीन जीव हैं। तथा साताके द्विस्थानवन्धक और ग्रसाताके चतुःस्थानवन्धक जितने जीव हैं उनमेंसे ज्ञानावरण कर्मकी श्रपने श्रपने योग्य जघन्य स्थितिमें स्थित जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं। इनसे तीसरी स्थितिमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्तव प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेष अधिक विशेष अधिक जीव हैं। तथा इससे आगे प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर विशेष हीन विशेषहीन जीव हैं। इस प्रकार साता श्रौर श्रसाताकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेषहीन विशेषहीन जीव हैं।

विशेषार्थ-यहां जीवोंके ग्रालम्बनसे स्थितिबन्धका विचार किया गया है। साता श्रीर ग्रसाता प्रतिपत्त प्रकृतियां हैं, इसलिए जो साताका बन्ध करते हैं वे ग्रसाताका बन्ध नहीं करते श्रीर जो श्रसाताका बन्ध करते हैं वे साताका नहीं करते। इस हिसाबसे जीव दो प्रकारके होते हैं--सातवन्धक श्रौर श्रसातवन्धक। साता प्रशस्त प्रकृति है श्रौर श्रसाता श्रव्रशस्त । इसलिए साताके उत्कृप्ट श्रद्धभागका वन्ध होनेपर स्थितिवन्ध जघन्य होता है श्रीर जघन्य श्रनुभागवन्य होते समय स्थितिवन्य उत्कृप्ट होता है। तथा श्रसाताके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धके समय स्थितिवन्ध उत्कृष्ट होता है श्रीर जघन्य श्रनुभागबन्धके समय स्थिति-

वन्ध जघन्य होता है। यदि इन दोनों प्रकृतियोंके श्रनुभागका इस हिसायसे विभाग किया जाता है तो साताका चतुःस्थानिक त्रिस्थानिक ग्रौर द्विस्थानिक इस क्रमसे ग्रनुभाग उपलब्ध होता है और असाताका द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक श्रीर चतुःस्थानिक इस क्रमसे अनुभाग उपलब्ध होता है। साताके चतुःस्थानिक ऋनुभागमें गुड़, खाँड़, शर्करा श्रीर श्रमृत यह चार प्रकारका, त्रिस्थानिक अनुभागमें गुड़, खाँड़ और शकरा यह तीन प्रकारका तथा द्विस्थानिक अनुभागमें गुड़ श्रीर खाँड़ यह दो प्रकारका श्रनुभाग होता है। श्रसाताके चतुः-स्थानिक ग्रनुमागमें नींम, काँजीर, विष ग्रीर हलाहलरूप, त्रिस्थानिक ग्रनुमागमें नींम, काँजीर श्रौर विपरूप तथा द्विस्थानिक श्रनुभागमें नीम श्रौर काँजीररूप श्रनुभाग होता है। देखना यह है कि इनके साथ ज्ञानावरणका वन्ध होनेपर वह किस प्रकारका होता है। यह तो मानी हुई बात है कि बानावरण अप्रशस्त प्रकृति है, इसलिए साताके चतुःस्थान-बन्धक जीव ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका, त्रिस्थानवन्धक जीव ज्ञानावरणकी अजघन्य श्रनुत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करते हैं श्रीर द्विस्थानवन्धक जीव सातावेदनीयका ही उत्कृष्ट स्थितिवन्घ करते हैं। यहां द्विस्थानवन्धक जीव ज्ञानावरणका उत्कृष्ट स्थितिवन्घ करते हैं पेसा न कहकर साताका ही उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते हैं ऐसा क्यों कहा ? समाधान यह है कि यद्यपि साताके द्विस्थानवन्धक जीव ज्ञानावरणका उत्क्रप्ट स्थितिवन्ध करते हैं पर उत्कृप्ट स्थितवन्ध ही करते हैं ऐसा कोई नियम नहीं है किन्तु उत्कृप्ट स्थितवन्धसे न्यून भी करते हैं इसलिए उस प्रकारका विधान नहीं किया। इस प्रकार ग्रसाताके द्विस्थान-वन्धक जीव ज्ञानावरणका जघन्य स्थितिवन्ध करते हैं। त्रिस्थानवन्धक जीव श्रजघन्य ग्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते हैं श्रौर चतुःस्थानयन्धक जीव ग्रासाता वेदनीयका ही उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करते हैं। इस प्रकार कुल जीव छुह प्रकारके होते हैं—साताके चतुःस्थान वन्धक जीव, त्रिस्थानवन्धक जीव श्रीर द्विस्थानवन्धक जीव। तथा श्रसाताके द्विस्थान-वन्धक जीव, त्रिस्थानवन्धक जीव श्रौर चतुःस्थानवन्धक जीव। इनमेंसे प्रत्येकमें श्रपते-श्रपने योग्य ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका वन्घ करनेवाले जीव सवसे थोड़े हैं। दूसरी स्थितिका बन्ध करनेवाले विशेष अधिक हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्तवप्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेष अधिक विशेष अधिक हैं और इससे आगे इतने ही स्थिति-विकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेष हीन विशेष हीन हैं। श्राशय यह है कि जो सातावेदनीयके चतुःस्थानवन्धक जीव हैं उनमेंसे कुछ जीव ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका वन्ध करते हैं। इनसे कुछ श्रधिक जीव ज्ञानावरणकी इससे श्रागेकी स्थितिका बन्ध करते हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्तव प्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेष अधिक विशेष अधिक और श्रागे इतने ही स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेषहीन विशेषहीन जीव शानावरणकी स्थितिका वन्ध करते हैं।

उदाहरणार्थ—सातावेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव ४२ हैं श्रौर ये ज्ञानावरणकी ४, ६, ७, ८ श्रौर ९ समयवाली स्थितिका वन्ध करते हैं तो पूर्वोक्त हिसाबसे ४ समयवाली स्थितिका वन्ध करनेवाले ६२ जीव होते हैं, ६ समयवाली स्थितिका वन्ध करनेवाले १२ जीव होते हैं, ७ समयवाली स्थितिका वन्ध करनेवाले १६ जीव होते हैं, ७ समयवाली स्थितिका वन्ध करनेवाले ६ जीव होते हैं श्रौर ६ समयवाली स्थितिका वन्ध करनेवाले ६ जीव होते हैं । इस उदाहरणसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पहले विशेष श्रधिक विशेष श्रधिक श्रीर श्रनन्तर विशेष हीन विशेष हीन जीव स्थितिका वन्ध करते हैं । इससे यवमध्यकी रचना हो जाती है, क्योंकि मध्यमें जीव सर्वाधिक हैं श्रीर दोनों श्रोर विशेषहीन विशेषहीन हैं । इसी प्रकार

४२६. परंपरोविषाधाए सादस्स चढुहाणवंधगा जीवा तिहाणवंधगा जीवा असादस्स विहाणवंधगा जीवा तिहाणवंधगा जीवा णाणावरणीयस्स जहिएणयाए हिदीए जीवेहिंतो तदो पिलदोवमस्स असंखेज्जिदिभागं गंतूण हुगुणविहृदा । एवं दुगुणविहृदा याव सागरोवमसदपुधत्तं । तेण परं पिलदोवमस्स असंखेज्जिदिभागं गंतूण दुगुणविहृदा याव सागरोवमसदपुधत्तं । तेण परं पिलदोवमस्स असंखेज्जिदिभागं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा२ याव सागरोवमसदपुधत्तं । एयजीव-दुगुणविहृहाणिहाणंतराणि असंखेज्जिणि पिलदोवमस्स वग्गमूलाणि । णाणाजीव-दुगुणविहृहाणिहाणंतराणि पिलदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जिदिभागो । णाणाजीव-दुगुणविहृहाणिहाणंतराणि थोवाणि। एवजीवदुगुणविहृहाणिहाणंतरं असंखेज्जगुगं।

४२७. सादस्स विद्वाण्वंथगा जीवा असादस्स चढुद्वाण्वंथगा जीवा णांणा-वरणीयस्स जहिएण्याए द्विदीए जीवेहिंतो तदो पिलदोवयस्स असंखेजजिदभागं गंतूण' दुगुणविद्वा । [एवं दुगुणविद्वा] दुगुणविद्वा याव सागरोवमसदपुधत्तं । तेण परं पिलदोवयस्स असंखेजजिदभागं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा दुगुण-हीणा याव सादस्स असादस्स य उक्किस्सिया द्विदि त्ति । एयजीवदुगुणविद्विहाणि द्वाणंतरं असंखेजजिए पिलदोवमवग्गम्लाणि । णाणाजीवदुगुणविद्वहाणिद्वाण्तं-राणि पिलदोवमवग्गम्लस्स असंखेजजिदभागो । णाणाजीवदुगुणविद्विहाणि-]द्वाणंत-

साताके त्रिस्थानिक श्रौर द्विस्थानिक वन्धकी श्रपेत्ता तथा श्रसाताके द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक श्रौर चतुःस्थानिक वन्धकी श्रपेत्ता कथन करना चाहिए।

४२६. परम्परोपनिधाकी अपेता साता वेदनीयंके जितने चतुःस्थान वन्धक और त्रिस्थानवन्धक जीव हैं। तथा असातावेदनीयके जितने द्विस्थानवन्धक और त्रिस्थानवन्धक जीव हैं उनमेंसे ज्ञानावरण कर्मकी जधन्य स्थितिमें स्थित जितने जीव हैं उनसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार सौ सागर पृथक्तवके प्राप्त होने तक वे दूने होते जाते हैं। इससे आगे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे आधे रह जाते हैं। इस प्रकार सौ सागर पृथक्तवके प्राप्त होने तक वे उत्तरोत्तर आधे आधे रहते जाते हैं। यहाँ एकजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण होते हैं और नानाजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। नानाजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। नानाजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर प्रलंक्यात स्तोक हैं और इनसे एकजीव द्विगुणवृद्धिद्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।

४२७. सातावेदनीयके जितने द्विस्थानवन्धक जीव हैं और असातावेदनीयके चतुःस्थान-वन्धक जीव हैं उनमेंसे ज्ञानावरणकी अपने योग्य जघन्य स्थितिके वन्धक जितने जीव हैं उनसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिस्थान जाकर वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार सौ सागर पृथक्तवके प्राप्त होने तक वे दूने दूने होते जाते हैं। इससे आगे पल्यके असंख्या-तवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे आधे रह जाते हैं और इस प्रकार साता और असाताकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे आधे आधे होते जाते हैं। यहाँ पक्जीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानि स्थानान्तर पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण होते हैं। इस प्रकार नाना-णहानिस्थानान्तर पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातमें भागप्रमाण होते हैं। इस प्रकार नाना-

१. मूलप्रतौ गंतूख दुगुणविद्ददा हाणि दुगुण--इति पाटः ।

राणि थोवाणि । एयजीवदुगुणवड्टिहाणिङ्घाणंतरं श्रसंखेज्जगुणं ।

४२८. सादस्स असादस्स य विद्वाणियम्हि णियमा अणागारपाञ्चोग्गद्वाणाणि । सागारपाञ्चोगगहाणाणि' सन्वत्थ ।

४२६. सादस्स चदुद्वाणिययवमज्भस्स हेद्रदो द्वाणाणि थोवाणि । संखेज्जगुणाणि । सादस्स तिङ्ठाणिययवमज्भस्स हेइदो हाणाणि संखेज्जगुणाणि । जवरिं हाणाणि संखेज्जगुणाणि । सादस्स विहाणिययवमज्भस्स हेहदो एयंतसागार-पात्रोग्गद्दाणाणि संखेज्जगुणाणि । मिस्सगाणि द्वाणाणि संखेज्जगुणाणि । सादस्स चेव विद्वाणिययवमन्भस्स उवरिं भिस्सगाणि दाणाणि संखेन्नगुणाणि । श्रसाद-विद्वाणिययवमञ्भस्स हेट्टदो एयंतसागारपात्रोग्गङाणाणि संखेजनगुणाणि । मिस्सगाणि हाणाणि संखेन्नगुणाणि । असादस्स चेव विहाणिययवमन्भस्स उवरि मिस्सगाणि हाणाणि संखेज्जगुणाणि । एयंतसागारपात्रोग्गङाणाणि जीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं श्रौर इनसे एकजीव द्विगुणवृद्धि-द्विगुण-

्हानिस्थानान्तर श्रसंख्यातगुणा है।

विशेषार्थ-यहाँ साताके चतुःस्थानबन्धक ग्रादि एक एकके प्रति नानागुणवृद्धि या नाना गुणहानि कितनी होती हैं श्रौर एक एकके प्रति निपेक कितने होते हैं यह वतलाया गया है। यहाँ एकजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पदसे एक गुणवृद्धि व गुणहानिके भीतर जितने निषेक होते हैं वे लिये गये हैं और नानाजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पदसे कुल द्विगुणवृद्धि व द्विगुणहानियोंका प्रमाण लिया गया है। इनमेंसे किसका कितना प्रमाण है यह मूलमें दिया ही है।

४२८. साता श्रीर श्रसाताके द्विस्थानिक वन्धमें श्रनाकार उपयोगके योग्य स्थान नियमसे हैं। तथा साकार उपयोगके योग्य स्थान सर्वत्र हैं।

विशेषार्थ-यहाँ इन छह स्थानोंमें अनाकार उपयोगके योग्य स्थान कौन हैं और साकार उपयोगके योग्य स्थान कौन हैं यह वतलाया गया है। वैसे तो सव स्थान साकार उपयोगके योग्य हैं पर श्रनाकार उपयोगके योग्य स्थान कुछ ही हैं श्रौर वे साता श्रसाता दोनोंके द्विस्थान गत कुछ ही हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

४२९. साताके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान स्तोक हैं। इनसे उपरिम स्थान संख्य।तगुरो हैं। इनसे साताके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे इसीके उपरिम स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे साताके द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके सर्वथा साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुर्णे हैं। इनसे मिश्रस्थान संख्यातगुर्णे हैं। इनसे साताके ही द्विस्थानिक यवमध्यके उपरिम मिश्र स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे असाताके द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके सर्वथा साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे इसीके मिश्रस्थान संख्यातगुर्णे हैं। इनसे श्रसाताके ही द्विस्थानिक यवमध्यके उपरिम मिश्र स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे इसीके सर्वथा साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे श्रसाताके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रसाताके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे साताका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष श्रधिक है।

१. मुलप्रती—हाणाणि सन्बद्धाः सादस्स इति पाठः । २. पञ्चसं० बन्धक० गा० १११।

संखेज्जगुणाणि । असादस्स तिहाणिययवमज्भस्स हेहदो द्वाणाणि संखेज्जगुणाणि । असादस्स चढुहाणिययवमज्भस्स हेहदो हाणाणि संखेज्जगुणाणि । सादस्स जहण्णश्रो हिदिवंधो संखेजजगुणो । यहिदिवंधो विसेसाधियो । असादस्स' जहण्णश्रो हिदिवंधो विसेसाधियो । यहिदिवंधो विसेसाधियो । एत्तो उक्कस्सयं दाहं गच्छिदि ति सा हिदी संखेजजगुणा । श्रंतोको- हाकोडी संखेजजगुणा । सादस्स विहाणिययवमज्भस्स उविदंधो विसेसाधियो । यहिदिवंधो हिसेसाधियो । यहिदिवंधो विसेसाधियो ।

इससे ग्रसाताका जघन्य स्थितिवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होता है इसलिए वह स्थिति संख्यातगुणी है। इससे ग्रन्तः कोटाकोटि संख्यातगुणी है। इससे साताके द्विस्थानिक यवमध्यके उपरिम सर्वथा साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुणे हैं। इससे साताका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे वाहस्थित विशेष ग्रधिक है। इससे ग्रसाताका उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे यत्स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे यत्स्थित वन्ध विशेष ग्रधिक है।

विशेषार्थ-पहले साताके चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक अनुभागका तथा श्रसाताके द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक श्रीर चतुःस्थानिक श्रतुभागका उल्लेख करके उनके श्राश्रयसे साकारप्रायोग्य, श्रनाकारप्रायोग्य श्रौर भिश्र स्थानोंका उल्लेख कर श्राये हैं। यहाँ इनको ध्यानमें रखकर स्थितिस्थानोंके श्रहपबहुत्वका निर्देश किया गया है। इसका विचार पञ्चसंग्रह चन्धकरणमें भी किया है। वहाँ वह इस प्रकार दिया है—परावर्तमान शुभ प्रकृतियोंके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थितिस्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे उपरिम स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे इर्न्होंके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुरो हैं। इनसे उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे इन्हींके सर्वथा साकार प्रायोग्य द्विस्थानिक नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे यहींके मिश्रस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उपरिम मिश्रस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे यहींके साकार प्रायोग्य उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रशुभ द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके मिश्रस्थान संख्यातगुर्णे हैं। इनसे द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुर्णे हैं। इनसे यवमध्यके ऊपरके द्विस्था-निक साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुर्णे हैं। इसी प्रकार यवमध्यके नीचे श्रीर ऊपरके त्रिस्थानिक स्थान संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार यवमध्यके नीचे और ऊपरके चतुःस्थानिक स्थितिस्थान संख्यातगुरो हैं। श्राचार्य मलयीगिरिने इस श्रह्पबहुत्वमें परावर्तमान शुभ प्रकृतियों, परावर्तमान अशुभ प्रकृतियोंके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिवन्घका तथा डाय-स्थितिका श्रल्पवहुत्व भी सम्मिलित किया है। जिस स्थितिस्थानसे श्रपवर्तनाकरण्के वशसे उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होता है उतनी स्थितिका नाम डायस्थिति है। या जिस

१. मूजप्रतौ सादस्स जहिष्यायाश्रो इति पाठः ।

४३०. एदेण श्रहपदेण सन्वत्थोवा सादस्स चढुङाणवंधगा जीवा। सादस्स चेव तिहाणवंधगा जीवा संखेज्जगुणा। विहाणवंध० संखेज्जगुणा। श्रसादस्स विहाणवंधगा जीवा संखेज्जगुणा। श्रसादस्स चढुहाणवंधगा० संखेज्जगुणा। श्रसादस्स चढुहाणवंधगा० संखेजजगुणा। श्रसादस्स तिहाणवंधगा जीवा विसेसाधिया। एवं जीवमगुदाहारे चि समत्तमणि-योगहाराणि।

एवं मूलपगदिहिदिवंधो समत्तो ।

स्थितस्थानसे मण्डूकप्छुति न्यायके अनुसार छलाँग मारकर स्थित वँधती है वह अधिक स्थित डायस्थित है। आचार्य मलयगिरिने डायस्थितिके ये दो अर्थ किये हैं। उन्होंने लिखा है कि उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिके कम कर देनेपर जो स्थिति शेप रहती है वह डायस्थिति है, क्योंकि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका बन्ध करके ही उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है, अन्य प्रकारसे नहीं।

४३०. इस ग्रर्थपदके त्रनुसार साताके चतुःस्थानिक वन्धक जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे साताके ही त्रिस्थानिकवन्धक जीव संख्यातगुर्गे हैं। इनसे द्विस्थानवन्धक जीव संख्यातगुर्गे हैं। इनसे त्रसाताके संख्यातगुर्गे हैं। इनसे त्रसाताके चतुःस्थानवन्धक जीव संख्यातगुर्गे हैं। इनसे त्रसाताके विशेष विशेष विशेष हैं।

इस प्रकार जीव समुदाहार अनुयोगद्वार सभात हुआ।

इस प्रकार मूल प्रकृतिस्थितवन्ध समाप्त हुन्ना।



			٠
•			
1			
		•	
			•
		•	
	-		

२. उत्तरपगदिडिदिबंधो

१. एत्तो उत्तरपगिदिद्विदिवंधे पुन्वं गमणिज्जं । तत्थ इमाणि चत्तारि अणि-योगद्दाराणि भवंति । तं यथा—दिदिवंधद्वाणपरूवणा णिसेयपरूवणा आवाधाखंडय-परूवणा अप्पावहुगे ति ।

द्विदिबंधद्वाग्यपरूवग्या

२. हिदिवंधहाणपरूवणदाए सन्वपगदीणं चदुत्रायु-वेजिन्वयञ्क-श्राहार०-त्राहारत्रंगोवंग-तित्थयरवज्जाणं सन्वत्थोवा सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स हिदिवंधहाणाणि । वादरस्स अपज्जत्तयस्स हिदिवंधहाणाणि संस्रेज्जगुणाणि । सुहुमस्स पज्जत्तयस्स हिदिवंध० संस्रेज्जगु० । वादर०'पञ्जत्त० हिदिवंध० संस्रेज्जगु० । एवं मूलपगदि-वंधो याव पंचिदियस्स सणिणस्स मिच्छादिहिस्स पज्जत्तयस्स हिदिवंधहाणाणि संस्रेज्जगुणाणि ति ।

उत्तरप्रकृतिस्थितिवन्ध

१. इससे ग्रागे उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धका सर्व प्रथम विचार करते हैं। उसमें ये चार ग्रानुयोगद्वार होते हैं। यथा—स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा, ग्राबाधाकाएडकप्ररूपणा ग्रोर श्रव्यबद्धत्व।

विशेषार्थ—मूल्य प्रकृतियाँ ज्ञाठ हैं ज्ञौर उनमेंसे प्रत्येकके उत्तर भेद ज्ञनेक हैं। उन्हें ही यहाँ पर उत्तर प्रकृति शृब्द द्वारा कहा गया है। पहले मूल प्रकृति स्थितवन्धका विस्तार के साथ विवेचन कर ज्ञाये हैं। ज्ञब ज्ञागे उत्तरप्रकृतिस्थितवन्धका विवेचन करनेवाले हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसके अधिकार और कम वही हैं जो मूलप्रकृति स्थितिवन्धका विवेचन करते समय कह ज्ञाये हैं। मात्र यहाँ उन अधिकारों द्वारा उत्तर प्रकृतियों के स्थितिवन्धका ज्ञवलम्बन लेकर विचार किया गया है।

स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा

२. श्रव स्थितवन्धस्थानप्रक्षपणाका विचार करते हैं। उसकी श्रपेक्वा स्हम श्रपर्याप्तके चार श्रायु, वैक्रियिकषट्क, श्राहारक शरीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर तीर्थं कर प्रकृतिके सिवा श्रेष सव प्रकृतियोंके स्थितवन्धस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे वादर श्रपर्याप्तकके स्थितिवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे वादर पर्याप्तकके स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादिष्ट पर्याप्तक जीवके स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादिष्ट पर्याप्तक जीवके स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इस स्थानके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर मूल प्रकृति वन्धके समान श्रह्मबहुत्व है।

विशेषार्थ—कुत्त बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२० हैं। इनमेंसे नरकायु, देवायु, वैकियिक-

१. मूलप्रती वादर० श्रपन्जत्त० इति पाठः ।

- ३. णिरय-देवायूणं सन्वत्थोवा पंचिदियस्स असिएणस्स पन्जत्तगस्स हिदि-वं । पंचिदियस्स सिएणस्स पन्जत्तयस्स हिदिवंधहाणाणि असंखेन्जगुणाणि । तिरिक्खमणुसायूणं तेरसएणं जीवसमासाणं हिदिवंधहाणाणि तुल्लाणि थोवाणि । पंचिदियस्स सिएणस्स पन्जत्तयस्स हिदिवं असं ०गु० ।
- ४. णिरयगदि-णिरयगदिपात्रोग्गाणुपुन्त्रीणं सन्तत्थोवा पंचिदियस्स त्रसणिण-यस्स पन्नत्तयस्स हिदिवं० । पंचिदियस्स सिण्णस्स पन्नत्तयस्स हिदिवंधहाणाणि संखेजनगु० । देवगदि-वेजन्विय०-वेजन्विय०त्रंगोव०-देवाणुपुन्वि० सन्वत्थोवा पंचिदियस्स त्रसण्णिस्स पन्नत्तयस्स हिदिवं० । पंचिदि० सिण्णस्स अपन्नत्तस्स हिदिवं० संखेजनगु० । तस्सेव पन्नत्त० हिदिवं० संखेजनगु० ।

षद्क, श्राहारक शरीर, श्राहारक श्रांगोपांग श्रीर तीर्थंकर इन प्रकृतियोंका सव जीव समासोंमें वन्ध नहीं होता तथा तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके विपयमें विशेष वक्कव्य है, इसलिए इन तेरह प्रकृतियोंके सिवा शेष १०७ प्रकृतियोंके स्थितिवन्धस्थानींका श्रत्यव-हुत्व जिस प्रकार मूल प्रकृतिस्थितिवन्धका कथन करते समय कह श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

2. पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके नरकायु और देवायुके स्थितवन्धस्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकके स्थितवन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं। तेरह जीव समा-सोंके तिर्यञ्च आयु और मनुष्यायुके स्थितवन्धस्थान तुल्य होकर स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकके स्थितवन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—नरकायु और देवायुका स्थितिवन्ध असंकी एञ्चेन्द्रियके पत्यके असंख्या-तवं भागसे अधिक नहीं होता। तथा संक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके वह तेतीस सागरतक होता है। इसीसे असंक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक इन दोनों आयुओं के स्थितिवन्धस्थानों से संक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके स्थितिवन्धस्थान असंख्यातगुणे कहे हैं। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जधन्य स्थितिवन्धसे लेकर एक पूर्वकोटितक स्थितिवन्ध चौदहों जीवसमासों सम्भव है। मात्र संक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पत्यतक होता है। यही कारण है कि तेरह जीवसमासों इन दोनों आयुओं के स्थितिबन्धस्थान तुत्य और सबसे स्तोक कहे हैं। तथा संक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके वे असंख्यातगुणे कहे हैं, क्यों कि पूर्वकोटिके प्रमाणसे तीन पत्यका प्रमाण असंख्यातगुणा होता है।

थ. पञ्चेन्द्रिय त्रसंभी पर्याप्तकके नरकगति श्रौर नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीके स्थिति वन्धस्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संभी पर्याप्तकके स्थितिवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। पञ्चेन्द्रिय त्रसंभी पर्याप्तकके स्थितिवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। पञ्चेन्द्रिय त्रसंभी पर्याप्तकके देवगति, वैक्रियिक श्रीर, वैक्रियिक त्राङ्गोपाङ्ग श्रौर देवगित प्रायोग्यानुपूर्वीके स्थितिवन्धस्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संभी त्रपर्याप्तकके स्थितिवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—त्रसंक्षी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके स्थितिविकल्पोंसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय ग्रपर्याप्त ग्रौर पर्याप्तके स्थितिबन्धस्थान उत्तरोत्तर संख्यातगुणे होते हैं यह स्पष्ट ही है, क्योंकि श्रसंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध पल्यका संख्यातवां भाग कम एक हजार

१. मूलप्रतौ पंचिदियस्स सण्णिस्स इति पाठः ।

- ५. आहार०-आहारंगो० सन्वत्थोवा अपुन्वकरण० हिदिवंघहाणाणि। संजदस्स हिदिवं० संखेज्जग्र०। तित्थयरणामस्स सन्वत्थोवा [अपुन्वकरणहिदिवंघहाणाणि।] संजदस्स हिदिवं० [संखेज्जग्रणाणि।] संजदस्स हिदिवं० संखेज्जग्र०। असंजदस्स सम्मादिहिअपज्जत्तयस्स हिदिवं० संखेज्जग्र०। तस्सेव पज्जत्त० हिदिवंध० संखेजजग्र०।
- ६. तासि चेव पगदीणं पढमदंडश्रो सन्वत्थोवा सुहुमस्स श्रपज्जत्तयस्स संकि-लिहस्स हाणाणि । वादरश्रपज्ज० संकिलि०हाणाणि श्रसंखेज्जगुणाणि । एवं याव पंचिदियस्स सणिणस्स मिच्छादिहिस्स पज्जत्तयस्स संकिलिह्नस्स हाणाणि श्रसंखेज्जगुणाणि त्ति । एवं पढमदंडश्रो ।

सागर प्रमाण श्रौर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूरा एक हजार सागर प्रमाण होता है। यहां कुल स्थितिबन्ध विकल्प पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण उपलब्ध होते हैं।

४. अपूर्वकरणके आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्गके स्थितवन्धस्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे संयतके स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। अपूर्वकरणके तीर्थं कर नामकर्मके स्थितवन्धस्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे संयतके स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंयत सम्यग्दिष्ट अप्यितक स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंयत सम्यग्दिष्ट अप्यितक स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंयत सम्यग्दिष्ट अप्यितक स्थितवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंयत सम्यग्दिष्ट पर्यातक स्थितिवन्धस्थान संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ— आहारकशरीर, आहारकशरीर आङ्गोपाङ और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य और उत्कृप्ट स्थितवन्ध अन्तःकोटाकोटि सागरप्रमाण द्योता है, फिर भी जघन्य स्थितवन्ध से इनका उत्कृप्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा होता है। यही कारण है कि यहां इन प्रकृतियों के स्वामियों के स्थितवन्ध स्थानों का अल्पवहुत्व उत्तरोत्तर संख्यातगुणा कहा है। मात्र आहारकहिकका वन्ध संयतके ही होता है, इसलिये इनके स्थितवन्धस्थानों का अल्पवहुत्व दो स्थानों कहा है और तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध संयत, संयतासंयत तथा पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त सम्यग्दिको होता है, इसलिए इसके स्थितवन्धस्थानों का अल्पवहुत्व इन स्थानों में कहा है।

६. उन्हीं प्रकृतियोंका जो प्रथम दण्डक है उनको अपेक्षा सूक्ष्म अपर्याप्तकके संक्लेश-रूप स्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे बादर अपर्याप्तकके संक्लेशरूप स्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकके संक्लेशस्थान असंख्यातगुणे हैं इस स्थानके प्राप्त होनेतक संक्लेश स्थानोंका कथन करना चाहिए। इस प्रकार प्रथम दण्डक समाप्त हुआ।

विशेषार्थ – पहले १४ जीव-समासोंमें १०७ प्रकृतियोंके स्थितिवन्धस्थानोंका श्रल्प-यहुत्व वतला श्राये हैं। उन्हीं प्रकृतियोंके संक्लेशस्थानोंका यहां चौदह जीव-समासोंमें श्रल्पवहुत्व कहा गया है। मूलप्रकृति स्थितिवन्ध स्थानोंका कथन करते समय संक्लेश विश्वद्धिस्थानोंका चौदह जीवसमासोंमें जिस क्रमसे निर्देश किया है उसी क्रमसे इस

१. मूलप्रती श्रपुब्वकर्याद्विदिबंधद्वाणाणि श्रसंखे गु०। संजदस्स इति पाटः ।

२. तित्थयरणामस्स द्विदिनं० सन्नत्थोना संजदस्स द्विदिनं० । सजदा- इति पाठः ।

- ७. विदियदंड्यो देव-णिरयायु० । तिदयदंड्यो तिरिक्ख-मणुसायु० । चडत्थ-दंड्यो णिरयगिददुगं । पंचमदंड्यो देवगिद०४ । तदो याहारदुगं तित्थयरं । सन्व-संकिलिहस्स हाणाणि यथाकमेण य्यसंखेज्जगुणाणि । एवं विसोधिहाणाणि वि णेदन्वाणि सन्वेसु वि दंडएसु ।
- ८. अष्णवहुगं । पंचणाणा०-चढुदंसणा०-सादावेद०-चढुसंज०-पुरिस०-जस०-उच्चागो०-पंचंतराइगाणं सन्वत्थोवा संजदस्स जहण्णुओ द्विदिवंधो । वादरएइंदिय-पज्जत्तयस्स जहण्णुओ द्विदिवंधो असंखोज्जगु० । एवं याव पंचिदिय० सणिण० मिच्छादिद्वि० पज्जत्तस्स उक्कस्सुओ द्विदिवंधो संखेज्जगुणो त्ति ।

प्रथम दण्डकमें कही गईं प्रकृतियोंके चौदह जीवसमासोंमें संक्लेश-विशुद्धिस्थान जानने चाहिए यह उक्क कथनका तात्पर्य है।

७. दूसरा दग्रडक देवायु श्रीर नरकायुका है। तीसरा दग्रडक तिर्यञ्च श्रायु श्रीर मनुष्या-युका है। चौथा दग्रडक नरकगितद्विकका है। पाँचवाँ दग्रडक देवगित चतुष्कका है। इसके वाद श्राहारक द्विक श्रीर तीर्थंकर प्रकृति है। इनकी श्रपेद्या सर्व संक्लेश स्थान क्रमसे श्रसं-ख्यातगुणे हैं। तथा सभी दण्डकोंमें इसी प्रकार विशुद्धि स्थान ज्ञानने चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें जो तेरह प्रकृतियाँ छोड़ दी गई थीं उनके स्थितिवन्ध-स्थानों के ही यहाँ संक्लेश-विशुद्धिस्थानों का कमसे निर्देश किया गया है। प्रथम दण्डकमें कही गई १०७ प्रकृतियों में प्रत्येकके जितने संक्लेशिवशुद्धिस्थान होते हैं उनसे दूसरे दण्डकमें कही गई देवायु और नरकायु इनमें प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान ग्रसंख्यातगुणे होते हैं। इनसे तीसरे दण्डकमें कही गई तिर्यञ्चायु ग्रीर मनुष्यायु इन दो प्रकृतियों मेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान ग्रसंख्यातगुणे होते हैं। इनसे चौथे दण्डकमें कही गई नरकगित ग्रीर नरकगित प्रायाग्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियों मेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान ग्रसंख्यातगुणे होते हैं। इनसे पाँचवें दण्डकमें कही गई देवगित, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक ग्ररीर ग्रीर वैक्रियिक ग्राङ्गीपङ्ग इन चार प्रकृतियों मेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान ग्रसंख्यातगुणे होते हैं। इनसे ग्राह्मारकिवक्र मेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान ग्रसंख्यातगुणे होते हैं। इनसे न्राह्मारकिवक्र प्रकृतिके संक्लेश-विशुद्धिस्थान ग्रसंख्यातगुणे होते हैं। यहां मूलमें संक्लेशस्थान किसके कितने गुणे होते हैं यह कहा है श्रीर ग्रन्तमें यह कहा है कि इसी प्रकार विशुद्धिस्थान भी जानने चाहिए। सो इस कथनका यह ग्रिमेग्रय है कि जिसके जितने संक्लेश-स्थान होते हैं उसके उतने ही विशुद्धिस्थान भी होते हैं।

८. श्रत्पबहुत्व, यथा—संयतके पांच श्वानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार सञ्ज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र श्रौर पांच श्रन्तरायका जघन्य स्थितिधन्ध सबसे स्तोक है। इससे वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध श्रसंख्यातगुणा है। इस प्रकार श्रन्तमें पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है इस स्थानके प्राप्त होनेतक श्रत्पबहुत्व जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ जो बाईस प्रकृतियां गिनाई हैं उनमेंसे साता वेदनीय श्रीर चार सञ्ज्वलन इनका जघन्य स्थितिबन्ध नवमें गुण्स्थानमें होता है श्रीर शेपका दशवें गुण्स्थानके श्रन्तिम समयमें होता है। इसीसे संयतके इनका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक कहा है। इसके श्रागे इनके स्थितिबन्धका श्रल्पबहुत्व जिस प्रकार मूल प्रकृति स्थितिबन्धकी

- ६. थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-त्रणंताणुवंधि०४-तिरिक्खगिद-तिरिक्खाणु०-उज्जो-व-णीचागोद० सन्वत्थोवा वादरएइंदियपज्जत्तयस्स जहएणुओ हिदिवंधो। एवं याव मिच्छादिहि त्ति ऐ।दन्वं। एवरि सम्मादिहि० वंधो एित्थ।
- १०. णिद्दा-पचला-छएणोकसाय-श्रसाद-पंचिदियजादि-तेजा०-कम्म०-समचढु०-वएण०४-श्रगुरुग०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-श्रादेज्ज०-श्रजस०-णिमिणणामाणं सन्वत्थोवा वादरएइंदियपज्जत्तयस्स जहएणश्रो०। एवं पंचिदिय० संगिण० पज्जत्तयस्स उक्कस्सश्रो हिदिवंधो संखेज्जगुणो ति ।
- ११. त्रपच्चक्लाणावर०-मणुसगिद-त्रोरालिय०-त्रोरालिय०त्रंगो०-वज्जरि-सभ०-मणुसाणु० सन्वत्थोवा वादरएइंदियपज्जत्तयस्स जहएणत्रो०। एवं याव पंचिं-दिय० सिएण० मिच्छादिष्टि० द्विदिवंधो संखेज्जगुणो ति । एवं विरे [संजदे संजदा-संजदे गित्थि ।

प्ररूपणाके समय कह श्राये हैं उसी प्रकार यहां जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

९. स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार, तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगित प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत श्रौर नीचगोत्र इनका बाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक होता है। इसी प्रकार मिथ्यादिएतक श्रल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका सम्यग्दिएके बन्ध नहीं होता।

विशेपार्थ—सूल प्रकृति स्थितिवन्छका कथन करते समय वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकतक जिस प्रकार श्रत्यवहुत्व कह श्राये हैं उसी प्रकार यहां कहना चाहिए। इन प्रकृतियोंका वन्छ सम्यग्द्दिके नहीं होता यह स्पष्ट ही है।

१०. निद्रा, प्रचला, छह नोकषाय, श्रसाता वेदनीय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रम, श्रश्रम, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, श्रयशःकीर्ति श्रीर निर्माण इन प्रकृतियोंका बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके जघन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक होता है। इस प्रकार श्रागे पञ्चेन्द्रिय संबी पर्याप्तकके इनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा होता है, इस स्थानके प्राप्त होनेतक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँपर भी वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे लेकर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकतक जिस प्रकार मूल प्रकृति स्थितवन्धका कथन करते समय श्रव्पबहुत्व कह श्राये हैं उसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र इनका वन्ध सम्यग्दिष्ट श्रीर संयतके भी होता है इतना विशेष जानकर श्रव्पबहुत्व कहना चाहिए।

११. श्रप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, मनुष्यगित, श्रौदारिक श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन श्रौर मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वी इन प्रकृतियोक्ता वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितवन्ध सवसे स्तोक होता है। इस प्रकार श्रागे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टिके इनका उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा होता है, इस स्थानके प्राप्त होनेतक श्रल्पवहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका वन्ध संयत श्रौर संयतासंयतके नहीं होता।

१. ग्यवरिःःः 'सन्वस्थोवा बादरपृईंदिय— इति पाठः ।

- १२. पच्चक्लाणावर० ४] सन्वत्थोवा वादरएइंदियपज्ज० जह०। एवं याव पंचिंदिय-सणिण-मिच्छादिद्विपज्जत्तग ति । एवरि संजदे रणित्थ ।
- १३. इत्थि०-एवुं सं०-चढुजादि-पंचसंठाएए०-पंचसंघड०-श्रादाव-श्रणसत्थवि०-थावर०४-दूभग-दुस्सर-श्रादिज्ज० सन्वत्थोवा वादरएइंदियपज्जत्त० जह०। एवं याव श्रसिएए-पंचिदिय-पज्जत्तयस्स उक्कस्सश्रो द्विदिवंधो विसेसाथियो। तदो पंचि-दिय-सिएए-पज्जत्तयस्स जह० द्विदिवं० संखेज्जगु०। तस्सेव श्रपज्जत्त० जह० द्विदि-वं० संखेज्जगु०। [तस्सेव श्रपज्जत्तयस्स उक्कस्सश्रो द्विदिवंधो संखेज्जगुणो।] तस्सेव पज्जत्त० उक्क० द्विदिवं० संखेज्जगु०।
- १४. णिरय-देवायूणं सन्वत्थोवा पंचिदियस्स सिण्णस्स श्रसिण्स्स पज्जत्त । जह० द्विदिवं० । पंचिदि० श्रसिण्ण० पज्जत्तयस्स उक्कस्स० दिदिवं० श्रसंखे-ज्जग्र० । पंचिदिय-सिण्ण-पज्जत्तयस्स उक्क० दिदिवं० श्रसंखेज्जग्र० ।

विशेषार्थ—इनका श्रत्पयहुत्व पूर्वोक्त प्रकारसे ही घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनका वन्ध श्रसंयत सम्यन्दिष्ट गुणस्थान तक ही होता है इतना विशेष जानकर श्रत्प-यहुत्व कहना चाहिए; क्योंकि इनकी वन्धव्युच्छित्ति चौथे गुणस्थानमें हो जाती है। श्रागे संयतासंयत श्रीर संयत जीवोंके इनका वन्ध नहीं होता।

१२. प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिवन्ध सवसे स्तोक होता है। इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त इस स्थानके प्राप्त होनेतक अल्पवहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका वन्ध संयतके नहीं होता है।

विशेषार्थ—देशसंयत गुण्स्यानतक इन प्रकृतियोंका वन्ध होता है इतनी विशेषताको ध्यानमें रखकर इनका अल्पवहुत्व पूर्वोक्त विधिसे कहना चाहिए।

१३. स्रोवेद, नपुंसकवेद, पकेन्द्रियज्ञाति श्रादि चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रातप, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर चतुष्क, दुर्भग, दुसर और श्रनादेय इनका वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके जधन्य स्थितिवन्ध सवसे स्तोक है। इस प्रकार क्रमसे आगे जाकर श्रमंत्री पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध विशेष श्रधिक है। इससे पञ्चेन्द्रिय संत्री पर्याप्तके जघन्य स्थितिवन्ध संस्थातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संत्री श्रपर्याप्तके जघन्य स्थितिवन्ध संस्थातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संत्री श्रपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संस्थातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संत्री श्रपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संस्थातगुणा है।

विशेषार्थ—इन प्रकृतियोंका वन्ध सम्यग्दिष्ट श्रीर संयतके नहीं होता, इसिलए श्रहप-बहुत्वमेंसे इन स्थानोंके श्रहपबहुत्वको कम करके उक्त प्रकारसे इनका श्रहपबहुत्व कहना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

१४. नरकायु और देवायुका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके जयन्य स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है। इससे पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा है।

निरोषार्थ—पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और असंज्ञी पर्याप्तके उक्त दोनों आयुओंका जघन्य स्थिति-वन्ध दस हजार वर्षप्रमाण होता है। पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थिति-

- १५. तिरिक्ख-मणुसायूणं चोद्दसजीवसमासाणं जह० द्विदि० तुल्ला थोवा। तेरसण्णं जीवसमासाणं उक्क० द्विदिवं० संखेजजगु०। पंचिदिय-सण्णि-पज्जत्तयस्स उक्क० द्विदिवं० असं०गु०।
- १६. णिरयगदि-णिरयाणुपु० [सन्वत्थोवा] पंचिंदिय-श्रसिण्ण-पज्जत्त० जह० द्विदिवं० । तस्सेव उक्क० द्विदिवं० विसेसाधियो । पंचिंदिय-सिण्ण-पज्जत्त० जह० द्विदिवं० संखेज्जगु० । तस्सेव उक्क० द्विदिवं० संखेज्जगु० ।
- १७. देवगदि०४ सन्वत्थोवा पंचिंदियस्स असिएए० पज्जत्तयस्स जह० हिदि-वं । तस्सेव उक्क० हिदिवं० विसे० । संजदस्स जह० हिदिवं० संखेज्जगु० । तस्सेव उक्कस्स० हिदिवं० संखेज्जगु० । एवं संजदासंजदा असंजदचत्तारि । पंचिंदिय० सिएए० मिच्छादिहि० पज्जत्त० जह० हिदिवं० संखेज्जगु० । तस्सेव उक्क० हिदिवं० संखेजजगु० ।

वन्ध तेंतीस सागरप्रमाण होता है। यतः ये स्थितियाँ उत्तरोत्तर श्रसंख्यातगुणी हैं इससे यहां उत्तरोत्तर श्रसंख्यातगुणा स्थितिवन्ध कहा है।

१४. तिर्यञ्चायु श्रोर मनुष्यायुका चौद्द जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकके जघन्य स्थिति-वन्ध एक समान श्रोर सवसे स्तोक होता है। इससे तेरह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यातगुणा होता है। इससे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा होता है।

विशेषार्थ—चौद्द जीवसमासोंमें उक्क दोनों श्रायुश्रोंका जघन्य स्थितियन्ध क्षुत्तक भवग्रहणप्रमाण होता है। श्रन्तिम जीवसमासको छोड़कर शेष तेरहमें इनका उत्कृष्ट स्थिति-यन्ध पूर्वकोटिवर्षप्रमाण होता है श्रोर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितियन्ध तीन पत्यप्रमाण होता है। यतः यहां प्रथमसे दूसरा संख्यातगुणा श्रोर दूसरेसे तीसरा श्रसंख्यातगुणा है अतः इनका उक्क प्रकारसे श्रत्यवहुत्व कहा है।

१६. नरकगित श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीका पञ्चेन्द्रिय श्रसंज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितियन्ध सबसे स्तोक होता है। इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितियन्ध विशेष श्रधिक होता है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितियन्ध संख्यातगुणा होता है। इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितियन्ध संख्यातगुणा होता है।

विशेषार्थ—यहाँ पर पञ्चेन्द्रिय ग्रसंक्षी पर्याप्तके स्थितिवन्धके कुल विकल्प पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण हैं श्रोर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके श्रन्तःकोटाकोटि सागरसे लेकर श्रपने उत्कृष्ट स्थितिवन्ध तक. हैं। यही कारण है कि उक्त प्रकृतियोंका पूर्वोक्ष जीवसमासोंमें उक्त प्रकारसे श्रल्पबहुत्व घटित हो जाता है।

१७. देवगितचतुष्कका पञ्चेन्द्रिय ग्रसंक्षी पर्याप्तके जघन्य स्थितवन्ध सवसे स्तोक है। इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितवन्ध विशेष ग्रधिक है। इससे संयतके जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इस प्रकार इससे ग्रागे संयतासंयत ग्रीर ग्रसंयतचतुष्कके ग्रह्पवहुत्व कहना चाहिए। पुनः इससे पञ्चेन्द्रिय संजी मिथ्यादिष्ट पर्याप्तके जघन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है।

१८. [त्राहारदुगस्स सन्वत्थोवा अपुन्वकरणस्स] जह० हिदिवं० । [तस्सेव-उक्कस्स०हिदिवन्धो]। संखेज्जगु०। अपमत्तसंज० जह० हिदिवं० संखेज्जगु०। तस्सेव उक्कस्स० हिदिवं० संखेज्जगु०। तित्थयरस्स सन्वत्थोवा अपुन्वकरणस्स जह० हिदि-वंधो। तस्सेव उक्क० हिदिवं० संखेज्जगु०। एवं याव असंजदसम्मादिहि ति गोदन्वं। एवं हिदिवंधहाणपरूवणा समत्ता।

१६. णिसेगपरूवणदाए दुवे अणियोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा य । अणंतरोवणिधाए पंचिंदियाणं सएणीणं मिच्छादिद्दीणं सन्वपगदीणं आयु-वन्जाणं अप्पणणो आवाधं मोत्तूण यं पढमसमए [पदेसग्गं णिसित्तं तं वहुगं । जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं । जं तिद्दयसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं] विसेसहोणं । एवं विसेसहीणं विसे० याव उक्कस्सिया अप्पणणो दिदि ति । एवं पंचिंदियसिणअपज्जत्त-असिणणपंचिंदिय-चदुरिं०-[तेइंदिय-] वीइंदि०-एइंदि०-पज्जत्तापज्जत्त० सन्वपगदीणं सिण्णभंगो ।

विशेषार्थ—संयतके उत्कृष्ट स्थितवन्धसे संयतासंयतके जधन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे असंयतसम्यग्दिष्ट पर्याप्त
के जधन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे असंयत सम्यग्दिष्ट अपर्याप्तके जधन्य स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा है। इससे इसीके पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इससे
पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादिष्ट पर्याप्तके जधन्य स्थितवन्ध संख्यातगुणा है। इस प्रकार सम्वन्ध
मिलाकर देवचतुष्कके स्थितवन्धका अल्पवहुत्व कहे। शेष कथन सुगम है।

१८. श्राहारकद्विकका श्रपूर्वकरणके जघन्य स्थितिवन्घ सवसे स्तोक है। इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिवन्घ संख्यातगुणा है। इससे श्रप्रमत्तसंयतके जघन्य स्थितिवन्घ संख्यातगुणा है। इससे श्रप्रमत्तसंयतके जघन्य स्थितिवन्घ संख्यातगुणा है। इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिवन्घ संख्यातगुणा है। तीर्थंकर प्रकृतिका श्रपूर्वकरणके जघन्य स्थितिवन्घ सवसे स्तोक है। इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिवन्घ संख्यातगुणा है। इस प्रकार श्रसंयत सम्यग्दिष्ट स्थानके प्राप्त होने तक श्रह्णवहुत्वका कथन करना चाहिए।

विशेषार्थ— आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत आदि दो और तीर्थंकर प्रकृतिका असंयत-सम्यग्हिए आदि पाँच गुगस्थानोंमें वन्ध होता है, इसलिए इसी विशेपताको ध्यानमें रखकर इनके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अल्पवहुत्व कहा है।

इस प्रकार स्थितिवन्धस्थानप्रकृपणा समाप्त हुई।

निपेकप्ररूपणा

१९. अव निपेकप्ररूपणाका कथन करते हैं। उसके ये दो अनुयोगद्वार हैं—अनन्तरो-पनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंके आयुकर्मके सिवा सब प्रकृतियोंके अपनी अपनी आवाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्म परमाणु निक्तित होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें निक्तित होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें निक्तित होते हैं वे विशेपहीन हैं। इस प्रकार अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्तित होते हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अप-

- २०. परंपरोविषाधाए पंचिदियाणं सण्णीणं श्रसण्णीणं पञ्जत्तगाणं सन्वपग-दीणं पढमसमयपदेसग्गादो तदो पिलदोवमस्स श्रसंखेज्जिदभागं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा याव उक्कस्सिया द्विदि ति।
- २१. एयपदेसगुग्णहाग्णिहाणंतरं असंखेज्जाग्णि पित्ववेवमवग्गमूलाग्णि । णाणा-पदेसगुग्णहाग्णिहाणंतराग्णि पित्ववेवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो । गाग्णापदेस-गुग्णहाग्णिहाग्णंतराग्णि थोवाग्णि । एयपदेसगुग्णहाग्णिहाग्णंतरमसंखेज्जगुग्णं । एवं पंचिंदियसग्गि—असग्गिअपज्जत्त—चढुरिंदि०—तीइंदि०—बीइंदि०—एइंदि०पज्जत्ता— पज्जत्ताग्णं आयुगवज्जाग्णं सन्वपगदीग्णं । एवं गिसेगपरूवग्णा समत्ता ।

आबाधाकंडयपरूवगा

२२. त्रावाधाखंडयपरूवणदाए पंचिंदियाणं सएणीणं चदुरिंदि०-तीइंदि०-वीइंदि०-एइंदि० त्रायुगवज्जाणं सन्वपगदीणं त्रपपपणो उक्कस्सियादो हिदीदो समए समए पिलदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं त्रोसिकदूण एयं त्रावाधाखंडयं करेदि। एस कमो याव जहएणहिदि ति।

र्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय श्रपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय प्रपर्याप्त, द्रीन्द्रिय पर्याप्त, द्रीन्द्रिय प्रपर्याप्त, प्रकेन्द्रिय पर्याप्त, द्रीन्द्रिय श्रपर्याप्त, प्रकेन्द्रिय पर्याप्त, द्रीन्द्रिय श्रपर्याप्त, प्रकेन्द्रिय पर्याप्त, द्रीन्द्रिय श्रपर्याप्त, प्रकेन्द्रिय पर्याप्त, द्रीन्द्रिय श्रपर्याप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्य श्रपर्याप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्याप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्याप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्याप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्याप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्य श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्याप्त, द्रीन्द्रय श्रपर्याप्त, द्रीन्य श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीव्य श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीन्द्रय श्रप्त, द्रीव्य श्रप्त,

२०. परम्परोपनिधाकी श्रपेता पञ्चेन्द्रिय संबी पर्याप्त श्रौर पञ्चेन्द्रिय श्रसंबी पर्याप्त जीवोंके सव प्रकृतियोंके प्रथम समयमें निक्ति हुए परमाणुश्रोंसे लेकर पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाने पर वे द्विगुणहीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते जाते हैं।

२१. एकप्रदेशद्विगुण्हानिस्थानान्तर पत्यके श्रसंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है श्रीर नानाप्रदेशद्विगुण्हानिस्थानान्तर पत्यके प्रथम वर्गमूलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानाप्रदेशगुण्हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकप्रदेशगुण्हानिस्थानान्तर श्रसंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी श्रपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय श्रपंज्ञी श्रपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चीन्द्रिय श्रपर्याप्त, श्रीन्द्रिय पर्याप्त, श्रीन्द्रिय पर्याप्त, श्रीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, प्रकेन्द्रिय पर्याप्त श्रीर एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवोंके आयुश्रोंके सिवा श्रोप सब प्रकृतियोंकी परम्परोप्तिचा जाननी चाहिए।

इस प्रकार निषेकप्ररूपणा समाप्त हुई।

आवाधाकाएडकप्ररूपणा

२२. श्रव श्रावाधाकाएडककी प्ररूपणा करते हैं। उसकी श्रपेत्वा पञ्चेन्द्रिय संक्षी, पञ्चेन्द्रिय श्रान्द्रिय श्रीन्द्रिय श्रीर एकेन्द्रिय जीवोंमें श्रायुकर्मके सिवा सव प्रकृतियोंका श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट स्थितिसे समय समय उतरते हुए पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्थित उतरकर एक श्रावाधाकाण्डक करता है श्रीर यह क्रम श्रपनी श्रपनी जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक चालू रहता है।

अप्पाबहुगपरूवगा

२३. अप्पावहुगं—पंचिदियाणं संग्णीणं पंचणाणा०-चढुदं०-सादावेदणी०— चढुसंज०-पुरिस०-जसिगत्ति-उच्चागो०-पंचेतरा० सन्वत्थोवा जहिएणया आवाधा। जह्ण्याओ दिदिवंधो संखेळागुणो। आवाधाद्वाणाणि आवाधाखंडयाणि च दो वि तुल्लाणि संखेळागुणाणि। उक्किस्सिया आवाधा विसेसाधिया। एवं याव उक्कस्सओ दिदिवंधो ति।

२४. सेसाणं श्रायुगवज्ञाणं सन्वपगदीणं सन्वत्थोवा जहिएणया श्रावाधा। श्रावाधाहाणंणि श्रावाधात्वण्डयाणि य दो वि तुल्लाणि संखेज्जगुणाणि। एक- स्सिया श्रावाधा विसेसाहिया। उविर मूलपगिदवंधो। श्रायुगाणमिप मूलपगिद-भंगो। एवं श्रसिएणपंचिदिय-चदुरिं०-तीइं०-वीइं०-एइंदियाणं मूलपगिदभंगो कादन्वो। एवं श्रप्णावहुगं समत्तं।

चडवीसऋणिऋोगद्दारपरूवणा

२५. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चढुवीसमणियोद्दाराणि—अद्धाच्छेदो

अल्पवहुत्वप्ररूपणा

२३. ग्रव ग्रल्पवहुत्वका विचार करते हैं। इसकी ग्रपेक्ता पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीवोंके पाँचों ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुपवेद, यग्रःकीर्ति, उचगोत्र ग्रौर पाँचों ग्रन्तराय प्रकृतियोंकी जघन्य ग्रावाधा सबसे स्तोक है। इससे जघन्य स्थितिवन्य संख्यातगुणा है। इससे ग्रावाधास्थान ग्रौर ग्रावाधाकाण्डक ये दोनों समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट ग्रावाधा विशेष ग्रिधक है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिवन्धके प्राप्त होने तक ग्रल्पबहुत्व जानना चाहिए।

२४. श्रायुके सिवा शेष सव प्रकृतियोंकी जघन्य श्रावाधा सवसे स्तोक है। इससे श्रावाधास्थान श्रीर श्रावाधाकाण्डक ये दोनों समान होकर संख्यातगुरो हैं। इससे उत्कृष्ट श्रावाधा विशेष श्रधिक है। इससे श्रागे मूलप्रकृति स्थितवन्धमें कहे गये श्रत्यवहुत्वके समान जानना चाहिए। चारों श्रायुश्रोंकी श्रपेक्षा भी श्रत्यवहुत्व मूलप्रकृति स्थितवन्धमें कहे गये श्रत्यवहुत्वके समान जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार श्रसंशी पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, श्रीर एकेन्द्रिय जीवोंके मूल प्रकृतिस्थितवन्धके समान श्रत्यवहुत्व कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले मूलप्रकृति स्थितिवन्धका कथन करते समय चौदह जीवसमासोंमें मूल प्रकृतियोंका उनकी स्थितिका आश्रय लेकर अल्पवहुत्व कह आये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहाँ पर भी प्रत्येक कर्मकी प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध आवाधा और आवाधाकाएडकके आश्रयसे अल्पवहुत्व जान लेना चाहिए यह उक्क कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार श्रल्पवहुत्व समाप्त हुशा।

चौवीस अनुयोगद्वारमरूपणा

२५. इस अर्थ पदके अनुसार यहाँ ये चौवीस अनुयोगद्वार होते हैं—अद्धाछेद, सर्व-

सन्ववंधो णोसन्ववंधो याव अप्पावहुगे त्ति २४। अजगारवंधो पदणिक्लेओ वड्डि-वंधो अजभवसाणसमुदाहारो जीवसमुदाहारो त्ति ।

अद्घाच्छेदपरूवगा

२६. श्रद्धाच्छेदो दुविधो—जहरणश्रो उक्कस्सश्रो य । उक्कस्सए पगदं । दुविधो णिदेसो—श्रोघेण श्रादेसेण य । श्रोघेण पंचणाणा०-णवदंसणा०-श्रसादावे०-पंचंतरा० उक्कस्सश्रो हिदिवंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीश्रो' । तिण्णि वस्ससहस्साणि श्रावाधा । श्रावाधाणिया कम्महिदी कम्मणिसेगो ।

२७. सादावेदं ०-इत्थिवे ० - मणुसगदि-मणुसाणु ० उक्क० हिद्दिवं ० पण्णारस सागरोवमाणि कोडाकोडी त्रों । पण्णारस वाससदाणि त्रावाधा । त्रावाधू ० कम्महिदी कम्मणिसेगो ।

२८. मिच्छत्तं उक्क॰ द्विदिवं॰ सत्तरि सागरोवमाणि कोडाकोडीश्रो'। सत्त वस्स-सहस्साणि श्रावाधा । श्रवाधूणिया कम्मिट्टदी कम्मिणसेगो । सोलसकसा॰ उक्क॰ द्विदि॰ चत्तालीसं सागरोवमणि कोडाकोडीश्रो'। चत्तारि वस्ससहस्साणि श्रावाधा । श्रावाधृणिया कम्मिट्टदी कम्मिणसेगो । पुरिस॰-हस्स-रदि-देवगदि॰-समचढु०-

वन्ध श्रौर नोसर्ववन्धसे लेकर श्रल्पवहुत्व तक २४। भुजगारवन्ध, पदनित्तेप, वृद्धिवन्ध, श्रध्यवसानसमुदाहार श्रौर जीवसमुदाहार।

विशेषार्थ—इन ग्रधिकारोंके विषयमें हम मूलप्रकृतिस्थितवन्धका विवेचन करते समय लिख ग्राये हैं, इसलिए वहाँसे जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

ग्रद्धाच्छेदमरूपणा

२६. श्रद्धाच्छेद दो प्रकारका है—जघन्य श्रौर उत्कृप्ट । उत्कृप्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ श्रौर श्रादेश । श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय श्रौर पाँच अन्तरायका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर है । तीन हजार वर्ष श्रावाधा है, श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है ।

२७. साता वेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगित श्रीर मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वीका उत्कृष्ट स्थितियन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर है। पन्द्रह सौ वर्ष प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्म निषेक है।

२८. मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है, सात हजार वर्पप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्म निपेक है। सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है, चार हजार वर्ष प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्म निषेक है। पुरुषवेद, हास्य, रित, देवगित, समचतुरस्रसंस्थान,

१. दुक्खितिचादीणोर्घ। गो० क० गा० १२८। २. सादित्थीमणुदुगे तद्धं तु। गो० क० गा० १२८। ३. 'सत्तरि दंसणमोहे।'—गो० क० गा० १२८। ४. 'चारित्तमोहे य चत्तालं।'—गो० क० गा० १२८।

वज्जिरसभ०-देवाणुपु०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क०-उच्चागो० उक्क० हिदि० दस साग-रोवमकोडाकोडीओ'। दस वस्ससदाणि आवाधा। आवाध्यिया कम्मिहदी कम्मिणिसेगो। णबु'सगवे०-अरदि-सोग-भय-दुगु'छ-णिरयगदि—तिरिक्खगदि-एइंदिय०-पंचिदिय०-ओरालिय०-वेउव्वय-तेजा०-क०-हु'डसंटा'०-ओरालिय०-वेउव्वय-तेजा०-क०-हु'डसंटा'०-ओरालिय०-वेउव्वय-वेजा०-अग्रंगो०-असंग्रतसेवहसंघड०-वएण०४-णिरय-तिरिक्खाणु०-आग्रं०४-आदाउज्जो०-आप्सत्थवि०-[तस०-] थावर-वादर-पज्जत्त-पत्तेय-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागोदाणं उक्क० हिद्वंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ'। वे वस्ससहस्साणि आवाधाः। आवाधिणया कम्मिहदी कम्मणिसेगो।

रेह. णिरय-देवायूणं उक्क० द्विदि० तेत्तीसं सागरोवम०। पुन्वकोडितिभागं आवाधा। कम्मिट्ठदी कम्मिणसेगो। तिरिक्ल-मणुसायूणं उक्करस० द्विदि० तिथिण पित्तदोवम०'। पुन्वकोडितिभागं च आवाधा०। कम्मिट्ठदी कम्मिणसेगो।

३०. वीइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि०-वामण्०-खीलियसंघडण्-सुहुम-श्रपज्जत्त-साधारणाणं उक्क० हिदि० श्रहारस सागरोवमकोडाकोडीश्रो' । श्रहारस वाससदाणि श्रावाधा । श्रावाधूणिया कम्महिदी कम्मणिसेगो । णग्गोध०-वज्जणारा० उक्क०

वज्रषभगाराचसंहतन, देवगित प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, स्थिरादिक छह ग्रौर ज्ञच गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध दश कोड़ा-कोड़ी सागर है, एक हजार वर्ष प्रमाण ग्रावाधा है श्रौर ग्रावाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्म निपेक है। नपुंसकवेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगित, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाित, पञ्चेन्द्रियजाित, श्रौदािरक शरीर, वैकियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, ग्रौदािरक ग्राङ्गोपाङ्ग, वैकियिक ग्राङ्गोपाङ्ग, ग्रसम्प्राप्तास्यपािटकासंहनन, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, ग्रगुरुलघु चतुष्क, ग्रातप, उद्योत, ग्रप्रशस्तिवहायोगित, त्रस, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, ग्रिस्थर ग्रादिक छह, निर्माण ग्रौर नीच गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध वीस कोड़ाकोड़ी सागर है। दो हजार वर्ष प्रमाण ग्रावाधा है ग्रौर ग्रावाधासे न्यून कर्मस्थित प्रमाण कर्म निपेक है।

२९. नरकायु श्रीर देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्घे तेंतीस सागर है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थितिष्रमाण कर्म निषेक है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थिति तीन पत्यप्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति-प्रमाण कर्म निषेक है।

३०. द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, वामन संस्थान, कीलक संहनन, सूक्ष्म, श्रपर्याप्त श्रौर साधारणका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रठारह कोड़ाकोड़ी सागर है। श्रठारह सौ वर्ष श्रावाधा है श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

१. 'हस्सरिदंउच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थामणदेवदुगे। तस्सद्धं-गो० क० गा० १३२। २. संठाण-संहदीणं चिरमस्सोघं।'—गो० क० गा० १२९। ३. 'श्ररदीसोगे संदे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे। वेगु-व्वादावदुगे णीचे तसवरणश्रगुरुतिचउक्के ॥१३०॥ इगिपंचिदियथावरणिमिणा सग्गमणश्रथिरछक्काणं। वीसं कोडाकोडी सागरणामाणमुक्कस्सं ॥१३१॥' गो० क०। ४. सुरणिरयाऊणोघं णरितिरियाऊण तिरिण पर्जाणि गो० क० गा० १३३। ४. 'दृहीणमादि ति।'—गो० क० गा० १२९।

^{&#}x27;६. श्रहारस कोडाकोडी वियलाणं सुहुमतिग्हं च ।'--गो० क० गा० १२९।

हिदि० वारस सागरोवमकोडाकोडी श्रो । वारस वस्ससदाणि श्रावाधा । श्रावाधृणिया कम्मिट्टदी कम्मिण्सेगो । सादिय०-णारायसं० उक्क० द्विदि० चोदस सागरोवमकोडाकोडीश्रो । चोद्दस वस्ससदाणि श्रावाधा । श्रावाधृणिया कम्मिट्टदी कम्मिण्सेगो । खुज्जसं०-श्रद्धणा० उक्क० द्विदि० सोलस सागरोवमकोडाकोडीश्रो । सोलस वस्ससदाणि श्रावाधा । श्रावाधृणिया कम्मिट्टदी कम्मिण्सेगो । श्राहार०-श्राहार०-श्रांगो०-तित्थय० उक्क० द्विदि० श्रंतोकोडाकोडीश्रो । श्रंतोम्रहुत्तं श्रावाधा । श्रावधा । श्रावाधा । श्रावाधा

३१. त्रादेसेण ऐरइएस णाणावर०-दंसणावरण-वेदणी० मोहणी० छन्वीसं णामा-गोदे अंतराइ० मूलोघं। तिरिक्ख-मणुसायुगाणं उक्क० हिदि० पुन्वकोडी। छम्मासाणि आवा०। कम्म० कम्मणिसेगो। तित्थसस उक्क० हिदि० अंतोकोडा-कोडीओ। अंतोम्रहुत्तं आवा०। आवाधू० कम्मष्टि० कम्माणि०। एवं सत्तसु पुढवीसु। एवरि सत्तमाए पुढवीए मणुसगदि-मणुसाणुपुन्व०-उच्चागो० उक्क० हिदि०

न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान श्रीर वज्रनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितवन्ध वारह कोड़ाकोड़ी सागर है। वारह सौ वर्षप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। स्वातिसंस्थान श्रीर नाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितवन्ध चौदह कोड़ाकोड़ी सागर है। चौदह सौ वर्ष प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। कुन्जक संस्थान श्रीर अर्द्धनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितवन्ध सोलह कोड़ा-कोड़ी सागर है। सोलह सौ वर्ष प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। श्राहारक श्ररीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिक्ष्य श्रान्य श्रान्तकोड़ाकोड़ी सागर है। श्रन्तर्मुहर्त श्रावाधा है श्रीर आवाधासे न्यून कर्मस्थिति-प्रमाण कर्मनिषेक है।

विशेषार्थ—पहले मूल प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कितना होता है यह वतला ह्याये हैं। यहाँ उनकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कितना होता है यह वतलाया गया है। किसी एक या एकसे अधिक उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध जितना अधिक होता है उसीको ध्यानमें रखकर पहले मूल प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कहा गया है। उदाहरणार्थ—मोहनीय कर्मका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिवन्धकी अपेनासे कहा गया है।

३१. श्रादेशसे नारिकयों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीयकी छुव्वीस प्रकृतियाँ, नाम, गोत्र श्रौर श्रन्तरायकी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रादि मूलोघके समान है। तिर्यञ्च श्रायु श्रौर मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितवन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है। छह माह प्रमाण श्रावाधा है श्रौर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। श्रन्तमुंहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रौर आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें ज्ञानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगित, मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वी श्रौर उच्चगोत्रका उत्कृप्ट स्थितवन्ध श्रन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है और

१. 'अंतोकोडाकोडी श्राहारतित्ययरे ।'—गो० क० ग़ा० १३२ ॥ १. मूलप्रती मोहणी० चउवीसं णामा– इति पाठः ।

त्रंतोकोडाकोडीञ्रो । त्रंतोमुहुत्तं त्रावाधा । त्रावाधू० कम्मिटि० कम्मिणिसे० । चदुमु हेहिमामु तित्थयरं च णित्थ ।

३२, तिरिक्लेसु पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेदणी०-मोहणी० छव्वीसं णिरयतिरिक्ख-मणुसायु० मूलोघं । देवायु० उक्क० हिदि० वावीसं सागरोवमाणि । पुन्वकोडितिभागं आवाधा । कम्मिटि० कम्मिणि० । तिरिक्खितय-एइंदि०-वीइंदि०तेइंदि०-चुरिंदि०-ग्रोरालिय०-वामण०-ग्रोरालि० ग्रंगो०-खीलिय०-ग्रसंपत्तसेवट०तिरिक्खाणुपृन्व-ग्रादाज्जोव-थावर-सुहुम-ग्रपज्जत्त०-साधार० उक्क० हिदि० ग्रद्धारस
साग०कोडाकोडीग्रो । ग्रद्धारस वाससदाणि ग्रावा० । [ग्रावाधू० कम्मिटि०
कम्म-] णिसेगो। सेसाणं णामपगदीणं गोद-ग्रंतराइगाणं च मूलोघं। एवं पंचिदियितरिक्खपंचिदियितिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीस्छ । पंचिदियितिरिक्खग्रपज्जत्तेस्र सन्वपगदीणं
उक्क० हिदि० ग्रंतोकोडाकोडीग्रो । ग्रंतोस्र० ग्रावा० । ग्रावाधू० कम्मिटि० कम्मणिसे० । णविर तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० हिदि० पुन्वकोडी । ग्रंतोस्र० ग्रावा० ।
कम्मिटि० कम्मणिसे० ।

३३. मणुस०३ देवायु॰ आहारदुगं तित्थयरं च मूलोघं। सेसं पंचिंदिय- . तिरिक्लभंगो। मणुसअपज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्लअपज्जत्तभंगो।

श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। तथा नीचेकी चार पृथिवियोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है।

३२. तिर्यञ्चोमं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छन्वीस, मोहनीय, नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका कथन मूलोघके समान है। देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध वाईस सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। तिर्यञ्च त्रिक, पकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, जीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, श्रौदारिक शरीर, वामन संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, कीलक संस्थान, श्रप्याप्तास्पाटिका संहनन, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, स्थावर, स्वस्म, श्रप्याप्त श्रौर साधारणका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रटारह कोड़ाकोड़ी सागर है। श्रटारह सौ वर्ष प्रमाण श्रावाधा है और श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा नामकर्मकी श्रोप प्रकृतियाँ, गोत्र और अन्तराय कर्मकी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रादि मूलोघके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रप्याप्तकोंमें सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्राद्द माण स्थित प्रमाण है। श्रन्तर्ग्रह्तं प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधा से न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितवन्ध पूर्वकोटि प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिषेक है।

३३. मनुष्यत्रिकमें देवायु, श्राहारकद्विके श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रादि मूलोघके समान है। शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्थञ्चोंके समान है। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है।

ر بي

३४. देवेस पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणीय०-मोहणी०छ्रव्वीसपगदीत्रो णामस्स एइंदि०-त्रादाव-थावर० गोदंतराइयं च मूलोघं। दो त्रायु० सेसणाम० तित्थयरस्स णिरयोघं। भवणवासि-वाणवेतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाण० पंचिदिय-जादि-वामणसंठा०-त्रोरालि०त्रगो०-स्वीलिय०-त्रसंपत्त०-त्रप्यस्थिव०-तस-दुस्सर० एक० दिदि० त्रहारस सागरोवमकोडाकोडीत्रो। त्रहारस वस्ससदाणि त्रावाधा। त्रावाध्व० कम्मदि० कम्मणिसेगो। सेसाणं पगदीणं देवोघं। णविर भवण०-वाण-वेत०-जोदिसिय० तित्थकरं णित्थ। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयभंगो। त्राणद याव सन्वह त्ति सन्वपगदीणं उक्कस्स० दिदि० त्रंतोकोडाकोडीत्रो। त्रांतोसुह० त्रावा०। [त्रावाध्व० कम्मिट० कम्मिट० कम्मिट० कम्मिट० कम्मिट० कम्मिट० कम्मिट० कम्मिट० क्रेतोस्तर्थ० देवोघं।

३५. एइंदिय-वादरएइंदिय॰ तस्सेव पज्जत्ता० पंचणाणा०-एवदंसणा०-श्रसाद०-िमच्छत्त०-सोलसक०-एवुंस०-अरिद-सोग-भय-दुगुंच्छ०-तिरिक्खगिद्-एइंदिय०-ओरालिय-तेजा-क०-हुंडसंठा०-वएण०४-तिरिक्खगिदिपा०-अगुरू०-उपघा०-थावर-सुहुम-श्रपज्जत्त-साधारण-श्रथिर-श्रसुभ-दूभग-श्रणादेज्ज-श्रजस०-णिमिण-एविगो०-पंचंतरा० उक्क० द्विदि० सागरोवमस्स तिरिण सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा। श्रंतोमु० श्रावा०। [श्रावाधू० कम्मद्वि०] कम्म-

३४. एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय ग्रीर इनके पर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ग्रासाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसक वेद, ग्राति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, ग्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कामण शरीर, हुण्ड-संस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगित प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात, स्थावर, स्क्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, ग्रस्थिर, ग्रद्युम, दुर्भग, ग्रनादेय, ग्रयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र ग्रीर पांच ग्रन्तरायका उत्कृष्ट स्थितवन्ध एक सागरका तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग, चार वटे सात भाग ग्रीर दो वटे सात भाग प्रमाण है। ग्रन्तर्मुहर्त प्रमाण ग्रावाधा है श्रीर आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। श्रेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध

३४. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छ्व्बीस मोहनीय, नाम-कर्मकी एकेन्द्रिय जाति, श्रातप श्रोर स्थावर तथा गोत्र श्रोर श्रन्तरायका उत्कृष्ट स्थितवन्धादि मूलोघके समान है। दो श्रायु, नामकर्मकीशेप प्रकृतियाँ श्रोरतीर्थंकरका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रादि सामान्य नारिकयों के समान हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिपी श्रोर सौधर्म ईशान-कल्पके देवोंमें पञ्चेन्द्रिय जाति, वामन संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, कीलक संस्थान, श्रसम्प्राप्ता-स्पाटिका संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, त्रस श्रोर दुस्वरका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रटारह कोड़ाकोड़ी सागर है। श्रटारह सौ वर्ष प्रमाण श्रावाधा है श्रोर श्राबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। श्रेप प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध श्रादि सामान्य देवोंके समान है। स्तानत्कुमारसे लेकर सहस्रारकल्पतकके देवोंमें सव प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। श्रानत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। श्रन्तर्भुहर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रोर श्रावाधासे न्यून कर्म-स्थित प्रमाण कर्मनिपेक है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

णिसेगो । सेसाणं पगदीणं उक्कस्स० द्विदि० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा वे सत्त-भागा पित्तदोवमस्स असंखेजिदिभागेण अणिया । अंतोम्ठ० आवाथा० । [आवाधू० कम्मिटि०] कम्मिण्ण० । तिरिक्ख-मणुसायुगाणं उक्क० द्विदि० पुन्वकोडी । सत्तवास-सहस्साणि सादिरे० आवाथा । कम्मिटिदी कम्मिणिसे० । वादरएइंदियअपज्जत्ता० मुहुम० पज्जत्तापज्जत्ता० सन्वपगदीणं उक्कस्स० द्विदि० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पित्तदोवमस्स अंखेजिदिभागेण अणिया । अंतोम्च० आवा । [आवाधू० कम्मिटि० कम्म-] णिसेगो । तिरिक्ख-मणुसायुगाणं उक्कस्स० द्विदि० पुन्वकोडी । अंतोम्च० आवाथा० । [कम्मिटिदी कम्म-] णिसेगो ।

३६. बीइंदिय-तीइंदिय-चटुरिंदिय॰ तेसि चेव पज्जत्ता॰ पंचणाणावर०-दंसणावर०-असादवे०-िमच्छत्त०-सोलसक० याव पंचंतरा० सागरोवमपणुवीसाए
सागरोवमपण्णारसाए सागरोवमसदस्स तिष्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा [चत्तारि
सत्तभागा] वे सत्तभागा । अंतो० आवा॰ । [आवाधू० कम्मिट्ट० कम्म-]
णिसेगो । सेसाणं सादादीणं उच्चागोदाणं तं चेव । णवरि पिलदोवमस्स संखेज्जिदभागेण जिल्या । अंतो॰ आवा० । [आवाधू०] कम्मिट्टदी कम्मिणि० ।
तिरिक्ख-मणुसायु॰ उक्क॰ दिदि॰ पुन्वकोडी । चत्तारि वासाणि सोलस रादिदियाणि
सादि० वे मासं च आवाधा॰ । [कम्मिट्टदी] कम्मिणसे० । तेसि चेव अपज्जत्त०

पक सागरका पल्यका श्रसंख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भाग प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा तिर्यञ्चायु श्रीरं मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितवन्ध एक पूर्वकोटि प्रमाण है, साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिषेक है। वादर एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त तथा स्हम एकेन्द्रिय पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त जीवोंके सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध एक सागरका पल्यका श्रसंख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भाग प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितवन्ध एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

३६. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय श्रीर इनके पर्याप्त जीवोंके पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व श्रीर सोलह कषायसे लेकर पाँच अन्तरायतक को प्रकृतियोंका क्रमसे पचीस सागरका, पचास सागरका श्रीर सौ सागरका तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवन्ध है। अन्तर्भुहूर्त प्रमाण आवाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। सातासे लेकर उच गोत्रतक शेप प्रकृतियोंका वही उत्कृष्ट स्थितिवन्ध है। इतनी विशेषता है कि वह पत्यका असंख्यातवाँ भाग कम है। अन्तर्भुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तिर्यञ्चायु श्रीर मजुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। चार वर्ष, साधिक सोलह दिन रात श्रीर दोमाह प्रमाण श्रावाधा है तथा कर्मस्थिति

सन्वपगदीणं सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपएणारसाए सागरोवमसदस्स तिथिण सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पितदोवमस्स संखेज्जिद्-भागेण उणिया । अंतोग्र॰ आवा॰ । [आवाधू॰ कम्मिटि॰] कम्मिणिसे॰ । तिरिक्ख-मणुसायू॰ उक्क॰ हिदि॰ पंचिद्यितिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

३७. पंचिंदिय-तस० तेसिं चेव पज्जता० मूलोघं। पंचिंदिय-तसञ्चपज्ज० मणुसअपज्जत्तभंगो। पंचकायाणं एइंदियभंगो। एवरि तिरिक्त-मणुसायुगस्स उक०
हिदि० पुन्वकोडी। सत्त वस्ससहस्साणि सादिरेगाणि वे वस्ससहस्साणि सादिरे०
[तिएण वस्ससहस्साणि सादिरेगणि आवा०] तेउ०-वाउ० तिरिक्तायु० उक० हिदि० पुन्वकोडी। एयरादिंदिया० एयं वाससहस्सं च आवाधा०। [कम्महिदी कम्म-]
णिसेगो।

३८. पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि० मूलोघं । त्रोरालियका० मणुसपज्जत्त-भंगो । त्रोरालियमिस्स० मणुसत्रपज्जत्तभंगो । णवरि देवगदि०४ तित्थयरं उक्क० द्विदि० त्रंतोकोडाकोडी । त्रंतोमु० त्रावा० । [त्रावाधू० कम्मद्वि० कम्म-] णिसे० । वेउिवयका० देवोघं । वेउिवयमिस्स० सन्वपगदीत्रो पंचिदियतिरिक्खत्रपज्जत्त-भंगो । णवरि विसेसो जाणिदन्वो । त्राहार०-त्राहारमिस्स० सग-सग० उक्क०

प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा इन्हींके श्रपर्याप्तकोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कमसे पद्मीस सागरका, पचास सागरका श्रोर सौ सागरका पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग, चार वटे सात भाग श्रोर दो वटे सात भाग प्रमाण है। श्रान्तर्मुहुर्त प्रमाण श्राचाधा है श्रोर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पञ्चिन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है।

३७. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस श्रीर त्रस पर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट स्थितवन्ध मूलाघके समान है। पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त श्रीर त्रस श्रपर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट स्थितवन्ध मनुष्य श्रपर्याप्तकोंके समान है। तथा पाँच स्थावरकायिक जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च श्रायु श्रीर मनुष्यायुक्ता उत्कृष्ट स्थितवन्ध एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। तथा पृथिवीकायिक जीवोंके साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण, जलकायिक जीवों के साधिक दो हजार वर्ष प्रमाण श्रीर वनस्पतिकायिक जीवोंके साधिक तीन हजार वर्षप्रमाण श्रावाधा है। श्रिनिकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके तिर्यञ्चायुक्ता उत्कृष्ट स्थितवन्ध एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है। क्रमसे एक दिन रात श्रीर एक हजार वर्षप्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिपेक है।

३८. पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी श्रौर काययोगी जीवोंका भङ्ग मूलोघके समान है। श्रौदारिक काययोगी जीवोंके मनुष्य पर्याप्तकोंके समान है। श्रौदारिकमिश्र काययोगी जीवोंके मनुष्य श्रपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके देवगति चतुष्क श्रौर तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंके सामान्य देवोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके सव प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्थश्च श्रपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि विशेषका कथन जानकर कहना चाहिए। श्राहारककाययोगी श्रौर श्राहारक मिश्रकाययोगी

हिदि० अंतोकोडाको०। अंतोम्रहुत्तं आवाधा। [आवाधू० कम्मिह० कम्मिण०] णवरि देवायुगस्स तेत्तीसं सागरो०। पुन्वकोडितिभागं आवा०। [कम्मिहदी कम्म-] णिसे०। कम्मइयका० सगपगदीणं ओरालियमिस्सकायजोगिभंगो।

३६. इत्थिवंदगे वीइ'दि॰-तीइंदि॰-वामण०-श्रोरालि॰श्रंगोवं०-सीलियसं॰-श्रसंपत्तसेवदृसं०-सुहुम-श्रपज्जत्त-साधारण॰ उक्क॰ द्विदि० श्रद्धारस सागरोवमकोहाको० | श्रद्धारस वाससदाणि श्रावा॰ । [श्रावाधृ॰ कम्मद्वि॰ कम्म-]
णिसे० | सेसाणं मूलोधं | पुरिसवेदगेस्र मूलोधं | एवु'सग० श्रादाव०-थावर०
उक्क॰ द्विदि॰ श्रद्धारस सागरो॰ कोडाकोडी० | श्रद्धारस वाससदाणि श्रावाधा |
(श्रावाधृ॰ कम्मद्वि॰) कम्मणिसे० | सेसाणं मूलोधं | श्रवगदवे॰ पंचणाणा०चदुदंसणा॰-पंचंतराइ० उक्क० द्विदि॰ संखेज्जाणि वाससहस्साणि | श्रंतोसु०
श्रावाधा० | [श्रावाधृ० कम्मद्वि० कम्म-] णिसे० | सादावेद०-जसगि०-उच्चागो०
उक्क० द्विदि॰ पिलदोवमस्स श्रसंखेज्जिद्भागो | श्रंतोसु० श्रावा० । [श्रावाधृ०
कम्मद्वि॰] कम्मणिसे० | चदुसंज० उक्क० द्विदि० संखेज्जाणि वासाणि । श्रंतोसु० श्रावाधा० । [श्रावाधृ०] कम्म० कम्मणिसे० । कोधादि०४ मूलोधं ।

जीवोंके अपनी अपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। इतनी विशेषता है कि देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध तेतीस सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। कार्मणकाययोगी जीवोंके अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है।

३९. स्त्रीवेदवाले जीवोंके द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, वामन संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, कीलक संस्थान, श्रसम्प्राप्तास्प्रपिटकासंहनन, सूक्ष्म, श्रपयीप्त श्रीर साधारण प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रठारह कोड़ांकोड़ी सागर प्रमाण है। श्रठारह सौ वर्ष प्रमाण त्रावाघा है श्रौर आबाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक हैं। तथा शेप प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। पुरुषवेदवाले जीवोंके सव प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। नपुंसक चेदवाले जीवोंके श्रातप श्रीर स्थावर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रठारह कोड़ाकोड़ी सागर है। श्रठारह सौ वर्ष प्रमाण श्रावाघा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष सव प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। श्रप-गतवेदवाले जीवोंके पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा सातावेदनीय, यशःकीर्ति श्रीर उचगोत्रका उत्कृष्ट स्थितिचन्ध पत्यका ऋसंख्यातचाँ भाग प्रमाण है। ग्रन्तर्मुहर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलनोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंके अपनी अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

- ४०. मदि०-सुद०-विभंग० मूलोघं। एवरि देवायु० उक्कठं हिदि० एक्क-त्तीसा०। पुन्वकोडितिभा० त्रावा०। [त्रावाधू० कम्महि० कम्म-] एिसे०। त्राभि०-सुद०-त्रोधि० सन्वपगदीएां उक्क० हिदि० त्रंतोकोडाको०। त्रंतोसु० त्रावा०। [त्रावाधू० कम्महि० कम्म-] एिसे०। एवरि मणुसायु० उक्क० हिदि० पुन्वकोडी। त्रम्मासं त्रावा०। [कम्महिदी कम्म-] एिसे०। देवायु० त्रोघं। मए। पज्ज०-संजद-सामाइय-त्रेदो०-परिहार० सगपगदीएां त्रोधिभंगो।
- ४१. स्रुहुमसं० पंचणाणा०-चदुदंस०-पंचंतरा० उक्क० हिदि० सुहुत्तपुधत्तं। अंतोस्र० आवाधा। [आवाधू० कम्मिटि० कम्म-] णिसे०। सादवे०-जसगि०-उचागो० उक्क० हिदि० मासपुधत्तं। अंतो० आवा०। [आवाधू० कम्मिटि० कम्म-] णिसेगो। अथवा पंचणा०-चदुदंस०-पंचतरा० उक्क० हिदि० दिवसपुधत्तं। अंतोस्र० आवा०। [आवाधू० कम्मिटि० कम्म-] णिसे०। सादा०-जसगि०-उच्चा० उक्क० हिदि० वासपुधत्तं। अंतोस्र० आवा०। [आवाधू० कम्मिटि० कम्म-] णिसे०। संजदा-संजदा० संजदभंगो। णविर देवायु० उक्क० हिदि० वावीसं [सागरोवमाणि]। पुञ्च-कोडितिभागं आवा०। [कम्मिट्टदी कम्म-] णिसे०। असंजदा० मूलोघं। णविर
- ४०. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी श्रौर विभंगज्ञानी जीवोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध इकतीस सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है श्रौर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। श्राभिनिवोधिक्जानी, श्रुतज्ञानी श्रौर श्रवधिज्ञानी जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, श्रन्तमुंहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रौर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है। इह माह प्रमाण श्रावाधा है श्रौर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा देवायुका भङ्ग श्रोधके समान है। मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत. छेदोपस्थापनासंयत श्रौर परिहारविशुद्धसंयत जीवोंके श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंका भङ्ग श्रवधिज्ञानियोंके समान है।
- ४१. सूक्त साम्पराय संयत जीवोंके पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण श्रीर पांच अन्तरायोंका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध मुहूर्त पृथक्तव प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीतिं श्रीर उच्च गोत्रका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध मासपृथक्तव प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। श्रथवा पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शन।वरण श्रीर पांच श्रन्तरायोंका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध दिवसपृथक्तव प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा साता वेदनीय, यशःकीतिं श्रीर उच्च गोत्रका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध वर्षपृथक्तव प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। संयतासंयतोंके सव प्रकृतियोंका भङ्ग संयतोंके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध वाईस सागर है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिषेक है। श्रसंयतोंके सव प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोबके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुका है कि देवायुका

४२. चक्खुदं०-अचक्खुदं० मूलोघं । ओधिदं० ओधिणाणिभंगो ।

४३. तेस्साणुवादेण किएणले० देवायु० एक० हिदि० सागरोवम० सादिरेग० | पुन्वकोडितिभागं त्रावा० | [कम्मिट्टदी कम्म-] िर्णसे० | सेसं एप्युंसगभंगो | णील-काऊणं वेजिव्यछक-चत्तारिजादि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्ञत्तसाधार०-तित्थकरं एक० हिदि० अंतोकोडाको० | अंतोस्र० आवा० | [आवाधू० कम्मिट्ट०] कम्मिणसे० | णिरयायु० एक० हिदि० सत्तारस-सत्तसागरोव० | पुन्वकोडितिभागं आवा० | [कम्मिट्टदी] कम्मिणसे० | देवायु० एक० हिदि० सागरोवम० सादि० | पुन्वकोडितिभागं आवा० | [कम्मिट्टदी कम्म-] िर्णसे० | सेसं
आध्यमंगो | तेषण् पंचिदिय-ओरालिय०अंगो०-असंपत्त०-अण्यसत्थ०-तस-दुस्सर०
एक० हिदि० अहारस साग० | अहारस वाससदाणि आवा० | [आवाधू० कम्मिट्ट०] कम्मिणसे० | सेसं मूलोधं | एविर तिरिक्त-मणुसायु० एक० हिदि०
पुन्वकोडी | अम्मासं च आवा० | [कम्मिट्टदी कम्म-] िर्णसे० | देवायु० एक० हिदि० वेसाग० सादिरे० | पुन्वकोडितिभागं आवा० | [कम्मिट्टदी कम्म-]

उत्कृष्ट स्थितिवन्ध इकतीस सागर है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्म-स्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

४२. चचुदर्शनवाले और अवक्षुदर्शनवाले जीवोंके सव प्रकृतियोंका भङ्ग मृलोघके समान है। अविधदर्शनवाले जीवोंके सव प्रकृतियोंका भङ्ग अविधवानियोंके समान है।

४३. लेश्या मार्गणाके श्रानुवादसे कृष्णलेश्यावाले जीवींके देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध साधिक एक सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण ग्रावाधा है ग्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्घ श्रादि नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। नील श्रौर कापोत लेश्यावाले जीवोंके वैक्रियिक छुह, चार जाति, श्रातप, स्थावर, सुद्म, ग्रपर्याप्त, साधारण श्रौर तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रन्तःकोङ्।कोङ्गी सागर प्रमाण है। त्रान्तर्भुहूर्तं प्रमाण त्रावाधा है ग्रीर त्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्म-निषेक हैं। नरकायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रमसे सजह सागर श्रीर सात सागर है। पूर्व-कोटिका त्रिभाग प्रमाण त्रावाघा है त्रौर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध साधिक एक सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध ग्रादि ग्रोघके समान है। पीत लेश्यावाले जीवोंके पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसंप्राप्तास्प्रपाटिका संहनन, ग्रप्रशस्त विहायोगति, त्रस ग्रौर दुस्वर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध ग्रटारह सागर प्रमाण है। श्रठारह सौ वर्ष प्रमाण श्राबाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। शेष प्रकृतियोंका भन्न मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक पूर्वकोटिवर्ष प्रमाण है। छह माह प्रमाण श्रावाधा है ग्रौर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध साधिक दो सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण आबाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। देव-

देवगदि-वेजिविक-आहार०-वेजिविक-आहार०श्रंगोवं०-देवगदिपाश्रोग्ग०-तित्थयरं जिक्कि हिदि० श्रंतोकोडाकोडी । श्रंतोग्ज० श्रावाक । [श्रावाधू० कम्मिष्ट०] कम्मिणि० । पम्माए सहस्सारभंगो । एवरि देवगदि०४ तित्थयरं च तेजभंगो । देवा-युग० श्रहारस साग० सादि० । पुन्वकोडितिभागं च श्रावाक । [कम्मिष्टदी कम्मिण्सेगो] । सुक्कलेस्साए श्राणदभंगो । एवरि देवायुक-देवगदि०४ श्राहारकाय-जोगिभंगो ।

४४. भवसिद्धिया० मूलोघं । अन्भवसिद्धिया० मिद्रभंगो । सम्मादि०-खइ-गस०-वेदग०-उवसमसम्मा०-सम्मामि०सगपगदीओ ओधिभंगो । सासणे सगपग-दीओ उक्क० हिदि० अंतोकोडाकोडी । अंतोग्ज० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्म-] णिसे० । णवरि तिरिण आयु० मिद्रअरणाणिभंगो । मिच्छादि० अन्भव-सिद्धिभंगो ।

४५. सिएए० मूलोघं । असएणीस्र पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-भिच्छत्त०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-णिरयगदि-पंचिदि०-वेडिव्वय-तेजा०-क०-वेडिव्व०अंगो०-हुंदसं०-वएण०४-णिरयाणुपु०४-अगुरू०-अप्पसत्थवि०-तसादि०४-

गति, वैक्तियिक शरीर, श्राहारक शरीर, वैक्तियिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी श्रोर तीर्थ कर प्रश्निका उत्श्रष्ट स्थितिबन्घ श्रन्तःकोड़ाकोड़ी सागर
प्रमाण है, अन्तर्मुहर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रोर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक
है। पद्मलेश्यावाले जीवोंके श्रपनी सव प्रश्नितयोंका उत्श्रष्ट स्थितिबन्ध श्रादि सहस्नार कर्णके
समान है। इतनी विशेषता है कि इनके देवगित चतुष्क और तीर्थ कर प्रश्निका उत्श्रष्ट
स्थितिबन्ध श्रादि पीत लेश्यावाले जीवोंके समान है। तथा देवायुका उत्श्रष्ट स्थितिबन्ध
साधिक श्रठारह सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्राबाधा है श्रोर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। श्रुक्ल लेश्यावाले जीवोंके सव प्रश्नितयोंका उत्श्रष्ट स्थितिबन्ध
श्रादि श्राक्त करणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके देवायु श्रोर देवगितचतुष्कका
उत्श्रप्ट स्थितिबन्ध श्रादि श्राहारककाययोगी जीवोंके समान हैं।

४४. भव्य जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्घ मूलोघके समान है। श्रभव्य जीवोंके मत्य-श्रानियोंके समान है। सम्यग्दिए, ज्ञायिक सम्यग्दिए, वेदक सम्यग्दिए, उपशम सम्यग्दिए श्रीर सम्यग्मिथ्यादिए जीवोंके श्रपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रविध्ञानियोंके समान है। सासादन सम्यग्दिएयोंके श्रपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। इतनी विशेषता है कि तीन श्रायुश्रोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मत्यज्ञानियोंके समान है। मिथ्यादिए जीवोंके श्रपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रभव्योंके समान है।

४४. संबी जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मूलोघके समान है। असंबी अयंकी ४४. संबी जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मूलोघके समान है। असंबी जीवोंके पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसक वेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगित, पश्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, वेद, श्ररित, शेक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी चतुष्क, कार्मण शरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी चतुष्क, कार्मण श्रीद छह, निर्माण, नीचगोत्र अगुरुल्ह्य, श्रप्रशस्त विहायोगित, श्रसादि चतुष्क, श्रस्थिर श्रादि छह, निर्माण, नीचगोत्र

अथिरादिछक्क-िएमिए-एविनागे०-पंचंतरा० एक० द्विदि० सागरोवमसहस्सस्स तिरिए सत्तभागा सत्त सत्तभागा [चत्तारि सत्तभागा] वे सत्तभागा । अंतोम्र० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्म-] एिसे० । सेसाएां सागरोवमसहस्सस्स तिरिए सत्त-भागा वे सत्तभागा पिलदोवमस्स संखेज्जदिभागेए किएगा । अंतोम्र० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्मिए। । एएरय-देवायुगस्स एक० द्विदि० पिलदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । पुन्वकोडितिभागं च आवाधा० । [कम्मिटिदी कम्मिएसेगो] तिरिक्ल-मणुसायुगाएं एक० द्विदि० पुन्वकोडी । पुन्वकोडितिभागं च आवाधा । [कम्मिटिदी कम्मिएसेगो] । आहार० मूलोघं । अएगहार० कम्मइगभंगो । एवं एकस्सियं समत्तं ।

४६. जहएएए पगदं । दुवि॰—श्रोघे॰ श्रादे० । श्रोघे० पंचणा॰-चदुदंसणा॰-लोभसंज॰-पंचतरा० जहएएओ हिदिवंधो श्रंतोम्रहुत्तं । श्रंतोम्र० श्रावाधा । श्रावा-धूणिया कम्मिद्दी कम्मिणिसेगो । पंचदंसणा॰-श्रसादावे॰ जहएए। हिदि० साग-रोवमस्स तिरिए सत्तभागा पिलदोवमस्स श्रसंखेज्जिदिभागेए उणिया । श्रंतोम्र० श्रावा० । श्रावाधू॰ । सादावेद० जह० हिदि॰ वारस मुहुत्तं । श्रंतोम्र० श्रावा० । श्रावाधू॰ ।

श्रीर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक सागरका तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भाग प्रमाण है। श्रन्तर्मुहर्त-प्रमाण श्रावाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक हजार सागरका पत्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग चार वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भाग है। श्रन्तर्मुहर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। नरकायु श्रीर देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पत्यका श्रसंख्यातवाँ भाग प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। तथा तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक पूर्वकोटिप्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। श्राहारक जीवोंके सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मूलोघके समान है। तथा श्रनाहारक जीवोंके सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मूलोघके समान है। तथा श्रनाहारक जीवोंके सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कार्मणकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार उत्कृप्ट ग्रद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

४६. अव जघन्य स्थितिवन्ध अद्धाच्छेदका प्रकरण है। उसकी अपेन्ना निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभसंज्वलन और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। पाँच दर्शनावरण और असाता वेदनीयका जघन्य स्थितिवन्ध एक सागरका पत्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। सातावेदनीयका जघन्य स्थितिवन्ध वारह मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

४७. मिच्छतं जह॰ हिदि॰ सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा पिलदोवमस्स असं-खेज्जिदिभागेण ऊणिया। अंतो० आवा॰। आवाधू०। वारसक॰ जहण्ण० हिदि-वं० सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पिलदो॰ असंखेज्जिदभागेण ऊणिया। अंतोमु० आवा०। आवाधू०। कोधसंज० जह० हिदि॰ वे मासं। अंतोमु० आवा०। [आवाधू० कम्मिहि॰ कम्मिणि॰]। माणसंज० जह० हिदिवं० मासं। अंतोमु० आवा०। आवाधू०। मायासंज० जह० हिदिवं० अद्धमासं। अंतोमु० आवा०। आवाधू०। पुरिसवे० जह० हिदिवं० 'अष्ठ वस्साणि। अंतोमु० आवा०।

४६. वेजिव्वयद्यकः जहः द्विदि सागरोवमसहस्सस्स वे सत्तभागा पिलदो॰ संखेज्जदिभागेण जिएया । अंतोग्र॰ आवा० । [आवाधू॰ कम्मिटि॰ कम्मिणि॰]। आहार॰-आहार०अंगो॰-तित्थय० जह॰ द्विदिवं० अंतोकोडाकोडी । अंतोग्र॰ आवा० । [आवाधू॰ कम्मिटि॰ कम्मिणि॰]। जसगि॰-उच्चागो० जह० द्विदि॰

४७. मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिवन्ध एक सागरका एल्यका असंख्यातवाँ भाग कम सात वटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। वारह कषायका जघन्य स्थितिवन्ध एक सागरका एल्यका असंख्यातवाँ भाग कम चार वटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। कोध संख्वलनका जघन्य स्थितिवन्ध दो महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। मान संज्वलनका जघन्य स्थितिवन्ध एक महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। माया संज्वलनका जघन्य स्थितिवन्ध आधा महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। पुरुष-वेदका जघन्य स्थितिवन्ध आठ वर्षप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। पुरुष-वेदका जघन्य स्थितिवन्ध आठ वर्षप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है।

४८. नरकायु श्रीर देवायुका जघन्य स्थितिवन्घ दस हजार वर्ष है। श्रन्तर्मु हर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तिर्यञ्चायु श्रीर मजुष्यायुका जघन्य स्थिति-वन्ध ज्ञुल्लकभवग्रहणप्रमाण हैं। श्रन्तर्मुहर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

४९. वैकियिकषर्कका जघन्य स्थितवन्ध एक हजार सागरका पत्यका संख्यातवाँ-भाग कम दो वर्टे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्भुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। आहारकश्रारि आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिवन्ध अन्तः कोङ्गकोङ्गी सागर प्रमाण है। अन्तर्भुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। यशःकीर्ति और उच्च गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध

१. मूलप्रती द्विदिवं० श्रद्धवयं० अंतो-इति पाठः । २. मूलंप्रती श्राबा० श्रावाध्० वेउ-इति पाठः ।

श्रद्वमु॰ । श्रंतो॰ श्रावा॰ । [श्रावाधू॰ कम्मिटि॰ कम्मिणि॰] । सेसाएं जह॰ द्विदि॰ सागरोवमस्स वे सत्तभागा पलिदो॰ असंखेज्जदिभागेण ऊणिया । श्रंतोमु॰ श्रावा॰ [श्रावाधू॰ कम्मिटि॰ कम्म॰] ।

५०. आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीस सन्वपगदीणं जह० द्विदि० साग-रोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पिलदोवमस्स संखेजिदिभागेण ऊणिया । अंतोस्र० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] । तिरिक्त-मणुसायुगस्स जह० द्विदिवं० अंतो० । अंतोस्र० आवा० । [कम्मिटिदी कम्मिणिसेगो] । तित्थय० जह० द्विदि० उक्कस्सभंगो । एवं पदमाए । विदियाए याव सत्तमा ति सन्वपगदीणं तित्थयरभंगो । एवरि आयु० णिरयभंगो ।

ग्राठ मुहूर्त है। श्रन्तमु हूर्तप्रमाण यावाघा है श्रोर श्रावाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्म-निषेक है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध एक सागरका पल्यका श्रसंख्यातवामाग कम दो वटे सात भागप्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाघा है श्रीर श्रावाघासे न्यून कर्म-स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

विशेषार्थ—यहाँ पर अन्तमें शेष पद द्वारा जिन प्रकृतियों का संकेत किया है वे ये हैं—
स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रित, श्ररित, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्च गित, मनुष्य गित,
एकेन्द्रिय जाित, द्वीन्द्रिय जाित, श्रीन्द्रिय जाित, चतुरिन्द्रिय जाित, पञ्चेन्द्रिय जाित, श्रीदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, छह संस्थान, श्रीदारिक शरीर श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनत, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यञ्च गित प्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुत्वचु, उपघात, परघात, उच्छास, श्रातप, उद्योत, प्रशस्तिवहायोगित, श्रप्रशस्तिवहायोगित,
त्रस, स्थावर, वादर, स्दम, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, श्रस्थिर,
श्रुम, श्रशुम, सुभग, दुर्मग, सुस्वर, दुःस्वर, श्रादेय, श्रनादेय, श्रयशःकीितं, निर्माण श्रीर
नीचगोत्र। इन प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध एकेन्द्रियोंके भी होता है। इसिल्ए इनका जघन्य
स्थितिवन्ध एक सागरका पत्यका श्रसंख्यातवाँभाग कम दो वटे सात भागप्रमाण कहा है।
यद्यपि इन प्रकृतियोंमें मोहनीय सम्बन्धी कुछ प्रकृतियाँ हैं पर उनका भी वन्ध इसी श्रनुएातसे होता है। इसिल्ए उनका यहाँ नाम निर्देश किया है। इस सव कथनका विशेष
व्याख्यान जीवस्थान चूिलकामें किया है। इसिल्ए वहाँसे जानना चाहिए।

४०. श्रादेशसे गतिमार्गणाके श्रवुवादसे नरकगितमें सव प्रकृतियोंका जघन्य स्थिति-वन्ध एक हजार सागरका पत्यका संख्यातवाँमाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात, चार वटे सात भाग श्रीर दो वटे सात भाग प्रमाण है। श्रन्तमुं हूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका जघन्य स्थिति-वन्ध श्रन्तमुं हूर्त है। श्रन्तमुं हूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिवन्ध उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पहिली पृथ्वीमें जानना चाहिए। वसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सव पृथिवीयोंमें सव प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध तीर्थंकर प्रकृतिके समान है। इतनी विशेषता है कि आयुक्रमेका जघन्य स्थितिवन्ध सामान्य नारिकयोंके समान है।

विशेषार्थ—नरकमें श्रर्थात् प्रथम नरकमें श्रसंक्षी जीव मरकर उत्पन्न हो सकता है। श्रीर ऐसे जीवके उत्पन्न होनेके प्रथम और द्वितीय समयमें सब प्रकृतियोंका श्रसंक्षीके योग्य

- ५१, तिरिक्खेस चदुग्णं त्रायुगाणं वेजिववियव्यक्कं च मूलोघं। सेसाणं सव्व-पगदीणं जह॰ हिदि॰ सागरोवगस्स तिरिण् [सत्तभागा] सत्त सत्तभभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पिलदोवमस्स त्रसंखेज्जिदिभागेण जिल्या। त्रंतोसु॰ त्रावा॰। त्रावाधू०। पंचिदियतिरिक्ख॰३ सव्वपगदीणं णिरयभंगो। त्रायुगाणं मूलोघं। एवं पंचिदियतिरिक्खत्रपञ्जतेसु।
- ५२. मणुस०३ खनगपगदीणं श्रोघं। सेसाणं सन्वपगदीणं जह० हिदि० सागरोवमसहस्सस्स तिणिण सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा
 पितदोवम० संखेज्जदिभागेण ऊणिया। श्रंतोग्र० श्रावाधा। [श्रावाधू० कम्मिह०
 कम्मिणि०]। चढुएणं श्रायुगाणं मूलोघं। वेजिन्वयञ्चकं [श्राहार०] श्राहार०श्रंगो०
 तित्थयरं जह० हिदि० श्रंतोकोडाकोडीश्रो। श्रंतोग्र० श्रावा०। [श्रावाधू० कम्मिह० कम्मिणि०]। मणुसञ्चपज्ज० पंचिदियतिरिक्खश्रपज्जतभंगो।
- ५३. देवगदीए देवा-भवण०-वाण्वें० णिरयोघं। जोदिसि याव सन्वह ति विदिय पुढिन भंगो। सोधम्मीसाणे आयु० जह० द्विदि० अंतो०। अंतोयु० आवा०। स्थितिवन्ध होता रहता है। इसी अभिप्रायको ध्यानमें रखकर यहाँ नरकगितमें और प्रथम नरकमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध कहा है। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिवन्ध अन्तःको हो को हो सागर प्रमाण होता है यह पहिले ही कह आये हैं। द्वितीयादि नरकों में सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध उक्त प्रमाण ही होता है। इसलिए यहाँ सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितवन्ध तीर्थंकर प्रकृतिके समान कहा है।
- ४१. तिर्वञ्चोंमें चार ग्रायु ग्रौर वैक्रियिक षट्कका जघन्य स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। शेप सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग चार बटे सात भाग ग्रौर दो वटे सात प्रमाण है। ग्रान्तर्मुहूर्तप्रमाण ग्रावाधा है। ग्रौर ग्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पञ्चिन्द्रिय तिर्यञ्चित्रकमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध नारिक्योंके समान है। ग्रायुओंका जघन्य स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ग्रपर्यान सकोंके जानना चाहिए।
- ४२. मनुष्यत्रिकमें चपक प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्घ श्रोघके समान है। श्रेष सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध एक हजार सागरका पत्यका संख्यातवाँ माग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग, चार वटे सात भाग, श्रोर दो वटे सात भाग प्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। चार श्रायुश्रोंका जघन्य स्थितिवन्ध मूलोधके समान है। वैक्रियिकषर्क, श्राहारक श्राङ्गोर पाङ्ग श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितवन्ध श्रन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, श्रन्तपङ्गिहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। मनुष्य मुहूर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंमें सव प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध प्रञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है।
- ४३. देवगतिमें सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सामान्य नारिकयोंके समान है। तथा ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक के देवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध दूसरी पृथिवीके समान है। सौधर्म ग्रौर ऐशान देवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध ग्रुन्तर्मुहूर्तंप्रमाण है। ग्रुन्तर्मुहूर्तंप्रमाण ग्रावाधा है ग्रौर कल्पमें ग्रायुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध ग्रन्तर्मुहूर्तंप्रमाण है। ग्रन्तर्मुहूर्तंप्रमाण ग्रावाधा है ग्रौर

[कम्मिट्टिंग कम्मिणिसेगो] । सण्क्कुमार-माहिंदे मुहुत्तपुथत्तं । वम्ह-वम्हुत्तर-लांतव-काविट्टे दिवसपुथत्तं । सुक्क-महासुक्क-सद्र-सहस्सारे पक्खपुथत्तं । आण्ड-पाण्ड-आरण-अच्चुद् मासपुथत्तं । उविर सन्वाणं वासपुथत्तं । सन्वत्य अंतोसु॰ आवा० । [कम्मिट्टिंग कम्मिणिसेगो] ।

५४. एइंदिएस सगपगदीणं तिरिक्खोंचं । सन्वविगिलिदिऐस सगपगदीणं [सागरोवमपणुर्वीसाए] सागरोवमपण्णारसाए सागरोवमसदस्स तिरिण सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्त भागा वे सत्तभागा पिलदो॰ संखेजिदिभागेण ऊणिया। श्रंतो० श्रावा०। [श्रावा कम्मष्टि० कम्मणि०]। श्रायु० श्रोघं। पंचिदिय०२ खवगपगदीणं मृलोघं। सेसाणं पंचिदियतिरिक्खभंगो। पंचिदियं- अपजत्त० मणुसश्रपज्तसभंगो।

४५. कायाणुवादेण पंचकायाणं एइंदियभंगो । तस०२ खवगपगदीणं चदुएणं आयुगाणं वेडव्वियद्यक्कस्स आहार०-आहार०अंगो० तित्थयरं च मृलोयं । सेसं वीइंदियभंगो । तसअपज्ञत्त० वीइंदियभंगो ।

५६. पंचमण्०-तिरिण्वचि० खवगपगदीणं त्रायुगाणं च मूलायं। सेसाणं

कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पमें वायुकर्मका जघन्य स्थितिवन्य मुहूर्त पृथक्त्वप्रमाण है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ कल्पमें दिवसपृथक्त्व प्रमाण है। श्रक्त, महाश्रुक, शतार और सहस्रार कल्पमें पक्तपृथक्त्व प्रमाण है। श्रानत, प्राण्त, श्रारण और श्रच्युत कल्पमें मासपृथक्त्व प्रमाण है। इसके ऊपर सब देवेंकि आयुकर्मका जघन्य स्थितिवन्य वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

४४. एकेन्द्रियों में अपनी प्रकृतियों का जघन्य स्थितिवन्घ आदि सामान्य तिर्यञ्चों के समान है। सब विकलेन्द्रियों में अपनी-अपनी प्रकृतियों का जघन्य स्थितिवन्ध पचीस सागरका, पचार सागरका और सौ सागरका पल्यका संख्यातवां भाग कम तीन वटे सात भाग, सात वटे सात भाग और दो वटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनियेक है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध आदि श्रोधके समान है। पञ्चेन्द्रिय द्विकमें जपक प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध आदि मुलोधके समान है। श्रेप प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध आदि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्यातकोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्यातकों सव प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध आदि मनुष्य अपर्यातकोंके समान है।

४४. कायमार्गणाके अनुवाद्से पाँच स्थावरकायिक जीवोंके अपनी-अपनी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध आदि एकेन्द्रियोंके समान है। त्रस द्विकमें ज्ञपक प्रकृतियोंका चार आयुओंका, वैकियिकपट्क, आहारक शरीर, आहारकआङ्गोपाङ और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिवन्ध आदि मूलोधके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध आदि द्वीन्द्रियोंके समान है। तथा त्रस अपयीतकोंमें अपनी सव प्रकृतियोंका जघन्य स्थितवन्ध आदि द्वीन्द्रियोंके समान है।

४६. पांचा मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें जपक प्रकृतियों और चार आयु-योंका जघन्य स्थितिवन्ध आदि मूलोधके समान है। शेप प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिवन्ध जह० हिदि० श्रंतोकोडाकोडी । श्रंतोग्र॰ श्रावाधा० । [श्रावाधू० कम्महि॰ कम्मणि०] । दोषिण विच॰ खवगपगदीणं चढुएणं श्रायुगाणं वेजिववयछकं श्राहार०-श्राहार०श्रंगो० तित्थयरं च मूलोघं । सेसं वीइंदियपज्जत्तभंगो । कायजोगि-श्रोरालियकायजोगि॰ मूलोघं ।श्रोरालियमिस्स० देवगदीच०४ तित्थयरं च उक्कस्स-भंगो । सेसाणं तिरिक्लोघं । वेजिववय० सोधम्मभंगो । वेजिववयमि०-श्राहार०-श्राहारमि० जक्कस्सभंगो । देवायु० जह० हिदि० पिलदोवमपुधत्तं । श्रंतो० श्रावा० । [कम्मिहदी कम्मणिसेगो] । कम्मइग० सगपगदीणं तिरिक्लोघं । णविर देवगदि०४ तित्थयरं च उक्कस्सभंगो ।

५७. इत्थिवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० जह० हिदि० संखेजाणि वास-सहस्साणि । श्रंतो० श्रावा० । [श्रावाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] सादावे०-जसिग०-उच्चागो० जह० हिदि० पित्तदो० श्रसंखे० । श्रंतोग्र० श्रावा० । [श्रावाधू० कम्मिटि० कम्मिणिसेगो] । चदुसंज०-पुरिसवे० जह० हिदि० संखेजाणि वास-सहस्साणि श्रंतोग्र० श्रावा० । [श्रावाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] । सेसाणं पंचिं-यभंगो । पुरिसवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० जह० हिदि० संखेजाणि वास-

श्रन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, श्रन्तमुंहूर्तप्रमाण श्रावाघा है श्रोर श्रावाघा से न्यून कर्म-स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। दो वचनयोगी जीवोंमें चपक प्रकृतियों, चार श्रायु, वैक्रियिक-षट्क, श्राहारक शरीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्क श्रोर तीर्थंकर प्रकृतियोंका जघन्य स्थितवन्ध श्रादि मूलोघके समान है। श्रेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितवन्ध श्रादि द्वीन्द्रियोंके समान है। काययोगी श्रोर श्रोदारिकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका मङ्क मूलोघके समान है। श्रोदारिकामश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिचतुष्क श्रोर तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्क उत्कृष्टके समान है। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्क सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। वैक्रियिकामश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्क उत्कृष्टके समान है। श्रोदारकामश्रकाययोगी जीवोंमें श्रपनी श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंका भङ्क उत्कृष्टके समान है। इतनी विश्रपता है कि श्राहारककाययोगी श्रोर श्राहारकामश्रकाययोगी जीवोंमें देवायुका जघन्य स्थितबन्ध पत्य पृथक्तवप्रमाण है। श्रन्तमुंहूर्त प्रमाण श्रावाघा है श्रोर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें श्रपनी प्रकृतियोंका भङ्क सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विश्रपता है कि इनमें देवगतिचतुष्क श्रोर तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्क उत्कृष्टके समान है। इतनी विश्रपता है कि इनमें देवगतिचतुष्क श्रोर तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्क उत्कृष्टके समान है।

४७. स्त्रीवेदी जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण श्रीर पाँच श्रन्तरायका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। श्रन्तसुंहर्त-प्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति श्रीर उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिवन्ध पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रन्तर्सुहर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलन श्रीर पुरुषवेदका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। श्रन्तर्मुहर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्म निपेक है। तथा श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रयोंके समान है। पुरुषवेदवाले जीवोंमें पांच श्रानावरण, चार दर्शनावरण श्रीर पांच

सदाणि । अंतोम्र॰ आवा॰ । [आवाधू॰ कम्मिटि० कम्मिणि॰] । सादावेदणीय-जस॰-जच्चागोदं जह॰ दिदि० संखेज्जाणि वाससदाणि । अंतोम्र॰ आवा० । [आवाधू॰ कम्मिटि॰ कम्मिणि॰] । चहुसंज॰ जह० दिदि० सोलस वस्साणि । अंतोम्र॰ आवा० । [आवाधू॰ कम्मिटि॰ कम्मिणि॰] । पुरिसवेद॰ जह० दिदि॰ अद्व वस्साणि । अंतोम्र॰ आवा० । [आवाधू॰ कम्मिटि॰ कम्मिणि॰] । सेसाणि पंचिं-दियभंगो । णवुंसगवेद० पंचणा॰-चदुदंसणा॰-सादावे०-चदुसंज॰-पुरिस०-जसिग०-जच्चागो०-पंचंतरा॰ इत्थिवेदभंगो । सेसं मूलोधं । अवगदवे॰ मूलोधं ।

प्रतः कोघे पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० जह० हिदि० संखेळाणि वासाणि । अंतो० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] । सादावे०-जसिगि०-उच्चागो० जह० हिदि० संखेळाणि वासस० । अंतोग्र० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] चदुसंज० जह० हिदि० वे मासं । अंतोग्र० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] । माणे पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० जह० हिदि० वास-पुधत्तं । अंतो० आवा । [आवाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] । सादावे०-जसिगि०-उच्चागो० जह० हिदि० संखेळाणि वासाणि । अंतो० आवा० । [आवाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०] । तिणिण संज० जह० हिदि० मासो । अंतोग्र०

अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मु हुर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगो- अका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मु हुर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्ष है। अन्तर्मु हुर्तप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्ष है। अन्तर्मु हुर्तप्रमाण आवाधा है, और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चिन्द्रयोंके समान है। नपुंसक वेदवाले जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका भङ्ग स्थिवेदी जीवोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें अपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

प्ट. क्रोध कषायवाले जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पांच अन्तराय-का जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातवर्ष है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधां है और आबाधांसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थिति-वन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध दो महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मान कषायवाले जीवोंमें पांच झानावरण, चार दर्शनावरण और पांच अन्तरायका जघन्य स्थितिवन्ध वर्षपृथक्त्व-प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्च गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तीन श्रावाः । [श्रावाधूः कम्मष्टिः कम्मणिः] मायाण पंचणाः चढुदंसणाः पंचंतराः मासपुधतं । श्रंतोग्रः श्रावाः । [श्रावाधूः कम्मिः कम्मणिः] सादावेः जसिंगः उच्चागोः जहः हिदिवं वासपुधत्तं । श्रंतोग्रः श्रावाः । [श्रावाधूः कम्मिः कम्मणिः ।] दो संजः जहः हिदिः पक्षो । श्रंतोः श्रावाः । [श्रावाधूः कम्मिः कम्मणिः ।] सेसाणं सञ्चपगदीणं कोधादीणं तिण्णिकसायाणं मूलोधं । लोभे सञ्चपगदीणं मूलोधं ।

५६. मदि०-सुदे० तिरिक्लोघं । विभंगे सगपगदी० विदियपुढिवभंगो । एवरि चढुश्रायु० श्रोघं । वेउव्वियछकं एइंदि०-वेइंदि०-तीइंदि०-चढुरिंदि०-श्रादाव-थावर-सुहुम श्रपज्जत्त-साधारणाणं च जह० द्विदिवं० श्रंतोकोडाकोडी । श्रंतो० श्रावा० । [श्रावाधू० कम्मिडि० कम्मिणि०] । श्राभिणि०-सुद०-श्रोधि० खवगपगदीणं मूलोघं । मणुसायु० जह० द्विदि० वासपुधत्तं । श्रंतो० श्रावा । [कम्मिडि० कम्मिणि०] । देवायु० जह० द्विदि० पित्तदोवमं सादिरे० । श्रंतो० श्रावा० । [कम्मिडिदी कम्मिणि०] । सेसाणं श्राहारसरीरभंगो । मणपज्जवे देवायु० जह० द्विदिवं० पित्त-दोवमपुधत्तं । श्रंतो० श्रावा० । [कम्मिडिदी कम्मिणिसेगो] । सेसाणं श्रोधिभंगो । एवं संजदा० ।

संज्वलनका जघन्य स्थितिवन्ध एक महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाघा है और आवाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। माया कपायवाले जीवोंमें पांच झानावरण, चार दर्शनावरण और पांच अन्तरायका जघन्य स्थितिवन्ध मासपृथक्त्व प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिवन्ध वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। दो संज्वलनोंका जघन्य स्थितिवन्ध एक पत्तप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष सव प्रकृतियोंका और कोधादि तीन कपायोंका भङ्ग मूलोघके समान है। छोभ कपायवाले जीवोंमें अपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

४९. मत्यज्ञानी श्रीर श्रुताज्ञानी जीवोंमें श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध श्रादि सामान्य तिर्यञ्जोंके समान है। विभक्ष्वानी जीवोंमें श्रपनी प्रकृतियोंका भक्ष दूसरी पृथिवीके समान है। इतनी विशेषता है कि चार श्रायुका भक्ष ओघके समान है। वैक्रियिकपद्क, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, स्थावर, स्क्ष्म, श्रुपर्याप्त श्रीर साधारण प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध श्रन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। श्रन्तमुं हुर्तप्रमाण श्रावाधा है।श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। श्रामिनवोधिकज्ञांनी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें चपक प्रकृतियोंका भक्ष मूलोघके समान है। मनुष्यायुका जघन्य स्थितिवन्ध वर्षपृथक्तवप्रमाण है। श्रन्तमुं हुर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। देवायुका जघन्य स्थितिवन्ध साधिक पत्य प्रमाण है। श्रन्तमुं हुर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। येवायुका जघन्य स्थितवन्ध पत्य पृथक्तवप्रमाण है। श्रन्तमुं हुर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। श्रेप प्रकृतिवन्ध पत्य पृथक्तवप्रमाण है। श्रन्तमुं हुर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। श्रेप प्रकृतिवन्ध पत्य पृथक्तवप्रमाण है। श्रन्तमुं हुर्त प्रमाण श्रावाधा है श्रीर कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिपेक है। श्रेप प्रकृतियोंका भक्ष श्रीघके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

- ६०. सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चढुदंसणा०-पंचंतरा० जह० दिदि० ग्रुहुत्त-पुथत्तं दिवसपुथत्तं वा। श्रंतो० श्रावा०। [श्रावाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०]। सादा०-जसगि०-उच्चा० जह० दिदि० मासपुथत्तं। श्रंतो० श्रावा०। [श्रावाधू० कम्मिटि० कम्मिणि०]। सेसाणं मणपज्जवभंगो। परिहार-संजदासंजदा० श्राहारकाय-जोगिभंगो। सुहुमसं० छएणं क० श्रोघं। श्रसंजद० मदिभंगो। तित्थयर० एकस्सभंगो।
- ६१. चक्खु० खवगपगदीणं चदुराणं त्रायुगाणं वेडिव्यिछकः०-त्राहार०-त्राहार०त्रंगो० तित्थयरं मूलोघं। सेसाणं पगदीणं चदुरिदियभंगो। त्रचक्खु० त्रोघभंगो। स्रोधिदं० स्रोधिणाणिभंगो।
- ६२. किएण्॰-णील॰-काड॰ असंजद्भंगो । किएण्-णील-काऊणं ण्रि-यायु॰ जह॰ द्विदि॰ सत्तारस-सत्तसागरो॰ सादिरे॰ दसवस्ससहस्साणि । अंतो॰ आवा॰। [कम्मद्विदी कम्मणिसेगो]। तेसि चेव देवायु॰ जह॰ द्विदि॰ दस वस्ससहस्साणि। अंतो॰ आवा॰। [कम्मद्विदी कम्मणिसेगो]। अथवा किएण्-णील॰ देवायु॰ जह॰ द्विदि॰ पिलदो॰ असं॰। अंतो॰ आवा॰। [कम्मद्विदी कम्मणिसेगो]। काऊणं णिरय-देवायु॰ जह॰ द्विदि॰ दसवस्स-
- ६०. सामायिकसंयत और छुदोपस्थापना संयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य स्थितिवन्ध मुहूर्तपृथक्तवप्रमाण है अथवा दिवसपृथक्तवप्रमाण है। अन्तर्मु हूर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्म निपेक है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रका जघन्य स्थितिवन्ध मासपृथक्तवप्रमाण है। अन्तर्मु हूर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। तथा शेप प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययग्रानियोंके समान है। परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंके समान है। स्वभ्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंका मङ्ग ओघके समान है। असंयत जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यक्षानियोंके समान है। तथा तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।
- ६१. चजुदर्शनी जीवोंमें ज्ञपक प्रकृतियोंका, चार श्रायुश्रोंका श्रौर वैक्रियिकपट्क, श्राहा-रक शरीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग तथा तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग मूलोधके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग चतुरिन्द्रिय जीवोंके समान है। श्रचक्षुदर्शनी जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। तथा श्रवधिदर्शनो जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग श्रवधि-क्षानियोंके समान है।
- ६२. कृष्णुलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें अपनी अपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग असंयत जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें नरकायुका जघन्य स्थितिबन्ध साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर और दश हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा इन्हीं लेश्यावालोंके देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दश हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। अथवा कृष्णु और नील लेश्यावालोंके देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थिति-प्रमाण कर्मनिषेक है। कापोत लेश्यावाले जीवोंके नरकायु और देवायुका जघन्य प्रमाण कर्मनिषेक है। कापोत लेश्यावाले जीवोंके नरकायु और देवायुका जघन्य

सह० | श्रंतो० श्रावा० | [कम्मिट्टदी कम्मिण्ठ] | तेउ० तिरिक्लमणुसायु० देवोघं | देवायु० जह० द्विदि० पितदो० सादि० | श्रंतो० श्रावा० | [कम्मिट्टदी कम्मिण्सिगो] | श्रथवा दसवस्ससहस्साणि | श्रंतो० श्रावा० | [क्रम्मिट्टदी कम्मिण्सिगो] | सेसाणि श्रंतोकोडाकोडि० | श्रंतो० श्रावा० | [श्रावाधू० कम्मिट्ट० कम्मिण्ठि | पम्माप तं चेव | देवायु० जह० द्विदि० वे सागरो० सादि० | श्रंतो० श्रावा० | [कम्मिट्टदी कम्मिण्सिगो] | तिरिक्ल-मणुसायु० जह० द्विदि० दिवस-पुधत्तं । श्रंतो श्रावा० | [कम्मिट्टदी कम्मिण्सिगो] | एइंदिय० श्रादाव० थावरं च णित्थ | सिकाप खवगपगदीणं श्रोघं | मणुसायु० जह० द्विदि० मासपुधत्तं । श्रंतो० श्रावा० | [कम्मिट्टदी कम्मिणसेगो] | देवायु० जह० द्विदि० श्रहारससागरो० सादिरे० | श्रंतो० श्रावा० | [कम्मिट्टदी कम्मिणसेगो] | सेसं णवगेवेज्जभंगो |

६३. भवसिद्धिया॰ मूलोघं। अन्भवसिद्धिया॰ मदिस्र०भंगो। सम्मादि०-खइग॰ श्रोधिभंगो। वेदगे श्रायु॰ श्रोधिभंगो। सेसं विभंगभंगो। उवसमसम्मा॰ पंचणा०-चदुदंसणा॰-लोभसंज॰-पंचंतरा० जह० द्विदि० श्रंतो०। श्रंतो० श्रावा०। [श्रावाधु॰ कम्मणि॰]। सादावे॰ जह० द्विदि० चदुवीसं ग्रुहुत्तं। श्रंतो॰ श्रावा०।

स्थितवन्ध दश हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मु हुर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिषेक है। पीतलेश्यावाले जीवोंके तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका मङ्ग सामान्य देवोंके समान है। देवायुका जघन्य स्थितवन्ध साधिक पत्य प्रमाण है। अन्तर्मु हुर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। अथवा देवायुका जघन्य स्थितवन्ध दश हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मु हुर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। शेष प्रकृतियों का जघन्य स्थितवन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। अन्तर्मु हुर्तप्रमाण आवाधा है। और आवाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पत्र लेश्यावाले जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु देवायुका जघन्य स्थितवन्ध साधिक हो। सागर प्रमाण है। अन्तर्मु हुर्त प्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितवन्ध दिवसपृथक्तवप्रमाण है। अन्तर्मु हुर्तप्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। इनके एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। अक्ललेश्यावाले जीवोंमें चपक प्रकृतियोंका मङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुका जघन्य स्थितवन्ध मासपृथक्तवप्रमाण है। अन्तर्मु हुर्तप्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। देवायुका जघन्य स्थितवन्ध साधिक अठारह सागर प्रमाण है। अन्तर्मु हुर्तप्रमाण आवाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण आवाधा है।

६३. भन्य जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भक्त मूलोघके समान है। ग्रमञ्य जीवोंमें प्रपत्ती प्रकृतियोंका भक्त मत्यक्षानियोंके समान है। सम्यग्दिष्ट ग्रीर स्नायिक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें ग्रपनी प्रकृतियोंका भक्त श्रविध्वानियोंके समान है। वेदकसम्यग्दिष्ट जीवोंमें ग्रायुकर्मका भक्त श्रविध्वानियोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भक्त विभक्तक्षानियोंके समान है। उपश्मसम्यग्दिष्ट जीवोंमें पांच क्षानावर्ण, चार दर्शनावर्ण, लोम संज्वलन ग्रीर पांच श्रन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध श्रन्तर्मुहुर्त प्रमाण है। श्रन्तर्मुहुर्तंप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

[आवाधू० कम्महि० कम्मणि०]। कोधसंज० जह० द्विदि० चत्तारि मासं। अंतो० आवा०। [आवाधू० कम्महि० कम्मणि०]। माणसंजल० जह० हिदि० वे मासं। अंतो० आवा०। [आवाधू० कम्महि० कम्मणि०]। मायासं० जह० हिदि० मासं०। अंतो० आवा०। [आवाधू० कम्महि० कम्मणि०]। पुरिसवे० जह० हिदि० सोलसवस्साणि। अंतो० आवा०। [आवाधू० कम्महि० कम्मणि०]। पुरिसवे० जह० हिदि० सोलसगुहुतं। अंतो० आवा०। [आवाधू० कम्मणि०-उच्चागो० जह० हिदि० सोलसगुहुतं। अंतो० आवा०। [आवाधू० कम्महि० कम्मणि०]। सेसाणं आोधिमंगो। सासणे तिरिक्ख-मणुसागु० णिर-योधं। देवागु० जह० हिदि० दसवस्ससहस्साणि। अंतो० आवा०। [कम्महिदी कम्मणिसेगो]। सेसाणं संजदासंजदमंगो। एवं सम्मामि०। मिच्छादि० अञ्भव-सिद्धियमंगो। सिणण० मणुसभंगो। असणिण० तिरिक्खोधं। आहार० मूलोधं। आणाहार० कम्मइगमंगो। एवं जहण्णिहिदि० समत्तं। एवं अद्धच्छेदो समत्तो।

सव्वबंध-गोसव्वबंधपरूवगा

६४. यो सो सन्ववंधो ग्रोसन्वबंधो ग्राम इमो दुविधो ग्रिह सो—श्रोधेण श्रादेसेण य । श्रोधेण पंचणागावरणीयाणं किं सन्ववंधो ग्रोसन्ववंधो ? सन्ववंधो

कोध संज्वलनका जघन्य स्थितिवन्ध चार महीना है। श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण श्रावाधा है श्रीर श्रावाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। मान संज्वलनका जघन्य स्थितिवन्ध दो महीना है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाघा है श्रीर आबाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिपेक है। माया संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध एक महीना है। ग्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण ग्राबाधा है ग्रीर श्राबाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पुरुषवेदका जघन्य स्थितियन्ध सोल्ह वर्ष है। अन्तमु हूर्तप्रमाण आबाधा है और अबाधासे न्यून कर्मस्थित प्रमाण कर्मनिषेक है। यशःकीति श्रौर उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह मुहूर्त है। श्रन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा है ग्रौर ग्रावाघासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रवधि-ज्ञानियोंके समान हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तियञ्चायु श्रौर मनुष्यायुका जघन्य स्थितिवन्ध ग्रादि सामान्य नारिकयोंके समान है। देवायुका जघन्य स्थितिवन्ध दश हजार वर्षप्रमाण है। श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण श्राबाधा है श्रीर कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग संयतासंयतके समान है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मिथ्यादृष्टियोंके अपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग अभन्योंके समान है। संज्ञी जीवोंमें अपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। असंकी जीवोंमें तिर्यञ्चोंके समान है। श्राहारक जीवोंमें मूलोघके समान है तथा श्रनाहारकोंमें कार्मण काययोगियोंके समान है।

इस प्रकार जघन्य स्थितिबन्ध श्रद्धाच्छेद समाप्त हुत्रा। इस प्रकार श्रद्धाच्छेद समाप्त हुत्रा। सर्वबन्ध-नोसर्ववन्धप्ररूपणा

६४. जो सर्वबन्ध श्रोर नोसर्वबन्ध है उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध श्रोर . श्रादेश । श्रोधसे पाँच ज्ञानावरणका क्या सर्वबन्ध होता है या नोसर्वबन्ध होता है ? सर्व-

वा गोसन्ववंधो वा । सन्वात्रो हिदीत्रो वंधमाणस्स सन्ववंधो। तद्गां वंधमाणस्स गोसन्ववंधो। एवं पगदीगां याव त्रगाहास्स त्ति गोदन्वं।

उक्कस्सबंध-ऋग्रुक्कस्सबन्धपरूवग्रा

६५. यो सो उक्करसवंधो अणुक्करसवंधो । तत्थ इमो दुवि० णिद सो—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० सन्वपगदीणं हिदिवंधो किं उक्करसवंधो श्रणुक्करसवंधो ? उक्करसवंधो वा श्रणुक्करसवंधो वा । सन्वुक्करिसयं हिदिं वंधमाणस्स उक्करसवंधो । तदूणं वंध-माणस्स श्रणुक्करसवंधो । एवं याव श्रणाहारग ति णेदन्वं ।

जहराग्-अजहराग्वंधपरूवगा

६६. यो सो जहराणवंधो अजहराणवंधो णाम तस्स इमो दुवि० णिहे सो— अग्रेघे० आदे० । अग्रेघे० सन्वपगदीणं हिदिवंधो किं जहराणवंधो अजहराणवंधो ? जहराणवंधो वा अजहराणवंधो वा । सन्वजहराणयं हिदि वंधमाणस्स जहराण-वंधो । तदो उविर वंधमाणस्स अजहराणवंधो । एवं याव अणाहारग चि सेदन्वं ।

वन्ध होता है श्रौर नोसर्ववन्ध होता है। सव स्थितियोंका वन्ध करनेवाले जीवके सर्ववन्ध होता है श्रौर इनसे न्यून स्थितियोंका वन्ध करनेवाले जीवके नोसर्ववन्ध होता है। इसी प्रकार सव प्रकृतियोंका श्रनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए।

उत्कृष्ट्वन्ध-अनुत्कृष्ट्वन्धमरूपणा

६४. जो उत्कृष्टवन्ध और अनुत्कृष्टवन्ध है उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध क्या उत्कृष्टवन्ध होता है या अनुत्कृष्टवन्ध होता है ? उत्कृष्टवन्ध भी होता है और अनुत्कृष्टवन्ध भी होता है। सबसे उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवके उत्कृष्टवन्ध होता है और इससे न्यून स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवके अनुत्कृष्टवन्ध होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृप्टवन्धमें श्रोघ और आदेशसे सब प्रकृतियों के उत्कृप्ट स्थितिबन्धका ग्रहण किया गया है श्रोर अनुत्कृप्टवन्धमें उत्कृप्ट स्थितिबन्धके सिवा शेष सब स्थितिबन्धों का ग्रहण किया गया है। उदाहरणार्थ श्रोधसे मिथ्यात्व मोहनीयका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर ग्रहण किया गया है। उदाहरणार्थ श्रोधसे मिथ्यात्व मोहनीयका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबन्ध होने पर वह उत्कृप्ट स्थितिबन्ध कहा जाता है श्रोर इससे न्यून स्थितिवन्ध होने पर वह अनुत्कृप्ट स्थितिबन्ध कहा जाता है। इसी प्रकार श्रादेशसे जिस मार्गणामें वन्ध होने पर वह अनुत्कृप्ट स्थितिबन्ध कहा जाता है। इसी प्रकार श्रादेशसे जिस मार्गणामें जो उत्कृप्ट स्थितिबन्ध हो वह उत्कृप्ट स्थितिबन्ध है श्रोर शेष अनुत्कृप्ट स्थितिबन्ध है।

जघन्यवन्ध-अजघन्यवन्धपरूपणा

६६. जो जघन्यवन्ध और अजघन्यवन्ध है उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ श्रीर आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध क्या जघन्यवन्ध है या अजघन्यवन्ध है ? अप्रत्यवन्ध भी है और अजघन्यवन्ध भी है। सबसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवके जघन्यवन्ध होता है और इससे अधिक स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके अजघन्यवन्ध होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

वशेषार्य—उत्कृष्ट ग्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके समान यहाँ श्रोघ ग्रौर श्रादेशसे जघन्य श्रोर ग्रजघन्य स्थितिवन्धका विचार कर तेना चाहिए। श्रोघसे सबसे जघन्य स्थिति-

सादि-ऋणादि-धुव-ऋद्धवबंधपरूवणा

६७. यो सो सादियवंधो अणादियवंधो धुववंधो अद्धुववंधो णाम तस्स इमो दुवि० णिह सो—अधे० आदे० । ओधे० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंतरा० उक्तस्सिट्टिद्वंधो अणुक्तस्सिट्टिद्वंधो जहण्णिट्टिद्वंधो किं सादियवंधो किं अणादिय-वंधो किं धुववंधो किं अद्धुववंधो सादिय० अद्धुववंधो वा । अजहण्णिट्टिद्वंधो किं सादिय वा०४ शादिय० अणादिय० धुव० अद्धुववंधो वा । अजहण्णिट्टिद्वंधो किं सादिय वा०४ शादिय० अणादिय० धुव० अद्धुव० । सेसाणं सन्वपगदीणं उक्तस्स० अणुक्तस्स० जह० अजह० किं सादि०४ शादिय-अद्धुववंधो । एवं ओघभंगो चक्खुदं०-भवसि० । णविर भवसिद्धिण धुववंधो णित्य । सेसाणं णिरयादि याव अणाहारग ति किं सादि०४ शादिय-अद्धुव वंधो ।

वन्ध पाँच ज्ञानावरणका अन्तर्मु हूर्त है और सब अजघन्य स्थितिवन्ध है। इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिए।

सादि-अनादि-भ्रुव-अध्रुववन्धप्ररूपणा

६७. जो सादिवन्ध, अनादिवन्ध, भ्र ववन्ध और अभ्रववन्ध है उसका यह निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। ओघसे पाँच शानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध, अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध और जधन्य स्थितिवन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या भ्रव है या क्या अभ्रव है शादि और अभ्रव है। अजधन्य स्थितिवन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या भ्रवह अथवा क्या अभ्रव है शादि, अनादि, भ्रव और अभ्रव है। शेप सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध, अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध, जयन्य स्थितिवन्ध और अभ्रव है। शेप सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध, अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध, जयन्य स्थितिवन्ध और अभ्रव है। इसी प्रकार ओघके समान चज्जदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि भन्य जीवोंके भ्रव वन्ध नहीं होता। शेष नरकगितसे लेकर अनाहारकतक सब मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध, अनुत्कृष्ट, स्थितिवन्ध जधन्यस्थितिवन्ध और अजधन्य स्थितिवन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या भ्रवाद है, क्या भ्रवाद है। स्थितवन्ध जधन्यस्थितवन्ध और अजधन्य स्थितवन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या भ्रवाद है। अथवा क्या अभ्रव है शिवाद और अभ्रव है। सादि और अभ्रव है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनांवरण, चार संज्वलन श्रीर पाँच श्रन्तरायकी वन्धव्युच्छिचि श्रीर जघन्य स्थितिवन्ध ज्ञपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है। इसके पहले श्रनादिकालसे इन प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है। यतः इन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध
ज्ञपकश्रेणिमें श्रपने श्रपने श्रमित स्थितिवन्धके समय प्राप्त होता है, इसिलए इसके पहले
श्रनादिकालसे होनेवाला इनका श्रजघन्यवन्ध ठहरता है। इसिलए तो यह श्रनादि है तथा
जो जीव उपश्रम श्रेणिपर श्रारोहण कर श्रोर स्वम साम्परायके श्रन्तमें इनकी वन्धव्युच्छिचि
कर उपशान्तमोह हो उपशमश्रेणीसे उतरते हुए पुनः इनके वन्धका प्रारम्भ करता है उसके
यह श्रजघन्य स्थितिवन्ध सादि होता है। श्रु व श्रोर श्रश्रु व स्पष्ट ही हैं। इस प्रकार उक्क
१८ प्रकृतियोंका श्रजघन्य स्थितिवन्ध सादि, श्रनादि, श्रु व श्रीर श्रश्रु वके भेदसे चार प्रकार
का होता है। इन १८ प्रकृतियोंके शेष उत्कृष्टवन्ध श्रादि तीन तथा शेष सब प्रकृतियोंके
उत्कृष्टवन्ध श्रादि चार सादि श्रोर श्रभ्रु व दो ही प्रकारके हैं, क्योंकि उक्त १८ प्रकृतियोंके
उत्कृष्टवन्ध श्रादि तीन श्रीर श्रेषके उत्कृष्टवन्ध श्रादि चारों कादाचित्क होनेसे श्रनादि श्रीर

१. गो० क० णा० १५३ । पञ्चलं०।

सामित्तपरूवगा

६८. सामित्तं दुविधं—जहएण्यं उक्कस्सयं च । उक्कस्सएं पगदं । दुवि०--श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसाद०-मिच्छत्त-सोलसकसाय-ण्युं स०-श्रर-दिसोग-भय-दुगुं०-पंचिद्दयजाद्दि-तेजा-क०-हुं इसं०-वएण्०४-श्रगुरु०४-श्रण्यसत्थवि० तस०४-श्रथिराद्दिछक्क-णिमिण्-णीचागो०-पंचेतरा० उक्कस्सश्रो दिद्वेषो कस्स होदि ? श्रण्णदरस्स चदुगद्दियस्स पंचिद्दियस्स सिण्णस्स मिच्छादिद्विस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगद्दस्स सागारजागार-स्रदोवजोगज्ञत्तस्स उक्किस्सयाण् दिदीण् उक्क-स्सण् दिदिसंकिलिस्से वट्टमाण्यस्स श्रथवा ईसिमिण्भिमपरिणामस्स' । सादावे०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-मणुसाणु०-पसत्थविहाय०-थिरादिछक्क-उच्चागो० उक्क० दिदि० कस्स ? तस्सेव पंचिद्दियस्स सागार-जागार०

भ्रुव नहीं हो सकते। पहले मूलप्रकृति स्थितिवन्ध प्रकरणमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेद्-नीय, मोहनीय, नाम, गोत्र श्रीर श्रन्तराय इन सात मूल प्रकृतियों के श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धकों सादि श्रादि चार प्रकार का चतलाया है श्रीर यहाँ केवल ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय श्रीर श्रन्तरायके भेदों में ही यह घटित किया गया है सो इसका कारण यह है कि श्रायुके विना श्रेप सात मूल प्रकृतियोंका श्रनादिसे निरन्तर वन्ध होता श्राया है पर इन सवकी उत्तर प्रकृतियोंकी यह स्थित नहीं है; इसलिए उत्तर प्रकृतियोंकी श्रपेत्ना जिन कर्मी की उत्तर प्रकृतियोंमें यह व्यवस्था सम्भव हुई उनमें ही उक्त प्रकारसे निर्देश किया है।

यह श्रोधप्ररूपणा श्रचजुदर्शन श्रौर भव्य इन दो मार्गणाश्रोमें ही श्रविकल घटित होती है, क्योंकि ये मार्गणाएँ कादाचित्क नहीं हैं श्रौर कमसे जीणमोह व श्रयोगिकेवली गुण्स्थानतक रहती हैं। इसलिए इनमें श्रोधके समान प्ररूपणा वन जाती है। केवल भव्य-मार्गणामें भ्राच विकल्प नहीं होता। शेप कथन सुगम है।

स्वामित्वमरूपणा

१. सेसाणं । उक्कस्ससंकिलिद्दा चदुगदिया ईसिमज्झिमया। -गो० क० गा० १३८।

तपात्रोगासंकिलिहस्स उकस्सियाए हिदीए तप्पात्रोग्गसंकिलेसे वद्दमाणस्स ।

६६. णिरयायु॰ उक्क॰ द्विदिवंधो कस्स १ अएणदरस्स मणुसस्स वा तिरिक्तन जोणिणीयस्स वा सिएण॰ मिच्छादिद्विस्स सन्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जागार-सुदोवज्जत्तस्स तप्पाओग्गसंकिलिद्वस्स उक्किस्सियाए आवाधाए उक्कस्सिदि॰ वृहमाणयस्स । तिरिक्त-मणुसायु॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ १ अएण॰ मणुसस्स वा पंचिदियतिरिक्तजोणिणीयस्स वा सिएण॰ मिच्छादिद्विस्स सागारजागार॰ तप्पा- ओग्गविसुद्ध॰ उक्किस्सियाए आवाधाए उक्क॰ द्विदिवं॰ वृह० । देवायु॰ 'उक्क॰ द्विदि॰ कस्स १ अएणदरस्स पमत्तसंजदस्स सागार-जागारस्रदोवजोगजुत्तस्स तप्पा- अोग्गविसुद्धस्स उक्किस्सियाए आवाधाए उक्क॰ द्विदिवं॰ वृह० ।

७०. 'णिरयग०-वेडिव्व०-वेडिव्व० ग्रंगोवं०-णिरयगिदपात्रोग्गा० उक्क० हिदि० कस्स० ? अएण० मणुसस्स वा पंचिदियतिरिक्तस्स वा सिएण० मिच्छादिहिस्स सागार-जागारस्रदोवजोगजुत्तस्स सव्वसंकिलिहस्स उक्क० हिदि० वहमाणस्स अथवा ईसिमिज्भिमपरिणामस्स वा। 'तिरिक्त्वगदि-ओरालिय०-ओरालिय० अंगोवं०-असंपत्त-सेवहसंघ०-तिरिक्त्वाणुपु०-उज्जोव० उक्क० हिदि० कस्स० ? अएण्दरस्स णिरयस्स

णाममें श्रवस्थित है ऐसा पूर्वोंक्ष चार गतिका संशी जीव ही उक्ष प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थिति-वन्धका स्वामी है।

६६. नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो संक्षी है, मिथ्यादि है, सव पर्याप्तियों से पर्याप्त है, साकारजागृतश्रुतोपयोग उपयुक्त है, तत्प्रायोग्यसंक्लेश पिरणामवाला है श्रीर उत्कृष्ट श्राबाधां साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कर रहा है ऐसा श्रन्यतर मनुष्य या तिर्यञ्चयोनि जीव नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो संक्षी है मिथ्यादि है, साकार जागृत है, तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला है श्रीर उत्कृष्ट भावाधां साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्धका रहा है ऐसा अन्यतर मनुष्य या तिर्यञ्चयोनि जीवतिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला है श्रीर उत्कृष्ट श्रावाधां साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कर रहा है ऐसा श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

७०. नरकगित, वैक्रियिकश्ररीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपांङ्ग श्रौर नरकगित प्रायोग्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो संज्ञो है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत श्रुतोप्योगसे उपयुक्त है, सवसे श्रधिक संक्षेश परिणामवाला है, उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है श्रथवा ईपत् मध्यम परिणामवाला है ऐसा श्रन्यतर मनुष्य या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च उक्त चार प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगित, श्रौदारिकश्ररीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसम्प्राप्तासृपादिकासंहनन, तिर्यञ्चगित प्रायोग्यानुपूर्वी श्रौर उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्रेश परिणामवाला

१. 'देवाउगं पमत्तो'—गो० क० गा० १३६। २. स्रितिरियाः '' वेगुन्वियस्त्रक्किवियस्युहुम-तियं।'—गो० क० गा० १३७। ३. सुरणिस्या श्रोरालियतिरियदुगुन्जोवसंपत्तं।'—गो० क० गा० १३७।

वा देवस्स वा मिच्छादिष्ठि॰ सागार-जागार० उक्तस्ससंकिलिष्ठ० अथवा ईसिमिङ्भिमपरिणामस्स । 'देवगदि-तििएणजिद-देवाणुपु॰-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० उक्क०
ष्ठिदि० कस्स० १ अएण० मणुसस्स वा पंचिदियतिरिक्खस्स वा सिएण० मिच्छादिहिस्स सागार-जागार० तप्पाओग्ग० उक्कष्ठिदि० तप्पाओग्गउक्कस्सए संकिलिष्ठे
वहमाणस्स । 'एइ'दिय-आदाव-थावर० उक्क० द्विदि० कस्स० १ अएण० सोधम्मीसाणंतदेवेसु मिच्छादिहि० सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलिद्दस्स अथवा ईसिमज्भिम०। 'आहार०-आहार०अंगो० उक्क० द्विदि० कस्स० १ अएणदरस्स अप्यमत्तसंजदस्स सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलिद्द० पमत्ताभिग्रहस्स । तित्थयरं'
उक्क० द्विदि० कस्स० १ अएणद० मणुसस्स असंजदसम्मादिद्विस्स सागार-जागार०
तप्पाओग्गस्स० मिच्छादिद्विग्रहस्स ।

है अथवा श्रल्प मध्यम परिणामवाला है ऐसा श्रन्यतर देव या नारकी जीव उक्त छह प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। देवगित, तीन जाति, देवगित प्रायोग्यानुपूर्वी, सूहम,
अपर्यात श्रीर साधारण प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो संही है, मिथ्याहिए है, साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य परिणामवाला है श्रीर उत्कृप्ट स्थितिवन्धके साथ उत्कृष्ट
संक्रेशक्षप परिणाममें श्रवस्थित है ऐसा श्रन्यतर मनुष्य श्रथवा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव उक्त
श्राठ प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति, श्रातप श्रीर स्थावर प्रकृतिके
उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादिए है, साकार जागृत है, उत्कृप्ट संक्रेश
परिणामवाला है श्रथवा श्रव्ण मध्यम परिणामवाला है ऐसा सौधर्म श्रीर ऐशान कल्प तकके
देवोंमेंसे श्रन्यतर देव उक्त तीन प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। श्राहारकश्ररीर
श्रीर श्राहारक श्ररीर श्राङ्गोपाङ्गके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। श्राहारकश्ररीर
श्रीर श्राहारक श्ररीर श्राङ्गोपाङ्गके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। तीर्थंङ्गर प्रकृतिके उत्कृप्ट
संक्रेश परिणामवाला है श्रीर प्रमचसंयत ग्रुणस्थानके श्रिममुख है ऐसा श्रन्यतर श्रप्रमत्त संयत जीव उक्ष दो प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। तीर्थंङ्गर प्रकृतिके उत्कृप्ट
स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो साकार जागृत है, तत्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है
श्रीर मिथ्यात्वके श्रीममुख है ऐसा श्रन्यतर मनुष्य श्रसंयतसम्यग्रहि जीव तीर्थंङ्गर प्रकृतिके
उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—यहाँ १४८ उत्तर प्रकृतियों मेंसे प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका विचार किया गया है। वन्धकी अपेजा पाँच वन्धन और पाँच संघातका पाँच शरीरमें अंत-भांव हो जाता है तथा स्पर्शादिक २० के स्थानमें मूल चार लिये गये हैं तथा सम्यक् प्रकृतियों के मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो अवन्ध प्रकृतियाँ हैं, इसिलए इन अहाईस प्रकृतियों के कम हो जाने पर कुल १२० प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। अतएव यहाँ इन्हीं १२० प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका विचार किया गया है। यहाँ यह बात तो स्पष्ट ही है कि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका विचार प्रकृतियोंके सिवा शेप ११६ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट-देवायु, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर इन चार प्रकृतियोंके सिवा शेप ११६ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट-स्थितिवन्ध मिथ्यादिष्ठ जीव ही करता है, क्योंकि इनके वन्धके योग्य उत्कृष्ट या अल्प मध्यम स्थितिवन्ध मिथ्यादिष्ठ जीव ही करता है, क्योंकि इनके वन्धके योग्य उत्कृष्ट या अल्प मध्यम

१. शरितरियाः ' ' चेगुन्वियछक्किवयत्तसुहुमितयं ।' — गो० क० गा० १२७। २. देवा पुण एइंदियद्यादावं थावरं च। गो० क० गा० १३६। ३. 'झाहारयमप्यमत्तविरदो दु।' — गो० क० गा० १३६। ४. 'तित्थयरं च मग्रस्सो ।' — गो०क० गा० १३६।

७१. ब्रादेसेण गेरइएस पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसादावे०-भिच्छत्त-सोल-सक०-णवुं स०-श्ररदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्लगदि-पंचिदिय०-श्रोरालिय०-तेजा०-क०-हुडसं०-श्रोरालि०श्रंगो०-श्रसंपत्तसेव०-वरण०४-तिरिक्लाणुपु०-श्रगुरू०४-उज्जो०-श्रणसत्थवि०-तस०४-श्रथिरादिञ्जक्क-णिभिण-णीचागो०-पंचेतरा० उक्क०

परिणास सिथ्यादृष्टिके ही होते हैं। उसमें भी किन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन गतिका जीव है यह अलग अलग वतलाया ही है फिर भी यहाँ प्रत्येक गतिका आश्रय लेकर विचार करते हैं—

नरकगिति—४ झानावरण, ९ दर्शनावरण, २ वेदनीय और २६ मोहनीयका तथा नरक-गितद्विक, वैकियिकद्विक, देवगितद्विक, एकेन्द्रियादि चार जाति, श्राहारकद्विक, श्रातप, स्थावर, सूच्म, श्रपर्याप्त, साधारण श्रीर तीर्थङ्कर इन १ = प्रकृतियोंके सिवा नामकर्मकी ४९ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र श्रीर ४ श्रन्तरायका इस प्रकार नरकगितमें कुल ९८ का श्रीघ उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। तथा तिर्यञ्चायु मनुष्यायु श्रीर तीर्थङ्कार प्रकृतिका आदेश उत्कृष्ट स्थिति-वन्ध होता है। कुल १०१ प्रकृतियोंका वन्ध होता है।

तिर्धे ऋगिति—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, २ वेदनीय, २६ मोहनीय, देवायुके सिवा ३ श्रायुका तथा तिर्यञ्चगतिद्विक, श्रौदारिकद्विक, आहारकद्विक, एकेन्द्रिय जाति, श्रसंप्राप्ता-स्पाटिकासंहनन, श्रातप, उद्योत, स्थावर श्रौर तीर्थेङ्कर इन १२ प्रकृतियोंके सिवा नाम-कर्मकी शेष ४५ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र श्रौर ४ श्रन्तरायका इस प्रकार तिर्यञ्चगतिमें १०७ प्रकृतियोंका श्रोघ उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। तथा श्रौदारिकद्विक, तिर्यञ्चगतिद्विक, श्रसंप्राप्ता-स्पाटिका संहनन, प्रकेन्द्रिय जाति, श्रातप, उद्योत श्रौर स्थावर इन नौ प्रकृतियोंका श्रादेश उत्कृष्ट स्थितवन्ध होता है। कुल ११७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है।

मनुष्यगित—४ ज्ञानावरण, ९ द्र्शनावरण, २ वेद्नीय, २६ मोहनीय, ४ श्रायुका तथा तिर्यञ्चगितिहिक, एकेन्द्रिय जाति, श्रौदारिकद्विक, श्रसम्प्राप्तास्पाटिका संहनन, श्रातप, उद्योत श्रौर स्थावर इन नौ प्रकृतियोंके सिवा नामकर्मकी ४८ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र श्रौर ४ श्रन्त-रायका इस प्रकार मनुष्यगितमें १११ प्रकृतियोंका श्रोघ उत्कृप्ट स्थितिवन्ध होता है। इतनी विशेषता है कि श्राहारकद्विकका प्रमत्तसंयत गुण्स्थानके श्रीममुख हुए संक्लेश परिणामवाले श्रिप्रमत्तसंयतके श्रौर तीर्थकरका मिथ्यात्वके श्रीममुख हुए श्रसंयतसम्यग्दिष्टके उत्कृप्ट स्थितिवन्ध होता है। तथा तिर्यञ्चगितमें गिनाई गई श्रादेश उत्कृप्ट स्थितिवन्धवाली ९ प्रकृतियोंका यहाँ भी श्रादेश उत्कृष्ट स्थितवन्ध होता है।

देवगति—४ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, २ वेदनीय, २६ मोहनीयका तथा नरकगति-द्विक, देवगतिद्विक, द्वीन्द्रिय आदि तीन जाति, वैिक्रियकद्विक, श्राहारकद्विक, सूक्ष्म, श्रपर्याप्त, साधारण श्रीर तीर्थंकर इन १४ प्रकृतियोंके सिवा नामकर्मकी ४२ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र श्रीर ४ अन्तरायका इस प्रकार देवगितमें कुल १०१ प्रकृतियोंका श्रोघ उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। तथा तिर्थञ्चायु, मनुष्यायु श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिका श्रादेश उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। कुल १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

७१. श्रादेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ग्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जातिं, श्रौदा-रिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसम्प्राप्तास्पाटि-कासंहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुलरुष्ठ चतुष्क, उद्योत, श्रप्रशस्तविहायो- हिदि० कस्त० १ अग्णद० मिच्छादिहिस्स सागार-जागार० उक्कस्ससंकिति० अथवा ईसिमिन्सिमपरिणामस्स । सेसाणं उक्कस्त० हिदि० तस्सेव तप्पाओगा-संकिति० । तिरिक्लायु० उक्क० हिदि० कस्त० १ अग्णद० मिच्छादिहि० तप्पाओ-गाविसुद्धस्स उक्कस्सियाए आवा० [उक्क०] हिदि० वद्दमाणस्स । मणुसायु० उक्क० हिदि० कस्त० १ अग्ण० सम्मादि० मिच्छादि० तप्पाओगाविसुद्धस्स उक्क० आवा० उक्क० हिदि० वद्दमाण्यस्स । तित्थयर० उक्क० हिदि० कस्त० १ असंजदसम्मादिहिस्स तप्पाओगासंकित्वि० ।

७२. एवं सन्वासु पुढवीसु । एवरि चडतथीत्रादीसु तित्थयरं एित्य । सत्तमा-ए मणुसगइ-मणुसाणु -उच्चागो । उक्क हिदि । कस्स । १ त्राण्ण सम्मादिहिस्स तप्पात्रोग्गसंकिलिह ।

७३. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसादा०-मिच्छत्त-सोलसकसा०-णवुंस०-श्ररदि-सोग०-भय-दुगुं०-णिरयग०-पंचिंदिय०-तेजा-क०-हुंडसंठा०-वेज-

गति, त्रस चतुष्क, श्रस्थिरादिक छह, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थिति-वन्धका स्वामी कौन है ! साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा श्रव्य मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । तथा श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वही जीव है । तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ! तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला श्रोर उत्कृष्ट श्रावाधाके सात उत्कृष्ट स्थितवन्ध करनेवाला श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ! तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला श्रोर उत्कृष्ट श्रावाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्धका वन्ध करनेवाला श्रन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि नारकी मगुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । तार्थावर श्रसंयत सम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है ।

७२. इसी प्रकार सात पृथिवियों में जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चौथीसे लेकर सव पृथिवियों में तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। तथा सातवीं पृथिवी में मनुष्य गति, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्वी ग्रीर उच्च गोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका सामी कौन है? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला ग्रीर मिथ्यात्वके ग्रीममुख अन्यतर सम्यग्दिए नारकी उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका सामी है।

विशेषार्थ—नरकगतिमें जितनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है उनका नाम निर्देश पिहले कर श्राये हैं। यहाँ इतनी विशेष वात जाननी चाहिए कि तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध तीसरी पृथिवी तक होता है श्रीर सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्यग्दिए नारकीके होता है।

७३. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुण्सा, नरकगित, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, तैजसरारीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रप्र- व्यित्रंगो॰-वर्ण्ण०४-णिरयाणु॰-त्रगुरु॰४-त्रप्पसत्थवि॰-तस०४-श्रथिरादिछक-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ १ श्रएणद॰ पंचिदिय० सिएण॰ मिच्छा॰ सागार-जागार॰ उक्कस्ससंकितिद्द॰ श्रथवा ईसिमिन्समप॰। सेसाणं तस्सेव पंचिदिय० सिएण॰ मिच्छादि० सागार-जागार॰ तप्पाश्रोग्ग-संकिति॰। देवायु० उक्क० द्विदि॰ कस्स० १ श्रएणदरस्स सम्मादिद्वि० तप्पाश्रोग्गविसु॰ उक्क॰ श्राबा॰। सेसाणं श्रायूणं श्रोषं। पंचिदियतिरिक्खं०३ [तिरिक्खोषं]।

७४. पंचिंदियतिरिक्त्अपज्जते पंचणाणावरणी०-णवदंसणा०-असादावे०मिच्छत्त-सोलसक०-णवुं स०--अरदि--सोग--भय-दुगुं०--तिरिक्खगदि---एइंदियजादि-ओरालि०-तेजा-क०-हुं इसं०-वएण०४-तिरिक्खाणुपु०--अगुरु०--उप०--थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार०-अथिरादिपंच०-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० दिदि०
कस्स० १ अएण० सिएणस्स सागार-जागार० उक्क० संकिलि० वदृमाणस्स ।
सेसाणं तस्स चेव सिएण० तप्पाओग्गसंकिलिद्द० उक्क० दिदि० वदृमाण० । दो
आयु० उक्क० दिदि० कस्स० १ अएणद० सिएणस्स वा असिएणस्स वा तप्पाओग्गविसुद्धस्स ।

शस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, श्रस्थिरादिक छह, निर्माण, नीचगोत्र, श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है। पञ्चेन्द्रिय, संक्षी, मिथ्यादृष्टि, साकार जागृत श्रौर उत्कृष्ट संक्षेश पिरणामवाला श्रथवा श्रव्य मध्यम पिरणामवाला श्रन्यतर तिर्यञ्च जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय, संक्षी, मिथ्यादृष्टि, साकार जागृत श्रौर तत्प्रायोग्य संक्लेश पिरणामवाला वही जीव है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य विश्वद्ध पिरणामवाला और उत्कृष्ट श्रावाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करनेवाला श्रन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। तथा श्रेष श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी श्रोधके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिके वन्धका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

७४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता-वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरित, शोक, भय, जुगुण्सा, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान वर्णचतुष्क, तिर्यचगित प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूच्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत श्रोर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर संज्ञो जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी संज्ञी, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रोर उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी संज्ञी, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रोर उत्कृष्ट स्थितिबन्धका वही जीव है । दो श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्यिवशुद्ध परिणामवाला अन्यतर संज्ञी या असंज्ञी जीव दो श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्च सामान्यके श्राहारकद्विक श्रीर तीर्यङ्करके विना कुल बन्धयोग्य

१. मूलप्रतौ- तिरिक्लभंगो ३ पंचिदिय-इति पाटः ।

७५. मणुस०३ आहार०-आहार०अंगो०-तित्थयर०-आयु०चत्तारि स्रोघं। सेसाणं पंचिदियतिरिक्लभंगो। मणुसअपज्जत्ता० तिरिक्लअपज्जत्तभंगो।

७६. देवगदीए पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसादा०-मिच्छत्त-सोल्सक०-णबुंस०श्ररदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्लगदि-एइंदि०-पंचिदि०-श्रोराल्यि०-तेजा-क०-हुंडसं०श्रोराल् ०श्रंगो०-श्रसंपत्तसेवद्दसंघ०-वएण०४-तिरिक्लाणुपु०-श्रगुरु०४-श्रादाङ्जो०श्रणसत्थविद्दा०-तस-थावर-वादर-पज्जत्त-पत्तेय०-श्रथरादिछक-णीचागोद-पंचतरा०
एक०-द्विदि० कस्स० १ श्रएणद० मिच्छादिद्वि० सागार-जागार० एकस्ससंकिलि०
श्रथवा इसिमिज्सिमपरिणामस्स । दोश्रायु० तित्थयरं च णिरयभंगो। सेसाणं
तप्पाश्रोग्ग-संकिलि० मिच्छादिद्वि०।

प्रकृतियाँ ११७ हैं। इनमेंसे इसके १०७ प्रकृतियोंका श्रोधके समान उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है श्रीर शेष रही देवायु तिर्यचगतिद्धिक, एकेन्द्रिय जाति, श्रीदारिक द्विक, श्रसंप्राप्तास्पाटिका-संहनन, श्रातप, उद्योत श्रीर साधारण इन १० प्रकृतियों का श्रादेश स्थितिबन्ध होता है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त श्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें भी जान लेना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंमें पूर्वोक्त ११० प्रकृतियोंमेंसे देवायु, नरकायु श्रीर वैकियिक छह इन ८ प्रकृतियोंके कम कर देने पर कुल बन्धको प्राप्त होनेवाली १०६ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। सो इसके इन सब प्रकृतियोंका श्रादेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि इन सब मार्गणाश्रोमें किस श्रवस्थाके होने पर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है इसका मूलमें निर्देश किया ही है। इसी प्रकार श्रन्य मार्गणाश्रोमें जहाँ जिस श्रवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है उसका पृथक् पृथक् निर्देश मूलमें किया है।

७४. मनुष्यत्रिकमें श्राहारकश्ररीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग, तीर्थंकर प्रकृति श्रीर चार श्रायुश्रोंके उत्कृष्टस्थितिवन्धका खामी श्रोघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति। वन्धका खामी पञ्चेन्द्रिय तिर्थञ्चके समान है। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके

उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी तिर्यञ्च ग्रपयितकोंके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें सब अर्थात् १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनमेंसे १११ का श्रोध उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है श्रोर तिर्यञ्चगतिद्विक, एकेन्द्रिय जाति, श्रोदारिकद्विक, श्रासम्प्राप्तास्तृपाटिकासंहनन, श्रातप, उद्योत तथा स्थावर इन ९ प्रकृतियोंका श्रादेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंका विचार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है यह स्पष्ट ही है।

७६. देवगितमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ग्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, ग्ररित, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, पञ्चेन्द्रिय जाति, ग्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुएडसंस्थान, ग्रोदारिक ग्राङ्गोपाङ्ग, ग्रसंप्राप्तास्प्राटिका संहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगित प्रायोग्यानुपूर्वी, ग्रगुरुलघु चतुष्क, ग्रातप, उद्योत, ग्रप्रशस्त विहायोगित, त्रस, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, ग्रस्थिरादिक छह नीचगोत्र ग्रीर पाँच ग्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है शाकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला ग्रथवा ग्रल्प मध्यम परिणामवाला ग्रन्यतर मिथ्यादिष्ट देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। दो ग्रायु ग्रौर तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला मिथ्यादिष्ट देव है।

७७. भवण०-वाणवेंत०-जोदिसि०-सोधम्मीसा० पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसा-दा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-त्ररिद्ध-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-एइंदि०-श्रोरालि०-तेजा-क० हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-श्रगुरु०४-श्रादाङ्जो०-थावर-वादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिरादिपंच-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० दिदिवं० कस्स० १ श्रण्णद० मिच्छादिदि० सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलिद्द० श्रथवा ईसिमिज्भिमपरि० । सेसाणं तस्सेव सागार-जागार० तप्पाश्रोग्गसंकिलि० उक्कस्स-दिदि० वद्दमा० । दोश्रायु० सोधम्मे तित्थयरं च देवोघं । एवं सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो ।

७८. अणादादि 'याव णवगेवज्ञा ति पंचणा०-णवदंसणा०-असादावे०भिच्छत्त-सोलसक०-णवु'स०-अरदि-सोग-भय-दुगु'०-मणुसगदि-पंचिदियजादि-ओरालिय०-तेजा०-क०-हु'डसं०-ओरालिय०अंगो०-असंपत्तसेवट्ट०-वएण०४-मणुसाणु०अगुरु०४-अप्पसत्थवि०-तस०४-अथिरादिछक-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक०
दिदि० कस्स० १ अएणद० भिच्छादि० उक०संकिलि० । सेसाणं तस्स चेव सागारजागार० तप्पाओग्गसंकिलि० । मणुसायु० उक० दिदि० कस्स० १ अएण० भिच्छादिद्दिस्स सम्मादिद्दिस्स वा तप्पाओग्गविसुद्धस्स ।

७७. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म श्रौर ऐशान कत्पके देवोंमें पाँच श्रानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, श्ररित, श्रोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुएडसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगितप्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, श्रातप, उद्योत, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है श्राकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रथवा श्रव्या श्रव्या श्रव्या स्थान परिणामवाला, श्रन्यतर मिथ्यादिष्ठ जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी साकार जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रौर उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी साकार जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रौर उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी साकार जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रौर उत्कृष्ट स्थितवन्धका करनेवाला वही जीव है। तथा दो श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी श्रौर सौधर्मकल्पयुगलमें तीर्थ करप्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी सामान देवोंके समान है। इसी प्रकार सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक श्रपनी सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है।

७८. श्रानत करुपसे लेकर नी श्रेवेयक तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, श्रमातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, श्रोदारिक शरीर श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसम्प्राप्तास्प्राटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रप्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, अस्थिरादिक छह, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृप्ट संक्लेश परिणामवाला श्रन्यतर मिथ्यादिष्ठ जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी साकार जागृत श्रीरतत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वही जीव है। मनुष्यायुके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला, श्रन्यतर मिथ्यादिष्ठ श्रथवा सम्यग्दिप्ट उक्त देव मनुष्यायुके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

- ७६. अणुदिस याव सन्वद्व ति पंचणा०-छदंसणा०-असादावे०-वारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं-च्छ-मणुसगदि-पंचिदिय० - श्रोरालिय०-तेजा-क०-सम-चढु०-श्रोरालिय०श्रंगो०-वज्जरिसभसं०-वण्ण०४-मणुसाणु०-श्रगुरू०४--पसत्थवि०-तस०४-श्रथर-'श्रगुभ-ग्रुभग-ग्रुस्सर-श्रादेज्ज०-श्रजस०-णिमिण-तित्थयर०-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० द्विदि० कस्स० १ सन्वसंकिलि० । सेसाणं तस्सेव सागार-जागार० तप्पात्रोग्गसंकिलि० । श्रायु० उक्क० द्विदि० कस्स० १ श्रण्ण० तप्पात्रोग्गविग्रुद्ध० उक्क० श्रावा० ।
- ८०. एइंदिएसु पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एवरि अएएद० वादरस्स पज्जत्तस्स सागार-जागार० उक्कस्ससंकित्ति० । एवं वादर-सुहुम-पज्जत्ता० । एवरि यं उद्दिस्सदि तं गहरणं काद्व्वं । एदेए विधिणा वीइंदि०-तीइंदि०-चढुरिंदि० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

७९. श्रमुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दशैनावरण, श्रसाता वेदनीय, वारह कषाय, पुरुषवेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुज्सा, मनुज्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गो-पाङ्ग, वज्रवृपभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, श्रस्थिर, श्रश्चम, सुभग, सुसर, श्रादेय, श्रयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, बचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराथके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? सबसे संक्लेश परिणामवाला उक्त देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वही जीव है । श्रायुक्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला श्रौर उत्कृष्ट श्रावाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितवन्ध करनेवाला उक्त देव श्रायुक्मके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—देवों में कुल १०४ प्रकृतियों का बन्घ होता है। उसमें भी एकेन्द्रिय जाति, श्रातप श्रीर स्थावर प्रकृतिका वन्घ ऐशान कल्प तक ही होता है। भवनित्रकों में तीर्थक्कर प्रकृति का वन्घ नहीं होता। देवों में पहले जिन १०१ प्रकृतियों का श्रोघ उत्कृष्ट स्थितिवन्घ कहा है वह सहस्रार कल्प तक ही होता है। श्रागे अपने अपने योग्य श्रादेश उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चाद्विक श्रोर नीचगोत्रका वन्घ भी वारहवें कल्प तक ही होता है। श्रागे इनका वन्घ नहीं होता। इसिलए इतनी विशेषताश्रों को ध्यान में रखकर देवों में श्रोर उनके श्रवान्तर भेदों में सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामित्व घटित करना चाहिए। मात्र नी श्रवुदिश श्रोर पाँच श्रवुत्तर विमानों में सब देव सम्यग्दिष्ट ही होते हैं, इसिलए वहाँ सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामित्व सम्यग्दिष्ट देवों के ही कहना चाहिए। यहाँ किस प्रकृतिका किस श्रवस्था में उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है यह सब विशेषता सूलमें कही ही है।

८०. एकेन्द्रियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि साकारजागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रन्यतर वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय श्रीर इनके पर्याप्त श्रपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ जिसका उद्देश्य हो वहाँ उसका श्रहण करना चाहिए। इसी विधिसे द्वीन्द्रिय, श्रीन्द्रिय श्रीर चतुरिन्द्रिय जीवों का भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है।

१. मूलप्रतौ—श्रमुभदूभगदुस्सरश्रादेज— इति पाठः ।

८१. पंचिदिय-पंचिदियपज्जतेसु सन्वपगदीणं म्लोघं । णवरि पंचिदियगहणं कादन्वं । पंचिदियत्रपञ्ज० पंचिदियतिरिक्खअपज्जतभंगो ।

दर. पुढिविका॰ गाणावरणादि श्रंतराइग त्ति उक्क॰ हिदि॰ कस्स॰ ? श्रगण॰ वादरस्स पज्जत्तस्स सागार-जागार॰ उक्क॰ संकित्ति॰ । सेसाणं सागार-जागार॰ तप्पाश्रोग्ग-संकित्ति॰ । दोश्रायु॰ उक्क॰ हिदि॰ कस्स॰ ? श्रगणद॰ सागार-जागार॰ तप्पाश्रोग्गविसुद्ध॰ । एवं पंचकायाणं एइंदियभावेण णेदव्वं । गविरि तेउ-वाडकायाणं मणुसायु॰-मणुसग०-मणुसाग्रु०-उच्चागोदं एत्थि ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके नरकायु, देवायु, वैक्षियिक छह, श्राहारकद्विक और तीर्थइत इन ११ प्रकृतियोंके सिवा १०९ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। सो एकेन्द्रियोंमें इनके उत्कृष्ट
स्थितिवन्धका स्वामी वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव होता है यह स्पष्ट ही है। यहाँ पर श्रन्य
जितनी मार्गणाएँ कही हैं उनमें श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका विचार कर
उनके स्वामित्वका कथन करना चाहिए। इन सव मार्गणाओं में उक्ष १०९ प्रकृतियोंका वन्ध होता
है। मात्र पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्त जीवों में उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करते समय जिस
प्रकार शानावरणादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धकी योग्यताका निर्देश किया है उसी प्रकार
यहाँ भी उसका विचार कर लेना चाहिए।

८१. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भक्त मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियका ग्रहण करना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय ग्रपर्यापकोंका भक्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ग्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—मूलोघ प्ररूपणामें जो उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका निर्देश करते समय गितयोंकी मुख्यतासे कहा है वहाँ सरकगितका या तिर्यञ्चगितका जीव ऐसा न कहकर पञ्चेन्द्रिय ऐसा सामान्य निर्देश करना चाहिए। शेप कथन सव मूलोघके समान है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

दर. पृथिवी काबिक जीवोंमें ज्ञानावरणसे लेकर अन्तराय तक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला वादरपृथिवी-कायिक पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी साकार जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला उक्त जीव है । दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला अन्यतर वादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । इसी प्रकार पाँच स्थावर कायिक जीवोंका एकेन्द्रिय जीवोंके समान कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यायु, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्च गोत्रका वन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—पहले एकेन्द्रियों में वन्ध योग्य १०९ प्रकृतियों का निर्देश कर श्राये हैं। यतः पृथिवीकायिक श्रादि एकेन्द्रियों के श्रवान्तर भेद हैं श्रवः इनमें भी उन्हों १०९ प्रकृतियों का वन्ध होता है। मात्र श्रियकायिक श्रीर वायुकायिक जीव इस नियमके श्रपवाद हैं। कारण कि उनमें मनुष्यायु, मनुष्यद्विक श्रीर उच्च गोत्रका वन्ध नहीं होता इसिलए इन दो कायिक जीवों में १०४ प्रकृतियों का ही वन्ध होता है। पहले लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय विर्वञ्चों में इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धकी योग्यताका निर्देश कर श्राये हैं। उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। श्रथीत झानावरणकी ४ श्रादि ६६ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितवन्ध उत्कृष्ट

- ८३. तस-तसपज्जत्त० पंचिंदियभंगो । तसञ्चपज्जत्त० पंचिंदियतिरिक्ख-त्रपज्जत्तभंगो ।
- ८४. पंचमण०-तिषिणवचि० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोल-सक०-णवुंसग०-अरदि-सोग-भय-दुगुंच्छ-पंचिदिंय०-तेजा०-कम्मइय०-हुंडसंटाण-वषण०४-अगुरू०४-अप्पसत्थवि०-तस०४-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० द्विदि० कस्स० १ अएण० चदुगदियस्स मिच्छादिद्विस्स सागार-जागार० उक्क०संकिलि० अथवा ईसिमज्भिमपरिणामस्स । सादावे०-इत्थिवे०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंटा०--पंचसंघ०-मणुसाणु०--पसत्थवि०--थिरादिछक्क--उच्चागो० उक्क० द्विदि० कस्स० १ अएणदर० चदुगदि्यस्स मिच्छादिद्विस्स सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलि०।
- ८५. णिरयगदि-वेडिव्व०-वेडिव्व०श्रंगो०-णिरयाणु० उक्क० हिदि० कश्स० १ अग्णाद० तिरिक्खरस वा मणुसस्स वा मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकित्ति०। तिरिक्खगदि—श्रोरात्ति०-श्रोरात्ति०श्रंगो०-श्रसंपत्तसेव०-तिरिक्खाणु७०-उज्जोव० उक्क० हिदि० कस्स० १ अग्णाद० देवस्स वा णेरइगस्स वा मिच्छादि० सागार-जा०

संक्रेश परिणामोंसे होता है। साता वेदनीय श्रादि ४१ प्रकृतियोंका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध इन प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धके योग्य संक्लेश परिणामोंसे होता है श्रीर मनुष्यायु व तिर्यञ्चायुका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामोंसे होता है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

द्भ. त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। तथा त्रस ग्रपर्याप्तक जीवोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ग्रपर्याप्तकोंके समान है।

दश्य पाँचो मनोयोगी श्रौर तीन वचन योगी जीवोंमें पाँच शानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसक वेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुण्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुएड संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु चतुष्क, श्रप्रशस्त विहायोगिति, त्रस चतुष्क, श्रस्थिर श्रादिक छह, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रथवा श्रस्प मध्यम परिणामवाला चार गितका मिथ्यादिष्ट जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । साता वेदनीय, स्थिवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, मनुष्यगित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, स्थिरादिक छह श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत श्रीर तत्यायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रम्यतर चार गितका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है ।

म्थ्र. नरकगित, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ श्रौर नरकगत्यानुपूर्विके उत्ह्रष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत श्रौर उत्ह्रष्ट संह्रेश परिणामवाला श्रन्यतर तिर्यञ्च श्रथवा मनुष्य मिथ्यादिष्ट जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्ह्रष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । तिर्यञ्च गित, श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसम्प्राप्तास्रुपाटिका संहनन, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी श्रौर उद्योतके उत्ह्रष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत श्रीर उत्ह्रष्ट

उक्कः संकिः अथवा ईसिमिन्भिमपिरणाः । चदुण्णं आयुगाणं ओघं । एईदियः अयदाव-थावरः उक्कः हिदिः कस्सः ? अपण्यदः ईसाणंतदेवः सिच्छादिष्टिः सागार-जाः उक्कः संकित्तिः अथवा ईसिमिन्भिमपिरणाः । देवगदि-तिण्णिजादि-देवाणुपुः-सुहुम-अपज्जत्त-साधारः उक्कः हिदिः कस्सः ? अण्णदरः मणुसस्स वा तिरिक्त्वस्स वा मिच्छादिहिः सागार-जाः तप्पाओग्गसंकितिः । आहारः-आहारः अंगोः-तित्थयरं ओघं । विचजोः असच्चमोः सो चेव भंगो । णविर उक्कस्स-संकितिहाणं तप्पाओग्गसंकितिहाणं च अण्णदः सिण्णस्स ति भाणिदः ।

द्धः कायजोगि॰ मूलोघं। त्रोरालियका॰ मणुसपज्जत्तभंगो। एवरि मणुस्सस्स वा तिरिक्खस्स वा पंचिदिय॰ सिएए। ति भाणिदव्वं। त्रोरालियि। पंचणा॰-एवदंसणा॰-सादावे०-भिच्छत्त-सोलसक०-एवुं स०-अरिद-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्ख-गदि-एइंदि०-त्रोरालि॰-तेजा॰-क०-हुंडसं०-वएए।०४-तिरिक्खाणु॰-त्रगुरु०-उप०-थावर-सुहुम-त्रपंज्जत्त-साधार०-त्रथिरादिपंच०-एीचागो०-एिंमिण्-पंचतरा० उक्क०

संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। चार आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी ग्रोधके समान है। एकेन्द्रियजाति, आतप श्रोर स्थावरके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत श्रीर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प मध्यम
परिणामवाला श्रन्यतर ऐशान कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। देवगति, तीन जाति, देवगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त श्रोर साधारण
प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत श्रोर तत्प्रायोग्य संक्रेश
परिणामवाला श्रन्यतर तिर्वश्च श्रोर मनुष्य जीव उक्त प्रकृतियोंके उक्तप्ट स्थितिवन्धका स्वामी
है। तथा श्राहारक श्रीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका
स्वामी श्रोधके समान है। वचनयोगी श्रीर श्रसत्यमृषावचनयोगी जीवोंके इसी प्रकारका
मङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यहाँपर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रोर तत्प्रायोग्य संक्रेश
परिणामवाला श्रन्यतर संज्ञी जीव ऐसा कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोग श्रीर सत्य, श्रसत्य, तथा उभय वचनयोग संज्ञी पञ्चेन्द्रियके होते हैं। तथा सामान्य श्रीर श्रमुभय वचनयोग द्वीन्द्रिय जीवोंसे लेकर होते हैं पर यहाँ उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका विचार चल रहा है, इसलिए इन दोनों वचनयोगोंकी श्रपेचा संज्ञी जीवके हो उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करना चाहिए। यहाँ सब योगोंमें बन्ध १२० प्रकृतियों का ही होता है। शेष विशेषता मृलमें कही ही है।

दृद्धः काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोधके समान है। श्रोदारिककाययोगी जीवोंका भङ्ग मनुष्य पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँपर पञ्चेन्द्रिय संक्षी, मनुष्य श्रोर तिर्यञ्च जीव स्वामी हैं ऐसा कहना चाहिए। श्रोदारि-किमश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुष्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुराइसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात, स्थावर, स्क्ष्म, श्रपर्याप्त, साधारण, श्रस्थिर श्रादिक पाँच, नीच गोच, निर्माण श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत श्रीर उत्कृष्ट संक्षेश परि-

हिदि॰ कस्त॰ १ अएण्दर॰ मणुसस्त वा तिरिक्खस्त वा सागार-जा॰ उक्क॰ संकिलि॰ । देवगदि॰ ४-तित्थयर॰ उक्क॰ हिदि॰ कस्त १ अएण्द॰ सम्मा॰ तप्पाओग्गसंकिलि॰ उक्क॰ संकिलि॰ वष्ट॰ । सेसाणं उक्क॰ हिदि॰ कस्त १ अएण्॰ मणुस॰ तिरिक्ख॰ पंचिदिय॰ सिएण्॰ सागार-जा॰ तप्पाओग्ग- संकिलि॰ । दो आयु॰ मणुसअपज्जत्तभंगो ।

८७. वेडिव्वये पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०अरिद-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खग०-ओरालि०-तेजा-क०-हुंडसंठा०-वगण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जोव०-वादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिरादिपंच०-णिमिण्-णीचागो०-पंचंतराइगाणं उक्क० द्विदि० कस्स० १ अग्णद० देवस्स वा सहस्सारंतस्स
णेरइगस्स वा मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० अथवा ईसिमिङिक्समपरि० ।

णामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। देवगित चतुष्क और तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेश पिरणामवाला अन्यतर सम्यग्दिष्ट औदारिकमिश्रकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश पिरणामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संज्ञी औदारिकमिश्रकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। तथा दो आयुओंका भक्त मनुष्य अपर्याप्तकोंक समान है।

विशेषार्थ—काययोग चारों गितयों में संभव है, इसिलए काययोग में सव प्रकृतियों के उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामित्व श्रोधके समान वन जाता है। श्रोदारिककाययोग तिर्यञ्च श्रोर मनुष्यों के ही होता है, इसिलए इसमें श्रोधके समान सव प्रकृतियों के उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामित्व नहीं प्राप्त होता। श्रतः जिन प्रकृतियों के उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामित्व श्रोधके मनुष्य और तिर्यञ्चों के वा मनुष्यों के कहा है वह तो उसी प्रकार कहना चाहिए श्रोर जिन प्रकृतियों के उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामित्व चार गितके जीवों के कहा है वह देव श्रोर नारकी के न कहकर केवल मनुष्य श्रोर तिर्यञ्चों के ही कहना चाहिए। तथा जिन प्रकृतियों के उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी देव या देव श्रीर नारकी जीव कहा है उनका स्वामी मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चको कहना चाहिए। मात्र उनका इस योगमें श्रादेश उत्कृप्ट स्थितवन्ध होता है इतना विशेष जानना चाहिए। श्रोदारिकमिश्रकाययोग भी मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चके ही होता है। इसमें नरकायु, देवायु, नरकिष्ठक श्रीर आहारकिष्ठिकके सिवा ११४ प्रकृतियों का वन्ध होता है। श्रेष विशेषता मूलमें कही ही है। यहाँ जो खास वात ध्यान देने योग्य है वह यह कि श्रीदारिक मिश्रकाययोग में देवचतुष्कका वन्ध मिथ्यात्व श्रीर सासादनगुणस्थानमें नहीं होता, इसिलिए इनके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामित्व सम्यग्दिष्ट जीवके घटित करके वतलाया है।

८७. वैक्रियिककाययोगमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ग्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, ग्ररित, शोक, भय, जुगुष्सा, तिर्यञ्चगित, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कामेण शरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, उद्योत, वादर, पर्यात, प्रत्येक शरीर, ग्रस्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रथवा श्रथवा श्रथ्य परिणामवाला श्रन्यतर सहस्रार करूप तकका

सादावे०-इत्थिवे॰-पुरिसं०-हस्स-रिद्-मणुसगिद-पंचसंठा०-पंचसंघ०-मणुसाणु०- प्रसत्थिव०-थिरादिछक०-उच्चागी० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अएण० णाणावरण-भंगो । एवरि तप्पाओग्गसंकिलि० ।

द्रातिरिक्लायु॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ ? अएए० देवस्स वा ऐरइगस्स वा मिच्छादि॰ तप्पाओग्गविमुद्ध॰ । मणुसायु॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ ? अएएद॰ देवस्स वा ऐरइगस्स वा सम्मादिद्विस्स वा मिच्छादि॰ तप्पाओग्गविमुद्ध॰ । तित्थयर॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ ? अएएद॰ देवस्स वा ऐरइगस्स वा सम्मादिद्विस्स उक्क॰संकिलि॰ । एइंदि॰-आदाव-थावर॰ देवोघं । पंचिदिय॰-ओरालिय॰-अंगो॰-असंपत्तसेव०-अप्पसत्थवि॰-तस-दुस्सर॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ ? अएएएदर॰ देवस्स सएककुमार याव सहस्सारंतस्स ऐरइयस्स वा मिच्छादि॰ सागार-जा॰ उक्क॰ संकिलि॰ । एवं चेव वेडिव्वयमिस्स० । एविर आयु॰ एत्थि ।

देव अथवा नारकी सिध्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्ध का स्वामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, मनुष्यगित, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, स्थिरादिक छह और उच्च गोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौत है श्रान्यतर ज्ञानावरणका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करनेवाला नारकी और देव जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वैक्रियिक काययोगी जीव इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

द्र तिर्यञ्च श्रायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विश्वद्ध परिणामवाला श्रन्यतर देव श्रौर नारकी मिथ्याद्दष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव तिर्यञ्चायुके
उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विश्वद्ध परिणामवाला श्रन्यतर देव श्रौर नारकी सम्यग्दिष्ट श्रध्यवा मिथ्यादिष्ट वैक्रियिक काययोगी जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट
स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रन्यतर देव श्रौर नारकी
सम्यग्दिष्ट वैक्रियिक काययोगी जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी है । एकेनिद्रय श्रातप श्रौर स्थावर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी सामान्य देवोंके समान है ।
पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसम्प्राप्तासुपाटिका संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित,
त्रस श्रौर दुःखर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है । साकार जागृत श्रौर उत्कृष्ट
संक्लेश परिणामवाला श्रन्यतर सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकका देव श्रौर नारकी
मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है ।
इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुकर्म
का वन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—वैक्रियिक काययोग देव और नारिकयोंके होता है। इसमें वन्धयोग्य प्रकृतियाँ १०४ हैं। इनमेंसे एकेन्द्रिय जाति, ज्ञातप और स्थावर इन तीन प्रकृतियोंका वन्ध नरकगितमें नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी देव ही होता है। शेष सब प्रकृतियोंका वन्ध नारकी और देव दोनोंके होता है। इसलिए उनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी देव और नारकी दोनों प्रकारके जीव कहे हैं। वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें

८६. त्राहार०-त्राहारमि० पंचणा०-छदंसणा०-त्रसादावे०-चदुसंज०-पुरिस०त्ररिद-सोग-भय-दुगुं०-देवगिद-पंचिदिय०-वेडिव्वय०-तेजा०-क०-समचदु०-वेडिव्वयत्रंगो०-वएण०४-[देवगइपात्रोगगागुपुव्वि]-त्रगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-त्रथिर-त्रसुभसुभग-सुस्सर-त्रादे०-त्रजस०-णिमिण-तित्थय०-उच्चागो०-पंचंतरा० उक्क० द्विदि०
कस्स० १ त्रएण० सागार-जा० उक्क० संकित्ति०। सादावे०-हस्स-रिद०-थिर-सुभजस० उक्क० द्विदि० कस्स० १ त्रएण० सागार-जागार० तप्पात्रोगगसंकित्ति०।
देवाउ० उक्क० द्विदि० कस्स०। त्रपणद० पमत्तसंज० सागार-जा० तप्पात्रोगगविसुद्ध०।

६०. कम्मइग० पंचणा०-णवदंसणा०-ग्रसादा०-भिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खग०-ग्रोरा्लि०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरि-

श्रायुवन्ध नहीं होता, इसलिए पूर्वोक्त १०४ प्रकृतियों मेंसे तिर्यञ्चायु श्रोर मनुष्यायु इन दो श्रायुश्रोंको कम कर देने पर वन्ध योग्य कुल प्रकृतियाँ १०२ शेष रहती हैं। इनका वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें वन्ध होता है। शेष सव विशेषता मूलमें कही ही है।

प्रश्नाहारककाययोग श्रीर श्राहारक मिश्रकाययोगमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चे न्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगित, श्रस चतुष्क, श्रस्थिर, श्रग्धुभ, सुभग, सुखर, श्रादेय, श्रयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है । साकार जागृत श्रीर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । साकार जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है । साकार जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है । साकार जागृत श्रीर तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—प्रमत्तसंयत जीवने ६३ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। ग्राहारक काययोग ग्रीर ग्राहारक मिश्रकाययोग छुटें गुणस्थानमें ही होते हैं, इसिलए इनमें भी इन्हीं ६३ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। उसमें भी इन दोनों योगोंमें किन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी कीन है यह सब विशेषता मूलमें कही ही है। ग्राहारक मिश्रकाययोगमें श्रायुवन्ध नहीं होता यह वात गोम्मटसार कर्मकाएड गाथा ११-में कही है पर यह वात वहाँ किस आधारसे कही गई है यह स्पष्ट नहीं होता। महावन्ध मूल ग्रन्थ है। इसमें तो सर्वंत्र ग्राहारकमिश्रकाययोगमें श्रायुवन्धका निर्देश किया है। यही कारण है कि यहाँ भी देवायुके उत्कृष्ट स्थितबन्धका स्वामित्व दोनों योगवाले जीवोंके कहा है।

९०. कार्मणकाययोगमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ग्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, ग्ररति,शोक, भय,जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, ग्रौदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, हुगडसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, ग्रगुरुलघु, उपघात,

१, संकिलि॰ देवगदि॰ ४ उक्त॰ इति पाठः।

क्लाणु॰-ग्रगु॰-उप०-ग्रथिरादिपंच-िष्णिमण-णीचागोद-पंचंतरा॰ उक्क० हिदि॰ कस्स० १ ग्रग्ण॰ चढुगदियस्स पंचिदियस्स सिष्णस्स मिच्छादि॰ सागार-जा॰ उक्क॰ संकिलि॰। सादावे॰-इत्थि॰-पुरिस॰-हस्स-रिद-मणुसगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-मणुसगदिपात्रोग्ग॰-पसत्थवि॰-थिरादिछक्क-उच्चागो॰ उक्क० हिदि॰ कस्स॰ १ ग्राण्यद॰ चढुगदियस्स पंचिदियस्स सिण्णस्स मिच्छादि॰ सागार-जा० तप्पात्रो० संकिलि॰।

ह१. देवगदिचदु॰ उक्क॰ द्विदि० कस्स० १ अग्ण॰ दुगदियस्स सम्मादिद्विस्स सागार-जा॰ उक्क० संकिलि॰ । तित्थय॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स० १ अग्णद॰ तिग-दियस्स सम्मादि॰ सागार-जा॰ उक्क० संकिलि॰ । एइंदिय॰-आदाव-थावर॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ १ अग्ण॰ ईसाणंतदेवस्स सागार-जागार॰ उक्क॰ संकिलि॰ । ग्विदि॰-थावर॰ तिगदियस्स ति भाणिदव्वं । वीइंदि॰-तीइंदि०-चदुरिंदि॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ १ अग्णद० तिरिक्तस्स वा मग्रुसस्स वा सागार-जा॰ तप्पाओ॰संकिलि॰ । पंचिदि॰-ओरालि॰अंगो॰-असंपत्तसेव०-अप्पतत्थ०-तस-दुस्सर॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स० १ अग्ण॰ देवस्स वा सहस्सारगस्स ग्रेरइगस्स वा

ग्रस्थिर ग्रादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र ग्रौर पाँच ग्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका का स्वामी कौन है ? साकार जागृत ग्रौर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला ग्रन्यतर चारगितका पञ्चेन्द्रिय संक्षी मिथ्यादृष्टि कामेणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, मनुष्यगित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगित, स्थिरादिक छह ग्रौर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत ग्रौर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला ग्रन्यतर चार गितका पञ्चेन्द्रिय संक्षी मिथ्यादृष्टि कामेणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

९१. देवगित चतुष्कके उत्छष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृत श्रौर उत्छप्ट संक्लेश पिरणामवाला अन्यतर दो गितका सम्यग्दिष्ट कार्मणुकाययोगी जीव उक्ष प्रकृतियोंके उत्छप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । तीर्थंद्धर प्रकृतिके उत्छप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृत श्रौर उत्छप्ट संक्लेश पिरणामवाला अन्यतर तीन गितका सम्यग्दिष्ट कार्मणुकाययोगी जीव तीर्थंद्धर प्रकृतिके उत्छप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । एकेन्द्रियजाति, आतप श्रौर स्थावर प्रकृतिके उत्छप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृत श्रौर उत्छप्ट संक्लेश पिरणामावाला अन्यतर ऐशान कल्पतकका देव उक्ष प्रकृतिके उत्छप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय श्रौर स्थावर प्रकृतिके उत्छप्ट स्थितिवन्धका स्वामी तीन गितका जीव है यहाँ कहना चाहिए । द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति श्रौर चतुरिन्द्रिय जातिके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत श्रौर तत्यायोग्य संक्लेश पिरणामवाला अन्यतर तिर्थञ्च और मनुष्य कार्मणुकाययोगी जीव उक्ष प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । पञ्चेन्द्रियजाति, श्रौदारिक श्रांगोपांग, असम्प्रातास्रपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगिति, त्रस श्रौर दुस्वर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत श्रौर उत्कृप्ट संक्लेश पिरणामवाला अन्यतर सहस्रार कल्पका देव श्रौर नारको मिथ्यादिष्ट कार्मण कार्मणी जीव उक्ष प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितवन्धका स्वामी है ।

मिच्छादि॰ सागार॰-जा० सडकस्ससंकित्ति॰। पर॰-उस्सा०-उज्जोव-वादर-पज्जत-पत्तेयसरी॰ उक्क० हिदि० कस्स० १ अएणद० देवस्स वा गोरइयस्स वा सागार-जा॰ उक्क॰ संकित्ति॰। सुहुम॰-अपज्ज०-साधार० उक्क॰ हिदि० कस्स० १ अएणद० मणुसस्स वा तिरिक्षस्स वा पंचिदि० सिएण॰ मिच्छादि॰ सागार-जा॰ उक्क० संकित्ति॰।

६२. इत्थिवे॰ पंचणा॰-णवदंस॰-असादावे॰-मिच्छत्त-सोलसक॰-णवुंसग॰अरिद-सोग-भय-दुगुं॰-तेजा॰-क॰-हुंढसं॰-वर्गण॰४-अगुरु०४-वादर-पज्जत्त-पत्तेय॰अथिरादिपंच-णिमिण-णीचागो-पंचंत॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स० १ अर्गण॰ तिगदियस्स
सिर्णस्स मिच्छादि० सागार-जा॰ उक्क॰ संकिलि॰ अथवा ईसिमिङ्मिमपिरणामस्स । सादावे॰-इत्थि-पुरिस॰-इस्स-रिद-मणुसगिद-पंचसंठा०-ओरालि॰अंगो०छस्संघ०-मणुसाणु०-पसत्थवि॰-थिरादिछक्क-उचा॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स० १ अग्णा॰
तिगदियस्स सिर्णस्स सागार-जा॰ तप्पाओ॰ उक्क०संकिलि॰।

६३. णिरयायु० उक्क० हिदि० कस्त० १ अग्रण० मणुसस्त वा तिरिक्ख-जोणिणियस्स वा सिरण्स्स मिच्छादि० सागार-जा० तप्पात्रोग्गसंकित्ति० उक्कस्ति-

परघात, उच्छ्वास, उद्योत, वादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संफ्लेश परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी कार्मणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्षेश परिणामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संक्षी और मिथ्यादिष्ट कार्मणका-ययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है।

विशेषार्श—कार्मणकाययोगमें चारों श्रायु, नरकद्विक श्रोर श्राहारकद्विक इन ८ प्रकृतियोंके सिवा ११२ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। शेष विशेषता मूलमें कही ही है।

९२. स्निवेदमें पाँच द्यानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, अरित, शोक, भय, जुगुण्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका संश्री मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, मनुष्यगित, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, स्थिर आदिक छह और उच्च गोत्रके उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका संशी स्त्रीवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी है।

९३. नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट त्र्यावाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें विद्यमान अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्चयोनि संज्ञी मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीव नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । इसी प्रकार तिर्यञ्चायु श्रोर मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी जानना चाहिए । इसनी

याए त्रावाधाए उक्तस्सिटिदि० वट्ट०। एवं तिरिक्ख-मणुसायूणं। गावरि तप्पात्रोग्ग-विसुद्धस्स त्ति भाणिदव्वं। देवायुग० उक्क० द्विदि० कस्स० १ अग्णद०, पमत्त-संजद० तप्पात्रोग्गविसुद्धस्स उक्कस्सियाए आवाधाए उक्क० द्विदि० वट्ट०।

हथ्य. णिरयगदि-पंचिदियजादि—वेडिव्व०-वेडिव्व०अंगो०--णिरयाणु०-अण-सत्थिवहा०-तस-दुस्सर० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसस्स वा तिरिक्खस्स वा सिण्णस्स सागार-जा० उक्क० संकित्ति० अथवा ईसिमिं भिमपिर० । तिरिक्ख-गदि-एइंदि०-ओरालि०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-थावर० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अण्णदरीए सोधम्मीसाणंताए देवीए मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकित्ति० अथवा ईसिमिं भमपिरणा० । देवगदिदुग-तिण्णिजादि०-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अण्णदरीए मणुसिणीए वा तिरिक्खिणीए वा सण्णीए मिच्छादि० तप्पाओग्गसंकित्ति० । आहार०-आहार०अंगो० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्तसंजद्रस्स सागार-जा० उक्कस्ससंकित्ति० पमत्ताभिमुहस्स । तित्थयर० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसीए असंजद्सम्मिद्दिण सागार-जा० उक्कस्स-संकित्ति० । [एवं चेव पुरिसवेदे । ण्विर सगविसेसो जाणिय भाणिद्व्यो ।

विशेषता है कि तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला स्त्रोवेदी जीव इन दोनों श्रायुश्रोंके उत्रुष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है ऐसा यहाँ कहना चाहिए। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला श्रोर उत्कृष्ट श्रावाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें विद्यमान श्रन्यतर प्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है।

६४. नरकगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, चैिक्रयिक शरीर, चैिक्रयिक श्राङ्गोपाङ्ग, नरकगति प्रायोग्यातुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगति, त्रस श्रीर दुखर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृप्ट संक्लेश परिणामवाला श्रथवा श्रल्प मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर मनुष्य श्रौर तिर्यञ्च संज्ञी स्त्रीवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत श्रौर स्यावर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परि-णामवाली अथवा अल्प मध्यम परिणामवाली अन्यतर सौधर्म और ऐशान कल्पकी देवी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी है। देवगतिद्विक, तीन जाति, स्क्म, श्रपर्याप्त श्रौर साधारण प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका खामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाली श्रन्यतर मनुष्यिनी श्रौर तिर्यञ्चिनी संंशी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका खामी है। ब्राहारक शरीर ब्रीर ब्राहारक ब्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितवन्घकाखामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृप्ट संक्लेश परिणामवाला श्रीर प्रमत्त संयत गुणस्यानके श्रभिमुख हुश्रा श्रन्यतर श्रप्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव उक्त दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है तीर्थं कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी कौन है ? साकार जागृत श्रौर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रन्यतर मनुष्यिनी श्रसंयत सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थिति-वन्यका स्त्रामी है। इसी प्रकार पुरुषवेदमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी विशेषता जानकर कथन करना चाहिए।

विशेषार्थ स्त्रीवेदमें श्रोघके समान १२० प्रकृतियोंका वन्ध होता है। मात्र नार्कियोंमें

६५. एवं सगवेदे पंचणाणा॰-णवदंसणा॰-श्रसादा॰-मिच्छत्त-सोलसक०-णबु'सगवे॰-त्ररदि-सोग-भय-दुगु'छा-तेजा०-कम्म०-हु'ड०-वगण्०४-त्रगुरु०४-बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-श्रथिरादिपंच-िएमिएा-एीचागो०-पंचंत० **उक्क** ० हिदि० कस्स १ त्ररण् मणुस्सस्स वा तिरिक्लस्स वा वे गेरइयस्स वा पंचिदियस्स सण्णिस्स हिदि॰ कस्स॰ १ त्राएणद॰ मणुसस्स वा तिरिक्खस्स वा पंचिदि॰ सिएणस्स मिच्छा टि॰ सागार-जा० सजकस्ससंकिलि० 1 तिरिक्खगदि-श्रोरालि०-त्रोरात्ति०अंगो०-असंपत्तसेवद्ट०-तिरिक्त्वाणु०-उज्जोव० उक्क० द्विदि० कस्स० १ अएएद॰ ऐरइय॰ मिच्छादि॰ सागार-जा॰ उक्क०संकित्ति० अथवा इसिमिन्सिम-परिणा॰ । देवगदि-एइंदिय-वीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय०-देवाणुपु०-म्रादाव-थावर-मुहुम०-अपज्ज०-साधार० उक्क० हिदि० कस्स० ? अएए।० मणुस०ं तिरिक्ख० पंचिंदि॰ सिएए॰ मिच्छादि॰ सागार-जा॰ तप्पाञ्रोग्गसंकिलि॰। सेसाएां पग-दीणं मूलोघं।

नपुं सकवेदका उदय नहीं होता इसलिए इनके सिवा शेष तीन गतिके जीव जहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध सम्भव है, यथायोग्य स्रोवेदमें उत्कृष्ट स्थितवन्धके स्वामी कहे गये हैं। पुरुषवेदका उदय भी नारिकयोंके नहीं होतो, इसलिए इनमें भी स्रोवेदी जीवोंके समान शेष तीन गतिके जीव सब प्रकृतियोंके यथायोग्य उत्कृष्ट स्थितबन्धके स्वामी हैं। अन्तर इतना है कि स्रोवेदके स्थानमें इनमें पुरुषवेद कहना चाहिए। तथा अन्य विशेषताएँ भी विचारकर उत्कृष्ट स्थामित्वका कथन करना चाहिए।

९५. नपुंसक वेदमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ग्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुएड-संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, श्रस्थिर श्रादि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? कोई एक मनुष्य, तिर्यञ्च या नारकी जो पञ्चेन्द्रिय है, संशी है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है श्रीर उत्कृप्ट स्थितिबन्ध कर रहा है वह उक्ष प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। साता श्रादिका इसी प्रकार है। नरकगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत ग्रौर ग्रपने योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला ग्रन्यतर मनुष्य ग्रौर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संशी मिथ्यादि नपुंसक वेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी.है। तिर्यञ्चगति, श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिकशरीर श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसम्प्राप्तास्पाटिकासंहनन, तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, श्रौर उद्योत प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृप संक्लेश परिणामवाला श्रथवा श्रल्प मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर नारकी मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, त्र्रोतप, स्थावर, सूक्ष्म, श्रपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत ग्रौर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिगामवाला ग्रन्यतर मनुष्य ग्रौर तिर्यञ्च पञ्चे-न्द्रिय संशी मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

६६. अवगदवे० पंचणा०-चढुदंस०-सादावे०-चढुसंज०-जसगित्ति०-उचागो०-पंचंत० उक्क० द्विदि० कस्स० १ अएण० उवसमादो परिवदमाणस्स अणियद्विवादर-सांपराइयस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति एावुंसगवेदाणुविहस्स ।

१७. कोधादि भूलोघं । यदि-सुद० मूलोघं । एवरि देवायु० उक्क० हिदि० कस्स० ? अएएएद० मणुसस्स वा मणुसिणीए वा सागार-जा० तप्पाश्रोग्गविसुद्धस्स । विभंगे मूलोघं । देवायु० मदि०भंगो ।

हदे. श्राभि०-सुद०-श्रोधि० पंचणा०-झदंस०-श्रसादा०-वारसक०-पुरिस०-श्ररिद-सोग-भय-दुर्गु-पंचिदिय०-तेजा०-क०-समचदु०-वएण्०४-श्रगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-श्रथिर-श्रस्रभ-सुभग--सुस्सर--श्रादे०-श्रजस०-णिमिण्-उच्चागो०-पंचितरा० उक्क० हिदि० कस्स० १ श्रगणद० चदुगदियस्स श्रसंजदसम्मादिहिस्स सागार-जा० उक्क०संकिलि० मिच्छत्ताभिग्रहस्स चरिमे वदृमाण्यस्स । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-

विशेषार्थ— नपुंसक वेद तीन गतियोंमें होता है मात्र देव नपुंसक नहीं होते। इसिलए यहाँ तीन गतियोंकी श्रपेक्षा नपुंसकवेदमें जहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव है उसका निर्देश किया है। नपुंसकवेदमें भी १२० प्रकृतियोंका वन्ध होता है यह स्पष्ट ही है।

९६, श्रपगतवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संन्वलन, यशःकीर्ति, उचगोत्र श्रौर पांच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्य-तर नपुंसक वेदसे उपशम श्रेणो पर चढ़कर गिरनेवाला श्रनिवृत्ति वादर साम्परायिक जीव जो तदनन्तर समयमें सवेदी होगा वह श्रपगत वेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-वन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें उक्त २१ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। फिर भी वह नपुंसकवेदसे उपशम श्रेणीपर चढ़कर गिरनेवाले अनिवृत्ति जीवके सवेदी होनेके पूर्व समयमें होता है, क्योंकि नपुंसकवेदका उपशम सर्वप्रथम और उदय अन्य वेदोंकी अपेक्षावाद में होता है, इसलिए इस वेदसे अवेदी हुए जीवके सवेदी होनेके एक समय पूर्व अन्य वेदोंसे अवेदी हुए जीवकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव है।

९७. क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी श्रोधके समान है। मत्यज्ञानी श्रोर श्रुताज्ञानी जीवोंमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धके स्वामीका भङ्ग मूलोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत श्रोर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला श्रन्यतर मनुष्य श्रोर मनुष्यवानी, मत्यज्ञानी श्रोर श्रुताज्ञानी जीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। विभङ्गज्ञानमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी मूलोधके समान है। देवायुका मङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

९८. श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, वारह कषाय, पुरुषवेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुष्सा, पञ्चेन्द्रियज्ञाति,
तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगित, त्रसचतुष्क, श्रस्थिर, श्रश्चम, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, श्रयशःकीर्ति, निर्माण, उचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरांय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत,
उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला भिथ्यात्वके श्रभिमुख श्रन्तिम समयमें विद्यमान श्रन्यतर चार

१. मुलप्रती कोडाकोडी मूलोघं इति पाठः।

स्रुभग-जसिंग॰ उक्क॰ द्विदि॰ कस्स॰ ? अएणद॰ चढुगिद्यस्स असंजदसम्मादि॰ सागार-जागार॰ तप्पात्रोग्गसंकिलि॰ सत्थाणे वट्टमाणयस्स ।

६६. देवायु० त्राहार०-त्राहार०त्रंगो० तित्थयरं च त्रोघं। मणुसायु० उक्क० हिदि० कस्स० १ अएण० देवस्स वा णेरइयस्स वा त्ति भाणिद्ववं। मणुसगदिअोरालिय०-त्रोरालिय०अंगो०-वज्जरिस०-मणुसाणु० उक्क० हिदि० कस्स० १
अएण्दर० देवस्स वा णेरइगस्स वा सागार-जा० उक्क०संकिलि० मिच्छताभिग्रहस्स चरिमे उक्कस्सए हिदि० वट्टमाण्यस्स । देवगदि०४ उक्क० हिदि० कस्स० १ अएण० असंजदसम्मादि० तिरिक्लस्स वा मणुसस्स वा सागार-जा० उक्क०संकिलि० मिच्छत्ताभिग्रहस्स।

गतिका श्रसंयत सम्यग्दिए जीव उक्त प्रकृतियोंके उक्तए स्थितवन्धका स्वामी है। सातावेद्निय, हास्य, रित, स्थिर, सुभग श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रम्यतर जो चार गतिका श्रसंयत सम्यग्दिए है, साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परि-णामवाला है श्रीर स्वस्थानमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

९९. देवायु, श्राहारक शरीर, श्रहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी श्रोधके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी है 'ऐसा यहाँ कहना चाहिए। मनुष्यगित, श्रोदारिक शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वन्नपंभनाराचसंहनन श्रोर मनुष्यगित प्रायोग्यानुपूर्वी इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी कौन है? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, मिथ्यात्वके श्रमिमुख है श्रोर श्रन्तिम उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी है। देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी कौन है? श्रन्यतर श्रसंयत सम्यग्दिष्ट, तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है श्रीर मिथ्यात्वके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—तीन श्रज्ञानों श्राहारकद्विक श्रौर तीर्थद्वर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। इनके सिवा १९० प्रकृतियोंका बन्ध होता है पर देवायुके सिवा इन सबका श्रोध उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मिथ्यादृष्टिके ही होता है इसिलए इनमें देवायुके सिवा शेष ११६ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी श्रोधके समान कहा है। देवायुका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें श्रिधकसे श्रिधक स्थितिवन्ध ३१ सागर होता है सो भी वह किसी भी मिथ्यादृष्टिके नहीं होता किन्तु परम विशुद्ध परिणामवाले द्रन्यित्वज्ञी साधुके होता है, इसिलए देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके सम्बन्धमें इतनी विशेषताजाननी चाहिए। श्राभिनिबोधिक ज्ञान श्रादि तीन सम्यग्रज्ञानों श्रे श्राहारकद्विकको मिलाकर श्रविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें वन्धको प्राप्त होनेवाली ७० प्रकृतियोंके साथ कुल ७९ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। सो इनमेंसे श्राहारकद्विकके सिवा श्रोष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व श्रविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जानना चाहिए। मात्र श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व श्रविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जानना चाहिए। मात्र श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व श्रविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जानना चाहिए। मात्र श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व श्रवादके सम्मुख हुए श्रवमत्त संयत जीवके उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके होने पर होता है। श्रेष विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है।

- १००. मण्पज्जवणाणीम् पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चहुसंज०-पुरिसवे०अरिद-सोग-भय-दुगुं०-देवगिद-पंचिदि०-वेडिव्वय०-तेजा०-क०-समचदु०-वेडिव्व०अंगो०-वण्ण०४-देवाणुपु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-अम्भ-सुभग-सुस्सरआदे०-अजस०-णिमिण-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० हिदि० कस्स० १ अण्ण० पमत्तसंजदस्स सागार-जा० उक्क० संकित्ति० उक्कस्सण् हिदिवंघे वद्टमाणस्स असंजमाभिम्रहस्स चरिमे उक्कस्सण् हिदिवं०। सादावे०-हस्स-रिद-थिर-सुभ-जसगित्ति०
 उक्क० हिदि० कस्स० १ अंग्र्णा० पमत्तसंज० सत्थाणे सागार-जा० तप्पात्रोग्गसंकित्ति०।
- १०१. देवायु॰-आहार॰-आहार॰अंगो०-तित्थयरं उक्क॰ हिदि० कस्स० १ पमत्तसंजदस्स सागार-जा॰ उक्क० संकिलि० असंजमाभिग्रहस्स चरिमे उक्कस्सए हिदि-वंधे वह्माणयस्स । एवं संजमाणुवादेण संजद॰-सामाइ०-छेदो० । णवरि पढमदंडओ मिच्छात्ताभिग्रहस्स । परिहारस्स वि तं चेव । णवरि सव्वाओ पगदीओ उक्कस्स संकिलि॰ सामाइय-छेदोव०अभिग्रहस्स भाणिदव्वं ।
- १००. मनःपर्ययहानी जीवोंमें पाँच हानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, श्ररित, श्रोक, भय, जुगुष्सा, देवगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैकियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ण-चतुष्क, देवगित प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, श्रस्थिर, श्रश्चभा, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, श्रयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, उत्कृष्ट स्थितवन्ध कर रहा है, श्रसंयमके श्रिममुख है श्रीर श्रन्तम उत्कृष्ट स्थितवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । साता वेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, श्रुम श्रीर यशःकीर्ति इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो स्वस्थानमें श्रवस्थित है, साकार जागृत है श्रीर तत्नायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है ।
- १०१. देवायु, ब्राहारक श्रार, ब्राहारक ब्राङ्गोपाङ्ग ब्रोर तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, असंयमके ब्रामिमुख है ब्रोर ब्रान्तम उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार संयम मार्गणाके ब्रमुवादसे संयत, सामायिक संयत ब्रोर छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डककी कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी यह जीव मिथ्यात्वके ब्रामिमुख होने पर होता है। परिहारिवशुद्धिसंयत जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला हो ब्रोर सामायिक छेदोपस्थापनाके ब्रामिमुख हो वह सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए।

- १०२. सुहुमसंपरा० पंचणा०-चढुदं०-सादावे०-जसगि०-ज्ञागो०-पंचंतरा० ज्क० हिदि० कस्स० ? अएण० ज्वसामगस्स परिवदमाणस्स से काले अणियही होहिदि ति ।
- १०३. संजदासंजद॰ पंचणा०-छदंसणा०-ग्रसादा०-ग्रहक०-पुरिस०-ग्ररहि-सोग-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिदिय०-वेडिव्वय०-तेजा०-क०-समचदु०--वेडिव्व०भ्रंगो०-वरण०४-देवाणु०-त्रगु०४-पसत्थवि०--तस०४--ग्रथिर--ग्रमुभ-सुभग-सुस्तर-ग्रादे०-ग्रजस०-णिगिण-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० द्विदि० कस्स० १ ग्रएण० तिरिक्त० मणुस० सागार-जा० उक्क० संकित्ति० मिच्छत्ताभिग्रहस्स । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जसिग० उक्क० द्विदि० कस्स० १ ग्रएण० सत्थाणे तप्पात्रोग्गसंकित्ति०। देवायु० उक्क० द्विदि० कस्स० १ ग्रएण० तिरिक्त० मणुस० तप्पात्रोग्गविसुद्ध०। तित्थय०

विशेपार्थ—मनःपर्ययद्यानमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें वन्धको प्राप्त होनेवाली ६३ प्रकृतियाँ ग्रीर ग्राहारकद्विक इन ६४ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामी संवंधी विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है। संयत, सामायिकसंयत ग्रीर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके कथनमें मनःपर्ययद्यानीके कथनसे कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि ये भी छठे गुणस्थानसे होते हैं। मात्र मनःपर्ययद्यानमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका कथन करते समय ग्रसंयमके सम्मुख होने पर ऐसा कहे ग्रीर उक्क संयमोंमें मिथ्यात्वके सम्मुख होने पर ऐसा कहे। कारण स्पष्ट है। परिहारविशुद्धिसे च्युत होकर जीव सामायिक या छेदोपस्थापनाको प्राप्त होता है, इसलिए इसमें प्रथम दण्डकके स्वामीका कथन करते समय इन दोनों संयमोंके सम्मुख हुए जीवके उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिए।

१०२. सूदमसाम्परायसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता चेद-नीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर उपशामक जीव जो उपशम श्रेणिसे गिर रहा है और तदनन्तर समयमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त होगा वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका खामी है।

१०३. संयतासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठ-कपाय, पुरुषवेद, अरित, शोक, भय, जुगुष्ता, देवगित, पञ्चेन्द्रिय जाित, वैकियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ण चतुष्क, देवगित प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, अस चतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुमग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीित, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है वह जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, शुभ, यशःकीित इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर संयतासंयत जोव जो स्वस्थानमें अवस्थित है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो साकार है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो साकार

उक्क० हिदि० कस्स० १ अएण० मणुसस्स सागार-जा० उक्क० संकिलि० असंजमा-भिग्रहस्स । असंजद० मूलोघं । एवरि देवायु० यदि०भंगो ।

१०४. चक्खु॰-श्रचक्खु॰ मूलोघं । श्रोधिदं॰ श्रोधिणाणियंगो ।

१०५. किर्गणाए गावुंसगर्भगो । गाविर देवायु० एक० हिदि० कस्स० ? अग्गण मिच्छादि० सागर-जा० तप्पाओग्गविसुद्धस्स । ग्णील-काऊगं पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-भिच्छत्त-सोलसक० एवं तिरिक्खगदिसंजुत्ताओ सन्वाओ एक० हिदि० कस्स० ? अग्ण० गोरइय० मिच्छादि० सागार-जा० एक० हिदि० संकिलि०। सादादीगं पि तं चेव भंगो । गाविर तप्पाओग्गसंकिलि० । आयुणि ओघं । गाविर

जागृत है, उत्कृप्ट संक्लेश परिणामवाला है श्रीर श्रसंयमके श्रिभमुख है वह तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। श्रसंयत जीवोंमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी मूलोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवायुका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

विशेषार्थ — सूक्ष्म साम्परायसंयत जीवोंमें जो उपशम श्रेणिसे उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय संयत होते हैं श्रोर उसमें भी जो अनन्तर समयमें अनिवृत्तिकरणको प्राप्त होते हैं उनके ही वहाँ वँघनेवाली प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव होनेसे ऐसे जीव ही उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव होनेसे ऐसे जीव ही उत्कृष्ट स्थितिवन्ध से स्वामी कहे हैं। यहाँ कुल १७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है जिनका नाम निर्देश मूलमें किया ही है। संयतासंयत मनुष्य श्रोर तिर्यंच दो गितके जीव होते हैं। यहाँ कुल ६७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है, इसलिए इनमेंसे तीर्थक्कर प्रकृतिको छोड़ कर ६६ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी उक्त दोनों गितयोंका जीव कहा है। मात्र तीर्थकर प्रकृतिका वन्ध तिर्थक्कगतिमें नहीं होता, इसलिए उसके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी मनुष्यगतिका जीव कहा है। उत्कृष्ट स्वामित्वसम्बन्धी शेष विशेषताएँ मूलमें कही ही हैं।

१०४. चक्षुदर्शनी श्रौर श्रचजुदर्शनी जीवोंमें श्राठों कमोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका खामी मृलोघके समान है । श्रविधदर्शनी जीवोंमें श्रविध्वानियोंके समान भक्क है ।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शन श्रीर श्रचक्षुदर्शन वारहवें गुणस्थान तक होते हैं, इसलिए इनमें श्रीघके समान सब श्रर्थात् १२० प्रकृतियोंका वन्ध होता है। श्रवधिदर्शन चौथे गुणस्थानसे वारहवें गुणस्थानतक होता है इसलिए इसमें श्रसंयत सम्यग्दिके वन्धको प्राप्त होनेवाली ७७ श्रीर श्राहारकद्विक इन ७९ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१०५. कृष्णुलेश्यामें नपुंसकवेदियोंके समान भक्क है। इतनी विशेपता है कि इनमें देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी है। नीललेश्या कापोत लेश्यामें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व और सोलह कषाय तथा इसी प्रकार तिर्यञ्चगति संयुक्क सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृष्ट स्थितिवन्धका कर रहा है और संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। साताआदिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। साताआदिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी यही जीव है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला उक्त जीव सातादिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। आयुक्मिकी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। आयुक्मिकी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। विशेषता है कि देवायुके

देवायु० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अएए० मिच्छादि० सम्मादि० सागार०-जा० तप्पा-ओग्गविसुद्ध० । णिरयगदि-वेडिवय०अंगो०-णिरयाणुपु० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अएए० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिलि० । देवगदि-[एइंदि०-वीइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदिय]-जादि-देवाणुपु०-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अएए० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा-दि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । 'णीलाए तित्थयर० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अएए० मणुसस्स तप्पाओग्गसंकिलि० । काऊए णिरयोघं ।

१०६. तेऊए पंचणा०-णवदंसणा०-ग्रसादा०-भिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-त्ररिद-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-एइंदि० याव श्रंतराइग त्ति तिरिक्खग-

उन्हाप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह देवायुके उत्हाप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । नरकगित वैक्षियिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर नरकगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके उत्हाप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है साकार जागृत है श्रौर उत्हृप्ट संक्लेश्परिणामवाला है वह उक्ष प्रकृतियोंके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवगित, एकेन्द्रिय जाति, द्रोन्द्रिय जाति, श्रोन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रियजाति, देवगत्यानुपूर्वी, श्रातप, स्थावर, स्कूम, श्रपर्याप्त श्रौर साधारण प्रकृतियोंके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य जो मिथ्यादृप्ट है, साकार जागृत है श्रौर तत्प्रायोग्य संह्रोश परिणामवाला है वह उक्ष प्रकृतियोंके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । नोललेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । कापोत लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । कापोत लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । कापोत लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । कापोत लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्हृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी नारिकयोंके समान है ।

विशेषार्थ — कृष्ण, नील श्रीर कापोत लेश्या चतुर्थ गुण्स्थान तक होती हैं, इसलिए इनमें श्राहारकद्विकका बन्ध नहीं होता। शेष ११८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। कृष्ण लेश्यामें सब प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी नपुंसकवेदके समान बतलाया है सो इसका कारण यह है कि नपुंसकवेदमें भी देवगतिके सिवा तीन गतिके जीव यथायोग्य उत्कृप्ट स्थितिवन्ध करते हैं श्रीर वही बात यहाँ भी है। मात्र देवायु इसका श्रपवाद है। कारण कि नपुंसकवेद नीवें गुण्स्थान तक होता है, इसिलिए उसमें देवायुका श्रोध उत्कृप्ट स्थितिवन्ध बन जाता है पर कृष्ण लेश्यामें देवायुका श्रोध उत्कृप्ट स्थितिवन्ध सम्भव नहीं है। कारण कि यह लेश्या चौथे गुण्स्थानतक होती है। उसमें भी श्रवरत सम्यग्दिकी अपेत्रा द्रव्यिलङ्गी साधु मिथ्यादिष्टके देवायुका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रीधक होता है, इसिलिए कृष्ण लेश्यामें विग्रद्ध परिणामवाला मिथ्यादिष्टकीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कहा है। नील श्रीर कापोत लेश्यामें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामीका निर्देश मूलमें किया ही है। एक वात यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य है श्रीर वह यह कि नरकगितमें कृष्ण लेश्याके समान नील लेश्यामें भी तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध नहीं होता। इसिलिए इस लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी सम्यग्दिष्ट मनुष्य कहा है।

१०६. पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, आसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित और एकेन्द्रिय जातिसे

१. मूलप्रती णीला च तित्थ- इति पाठः ।

दिसंजुत्तात्रो उक्क० हिदि० कस्त० ? अएए० सोधम्भीसाएंतदेवस्स मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिति० अथवा ईसिमिज्भिमपरिएा० । सादावे०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद-मणुसगिद-पंचिदिय०-पंचसंठाण-ओरालि०अंगो०-छस्संघड०-मणुस०-दोविहा०-तस०-थिरादिछक-दोसर-उच्चागोदा० उक्क० छिदि० कस्स० ? अएए० देवस्स मिच्छादिहि० तप्पाओग्गसंकिति० । तिरिक्खायु० उक्क० हिदि० कस्स० ? अएए० देवस्स मिच्छादिहि० तप्पाओग्गविद्यदस्स । मणुसायु० उक्क० हिदि० कस्स० ? अएए० देव० मिच्छादि० सम्मादिहिस्स वा तप्पाओग्गविद्यद्ध० । देव-गदि०४ उक्क० हिदि० कस्स० ? अएए० पमत्तसंजदस्स तप्पाओग्गविद्यद्ध० । देव-गदि०४ उक्क० हिदि० कस्त० ? अएए० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिति० । आहार०-आहार०अंगोवंग० ओघं । तित्थक० उक्क० हिदि० कस्स० ? अएए० सागार-जा० उक्क०संकिति० । साहि०४ सागार-जा० उक्क०संकिति० । साहि०४ सागार-जा० उक्क०संकिति० सात्थाणे वृहमा० । पम्माए एवं चेव । एवरि याओ देवस्स ताओ सहस्सारभंगो ।

लेकर अन्तराय तक तिर्यञ्चगतिसे संयुक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर सौधर्मश्रौर पेशान कलप तकका देव जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृप्टसंक्लेश परिणामवाला है त्रथवा जल्प मध्यमपरिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। साता वेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुप्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसकाय, स्थिर त्रादिक छह, दो स्वर और उचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर देवंजो मिथ्यादृष्टि है श्रीर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके :उत्कृष्ट स्थिति-वन्घका स्वामी है। तिर्यञ्च श्रायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर देव जो मिथ्यादिए है श्रथवा सम्यन्दिए हैं श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थिति-वन्यका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। देव-गति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य अथवा तिर्यञ्च जो मिथ्याद्दष्टि है, साकार जागृत है श्रीर उक्षष्ट संक्लेश परिणामवाला है वह देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है । श्राहारकश्ररीर श्रीर श्राहारक श्राङ्गोपाङ्गके उक्कष्ट स्थिति-वन्धका स्वामी श्रोधके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितवन्धका कौन है ? श्रन्यतर देव जो ग्रसंयत सम्यग्दिष्टहै, साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिगामवाला है श्रीर स्वस्थान-वर्ती है वह तीर्थं इर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। पद्मलेश्यामें सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिका स्वामी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्घका स्वामी देव है उनका सहस्रार कल्पके समान भङ्ग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पीतलेश्यामें नरकायु, नरकगितद्विक, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरि-निद्रयजाति, सूत्रम, त्रपर्याप्त त्रौर साधारण इन नौ प्रकृतियोंके सिवा शेप १११ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। इस छेश्यामें जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी जो जीव है उसका ऋलग ऋलग निर्देश किया ही है। मात्र तिर्यञ्चगित संयुक्त कहकर जिन प्रकृतियोंका नाम निर्देश

१. मूलप्रतौ मणुस० तिरिक्ख० मिच्छादि० इति पाठः।

१०७. सकाए पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसादा०-भिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०श्ररिद-सोग-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिदियजादि-श्रोरालि०-तेजा०-क०-हुंढसं०-श्रोरालि०श्रंगो०-श्रसंपत्तसेवद्द०-वण्ण०४-मणुसाणु०-श्रगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-श्रथिरादिछक-णिमिण-णीचा०-पंचत० उक्क० द्विदि० कस्स० १ श्राण्ण० श्राणददेवस्स
भिच्छादि० सागार-जा० तण्णा० कक्क०संकिलि० । सादावे०-इत्थि०-पुरिस०-हस्सरिद-पंचसंदा०-पंचसंघ०-पसत्थवि०-थिरादिछक-उच्चागो० उक्क० द्विदि० कस्स० १
श्रण्ण० तस्सेव श्राणददेवस्स तणाश्रोग्गसंकिलि० । मणुसायु० उक्क० द्विदि० कस्स० १ श्रण्ण० तस्सेव श्राण्य० देवस्स मिच्छादि० सम्माभि० तणाश्रोग्गविस्रद्ध० । देवायु० श्रोपं । देवगदि०४ उक्क० द्विदि० कस्स० १ श्रण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० । श्राहार०-श्राहार०श्रंगो० श्रोपं । तित्थयरं तेउभंगो ।

नहीं किया है ने ये हैं—तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियज्ञाति, श्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण् शरीर, हुंडसंस्थान, छह संहनन, वर्णादि चार, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छुास, श्रातप, उद्योत, स्थावर, वादर, पर्यात, प्रत्येक शरीर, श्रस्थिर, श्रग्रुभ, दुर्भग, श्रनादेय, श्रयशःकीर्ति श्रोर नीचगोत्र। यहाँ मूलमें दोनों खरोंका श्रलगसे निर्देश किया है, इसिलए स्थिर श्रादि छहमें निर्माण प्रकृतिकी परिगणना कर लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि पीत-लेश्यामें कुल १९९ प्रकृतियोंका वन्ध होता है, इसिलए दूसरे श्रादि द्रगडकोंमें जिन प्रकृतियों का नामोन्नेख किया है उनके सिवा शेप सव प्रकृतियाँ प्रथम द्रण्डकमें ले लेनी चाहिए। पद्मलेश्यामें पूर्वोक्न ११९ प्रकृतियोंमें से एकेन्द्रिजाति, आतप श्रीर स्थावर इन तीन प्रकृतियोंके कम कर देने पर कुल १०८ प्रकृतियोंका चन्ध होता है। शेप विशेपता मूलमें कही ही है।

१०७, शुक्क लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, श्रौदा-रिक शरीर, तैज्ञस शरीर, कार्मण शरीर, हुंडसंस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रसम्प्राप्तास्पा-टिका संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-चतुष्क, ग्रस्थिरादिक छह निर्माण, नीचगोत्र ग्रौर पाँच ग्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-चन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रानतकल्पका देव जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिगामवाला है वह उक्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, स्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहाः योगति, स्थिर श्रादिक छह श्रीर उचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर वही श्रानत कल्पका देव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियों-के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुक्ते उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? अन्य-तरदेव जोमिथ्यादि है या सम्यग्दि श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिशामवाला है वह मनुष्यायुके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका स्वामी श्रोधके समान है। देव-गतिचतुष्कके उत्कृप्ट स्थितवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर तिर्यश्च यामनुष्यजो मिथ्यादिष्ट है, साकार जागृत है और उत्क्रप्ट संक्लेश परिणामवाला है वह देवगतिचतुष्कके उत्क्रप्ट स्थिति-वन्धका स्वामी है। ग्राहारक शरीर ग्रंर ग्राहारक ग्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी श्रोघके समान है। तीर्थंङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी पीतलेश्याके समान है।

विशेषार्थ-शुक्त छेश्यामें नरकायु, तिर्यञ्चायु, नरकगतिद्विक, तिर्यञ्चगतिद्विक, एके-

१०८. भवसिद्धिया० मूलोघं । अन्भवसिद्धि० मदिय०भंगो ।

१०६. सम्मादि० खइग० श्रोधिमंगो । एवरि खइगे याश्रो भिच्छत्ताभिमुहाश्रो पगदीश्रो श्रसंज० सत्थाणे सागार-जा० तपाश्रोग्गसंकित्ति० । एवं तप्पाश्रोग्ग- संकित्ति० वेदगे श्रोधिमंगो । एवं उवसम० ।

११०. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसादावे०-सोलसक०-इत्थिवे०-श्ररदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्लगदि-पंचिदि०-श्रोरालिय०-तेजा०-क०-मणुसग०-श्रोरालि०-श्रंगो०-सीलियसंघ०-वएण०४-तिरिक्लाणु०-श्रगुरु०४-एज्जोव--श्रप्पसत्थ०-तस०४-- निद्रयज्ञाति, द्रीन्द्रयज्ञाति, श्रोन्द्रयज्ञाति, चतुरिन्द्रयज्ञाति, श्रातप, स्थावर, सूदम, श्रप्यप्ति, साधारण श्रोर नीचगोत्र इन सोलह प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता। कुल १०४ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। शेष विशेषता मूलमें कही ही है।

१०८. भव्य जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामा मूलोधके समान है। तथा ग्रभव्य जीवोंमें मत्यज्ञानियोंके समान है।

विशेषार्थ—भव्यजीवोंमें श्रोघप्ररूपणा श्रोर श्रमव्यजीवोंमें मत्यज्ञानियोंकी प्ररूपणा श्रोविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गणाश्रोंमें श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-वन्धका स्वामी कमसे श्रोघ श्रोर मत्यज्ञानियोंके समान कहा है।

१०९. सम्यग्दिष्ट श्रीर ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट जीवों में सव प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी श्रविध्वानियों के समान है। इतनी विशेषता है कि जो श्रविध्वानी जिन प्रकृतियों के मिध्यात्वके श्रीभमुख होनेपर उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी होता है ज्ञायिकसम्यक्त्वमें उन प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी साकारज्ञागृत श्रीर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला स्वस्थानवर्ती श्रसंयत सम्यग्दिष्ट जीव होता है। इसी प्रकार, वेदकसम्यक्त्वमें श्रविध्वानियों के समान तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला जीव श्रपनी सव प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थिति वन्धका स्वामी होता है। तथा इसी प्रकार उपश्रम सम्यक्त्वमें श्रपनी सव प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी ज्ञानना चाहिए।

विशेषार्थ — पहले अवधिकानी जीवों के ७९ प्रकृतियों का वन्ध होता है यह वतला आये हैं। उन्हों का वन्ध सम्यग्दि और ज्ञायिकसम्यग्दि होता है। तथा और सव विशेषताएँ भी एक समान हैं, इसलिए इन दोनों मार्गणाओं में उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी अवधिकानी जीवों के समान कहा है। मात्र ज्ञायिक सम्यग्दि मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता, इसलिए अवधिकानमें जिन प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामित्व मिथ्यात्वके सन्मुख हुए जीवको प्राप्त होता है उनका स्वामित्व ज्ञायिकसम्यक्त्वमें स्वस्थानवर्ती जीवके कहा है। वेदकसम्यग्दि और अवधिकानी के कथनमें भी कोई अन्तर नहीं है, इसलिए वेदक सम्यग्दि जीवों में भी सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व अवधिकानी जीवों के समान कहा है। उपग्रम सम्यग्दि जीवोंका और सब कथन तो इसी प्रकार है। मात्र इसके मनुष्यायु और देवायुका वन्ध नहीं होता, इसलिए इसके वन्धयोग्य प्रकृतियाँ ७९ के स्थानमें ७९ कहनी चाहिए।

११०. सासादन सम्यक्त्वमें पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, सोलह कपाय, ख्रीवेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुण्सा, तिर्यञ्चगित, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कामणशरीर, मनुष्यगित, श्रौदारिक श्रोङ्गोपाङ्ग, कीलितसंहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चानुप्वी, श्रगुरुलंडचतुष्क, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, त्रसंचतुष्क, श्रस्थिर श्रादिक

श्रिवरादिबक-णिमिण-णीचागो॰-पंचंत॰ उक्क० हिदि० कस्स० १ श्राण् ० चढुग-दियस्स सागार-जा॰ उक्क॰ संकिलि॰ मिच्छत्ताभिग्रहस्स । सादावे॰-पुरिस०-हस्स-रिद-मणुसगदि—चढुसंठा॰-चढुसंघ॰-मणुसाणु॰-पसत्थवि॰-थिरादिछक-उचागो॰ उक्क॰ हिदि॰ कस्स० १ श्रप्ण॰ चढुगदियस्स तप्पाश्रोग्गसंकिलि॰ । तिरिक्ख-मणुसायुग॰ उक्क॰ हिदि॰ कस्स० १ श्रप्ण॰ तिरिक्ख॰ मणुसस्स० तप्पाश्रोग्ग-विग्रुद्ध॰ । देवायु॰ उक्क॰ हिदि॰ कस्स १ मणुसस्स तप्पाश्रोग्गविग्रुद्ध॰ । देवगदि॰४ उक्क॰ हिदि॰ कस्स० १ श्रप्ण॰ मणुस॰ तिरिक्ख॰ सागार-जा॰ तप्पाश्रोग्गसंकिलि॰ ।

१११. सम्मामिच्छादि० पंचणा०-छदंसणा०-असादावे०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगु'०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वएण०४-अगुरु०-४-पसत्थवि०-तस०४-अथर-अग्वभ-ग्रुभग-ग्रुस्सर-आदेज्ज०-अजस०-िएमि०-उच्चा०-पंचत० उक्क० हिदि० कस्स० १ अएण० चदुगदियस्स सागार-जा० उक्कस्ससंकित्ति० मिच्छात्ताभि-ग्रुहस्स । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-ग्रुभ-जसगि० उक्क० हिदि० कस्स १ अएण० चदु-

छह, निर्माण, नीच गोत्र श्रौर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर चारगितका जीव जो साकारजागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश पिरणामवाला है श्रौर मिथ्यात्वके श्रीममुख है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रित, मनुष्यगति, चार संस्थान, चार संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, स्थिर श्रादिक छह श्रौर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर चार गितका जीव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश पिरणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर तिर्वञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य विद्युद्ध पिरणामवाला है वह उक्त दो श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवन्यति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवन्यति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवन्यता है श्रौर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—सासादनगुणस्थानमें जिन १६ प्रकृतियोंकी मिथ्यात्वमें वन्धन्युच्छिति होती है उनका तथा तीर्थंकर श्रीर श्राहारकद्विकका कुल १९ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। श्रेप १०१ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके स्वामी सम्बन्धी विशेषता मुलमें कही ही है।

१११. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, वारह कषाय, पुरुषवेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, असचतुष्क, अस्थिर, अश्चम, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकोर्ति, निर्माण, उचगोत्र और पांच अन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है १ अन्यतर चार गितका जीव जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है वह उक्ष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, शुभ और

गदिय० सत्थाणे वदृमाणयस्य सागार-जा० तप्पात्रोग्गसंकि जि० । देवगदि०४ उक्क० हिदि० कस्स० ? त्र्राण् वितिक्त० मणुस० सागार-जा० उक्क० संकि जि० मिच्छात्ताभिमुह० । मणुसगदिपंच० उक्क० हिदि० कस्स० ? त्र्राण् वेवस्स वा णेरइगस्स वा सागार-जा० उक्क० संकि जि० मिच्छत्ताभिमुह० । मिच्छादिही० मदिय०भंगो । सिण्ण० मण्जोगिभंगो ।

११२. श्रसएणीसु पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसादा०-भिच्छत्त-सोलसक०-णवु'स०-श्ररिद-सोग-भय-दुगु'०-णिरयगिद-पंचिदि०-वेचिवय०-तेजा०-क०-हु'ड-संठा०-वेचिवय०श्रंगो०-वएण०४--णिरयाणु०-श्रगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-श्रथिरादि-छक्क-णिमि०-णीचा०-पंचंत० एक० द्विदि० कस्स १ श्रएण० पंचिदि० सागार-जा० एक०संकिलि०। सेसाणं तप्पाश्रोग्गसंकिलि०। णविर तिणिण श्रायु० तप्पा०

यशःकीर्ति इन प्राकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर चार गितका जीव जो स्वस्थानमें श्रवस्थित है, साकार जागृत है श्रोर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर तिर्थच श्रीर मनुष्य जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है श्रीर मिथ्यात्वके श्रिममुख है वह देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । मनुष्यगितपञ्चकके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । मनुष्यगितपञ्चकके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है श्रीर मिथ्यात्वके श्रिममुख है वह मनुष्यगित श्रादि पांचके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी है । मिथ्यादिष्ट जीवोंमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी मत्यक्षानियोंके समान है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वमें १६ श्रीर सासादनमें २५ की वन्धव्युच्छित्त होती है। ये ४१ प्रकृतियाँ होती हैं। इनमें मनुष्यायु, देवायु, श्राहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृतिके मिलानेपर कुल ४६ प्रकृतियां होती हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुण्स्थानमें इनका वन्ध नहीं होता। शेष ५४ प्रकृतियोंका होता है। इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामित्व सम्यग्मिथ्यात्व गुण्स्थान में किस विशेषताके होनेपर होता है यह मूलमें कहा ही है। देवगित चतुष्कका वन्ध देव श्रीर नारकी नहीं करते, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी तिर्यं श्रीर मनुष्य कहा है। तथा मनुष्यगित पञ्चकका बन्ध मिश्रमें तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी तर्यक्ष श्रीर मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका है। शेष प्रकृतियोंका बन्ध सव गितियोंमें होता है, इसलिए उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी चारों गितके जीव कहे हैं।

११२ श्रसं जीवों में पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगित, पञ्चेद्रिय जाति, वैिकि-यिक श्ररीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुंड संस्थान, वैिकियिक श्राङ्गोपाङ, वर्णचतुष्क, नरकगित्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, श्रस चतुष्क, श्रस्थिर श्रादि छह, निर्माण, नीचगोत्र श्रीर पांच श्रन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर पञ्चे निद्रय जीव जो साकार जागृत है श्रीर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। तथा श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी है। तथा श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला श्रसंभी जीव है। इतनी विशेषता है कि तीन श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला जीव है। श्राहारक

विसुद्धस्स । त्राहार० मूलोघं । त्रणाहार० कम्मइगभंगो । एवं उक्कस्ससामित्तं समत्तं ।

११३. जहएएए पगदं। दुवि ः — ऋोघे० आदे०। श्रोघे० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-जसगि०-उच्चागो०-पंचंत० जहएएए हिदिबंधो कस्स होदि ? अएएदरस्स खवगस्स सुहुमसांपराइगस्स चिरमे जहएएए हिदिबंधे वट्टमाण्यस्स। पंचदंसणा०-मिच्छत्त-बारसक०-हस्स-रिद-भय-दुगुं०-पंचिदि०-श्रोरालिय०-तेजा०-क०-समचदु०-श्रोरालि० अंगो०-वज्जरिसभ०-वएए०४-श्रगुरू०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच-णिमि० जह० हिदि० कस्स० ? अएए० वादरएइंदियस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० सुदोवजोगजुत्तस्स सव्वविसुद्धस्स जहएए०हिदवं० वट्ट०। असादा०-इत्थिवे०-एवुंस०-अरदि-सोग-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-श्रादाव-अप्पसत्थवि०-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार०-अथिरादिछक्क० जह० हिदि० कस्स० ? अएए०

जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोधके समान है श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें श्रपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कार्मण काययोगियोंके समान है।

विशेषार्थ— असंबी जीवोंके आहारिक द्विक और तीर्थं इस्के बिना ११७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। आहारक मार्गणामें सब अर्थात् १२० प्रकृतियोंका वन्ध होता है। और अनाहारक मार्गणामें कार्मणकाययोगके समान ११२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष कथन
स्पष्ट हो है। यहां असंबियोंमें उत्कृष्ट स्थितवन्धकी अपेत्वा पंचेन्द्रयोंकी मुख्यता होनेसे
उन्हें उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कहा है। तिर्यञ्चायु, मजुष्यायु और देवायुका उत्कृष्ट
स्थितवन्ध विशुद्ध परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी विशुद्ध
परिणामवाला जीव कहा है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि तिर्यञ्चायु और मजुष्यायु
का एक पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कहते समय पञ्चेन्द्रिय यह कहनेकी आवश्यकिता नहीं है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

११३. जघन्य स्वामित्वका प्रकरण है। उसकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघकी श्रपेक्षा पांच क्षानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? श्रन्यतर क्षपक जो स्क्ष्मसाम्परायसंयत है श्रीर श्रन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, वारह कषाय, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा पश्चेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कामण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रपेमनाराच संहनन, वर्ण चतुष्क, श्रगुरुक्षधुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर श्रादि पाँच श्रीर निर्माण इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका गति, त्रस चतुष्क, स्थिर श्रादि पाँच श्रीर निर्माण इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रुतोपयोगसे उपग्रुक्त है श्रीर सर्व विद्युद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रुतोपयोगसे उपग्रुक्त है श्रीर सर्व विद्युद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। श्रसाता वेदनीय, स्थिव, स्र्वंद, नपुंसकवेद, श्ररित, श्रोक, चार जाति, पाँच संस्थान, स्वामी है। श्रसाता वेदनीय, स्थिव, त्रपंसकवेद, श्ररित, श्रोक, चार जाति, पाँच संस्थान, स्वामी है। श्रसाता वेदनीय, स्थावर, स्थावर, स्थावर, स्थावर, स्थावर, स्थावर, साधारण श्रीर

वादरएइंदिय० सन्वाहि पज्जत्तीहि सागार-जा० तप्पात्रोग्गविसुद्ध० जह० हिदि० वहमा० । चढुसंज०-पुरिस० जह० हिदि० कस्स ? अएए। खवगस्स अणियहि-वादरसंप० अप्पपणो चिरमे जह० हिदि० वह० । णिरपायु० जह० हिदि० कस्स० ? अएए। पंचिदिय० सिएए। असिएए। सागार-जा० तप्पात्रोग्गविसुद्ध० जहिएएपाए आवाधाए जहएए। हिदि० वहमा० । तिरिक्खायु० जह० हिदि० कस्स ? अएए। एइंदि० वीइंदि० तीइंदि० चढुरिंदि० पंचिदि० सिएए। असिएए। वादर० सुहुम० पज्जत्तापज्जत्त० सागार-जा० तप्पात्रोग्गसंकित्ति० जह० आवाधाए जह० हिदि० वहमा० । एवं मणुसायु० । देवायु० जह० हिदि० कस्स० ? अएए। पंचिदि० सिएए। असिएए। सागार-जा० तप्पात्रोग्गसंकिति० जह० आवाधाए पंचिदि० सिएए। असिएए। सागार-जा० तप्पात्रोग्गसंकिति। जह० आवा। जह० हिदि० वहमा० ।

११४. णिरयग॰-णिरयाणु॰ जह० हिदि॰ कस्स १ अएण्॰ असिएण्स्स सागार-जा० तपाओग्गविसुद्ध० । तिरिक्खग॰-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० हिदि॰ कस्स॰ १ अएण्० वादर॰ तेउ० वाउ॰ पज्जत्तस्स सागार-जा॰ सन्वविसु॰ । मणुसग॰-मणुसाणु॰ जह० हिदि॰ कस्स० १ अएण्० वादरपुढवि० आउ० वादर-

ग्रस्थिर ग्रादि छुह प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर वादर एके-न्द्रिय जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम-वाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। चार संज्वलन श्रीर पुरुपवेद-के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर ग्रनिवृत्ति चपक जो ग्रपने-ग्रपने श्रन्तिम जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितियन्धका खामी है। नरकायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी श्रौर त्रसंज्ञी जो साकार जागृत है, तत्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है श्रीर जघन्य श्रावाधाके साथ जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह नरकायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय श्रौर पञ्चेन्द्रिय संशी या श्रसंशी, वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त या श्रपर्याप्त जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है श्रोर जघन्य आवाधाके साथ जघन्य स्थिति-बन्ध कर रहा है वह तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार उक्न जीव मनुष्यायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? ग्रन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी या ग्रसंज्ञी जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है ग्रौर जघन्य ग्राबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह देवायुके जंघन्य स्थिति-वन्धका स्वामी है।

११४. नरकगित और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर असंबी जो साकार जागृत है और तत्यायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त दो प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीच, गोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर अग्निकायिक पर्याप्त और वादर वायुकायिक पर्याप्त जो साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितियन्धका स्वामी है। मनुष्यगित और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य

वर्णांफदि॰ पंज्ञत्त॰ सागार-जा॰ सन्विवसुद्ध० जह॰ हिदि॰ वृहमा० । देवगदि०४ जह॰ हिदि॰ कस्स० १ अएए। असिएए। सागार-जा॰ सन्विवसुद्ध० जह॰ हिदि॰ कस्स० १ अएए। अहिर वृहमा॰ । आहार॰-आहर०अंगो॰-तित्थय॰ जह॰ हिदि॰ कस्स० १ अएएएद० अपुन्वकरणस्ववंगस्स प्रभवियणामाएं चिर्मे जह॰हिदिवंधे वृहमाण्यस्स ।

स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त श्रीर बादर वनस्पितकायिक पर्याप्त जो साकार जागृत है, सर्वविद्युद्ध है श्रीर जधन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह मनुष्यद्विकके जधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। देवगित चतुष्क के जधन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रसं हो जो साकार जागृत है, सर्वविद्युद्ध है श्रीर जधन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह उक्त प्रकृतियों के जधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। श्राहारक श्रारीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर तीर्थं कर प्रकृतिके अधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रान्यतक श्ररीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर तीर्थं कर प्रकृतिके अधन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रपूर्वकरण ज्ञयक जो परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियों के श्रान्तम जधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ-यहाँ श्रोघसे किन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है यह वतलाया गया है। वन्ध योग्य कुल प्रकृतियां १२० हैं। उनमेंसे पांच ज्ञान।वरण श्रादि १७ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका वन्ध चपक सङ्मसाम्परायतक होता है इसिछए इनके जघन्य स्थितियनधका स्वामी श्रन्तिम स्थितिबन्धमें श्रवस्थित उक्त जीवको कहा है। चार संज्वलन श्रीर पुरुपवेदका स्थितिवन्ध ज्ञपक श्रनिवृत्तिकरणके श्रपने श्रपने विवज्ञित भाग तक होता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी उक्क जीवको कहा है। श्राहारकद्विक श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिका स्थितिवन्ध चपक अपूर्वकरणके अमुक भागतक होता है इसलिए इनके ज्ञघन्य स्थितिवन्धका स्वामी उक्त जीवको कहा है। इस प्रकार ये सब मिलाकर २४ प्रकृतियाँ हुई। श्रव शेप रहीं चार श्रायुके बिना ९१ प्रकृतियाँ सो इनमेंसे देवगति श्रीर नरकगति सम्बन्धो जो प्रकृतियाँ हैं उनका वन्ध एकेन्द्रिय और विकल्पत्रयके नहीं होता इसलिए उनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी श्रसंशी जीवको कहा है। ऐसी प्रकृतियाँ कुल ६ हैं। वे :ये हैं-नरकद्विक, देवद्विक श्रीर वैक्रियिकद्विक । श्रव शेष रहीं ५४ प्रकृतियां सो यद्यपि इनका जघन्य स्थितिवन्ध वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है पर एकेन्द्रियके श्रनेक भेद होनेसे एकेन्द्रियोंमें भी कौन-सा वादर पर्यप्त जीव किन प्रकृतियोंका ज्ञघन्य स्थितिवन्ध करता है इसका स्वतन्त्र रूपसे विचार किया है। उदाहरणार्थ-श्रीनकायिक श्रीर घायुकायिक जीव मरकर नियमसे तिर्यञ्च ही होते हैं, इसिलए तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत श्रीर श्रातपका जघन्य स्थितिवन्ध वादर श्राग्नका यिक पर्याप्त ग्रीर बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव ही करते हैं। तथा मनुष्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीका वन्घ श्राग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवींके न होनेके कारण इनका ज्ञाचन्य स्थितिवन्ध बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त श्रीर बादर वन-स्पंतिकायिक पर्याप्त जीव करते हैं। यही कारण है कि इन तिर्यञ्चगति श्रादि चार श्रीर मनुष्यगति श्रादि दो प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी पृथक्-पृथक् उक्त जीवोंको कहा है। यद्यपि ग्रग्निकायिक ग्रौर वायुकायिक जीव 'उच्चगोत्रका भी वन्ध नहीं करते पर उद्यगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके न होकर चपक श्रेणिमें होता है इसलिए उसे यहाँ नहीं गिनकर जिन प्रकृतियोंका ज्ञपक सूक्ष्म साम्परायमें जघन्य स्थितिवन्ध होता है

११५. ब्रादेसेण ऐरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-भिच्छत्त-सोलसक०पुरिसवे०-हस्स-रिद-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिदि०-श्रोरालि०-तेजा०-क०-समचदु०श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ०-वएण०४-मणुसाणु०-श्रगुरू०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछक-णिभि०-णीचागो०-पंचंत० जह० द्विदि० कस्स ? श्रएण० श्रसिएणपच्छागदस्स पदम-विदियसमये ऐरइगस्स सागार-जा० सन्वविसुद्ध० जह० द्विदि० वद्द०।
दोश्रायु० जह० द्विदि० कस्स० ? श्रएण० मिच्छादि० तप्पाश्रोग्गसंकिलि० जह० श्रावा० जह० द्विदि० वट्द०। तित्थय० जह० द्विदि० कस्स० ? श्रएण० श्रसंजदसम्मादि० सागार-जा० सन्वविसु०। सेसाणं श्रसिएणपच्छागदस्स पदम-विदियसमए ऐरइगस्स सागार-जा० तप्पाश्रोग्गविसु०। एवं पदमाए।

वहाँ गिन श्राये हैं। श्रव रहीं शेष ७९ प्रकृतियाँ सो इनका वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त किसी भी जीवके उनके ज्ञावस्य स्थितिवन्धके योग्य परिणाम होनेपर ज्ञावस्य स्थितिवन्ध हो सकता है इसिलए इनके ज्ञावस्य स्थितिवन्धका स्वामी वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवको कहा है। चार श्रायुश्रोंमें मनुष्यायु श्रीर तिर्यञ्चायुका ज्ञावस्य स्थितिवन्ध सव प्रकारके तिर्यञ्च श्रीर मनुष्योंके हो सकता है। यही कारण है कि इन दो श्रायुश्रोंके ज्ञावस्य स्थितिवन्धका स्वामी उक्त दो गितका श्रव्यतर जीव कहा गया है। मात्र देवायु श्रीर नरकायुका ज्ञावस्य स्थितिवन्ध पञ्चेन्द्रियसे नीचे किसी भी जोवके नहीं होता। इसिलए इन दो श्रायुश्रोंके ज्ञावस्य स्थितिवन्ध वन्धका स्वामी संशी या श्रसंशी श्रन्यतर जीव कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि मूलमें जो योग्यताएँ कहीं हैं उनके साथ ही ये सव जीव उक्त सब प्रकृतियोंके ज्ञावस्य स्थितिवन्धके स्वामी होते हैं।

११४. ग्रादेशसे नारिकयोंमें पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रपंभनाराच संहनन, वर्णं चतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, श्रेगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर असंशी पर्यायसे आया हुआ नारकी जो प्रथम श्रीर द्वितीय समयमें स्थित है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर जघन्य स्थितिका बन्ध कर रहा है वह उक्क प्रकृतियोंके जग्रन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो श्रायुत्रोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परि-णामवाला है और जघन्य आवाधाके साथ जघन्य स्थितिवन्ध कर रहा है वह दो आयुओंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर श्रसंयत सम्यग्दिए नारकी जो साकार जागृत है श्रीर सबसे विशुद्ध परिणामवाला है वह तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी श्रसंक्षीचर, प्रथम श्रौर द्वितीय समयमें स्थित, साकार जागृत श्रौर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला नारकी जीव है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ-प्रथम नरकमें असंशी जीव मरकर उत्पन्न होता है और इसके उत्पन्न

१. मुलपतौ-पचागदस्स इति पाठः।

११६. विदियाए पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुग्रं०-मणुसग०-पंचिदि०-ञ्रोरालिय०-तेजा०-क०-समचदु०-ञ्रोरालि० ग्रंगो०-वज्जरिस०-वण्ण०४-मणुसाणु०-त्रग्रह०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछक०-णिमि०-ज्ञागो०-पंचंत० जह० द्विदि० कस्स १ अग्रण० असंजद०सम्मा० सागार-जा० सव्विवसुद्धण जह० द्विदि० वह०। एवं तित्थयरस्स वि । थीणगिद्धितय-मिच्छत्त-अ्रणंताणुवंधि०४ जह० द्विदि० कस्स०१ अग्रण० मिच्छादि० सागार-जा० सव्वितसु० सम्मत्ताभिग्र० चिरमे जह० द्विदि० वह०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० द्विदि० कस्स०१ अग्रण० असंजदसम्मादिद्वि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु०। इत्थि०-णानुंस-तिरिक्खग०-पंचसंवा०-पंचसंव०-तिरिक्खाणु०-ज्ञो०-अप्पसत्थवि०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० द्विद० कस्स०१ अग्रण० मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु०। एवं छसु पुढवीसु। एवरि सत्तमाए थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त-अर्णाताणुवंधि४-तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-ज्ञो०-णीचा० जह० द्विद० कस्स०१

होनेके प्रथम श्रीर द्वितीय समयमें श्रसंक्षीके योग्य स्थितिबन्ध होता है। इसीसे यहाँ तीर्थ-क्कर श्रीर दो श्रायुश्रोंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी परि-णामोंकी श्रपनी श्रपनी विशेषताके साथ उक्त जीवको कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

११६. दूसरी पृथिवीमें पाँच शानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, वारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुन्सा, मनुष्यगति, पञ्चिन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस-श्रारीर, कार्मण्शरीर, समचतुरँस संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग,वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्ण-् चतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, उच्चगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्घका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर असंयत सम्यग्दिष्ट नारकी जो साकार जागृत है श्रीर सबसे विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार तीर्थंक्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी जानना चाहिए। स्त्यानगृद्धित्रक, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है, सम्यक्तवके श्रभिमुख है श्रौर श्रन्तिम जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रसाता वेदनीय, श्ररति, शोक, श्रस्थिर श्रग्रुम और श्रयशःकोर्तिप्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रसंयत-सम्यग्हिए जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्शञ्चगित, पाँच संस्थान, पांच संहनन, तिर्राञ्चानुपूर्वी, उद्योत, श्रप्रशस्त विद्यायोगित, दुर्भग, दुस्वर, श्रनादेय श्रौर नीच-गोत्र प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध है श्रौर जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। दो श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी सामान्य नार-कियोंके समाव है। इसी प्रकार छुहों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें स्त्यानगृद्धित्रिक, मिध्यात्व, ग्रनन्तानुवन्धिचतुष्क, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चा-नुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ! अन्यतर मिथ्यादृष्टि

त्राएए॰ मिच्छादि॰ सागार-जा॰ सन्वविसुद्ध॰ सम्मत्ताभिसुह॰ चरिमे जह॰ हिदि॰ वष्टमा॰ ।

११७. तिरिक्तेसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०पुरिस०-हस्स-रिद-भय-दुगुं०-पंचिदिय०-श्रोरात्तिय०-तेजा०-क०-समचदु०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ०-वणण०४-श्रगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०पंचंत० जह० हिदि० कस्स० १ श्रण्ण० वादरएइंदि० सागार-जा० सन्तविसुद्धस्स जह० हिदि० वद्दमा० । सेसं मूलोधं । एवरि उचा० मणुसगदिभंगो ।

जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है, सम्यक्त्वके ग्रिममुख है श्रीर श्रन्तिम स्थितिबन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ-दूसरी आदि पृथिवियोंमें ऋसंज्ञी जीव तो मरकर उत्पन्न होता नहीं, इसलिए यहां ग्रसंशोके योग्य स्थितिवन्ध सम्भव नहीं फिर भी मिण्यात्वकी त्रपेता सम्यक्तवके सद्भावमें स्थितिवन्ध न्यून होता है, इसलिए यहां जिन प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके वन्ध होता है उनका तद्योग्य अवस्थाके होने पर जघन्य स्थितियन्ध कहा है और जिन प्रकृतियां-का सम्यग्दिष्टिके वन्ध नहीं होता उनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी मिथ्यादिष्टको कहा है। एक बात श्रवश्य है कि मिथ्यादृष्टि दो प्रकारके होते हैं-एक स्वस्थान स्थित श्रौर दूसरे सम्यक्तवके ग्रभिमुख । यहां सम्यक्तवसे तात्पर्यं उपशम सम्यक्तवसे है । ग्रागममें उपशम सत्यक्त्वके श्रभिमुख हुए जीवके ३४ वन्घापसरण वतलाये हैं। उनके देखनेसे विदित होता है कि सम्यक्त्वके श्रभिमुख हुए नारकीके स्त्रोवेद, नपु सकवेद, तिर्यञ्चगति, पांच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत, श्राप्रशस्त विहायोगति, दुर्भंग, दुस्वर, श्रानादेय श्रीर नीचगोत्रको वन्धन्युच्छिचि हो जाती है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिवनधका स्वामी स्व-स्थान स्थित मिथ्यादृष्टि कहा गया है श्रौर स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व व अनन्तानुवन्धी चतुष्कका वन्घ सम्यक्तवके श्रिभिमुख हुए नारकीके भी होता रहता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी सम्यक्तवके श्रिभमुख हुश्रा नारकी जीव कहा गया है। मात्र सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रका ही बन्ध होता है, इसिलए इसके सम्यक्त्वके श्रिममुख होनेपर भी इनका वन्ध होता रहता है। यही कारण है कि सातवीं पृथिवीमें सम्यक्तवके श्रमिमुख हुए जीवको मिथ्यात्व, श्रमन्तानुबन्धी चतुष्क, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कहा है। शेष कथन स्पप्न ही है।

११७. तिर्चवोमें पांच बानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, सिध्यात्व, सीलह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुण्सा, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, श्रौदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ज पभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण श्रौर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर वादर एकेन्द्रिय जो साकार जागृत है, सर्वविश्रद्ध है श्रौर जघन्य स्थितवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है। श्रेप प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी मृलोधके समान है। इतनी विश्रेषता है कि इनमें उच्चगोत्रके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी मनुष्यगितके जघन्य स्थितवन्धक स्वामीक समान है।

११८. पंचिंदियतिरिक्ति १ पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलस-क०-पुरिस०-हस्स-रिद्-भय-दुगुं०-देवगिद-पंचिंदि०-वेउिव्व०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउिव्व०-ग्रंगो०-वण्ण०४-देवाणुपु०-अगुरु०४-पसत्थवि० तस०-थिरादि-छक्क-िणिमिण-उच्चा०-पंचंत० जह० द्विदि० कस्स० १ अण्ण० असिण्णि० सागार-जा० सव्वविद्य० जह० द्विदि० वहमा०। णिरय-देवायु० ओघं। तिरिक्त-मणुसायु० जह० द्विदि० कस्स० १ अण्ण० सिण्ण० असिण्ण० पज्जत्तापज्जत्त० तप्पाओगा-संकिति० जह० [यावा०]। सेसाणं सो चेव सामीओ सागार-जा० तप्पाओगा-विद्य० जह० द्विदि० वह०।

११६. पंचिंदियतिरिक्तत्रपज्जत्तेस्य पंचणा०-णवर्दस०-सादावे०-मिच्छत्त-सोल-

विशेषार्थ—पहले श्रोघसे सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश कर श्राये हैं। वहां जिन प्रकृतियोंका क्षपक सूक्ष्मसाम्परायमें, जपक श्रिनवृत्तिकरणमें श्रीर ज्ञपक श्रपूर्वकरणमें जघन्य स्वामित्व कहा है उनका यहां बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। मात्र उच्चगोत्रका बन्ध श्रिनकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके नहीं होता, इसिलए इसके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके न कह कर मनुष्यगतिके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वके समान इसका स्वामी वादर पृथिवी-कायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त श्रीर वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव होता है इतना विशेष कहना चाहिए। तिर्यञ्चगितमें श्राहारकिहक श्रीर तीर्थङ्कर प्रकृतिका यन्ध नहीं होता यह स्पष्ट ही है।

११८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रकमें पांच क्षानावरण, नौ दर्शनावरण, स्रोतावेदनीय, मिथ्यात्व, स्रोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुण्सा, देवगित, पञ्चेन्द्रियजाति, विक्रियिक शारीर, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचचुरस्र संस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसकाय, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पांच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर श्रसंशी जो साकार जागृत है, सर्वविद्युद्ध है श्रीर जघन्य स्थितवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है। नरकायु श्रीर देवायुके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्रोधके समान है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर संशी या श्रसंशी पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त जो तत्मायोग्य संक्लेश परिणामवाला है श्रीर जघन्य श्राबाधाके साथ जघन्य स्थितवन्ध कर रहा है वह उक्त दो श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है। तथा श्रोष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्ध का साकार जागृत तत्मायोग्य विशुद्धश्रीर जघन्य स्थितवन्धमें श्रवस्थित वही जीव स्वामी है।

विशेषार्थ—यहां चार आयुओं से सिवा शेष प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामित्व
छासं ही पञ्चिन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चों की मुख्यतासे कहा है। कारण कि पञ्चे निद्रय तिर्यञ्चित्रक
में इन्हीं के सबसे जघन्य स्थितिवन्ध सम्भव है। किन्तु चार आयुओं के जघन्य स्थितिवन्धके
लिए यह नियम नहीं है। इतनी अवश्य है कि नरकायु और देवायुका वन्ध पर्याप्तके
ही होता है और शेष दो आयुओं का बन्ध सबके होता है।

११६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपयीप्तकोंमें पांच क्रानावरण, नौ दर्शनावरण, साता-

सक०-पुरिसवे०-हस्स-रिद-भय-दुगुं ॰-मणुसगिद-पंचिदिय०-त्रोरालिय०-तेजा०-क०-समचढु०-त्रोरालि० त्रंगो०-वज्जरिसभ०-वएण०४-मणुसाणु०-त्रगुरु०४-पसत्यवि०-तस०४-थिरादिछक-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० जह० द्विदि० कस्स० १ त्रएण० त्रसिएण० सागार-जा० सन्वविद्य० जह० द्विदि० वट०। त्रसादा०-इत्यिवे०-एवुंस०-त्ररिद-सोग-तिरिक्खगिद-चढुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-त्रादा-एज्जो०-त्रप्पसत्थ०-थावरादि०४-त्रथिरादिछक-णीचा० जह० द्विदि० कस्स० १ त्रएण० त्रसिएणएस सागार-जा०तप्पात्रोग्गविमु०जह० द्विदि० वट०। दोत्रायु०जह० द्विदि० कस्स १ त्रएण० सिएण० त्रसिएण० सागार-जा० तप्पात्रोग्गसंकिलि० जह० त्रावा० जह० द्विदि० वट०।

१२०. मणुसेस्र खवगपगदीयां मूलोघं। पंचदंस०-मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रिद-भय-दुगुं ०--मणुसग०--पंचिदि०--श्रोरालिय०--तेजा०-क०--समचदु०--श्रोरालि०

वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, मनुप्यगित, पञ्चेनिद्रय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचनुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक
आक्षोपाङ्ग, वज्रपेमनाराचसंहनन, वर्णचतुण्क, मनुष्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुण्क, प्रशंसत
विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, उच्चगोत्र श्रौर पांच श्रन्तराय प्रकृतियों
के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रसंक्षी जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध
है और जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका
स्वामी है । श्रसातावेदनीय, स्रोवेद, नपुंसक वेद, श्ररित, शोक, तिर्यञ्चगित, चार जाति,
पांच संस्थान, पांच संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर
श्रादि ४, श्रस्थिर श्रादि छह श्रौर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ?
श्रन्यतर श्रसंक्षी जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध है श्रौर जघन्य स्थितिवन्धमें
श्रवस्थित है वह उक्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । दो श्रायुओंके जघन्य
स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर संक्षी या श्रसंक्षी जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य
संिकत्य है श्रौर जघन्य श्रावाधाके साथ जघन्य स्थितवन्ध कर रहा है वह दो श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है ।

विरोषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त दो प्रकारके होते हैं—संज्ञी और असंश्री। संज्ञियोंसे असंज्ञियोंके संख्यातगुणा हीन वन्घ होता है इसिलए यहां इन्होंकी मुख्यतासे यहां वँघनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामित्व कहा गया है। मात्र मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिवन्ध उक्त दोनोंमेंसे किसीके भी हो सकता है, इसिलए इन दोनों आयु ओंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी उक्त दोनोंमेंसे कोई भी जीव कहा गया है।

१२०. मनुष्योंमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी मूलोघके समान है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, वारह कषाय, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुक्तंसंस्थान,

श्रंगो०-वज्जिरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-श्रगुरू०४--पसत्थ०--तस०४-थिरादिपंच०-णिमि० जह० हिदि० कस्स० १ श्रग्ण० श्रसण्णिपच्छागदस्स पहसमय-विदियसमयमणुसस्स सागार-जा० सन्वित्युद्ध० । श्रसादा०-इत्थि०-णवुंस०-श्ररदि-सोगतिरिक्खगदि-चढुजादि० [पंससंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-श्रादाङ्जोव-श्रप्पसत्थ०थावरादि०४-श्रथिरादि०६-णीचा० जह० हिदिवं० कस्स १ श्रग्ण० श्रसण्णिपच्छागदस्स पहमसमय-विदियसमयमणुसस्स सागार-जागार०] तणाश्रोग्गविसुद्ध० ।
[णिरयाड० जह० हिदि० कस्स १ श्रग्णद् ० पज्ज्ञापज्ज्ञ्चा० सागार-जा० तणाश्रोग्गसंकिलि० । देवायु० जह० हिदि० कस्स० १ श्रग्ण० तणाश्रोग्ग०संकिलि० ।
णिरयगदि-णिरयाणुषु० जह० हिदि० कस्स० १ श्रग्ण० मिच्छादि० सागार-जा०
तप्पाश्रोग्गविसुद्ध०।देवगदि-वेजिव०-श्राहार०-[वेजिव्य०श्रंगो०-श्राहार०]-श्रंगो०देवाणुपु०-तित्थयर० जह० हिदि० कस्स० १ श्रग्ण० श्रपुव्व० खवग० परभवियणामाणं वंधचरिमे वद्दमा० । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीस्स । णवरि मणुसिणीस

श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्पभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगति, त्रसचतुरक, स्थिर ग्रादि पाँच ग्रीर निर्माण इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ! जो श्रसंबी मरकर मनुष्यगितमें उत्पन्न हुश्रा है ऐसा प्रथम श्रीर द्वितीय समयवर्ती मनुष्य जो साकार जागृत है श्रीर सर्व विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यं ज्वाति चार जाति, पाँच संस्थान, पांच संहनन, तिर्यं ज्वागत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत. ग्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रादि चार, श्रस्थिर श्रादि छह और नीचगोत्र प्रकु-तियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? जो असंबी मरकर मनुष्य हुन्ना है ऐसा प्रथम श्रीर द्वितीय समयवर्ती मनुष्य जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। नरकायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला मनुष्य नरकायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कीन है ? अन्यतर पर्याप्त और श्रपर्याप्त मनुष्य जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिशामवाला है वह उक्त दोनों ग्रायुग्रोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य स्थिति-वन्धका खामी कौन हैं ? ग्रन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला मनुष्य देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। नरकगित ग्रीर नरकगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम-वाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्राहारक शरीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी श्रोर तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रपूर्वकरण चपक जो परभव सम्बन्धी नामकर्मकी बँधनेवाली प्रकृतियोंके वन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उक्त अकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य

τ

१. म्हप्रती जहर श्रप्पार, सेसाणं इति पाठः।

तित्थयर० जह० हिदि० कस्स० १ श्रणण० श्रपुव्व० जवसम० परभवियणामाणं वंधचरिमे वह० । मणुसत्रप्रजत्तगे पढमपुढविभंगो ।

१२१. देवगदीए देवेसु णिरयोघं। णवरि एइंदिय-श्रादाव-थावर० श्रसाद भंगो। एवं भवण०-वाणवेंत०। णवरि तित्थयरं णित्थ। जोदिसिय-सोधम्भीसाण० विदिय प्रविभंगो। णवरि एइंदिय-श्रादाव-थावर० इत्थिवेदभंगो। जोदिसिय० तित्थ-यरं णित्थ। सणक्कुमार याव सहस्सार ति विदियपुढिविभंगो। श्राणद० णवगेवज्ञा ति तं चेव। णवरि तिरिक्लायु० तिरिक्लगदितियं च णित्थ। श्रणुदिस याव सव्वद्घा ति पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-वारसक०-पुरिस०-हस्स-रिद-भय-दुगुं०-मणुसगदी० एवं चेव पसत्थादिणामपगदीश्रो उच्चा०-पंचंत० जह० हिदि० कस्स० १ श्रएण०

स्थितिबन्धका खामी कौन है ? ग्रन्यतर ग्रपूर्वकरण उपशामक जो परमवसम्बन्धी नाम-कर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके ग्रन्तिम समयमें श्रवस्थित है यह स्वामी है। मनुष्य ग्रपर्याप्तक जीवोंमें श्रपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी पहिली पृथिवीके समान है।

विशेषार्थ—जिन २२ प्रकृतियोंका नीचें श्रीर दसवें गुण्स्थानमें चन्ध होता है वे यहाँ चएक प्रकृतियाँ कही गईं हैं। वे ये हैं—पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीतिं, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय। यतः चएक श्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यगतिमें ही होती है, श्रतः मनुष्योंमें इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामित्व श्रोधके समान कहा है।शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धके स्वामीका निर्देश श्रलग श्रलगिकया ही है। यहाँ मनुष्यिनयोंमें तीर्थंद्वर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी उपशामक श्रपूर्व-करण जीव कहा है। इसका कारण यह है कि जो तीर्थंद्वर होता है उसके जनमसे पुरुषवेदका ही उदय होता है ऐसा नियम है। श्रतपव जो तीर्थंद्वर प्रकृतिका वन्ध कर रहा है श्रीर स्थी-वेदका उदय है उसका उपशम श्रेणि पर श्रारोहण करना वन जाता है श्रीर इसी श्रपेद्वासे मनुष्यिनी श्रपूर्णकरण उपशामकको तीर्थंद्वर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कहा है।

१२१. देवगितमें देवोंमें अपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका सामी नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें एकेन्द्रिय आतप और स्थावर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका सामी असाता प्रकृतिकेवन्धके सामीके समान है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके तीर्थं इर प्रकृति. नहीं है। ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान करपके देवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका सामी दूसरी पृथिवीके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतियोंके वन्धका सामी स्रीवेदके बन्धके सामीके समान है। तथा ज्योतियोदेवोंमें तीर्थंकर प्रकृतियोंके वन्धका सामी स्रीवेदके बन्धके सामीके समान है। तथा ज्योतियोदेवोंमें तीर्थंकर प्रकृतियों के जघन्य स्थिति बन्धका सामी दूसरी पृथिवीके समान है। आनत कल्पसे लेकर नी ग्रैवेयक तक वही जीव सामी है। इतनी विशेषता है कि इनके तिर्थञ्च आयु और तिर्थञ्चगतित्रिकका वन्ध नहीं होता। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिस्ति तकके देवोंमें पाँच झानावरण, छह दर्शनावर्ण, साता वेदनीय, बारह कथाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगिति और इसी प्रकार नामकर्मकी प्रशस्त आदि प्रकृतियाँ, उद्यगित्र और पाँच अन्तराय इनके जघन्य स्थितिबन्धका सामी कीन है? अन्यतरदेव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विश्व है परिणामवाला है वह उक्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका सामी है। असाता वेदनीय,

सागार-जा॰ तप्पाञ्चोग्गविसुद्ध॰ । श्रसादा॰-श्ररदि-सोग-श्रथिर-श्रसुभ-श्रजस॰ जह० हिदि॰ कस्स॰ १ श्रएए॰ सागार-जा॰ तप्पाश्चोग्गविसु॰ । मणुसायु॰ जह० हिदि॰ कस्स॰ १ श्रएए॰ सागार-जा॰ तप्पाश्चोग्गसंकिलि॰ ।

१२२. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिसवे०-इस्स-रिद-भय-दुगुं०-पंचिदि०-श्रोरालि०-तेजा०--क०-समचदु०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ०-वएण०४-श्रगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमिण-पंचंत० जह० द्विदि० कस्स० १ श्रएण० वादर० सन्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स सागार-

श्ररित, शोक, श्रस्थिर, श्रश्चम और श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर देव जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है। मनुष्यायुके जघन्य स्थितबन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर देव जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है।

विशेपार्थ—देवोंमें असंधी जीव मरकर उत्पन्न होता है और इसके प्रथम व द्वितीय समयमें श्रसंदीके योग्य जघन्य स्थितिवन्ध होता है। यही विशेषता नरकमें भी होती है, इस्तिलप देवोंमें अपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी नारिकयोंके समान है। मात्र तीर्थंकर ग्रीर दो श्रायुत्रोंका जघन्य स्थितिबन्ध पर्याप्त श्रवस्थामें जिस प्रकार नार-कियों के कहा है उसी प्रकार यहां कहना चाहिए। किन्तु नरकमें एकेन्द्रिय, श्रातप और स्था-चर इन तीन प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता श्रीर देवोंके होता है, इसलिए इनके जधन्य स्थिति-चन्ध्रका स्वामी जिस प्रकार श्रसाताप्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कहा है उसी प्रकार यहां कहना चाहिए। श्रसंज्ञी जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता हुश्रा भवनवासी श्रीर व्यन्तर्र देवोंमें ही मरकर उत्पन्न होता है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी सामान्य देवोंके समान कहा है। मात्र इनके तीर्थं इर प्रकृतिका वन्ध नहीं होता! श्रागे सहस्रार कल्पतक दूसरी पृथिवीसे जघन्य स्वामित्वमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए यहां सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान कहा है। विशे-पता इतनी है कि ज्योतिपी देवोंके तीर्थंकर प्रकृति का वन्ध नहीं होता और ऐशान कल्पतक एकेन्द्रिय जाति. श्रातप श्रीर स्थावर प्रकृतिका वन्घ होता है। सो इन तीन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी जिस प्रकार दूसरी पृथिवीमें स्त्रीवेदके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी घटित करके वतलाया है उसी प्रकार घटित कर छेना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। ग्रानतादिकमें तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी ग्रीर नीच-गोत्रका वन्घ नहीं होता । शेष पूर्वोक्त प्रकृतियोंका होता है । सो इनमें भी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितियन्धका स्वामित्व दूसरी पृथिवीके समान घटित हो जाता है श्रतः यहां भी ज्ञघन्य स्वामी दसरी पृथिवीके समान कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

१२२. एकेन्द्रियोंमें पांच क्षानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह-कपाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुष्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, भौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रवर्पभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तिवहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण श्रौर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है १ श्रन्यतर बादर एकेन्द्रिय जो सब पर्याप्तियोंसे पर्यात है, साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है श्रौर जघन्य स्थितवन्धमें श्रव-

जा॰ सन्विवसु० जह॰ द्विदि० वद्द० । असादा०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-अरदिसोग-चढुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-आदाव-अप्पसत्थिवि०-थावरादि०४--अथिरादिछ०
जह० द्विदि० कस्स० ? अएए० वादर० सन्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार्जा० तप्पाओग्गविसु० । दोआयु० जह० द्विदि० कस्स० ? अएए० वादर० सुहुम०
पज्जत्तापज्ज० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०छज्जो०-एीचा० जह० द्विदि० कस्स० ? अएए० वादरतेष०-वाष०जीवस्स सन्वाहिः
पज्जत्तीहि पज्जत्त० सागार-जा० सन्वविसु० । मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० जह०
द्विदि० कस्स० ? अएए० वादरपुढ० वादरआउ० वादरवणप्पदि० सन्वाहि पज्जतीहि पज्जत्त० सागार-जा० सन्वविसु० । सन्वविग्णिंदिय-पज्जत्तापज्जत्त० पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । पंचिदि०२ खवगपगदीएं ओघं । सेसाएं पंचिदियतिरिक्खभंगो । अपज्जत्ते तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

स्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। ग्रसातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुं सकवेद, श्ररति, शोक, चार जाति, पांच संस्थान, पांच संहनन, आतप, अप्र-शस्त विहायोगित, स्थावर ग्रादि चार ग्रीर ग्रस्थिर ग्रादि छह प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर वादर एकेन्द्रिय जो सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार-जागृत है श्रौर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिगामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। दो श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर वादर एकेन्द्रिय श्रीर सुद्म एकेन्द्रिय पर्याप्त श्रीर श्रपयित जो साकारजागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश-परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। तिर्थञ्चगति, तिर्थ-इचगत्यातुपूर्वी, उद्योत श्रौर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर बादर अग्निकायिक श्रीर वादर वायुकायिक जीव जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकारजागृत है श्रीर सर्व विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी ग्रीर उचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर बांदर पृथिवीकायिक, वादरजलंकायिक श्रौर बादर वनस्पतिकायिक जीव जो सं**ब** पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है श्रीर सर्व विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। सव विकलत्रय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रुपर्यातकोंके समान हैं। पञ्चेन्द्रिय श्रौर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी श्रोघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इनके अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी तिर्यञ्च अपर्यातकोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध बादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंके होता है। मात्र तिर्थञ्चायु ग्रीर मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध सब एकेन्द्रियोंके सम्भव है। विशेषता इतनी है कि तिर्थञ्चगित ग्रादि चार प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध ग्रशिका यिक ग्रीर वायुकायिक बादर पर्याप्त जोवोंके होता है, क्योंकि ये दोनों कायवाले जीव तिर्थञ्चगित सम्बन्धी प्रकृतियोंका ही सतत बन्ध करते हैं, इसलिए इनमें स्वभावतः जर्धन्य

१२३. पुढवि०-श्राड०-वराष्फिदिपत्तेय०-वराष्फिदिका०-णियोदेसु पंचणा०-णवदंस०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रिद-भय-दुगु'०-मणुसगिद एवं धुवर्णामाए याव उच्चागो०-पंचंतरा० जह० द्विदि० कस्स० १ श्रग्णा० बादर० सन्वाहि' पज्जत्तीहि पज्जत्त० सागार-जा० सन्विद्धा० । सेसाणं वि एसेव । एवरि तप्पात्रोग्गविसुद्ध० । दोश्रायु० श्रोघं । वादरादीणं एइंदिय०-श्रादावेण ऐदन्वं । एवं चेव तेष-वाषका० । एवरि तिरिक्सगिद्द० धुवं कादन्वं ।

१२४. तस-तसपज्जत्तेसु खवगपगदीणं श्रोघं। िएरय० देवायु० वेउव्वियछकं च श्रोघं। दोश्रायु० जह० द्विदि० कस्स० १ श्रएण० वेइंदि तीइंदि० चढुरिंदि० पंचिदि० सिएए० श्रसिएए० पज्जत्तापज्जत्त० तप्पाश्रोगगसंकिलि०। सेसाश्रो पगदीश्रो मणुसगदिसंजुत्ताश्रो वीइंदियो करेदि सागार-जा० सन्विवसुद्धो। श्रसा-

स्थितवन्धके योग्य परिणाम होते रहते हैं श्रीर मनुष्यगित श्रादि तीन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध पृथिवीकायिक, जलकायिक श्रीर वनस्पितकायिक बादर पर्याप्त जीव करते हैं, क्योंकि इनका वन्ध श्रियकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके नहीं होता। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१२३. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, प्रत्येक वनस्पतिका्यिकं श्रीर निगोद जीवोंमें पांच श्वानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व सोलह कषाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा श्रीर मनुष्यगितसे लेकर जितनी नामकर्मकी भ्रुव प्रकृतियाँ हैं वे सव तथा उच्चगोत्र श्रीर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर वादर जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है श्रीर सर्व विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । श्रेष प्रकृतियोंके भी जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । श्रेष प्रकृतियोंके भी जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । दो श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्रीघके समान है । इनके वादरादिकमें एकेन्द्रिय जाति श्रीर श्रातप प्रकृतियोंके साथ कथन करना चाहिए । इसी प्रकार श्रग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके तिर्थञ्चगित चतुष्कको भ्रुव कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वका खुलासा कर श्राये हैं।

उसे ध्यानमें रखकर यहां जघन्य स्वामित्व जान लेना चाहिए।

१२४. घस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ग्रोधके समान है। नरकायु, देवायु ग्रोर वैक्रियिक छह इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ग्रोधके समान है। दो ग्रायुग्रोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर द्वीन्द्रिय, जीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय संशी और पञ्चेन्द्रिय ग्रसंशो तथा इन सबका पर्याप्त तथा ग्रपर्याप्त जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त दोनों ग्रायुग्रोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी स्थितबन्धका स्वामी साकार जागृत ग्रीर सर्वविद्युद्ध द्वीन्द्रिय जीव है। तथा ग्रसातादिक प्रकृतियोंके भी जघन्य स्थितबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला वही द्वीन्द्रिय जीव है, तथा

१. मूलप्रती सन्वाहि अपञ्जत्तीहि इति पाठः । २. मूलप्रती—गदि० दुवं कादन्वं इति पाठः ।

दादीणं पि सो चेव वीइंदि॰ तप्पाञ्चोग्गविस्रुद्ध॰ । श्रपज्जत्त० पंचिदियतिरिक्ख-श्रपज्जत्तभंगो । णवरि बेइंदियो त्ति भाणिदव्वं ।

१२५. पंचमण् - तिरिणविचि खवगपगदीणं मूलोघं । शिदा-पचला । जह ० हिदि कस्स । श्राण अपुव्वकरणलवग । शिदापचलाणं वंधचिरमे वद्दमाणस्स । श्रीणिगिद्धितय-मिच्छत्त-अणंताणुवंधि । अह ० हिदि कस्स । श्राण मणुस । मिच्छा । सागार-जा । सव्विद्ध । संजमाभि मुहस्स जह ० हिदि वं । श्रसादा । श्रसादा । श्राप । स्विच । श्रसादा । श्राप । प्यत्ते । श्राप । प्यत्ते । श्राप । प्रत्ते । श्राप ।

इनके श्रपर्याप्तकों में श्रपनी सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकों के समान है। इतनी विशेषता है कि यहांपर भी द्वीन्द्रिय श्रपर्याप्तकों जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कहना चाहिए।

विशेषार्थ--त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें पांच ज्ञानावरण ग्रादि २४ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध प्रञ्जे निद्रय प्रश्ने स्थितिवन्ध प्रञ्जे निद्रय प्रश्ने पर्याप्तके होता है। नरकायु और देवायुका जघन्य स्थितिवन्ध संज्ञी या ग्रसंज्ञी पञ्चेन्द्रियके होता है। इनके सिवा शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके होता है यह उक्क कथनका तात्पर्य है। त्रस ग्रपर्याप्तकोंमें द्वीन्द्रिय ग्रपर्याप्तकोंके सब जन्य स्थितिवन्ध होता है, इसलिए त्रस ग्रपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी द्वोन्द्रिय ग्रपर्याप्तक जीव कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१२५. पांचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है। निद्रा और प्रचला प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्ध का स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रपूर्वकरण जपक जो निद्रा श्रौर प्रचलाके वन्धके श्रन्तिम समयमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि-त्रिक, मिथ्यात्व, ग्रनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य स्थितियन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर मनुष्य मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है, संयमके श्रिभमुख है श्रीर जघन्य स्थिति वन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । ग्रसाता चेदनीय, ग्राति, शोक,ग्रस्थिर, ग्रग्रुभ और अयशःकोर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थि-तिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है श्रीर जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितियन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके जघन्य स्थितियन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर जो ग्रसंयत सम्यग्दष्टि है, साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है, संयमके श्रमिमुख है श्रौर जघन्य स्थितिबन्धमें श्रवस्थित है वह उक्क चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर म्नुष्य जो सर्यंतासंयत है, साकारजागृत है, तत्रायोग्य सर्व विशुद्ध है, संयमके श्रभिमुख है श्रीर जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका

हिदि॰ वह॰ । इत्थि॰-णवुंस॰-पंचसंठा॰-पंचसंघ०-अप्पस्त्थवि०-दूमग-दुस्सरअणादे० जह० हिदि० कस्स ? अएण० चढुगिद्यस्स मिच्छादि० सागार-जा॰
तप्पाओगगिवसुद्ध० । हस्स-रिद्-भय-दुगुं० जह० हिदि० कस्स॰ ? अएण०
अपुन्वकरणखवग० चिरमे जह० हिदि० वह० । िणरयायु० जह० हिदि कस्स० ?
अएणद० दुगिद्य० सागार-जा॰ तप्पाओगगिवसु० । तिरिक्त-मणुसायु० जह०
हिदि० कस्स० ? अएण० तिरिक्त० मणुस० तप्पाओगग-संकिति० । देवायु० तं
चेव । िणरयगदि-तििएणजादि-िणरयाणुपु०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार० जह० हिदि०
कस्स० ? अएण० तिरिक्त० मणुस० मिच्छादि० तप्पाओगिवसु० । तिरिक्तगिदितिरिक्ताणुपु०-उज्जो०-णीचागो० जह० हिदि० कस्स० ? अएण० सत्तमाए पुढवि०
गोरइ० मिच्छादि० सागार-जा० सन्विषु० सम्मत्ताभिसुह० जह० हिदि० वह० ।
मणुसग०-ओराजि०-ओराजि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० हिदि कस्स० ?
अएण० देव० गोरइयस्स सम्मादि० सागार-जा० सन्विसुद्ध० । देवगदि-पंचिदि०वेजन्वि०-आहार०-तेजा०-क०-समचदु०-दोअंगो०-वएण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिपंच-णिमि०-तित्थय० जह० हिदि० कस्स० ? अएण०

स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पांच संस्थान, पांच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुस्वर श्रीर श्रनादेयके जघन्य स्थितिवन्घका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर चार गतिका मिण्या-दृष्टि जीव जो साकारजागृत है ग्रौर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। हास्य, रित, भय श्रीर जुगुप्साके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रपूर्वकरण चपक जो श्रन्तिम जघन्य स्थितियन्धमें श्रवस्थित है वह उक्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। नरकायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी क़ौन है ? श्रन्यतर दो गतिका जीव जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम-वाला है वह नरकायुके जघन्य स्थितिवन्घका स्वामी है। तिर्यञ्चायु श्रौर मनुष्यायुके जघन्य स्थितबन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर तिर्थञ्च ग्रौर मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम-वाला है वह उक्त दोनों श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी वही है। नरकगित, तीन जाति, नरक गत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, श्रपर्यात श्रीर साधारण इनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर तिर्यश्च श्रौर मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिग्रामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामो है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोकी जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जो मिथ्यादिष्ट है, साकारतागृत है, सर्वविग्रद है, सम्यक्तवके श्रमिमुख हैं श्रौर जघन्य स्थितिवन्घमें श्रव-स्थित है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, श्रौदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रवृषमनाराचसंहनन श्रीर मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो सम्यग्दृष्टि है, साकार-जागृत है श्रीर सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैकियिकशरीर, श्राहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैकियिक श्रौर श्राहारक दो श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरु-लघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि पाँच, निर्माण श्रीर तीर्थद्वर प्रह- अपुन्वकरणतवग० परिभवियणामाणं वंधचरिमे जह० द्विदि० वट्ट०। एइंदि०-आदाव-थावर० जह० द्विदि० कस्स० १ अएण० तिगदियस्स मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओगाविसुद्ध०। विचेजोगी० असच्चमोस० तसपज्जत्तमंगो।

१२६. कायजोगि-श्रोरालियकायजोगि० मूलोघं । श्रोरालियमि० देवगदि०४-तित्यय० जह० द्विदि० कस्स० १ श्राएण० श्रासंज० सागार-जा० सन्वविस्त० । सेसाश्रो जाश्रो श्रात्थि ताश्रो तिरिक्लोघं ।

तियों के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रपूर्वकरण चपक जो परभव सम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियों के वन्धके श्रन्तमें जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। पकेन्द्रिय, श्रातप श्रोर स्थावर प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव जो साकार जागृत है श्रोर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धक। स्वामी है। वचनयोगी श्रोर श्रसत्यमृषावचनयोगी जीवों में श्रपनी सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धक। स्वामी श्रमपर्याप्तकों के समान है।

विशेषार्थ-यहाँ पाँच मनोयोग श्रीर पाँच चचनयोगमें कौन जीव किन प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है इसका विचार किया गया है। उसमें भी वचनयोग श्रोर श्रसत्यमृपावचनयोग द्वीन्द्रियोंसे लेकर होता है इसलिए इनमें त्रसपर्याप्तकोंके समान सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामित्व घटित हो जाता है, इसलिए उनका कथन प्रस-पर्याप्तकोंके समान कहा है तथा शेषका स्वतन्त्र कथन किया है। यह तो स्पष्ट वात है कि पाँच मनोयोग और सत्य, असत्य और उभय वचनयोग एकेन्द्रियसे लेकर असंशी पञ्चेन्द्रिय तक नहीं होते। केवल संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके होते हैं. इसलिए इनमें एकेन्द्रियोंसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तकके जीवोंके होनेवाला स्थितिवन्घ सम्भव नहीं है। श्रतः संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें कहाँ किन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध सम्भव है इस दृष्टिसे इनमें सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धके स्वामित्वका विचार किया गया है। यहाँ साधारणुतः पहले श्रीर दूसरे गुणस्थानमें जिन प्रकृतियोंकी वन्धन्युच्छित्ति होती है उनके जघन्य स्थितिबन्धका खामित्व श्रिंघकारी भेदसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें उपलब्ध होता है। इसी प्रकार श्रागे गुणस्थानोंमें जहाँ जिन मक्तियोंकी वन्धव्युच्छित्ति कही है उस गुण्स्थानमें उन प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामित्व उपलब्ध होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मात्र चार श्रायुकर्म इसके श्रपवाद हैं। चारों श्रायुत्रोंका जघन्य स्थितिबन्ध श्रपने श्रपने जघन्य स्थितिबन्धके योग्य सामग्रीके मिलने पर मिथ्यात्व गुणस्थानमें मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चोंके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि मनुष्य श्रीर तिर्यञ्च कहा गया है । सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धकी योग्यताका निर्देश मूलमें किया ही है।

१२६. काययोगी श्रौर श्रौदारिक काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-धन्धका स्वामी मूलोघके समान है। श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिचतुष्क श्रौर तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? श्रन्यतर श्रसंयतसम्यग्दृष्टि जो साकार जागृत है श्रौर सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। रोष जितनी प्रकृतियाँ हैं उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य तिर्यञ्जके समान है।

१२७. वैकियिक काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छ्रह दर्शनावरण, साता वेदनीय, वारह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक-तैजस-कार्मण तीन शरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षमनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, असचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, तीर्थंकर, उचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय इन प्रकृतियोंके जयन्य स्थिति-वन्चका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो सम्यग्दष्टि है, साकार जागृत है श्रीर सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व ग्रीर श्रनन्तात्वन्धी चतुष्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है श्रीर सम्यक्तक श्रीममुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रसातावेदनीय, श्ररति, शोक. ग्रस्थिर, ग्रशुभ ग्रौर प्रयशःकीर्तिके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव ग्रौर नारकी जो सम्यग्दिए है, साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध है श्रीर वह उक्त प्रकृ-तियोंके जधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। स्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी कौन है ? प्रान्यतर देव और नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो मिथ्यादि हैं और तत्प्रायोग्य संक्रिए है वह उक्त दो श्रायु प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जो मिथ्यादिष्ट है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर सम्यक्तवके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति, श्रातप श्रीर स्थावर प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिबन्धका

१. म्बप्रती देवगदि णेरष्ट्य० इति पाठः । २. म्बप्रती देवगदि णेरह्य० इति पाठः ।

जह० हिदि० कस्स० १ श्राएण० ईसाएांतदेवस्स मिच्छादि० तप्पात्रोग्गविसु०। एवं चेव वेउन्वियमि०। एवरि श्रायु० एत्थि।

स्वामी कौन है ? श्रन्यतर ऐशान कल्प तकका देव जो मिथ्यादृष्टि है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्र-काथयोगवाले जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुकर्मकी दो प्रकृतियों का वन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—काययोग और श्रीदारिककाययोग एकेन्द्रियसे लेकर गुणस्थान तक होते हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामित्व मुलोघके समान वन जाता है। श्रौदारिकमिश्रकाययोगके मिथ्यादृष्टि, सासाद्नसम्यग्दृष्टि, श्रविरतसम्यग्दिष्ट श्रौर सयोगकेवली ये चार गुणस्थान हैं। यहाँ सयोगकेवली गुणस्थानसे तो प्रयोजन ही नहीं। शेष तीन गुण्स्थान तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य दोनोंकी श्रपर्यात श्रवस्थामें होते हैं पर मनुष्य भ्रपर्याप्तकोंकी श्रपेचा तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन सम्भव है, क्योंकि तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंकी भी परिगणना होती है, इसलिए यहाँ श्रीदारिकमिश्रकाययोगमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्ध-का स्वामी सामान्य तिर्यञ्जोंके समान कहा है। मात्र एकेन्द्रियोंके देवगति-चतुष्क श्रीर तीर्थंङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। तथा श्रीदारिकमिश्रकाययोगमें इनका बन्ध श्रविरत सम्यग्दिष्टिके ही होता है इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामित्व श्रलगसे कहा है। श्रीदारिकमिश्रकाययोगमें नरकायु, देवायु, नरकगित, नरकगितप्रायोग्यानुपूर्वी, श्राहारक शरीर श्रौर श्राहारक श्राङ्गोपाङ्गका वन्ध नहीं होता, इस लिए इनके स्वामित्वका यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। वैक्रियिक काययोग देव श्रीर नारिकयोंके होता है, इसलिए इस वातको ध्यानमें रखकर इस योगमें बँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व यथायोग्य जान लेना चाहिए। समभनेकी बात इतनी है कि जिन प्रकृतियोंकी मिथ्यादृष्टि श्रीर सासदनसम्यग्दप्टि गुण्स्थानमें बन्धन्युच्छित्ति होती है उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व मिथ्यादृष्टि वैक्रियिककाययोगी देव और नारकी को मूलमें कही गई विशेषताको ध्यान रखकर देना चाहिए श्रौर जिन प्रकृतियोंका श्रागे भी बन्ध होता है उनके जघन्य स्थितिवन्घका स्वामित्व श्रविरतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिककाययोगी देव श्रीर नारकीको देना चाहिए। मात्र तिर्यञ्चगति द्विक, उद्योत श्रौर नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सातर्वी पृथिवीके सम्यक्तवके सम्मुख द्वुप सर्वविशुद्ध नारकीको ही कहना चाहिप, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें मिथ्यादृष्टि नारकीके मनुष्यगति द्विक श्रीर उच्चगोत्रका वन्ध नहीं होता, इसिलए उसके सम्यक्त्वके श्रभिमुख होनेपर भी उक्त चार प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है। श्रतएव सातवीं पृथिवीमें ही इनका जघन्य स्थितिबन्घ उपलब्ध होता है। इसी तरह वैकियिक काययोगमें तिर्यञ्चायु श्रौर मनुष्यायुका उसके योग्य जघन्य स्थितिबन्ध मिथ्यात्वमें ही उपलब्ध होता है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणाम भिष्या-दृष्टिके ही होते हैं। यही कारण है कि यहाँ वैक्रियिक काययोगमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व उक्त प्रकारसे कहा है। वैकियिकमिश्रकाययोगमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धके स्वामित्वके प्रति वैक्रियिककाययोगसे ग्रन्य कोई विशेषता नहीं है। मात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए जिन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व वैक्रियिककाययोगमें सम्यक्त्वके श्रभिमुख हुए १२८. श्राहार०-श्राहारिम० पंचणा०-इदंसणा०-सादावे०-चढुसंज०-पुरिस०हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि०-पंचिदि०-तिण्णिसरीर०-समचढु०-वेषवि०श्रंगो०वण्ण०४-देवाणुपु०-श्रगुर०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०ऊचागो०-पंचंतरा० जह० हिदि० कस्स० १ श्रण्ण० पमत्तसंजद० सागार-जा०
सन्वविद्य० । श्रसादा०-श्ररदि-सोग-श्रथिर-श्रसुभ-श्रजस० जह० हिदि० कस्स० १
श्रण्ण० पमत्त० सागार-जा० तप्पाश्रोग्गविसु० । देवायु० जह० हिदि० कस्स० १
श्रण्ण० सागार-जा० तप्पाश्रोग्गसंकिलि० । कम्मइग० श्रोरालियमिस्समंगो ।
णवरि श्रायु० णित्थ । तित्थय० दुगदियस्सं।

जीवके कहा है यहाँ उनके जघन्य स्थितिवन्घका स्वामित्व जो पर्याप्त होने पर सम्यक्तवको प्राप्त होगा ऐसे जीवके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। वैकियिकमिश्रकाययोगमें श्रायुका वन्ध नहीं होता यह स्पष्ट ही है।

१२८. श्राहारककाययोगी श्रीर श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, देव-गित, पञ्चेन्द्रियजाति, वैकियिक तैजस-कार्मण तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक श्राह्मोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगितप्रयोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, श्रस्चतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, तीर्थंकर, उद्यगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है । श्रमता वेदनीय, अरित, श्रोक, श्रिस्थर, श्रश्चम श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । श्रमता वेदनीय, अरित, श्रोक, श्रक्तियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । श्रमता वेदनीय, अरित, श्राक्त, श्रक्तियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । श्रमत्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य संक्षिष्ट है वह देवायुके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें श्रपनी सच प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें श्रपनी सच प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्रीदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुका वन्ध नहीं होता । तथा इनके तीर्थंङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी दो गितका जीव है ।

विशेषार्थ—ग्राहारक काययोग ग्रीर ग्राहारकमिश्रकाययोग प्रमत्तसंयत जीवके होता है, इसलिए प्रमत्तसंयत जीवके वँधनेवाली प्रकृतियोंकी ग्रपेक्वा यहाँ जघन्य स्वामित्व कहा है। विशेषता मूलमें कही हो है। ग्रीदारिकमिश्रकाययोग ग्रीर काम्यकाययोगके गुण्स्थान एक समान ही हैं तथा औदारिकमिश्रकाययोगके समान यह योग भी एकेन्द्रियोंके होता एक समान ही हैं तथा औदारिकमिश्रकाययोगके समान यह योग भी एकेन्द्रियोंके होता है इसलिए इसमें ग्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व ग्रीदारिकमिश्रकाययोगके समान कहा है। मात्र यहाँ इतनी विशेषता है कि एक तो कार्मण काययोगमें काययोगके समान कहा है। मात्र यहाँ इतनी विशेषता है कि एक तो कार्मण काययोगमें ग्रायुक्तमंका वन्ध नहीं होता ग्रीर दूसरे यद्यपि कार्मणकाययोगमें नरकगित, मनुष्यगित ग्रीर विवातिके जीवके तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध होता है पर इसके जघन्य स्थितिबन्धका खामी देवगित ग्रीर मनुष्यगितका जीव ही है, क्योंकि इसके योग्य सर्वविश्रद्ध परिणाम इन दो ग्रिके कार्मणकाययोगी जीवके ही हो सकते हैं।

मूलप्रतौ दुगदियस्स तित्थय० इत्थि० इति पाठः ।

१२६. इत्थि॰-पुरिस॰ प'चणा०-चदुदंसणा॰-सादावे॰-चदुसंज०-पुरिस॰जसिग॰-उचा॰-प'चंत० जह० द्विदि० कस्स० १ अग्ण० अणियद्दि० खवग॰
जह० द्विदि॰ वद्द० । आहार०-आहार०अंगो॰-तित्थय० मूलोघं । णविर इत्थिवेद॰
तित्थय॰ अपुन्वकरणाउवसामयस्स । सेसाणं प'चिदियतिरिक्लभंगो । णवुंस॰
खवगपगदीणं इत्थिभंगो । सेसं मूलोघं । अवगदवेदे ओघं ।

१३०. कोघ०-माण०-माया० खबुंसगभंगो । खबरि तित्थयरं श्रोघं । लोभे मूलोघं ।

१२९, स्त्रीवेदी श्रीर पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच श्वानावरण, चार दर्शनावरण, साता-वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर श्रनिवृत्तिच्चपक जो जघन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है । श्राहारक श्ररीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका खामी मूलोधके समान है । इतनी विशेषता है कि स्नोवेदमें तीर्थंङ्गर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी श्रपूर्वकरण उपशामक जीव है । इनके सिवा शेष सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी पञ्चेन्द्रिय तिर्थञ्चके समान है । नपुंसकवेदी जीवोंमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी मूलोधके समान है । श्रपगतवेदमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी मूलोधके समान है । श्रपगतवेदमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी श्रोधके समान है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद, पुरुषवेद अपने अपने सवेद भागतक होते हैं इसलिए इनमें दसवें गुण्स्थान श्रौर नौवें गुण्स्थानमें वँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी चपक ग्रीववृत्तिकरण जीवको कहा है, तथा इन दोनों वेदोंका उदय ग्रसंबी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके भी होता है, इसलिए शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवनधका खामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान कहा है। मात्र श्राहारकद्विक श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिवन्ध अपूर्वकरण चपकके होता है इसीलिएं इन तीनों प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी श्रपूर्वकरण ज्ञपक जीवको कहा है। यहाँ यह वात सबसे श्रधिक ध्यान देने योग्य है कि जिसके तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता होती है वह पुरुषवेदके साथ ही चपक श्रेणीपर श्रारोहण करता है, क्योंकि जो जीव तीर्थंकर होता है उसके जन्मसे एकमात्र पुरुषवेदका उदय होता इसलिए स्त्रीवेदमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उपशामक श्रपूर्वंकरण है। जीवको कहा है। नपुंसकवेदमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी स्त्रीवेदके समान है यह तो स्पष्ट ही है। मात्र नपुंसक वेदका उदय एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर होता है इसलिए इसमें शेप सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धंका खामी श्रोधके समान कहा है। अपगतवेदमें नौवें और दशवें गुणस्थानमें वंधनेवाली प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, क्योंकि यह संज्ञा नौवें गुणस्थानके श्रवेदमागसे प्रारम्भ होती है, इसलिए इसमें उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी श्रोधके समान कहा है।

१३०. कोघ कषायवाले, मान कषायवाले श्रीर माया कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका खामी श्रोधके समान है। तथा लोभ कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी मूलोधके समान है।

१३१. मदि०-सुद० तिरिक्खोघं । विभंगे पंचणा०-णवदंसणा० सादा०भिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-इस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदि०-वेछिव०-तेजा०क०-समचदु०-वेछिव० अंगो०-वएण० ४-देवाणु०-अगुरू० ४-पसत्थवि०-तस० ४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० जह० दिदि० कस्स० १ अएण० मणुस० सागारजा० सव्विद्यु० संजमाभिम्रह० । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह०
द्विदि० कस्स० १ अएण० चदुगदि० सत्थाणे सागार-जा० । इत्थि०-णवुंस०-पंचसंद्या०-पंचसंघ०-अण्यसत्थिव०-दूभग-दुस्सर-अणादे० जह० द्विदि० कस्स० १
अएण० चदुगदि० तप्पाओग्गविमुद्ध० । आयुगाणं मणजोगिभंगो । तिरिक्त्वग०
तिरिक्ताणुपु०-उज्जोव०-णीचा० जह० द्विदि० कस्स० १ अएण० सत्तमाए पुढवीए
भिच्छादि० सागार-जा० सव्विद्यु० सम्मत्ताभिमुह० । णिरयगदि-तिणिणजादि-णिरयाणु०-सुहुम-अपज्ञ०-साधार० जह० द्विदि० कस्स० १ अएण० तिरिक्ता० मणुस०
तपाओग्गविमु० । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-मणुसाणु०

विशेषार्थ—िकसी भी कषायके उदयसे जीव चपक श्रेणीपर आरोहण करता है और उसके तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध होनेमें कोई वाधा नहीं आती, इसलिए चारों कषायोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी श्रोधके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१३१. मत्यज्ञानी ग्रौर श्रुताज्ञानी जीवोंमें श्रुपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी साम।न्य तिर्यञ्जोंके समान है। विभक्षज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुर्स्नसंस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण-उच्चगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? थ्रन्यतर मनुष्य जो साकार जागृत है, सर्वविग्रुद्ध है **श्रौर संयमके श्र**भिमुख है वह उक्न प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है। श्रसाता वेदनीय, श्ररित, शोक, श्रस्थिर, श्रशुभ, श्रयशःकीर्ति इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर चार गितका जीव जो संस्थानमें श्रवस्थित है श्रीर साकार जागृत है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-वन्धका खामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर ग्रौर ग्रनादेय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? ग्रन्यतर चार गतिका जीव जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रायुकर्मकी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी मनोयोगी जीवोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत श्रौर नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर सम्यक्तवके श्रिभमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। नरकगित, तीन जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, सूदम, अपर्याप्त श्रीर साधारण इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिशामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। मनुष्यगति, श्रौदारिक शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन श्रौर मनुष्यगत्या- जह० ह्विदि० कस्स० १ श्रयण० देव० गोरइयस्स सागार-जा० सव्वविसुद्ध० सम्मत्ताभिम्रुह० । गईदि०-त्रादाव-थावर० मणजोगिभंगो ।

१३२. श्राभि०-सुद०-श्रोधि० खवगपगदीणं मूलोधं। णिदा-पचलाणं जह॰ द्विदि० कस्स० ? श्रग्ण० श्रपुच्वकरणखवग० चरिमे जह० द्विदि० वदृमा०। श्रसादा०-श्ररिद-सोग-श्रथिर-श्रम्भ-श्रजस० जह० द्विदि० कस्स० ? श्रग्ण० पमत्तसंज० सागार-जा० तप्पाश्रोग्गविस्त०। हस्स-रदि-भय-दुगुं० जह० द्विदि० कस्स० ? श्रग्ण० श्रपुच्व०खवग० चरिमे जह० द्विदि० वद्द०। मणुसायु० जह० द्विदि० कस्स० ? श्रग्ण० देव० गरइ० सागार-जा० तप्पाश्रोग्गसंकिलि०। देवायु०

मुपूर्वी इन प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर सम्यक्तवके श्रीममुख है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका खामी है। एकेन्द्रिय जाति, श्रातप श्रीर स्थावर प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्ध का स्वामी मनोयोगी जीवों के समान है।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान श्रीर श्रुताज्ञान तिर्यञ्चांके भी होता है श्रीर इन दोनों मार्ग एश्रों में ज्ञान्य स्थितिवन्ध तिर्यञ्चांकी श्रपेता ही सम्भव है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके ज्ञान्य स्थितिवन्धका स्वामी तिर्यञ्चांके समान कहा है। विभन्न ज्ञान चारों गितयोंमें सम्भव है पर इसके रहते हुए संयमके श्रिभमुख परिणाम मनुष्यगितमें ही हो सकते हैं श्रीर ऐसे जीवके ही ज्ञान्य स्थितिवन्ध होगा, इसलिए प्रथम दण्डकमें कही हुई प्रकृतियोंके ज्ञान्य स्थितिवन्धका स्वामी संयमके श्रिभमुख विभन्नज्ञानी मनुष्य कहा है। दूसरे श्रीर तीसरे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ गिनाई हैं उनका ज्ञान्य स्थितिवन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए उनके ज्ञान्य स्थितिवन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए उनके ज्ञान्य स्थितिवन्धका स्वामी चारों गितयांका विभन्नज्ञानी जीवकहा है। सातवं नरकमें मिथ्यादिष्के तिर्यञ्चगित श्रादिका हो बन्ध होता है, इसलिए सम्यक्तके श्रिभमुख होने पर मो इसके इन प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है। ज्ञव कि श्रन्यत्र ऐसी श्रवस्थाके प्राप्त होने पर इन प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है। यदि विचार कर देखा ज्ञाय तो विभन्नज्ञानमें ऐसे जीवके हो उक्त प्रकृतियोंका ज्ञान्य स्थितिवन्धका स्वामी सातवीं पृथिवीका विभन्नज्ञानी जीव कहा है। श्रेष कथन स्पष्ट ही है।

१३२. श्राभिनिवोधिकहानी, श्रुतहानी श्रीर श्रविधहानी जीवोंमें ज्ञपक प्रकृतियोंके ज्ञधन्य स्थितिवन्धका स्वामी मूलोधके समान है। निद्रा श्रीर प्रचला प्रकृतियोंके ज्ञधन्य स्थितिवन्धका स्वामी कीन है श्रुन्यतर श्रपूर्वकरण ज्ञपक जो श्रन्तिम ज्ञधन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त दोनों प्रकृतियोंके ज्ञधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। श्रुसाता वेदनीय, श्रुर्तत, श्रोक, श्रास्थर, श्रश्रुम श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके ज्ञधन्य स्थितिवन्धका स्वामी कीन है श्रुन्यतर प्रमत्तसंयत जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके ज्ञधन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। हास्य, रित, भय श्रीर जुगुण्सा प्रकृतियोंके ज्ञधन्य स्थितिवन्धका स्वामी कीन है श्रुन्यतर श्रपूर्वकरण ज्ञपक को श्रन्तिम ज्ञधन्य स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके ज्ञधन्य स्थितिवन्धका स्वामी कीन है श्रुन्यतर देव श्रीर नारकी जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य संक्षेश परिणामवाला है वह मनुष्यायुके ज्ञधन्य

जह० द्विदि० कस्स० १ अएए। तिरिक्त० मणुस० तप्पाओग्गसंकिति। मणुसग०ओरालि॰-ओरालि॰ अंगो॰-वज्जरिसम०-मणुसाणु॰ जह० द्विदि० कस्स० १
अएए। देव० ऐरइ० सागार-जा० सन्विवसुद्ध०। देवगदि एवं पसत्थत्तीसं जह०
द्विदि० कस्स० १ अएए। अपुन्व० त्ववग० परभवि० वंधचरिमे वट्ट०। अप्पखक्ता०४ जह० द्विदि० कस्स० १ अएए। मणुस० असंज० सागार-जा० सन्वविसु० संजमाभिग्रह०। पच्चक्ताणा०४ जह० द्विदि० कस्स० १ अएएद० मणुस०
संजदासंजद० सागार-जा० सन्वित्तु० संजमाभिग्रह०। मणपज्जव० ओधिभंगो।
एवरि देवायु० जह० द्विदि० कस्स० १ अएएए० पमत्तसंज० तप्पाओ०संकिति।

१३३. संजदा॰ मण्पज्जवभंगो । सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-

स्थितिवन्धका स्वामी है। देवायुके जधन्य स्थितिबन्धका है ? श्रन्यतर तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। मनुष्यगित, श्रौदारिक शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग,वज्रर्षम-नाराचसंहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रौर नारकी जो साकार जागृत है श्रौर सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । देवगतिसे लेकर प्रशस्त तीस प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-वन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर अपूर्वकरण चपक जो परभव सम्बन्धी प्रकृतियोंके वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य वन्धके ग्रन्तमें श्रवस्थित है ·स्वामी है। श्रप्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है **?** ग्रन्यतर मृतुष्य प्रासंयत सम्यग्दिष्ट जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है ग्रौर संयमके श्रभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरण चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कीन है ? ग्रन्यतर मनुष्य संयतासंयत जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर संयमके श्रभिमुख है वह उक्क चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी है। मनःपर्धयक्षानमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी अवधिकानीके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके जघन्य स्थितबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थिति बन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ — आभिनिवोधिक आदि तीन झान चौथेसे लेकर वारहवें गुणस्थानतक होते हैं। इनमें चएकश्रेणिकी प्राप्ति भी सम्भव है, इसलिए ३६ प्रकृतियोंका चएकश्रेणिके आठवें गुणस्थानमें, ४ का नौवेंमें और १० का दसवेंमें जघन्य स्वामित्व कहा है। शेष प्रकृतियोंके विषयमें जहां जिनकी बन्धन्युच्छित्ति होती है और जिनके उनका बन्ध होता है इन दो वातोंको ध्यानमें रखकर उनके जघन्य स्वामित्वका विचार किया है। शेष विशेषताएँ मूलमें कही ही हैं। मनःपर्ययक्षान ६ छठवें गुणस्थानसे होता है। अतः जितनी प्रकृतियोंका वन्ध इसके होता है उनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामित्व अवधिक्षानी जीवके भी छठवें आदि गुणस्थानों ही प्राप्त होता है, इसलिए मनःपर्ययक्षानमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी अवधिक्षानी जीवोंके समान कहा है। मात्र देवायु इसका अपवाद है। कारण कि देवायु का जघन्य स्थितिवन्ध अवधिक्षानीके चतुर्थ गुणस्थानमें होता है और मनःपर्ययक्षानमें प्रमत्तसंयतके होता है, इसलिए इतनी विशेषता अलगसे कही हैं।

१३३. संयत जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मनःपर्यय-

लोभसंज॰-जस०-उच्चा०-पंचंत॰ जह॰ द्विदि॰ कस्स॰ १ अएए। अणियद्वित-वगस्स चरिमे द्विदि॰ वद्द० । सेसं संजदभंगो । परिहार॰ आहारकायजोगिभंगो । एवरि सामित्तदो सद्दाणेसु याओ सन्विवसुद्धाओ ताओ दंसणमोहणीयखवगस्स से काले कदकरणिज्जो होहिदि ति अथवा सत्थाणे अप्पमत्तसन्वसुद्ध० । सेसाणं आहारकायजोगिभंगो । सुहुमसंपरा॰ ओघं ।

१३४. संजदासंजदा॰ पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-ग्रहकसा०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पसत्थद्वावीस-तित्थयर-उच्चा०-पंचंत० जह० द्विदि०

हानी जीवोंके समान है। सामायिक संयत श्रीर छेदीपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच हाना-वरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, लोम संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र श्रीर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी कौन है श्रुम्यतर श्रनिवृत्तिचपक जो श्रन्तिम स्थितिवन्धमें श्रवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी संयत जीवोंके समान है। परिहारिवशुद्धसंयत-जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी श्राहारककाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि स्वस्थानमें जो सर्वविशुद्ध परिणामोंसे बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनको जो तदनन्तर समयमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्हिए होगा ऐसा दर्शनमोहनीयका चपक जीव जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है, श्रथवा स्थानमें जो अप्रमतसंयत है, सर्व विशुद्ध परिणामवाला है वह उन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी श्राहारककाययोगी जीवोंके समान है। सूदमसाम्परायसंयत जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्रोघके समान है।

विशेषार्थ—बन्धकी श्रपेक्षा मनःपर्ययद्यानी श्रीर संयत जीवोंकी स्थिति एक समान है, इसिलए संयतोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी मनःपर्ययद्यानके समान कहा है। सामायिक संयत और छुदोपस्थापनासंयत मात्र नोवें गुणस्थानतक होते हैं इसिलए इन लिए इनमें दसवें गुणस्थानमें वन्धव्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खानित्व क्षपक श्रनिवृत्तिकरणको दिया है। शेष स्थिति संयत जीवोंके समान है, इसिलए इन दोनों संयतोंके शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी संयत जीवोंके समान कहा है। परिहारिवशुद्ध संयत जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धके खामित्वको दो भागोंमें विभक्त कर दिया है—जो वहां सर्वविशुद्ध परिणामोंसे प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी श्रलगसे कहा है श्रीर शेष श्रसाता श्रादि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामित्व श्राहारककायजोगी जीवोंके समान कहा है। श्राशय यह है कि पाँच ज्ञानावरण श्रादि जिन प्रकृतियोंका सातवें गुणस्थानमें वन्ध होता है उनके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी या तो जो श्रनन्तर समयमें चायिकसम्यग्दिष्ट होगा ऐसा कृतकृत्य वेदक सम्यग्दिष्ट जीव कहना चाहिए या सम्थानमें ही सर्वविशुद्ध परिणामवाला श्रप्रमत्तसंयत जीव कहना चाहिए श्रीर श्रसाता श्रादि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी श्राहारककाययोगी जीवोंके समान तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला प्रमत्तसंयत जीव कहना चाहिए।

१३४. संयतासंयत जीवोंमें पांच श्वानावरण, छह दर्शनावरण, स्वातावेदनीय, श्राठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, देवगित श्रादि प्रशस्त श्रद्ठाईस प्रकृतियाँ, तीर्थेङ्कर, उच्चगोत्र श्रीर पांच श्रन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कीन

कस्स॰ १ अएए। मणुस॰ सागार-जा॰ सन्विवसुद्ध॰ संजमाभिग्रह॰ । असादा॰-अरिद-सोग-अथिर-असुभ-अजस॰ जह॰ हिदि॰ कस्स० १ अएए। सत्थाणे तप्पा-आगिगविसुद्ध॰ । देवायु॰ जह॰ हिदि॰ कस्स॰ १ अएए। तिरिक्ख॰ मणुस॰ तप्पाओग्गसंकिलि॰ । असंजदा॰ मिद०भंगो । एवरि तित्थयरं जह॰ हिदि॰ कस्स० १ अएए। सम्मादि॰ मणुस० सागार-जा॰ सन्विवसु० संजमाभिग्रह॰ ।

१३५. चक्खुदं॰ खवगपगदीत्रो वेजिव्वयद्यकं मूलोघं। सेसाएं चदुरिंदिय-पज्जत्तभंगो। अचक्खु॰ मूलोघं। श्रोधिदं० श्रोधिएएणिभंगो।

है। श्रन्यतर मनुष्य जो साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है श्रौर संयमके श्रीममुख है वह उक्ष प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। श्रसातावेदनीय, श्ररति, शोक, श्रस्थिर, श्रश्म, श्रयशःकीर्ति प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर खस्थानवर्ती तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। देवायु के जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। श्रसंयत जीवों में श्रपनी सव प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका खामी मत्यक्षानियों के समान है। इतनी विशेष्तता है के तीर्थ कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर सम्यग्हिष्ट मनुष्य जो साकारजागृत है, सर्व विशुद्ध है श्रौर संयमके श्रिममुख है वह तीर्थ द्वर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्यतर सम्यग्हिष्ट मनुष्य जो साकारजागृत है, सर्व विशुद्ध है श्रौर संयमके श्रिममुख है वह तीर्थ द्वर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है।

विशेषार्थ —संयतासंयतोंका एक ही गुण्स्थान है। यहां संयमके सन्मुख हुए जीवके पाँच ज्ञानावरणादिका सबसे जघन्य स्थितवन्ध होता है इसलिए इनके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी ऐसा मनुष्य कहा है श्रीर शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितवन्ध स्थ्यानमें ही होता है श्रतः उनके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी स्थ्यानवर्ती तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य कहा है। श्रसं-यतोंमें जघन्य स्थितवन्धकी श्रणेचा एकेन्द्रिय तिर्यञ्चोंकी मुख्यता है। मत्यज्ञानियोंमें भी जघन्य स्थितवन्धके स्वामीका विचार एकेन्द्रियोंकी अपेचा किया है, इसलिए श्रसंयतोंमें सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी मत्यज्ञानियोंके समान कहा है। मात्र जिन प्रकृतियोंका एकेन्द्रियोंके वन्ध नहीं होता उन प्रकृतियोंका विचार जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके विचारके समय कर श्राये हैं उस प्रकारसे करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंके या मत्यज्ञानियोंके तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध नहीं होता इसलिए यहाँ इसके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्रलगसे कहा है।

१३४. चजुदर्शनवाले जीवोंमें च्रापक प्रकृतियाँ श्रीर वैक्रियिक छहके जघन्य स्थिति-वन्धका खामी मूलोघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी चतु-रिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है। श्रवश्चदर्शनवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-वन्धका खामी मूलोघके समान है। श्रवधिदर्शनवाले जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी अवधिक्षानियोंके समान है।

विशेषार्थ—चजुदर्शन चतुरिन्द्रिय जीवोंसे लेकर चीणकषाय गुणस्थान तक होता है श्रीर श्रवजुदर्शन एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर चीणकषाय गुणस्थान तक होता है। इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामित्व मूलमें कही गई विधिके श्रनुसार बन जाता है। श्रवधिदर्शनीमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका स्वामी श्रवधिक्षानियों के समान है यह स्पष्ट ही है।

१३६. [किएए॰-एील॰-काउ॰ अप्पप्पणो पगदीएं असंजदभंगो । एवरि] किएए॰-एील॰ तित्थय॰ जह॰ द्विदि॰ कस्स॰ १ अएए।० मणुस॰ असंजदस॰ सन्वविसु० । काउ॰ ऐरइ॰ सन्वविसु॰ ।

१३७. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पसत्थएकत्तीस-उच्चा०-पंचंत० जह० हिदि० कस्स० १ अग्ण्ए० अप्पमत्तसंज० सन्विवसु० । थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त-अग्णंताणुवंधि०४ जह० हिदि० कस्स० १ अग्ण् मणुस० सन्विवसु० संजमाभिग्रह० । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० हिदि० कस्स० १ अग्ण् पमत्तसंज० तप्पाओग्ग-विसुद्ध० । अपच्चक्लाणा०४ जह० हिदि० कस्स० १ अग्ण् मणुस० असंजद० सागार-जा० सन्विवसु० संजमाभिग्रह० । पच्चक्लाणा०४ जह० हिदि० कस्स० १ अग्ण् मणुस० संजदासंजद० सागारजा० सन्विवसु० संजमाभिग्रह० । इत्थि०-

१३६. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें अपनी अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग असंयतों के समान है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण लेश्या और नील लेश्यावाले जीवोंमें तीर्थं कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका खामी कीन है ? अन्यतर मनुष्य जो असंयत सम्यग्दिए है और सर्वविशुद्ध है वह तीर्थं कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है। कापोत लेश्यामें जो नारकी सर्वविशुद्ध है वह तीर्थं कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है।

विशेपार्थ — कृष्ण, नील श्रीर कापोत लेश्या श्रसंयतों के होती है श्रीर श्रसंयतों में जघन्य स्थितवन्धकी श्रपेत्ता एकेन्द्रियों की नरकायु व देवायुकी श्रपेत्ता पञ्चेन्द्रियों की श्रीर नरकगित छहकी श्रपेत्ता श्रसंक्रियों की मुख्यता है, इसिलए इन छेश्याश्रों में सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितवन्धका खामी श्रसंयतों के समान कहा है। मात्र तोर्थ कर प्रकृतिका बन्ध इन जीवों के नहीं होता, इसिलए इसके जघन्य स्थितवन्धके खामीका कथन श्रलगसे किया है। इतना श्रवश्य है कि नरकगितमें तीर्थ कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीवके कृष्ण श्रीर नील लेश्या नहीं होती, इसिलए इन लेश्याश्रों में तीर्थ कर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका खामी असंयत सम्यग्दिष्ट मनुष्य कहा है श्रीर कापोत छेश्यामें नारकी जीव कहा है।

१३७. पीतलेश्यामें पांच शानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुण्सा, देवगित श्रादि प्रशस्त इकतीस प्रकृतियाँ, उद्य गोत्र श्रीर पांच श्रन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर श्रप्रमत्त संयत जीव जो सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर मनुष्य जो सर्वविशुद्ध है श्रीर संयमके श्रीममुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । श्रम्रातावेदनीय, श्ररित, शोक, श्रस्थिर, श्रग्रुम श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । श्रम्रत्याक्यानावरण चारके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । श्रप्रत्याक्यानावरण चारके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर मनुष्य जो श्रसंयत सम्यग्दिष्ट है साकारजागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर संयमके श्रमिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर मनुष्य जो संयतासंयत है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर संयमके श्रमिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके अधिमुख है श्रीर संयमके श्रमिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके श्रिममुख है श्रीर संयमके श्रमिमुख है श्रीर संयमके श्रमिमुख है स्र श्रीर संयमके श्रमिमुख है स्र श्रीर संयमके श्रमिमुख है स्र स्वित्वन्धका स्वामी कौन है ?

णबुं स०-एइंदियजादि-पंचसंग०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-श्रादाउज्जो०-श्रप्पसत्थवि०-थावर-दूभग-दुस्सर-श्रणादे०-णीचा० जह० द्विदि० कस्स० १ श्रण्णा० देवस्स भिच्छा० तप्पाश्रोग्गविसुद्ध० । दोश्रायु० जह० द्विदि० कस्स० १ श्रण्णा० देवस्स तप्पाश्रोग्गसंकिलि० । देवायु० जह० द्विदि० कस्स० १ श्रण्णा० तिरिक्ख० मणुस० भिच्छादि० तप्पाश्रोग्गसंकिलि० । मणुसग०-श्रोरालि०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० द्विदि० कस्स० १ श्रण्ण० देवस्स सम्मादि० सव्व-विसु० । एवं पम्माए । णवरि एइंदिय-श्रादाव-थावरं णित्थ ।

१२८. सुकाए मणजोगिभंगो । राविर इत्थि०-रावुं स०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-श्रप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-श्रणादे०-राीचागो० जह० हिदि० कस्स० १ श्रएण० देवस्स मिच्छादि० तप्पाश्रोग्गविसुद्ध० ।

१३६. भवसिद्धि॰ श्रोघं । श्रन्भवसिद्धि० मदिय०भंगो ।

१४०. सम्मादि ०-खइग० श्रोधि ० भंगो । वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-

है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका सामी है। स्रीवेद, नपुंसक्वेद, एकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, ज्ञातप, उद्योत, ज्रप्रशस्त विहायोगति स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका सामी कौन है ? अन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका सामी है। दो आयुओं के जघन्य स्थितवन्धका सामी कौन है ? अन्यतर देव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह दो आयुओं के जघन्य स्थितिवन्धका सामी है। देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका सामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका सामी है। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपङ्ग, वज्रपंभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिवन्धका सामी कौन है ? अन्यतर देव जो सम्यग्दृष्टि है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका सामी कौन है ? अन्यतर देव जो सम्यग्दृष्टि है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका सामी कौन है ! इसी प्रकार पद्म लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इस लेश्याचाले जीवोंके एकेन्द्रिय, आतप श्रीर स्थावर प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता।

१३८. शुक्कलेश्यामें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःखर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? श्रन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिमाणवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है।

१३६. भन्य जीवोंमें सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी श्रोघके समान है। श्रभन्य जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी मत्यक्षानियोंके समान है।

१४०. सम्यग्हिए श्रीर ज्ञायिक सम्यग्हिए जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिषन्धका स्वामी श्रविधानियोंके समान है। चेदकसम्यग्हिएयोंमें पाँच श्रानावरण, छह

चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पसत्थएकत्तीस-उच्चागो०-पंचंत० जह० हिदि० कस्स० १ अएए० अप्पमत्तसंजद० सन्विवसु० अथवा दंसणामोह- खवगस्स कदकरिएजो होहिदि ति । सेसं ओधिभंगो । उवसम० ओधिभंगो । एविर खवगपगदीएं उवसमगे कादन्वं ।

१४१. सासणे पंचणा॰-णवदंसणा०-सादावे-०सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय०-दुगुं०-पंचिदिय०-तेजा०-क०-समचदु०-वणण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमिण-उच्चागो०-पंचंत० जह० द्विदि० कस्स० १ अणण० चदुगदि० सागार-जा० सव्वविसु० । असादा०-इत्थि०-अरदि—सोग-चदुसंठा०-चदुसंघ०-अप्प-सत्थ०-अथिरादिछक्क० जह० द्विदि० कस्स० १ अणण० १ चदुगदिय० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० । तिरिक्खायु०-मणुसायु० जह० द्विदि० कस्स० १ अणण० देव० णेरइ० तप्पाओग्गसंकिति० अथवा चदुगदियस्स तप्पाओग्गसंकिति० । देवायु० जह० द्विदि० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्खण्य मणुस० तप्पाओग्गसंकिति० । तिरिक्खण्य ०-उज्जोव-णीचा० जह० द्विदि० कस्त० १ अण्ण०

दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, देवगित आदि इकतीस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियाँके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव जो सर्वविशुद्ध है वह अथवा जो अनन्तर समयमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दिष्ट होगा ऐसा दर्शनमोहनीयका चापक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी अवधिक्वानियोंके समान है । उपश्रमसम्यग्दिष्ट जीवोंमें अपनी सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी अवधिक्वानियोंके समान हो। इतनी विशेषता है कि इनमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी उपश्रामकको कहना चाहिए।

१४१. सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुष्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अशस्तिविद्दायोगित, अस चतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर चार गतिका जीव जो साकार जागृत है श्रीर सर्वविद्युद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । श्रसाता वेदनीय, स्त्रीवेद, श्ररित, श्रोक, चार संस्थान, चार संहनन, श्रप्रशस्त विद्दायोगित और श्रस्थिर श्रादि छह प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर चार गतिका जीव जो साकार जागृत है श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह श्रथवा चार गतिका जीव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त दोनों श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्रेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्च गति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी गति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी

सत्तमाए पुढवीए ऐरइ० सन्विवसु० । मणुसग०-त्रोरालि०-त्रोरालि०त्रांगो०-वज्ज-रिसम०-मणुसाणु० जह० द्विदि० कस्स० १ त्रारण्० देव० ऐरइय० सन्विवसु० । देवगदि०४ जह० द्विदि० कस्स० १ त्रारण्० तिरिक्ख० मणुस० सन्विवसु० ।

१४२. सम्मामिच्छा० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-वारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुंगुं ७-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वएण्०४-त्रग्रुरु०४-पसत्यॅ०-तस०४-थिरादिछक-िणमिण-उचा०-पंचंत० जह० हिदि० कस्स० १ त्र्रारण० चदुगदियस्स सागार-जा० सन्वविसु० सम्मत्ताभिग्रह०। असादावे०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह्० द्विदि॰ कस्स० १ अएगा॰ चदुगिदयस्स सत्थाणे तपात्रोगिवसु०। मणुसग०-त्रोरालि॰-त्रोरालि०त्रंगो॰-वज्जरिसंभ०-मणुसाणु॰ जह० हिदि० कस्स १ त्रपण् देव ॰ ऐरइ ॰ सन्वविद्ध ॰ सम्मत्ताभिग्रह ॰ । देवगदि ०४ जह ॰ हिदि ॰ कस्स० १ ऋएए० तिरिक्त० मणुस० सागार-जा० सव्वविद्य० सम्मत्ताभिग्रह० । मिच्छादिही० मदिय०भंगो। सिएए० मणुसभंगो। असिएए० तिरिक्लोघं। आहार० मूलोघं । त्रणाहार॰ कम्मइगभंगो । एवं जहएएएगो समत्तो । एवं सामित्तं समत्तं । कौन है ? श्रन्यतर सातधीं पृथिवीका नारकी जो सर्वविद्युद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका खामी है। मनुष्यगति, श्रौदारिक शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षमनाराच संहनन श्रोर मनुष्य गत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंने जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो सर्वविशद है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिव्रन्धका स्वामी है देवगति चतुष्कके जघन्य स्थितिवन्धका खामी कौन है ? श्रन्तर तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य जो सर्व-विशद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है ।

१४२. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर ग्रादि छुह, निर्माण, उचगोत्र ग्रीर पांच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी कीन है ? ग्रन्यतर चार गतिका जीव जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है श्रीर सम्यक्तवके श्रमिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। श्रसाता चेदनीय, ग्ररति, शोक, ग्रस्थिर, ग्रग्रुभ ग्रीर ग्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर चार गतिका जीव जो स्वस्थानस्थित तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम-वाला है वह उक्त।प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्वामी है। मनुष्य गति, श्रौदारिक शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्पभनाराच संहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्घका स्वामी कौन है ? श्रन्यतर देव श्रीर नारकी जो सर्वविशुद्ध है श्रीर सम्यक्तवके श्रभिमुख है वह उक्ष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी है। देवगित चतुष्कके जघन्य स्थितवन्यका खामी कौन है ? ग्रन्यतर तिर्यञ्च ग्रौर मनुष्य जो साकार जागृत है, सर्वविद्युद्ध है ग्रीर सम्यक्त्वके ग्रमिमुख है वह उक्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी है। मिथ्या-दृष्टि जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका खामी मत्यज्ञानियोंके समान है। संज्ञी जीवोंमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्घका स्वामी मनुष्योंके समान है। श्रसंही जीवोंमें तिर्यञ्चोंके समान है। श्राहारक जीवोंमें मृलोघके समान है श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें कार्मण काययोगी जीवोंके समान है। इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ। इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

बंधकालपरूवगा

१४३. कालं दुविधं—जहराणयं उकस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे पंचणा०-एवदंस०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-श्रोरालिय०-तेजा०-क०-वरण् ४-श्रगु०-उव०-णिमि०-पंचंतराइगाणं उक्कस्सश्रो हिद्विधं केविचरं कालादो होदि १ जहरणेण एगसमयं, उक्कस्सेण श्रंतोग्रहुत्तं । श्रणुक्कस्सहिद्विवं केविचरं १ जह० श्रंतो०, उक्क० श्रणंतकालं श्रसंखेज्जपोग्गलपिरयहं । एविर श्रोरालि० जह० एगस०। सादासादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-श्ररिद-सोग-ण्रियगदि-एइंदि०-वीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०-श्राहारदुग-पंचसंटा०-पंचसंघ०-णिर—याणु०-श्रादाउज्जो०-श्रप्यसत्थवि०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभास्भ-दृभग-दुस्सर-श्रणादे०-जस०-श्रजस० उक्क० श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०।पुरिस० उक्क० हिदि० जह० एग०, उक्क० वे छाविह० सादि०। चदुरणं श्रायु० उक्क० हिदि० जह० एग०, एकक० वे छाविह० सादि०। चदुरणं श्रायु० उक्क० हिदि० जह० एगस०। श्रणुक्क० हिदि० जह० श्रंतो०। एवं याव श्रणाहारग त्ति सरिसो कालो। एविर जोग-कसा-एसु श्रणुक्क० हिदि० जह० एग०। तिरिक्लगदि-तिरिक्लाणु०-णीचा० उक्क०

वंधकाल प्ररूपगा

१४३. काल दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकार है—श्रोघ श्रौर श्रादेश । श्रोघकी श्रपेत्ता पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण श्रौर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कितना काल है। जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल श्रन्त-र्मुहूर्त है। श्रनुकृष्ट स्थितिवन्धका कितना काल है? जघन्यकाल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रमन्तकाल है जो श्रसंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि श्रीदारिक शरीरके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है। सातावेदनीय, श्रसाता वेद-नीय, स्त्रीवेद, नपु सक वेद, हास्य, रति, श्ररति, शोक, नरकगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, ब्राहारक द्विक, पांच संस्थान, पांच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रादि चोर, स्थिर, श्रस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रवुक्तप्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्क्रप्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। पुरुष वेदके उत्क्रप्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्क्रप्ट काल श्रन्तमु हूर्त हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल साधिक दो छयासठ सागर प्रमाण है । चार त्रायुत्रोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य त्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। इस प्रकार ग्रनाहारक मार्गणातक चार ग्रायुश्रोंका समानकाल है। इतनी विशेषता है कि योगोंमें श्रीर कपायोंमें उनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर हिदि॰ जद्द॰ एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० जह० एग॰, उक्क० असंखेजा लोगा । मणुसग॰-वज्जिरसभ०-मणुसाणु उक्क० द्विदि॰ जह० एग॰, उक्क० अंतो॰ । अणुक्क॰ जह॰ एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० । देवगिद०४ उक्क० हिदि॰ जह॰ एगस॰, उक्क० अंतोग्र० । अणुक्क० हिदि॰ जह॰ एगस॰, उक्क॰ तिएण पिलदो॰ सादि॰ । पंचिदि०-पर०-उस्सास-तस-वाद्र पज्जत्त-पत्तेय० उक्क० हिदि॰ जह० एग०, उक्क० अंतो॰ । अणुक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं । समचदु०-पसत्थवि॰-सुभग-सुस्सर-आदे॰-उचा॰ उक्क० हिदि॰ जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक हिदि॰ जह० एग०, उक्क० वेद्याविहसाग॰ सादि॰ तिएण पिलदो० देस्॰ । ओरालि॰अंगो॰ उक्क० हिदि॰ जह॰ एग०, उक्क० अंतो०। अणुक्क० हिदि॰ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि॰ । सत्तमादो णिग्गमंतस्स सादिरेयं। तित्थयरं उक्क० हिदि॰ जह० अंतो०, उक्क० अंतो॰ । अणुक्क० हिदि॰ जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं० सादि॰।

उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल ग्रसंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, वजूर्वभूनाराच संहनन ग्रौर मनुष्य-गत्यानु पूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितियन्धका जघन्यकाल एक समय श्रीर उत्कृष्टकाल तैंतीस सागर है। देवगति चतुष्कके उत्कृप्ट स्थितियन्थका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल श्रन्तर्भुहुर्त है। श्रनुकृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक तीन पत्य है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रसकाय, वादर, पर्याप्त और प्रत्येकके उत्कृष्ट स्थितियन्धका जघन्यकाल एक समय हैं श्रीर उत्कृएकाल श्रन्तमु हूर्त है। श्रनुत्कृए स्थिति-यन्थका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल एकसी पचासी सागर है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुखर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रोर उत्कृष्टकाल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रवुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक दो छयासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है। श्रीदारिक शरीर श्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल अन्तर्मु हुर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेंतीस सागर है जो सातवीं पृथ्वीसे निकलनेवाले जीवके साधिक होता है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितियन्थका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृपकाल श्रन्तर्मु हुर्त है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल श्रन्तर्मु हुर्त है श्रीर उत्कृष्टकाल साधिक तीन सागर है।

विशेषार्थ—यहां एक जीवकी अपेना कालका विचार किया जा रहा है। साधारणतः सव प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धके योग्य परिणाम कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक होते हैं, इसिलए सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र तीर्थं कर प्रकृति इस नियमका अपवाद है, क्यों कि उसकी कोई प्रतिपन्न प्रकृति न होनेसे उसके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है। यहां पर मुख्यक्षपसे विचार अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके कालके सम्बन्धमें करना है। यह हम पहले ही वतला आये हैं कि कुळ वन्धयोग्य १२० प्रकृतियाँ

१४४. त्रादेसेण णेरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु'गु०-तिरिक्खगदि-पंचिदि०-स्रोरालिय०-तेजा०-क०-स्रोरालि०स्रंगो०-वरण्०४-

हैं और उनमें ज्ञानावरण पाँच ग्रादि सेंतालीस ध्रुववन्धनी प्रकृतियां हैं। इनमें श्रीदारिक शरीरके मिलाने पर कुल ४८ प्रकृतियां होती हैं। इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्महर्त श्रीर उत्कृष्ट काल अनन्तकाल वतलाया है। सो इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके बाद इनका कमसे कम अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्त कालतक नियमसे होता है तभी पुनः उत्कृष्ट स्थितिवन्धके योग्य परिगाम होते हैं। पर यदि कोई जीव त्रस पर्यायके विनानिरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें परिभ्रमण करता रहे तो उसे उत्कृष्ट रूपसे अनन्तकाल लगता है। तव जाकर वह त्रसहोता है और त्रसहोनेपर भी संज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होनेपर ही इनकां उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहुर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल कहा है। औदारिकशरीर भ्रवबन्धिनी प्रकृति नहीं है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट स्थितियन्धका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है। पर एकेन्द्रिय पर्यायमें वैक्रियिक शरीरके वन्धकी योग्यता न होनेसे निर-न्तर श्रौदारिकशरीरका ही वन्ध होता रहता है, इसिछए ध्रुववन्धिनी प्रकृतियोंके समान इसका भी उत्क्रप्रकाल श्रनन्तकाल कहा है। इसके वाद साता श्रादि ४१ प्रकृतियोंके श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जो जघन्यकाल एक समय श्रीर उत्कृप्टकाल श्रन्तर्मुहुर्त कहा है। सो इसका कारण यह है कि श्राहारकद्विकके विना ये सब प्रतिपत्त प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके त्रनुत्रुष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय ग्रीर उत्रुष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त वन जाता है। तथा गुगुस्थानोंके परिवर्तनके निमित्तसे ग्राहारकद्विकका भी जघन्य काल एक समय वन जाता है। उत्कृष्ट काल ऋन्तर्सुहूर्त स्पष्ट ही है। कोई जीव वीचमें सम्यग्मिण्यात्वको प्राप्त होकर साधिक दो छ्यासठ अर्थात् १३२ सागरतक सम्यक्त्वके साथ रह सकता है । इसीसे यहां पुरुषवेदके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर कहा है, क्योंकि इस जीवके न तो पुरुष वेदका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है श्रीर न स्त्री वेद तथा नपुंसक वेदका ही बन्ध होता है। श्रायुत्रोंका उत्कृष्ट त्रिभागके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, वाकी श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध ही होता है। इसीसे चारों श्रायुत्रोंके श्रनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र योग श्रोर कपायके परिवर्तनके कारण इन मार्गणात्रोंमें इनके त्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय भी वन जाता है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इनके इतने कालतक तिर्यञ्चिद्धिक और नीचगोत्रका ही वन्ध होता है। इसी से इन तीन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। देवसम्यग्दिषका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसके इतने कालतक मनुष्यद्विक श्रीर वज़र्षभनाराच संहननका नियमसे वन्ध होता है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर कहा है। जो मनुष्य सम्यग्दिए जीव भोगभूमिमें जन्म लेता है उसका दोनों पर्यायोंका काल साधिक तीन पत्य होता है। इसके देवगति चतुष्कका नियमसे वन्ध होता है। इसीसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्टकालसाधिक तीन पल्य कहा है। इसी प्रकार शेष रही प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके कालका विचार कर लेना चाहिए।

१४४. ग्रादेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, ग्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण तिरिक्लाणु॰-अगुरु॰४-तस॰४-िणिम॰-णीचा॰-पंचंत॰ उक्क॰ हिदि० जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰ । अणुक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ तेत्तीसं० । पुरिस॰-मणुसग॰-समचदु०-वज्जरिसभ॰-मणुसाणु॰-पसत्थिव०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा॰ उक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ तेत्तीसं साग॰ देस्० । तित्थयर॰ उक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰। अणुक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰। अणुक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰। अणुक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ तिरिणसागरो॰ सादि॰। सेसाणं उक्क॰ अणुक्क॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰। एवं सत्तमाए पुढवीए। एवरि मणुसगदि-मणुसाणु॰-उचा॰ उक्क॰ हिदि॰ जहण्युक्क॰ अंतो॰। अणु॰ हिदि॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं साग॰ देस्०। तित्थयरं च वज्ज॰। पढमादि अहि ति तिरिक्लग॰-तिरिक्लाणु-णीचा॰ सादभंगो। सेसं णिरयोघं। एवरि अप्पप्पणो हिदि काद॰वं। तित्थयर॰ उक्क॰ हिदि॰ णिरयोघं। अणु हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ सागरो॰ देस्० तिरिण साग॰ देसु॰ तिरिण साग॰ सादि॰।

शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृपकाल अन्तर्महुर्त है। अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्ह्रप्रकाल तेतीस सागर है। पुरुषचेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभ-नाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुखर, श्रादेय श्रीर उचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहुर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितियन्थका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्त-र्मुहुर्त है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रौर उत्कृप्ट काल साधिक तीन सागर है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँपर मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृपकाल अन्तर्मुहूर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। परन्तु यहाँपर तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध नहीं होता। पहिली पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवीतक तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीच-गोत्रके उत्कृष्ट और त्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल साता प्रकृतिके कालके समान है। तथा शेप प्रकृतियोंका उक्त काल सामान्य नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिए। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल सामान्य नारिकयोंके समान है। श्रवुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल प्रथमादि तीन पृथिवियोंमें क्रमसे कुछ कम एक सागर, कुछ कम तीन सागर श्रीर साधिक तीन सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ—सातवें नरकमें पाँच ज्ञानावरण श्रादि प्रथम दण्डकमें कहीं गई ५९ प्रकृ-तियोंका मिथ्यादि नारकीके निरन्तर वन्ध होता रहता है, इसिलए इनके श्रमुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई पुरुषवेद श्रादि १० १४५. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-गिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगु'०-ग्रोरालि०-तेजा०-क०-वरण्०४-ग्रगुरू०४-उप०—णिमि०—पंचंत० उक्क० हिदि० ग्रोघं। त्रणु० हिदि० जह० एग०, उक्क० ग्रणंतकाल०। पुरिस०-देवगदि-वेडिव्वय०-समचदु०-वेडिव्व० ग्रंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-ग्रादे०-उचा० उक्क० हिदि० ग्रोघं। त्रणु० हिदि० जह० एग०, उक्क० तिरिणपपितदो०। तिरिक्खगणुप०-णीचा० उक्क० ग्रणु० हिदि० ग्रोघं। पंचिदिय-परघादुस्सा०-तस०४ उक्क० हिदि० ग्रोघं। त्रणु० हिदि० जह० एग०, उक्क० तिरिण-पित्रो० सादिरे०। सेसाणं उक्क० ग्रणु० जह० एग०, उक्क० ग्रंतो०।

प्रकृतियोंका सातवें नरकके सम्यग्दिए नारकीके निरन्तर चन्ध होता है, इसिलए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीर्थक्कर प्रकृतिका तीसरे नरक तक ही चन्ध होता है। उसमें ऐसे जीवको साधिक तीन सागरसे अधिक आयु नहीं प्राप्त होती, इसिलए इसके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है। नरकमें वँधनेवाली शेष सब प्रतिपच प्रकृतियाँ हैं, इसिलए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र इनमें उद्योत प्रकृति प्रतिपच नहीं है। तथापि इसका निरन्तर वन्धका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका भी उक्क काल कहा है। यह काल सातवीं पृथिवीकी मुख्यतासे कहा गया है इसिलए सातवीं पृथिवीमें यह काल इसी प्रकार घटित होता है। मात्र सातवीं पृथिवीमें मिश्र और अविरत सम्यग्दिए नारकीके केवल मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रका वन्ध होनेके कारण इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही उपलब्ध होता है। शेप कथन सुगम है। इतनी विशेपता है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका वन्ध तीसरे नरकतक ही होता है।

१४४. तिर्यञ्चगितमें तिर्यञ्चोमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुण्सा, श्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्ण चतुष्क, श्रगुरुलघु-चतुष्क, उपघात, निर्माण श्रोर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रनन्त काल है। पुरुषवेद, देवगित, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर श्राङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रोर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल तीन पत्य है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रोर नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है। पञ्चित्द्रियजाति, परघात, उच्छ्रास श्रोर असचतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल श्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्राहिक तीन पत्य है। श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हुर्त है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जो उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है सो इसका स्पष्टीकरण जिस प्रकार ओघ प्रकृपणाके समय कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। जो वद्ध तिर्यञ्चायु कृतकृत्य वेदकसम्यग्दिष्ट या ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट मनुष्य तीन पत्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है उसके तिर्यञ्च

१४६. पंचिदियतिरिक्त ३ धुविगाणं उक्क हिदि आघं ! आणु हिदि जह एग , उक्क तिरिणपित्तो , पुन्तकोिड पुधत्तेण भिर्माण । पुरिस ०-देवगिद ०-वेडिव ०-समच दु०-वेडिव ० अंगो-देवाणु ०-पसत्थिव ०-सुभग-सुस्सर-आदे ०-उक्च ० उक्क हिदि आघं । आणु जह एग ०, उक्क तिरिणपित्ति । जोणिणीसु देसूणं । पंचिदिय-]पर ०-उस्सा०-तस ०४ तिरिक्तोघं । सेसाणं उक्क आणु जह ० एग ०, उक्क अंतो ० । पंचिदियतिरिक्त आपज्ञत्त ० सन्वपगदीणं उक्क आणु ० जह ० एग ०, उक्क आंतो ० ।

१४७. मग्रुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवरि पुरिस०-देवगदि०४-पंचिंदिय०-

पर्यायमें तीन पल्य कालतक निरन्तर पुरुषवेद ग्रादि ग्यारह प्रकृतियोंका ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध नियमसे होता रहता है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके ग्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है। तिर्यञ्चगितित्रक उत्कृष्ट ग्रीर ग्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ग्रीध प्रकृपणामें जिस प्रकार घटित करके वतला ग्राये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेना चाहिए। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए यहाँ उन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ग्रीर ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल ग्रीधके समान कहा है। पञ्चिन्द्रियजाति ग्रादि सात प्रकृतियोंका उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाला तिर्यञ्च साधिक तीन पल्यतक निरन्तर वन्ध करता है, इसलिए इनके ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१४६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रकमें ध्रुववन्ध प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल प्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है। पुरुषवेद, देवगित, वैक्रियिकशरीर, समचतुरक्र-संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुखर, आदेय और उद्यगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पत्य है। किन्तु योनिनी तिर्यञ्चोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल तीन पत्य है। किन्तु योनिनी तिर्यञ्चोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परद्यात, उच्छ्वास और असचतुष्कके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तथा शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है।

विशेपार्थ — पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिककी उत्कृष्ट कायस्थित पूर्वकोटि पृथक्तव श्रिष्ठिक तीन पत्य है। इनके इतने कालतक ध्रुववन्धिनी प्रकृतियोंका श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्ध हो सकता है। इसीसे यहां इन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। पुरुषवेद श्रादि प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धके उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके कर श्राये हैं उसी प्रकार यहां जानना चाहिए। मात्र सम्यग्दिष्ट मनुष्य मर कर योनिनी तिर्यञ्चोंमें नहीं उत्पन्न होता, इसिलए इनमें इन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य कहा है। शेप कथन सुगम है।

१४७. मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें

समचदु॰-परघादुस्सा०-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० त्रोघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तिरिणपितदो० सादि० । णविर मणुसिणीसु पुरिसवेद० देवगदि०४-समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा०उक्क० त्रोघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तिरिणपितदो० देसू०। तित्थय० उक्क० त्रोघं। अणु० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू०। आहार०-आहार०आंगो० त्रोघं। मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जन्भंगो।

१४८. देवगदीए देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पुरिस०-भय-दुगु'०
मणुसग०-प'चिदि०-त्रोरालि०-तेजा०-क०-समचदु०--त्रोरालि०त्रंगो०--त्रज्जरिसभ०वण्ण०४-पणुसाणु०-त्रगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-त्रादे०-णिमिण-तित्थय०-उच्चा०-प'चंत० उक्क० त्रोघं । त्रणु० द्विदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं०।
थीणगिद्ध०३-भिच्छत्त-त्रणंताणुवंधि०४ उक्क० द्विदि० त्रोघं । त्रणु० जह० एग०,

पुरुषवेद, देवगित चतुष्क, पञ्चिन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुखर, ब्रादेय और उच्चगोत्र प्रकृतियों के उत्कृप्ट स्थिति-वन्धिता काल श्रोधके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है। इतनी विद्योगिता है कि मनुष्यिनयों पुरुषवेद, देवगित चतुष्क, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुखर, ब्रादेय और उच्चगोत्र प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। तीर्थ कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। तथा श्राहारक श्राहोर श्रीर श्रीर श्राहारक श्राहोपाङ्कके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। मनुष्य अपर्या- क्षोमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य होते हैं वे मरकर तीन पल्यकी श्रायुवाले मनुष्योंमें भी उत्पन्न होते हैं। इससे इनमें पुरुषवेद श्रादिं ११ प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका उत्कृष्ट काल तिर्थञ्चोंके समान तीन पल्य न कहकर साधिक तीन पल्य कहा है। पर ऐसा जीव मरकर मनुष्यनियोंमें नहीं उत्पन्न होता, इसलिए इनमें इन पुरुषवेद श्रादि ११ प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। यद्यपि श्रोधसे तीर्थं कर प्रकृतिके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्यकाल श्रन्तर्मुहूर्त कहा है पर नरकगितमें श्रीर यहां यह काल एक समय कहनेका कारण श्रन्य है। श्रेष कथन सुगम है।

१४८. देवगितमें देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगित, पञ्चिन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रवभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुष्ठधुचतुष्क, प्रशस्तिवहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुखर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थं कर, उच्चगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कके उत्कृष्ट स्थिति-

उक्क एक्तिसं । सेसार्ण उक्क हिदि० अणु हिदि० जह एग०, उक्क अंतो०। एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणो हिदी णादब्वा।

१४६. इंदियाणुवादेण एइंदिएस धुविगाणं उक्क श्रोघं। श्रणुठ जह० श्रंतो०, उक्क श्रसंखेजा लोगा। तिरिक्लगदि-तिरिक्लाणुठ-णीचा० उक्क० श्रणु० श्रोघं। सेसाणं उक्क० श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। वादरे धुविगाणं उक्क० श्रोघं। श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतिका। वादरपज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससह-स्साणि। तिरिक्लगदि-तिरिक्लाणु०णीचा० उक्क० श्रोघं। श्रणु० जह० एग० उक्क० कम्मिट्टदी। वादरपज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। सेसाणं एइंदियोघं।

वन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब देवोंके श्रपनी श्रपनी स्थितिको ध्यानमें रखकर काल जानना चाहिए।

विशेपार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण आदि ४९ प्रकृतियोंका देवोंके मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनों अवस्थाओंमें सतत वन्ध होता है इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्टकाल सामान्य देवोंकी अपेचा तेतीस सागर कहा है। तथा दूसरे दण्डकमें कही गई स्त्यानगृद्धि आदि प्रकृतियोंका सम्यन्दिष्ठ वन्ध नहीं होता और देवोंके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर कहा है। नौ अनुदिश और पाँच अनुत्रवासी देवोंके दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका वन्ध ही नहीं होता। हां, प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका कां, वन्ध अवश्य होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल जिसकी जितनी स्थिति है उतना जानना चाहिए। पर भवनवासी देवोंसे लेकर नौ श्रेवेयक तकके शेप देवोंके प्रथम और द्वितीय दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियोंका वन्ध होता है इसलिए इन सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल जहाँ जो उत्कृष्ट स्थिति हो उतना जानना चाहिए। अव रह गया तीसरा दण्डक सो इसमें कही गई प्रकृतियोंमेंसे जहाँ जितनी प्रकृतियोंका वन्ध होता है उनके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका सर्वत्र जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त हो है, क्योंकि ये सब प्रतिपत्त प्रकृतियाँ है।

१४९. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियों भ्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल श्रन्तमुंहुत है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रेष सब प्रकृतियोंने के उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक स्थम है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहुत है। वाद्र एकेन्द्रियोंमें भ्रुववन्ध वाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में इनके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अस्तियांके उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चन्यका प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। तथा श्रेष प्रकृतिवन्धका काल संख्यात हजार वर्ष है। तथा श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल सामान्य एकेन्द्रियोंके समान है।

१५० वाद्रश्रपज्जत्त० तिरिक्तश्रंपज्जत्तभंगो । सुहुमे ध्रुविगाणं उक्क० श्रोघं । श्रुणु० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रंगुलस्स श्रसंखे० । एवं तिरिक्तगदितिगं । एवरि श्रुणु० जह० एग० । सुहुमपज्जत्ते सन्वाणं उक्क० श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । सुहुमश्रपज्जत्तेसु ध्रुविगाणं उक्क० श्रोघं । श्रणु० जहण्णु० श्रंतो० । सेसाणं उक्क० श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० ।

१५१. वीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि० धुविगाणं उक्क० श्रोघं। श्रणु० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। सेसाणं उक्क० श्रणु० जह० एग०, उक्क०

विशेषार्थ-यद्यपि एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति श्रमन्त काल प्रमाण है, तथापि एकेन्द्रि-योंके दो भेद हैं - बादर एकेन्द्रिय श्रीर सूक्ष्म एकेन्द्रिय। इनमेंसे वादरोंमें पर्याप्त होने पर एकेन्द्रियोंके योग्य उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है, सूक्ष्म जीवोंमें नहीं। किन्तु यहाँ एकेन्द्रिय सामान्यकी अपेचा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल असं-ख्यात लोकप्रमाण है इसीसे एकेन्द्रियोंमें भ्रववन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्हुए काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक श्रौर वायुकायिक जीवोंके होता है श्रौर इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। श्रोधसे इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका उत्कृष्ट काल इतना ही कहा है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रोघके समान कहा है। वादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है इसलिए इनमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृप्ट स्थिति-वन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। तथा वाद्र ग्रग्निकायिक ग्रौर वाद्र वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थिति प्रमाण होनेसे वाद्र एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके श्रवुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिव्रमाण कहा है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका इतने काल तक निरंतर वन्ध इन्हीं जीवोंके होता है। वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी ज्त्रुप्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है इसलिए इनमें ध्रुववन्धवाली श्रीर तिर्यञ्चगतित्रिक के अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१५०. एकेन्द्रिय वाद्र अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। सूचम एकेन्द्रियोंमें भ्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल श्रङ्गलके श्रसंख्य।तवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतित्रिकका काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है। सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। सूद्रम श्रपर्याप्तकोंमें भ्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल श्रन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है।

१४१. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय श्रीर चतुरिन्द्रिय जीवोंमें ध्रुवन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य काल समय है श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रंतो० । एवं पज्जत्तगे वि । श्रपज्जत्ता० तिरिक्खश्रपज्जत्तभंगो ।

१५२. पंचिदिय०२ पंचणा०-णवदंस०-भिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-तेजा०क०-वएण०४-अगु६०-उप०-णिभि०-पंचंत० उक्क० त्रोघं । अगु० जह० एग०, उक्क०
सागरोवमसहस्साणि पुन्वकोडिपुध० । पज्जत्ते सागरोवमसदपुधत्तं । तिरिक्खगिदअोरालि०-त्रोरालि०अंगो०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक्क० त्रोघं । अगुक्क० जह०
एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । सेसाणं मूलोघं । पंचिदियअपज्जत्ते तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

१५२. कायाणुवादेण पुढवि॰-श्राड॰ धुविगाणं उक्क० श्रोघं । श्रणुक्क० जह० एग०, उक्क० श्रसंखेज्जा लोगा । बादर० कम्मिट्टदी० । वादर० पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सेसाणं पगदीणं उक्क० श्रणु० टिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो ।

जधन्य काल एक समय है श्रोर उत्रुप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार इनके पर्याप्त जीवोंमें भी जानना चाहिए। इनके श्रपर्याप्त जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके उत्रुप्ट श्रोर श्रमुत्कुष्ट स्थितिवन्धका काल तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—हीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय श्रीर चतुरिन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्पप्रमाण है, इसीलिए इनमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्टस्थितवन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१४२. पञ्चेन्द्रिय श्रीर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवींमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त श्रीधक एक हजार सागर श्रीर पर्याप्तकोंमें सौ सागर पृथक्त है। तिर्यञ्चगित,श्रीदारिक शाङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीच गोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तथा श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल मूलोघके समान है। पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल मूलोघके समान है। पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्त जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल तिर्यञ्च श्रपर्याप्त जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेपार्थे—प्रथम दग्डकमें कही गई प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितबन्धका उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रिय श्रीर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी कायस्थितिको ध्यानमें रखकर कहा है। सातवें नरकमें मिथ्यादियेके तिर्यञ्चगित श्रादि पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है श्रीर वहाँसे निकलने पर संक्लेश परिगामवश श्रन्तमुंहर्त काल तक इनका बन्ध होना सम्भव है, इसिलए इनके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। श्रेष कथन स्वपृ ही है।

१४३. काय मार्गणांके अनुवादसे पृथिवीकायिक श्रीर जलकायिक जीवों में भ्रुववन्धर वाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। इनके वादर जीवोंमें श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। वादर पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। तथा इन सब जीवोंमें श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थिति-

अपन्नत्तेसु एइंदियअपज्जत्तभंगो । सहुमाणं सहुमेइंदियभंगो । एवरि अणु० जह० एग०, उक्क० तिरिक्खगदितिगं सादभंगो । एवं तेउ० वाउ० । एवरि तिरिक्खगदितिगं शवं कादव्वं । वराण्फदि-णियोदेसु एइंदियभंगो । एवरि तिरिक्खगदितियं सादभंगो । वादरवराण्फदि० वादरपुढवि०भंगो ।

१५४. तस०२ पंचिंदियभंगो । एवरि कायदिदी कादव्वा । अपज्ज ते पंचिंदिय-अपज्जत्तभंगो ।

१५५. पंचमण०-पंचवचि० सन्वपगदीणं उक्क० ऋणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। १५६. कायजोगीसु पंचणा०-णवदंस०-भिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुर्गुं ०-ओरा-

वन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्हृए काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इनके श्रपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्हृए श्रीर श्रमुत्हृए स्थितिवन्धका काल एकेन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके समान है। इनके स्ट्म जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्हृए श्रीर श्रमुत्हृए स्थितिवन्धका काल स्ट्म एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रमुत्हृए स्थितिवन्धका काल एक समय है। तथा तिर्थञ्चगतित्रिकके उत्हृए स्थितिवन्धका काल साता प्रकृतिके समान है। इसी प्रकार श्रिशकायिक और वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके तिर्यञ्चगतित्रिकका श्रमवन्ध होता है। वनस्पतिकायिक श्रीर निगोद जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्हृए स्थितिवन्धका काल एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका श्रङ्ग साता प्रकृतिके समान है। वाद्र वनस्पतिकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल वाद्र पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें सव प्रकृतियोंके श्रमुत्कृतष्ट स्थितवन्धके उत्कृष्ट कालका खुलासा कर श्राये हैं उसे ध्यानमें रखकर यहाँ कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

१४४. जसकायिक ग्रौर जसकायिक पर्याप्त जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ग्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ इनकी कायस्थिति कहनी चाहिए। इनके श्रपर्याप्त जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ग्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—पहले पञ्चेन्द्रिय श्रीर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल कह श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। मात्र यहाँ पाँच झानावरण श्रादि ४७ ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटिपृथक्त्व श्रधिक दो हजार सागर श्रीर दो हजार सागर प्रमाण कहना चाहिए, क्योंकि इन जीवोंकी इतनी ही कायस्थिति है।

१४४. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और त्रमुत्कृष्ट स्थितिवनंधका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्त-सुंहुर्त है।

विशेपार्थ—इन योगोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल ग्रन्तर्मुहूर्त है। इसीसे इनमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर ग्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल ग्रन्तर्मुहूर्त कहा है।

१४६. काययोगो जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह क्षाय,

लिय॰-तेना॰-त॰-वराग् ०४-त्रगु॰-उप॰-णिमि॰ पंचंत० उक्क० त्रोघं । त्रागु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ त्रागंतकालं॰ । तिरिक्लगिदितिगं उक्क॰ त्रागु॰ त्रोघं । सेसायां मण्जोगिभंगो । त्रोरालियका॰ धुविगायां उक्क॰ त्रोघं । त्रागु॰ हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ वावीसं वस्ससहस्साणि देस्च० । तिरिक्लगिदितिगं उक्क० त्रोघं । त्रागु॰ जह॰ एग॰, उक्क० तिरिण वस्ससहस्साणि देस्च० । सेसायां कायजोगिभंगो ।

१५७. त्रोरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-त्रोरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-त्रगु०-उप०-णिमि०-तित्थय०-पंचंतरा० उक्क० त्रणु०

भय, जुगुप्सा, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुक्तृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रनन्त काल है। तिर्यञ्चर्णातित्रक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। तथा श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल मनोयोगो जीवोंके समान है। श्रौदारिक काययोगवाले जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगितित्रकके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है। तथा श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल काययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—काययोगका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे उपलब्ध होता है। यही कारण है कि काययोगमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। श्रशिकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके निरन्तर तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी ग्रौर नीचगोत्रका नियमसे बन्ध होता है श्रौर इनकी कायस्थिति असं-ख्यातलोक प्रमाण है। इन जीवोंके एक मात्र काययोग होता है यह तो स्पष्ट ही है श्रीर श्रीघसे इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल इसी अपेन्नासे असंख्यात लोक प्रमाग कह आये हैं। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उकृष्ट काल त्रोधके समान कहा है। ग्रौदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है। इसीसे इस योगवाले जीवोंके भ्रववन्धवाली प्रकृतियोंके श्रवुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाग कहा है। किन्तु श्रीदारिक काययोगकायहकाल पृथिवीकायिक जीवोंके ही उपलब्ध होता है, श्रश्निकायिक श्रौर वायुकायिक जीवोंके नहीं। उसमें भी श्रश्निकायिक जीवकी उत्कृष्ट श्रायु तीन दिवसमात्र है इसलिए उसकी यहाँ विवत्ता नहीं है। हाँ वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति अवश्य तीन हजार वर्षप्रमाण है। किन्तु इसमें श्रीदारिक काययोगका काल किञ्चित् न्यून है। तिर्यञ्चित्रिकका इतने काल तक बन्ध ग्रौदारिक काययोगमें यहीं पर होता है, इसीसे ग्रौदारिक काययोगमें तिर्यञ्जिक प्रकृतियोंके श्रमुत्कप्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्षप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५७. श्रीदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदार्रिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थेकर श्रीर पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रजुत्कृष्ट

जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं देवगदि०४ । अथवा से काले पज्जत्ती गाहिदि त्ति कीरदि तदो उक्क० जहएणु० एग० । अणु० जह० उक्क० अंतो० । सेसाएां परियत्तमाणियाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अथवा उक्क० जहएणु० एग० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो ।

१५८. वेडिव्यका॰ मणजोगिभंगो । वेडिव्वयमिस्स० धुविगाणं तित्थयरस्स च अथवा पवत्त॰ उक्क॰ अणु॰ जह॰ एग०, उक्क॰ अंतो० । से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति कीरदि तदो उक्क॰ जह॰ एग०, अणु॰ जह॰ अंतो० । सेसाणं ओरा-लियमिस्सभंगो ।

स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल जानना चाहिए। अथवा तदन्तर समयमें पर्याप्तिको पूर्ण करेगा ऐसे समयमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता है इसिलए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अथवा इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा

विशेषार्थ—श्रौदारिकमिश्रकाययोगमें सच प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्वामी कौन है इस प्रश्नका उत्तर दो प्रकारसे दिया गया है। मृलप्रकृति स्थितवन्ध प्ररूपणामें स्वामित्वका विचार करते समय यह बतला श्राये हैं कि जिसके श्रगले समयमें श्रीर पर्याप्ति पूर्ण होगी ऐसा जीव उत्कृष्ट स्थितवन्धका खामी है श्रीर इस उत्तरप्रकृति स्थितवन्ध प्ररूपणामें स्वामित्वका विचार करते समय जो कुछ वतलाया है उसका भाव यह है कि जो उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला या तद्योग्य संक्लेश परिणामवाला श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीव है वह श्रपने श्रपने उत्कृष्ट स्थितवन्धके कारण भूत परिणामों होनेपर उस प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितवन्ध करता है। इन्हीं दो विचारों के श्राधारपर यहाँ उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल दो प्रकारसे कहा गया है। प्रथम विचारके श्रनुसार प्रथम दण्डक श्रौर दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल केवल एक समय उपलब्ध होता है श्रौर दूसरे विचारके श्रनुसार वह कमसे कम एक समय श्रौर श्रिधकसे श्रिक श्रन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। श्रोप कथन स्पष्ट ही है।

१४८. वैकियिककाययोगी जीवोंमें सब प्रक्तितयोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्ध-का काल मनोयोगी जीवोंके समान है। वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें भ्रु ववन्धवाली श्रीर तीर्थक्कर प्रकृतिके श्रथवाप्रवर्तमान प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रथवा तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा ऐसे समयमें उत्कृष्ट स्थितवन्ध करता है इसलिए उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रीदारिकमिश्रकाययोग-वाले जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—यहां उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका ज्ञघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल दो

१५६. त्राहार० मणजोगिभंगो । त्राहारिमस्से धुविगाणं उक्कस्सं त्रणुक्कस्सं जहण्णुक्कस्सं ०. त्रंतो० । सेसाणं च उक्क० त्रणु० जह० एग०, उक्क० त्रंतो० । त्रथवा वेउव्वियमिस्सभंगो ।

१६०. कम्मइग० पंचणा०-णवदंसणा०-सादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-हस्स-रिद्-ग्ररिद्-सोग-भय-दुगुं०ितिरेक्लगिद्-एइंदि०-ग्रोरालिय०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्लणु०-ग्रगुरू०४-ग्रादाज्जो०-थावर-वादर-सुहुम-पज्जत्ता-पज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-ग्रणादे०--जस०--ग्रजस०-णिमिण-णीचा०-पंचंत० उक्क० जह० एग०, उक्क० वेसम० । ग्रणु० जह० एग०,

प्रकारका क्यों कहा है इसके कारणका निर्देश श्रीदारिकमिश्रकाय योगमें कालका निर्देश करते समय किया ही है उसी प्रकार यहां भी जान लेना चाहिए। श्राश्य यह है कि जव यह माना जाता है कि वैक्रियिक मिश्रकाययोगके सद्भावमें कभी भी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके योग्य परिणाम होनेपर उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है तव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हूर्त प्राप्त होता है श्रीर जव यह माना जाता है कि श्ररीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके श्रनन्तर पूर्व समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है, तव इसका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय प्राप्त होता है। श्रेष कथन सुगम है।

१४९. श्राहारक काययोगवाले जीवोंमें सव प्रकृतियों के उत्कृप श्रीर श्रनुत्कृप स्थिति-वन्धका काल मनोयोगी जीवोंके समान है। श्राहारकमिश्रकाययोगमें भ्रुवबन्धवाली प्रकृ-तियोंके उत्कृप्त श्रीर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तमु हुर्त है। तथा श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृप्ट श्रीर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट-काल श्रन्तमु हुर्त है। श्रथवा यहां भी वैक्षियिकमिश्रकाययोगके समान भक्ष है।

विशेपार्थ— आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त होने से इसमें वन्धको प्राप्त होनेवाली सब प्रकृतियोंका मनोयोगियोंके समान जघन्य और उत्कृष्ट काल कमसे एक समय और अन्तर्मु हुर्त कहा है। आहारकिमश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। इसिलए यहां भ्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त ही उपलब्ध होता है। किन्तु जो भ्रुववन्धवाली प्रकृतियां नहीं हैं उनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त वन जाता है।

१६०. कार्मणकाययोगवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, हास्य, रित, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुएड संस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, आतप, उद्योत, स्थावर, वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, श्रशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय, यशःकीतिं, श्रयशःकीतिं, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्टकाल तीन समय है। तथा शेष प्रकृतियोंके त्रसकाय,

उक्क विशिश समा । सेसार्श तस०-पज्जत्तार्श देवगदिपंचगस्स च उक्क अणु जह एग , उक्क वेसम ।

१६१. इत्थिवेदेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंच्छतेजा०-क० वरण्०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० द्विदि० ओघं। अणु० जह०
एग०, उक्क० पित्रवेवमसदपुधत्तं। सादासा०-इत्थि०-णवुंस-हस्स-रिद-अरिद-सोगणिरयगिद-तिरिक्लगिद-जादि४-आहार०-पंचसंटा०-अहार०अंगो०-पंचसंघ०-णिरयतिरिक्लाणुपु०-आदाउज्जो०-अण्यसत्थिव०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभगदुस्सर-अणादे०-जस०-अजस०-णीचा० उक्क० अगु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।
पुरिस०-मणुसगदि-पंचिदि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०पसत्थवि०-तस-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चागो० उक्क० ओघं। अणुक्क० जह० एग०,

पर्याप्त, तथा देवगति पञ्चकके उत्कृष्ट श्रीर श्रद्धत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है।

विशेषार्थ—जो एकेन्द्रिय जीव ब्रह्मलोकके कोणसे मरकर अधोलोकके कोणमें विदिशामें उत्पन्न होता है उसके तीन समयवाली विग्रहगित होती है और उसके इन तोन समयों कार्मण्काययोग होता है। ऐसा जीव एकेन्द्रिय होनेसे इसके किसी भी प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नहीं होता। इसीसे सब प्रकृतियों उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है, क्योंकि यह यथासम्भव संशी तिर्यञ्च और मनुष्यके तथा देव और नारकीके होता है और इनके अधिकसे अधिक दो मोड़ेवाली ही विग्रहगित होती है। अब रहा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके कालका विचार सो यहाँ मूलमें जिन प्रकृतियोंका नामोललेख किया है उनका वन्ध ऐसे जीवके भी होता रहता है, इसलिए इनपाँच झानावरण आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। तथा शेष रहीं स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। तथा शेष रहीं स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल होनेवाले कार्मण्काययोगी जीवके बन्ध नहीं होता, अतएव उनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। यहाँ सब प्रकृतियों उत्कृष्ट श्रीर अनुकृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल दो समय कहा है। यहाँ सब प्रकृतियों उत्कृष्ट श्रीर अनुकृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय स्पष्ट ही है, क्योंकि कार्मण्काययोगका ही जधन्य काल एक समय है। अतएव कार्मण्काययोगमें इनका जधन्य काल एक समय वन ही जाता है।

१६१. स्त्रीवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुण्ला, तैजस शरीर, कार्मण्शरीर वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल औघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्तव है। साता वेदनीय, असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रित, अरित, शोक, नरकगित, तिर्यञ्चगित, चार जाति, श्राहारक शरीर, पाँच संस्थान, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तिवहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ, अशुभ, दुर्भग, दुसर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगित, पञ्चिन्द्रय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ, वज्रवभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तिवहायोगित, त्रसकाय, सुभग, सुखर, श्रादेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-

१६२. पुरिसेसु मणुसग०-त्रोरालि०-त्रोरालि० त्रंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-उक्क० त्रोघं । त्रणु० जह० एग० उक्क० तेत्तीसं सा०। सादादीणं इत्थिभंगो। धुविगाणं उक्क० त्रोघो । त्रणु० जह० एग०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । सेसं

बन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। देवगितचतुष्क प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। अमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। श्रीदारिक श्ररीर, परधात, उल्लास, वादर, पर्याप्त श्रीर प्रत्येक श्ररीर प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है।

विशेषार्थ - स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पत्य पृथक्तव प्रमाण है, इसलिए प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण श्रादि छ्यालीस प्रकृतियोंके श्रतुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है क्योंकि ये भ्रवन्धवाली प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनका इतने काल तक वन्घ होता रहता है। दूसरे द्राडकमें कही गई साता वेदनीय श्रादि पैंतालीस प्रकृतियाँ परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रौर श्रवुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त कहा है। तीसरे दण्डकमें कही गई पुरुषवेद श्रादि तेरह प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके भी वन्ध होता है श्रीर स्त्रीवेदमें सम्यक्तवका उत्कृप्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है इसलिए इन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पत्य कहा है। चौथे दगडकमें कही गई देवगतिचतुष्कका उत्तम भोगभूमिमें सम्यग्दिए अवस्थाके रहते हुए कुछ कम तीन पत्य तक सतत वन्ध होता रह्ता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य प्रमाण कहा है। पाँचवें दण्डकमें कही गई श्रीदारिक शरीर श्रादि छह प्रकृतियोंका देवी श्रवस्थाके मिलने पर निरन्तर वन्घ होता रहता है श्रौर देवीकी उत्कृष्ट भवस्थिति पचपन पत्य है। इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पत्य कहा है। यहाँ साधिक कहनेका कारण यह है कि जो पूर्व पर्यायमें अन्तर्मु हुर्त काल तक इन प्रकृतियोंका बन्ध करता है और तदनन्तर ऐशानकल्पमें जाकर देवी होता है उसके यह काल साधिक पचपन पत्य पाया जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१६२. पुरुषवेदवाले जीवोंमें मनुष्यगित, श्रौदारिक शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन श्रौर ममुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्यकाल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। साता श्रादिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रीवेदी जीवोंके समान है। भ्रववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल सौ सागर

मूलोघं । शावरि पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० स्रोघं । ऋशु० जह० एग०, उक्क० तेविहसागरोवमसदं ।

१६३, ण्वुंसगे धुविगाणं श्रोरालिय० तिरिक्खगिदित्यं मूलोघं । सादा-दीणं इत्थिभंगो । पुरिसवेद०-मणुसभ०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग०-सुस्सर-श्रादे० उच्चागो० उक्क० हिदि० श्रोघं। श्रणुक्कस्स० हिदि० जहण्णेण

पृथक्त है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, श्रोर श्रनुकृष्ट स्थितिवन्धका काल मूलोधके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उञ्जास, श्रोर नसचतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है, श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रोर उत्कृष्टकाल एक सो नेसठ सागर है।

विशेषार्थ—देव पर्यायमें तेतीस सागर कालतक मनुष्यगति ग्रादि पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्टकाल वेतीस सागर कहा है। साता ग्रादि पैंतालीस प्रकृतियोंके उत्कृप ग्रौर ग्रमुकृप स्थितिवन्धके काल का स्पष्टीकरण जिस प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंके कर श्रायेहें उसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त होता है, इसलिए इनका काल स्त्रीवेदी जीवोंके समान कहा है। पुरुषवेदकी उत्कृप्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्तव है। इतने कालतक पुरुषवेदमें भ्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृप्ट स्थितिबन्धका उत्कृप्टकाल सौ सागर पृथक्तव प्रमाण कहा है। यहाँ शेष प्रकृतियाँ २३ रहती हैं जिनके उत्कृप्ट श्रीर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल मूलोघके समान जाननेके लिए कहा है सो ग्रोघ प्ररूपणामें इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर त्रजुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल जिस प्रकार घटित करके वतला श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। पञ्चे न्द्रिय जाति ग्रादि ७ प्रकृतियोंके ग्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धके उत्कृप्ट कालके कथनमें कुछ विशेषता है। श्रोघसे इन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्टकाल १८४ सागर वतला त्राये हैं किन्तु पुरुषवेदमें वह १६३ सागर उपलब्ध होता है। यथा—कोई एक मनुष्य द्रव्यलिङ्गी जीव ३१ सागरकी ग्रायुके साथ ग्रन्तिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुग्रा है। वहाँ भवके ग्रन्तमें उसने-उपशम सम्यक्तवके साथ वेदक सम्यक्तवको प्राप्त किया । पुनः वह वेदक सम्यक्त्वके साथ ६६ सागर काळतक रहकर सग्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ । अनन्तर पुनः वेदक सम्यग्दिष्ट होकर उसके साथ ६६ सागर कालतक रहा। और अन्तर्मे मिथ्यादृष्टि हो गया। इस प्रकार इस जीवके १६३ सागर कालतक पञ्चेन्द्रिय जाति श्रादि सात प्रकृतियोंका निरन्तर श्रुतुत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता रहता है, इस-लिए इन प्रकृतियोंके त्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृपकाल १६३ सागर कहा है। शेप कथन सुगम है।

१६३. नपुंसकवेदमें घ्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ ग्रौदारिक शरीर ग्रौर तिर्यञ्चगितित्रक ग्रथीत् तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी ग्रौर नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ग्रौर ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल मूलोधके समान है। साता ग्रादिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ग्रौर ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल स्त्रीवेदवाले जीवोंके समान है। पुरुषवेद, मनुष्यगित, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुमग, सुस्वर, ग्रादेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल ग्रोधके समान है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञावके समान है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञावके समान है।

एगसमयं, उक्कस्सेण तेत्तीसं साग॰ देसू० । देवगदि०४ उक्क॰ श्रोघं । श्रणु० जह० एग०, उक्क ० पुन्वकोडी देसू० । प'चिंदि०-श्रोरालि॰श्रंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० श्रोघो । श्रणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । तित्थय० उक्क० श्रोघं । श्रणु० जह० एग०, उक्क० तिरिण साग० सादि० ।

१६४. अवगवेदे० सन्वपगदीणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। १६४. कसायाणुवादेण कोधादि०४ मणजोगिभंगो।

हैं। देवगति चतुष्कके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल ग्रोधके समान है। ग्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जधन्यकाल एक समय है ग्रीर उत्कृप्टकाल कुछ कम पूर्वकोटिवर्ष प्रमाण है। पञ्चिन्द्रिय जाति, ग्रीदारिक शरीर ग्राङ्गोपाङ्ग, परधात, उच्छास ग्रीर त्रस चतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल ग्रोधके समान है। ग्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल ग्रोधके समान है। ग्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है, ग्रीर उत्कृप्टकाल साधिक तीन सागर है।

विशेपार्थ—नपुंसकवेदमें सम्यक्त्वका उत्क्रप्टकाल कुल कम तेतीस सागर है। इसीसे यहाँ पुरु पवेद श्रादि दस प्रकृतियों अनुत्कृप्ट स्थितिबन्धका उत्क्रप्टकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है; क्योंकि इन प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध इतने कालतक सम्यग्दिष्टके ही हो सकता है। नपुंसकवेदमें सम्यक्त्वका उत्कृप्टकाल मनुष्य और तिर्यञ्चके कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है; इसीलिए यहाँ देवगित चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि जो नपुंसकवेदी मनुष्य या तिर्यञ्च सम्यग्दिष्ट होता है उसके देवगित चतुष्कके नियमसे वन्ध होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति श्रादि श्राठ प्रकृतियोंके श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहनेका कारण यह है कि जिसने पूर्वभवमें अन्तर्मु हूर्त काल शेष रहनेपर इन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्म किया है और जो मरकर तेतीस सागर श्रायुक्ते साथ नरकमें उत्पन्न हुश्रा है उसके उक्त प्रकृतियोंके श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है। तीर्थंकर प्रकृतिके श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है। तीर्थंकर प्रकृतिके श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका उत्कृप्ट कालका स्पष्टीकरण जिस प्रकार श्रोध प्रकृपणिके समय कर श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ जान लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१६४. श्रपगतवेदवाले जीवोंमें संव प्रकृतियोंके उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञाचन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अपगत वेदका जघन्य काल एक समय है, या जिस जीवने अपगतवेदमें वैधनेवाली प्रशुतियोंका एक समयतक उत्शृष्ट और अनुत्शृष्ट स्थितिवन्ध किया और दूसरे समयमें वह मरकर देव हो गया तो अपगतवेदमें सव प्रशुतियोंके उत्शृष्ट और अनुत्शृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध हो जाता है। इसीसे वह एक समय कहा है। उत्शृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि यहाँ एक एक स्थितिवन्धका जघन्य और उत्शृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है।

१६४. कपाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधादि चार कषायोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—चारों कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त होनेसे यहाँ मनोयोगी जोवोंके समान सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त वन जाता है। १६६. मदि०-सुद० धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च श्रोरालि॰ मूलोघं।
सादासा०-सत्ताणोक ०-णिरयगदि-चढुजादि-पंचसंठा०-छस्संघ०--णिरयाणु०--श्रादा-छज्जो०-श्रणसत्थवि०-थावर-सुहुम--श्रपज्जत्त-साधार०-थिराथिर-सुभासुभः-दूभग-दुस्सर०-श्रणादे०-जस०-श्रजस० छक्क० श्रगु० जह० एग०, छक्क० श्रंतो०। मणुसग०-मणुसाणु० छक्क० श्रोघं। श्रणु० जह० एग०, छक्क० एकत्तीसं सा० सादिरे०।
देवगदि-वेषिवयस०-समचढु०-वेषिव०श्रंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-छच्चा० छक्क० श्रोघो। श्रणु० जह० एग०, छक्क० तिरिण पलि० देसू०।
पंचिदि०-श्रोरालि०श्रंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ छक्क० श्रोघं। श्रणु० जह० एग०,
छक्क० तेत्रीसं साग० सादि०।

१६६. मत्यज्ञानी श्रीर श्रुताज्ञानी जीवोंमें भ्रु ववन्धवाली प्रकृतियाँ, तिर्यञ्चगित त्रिक श्रीर श्रीदारिक श्रिर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल मूलोधके समान है। साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, सात नोकपाय, नरकगित, चार जाति, पाँच संस्थान, छ्रह संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विद्यायोगित, स्थावर, सूक्ष्म, श्रपर्यात, साधारण, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रश्चम, सुभग, दुभँग, दुःस्वर, श्रनादेय, यशःकीर्ति श्रीर अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रीधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। देवगित, वैकियिक श्रिर, समचनुरस्र-संस्थान, वैकियिक श्राङ्गेपाङ्क, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तिवहायोगिति, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। पञ्चिन्द्रय-जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्क, परधात, उच्छ्रास श्रीर त्रस चतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। यन्नुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ — ग्रोघसे भ्रुववन्धवाली प्रकृतियों के ग्रानुकृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रमन्त काल कह ग्राये हैं। यह काल एकेन्द्रियों की कायस्थितिकी मुख्यतासे कहा गया है। मत्यज्ञान ग्रीर श्रुताज्ञानका भी यही काल है। यही कारण है कि इन दोनों ग्रज्ञानों के प्रकृतियों के ग्रानुकृष्ट स्थितिवन्धका उक्त काल कहा है। एकेन्द्रियों के ग्रीदारिक शरीरका नियमसे वन्ध होता है, इसिलए इसके ग्रानुकृष्ट स्थितिवन्धका भी यही उत्कृष्ट काल कहा है। जिस मिथ्यादि मनुष्यने मरणके पूर्व ग्रन्तम् द्वैत काल तक मनुष्यगित ग्रीर मनुष्यगित्यानुपूर्वीका वन्ध किया है ग्रीर मरकर जो ग्रन्तिम ग्रैवेयकमें इकतीस सागरकी ग्रायुवाला मिथ्यादिष्ट देव होकर इनका बन्ध करता रहता है उसके इन दोनों प्रकृतियोंके ग्रनुकृष्ट स्थितिवन्धका साधिक इकतीस सागर काल उपलब्ध होता है। इसीसे इन दोनों ग्रज्ञानोंमें उक्त दोनों प्रकृतियोंके ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। तीन पल्यकी ग्रायुवाले तिर्यञ्च या मनुष्यके पर्याप्त ग्रवस्थामें देवगित ग्रादि इस प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध होता रहता है, इसिलए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। जो मिथ्यादिष्ट मनुष्य या तिर्यञ्च मरणके पूर्व

१. मूलप्रती-सुभासुभसुभगदूभग- इति पाठः ।

१६७. विभंगे॰ पंचणा॰-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं॰-तिरि-खग०-पंचिदि०-श्रोरालि॰--तेजा०--क॰-श्रोरालि॰ श्रंगो०-वएण॰४-तिरिक्लाणु॰-श्रगुरु॰४-तस॰४-णिमि०-णीचा०-पंचंत॰ उक्क॰ श्रोघं। श्रणु जह० एग०, उक्क॰ तेत्तीसं सा॰ देस्र॰। मणुसग०-मणुसाणु॰ उक्क॰ श्रोघं। श्रणु० जह॰ एग०, उक्क॰ एकत्तीसं सा॰ देस्र०। सेसाणं उक्क॰ श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो॰।

१६८. श्राभि०-सुद्०-श्रोधि० पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-पंचिद्दि०-तेजा०-क०-समचदु०-चएण०४--श्रगुरु०४-पसत्थवि०--तस०४-सुभग--सुस्सर-श्रादे०-णिभिण-उचा०-पंचंत० उक्क० जहएणु० श्रंतो०। श्रणु० जह० श्रंतो०, उक्क० छाविद्दसागरो० सादि०। पचक्लाणा०४ उक्क० जह० उक्क० श्रंतो०। श्रणु० जह० श्रंतो०। श्रणु० जह० श्रंतो०, उक्क० वादालसागरो० सादि०। सादावे०-हस्स-रदि-श्राहार०-

श्रन्तर्मुहुर्त काल तक पञ्चेन्द्रिय जाति श्रादि श्राठ प्रकृतियोंका बन्ध कर रहा है श्रौर मरकर तेतीस सागरकी श्रायुके साथ नरकमें उत्पन्न होनेपर वहाँ भी श्रायुके श्रन्तिम समय तक इनका निरन्तर वन्ध करता रहता है उसकी श्रपेत्ता उक्त दोनों श्रक्तानोंमें इन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६७. विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। ममुष्यगति श्रीर ममुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल श्रोधके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हुर्त है।

विशेषार्थ—विभङ्गहानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतने काल तक इस ज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण श्रादि ४९ प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। किन्तु मनुष्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीका सातवें नरकमें मिथ्यादिष्टके वन्ध नहीं होता, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल नीवें श्रीवेयकमें विभङ्गज्ञानके उत्कृष्ट कालकी श्रिपेता कुछ कम इकतीस सागर कहा है। श्रोष कथन सुगम है।

१६८. श्राभिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छ्रह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कामण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुखर, श्रादेय, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका लघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है। ग्रत्या- काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक अधासठ सागर है। प्रत्या- ख्यानावरण चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस

ग्राहारश्रंगो०-थिर-सुभ-जस० उक्क० श्रणु० जहएणु० श्रोघो । श्रसादा०-अरिद्मिग-अधिर-श्रसुभ-श्रजस० उक्क० जह० उक्क० श्रंतो० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । मणुस०-श्रोरालि०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० उक्क० श्रसाद-भंगो । श्रणु० जह० उक्क० श्रंतो० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ उक्क० श्रसादभंगो । श्रणु० जह० एग०, उक्क० तिरिण पिलदो० सादि० । श्रपच्चक्वाणा०-४तित्थय० उक्क० श्रंतो०, श्रणु० जह० श्रंतो० । उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० ।

सागर है। साता वेदनीय, हास्य, रित, श्राहारक शरीर, श्राहारक श्राङ्गेपाङ्ग, स्थिर, श्रुभ श्रीर यशःकीर्ति प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रोधके समान है। श्रसातावेदनीय, श्ररित, शोक, श्रस्थिर, श्रश्चम श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हुर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हुर्त है। मनुष्यगति, श्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वश्रवभनाराचसंहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रस्तात प्रकृतियों के समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रस्ता प्रकृतिके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—श्राभिनिवोधिकज्ञान श्रादि तीन ज्ञानोंका उत्कृष्ट काल चार पूर्वकोटि श्रधिक छथासठ सागर होनेसे इन तीन ज्ञानोंमें पाँच ज्ञानावरण श्रादि पैतालीस प्रकृतियोंके श्रनु-त्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट काल साधिक छुवासठ सागर कहा है। सम्यग्दप्टि जीव संयमके विना ग्रसंयम ग्रौर संयमासंयमके साथ साधिक व्यालीस सागर तक रहता है ग्रौर इस कालमें इसके प्रत्याख्यानावरण चारका निरन्तर वन्ध होता रहता है। इसीसे यहां प्रत्या-ख्यानावरण चारके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस कहा है। यह काल साघिक दो पूर्वकोटि श्रिधिक व्यालीस सागर होता है। इसके वाद यह जीव नियमसे संयम को प्राप्त करता है। देवोंकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है और इस कालके भीतर मनुष्यगति श्रादि पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है, इसलिए यहां इन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिंवन्घका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर तीन पत्य की जायुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है उसके अन्तर्मुहर्त न्यून पूर्वकोटिका त्रिमाग अधिक तीन पल्य काल तक देवचतुष्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसीसे यहां इन प्रकृतियों-के श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य कहा है। जो सम्यग्दृष्टि जीव संयमके साथ मर कर तेतीस सागरकी श्रायुवाले देवोंमें उत्पन्न होता है और वहांसे श्राकर मनुष्य होता है उसके कुछ कम दो पूर्वकोटि काल अधिक तेतीस सागर काल तक तीर्थंकर प्रकृतिका निरन्तर वन्ध होता रहता है। तथा इसी जीवके देव पर्यायमें श्रौर वहांसे च्युत होनेके वाद संयमको प्राप्त होनेके पूर्व समय तक ग्रप्रत्याख्य।नावरण चतुष्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है। यतः ये दोनों काल साधिक तेतीस सागर होते हैं, इसीसे यहां ग्रप्र-त्याख्य।नावरण चार श्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिके श्रतुत्कृष्ट स्थित बन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। यहां शेष कथनका विचार कर काल जान लेना चाहिए। सुगम होनेसे उसका हमने निर्देश नहीं किया।

१६६. मणपज्जव० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिदिय०-वेष्ठिवय०-तेजा०-क०-समचदु०-[वेष्ठविव०] अंगो०-वएण्०४-देवाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-िण्मि०-तित्थय०-अच्चा०-पंचंत० एक० जह० एक० अंतो०। अणु० जह० एग०, एक० पुन्तकोडी देसू०। सादावे०-हस्स-रदि-आहार०-आहार०अंगो०-थिर-सुभ-जस० एक० अणु० ओघं। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० एक० जह० एक० अंतो०। अणु० जह० एग०, एक० अंतो०। एवं स्ंजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। एवरि परिहारे अणु० जह० अंतो०। सुहुमसंपरा० अवगदवेदभंगो।

१६९. मनःपर्ययद्वानमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्ला, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैकियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, सम-चतुरस्रसंस्थान, वैकियिक शरीर ब्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, ब्रागुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तिविहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, ब्राह्मेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र ब्रोर पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य ब्रोर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ब्रोर उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, हास्य, रित, ब्राह्मरकशरीर, ब्राह्मरक ब्राङ्गोपाङ्ग, स्थिर, श्रम ब्रोर यशःकीर्तिक उत्कृष्ट ब्रोर अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल ब्रोधके समान है। असाता वेदनीय, श्ररति, श्रोक, ब्रास्थर, ब्रागुम ब्रोर अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल प्रकृतमुंहर्त है। ब्रानुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है ब्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुह्त है। इसी प्रकार संयत, सामायिक संयत, ब्रेह्मेपस्थापनासंयत ब्रोर परिहारिवशुद्धिस्थित जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि परिहारिवशुद्धिसंयतमें अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुह्त है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके अपनी सव प्रकृत्वियोंके उत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रप्यतवेदी जीवोंके समान है।

 १७०. संजदासंजदे धुविगाणं तित्थयरस्स च उक्क० जहएणु० अंतोम्र०। त्राणु० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देस्र०। सादादिवारस० श्रोधिभंगो।

१७१. ग्रसंजदे ध्रुविगाणं तिरिक्खगिद-मणुसगिद-देवगिद-ग्रोरालिय०-वेष-व्विय०-दोग्रंगो०-तिणिल्र्याणु०-तित्थय०-णीचागो०-सादादिपरियत्तमाणियात्रो मूलोघं। पुरिसवे०-पंचिदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-

का जघन्य काल एक समय प्राप्त होनेसे वह एक समय कहा है। तथा छुठे गुण्स्थानका उत्कृष्ट काल ग्रन्तमुँ हूर्त होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितियन्धका उत्कृष्ट काल ग्रन्तमुँ हूर्त कहा है। संयत, सामायिक संयत और छुदोपस्थापना संयत जीवोंमें इन सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितियन्धका काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। परिहारिव शुद्धि-संयम प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके ही होता है और इसका जघन्य काल ग्रन्तमुँ हूर्त है, इसिलए इसमें और सब काल तो पूर्वोक्त प्रकार वन जाता है। मात्र जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितियन्धका जघन्य काल एक समय कहा है वह नहीं वनता, ग्रतः वह ग्रन्तमुँ हूर्त कहना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१७०. संयतासंयत जीवोंमें घ्रु ववन्धवाली श्रीर तीर्थं कर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितिबन्ध का जघन्य श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तमुं हुते हैं। श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुं हुते हैं। श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुं हुते हैं श्रीर उत्कृप्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। साता श्रादि वारह प्रकृतियोंके उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिबन्धका काल श्रविध्वानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ —संयतासंयत गुणस्थानमें ४ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण्यरीर, समचतुरक्षसंस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगित प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्तर, श्रादेय, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर ४ अन्तराय ये ४३ भ्रुववन्धवाली प्रकृतियां है । श्रीर जिसके तीर्थेकर प्रकृतिका वन्ध होता है उसके साथ इन ४४ प्रकृतियोंका सतत वन्ध होता है । इन प्रकृतियोंका उत्कृप्ट स्थितवन्ध मिध्यात्वके श्रीमुख हुए जीवके उत्कृप्ट संक्लेशक्षप परिणामोंके होने पर श्रन्तम उत्कृप्ट स्थितवन्धमें श्रवस्थित होने पर होता है और यह श्रन्तमुँ हूर्त काल तक होता रहता है, इसलिए इनके उत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तमुँ हुर्त कहा है । तथा संयमासंयमका जघन्य काल श्रन्तमुहूर्त श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तमुँ हुर्त कहा है । तथा संयमासंयमका जघन्य काल श्रन्तमुहूर्त श्रीर उत्कृप्ट काल कुल कम पूर्वकोटि प्रमाण होनेसे इन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृप्ट स्थितवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुँ हुर्त श्रीर उत्कृप्ट काल देशोन पूर्वकोटि कहा है । साता श्रादि शेष १२ प्रकृतियां ये हैं —साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, हास्य, रित, श्ररति, श्रोक, स्थिर, श्रस्थिर, श्रम, श्रग्रुम, यशःकीितं श्रीर श्रयशःकीितं, सो श्रवधिक्रानी जीवोंके इन प्रकृतियोंके उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितवन्धका जिस प्रकारसे काल घटित करके वतला श्राये हैं उसी प्रकारसे यहां पर भी घटित कर लेना चाहिए।

१७१. श्रसंयत जीवोंमें भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ तथा तिर्यञ्चगित, मनुष्यगित, देव-गित, श्रौदारिकशरीर, वैकियिकशरीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, तीन श्रानुपूर्वो, तीर्थङ्कर, नीचगोत्र श्रौर साता श्रादि परावर्तमान प्रकृतियाँ इनके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान है। तथा पुरुपवेद, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, त्रादे॰-डचा॰ डक॰ हिदि॰ श्रोघं। श्रणु॰ जह० एग०, डक॰ तेत्तीसं सा० सादि॰।

१७२. चक्खुदं ॰ तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं ॰ सूलोघं । ओधिदं ॰ ओधि- गाणिभंगो ।

१७३. किएणाए ध्रुविगाणं उक्क॰ द्विदि० श्रोघं । श्रणु॰ जह० श्रंतो॰, उक्क० तेत्तीसं सा॰ सादि॰ । सादासादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रिद-श्रादि-सोग-णिरय-गिद-[देवगिद]-चढुजादि-वेडिव्व०-पंचसंठा०-वेडिव्व०श्रंगो०-पंचसंघ०-णिरयगिदि-देवाणुपु॰-श्रादाउज्जो॰-श्रपसत्थ॰-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-श्रणादे॰-जस०-श्रजस० उक्क० श्रणु॰ जह० एग०, उक्क० श्रंतो॰ । पुरिस०-मणु-सग०-समचढु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु॰-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-श्रादे॰-उच्चा॰ उक्क० श्रोघं । श्रणु॰ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । तिरिक्खग०-पंचिदि०-श्रोराखि॰-श्रोराखि०-श्रोराखि०श्रंगो॰-तिरिक्खाणु॰-पर॰-उस्सा॰-तस०४-[णीचा॰] उक्क० श्रोघं । श्रणु॰ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । तित्थय॰ उक्क० श्राणु॰ जहण्णु॰ श्रंतो॰ । एवं णील-कारुणं । णवरि तिरिक्खगदितिगं सादभंगो ।

प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुखर, त्रादेय और उचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ग्रोघके समान है। ग्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रोर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

१७२. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृप्ट श्रोर श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृप्ट काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान है। श्रचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें मूलोघके समान है श्रोर श्रवधिदर्शनवाले जीवोंमें श्रवधिज्ञानियोंके समान है।

१७३. कुष्णुलेश्यामें भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमु[°]हते है श्रीर उत्कृप्ट काल साधिक तेतीस सागर है। साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, श्ररति, शोक, नरकगति, देवगति, चार जाति, वैक्रियिक शरीर, पाँच संस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, पाँच संहतन, नरकगित प्रायोग्यानुपूर्वी, देवगित प्रायोग्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रादि चार, स्थिर, श्रस्थिर, शुभ, श्रशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय, यशः-कीति श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट काल ग्रन्तमु हुर्त है। पुरुपवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वजूर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुखर, श्रादेय, श्रीर उचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध का जघन्य काल एक समय है और उत्क्रप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, परघात, उच्छास, त्रसचतुष्क और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितियन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृप्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट और श्रुतुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। इसी प्रकार नील लेश्यावाले श्रीर कापोत लेश्यावाले जीवोंके जानना

तित्थय॰ उक्क॰ जह० एग०, उक्क॰ अंतो० | अणु० जह० उक्क॰ अंतो॰ | एवरि काऊए अणु० जह० अंतो०, उक्क० तिरिए सा० सादि॰ |

१७४. तेऊए धुविगाणं पुरिस०-मणुस०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-त्रादे०-उच्चा० उक्क० त्रोघं । त्राणु० जह० एग०, उक्क०

चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल साता प्रकृतिके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मु हुर्त है। इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यामें श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हुर्त है श्रीर उत्कृप्ट काल साधिक तीन सागर है।

विशेषार्थ—कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर होनेसे इसमें भ्रववन्धवाली प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल सागर कहा है। सातावेदनीय ग्रादि ४४ प्रकृतियाँ सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ होनेसे इनके उत्क्रप्ट और श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहा है। पुरुषवेद श्रादि १० प्रकृतियोंका सातवें नरकमें सम्यग्दिएके नियमसे वन्ध होता है श्रीर वहाँ सम्यक्तवका उत्कृप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए इन प्रकृतियोंके त्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तिर्यञ्चगति श्रादि १२ प्रकृतियोंका सातचें नरकमें मिथ्यादि नारकीके नियमसे वन्ध होता है श्रीर यहाँ मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। तथा जो जीव सातवें नरकमें जानेके सम्मुख होता है उस जीवके नरकमें जानेके पूर्व व निकलनेके पश्चात् एक एक अन्तर्मु हुर्त कालतक कृष्ण छेश्या ही होती है। इसलिए उक्त प्रकृतियोंका इस कालमें भी वन्ध होता रहता है। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। कृष्ण लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध मनुष्यके ही सम्भव है और मनुष्यके इसका काल अन्तमु हूर्त है। इसीसे इस प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहा है। नील लेश्या श्रीर कापोत लेश्यामें इसी प्रकार जानना चाहिए। इस कथनका यह श्राशय है कि नील लेश्या श्रीर कापोत लेश्यामें सव प्रकृतियोंका काल श्रपने श्रपने कालको ध्यानमें रखकर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन लेश्यावाले नरकोंमें मिथ्यादिष्टके मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रौर उच्चगोत्रका भी बन्ध होता है, इसलिए इन् लेश्याश्रोंमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्र इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृप्ट श्रौर श्रनुत्कृप्ट स्थितवन्धका काल जिस प्रकार साता प्रकृतिका कहा है उसी प्रकार जानना चाहिए, क्योंकि इन लेश्या वाले नरकोंमें इनकी प्रतिपत्तभूत मनुष्यगतित्रिकका भी मिथ्यादृष्टिके वन्ध होता है, इसलिए इनका साता प्रकृतिके समान ही काल उपलब्ध होता है। नील छेश्यामें भी तीर्थं कर प्रकृतिका वन्ध मनुष्यगितमें ही सम्भव है इसिलए नील लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त कहा है । किन्तु कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नरकगतिमें भी होता है, इसलिए इस लेश्यामें इसके अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट कात साधिक तीन सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१७४. पीत लेश्यामें भ्रवन्धवाली प्रकृतियाँ, पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रपेभनाराच संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्वायोगित, सुभग, सुस्वर, ग्रादेय वेसाग० सादि० | तित्थय० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० | अग्रु० जह० एग०, उक्क० वेसाग० सादि० | सादादिछ०-तिरिक्खगदि-देवगदि-एइंदि०-वेउव्वि०—आहार०-पंचसंठा०-दोअंगो०-पंचसंघ०-दोआग्रु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस०-णीचा० उक्क० अग्रु० जह० एग०, उक्क० अंतो० | एवं पम्माए वि | एवरि अहारस सागरोवमाणि सादि० | एइंदि० आदाव थावरं वज्ज० |

१७५. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पुरिस०-भय-दुगु'०-मणुसग०-पंचिंदि०-तिषिणसरीर-समचदु०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ-[वण्ण]४-मणुसाणु०-श्रगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-णिमि०-तित्थय०-ज्ञा०-पंचंत० जक्क० श्रोघं । श्रगु० जह० एग०, जक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। ण्वरि मणुसगदिपंचगस्स श्रगु० जह० एग०, जक्क० तेत्तीसं सा०। थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं श्रग्णंताणुवंधि०४ जक्क० श्रोघं। श्रगु० जह० एग०, जक्क० एक्कत्तीसं

श्रीर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल श्रोधके समान है। श्रुनुत्कृष्ट स्थिति वन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल साधिक दो सागर है। तीर्थं इर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु इर्त है। श्रुनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल साधिक दो सागर है। साता श्रादि छह, तिर्थं व्यात, देवगित, एकेन्द्रिय जाति, वैकियिक श्रारीर, श्राहारक श्रारीर, पाँच संस्थान, दो श्राङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, स्थिर, श्रस्थर, श्रुम, श्रश्रुम, दुर्भग, दुर्भग, दुस्वर, श्रनादेय, श्रयशःकीर्वि श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल श्रन्तर्मुह्र है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पद्मलेश्यामें प्रथम दग्डकमें कही गई प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल साधिक श्रम्य दग्डकमें कही गई प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल साधिक श्रम्भ दग्डकमें कही वहा इस लेश्यावाले जीवोंके एकेन्द्रिय जाति, श्रातप श्रीर स्थावर प्रकृतिका वन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ—पीत श्रौर पद्मलेश्यामें श्रपने श्रपने कालको ध्यानमें रखकर प्रथम दरहक में कही गई प्रकृतियोंके व तीर्थङ्कर प्रकृतिके श्रगुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कहा है। मात्र यह काल सम्यग्दिष्ट जीवके ही प्राप्त होगा। क्योंकि सम्यग्दिष्टके ही इन प्रकृतियोंका इतने कालतक निरन्तर वन्ध सम्भव है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१७४. शुक्क लेश्यामें पांच ज्ञानावरण, छ्रह दर्शनावरण, वारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रियजाति, तीनशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक, श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रषभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगित, असचतुष्क, सुभग, सुखर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगित पञ्चकके श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुवन्धी चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल

साग० सादि०। सेसाएां उक्क० ऋणु० सादभंगो।

१७६. भवसिद्धि॰ श्रोघं । श्रन्भवसिद्धि॰ मिदि०भंगो । सम्मादिद्दी॰ श्रोधि-भंगो । खइगसम्मादि॰ धुविगाणं उक्क० जह॰ एग॰, उक्क० श्रंतो० । श्रणु॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं सा॰ सादिरे॰ । मणुसगदिपंचगस्स उक्क० श्रोघं । श्रणु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ तेत्तीसं सा॰ । देवगदिचदुएणं सेसाणं च श्रोघं ।

१७७. वेदगस० पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-पुरिस०-भय-दुगु'०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचढु०-वएण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उचागो०-पंचंत०-उक्क० जहएणु० अंतो० । अगु० जह० अंतो०, उक्क०

साधिक इकतीस सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृप्ट ग्रीर ग्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल साता प्रकृतिके समान है।

विशेषार्थ—शुक्कलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। इतने काल तक इस लेश्यामें पाँच हानावरण श्रादि उनसठ प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। किंतु मनुष्यगतिपञ्चक श्रर्थात् मनुष्यगति, श्रोदारिकशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वजूर्षमनाराच संहनन श्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृतियोंका वन्ध संयत मनुष्यके नहीं होता, इसिलए उक्त कालमें से संयत सम्बन्धी शुक्क लेश्याके श्रन्तमुँहर्त काल कम कर देनेपर देवगति सम्बन्धी शुक्क लेश्याका तेतीस सागर कालशेष रहता है। यही कारण है कि इन पाँच प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल केवल तेतीस सागर कहा है। मिथ्यादिष्ट शुक्क लेश्यावाले जीवका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर होनेसे स्त्यानगृद्धि श्रादि श्राठ प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर होनेसे स्त्यानगृद्धि श्रादि श्राठ प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७६. भन्य जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रभन्य जीवोंमें मत्यक्षानी जीवोंके समान है। सम्यग्दिष्टयोंमें श्रविध्वानी जीवोंके समान है। श्रायिक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुद्धर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य काल श्रन्तर्मुद्धर्त श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इवगतिचतुष्क श्रीर श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—देवायुका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ सायिक सम्यक्त्वमें मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७७. वेदक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजल शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगित, जस चतुष्क, सुभग, सुस्तर, श्रादेय, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हुते है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल श्रन्तमुँ हुते है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल श्रन्तमुँ हुते है और उत्कृष्ट काल

छाविहसाग० । सेसं श्रोधिभंगो । एविर देवगिदचढुक्कं उक्क० जह० उक्क० श्रंतो० । [श्रणुक्क० जह० श्रंतो, उक्क०] तिरिए पिलदो० देस्र० ।

१७८. उनसमस॰ श्रोधिमंगो । एनिर तित्थय० उनक॰ जह॰ एग॰, उनक० श्रंतो॰ । श्रणु॰ जह॰ उनक॰ श्रंतो॰ । सेसं धुनिगाणं उनक० श्रणु॰ जह० [उनक॰] श्रंतो॰ ।

१७६. सासणे पंचणा०-णवदंस०-सोलसक०-भय-दुगुं०-तिण्णिगदि-पंचिं-दिय०-चदुसरीर-समचदु०-दोश्रंगो०-वण्ण०४-तिण्णिश्राणुपु०-श्रगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-स्रभग-स्रसर-श्रादे०-णिमि०-णीचुचागो०-पंचंत० उनक० श्रोधिभंगो। श्रणु० जह० एग०, उनक० द्यावलियाश्रो। तिरिक्खगदितियं सत्तमाए उनक० उनकसं कालं होहिदि ति। मणुसग०-श्रोरालि०-श्रोरालि०श्रंगो-मणुसाणु०-श्रणादे० देवस्स उनकस्सभंगं भवदि। देवगदि-वेजव्व०-समचदु०-वेजव्व०श्रंगो०-देवाणु०-

छ्यासर सागर है। शेप प्रकृतियों के उत्कृप्ट श्रीर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका काल श्रवधिज्ञानी जीवों के समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्टकाल श्रन्तमु हूर्त है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृप्ट काल कुछ कुम तीन पल्य है।

विशेषार्थ—उत्तम भोगभूमिमें वेदक सम्यक्तवका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। इसी वातको ध्यानमें रखकर यहाँ देवगति चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७८. उपशम सम्यग्दिए जीवोंमें अवधिक्षानी जीवोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। शेष प्रकृतियोंके तथा भ्रुवचन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है।

विशेषार्थ—उपराम सम्यग्दिएयों में श्रविधिज्ञानी जीवोंके समान भक्त है इस कथनका यह श्रभित्राय है कि श्रविधिज्ञानमें परावर्तमान प्रकृतियोंका काल जिस प्रकार कहा है उस प्रकार उनका काल यहाँ भी कहना चाहिए। शेष यहाँ भ्रववन्धवाली प्रकृतियों श्रीर तीर्थ-क्कर प्रकृतिके विषयमें जो विशेषता है वह यहाँ श्रलगसे कही ही है।

१७९. सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन गित, पञ्चेन्द्रिय जाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तीन श्रानुपूर्वी, श्रगुरुठधुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, नीचगोत्र, उचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रवधिज्ञानी जीवोंके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह श्राविल प्रमाण है। तिर्यञ्चगित त्रिकके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल सातवीं पृथिवीमें होगा ऐसा यहाँ सममना चाहिए। मनुष्यगित, श्रीदारिक शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और श्रनादेय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट भंग देवके होता है। देव-गित, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त

पसत्थवि॰-सुभग-सुस्सर-ब्रादे०-उचा॰ उक्क० ब्रसंखेज्जवस्सायुगाणं तिरिक्ख-मणुसाणुगाणं उक्कस्सभंगं भवदि । सादासादा॰-इत्थि॰-पुरिस॰-हस्स-रदि-ब्ररदि-सोग-चदुसंठा॰-पंचसंघ०-उज्जो०-ब्रप्पसत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-ब्रणादे०-जस०-ब्रजस० उक्क० ब्रणु० जह० एग०, उक्क० ब्रंतो०।

१८०. सम्मामि० पंचणा०-छदंस०-नारसक०-पुरिस०-भय-दुर्गुं०-दोगदि-पंचिदि०-चदुसरीर-समचदु०-दोग्रंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-दोग्राणु०-ग्रगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-ग्रादे०-उच्चागो०-णिमि०-पंचंत० उक्क० त्रणु० जहण्णु० ग्रंतो०। सादा०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० उक्क० त्रणु० ग्रोघं। ग्रसादा०-ग्ररदि-सोग-ग्रथिर-ग्रसुभ-ग्रजस०उक्क० जहण्णु० ग्रंतो०। त्रणु० ग्रोघं। मिच्छादि० मदिभंगो।

विहायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट भङ्ग श्रसंख्यातवर्षकी श्रायुवाले तिर्यञ्च श्रीर मनुष्योंके होता है। साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, श्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, श्ररित, शोक, चार संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रश्रुभ, दुर्भग, दुस्थर, श्रानादेय, यशःकीर्ति श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हुर्त है।

विशेषार्थ—अविधिष्ठांनी जीवोंके पाँच हानावरण श्रादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्ध्र का जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हूर्तप्रमाण घटित करके वतला श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ भी उन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका काल जानना चाहिए । यहाँ एक श्रावलिसे उत्पर कालकी श्रन्तमुँ हूर्त संद्रा है । तथा इन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल छह श्रावलि है । सो इसका कारण यह है कि सासादन गुण्स्थानका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल छह श्रावलि है । यद्यपि इन प्रकृतियोंमें कुछ परावर्तमान प्रकृतियाँ भी हैं पर उनकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्धक श्रलग श्रलग गितके जीव होनेसे यहाँ उनके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त वन जाता है । इनके सिवा शेष सव परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं इसिलए उनके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । १८०. सम्यिगश्यादिष्ट जीवोंमें पाँच श्रानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय,

१८०. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुण्सा, दो गित, पञ्चेन्द्रिय जाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, सुभग, सुखर, आदेय, उच्चगोत्र निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। साता वेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, ग्रुभ और यश्वाकीर्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति वन्धका काल श्रोधके समान है। असाता वेदनीय, अरित, शोक, अस्थिर, अश्वभ और अयश्वका किति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका काल स्रावकी जीवोंके समान है।

१८१. सिएए॰ पंचिंदियपज्जत्तभंगो । असिएए० धुविगाएां ओरालि॰ तिरि-क्लगदितिगं च चत्तारि श्रायु० श्रोघो । सेसाएां उक्क० श्रायु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो॰ ।

१८२. श्राहार० धुविगाणं तिरिक्खगदि-श्रोरालि॰-तिरिक्खाणु०-णीचा॰ उक्क० श्रोघं । श्रणु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ श्रंगुलस्स श्रसं॰ । सेसाणं पगदीणं मूलोघं । श्रणाहार० कम्मइगभंगो । एवं उक्कस्सकालं समत्तं ।

विशेपार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें पाँच झानावरण आदि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है। कारण कि जो मिथ्यात्वके अमिमुख उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला जीव होता है उसके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है और अन्यके अनुत्कृष्ट, इसलिए ये दोनों अन्तर्मुहूर्त से न्यून नहीं होते। यद्यपि इन प्रकृतियोंमें कुछ परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं पर उनकी उत्कृष्ट स्थितिक वन्धक अलग अलग गतिके जीव होनेसे उनका भी वही काल वन जाता है। साता वेदनीय आदि छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सस्थानमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि एक तो इनका सस्थानमें वन्ध होता है और दूसरे ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इस कालके प्राप्त होनेमें कोई वाधा नहीं आती। येष असाता वेदनीय आदि छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए उत्कृष्ट संक्लेशवाले जीवके होता है। यतः यह वन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। पर ये प्रकृतियाँ भी परावर्तमान हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट ग्रन्तर्मुहूर्त कहा है। वर ये प्रकृतियाँ भी परावर्तमान हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट ग्रन्तर्मुहूर्त कहा है।

१८१. संज्ञी जीवोंमें अपनी सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है। श्रसंज्ञी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियां श्रीदारिक श्रीर, तिर्यञ्चगित त्रिक श्रीर चार श्रायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल श्रोधके समान है। तथा श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थिति-यन्ध्रका जो काल घटित करके बतला श्राये हैं उससे संबी जीवोंके कालमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए संज्ञी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१८२. ब्राहारक जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियां तिर्यञ्चगति, श्रौदारिक शरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मृलोधके समान है श्रमाहारक जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल कामण काययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ — आहारकोंकी उत्छए कायस्थिति श्रङ्कलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी

१८३. जहएएए पगदं। दुवि०—अघे० आदे०। ओघे०—पंचणा०-चदुदंस०पंचंत० जह० हिदिवंधो केविचरं कालादो होदि? जहएणु० अंतो०, अजह० चदुसंज०हिदि० केविचरं०? तिभंग०। सादि० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियदं। पंचदंस०-वारसक०-भय-दुगुं० तेजा०-क० वएण्०४-अगु०-उप०-णिभि० जह० हिदि०
केविचरं०? जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० असंखेजा
लोगा। सादा०-[आहारसरीर]-आहार०अंगो०-जस० जह० हिदि० जहएणु०
अंतो० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। असादा०-इत्थि०-णुउंस०-हस्स-रदिअरिद-सोग-णिरयग०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०—आदाउज्जो०-अण्यसत्थवि०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ—दूभग—दुस्सर—अणादे०-अजस० जह०
'अजह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पुरिस० जह० जहएणु० अंतो०। अज०
हिदि० जह० एग०, उक्क० वेद्याविहसाग० सादि०।

वातको ध्यानमें रखकर यहां प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

जघन्य वन्धकाल

१८३. जघन्य कालका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ श्रीर श्रादेश। ओघकी अपेता पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रीर पांच श्रन्तराय प्रकृतियों के जघन्य स्थितवन्धका कितना काल है। जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हुतें है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका कितना काल है? श्रज्ञघन्य स्थितवन्धके तीन मङ्ग हैं—श्रनादि श्रन्तन, श्रनादि सान्त श्रीर सादि सान्त। उनमेंसे सादि सान्त श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुँ हुतें है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम श्रव्धपुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। पाँच दर्शनावरण, वारह कथाय, मय, जुगुज्सा, तैजस श्रीर, कामण्य श्रीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुल्ल, उपघात श्रीर निर्माण प्रकृतियों के जघन्य स्थितवन्धका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुंहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल प्रक्तमुंहूर्त है। श्रक्ताता वेदनीय, श्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रित, श्रारत, श्रोक, नरकगति, चार जाति, पांच संस्थान, पांच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वा, श्रातप, उचोत, श्रमश्रस्त विहायोगिति, स्थावर श्रादि चार, स्थिर, श्रस्थर, श्रम, श्रश्चम, दुर्मग, दुस्वर, श्रनादेय श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हुर्त है। प्रक्षवेदके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल साधक दो छ्यासट सागर है।

१. मूलप्रती अर्जह० इति पाठः।

१८४. चदुण्णं श्रायुगाणं जह० द्विदि० जहण्णु० एग० । श्रज० जहण्णु० श्रंतो । एवं सन्वत्थ योग-कसायमगणाश्रो वज्ज० । तिरिक्खग०-श्रोरालि०-तिरिक्खाण०-णीचा० जह० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्क० श्रसंज्जा लोगा । मण्रुसग०-वज्जरि०-मणुसाणु० जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्क० तेत्रीसं सा० । देवगदि०४ जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्क० तिरिण पिलदो० सादिरे० । पंचिदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं । समचदु०-पसत्थिव०-सभग-सुस्सर-श्रादे० जह० द्विद० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रजह० जह० एग०, उक्क० वेद्याविद्याण सादि० तिरिण पिलदो० देसू० । श्रोरालि०श्रंगो० जह० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्क० तेत्रीसं साग० सादि० । तित्थय० जह० द्विदि० जह० उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० श्रंतो० । श्रज० जह० विराण सा० सादि० । उज्ज० जह० द्विद० जह० उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० तिरिण सा० सादि० । उज्ज० जह० द्विद० जह० उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० तिरिण सा० सादि० । उज्ज० जह० द्विद० जह० उक्क० श्रंतो० । श्रज०

१८४. श्रायुकर्मकी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रौर उत्कृप्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। योग श्रौर कपाय मार्गणात्रोंको छोड़कर श्रायुकर्मके विषयमें इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए। तिर्यञ्चगति, श्रौदारिक शरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुर्त है । श्रजघन्य स्थितिबन्ध-का जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। मनुष्यगति, वज्जर्पभनाराच संहनन श्रौर मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हुते है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृप्ट काल तेतीस सागर है। देवगति चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। अजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उल्लास श्रीर त्रस चतुष्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल ग्रन्तर्मुहूर्त है। ग्रजधन्य स्थितिबन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृप्ट काल एकसी पचासी सागर है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुखर श्रीर श्रादेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल ग्रन्तमु हुर्त है। ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर श्रीर कुछ कम तीन पल्योपम है। श्रीदारिक शारीर श्राङ्गोपाङ्ग प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहर्त है। श्रजधन्य स्थितिचन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुर्त है। श्रज्ञचन्य स्थितिबन्धकाजघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है। उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है।

१. मूलप्रती श्रंतो० श्रव्जा० जह० एग० उक्क अंतो० श्रव्जा० इति पाटः । २. मूलप्रती उक्क० तेत्रीसं सा० सादि० इति पाटः ।

हिदि॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ वेद्यावहिसा॰ सादि॰ तिरिए पलिदो॰ देस्०।

श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर श्रीर कुछ कम तीन पत्य है।

विशेषार्थ-पाँच ह्यान।वरण त्रादि १८ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध ज्ञपक श्रेणिमें ग्रन्तिम स्थितिवन्धके समय होता है, इसलिए उनके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। इन प्रकृतियोंका अजधन्य स्थितिवन्ध अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त तीन प्रकारका होता है। जो अन्य ध्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ हैं उनका भी इसी प्रकारसे तीन प्रकारका बन्ध होता है। उनमेंसे यहाँ सादि-सान्त ग्रजघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्टकाल कहा गया है। जब यह श्रजघन्य स्थितिवन्ध श्रन्तर्मुहुर्तकाल रहकर पुनः श्रेणि पर श्रारोहण करनेसे छूट जाता है तव इनके श्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है और यदि कुछ कम अधेपुद्रल काल तक यह जीव श्रेणि पर नहीं चढ़ता है तो इनके अजघन्य स्थितिवन्धका उक्त प्रमाण उत्कृप्ट काल प्राप्त होता है। इसीसे इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहर्त श्रोर उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्घपुद्रल परिवर्तनप्रमाण कहा है। पाँच दर्शनावरण आदि २५ प्रकृ तियोंका जघन्य स्थितिवन्ध वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है। यहाँ जघन्य स्थितिवन्ध का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है, इसलिए इन प्रकृतियों के जघन्य स्थितियन्धका जघन्य काल-एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहा है। इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हुत है, क्योंकि एक बार जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणाम होनेके वाद वे पुनः कमसे कंम अन्तमु हुर्त वाद होते हैं और उत्क्रप्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है, क्योंकि वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रसं-ख्यात लोकप्रमाण है। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि चार प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें अपने अपने श्रन्तिम स्थितिवन्धके अन्तर्मु हूर्त काल तक होता रहता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। जो जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय आहारकद्विकका एक समयके लिए वन्ध करता है और दूसरे समयमें मरकर वह देव हो जाता है उसके ग्राहारकद्विकके श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय उपलब्ध होता है। तथा इनके श्रजघन्य स्थिति वन्धका उत्कृष्ट वन्धकाल अन्तर्मु हुर्त ही है, क्योंकि एक तो ये सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं और दूसरे सातवें श्रीर श्राठवें गुण्स्थानका उत्कृष्ट काल ही श्रन्तमु हूर्त है, इसलिए तो इन दोनों प्रकृतियोंके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहा है और साता व यशःकीति ये सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ होनेसे इनके श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहा है, क्योंकि साता वेदनीय श्रीर यशःकीर्तिका एक समयके लिए अजघन्य स्थितिबन्ध हुत्रा ग्रीर दूसरे समयमें इनके स्थानमें श्रसातावेदनीय व श्रयशःकीर्तिका स्थितिबन्ध होने लगा तो इनके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है श्रौर यदि इनका निरन्तर स्थितिवन्ध होता रहा तो वह श्रन्तमु हूर्त काल तक ही होगा। इसके वाद इनके स्थितिबन्धका काल समाप्त हो जानेके कार्ण नियमसे इनका स्थान इनकी प्रतिपचभूत प्रकृतियाँ ले लेंगी। इसलिए साता-वेदनीय श्रौर यशःकीतिके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त कहा है। असातावेदनीय आदि २८ प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य

१८४. आदेसेरा रोरइगा० धुविगाएां जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० वेसम०।

अजह० हिदि॰ जह० दसवस्ससहस्साणि विसमयूणाणि, उक्क० हिदि॰ तेत्तीसं स्थितिबन्धका ज्वन्य काल एक समय और उत्कृप्ट काल अन्तमु हुर्त इसलिए कहा है, क्योंकि सामान्यतः इनके वन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त है। पुरुषवेद चपक प्रकृति है और चपक श्रेणिमें एक एक स्थितिवन्ध अन्तमु हूर्त काल तक होता रहता है, इसलिए इसके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हुर्त कहा है। इसके अजधन्य स्थितिबन्धका जधन्य काल एक समय इसके प्रतिपन्न प्रकृति होनेसे है और नपुंसकवेद व स्त्रीवेदकी प्रथम व द्वितीय गुणस्थानमें बन्ध व्युच्छित्ति हो जानेके वाद जीव साधिक दो छ्यासठ सागर काल तक श्रागेके गुण्स्थानीमें बना रहनेसे इतने काल तक सतत इसका नियमसे चन्ध करता रहता है, इसलिए इसके अजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर कहा है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध एक समय तक और अजघन्य स्थितिवन्ध अन्तर्मु हुर्त तक होता है ऐसा नियम है इसलिए चारों श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल ग्रन्तमुं हूर्त कहा है किन्तु योग और कषाय मार्गणामें इनके जघन्य स्थितिवन्धकी तरह ग्रजघन्य स्थितिवन्धका भी जघन्य काल एक समय वन जाता है, क्योंकि किसी भी जीवके किसी एक कषाय श्रौर योगमें एक समय तक श्रायुका श्रजघन्य स्थितिवन्घ होकर दूसरे समयमें उसके उस योग श्रीर कषायका बदल जाना सम्भव है। ग्रिग्निकायिक ग्रौर वायुकायिक जीवोंकी उत्क्रप्ट कायस्थिति ग्रसंख्यात लोक-प्रमाण है, इसलिए तिर्यञ्चगति ग्रादि चार प्रकृतियोंके ग्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल ग्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनके जघन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय ग्रीर जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल ग्रन्तमु हुर्त होनेका कारण इन प्रकृतियोका सप्रतिपत्त होना है। श्रागे भी यथासम्भव यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सर्वार्थिसिद्धिके देव अपनी आयुके प्रथम समयसे लेकर अन्त तक मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करते रहते हैं, इसलिए इनके अजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। जो मनुष्य सम्यग्द्य देवगतिचतुष्कका नियमसे वन्य कर रहा है उसके तीन पल्यकी आ्रायुवाले जीवोंमें उत्पन्न होने पर भी उनका वन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजधन्य स्थितियन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य कहा है। पञ्चे-न्द्रिय जाति श्रादि सात प्रकृतियोंके स्थितिवन्धका खभावसे जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त व श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका, जघन्य काल एक समय कहा है। देवगति श्रीर नरकगतिमें इनका नियमसे बन्ध होता है, तिर्यञ्चगतिमें दूसरे गुणस्थानसे लेकर पाँचवें गुणस्थान तक नियमसे वन्ध होता है श्रीर मनुष्यगतिमें दूसरे गुणस्थानसे लेकर अपनी अपनी बन्ध न्युच्छित्ति होने तक इनका नियमसे बन्ध होता है। अब यदि इन गतियों और इन प्रकृतियोंके वन्धके योग्य अवस्थाका विचार कर इनके वन्धके उत्कृष्ट कालका योग किया जाय तो वह एक सौ पचासी सागरसे ऋधिक नहीं होता, इसीसे यहाँ इनके ग्रजघन्य स्थितियन्धका उत्कृष्ट काल एक सौ पचासी सागर कहा है।

१८५. श्रादेशसे नारिकयोंमें ध्रुववन्घवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल दो समय है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल दो सा० | थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अणंताणुवंधि४-तिरिक्तग०--तिरिक्ताणु०-णीचा० जह० [जह०] एग०, उक्क० वे सम० | अज० द्विदि० जह० एग०, मिच्छत्तं अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० | पुरिस०-मणुसग०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्यिव०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० वे सम० | अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० | तित्थय० जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० त्रंती० | अज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० तिणिण साग० सादि० | सेसाणं जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० वे समयं | अज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० | एवं पढमाए | एवरि तिरिक्तगिदितगं सादभंगो | पुरिस०-[मणुसग० समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्यवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उचा०]-तित्थय० सागरोवमं देसूणं | ध्विगाणं सागरोवम० |

समय कम दस हजार वर्ष है श्रीर उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धित्रक, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चतुष्क, तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है किन्तु मिथ्यात्वका अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्टकाल सवका तेतीस सागर है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वजर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुखर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज्ञघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक तीन सागर है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रप्रकाल दो समय है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्ऋष्ट काल अन्तमु दूर्त है । इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति त्रिकके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल साता प्रकृतिके समान है । पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वजर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रशस्त विहायोगति, सुमग, सुस्वर, श्रादेय, उच्चगोत्र श्रीर तीर्धंकर प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर है तथा ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके श्रज्ञधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल एक सागर है।

विशेषार्थ— ऋखं ही जीव मरकर नरकमें उत्पन्न होता है और ऐसे जीवके उत्पन्न होने अथम समयमें या प्रथम व द्वितीय समयमें जघन्य स्थित हो सकता है। इसीसे यहाँ सामान्यकी अपेत्वा व प्रथम नरकमें तीर्थक्कर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितवन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इनके अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अपनी-अपनी वन्धकी योग्यतानुसार अलग-अलग है यथा—अ ववन्धवाली प्रकृतियोंका सतत बन्ध होता रहता है और नरककी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष व उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितवन्धका जघन्यकाल दो समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। यहां इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल दो समय

१८६. विदियादि याव छिं ति थीणिगिद्धि०३-भिच्छ०-ऋणंताणुवंधि०४ जह० द्विदि० जहएणु० अंतो० । अज० जह० एग०, भिच्छ० अंतो०, उक्क० अप्पप्पणो हिदी० । सेसाणं जह० अज० उक्क०भंगो । सत्तमाए थीणिगिद्धि०३ मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४-तिरिक्खगदितिगं जह० दिदि० जह० उक्क० अंतो० ।

कम करके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल कहा गया है। जो स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्ता , नुबन्धी चतुष्क, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंका एक समयतक वन्ध करता है श्रीर दूसरे समयमें मरकर श्रन्यगतिमें चला जाता है उसके इन प्रकतियोंके श्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है। नरकमें मिथ्यात्व गुणुस्थानका जघन्यकाल श्रन्तमु हुर्त है, इसलिए मिथ्यात्व प्रकृतिके अजघन्य स्थितियन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त उपलब्ध होता है। इन प्रकृतियोंके अजधन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। पुरुषवेद श्रादि १० प्रकृतियाँ सप्रतिपन्न हैं श्रीर इनका कमसे कम एक समयतक वन्ध होता है ऐसा नियम है इसलिए इनके श्रज्ञधन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा सम्यग्दिए नारकी इनका नियमसे बन्ध करता है और नरकमें सम्यक्त्वका काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसिलए इनके श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए इनके श्रज्ञघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। जिस नारकीने तीर्थङ्कर प्रकृतिका एक समयतक जघन्य स्थितिवन्घ किया श्रीर दूसरे समयमें वह जघन्य स्थितिवन्ध करने लगा उसके इसके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय उप-लब्ध होता है और नरकमें तीर्थं इर प्रकृतिका निरन्तर वन्धकाल साधिक तीन सागर है यह स्पष्ट ही है। इसीसे यहां इस प्रकृतिके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है। श्रव रहीं शेष प्रकृतियां सो उनके निरन्तर बन्धका यहाँ जघन्य काल एक समय और उक्तर काल श्रन्तमु हूर्त होनेसे यह काल उक्त प्रमाण कहा है। प्रथम नरकमें सब काल इसी प्रकार वन जाता है। किन्तु कुछ विशेषता है। यथा-प्रथम नरकमें तिर्यञ्चगति त्रिकके वन्धके समय इनकी प्रतिपत्त प्रक्र-तियोंका भी बन्ध सम्भव है, इसलिए साता प्रकृतिके समान इनके श्रजधन्य स्थितिवन्ध का जघन्यकाल एक समय और उत्कष्ट काल अन्तर्मु हुर्त उपलब्ध होनेसे यह काल साता प्रकृतिके समान कहा है। प्रथम नरककी उत्कष्ट स्थिति एक सागर है किन्तु यहां वेदक सम्यकत्वका काल कुछ कम एक सागर है, इसलिए यहां पुरुपचेद ग्रादि १० और तीर्थंद्वर प्रकृतिके अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर कहा है। किन्तु ध्रव-बन्धवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्व गुण्स्थानमें निरन्तर वन्ध होता है इस लिए इनके श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्क्रप्ट काल एक सागर कहा है।

१८६. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारिकयों में सत्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है किन्तु मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा शेप प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धका काल उत्कृष्टके समान है। सातवीं पृथिवीमें स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार और तिर्यञ्चगित त्रिकके जघन्य स्थितिवन्धका

श्रज॰ द्विदि० जह० श्रंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं सा० । मणुसग०-मणुसाणु०-उचा० जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क॰ श्रंतो० । श्रज० जह० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । सेसं उक्क॰भंगो । एविरि धुविगाणं श्रज० जह० श्रंतो० । १८७. तिरिक्लेसु पंचणा०-एवदंसणा०-भिच्छत्त्-सोलसक०-भय-दुगुं०-तिरि-

१८७. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-भिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-तिरि-क्लग०-ञ्रोरालि०-तेजा०-क०-वएण०४-तिरिक्खाणु०-ञ्रगुरु०-छप०-णिभि०-णीचा०-पंचंत० जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । ञ्रज० जह० एग०, उक्क० ञ्रसंखेळा लोगा । सेसाणं जह० ञ्रज० हिदि० उक्कस्सभंगो । पंचिद्यतिरिक्ख०३ सव्वपगदीणं जह० ञ्रज० उक्कस्सभंगो । पंचिद्यतिरिक्ख०३ जह० ञ्रज० उक्कस्सभंगो । पंचिद्यतिरिक्खा० जह० ञ्रज० उक्कस्सभंगो ।

जधन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। मनुष्यगित मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र प्रकृतियों के जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा शेष प्रकृतियों के जधन्य और अजधन्य स्थितिवन्धका काल उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि भ्रववन्धवाली प्रकृतियों के अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वके श्रीममुख हुए द्वितीयादि पृथिवीके नारकीके श्रान्तम स्थितिवन्धमें अवस्थित होने पर स्त्यानगृद्धि श्राद्ध श्राद्ध श्राद्ध प्रकृतियोंका जधन्य स्थितिवन्ध होता है।
इसका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहां इन प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य और
उत्कृप्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातवीं पृथिवीमें इन प्रकृतियोंके व तिर्यञ्चगित त्रिकके
जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृप्ट काल अन्तर्मुहूर्त इसी प्रकार घटित कर लेना
चाहिए। सातवीं पृथिवीमें जो श्रसंयत सम्यग्दिए सस्थानमें मनुष्यगित श्राद्धि तीनका कमसे
कम एक समयतक और श्रधिकसे श्रधिक श्रन्तर्मुहूर्त काल तक जधन्य स्थितिवन्ध करता
है उसके इन प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल
अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंका यह काल उक्त प्रमाण कहा है। तथा
इन प्रकृतियोंका अजधन्य स्थितिवन्ध कमसे कम श्रन्तर्मुहूर्त काल तक और श्रधिकसे
श्रधिक यहां तीसरे व चौथे गुणस्थानका काल मिलाकर श्रधिकसे श्रधिक जितना होता है
उतने काल तक होता है, इसलिए श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त और
उत्कृप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

१८७. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्या- जुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हुर्त है। अजघन्य स्थिति- वन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्टकाल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। श्रेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यच- त्रिक्में सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्यातकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल उत्कृष्टके समान है।

१८८. मणुस०३ खवगपगदीणं घुविगाणं जह० हिदि० ओघं । अज० हिदि० जह० एग०, उनक० तिणिण पिल० पुन्वकोिडपुधत्तं । पंचदंस०-वारसक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-िणिम० जह० हिदि० जह० एग०, उनक० वेसम० । अज० हिदि० जह० एग०, उनक० उनकस्सभंगो । सादावे०-आहार०-आहार०आंगो०-जस० जह० अज० ओघं । असादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रिद-अरिद-सोग-तिरिक्खग०-मणुसग०-चढुजािद-ओरािल०अंगो०-अस्संघ०-दोआणु०-आदाउजो०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-थिरािथर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अर्णादे०-अजस०-णीचागो० जह० हिदि० जह० एग०, उनक० वेसम० । अज० हिदि० उनकस्सभंगो । सम्बद्ध०- हिदि० जह० एग०, उनक० वेसम० । अज० हिदि० ज'ह० सुद्धाभ० विसमयूणं अंतो०, उनक० उनकस्सभंगो । समचदु०-पसत्थ०-सुभग०-सुस्सर-आदे० जह० हिदि० जह० एग०, उनक० वे समयं । अज० हिदि० ज'ह० सुद्धाभ० विसमयूणं अंतो०, उनक० उनकस्सभंगो । समचदु०-पसत्थ०-सुभग०-सुस्सर-आदे० जह० हिदि० जह० एग०, उनक० वे समयं । अज० जह० एग०, उनक० वे समयं ।

विशेषार्थ—यह हम अनेक वार बतला आये हैं कि तिर्यञ्चोंमें सूच्म जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इसके वाद जीव नियमसे वादर और पर्याप्त होकर जघन्य स्थितवन्ध करता है। इसीसे यहां पाँच ज्ञानावरण आदिकी अजधन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१८८. मनुष्यत्रिकमें चपक ध्रुव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका काल श्रीघके समान है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व श्रिधिक तीन पत्य है। पाँच दर्शनावरण, वारह कषाय, भय, जुगुण्सा, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघ-न्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट कालका भङ्ग उत्कृप्टके समान है। सातावेदनीय, श्राहारकशरीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका काल श्रोधके समान है। श्रसातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुं सकवेद, हास्य, रति, श्ररति, श्रोक, तिर्यञ्च-गति, मनुष्यगति, चार जाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छ्रह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर ग्रादि चार, स्थिर, श्रस्थिर, शुभ, श्रशुभ, दुर्भग, दुःखर, ग्रनादेय, ग्रयशःकोर्ति ग्रौर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल दो समय है। तथा श्रजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृप्टके समान है। मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल दो समय है। श्रजधन्य स्थितिबन्धका जधन्य काल सामान्य मनुष्योंमें दो समय कम शुल्लक भवग्रहण प्रमाण ग्रौर शेष दो में ग्रन्तर्मुहर्त है। तथा उत्रुष्ट कालका भङ्ग उत्रुप्टके समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर श्रीर श्रादेय प्रकृतियों-के जघन्य स्थितियन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज-घन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। पर मनुष्यिनियोंमें उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। पुरुषवेद, देवगति चतुष्क ग्रौर उच-

१. मूलप्रती जह० एग० खुद्धाभ० इति पाठः।

पुरिस०-देवगदि४-उच्चा० जह० हिदि० जह० उनक० श्रंता०। श्रज० जह० एग०, उनक० तिरिण पिलदो० सादि०। मणुसिणीस देसू०। णिरयगदि-णिरयाणुप० जह० श्रज० उनकस्सभंगो। पंचिदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ जह० हिदि० जह० एग०, उनक० वेसम०। श्रज० जह० एग०, उनक० तिरिण पिलदो० सादि०। तित्थय० जह० हिदि० श्रोघं। मणुसिणीस तित्थय० जह० हिदि० जह० एग०, उनक० श्रंतो०। श्रज० हिदि० जह० एग०, उनक० पुन्वकोडी देसू०।

१८६. मणुसअपज्ज० धुविगाणं जह० द्विदि० जह० एग०, उनेक० वे सम०। अज० जह० खुद्धाभव० विसमयूणं, उक्क० अंतो०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० वे समयं। अज० जह० एग, उक्क० अंतो०।

गोत्र प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है पर मनुष्यितियां में कुछ कम तीन पत्य है। नरकगित श्रीर नरकगत्यानु पूर्वों के जघन्य श्रीर श्रज्ञ घन्य स्थितिवन्धका भङ्ग उत्कृष्ट समान है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास श्रीर त्रस चतुष्क प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। पर मनुष्यिनियों में तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है।

१८६. मनुष्य अपर्याप्तकों भें भ्रुववन्धवाली प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल दो समय कम श्रुल्लकभव प्रह्णप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। श्रेष प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है, और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है।

विशेषार्थ—यहां चपक प्रकृतियों से पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, और पाँच अन्तराय इन १८ प्रकृतियों का ग्रहण किया है। मनुष्यित्रक उनकी उत्कृष्ट काय-स्थिति प्रमाण काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसिलए इनके अज्ञधन्य स्थिति प्रमाण काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है। समचतुरस्रसंस्थान आदि पाँच और पुरुपवेद आदि छह प्रकृतियों का सम्यग्हिए मनुष्यके निरन्तर वन्ध होता रहता है। इसीसे यहां मनुष्यसामान्य और पर्याप्त मनुष्यके इन प्रकृतियों के अज्ञधन्य स्थिति-वन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य और मनुष्यनी के कुछ कम तीन पल्य कहा है। पश्चेन्द्रिय जाति आदि सात प्रकृतियों का सम्यग्हिए मनुष्यके तो निरन्तर वन्ध होता ही है पर जो मनुष्य भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं उनके अन्तर्भ हूर्त काल पूर्वसे भी इनका वन्ध होने में कोई वाधा नहीं आती। इसीसे इन प्रकृतियों के अज्ञधन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। यह काल सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्यों के कुछ कम एक पूर्वकोटिका विभाग अधिक तीन पल्य प्रमाण जानना चाहिए और मनुष्यों के अन्तर्भु हुर्त अधिक तीन पल्य जानना चाहिए। तीर्थं इर प्रकृतिका वन्ध करनेवाला मनुष्य मर कर मनुष्यों में तीन पल्य जानना चाहिए। तीर्थं इर प्रकृतिका वन्ध करनेवाला मनुष्य मर कर मनुष्यों में

१६०. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-भय-दुगुं०-न्रोरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-त्रगुरू०४-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० जह० जह० एग०, उक्क० वे सम०। अज० द्विदि० जह० दस वस्ससहस्साणि विसमयूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सा०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-त्रणंताग्रुवंधि०४ जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० वे सम०, अज० जह० एग०, मिच्छ० अंतो०, उक्क० एककत्तीसं सा०। पुरिस०-मणुसग०-पंचिदि०-समचदु०-न्त्रोरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-तस-सुभग-सुससर-आदे०-उच्चा० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। तित्थय० जह० अज० द्विदि० उक्कस्स-भंगो। सेसाणं जह० द्विद० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० उक्कस्सभंगो।

१६१. एवं भवण०-वाणवें०। एवरि सगिंदि भाणिद्वा। जोदिस याव एवगेवज्जा त्ति जह० अज० हिदि० उक्कस्सभंगो। एवरि थीणागिद्धि०३-मिच्छ०-अर्णताणुवंधि०४ जह० जह० उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, मिच्छ० अंतो०, उक्क० अप्पप्पणो हिदि त्ति। एवं ऐदिव्वं सन्वह ति।

नहीं उत्पन्न होता। इसीसे यहां तीर्थङ्कर प्रकृतिके श्रज्ञघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण कहा है। शेष काल विचार कर ज्ञान लेना चाहिए।

१९०. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुण्सा, श्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुक्त चुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रोर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियों के ज्ञान्य स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय के । श्रज्ञचन्य स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल दो समय कम दस हजार वर्ष है श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रन्ततानुवन्धी चारके ज्ञान्य स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज्ञचन्य स्थितिवन्धका ज्ञान्य काल एक समय है ,मिथ्यात्वका श्रन्तर्मुहूर्त हे श्रीर उत्कृष्ट काल सबका इकतीस सागर है। पुरुषवेद, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ज पमनोराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, त्रस, सुमग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज्ञचन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य श्रीर अज्ञचन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टके समान है। श्रेप प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टके समान है। तथा श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका अञ्चन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

१९१. इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अपनी स्थित कहनी चाहिए। ज्योतिषियोंसे लेकर नौ भैवेयक तकके देवोंमें जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हुर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है, मिथ्यात्वका श्रन्तमुँ हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि तक जानना चाहिए।

यक्षण काषाहदा० | पाचिद्यअपष्टाता उक्कस्सयंगो | १८४, पंचकापाणं सन्वपगदीणं उक्कस्सयंगो | ण्यारे यस्हि अंतो० तसिह जह० एग० कादन्वं |

१६५, तस०२ सदमापमदीयां जह० औदं। अज० अधु० मंगो। यादि जह० अंती०।. सेसायां युविमायां जह० डिहि० जह० एम०, उक्क अंती०। अज०

निर्शिक्ष किन्छ निर्मिक्ष के स्वास्त किन्छित । किन्छित के स्वास के स्वास के स्वास किन्छित । किन

लेशिनों क्रमान निकलन क्रमान स्वांत क्रमान स्वांत स

१९८. पाँच स्थावर काथिक जीवोंमें सव प्रकृतियोंका भन्न उत्कृष्यके समाम है। इतनी विशेषता है कि जहाँगर जयम्य काल अन्तमु हूरी कहा है वहाँगर जयम्य काल एक समय कहना चाहिए।

-हारू ग्रींक प्रकुरक किंकिनोक्चय क्रिक्श-क्रिक माँकिक क्रिकालग्राक क्रिक्ट क्रिक क्रिक्ट क्रिक्ट क्रिक्ट क्रिक्ट क्रिक्ट क्रिक क्रि

रकुप्र स्थितिवन्धका जी काल कहा है उसी प्रकार पहाँ भी जानना चाहिए। मात्र जानम काल अन्तमु हूर्तके स्थानमें एक समय कहना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्थ है। १६४. त्रस और त्रस प्रमित्र जीवीमें चपक प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका काल

श्रीयके समान है। श्रज्ञयन्य स्थितिवन्यका काल अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विश्रेपता है क्षिप्त समान है। श्रज्ञयन्य स्थितिवन्यका ज्ञानम् क्षि क्ष्यां क्ष्यां है। श्रेप्त काल ज्ञानम् काल प्रकार स्थितिवन्यका काल ज्ञाना-काल प्रकार स्थापिक स्थाप क्ष्यां है। श्राप्त काल ज्ञाना-काल प्रकार स्थापिक स्था

१६२. एइंदिएसु धुविगाणं तिरिक्लगदितिगं च तिरिक्लोवं । सेसाणं तिरिक्लग्रेपज्ञत्तभंगो । वादरे धुविगाणं अंगुलस्स असंखे० । तिरिक्लगदितिगं जह'० स्रोवं । अज० जह० एग०, उक्क० कम्मिट्टदी० । वादरपज्ज० अज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । एवं तिरिक्लगदितिगं पि । सेसाणं जह० अज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । वादरअपज्ज० तिरिक्ल-अपज्जत्तभंगो । सुहुमे धुविगाणं जह० द्विदि० तिरिक्लोवं । अज० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । एवं तिरिक्लगदितिगं । सेसाणं जह० अज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । एवं तिरिक्लगदितिगं । सेसाणं जह० अज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पज्जत्तापज्जत्तेसु सञ्चपगदीणं तिरिक्लअपज्जत्तभंगो ।

विशेषार्थ— पाँच ज्ञानावरण ग्रादि ४४ प्रकृतियोंका देवोंके निरन्तर वन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल दो समय कम दस हजार वर्ष ग्रौर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। मिथ्यात्वके साथ देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागर है। इसीसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन ग्रादि ग्राठ प्रकृतियोंके ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर कहा है। देव सम्यग्दिष्टके पुरुपवेद ग्रादि तेरह प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है। इसीसे यहाँ इनके ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। ग्रसंज्ञी जीव भवनवासी ग्रौर व्यन्तर देवोंमें ही मरकर उत्पन्न होता है, इसलिए देव सामान्यकी ग्रपेता यहाँ जो काल कहा है वह उनमें भी घटित हो जाता है। मात्र ग्रज्जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय वह उनकी भवस्थितिन प्रमाण हो कहना चाहिए, क्योंकि देव सामान्यमें यह काल देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिको ध्यानमें रखकर कहा है। ग्रेप कालका स्पष्टीकरण जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिवन्धके कालके कथनके समय किया है उसी प्रकार यहाँ पर भी कर लेना चाहिए।

१९२. एकेन्द्रियोंमें भ्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ और तिर्यञ्चगित त्रिकका भक्क सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। येष प्रकृतियोंका भक्क तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। वादर एकेन्द्रियोंमें भ्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट काल श्रङ्कुलके श्रसंख्यान्तवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चगित त्रिकके जघन्य स्थितवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रज्ञधन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगितित्रकका काल भी जानना चाहिए। श्रेप प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हुर्त है। वादर श्रपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए। सूक्त एकेन्द्रियोंमें भ्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रम्तान है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रम्तान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगितित्रकका काल जानना चाहिए। श्रेप भक्तियोंके जघन्य और श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रम्तानींके जघन्य और श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रम्तानींके जघन्य और श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रम्तानींके समान है।

१. मुलप्रती जह० जह० श्रोघं इति पाठः ।

णाणावरणभंगो । सेसाणं उक्कस्सभंगो । तसत्रपञ्ज० उक्कस्सभंगो ।

१६६. पंचमण्-पंचविच सन्वपगदीणं जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। चदुआयु० जह० द्विदि० जहरण्यु० एग०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१६७. कायजोगि० खवगपगदीणं जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रज० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रणंतकालमसंखे०। खवरि सादा०-पुरिस०- जस०-उच्चा० श्रंतो०। सेसाणं धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स य जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रज० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रज० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। सेसाणं मणजोगिभंगो।

वरणके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। त्रस त्रपर्याप्तकोंमें त्रपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

१९६. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अज्ञावन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। चार आयुओंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अज्ञावन्य स्थिति-वन्धका जघन्य है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त है।

विशेषार्थ-पाँचों मनोयोग श्रीर पाँचों वचनयोगका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त होनेसे यहां सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। चारों श्रायुश्रोंके अजघन्य स्थितिवन्धका साधारणतः जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल यद्यपि अन्तर्मु हूर्त है पर उक्त योगोंका जघन्य काल एक समय होनेसे यहां श्रायुश्रोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय वन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९७. काययोगी जीवोंमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजधन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रलपरिवर्तन प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, पुरुषवेद, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अजधन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। शेष भ्रुववन्धवाली प्रकृतियों और तिर्यञ्चगति त्रिकके जघन्य स्थिति बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजधन्य स्थितिबन्ध का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भक्न मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—एक तो चपक प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध चपक श्रेणिमें होता है और दूसरे काययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट कायस्थिति श्रनन्त काल है। इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त और श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त और श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल श्रनन्त काल कहा है। मात्र साता वेदनीय श्रादि चार चपक प्रकृतियोंका काययोगमें निरन्तर वन्ध श्रन्तमु हूर्त काल तक ही होता है, क्योंकि जिन गुणस्थानोंमें इनका निरन्तर वन्ध होता है उनमें काययोगका उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त ही उपलब्ध होता है इसनिलए इन चार प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहा है। यहाँ

१८८. त्रोरालिए धुविगाणं जह० दिदि० जह० एग०, उक्क० त्रंतो०। त्रज० दिदि० जह० एग०, उक्क० वावीसं वस्ससहस्साणि देसू०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-णीचागो० जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० त्रंतो०। त्रज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० तिरिण वाससहस्साणि देसू०। सेसाणं कायजोगिभंगो।

१६६. त्रोरालियमिस्से पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-त्रोरालिय-तेजा०-क०-वरण४-त्रगु०-उप०-णिमि०-पंचंत०-देवगदि०४-तित्थय० जह० त्रज० जह० उक्क० श्रंतो० । से काले सरीरपज्जत्तीहि जाहिदि त्रि यदि त्रधाप-

शेष भ्रु ववन्धवाली प्रकृतियों के श्रज्ञ श्वान्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहनेका कारण यह है कि इनका काययोगकी श्रपेत्ता निरन्तर श्रज्ञ श्वान्य स्थितिवन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रियों में होता रहता है और उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। इसके बाद ये बाद ए एकेन्द्रिय पर्याप्त होकर इनका ज्ञश्चन्य स्थितिवन्ध करते हैं। यही कारण है कि यहाँ शेप भ्रुववन्धवाली प्रकृतियों के श्रज्ञ श्वान्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चगतित्रिकका निरन्तर वन्ध श्रग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवों के होता है श्रीर उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रसंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए इन तीन प्रकृतियों के भी श्रज्ञ श्वान्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१६८. श्रौदारिक काययोगी जीवोंमें भ्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगित्यानुपूर्वी श्रोर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है तथा शेष प्रकृतियोंका भक्न काययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट स्थित वाईस हजार वर्ष है। इनके अन्तर्मुहृत कम वाईस हजार वर्ष तक औदारिक काययोग होता है। इसीसे औदारिक काययोगमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष कहा है, तथा वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति तीन हजार वर्ष है। इनके अन्तर्मु हूर्त कम तीन हजार वर्ष तक औदारिक काययोग होता है। इसीसे औदारिक काययोगमें तिर्यञ्चर्गात त्रिकके अजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है, क्योंकि इन तीन प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध औदारिक काययोगके रहते हुए यहीं पर सम्भव है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९९. श्रीदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण, पाँच श्रन्तराय, देवगतिचतुष्क श्रौर तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुत है। तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा, इसलिए यदि श्रधः प्रवृत्तका यह काल लेते हैं तो जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुत है। तथा

वत्तस्स जह० अजह० जह० एय०, उक्क० अंतो० । सेसाएां जह० अज० दिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२००. वेडिव्वयका०-वेडिव्यिम०-आहार०-आहारिम० उपकस्सभंगो । कम्मइगका० पंचणा०-णवदंसणा०-सादासादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-हस्स-रिदअरिद-सोग-भय०-दुगुंच्छ-तिरिक्ख०-एइंदिय०-तेजा०-कम्म०-हुंडसं०-वण्ण०४तिरिक्खाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-थावर-वादर-सुहुम०-पञ्जतापञ्ज०-पत्तेग-साधारण०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-जस०-अजस०-णिमिण-णीचा०-पंचंत०
जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० वे सम० । [अज० जह० एग०, उक्क० तिणिण
सम० । सेसाणं जह० अजह० जह० एग०, उक्क० तिणिण सम० ।]

२०१, इत्थि० खवगपगदीणं जह० जहरणु० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्त० पित्तिवेससदपुधत्तं । पंचदंसणा०-मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वरण०४-श्रगु०-उप०-णिमि० जह० द्विदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रज० जह० एग०, उक्क० प्रतिवेससदपुधत्तं । सादा०-श्राहार०-श्राहार०श्रंगो०-जस० जह० श्रज० श्रोघो । श्रसादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-श्ररदि-सोग-दोगदि-चदु-

शेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है।

२००. वैक्तियिक काययोगी, वैक्तियिकिमश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी श्रीर श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल उत्कृष्टके समान है। कार्मण्काययोगी जीवोंमें पाँच श्रानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, हास्य, रित, श्ररित, श्रोक, भय, जुगुप्सा, तिर्थञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, तेजस श्ररीर, कार्मण श्ररीर, हुएड-संस्थान, वर्णचतुक्क, तिर्थञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुक्क, श्रातप, उद्योत, स्थावर, वादर, सूदम, पर्याप्त, प्रत्येक श्ररीर, साधारण श्ररीर, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रगुम, दुर्भग, श्रनादेय, यश्रकीर्ति, श्रयश्रकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल तोन समय है। श्रेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल तीन समय है।

२०१. स्त्रीवेदमें चपक प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुँ हुर्त है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल सौ पल्य पृथक्तव है। पाँच दर्शनावरण, मिध्यात्व, वारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कामंण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपधात श्रीर निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल सौ पल्य पृथक्तव है। साता वेदनीय, श्राहारक शरीर, श्राहारक श्राङ्गोपङ्ग श्रीर यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रसाता वेदनीय, स्रोवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रित, श्ररित, श्रोक, दो गित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो श्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित,

जादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-दोत्राणुपुन्वि-त्रादाउज्जो०-त्राणसत्थ०-थावर०४-थिरा-थिर-स्रभास्रभ-[द्भग-दुस्सर-त्राणादेय]-त्रज०-णीचागो० जह० त्रज० जह० एग०, उक्क० त्रंतो । पुरिस०-उचागो० त्रोघं । एविर त्रज० त्राणुक्कस्सभंगो । त्रायु० त्रोघं । मणुसग०-पंचिदि०-समचदु०-त्रोरालि०त्रंगो०-वज्ज०-मणुसाणु०-पसत्थिव०-तस-स्रभग-सुस्सर-त्रादे'० जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० त्रंतो० । त्रज० जह० एग०, उक्क० पणवएणं पलिदो देसू० । देवगदि०४ उक्कस्सभंगो । त्रोरालि०-पर०-उस्सा०-वादर-पज्जत्त-पत्ते० जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० त्रंतो० । त्रज० जह० एग०, उक्क० त्रंतो० । त्रज० जह० एग०, उक्क० त्रंतो० । त्रज० जह० एग०, उक्क० त्रण्वि० सादि० । तित्थयरं जह० जह० एग०, उक्क० त्रंतो० । त्रज० त्र

स्थावर चतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रभ, श्रशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय, श्रयशःक्षीर्ति श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। पुरुपवेद श्रीर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। ग्रायुक्षमंकी चारों प्रशृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। मनुष्यगित, पञ्चिन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, श्रीदारिक श्ररीर श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ष्मपंभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगित, त्रस, सुभग, सुस्वर श्रीर श्रादेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मु हूर्त है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल कुछ कम पचपन पत्य है। देवगित चतुष्कका भङ्ग उत्कृपके समान है। श्रीदार्गिक श्ररीर, परघात, उङ्कास, वादर, पर्याप्त श्रीर प्रत्येक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मु हूर्त है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल साधक पचपन पत्य है। तीर्थकर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल साधक पचपन पत्य है। तीर्थकर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल स्थान पत्य है। तीर्थकर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मु हूर्त है। श्रजघन्य स्थितवन्धका काल श्रनुत्कृप्ट समान है।

विशेपार्थ —स्त्रीचेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पत्य पृथक्तव प्रमाण है, इसलिए इसमें १८ त्रपक प्रकृतियों ग्रौर पाँच दर्शनावरण ग्रादि २९ प्रकृतियोंके ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल सौ पत्यपृथक्तव प्रमाण कहा है। स्त्रीचेदमें पुरुषवेद ग्रौर उच्चगोत्रके ग्रजुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पत्य कह ग्राये हैं। वही ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल है, इसलिए यहां यह काल ग्रजुत्कृष्टके समान कहा है। स्त्रीचेदमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पत्य है, इसलिए यहां मजुष्यगित ग्रादि ११ प्रकृतियोंके ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पत्य कहा है, क्योंकि देवी सम्यग्दिष्टके इन प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है। स्त्रीचेदी देवीके ग्रौदारिकश्ररीर ग्रादि छह प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता रहता है। तथा देवी पर्याय स्थूटनेके चाद भी ग्रन्तर्मुहर्त काल तक इनका बन्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पत्य कहा है। ग्रोप कथन स्पष्ट ही है।

१. मूलप्रती श्रादे० जस० जह० इति पाठः ।

२०२. पुरिसेसु खनगपगदीणं जह० द्विदि० जह० जक० श्रंतो०। अज० जह० श्रंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुथत्तं । पुणो धुविगाणं जह० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। अज० जह० श्रंतो०, उक्क० कायद्विदि०। सेसाणं उक्कस्सभंगो ।

२०३. णवुंसगे खवगपगदीणं जह० हिदि० जहराणुक्तस्तेण श्रंतो०। श्रज० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रणंतकालमसंखे०। पुणो धुविगाणं तिरिक्खगदि- तिगस्स श्रोरालि० तिरिक्खोघं। सेसाणं उक्कस्सभंगो। णवरि तित्थकरं इत्थिवेदभंगो।

२०४. अवगद्वे० सगपगदीएां जह० श्रोघं । श्रज० जह० एग०, उक० श्रंतो० । कोधादि०४ उक्कस्सभंगो । एवरि खवगपगदीएां जह० श्रोघो ।

२०५. मदि०-सुद० धुविगाणं तिरिक्लोघं । णवरि ऋज० जह० ऋंतो०। सेसाणं उक्कस्सभंगो । विभंगे उक्कस्सभंगो । णवरि पंचणाणादि सम्मत्ता० संजमामि-

२०२. पुरुषवेदवाले जीवोंमें चापक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृप्ट काल श्रपनी कायस्थिति प्रमाण है। तथा शेप प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृप्टके समान है।

२०३. नपुंसकवेदवाले जीवोंमें ज्ञपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृप्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृप्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। पुनः ध्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ तिर्यञ्चगतित्रिक श्रौर श्रौदारिक शरीर प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

२०४. श्रवगतवेदवाले जीवोंमें श्रपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। क्रोधादिक चार कषायवाले जीवोंमें श्रपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपक श्रेणीमें अन्तर्मुहूर्त काल तक उपलब्ध होता है। ग्रोघसे भी यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ग्रोघके समान कहा है। ग्रप गतवेदमें उपशामकका जघन्य काल एक समय ग्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहां ग्रपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय ग्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त कहा है। चार कषायोंमें चपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके कालका स्पष्टीकरण अपगतवेदके समान ही है। शेष कथन सुगम है।

२०४. मत्यन्नानी श्रीर श्रुतान्नानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तियंश्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुंहर्त है तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। विभङ्गन्नानी जीवोंमें श्रपनी सव प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंमें से सम्यक्तवके श्रिभमुख हुए जीवके श्रीर संयमके श्रभमुख हुए जीवके उद्योतके

ग्रहस्स यात्रो पगदीत्रो उज्जोववज्जात्रो तात्रो पग० जह० द्विदि० उक्क० श्रंतो० । २०६. त्राभि०-सुद०-श्रोधि० सादादिञ्जएणं श्रोघसादभंगो । त्रसादादिञ्जकं श्रोघं । मणुसग०-श्रोराज्ञि०-त्रोराज्ञि० श्रंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० द्विदिं० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । त्रज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । सेसाणं उक्कस्सभंगो । मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो० उक्कस्सभंगो । एवरि सादादि-श्रसादादि० श्राभिणि०भंगो ।

२०७. परिहार० धुविगाणं अधापवत्त० जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० हिदि० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू० । सेसाणं जह० अज० हिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अथवा दंसणमोहक्खवगस्स कदकरणि- जस्स दिज्जदि तदो जह० हिदि० जह० उक्क० अंतो० । अज० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देसूणं । सादा०-हस्स-रिद-आहारदुग-थिर-सुभ-जस० जह० [जह०] उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । असादा०-अरिद-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० अज० हिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सहुमसं० सन्वपगदीणं जह० हिदि० ओधं । अज० हिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

सिवा जिन प्रकृतियोंका वन्ध होता है उनके जधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। २०६. आभिनिवोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें साता आदिक छह प्रकृतियोंका भङ्ग ओघमें कहे गये साताप्रकृतिके समान है। असाता आदि छह प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगित, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्जर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल त्रेतीस सागर है। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि साता आदि और असाता आदि प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनिवोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है।

२०७. परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें श्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। श्रुजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रुजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। श्रुथवा मोहनीयकी ज्ञुपणा करनेवाले कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीवके इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका स्थामत्व प्राप्त होता है इसिछए इनके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। श्रुजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। श्रुजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। श्रुम श्रीर यशःकीति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। श्रुजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। श्रुजघन्य स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। स्थितवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। स्युत्तिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मु हूर्त है। स्युत्तमामपरायिक संयतोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका काल श्रुन्तर्मु हुर्त है। स्रुज्यसामपरायिक संयतोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका काल श्रुन्तर्मु हुर्त है। स्रुज्यसामपरायिक संयतोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका काल श्रुन्तर्मु हुर्त है। स्रुज्यसामपरायिक संयतोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका काल श्रुन्तर्मु हुर्त है।

- २०८. संजदासंजदे उक्कस्सभंगो । णवरि सादादि-असादादि॰ आभिणि॰-भंगो । असंजदे धुविगाणं तिक्लिगदितिगं च मदिभंगो । सेसं उक्कस्सभंगो ।
- २०६. चक्खुदंसणी॰ तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं । ओघिदं० ओघं-णाणिभंगो ।
 - २१०. किएए।०-एरील०-काड० उक्कस्सभंगो ।। एरविर तित्थयरं एरीलभंगो ।
- २११. तेख्ले० परिहारभंगो । एवरि अपप्पणो पगदीश्रो जाणिद्वा । धुवि-वंधियाणं अज० उक्क० सोधम्मभंगो । एवं पम्माए । एवरि सगदिदी ।
- २१२. सुकाए खवगपगदीएं जह० जह० उक्क० अंतो०। अज० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे०। थीएगिद्धि०२-मिच्छ०-अएंताणु-वंधि०४ जह० हिदि० जह० उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, मिक्छतं अंतो०, उक्क० एकत्तीसं साग० सादिरे०। पुरिस० जह० हिदि० ओघं। अज० हिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। एवं अहकसायाएं परियत्तमाणियाएं। मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० ओधिभंगो। सादा०-
- २०८. संयतासंयत जीवोंमें सव प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेपता है कि साता ग्रादि श्रौर श्रसाता श्रादिकका भङ्ग श्राभिनिवोधिकज्ञानके समान है। श्रसंयत जीवोंमें भ्रुव प्रकृतियाँ श्रौर तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान' है।
- २०९. चजुदर्शनी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग त्रस पर्याप्तकोंके समान है, श्रचजुदर्शनी जीवोंमें श्रोघके समान है। श्रवधिदर्शनी जीवोंमें श्रवधिक्वानियोंके समान है।
- २१०. कृष्ण, नील श्रौर कापोत लेक्यावाले जीवोंमें उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेष्ता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग नील लेक्याके समान है।
- २११. पीत लेश्यामें पिरहारिवशुद्धसंयतके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। तथा ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थिति-वन्धका उत्कृष्ट काल सौधर्मकल्पके समान है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए।
- २१२. शुक्क लेश्यामें चपक प्रकृतियों के जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुं हूर्त है श्रौर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व श्रौर श्रनम्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, मिथ्यात्वका श्रन्तमुं हूर्त है श्रौर उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। पुरुषवेदके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रोधके समान है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रोधके समान है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य है श्रौर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार परिवर्तमान श्राठ कषायोंका काल जानना चाहिए। मनुष्यगित, श्रौदारिक शरीर, श्रौदारिक शाङ्गोपाङ्ग, वस्रविभनाराच संहनन श्रौर मनुष्य गत्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रविधिहानियोंके

[.]१. मूलमतौ द्विदि० जह० श्रोघं इति पाठः ।

हस्स-रदि-त्राहार॰-त्राहार०त्रंगो॰-थिर-सुभ-जस॰ त्रोधिभंगो। तप्पहिवक्लाएं इत्थिवेदादि य परियत्तमाणियाणि त्रोघं।

२१३. भवसिद्धिया० मूलोघं । अब्भवसिद्धिया० मदिभंगो ।

२१४. सम्मादिष्टि० त्रामिणिभंगो । खइगसम्मादिष्टी० त्रोधिभंगो । एवरि सगिटिदिं कादव्वं । एवं वेदगे० । उवसम० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं ०-देवगदि-पंचिदि०-वेडिव्व०-तेजा०-क०-समचदु०-वेडिव्व० त्रंगो०-वएण्०४-

समान है। साता वेदनीय, हास्य, रित, श्राहारक श्रीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग, स्थिर, श्रभ श्रीर यशःकीर्तिका भङ्ग श्रवधिक्षानियोंके समान है। तथा इनके प्रतिपच्नभूत स्रीवेद आदि परि-वर्तमान प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—त्तपकश्रेणिमें एक स्थितिबन्धका जघन्य ग्रौर उत्कृष्ट काल ग्रन्तमु हूर्त होता है, इसिलए शुक्कलेश्यामें त्तपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त कहा है। तथा शुक्क लेश्यामें इनका कमसे कम अन्तर्मु हूर्त काल तक और श्रिधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल तक निरन्तर बन्ध होतो रहता है, इसलिए इनके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल अन्तर्मु हुर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्तवको प्राप्त होता है उसके स्त्यानगृद्धि तीन श्रादि त्राठ प्रकृतियोंका जधन्य स्थितिबन्ध होता है त्रौर वहाँ एक स्थितिबन्धका काल श्रन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हुर्तं कहा है। इन प्रकृतियोंके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। मात्र मिथ्यात्व सप्रतिपत्त प्रकृति न होनेसे उसके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहर्त है। पुरुषवेद भी चपक प्रकृति है, इसलिए उसके जघन्य स्थितियन्धका काल श्रोघके समान कहा है। तथा एक तो यह सप्रतिपत्त प्रकृति है श्रीर दूसरे सम्यग्दिएके एक मात्र तीन वेदोंमेंसे इसीका बन्ध होता है, इसलिए इसके ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय ग्रौर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । तथा इसी प्रकार ग्राठ कषायोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितियन्घका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिए । मात्र एक तो श्रप्रत्याख्याना-श्रविरतसम्यग्दिषे श्रौर प्रत्याख्यानावरण चारका संयतासंयतके चाहिए श्रौर दूसरे श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट जघन्य स्थितिवन्ध कहना काल साधिक तेतीस सागर कहते समय उसे देवोंकी तेतीस सागर श्रायुके प्रथम समयसे प्रारम्भ कर साधिक तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२१२. भन्यजीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। श्रभन्य जीवोंमें श्रपनी प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

२१४. सम्यग्दिष्ट जीवोंमें ग्राभिनिबोधिक ज्ञानियोंके समान है। ज्ञायिक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें ग्रविध्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि ग्रपनी स्थिति कहनी चाहिए। इसी प्रकार वेदक सम्यग्दिष्ट जीवोंमें जानना चाहिए। उपशम सम्यग्दिष्ट जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुष्सा, देवगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शारोर, कार्मण्शरीर, समचतुरससंस्थान, वैक्रियिक ग्राङ्गोपाङ्ग, वर्ण-

देवाणु॰-ग्रगु०४-सुभग-सुस्सर-ग्रादे॰-णिमिण-तित्थय॰-उच्चा॰-पंचंतरा॰ जह० हिदि० जह० एग, उक्क॰ ग्रंतो॰ । ग्रज० हिदि० जहएणु॰ ग्रंतो० । ग्रविर देवगदि०४ ग्रज॰ हिदि० जह० एग० । सेसाणं जह० ग्रज० जह० एग०, उक्क० ग्रंतो० । ग्रविर ग्रहकसा०-मणुसगदिपंचगस्स जह० ग्रज० जहएणु० ग्रंतो० । ग्रविर मणु-सगदिपंचगस्स जह० सादभंगो ।

२१५. सासणे सम्मामिच्छे उक्कस्सभंगो । मिच्छादिही० मदिभंगो । सएणी-सु सन्वपगदीणं जह० मणुसोघं । अज० अणुक्क०भंगो । एवरि केसिं वज्ज० अंतो० । असएणीसु उक्कस्सभंगो । एवरि धुविगाणं असंखेज्जा लोगा ।

चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्च-गोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके अजघन्य स्थितिवन्धको जघन्य काल एक समय है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि श्राठ कषायोंके श्रीर मनुष्य गितपञ्चकके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगित पञ्चकके जघन्य स्थितिवन्धका काल साताके समान है।

विशेषार्थ- सम्यग्दिएयोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर, चायिक सम्यग्दिएयोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर और वेदकसम्यग्दिएयोंकी उत्कृप्ट कायस्थिति छयासठ सागर है। इसे ध्यानमें रखकर इन सम्यक्तोंमें अपनी अपनी प्रकृतियोंके अज्ञचन्य स्थितिवन्धका जहां जो सम्भव हो काल कहना चाहिए। शेष विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है। यहां उपशम सम्यग्दिए जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदिके जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय कहा है सो इसका कारण यह है कि जो उपशम सम्यग्दिए उपशम श्रेणिमें इनका एक समय तक जधन्य स्थितिवन्ध करता है और दूसरे समयमें मर कर वह देव होकर अजधन्य स्थितिवन्ध करने छगता है। इसके इन प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय उपलब्ध होता है। इसीसे वह एक समय कहा है। इसी प्रकार देवगित चतुष्कके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिए। कारण कि उपशम श्रेणिसे उत्तरते समय जो एक समयके लिए देवगितचतुष्कका अजधन्य स्थितिवन्धक हो जाता है, इसलिए यह काल भी एक समय उपलब्ध होता है। शेष कथन सुगम ही है।

२१४. सासादन सम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्मिश्यादिष्ट जीवोंमें सव प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मिश्यादिष्ट जीवोंमें मत्यज्ञानियोंके समान है। संज्ञी जीवोंमें सव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका काल सामान्य मनुष्योंके समान है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि किन्हीं प्रकृतियोंका श्रन्तमुं हुत काल नहीं है। श्रसंज्ञी जीवोंमें उत्कृषके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है।

२१६. त्राहारे धुविगाणं थीणगिद्धितियाणं च जह० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो । श्रज० हिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंगुलस्स श्रसंखे० । स्वार खवग-पगदीणं जह० हिदि० श्रोघं । सेसाणं पगदीणं श्रोघं । श्रणाहार० कम्मइगभंगो । एवं कालं समत्तं ।

अंतरकालपरूवणा

२१७. श्रंतरं दुविधं—जहएण्यं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०—श्रोघे०, श्रादे० । श्रोघे० पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रिद- अरिद-सोग-भय-दुंगुं०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वएण्०४-श्रगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-जस०-श्रजस०-णिमि०-पंचंत० उक्क-स्सिटिद्वंधंतरं केवचिरं कालादो होति १ जह० श्रंतो०, उक्क० श्रणंतकालमसंखे०। श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। थीण्गिद्धि०३-मिच्छ०-श्रणंताणुवंधि०४-इत्थिवे० उक्क०हिदि० केवचिरं० १ जह० श्रंतो०, उक्क० श्रणंतकालमसं०। श्रणु० जह० एग०, उक्क० वेद्याविहसा० देसू। इत्थिवे० सादि०। श्रष्टक० उक्क० हिदि०

२१६. श्राहारक जीवोंमें ध्रुववन्धवाली श्रीर स्त्यानगृद्धित्रिक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि ज्ञपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनाहारक जीवोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है।

इस प्रकार जघन्य काल समाप्त हुआ। इस प्रकार काल प्ररूपणा समाप्त हुई।

श्रन्तर काल प्ररूपणा

२१७. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है, निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोध और आदेश । ग्रोधसे पांच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रित, अरित, शोक, भय, जुगुण्सा, पञ्चेन्द्रय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विद्यायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर, ग्रस्थिर, ग्रुभ, अग्रुभ, सुभग, सुसर, ग्रादेय, यशः कोर्ति, ग्रयशःकोर्ति, निर्माण ग्रौर पांच अन्तराय प्रकृतियोंक उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मृह्तं है और उत्कृष्ट श्रंतर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्ते है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार और स्नीवेदके उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्रलपरिवर्तन प्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्रलपरिवर्तन प्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुल कम दो छन्यासठ सागर है । उसमें भी स्त्रीवेदके अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक दो छन्तासठ सागर है । आठ कषायके उत्कृष्ट

जह अंतो०, उक्क अणंतकालमसंखे०। अणु० दिदि० जह एग०, उक पुन्वकोडि देसू०। एवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अणसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-एाचा० उक्क० दिदि० जह० अंतो, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० एग०, उक्क० वेळाविहसाग० सादि० तिरिण पिलदो० देसूणा०।

२१८. णिरयायु० उक्क० द्दिदि० जह० पुन्वकोडि-द्सवस्ससहस्साणि समयूणाणि, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०।
तिरिक्लायु० उक्क० जह० पुन्वकोडी समय्णं, उक्क० अणंतकालं०। अणु०
जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुथत्तं। मणुसायु० उक्क० द्दिदि० जह० पुन्वकोडि समय्०, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। देवायु० उक्क० जह० पुन्वकोडि-दसवस्ससहस्सं समय्णं, उक्क० अद्रपोग्गलं०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०।

२१६. वेडिवियछकं एकः जहः अंतोः, उकः अगंतकालः। अगुः जहः एगः, एकः अगंतकालः। तिरिक्लगिद्-तिरिक्लागुः ०-[एजोवः] एकः जहः एगः, एकः अगंतकालं। तिरिक्लगिद्-तिरिक्लागुः ०-[एजोवः] एकः जहः स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्भे हृतं है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुङ्ग कम पूर्वकोटि प्रमाण है। नपुंसकवेद, पांच संस्थान, पांच संहनन,

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकाट प्रमाण है। नपुसकदद, पाच संस्थान, पाच सहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-वन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है को असंख्यात पुद्-गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट

अन्तर साधिक दो छ्यासड सागर और कुछ कम तीन पल्य है।

२१८. नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक पूर्वकोटि और एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म कृति है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि और दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अर्वर परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर है और उत्कृष्ट अन्तर अर्वर परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है।

२१९ वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट स्थितिवन्घका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थिति वन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल

१. मूलप्रतो कोढि देसू० समयू० इति पाठः। २. मूलप्रतौ तिरिक्खाणु० उच्चा० उक्क० इति पाठः।

श्रंतो०, उक्क० श्रणंतकालं० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० तेविद्यागरोवमसदं। मणुसगिद-मणुसाणु०-उच्चा० एक० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रणंतकालं० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रसंसेज्जलोग० । एइं०-वेइं०-तेइं०-चटुरिंदि०-श्रादाव-थावर०४ उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रणंतकालं० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० पंचासीदि-सागरोवमसदं। श्राहार०-श्राहार०श्रंगो० उक्क० श्रणु० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रुपंगाल० । श्रोरालि०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रणंतकालं० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० तिणिण पलि० सादि०। तित्थयरं [उक्क०] णित्थ । श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० ।

परिवर्तन प्रमाण है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परि-वर्तन प्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रौर उचगोत्रके उत्कृप्ट स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। श्रनुत्ऋष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्ऋष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। एकेन्द्रिय जाति, झोन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, श्रातप श्रौर स्थावर चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मृहर्ते है श्रौर उत्कृप्टअन्तर अनन्त काल है जो असंख्यातपुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। आहारक शरीर श्रीर श्राहारक श्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर अर्धपुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। श्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वजूर्षभनाराच संहननके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रनन्त काल है जो ग्रसंख्यात पुरल परिवर्तन प्रमाण है। त्रनुत्कृष्ट स्थितियन्धका ज्ञघन्य ग्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक तीन पत्य है। तीर्थंड्सर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। श्रतुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त है।

विशेषार्थ—एक वार उत्कृष्ट स्थितिवन्धके योग्य परिणाम होनेके वाद पुनः वे कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके वाद ही होते हैं। यही कारण है कि यहाँ चार आयु और तीर्थंकर प्रकृतिके सिवा शेप सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीर्थंकर प्रकृतिका ओघ उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नरकगितके अभिमुख हुए संक्षेश परिणामवाले मनुष्यके होता है। यतः यह अवस्था दो वार नहीं उपलब्ध होती, अतः तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। चार आयुर्योंके सम्बन्धमें आगे विचार करनेवाले हें हो। तथा संशी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त अवस्थाका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। इसीसे यहाँ देवायु, आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृतिके सिवा शेप सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है, क्योंकि सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संशी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके ही होता है, अन्यके नहीं। देवायु और आहारकद्विकका वन्ध संशी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके ही होता है, अन्यके नहीं। देवायु और आहारकद्विकका वन्ध संयतके होता है और इसका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। इसीसे इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहकर कुछ कम

श्रधपुद्रल परिवर्तनप्रमाण कहा है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्यका अन्तर काल क्यों नहीं होता यह कथन पहले कर ही आये हैं। अब रहा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्यके जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालका विचार सो सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट स्थितिवन्य कमसे कम एक समयके अन्तरसे होता है, इसलिए उक्क सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्यका जधन्य अन्तर काल एक समय कहा है। मात्र चार आयु आहारकद्विकमें कुछ विशेषता है जिसका खुलासा आगे यथास्थान करेंगे ही। अब रहा सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्यके उत्कृष्ट अन्तर कालका विचार सो वह अलग अलग कहा ही है। खुलासा इस प्रकार है—

पाँच ज्ञानावरण श्रादि जिन ४६ प्रकृतियोंका प्रथम दग्डकमें उल्लेख किया है उनमेंसे कुछ ध्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ हैं श्रीर कुछ सप्रतिपन्न प्रकृतियाँ हैं। उनमें भी जो सप्रतिपन्न प्रकृतियाँ हैं उनकी वन्धन्युच्छित्ति इनकी प्रतिपक्त प्रकृतियोंके पहले होती है और कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनके अनुत्कृप्ट स्थितियन्धका उत्कृप्ट काल अन्तर्भृहते है इसलिए इन सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन श्रादि नौ प्रकृतियोंका वन्ध सम्यग्मिथ्यादृष्टि श्रादि गुण्स्यानोंमें नहीं होता श्रीर मिथ्यात्वका उत्कृप्ट श्रन्तर काल कुछ कम दो छथासठ सागर है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम दो छुचासठ सागर कहा है। परन्तु स्त्रीवेद सप्रतिपक्त प्रकृति होनेसे उसका यह अन्तरकाल साधिक दो छ्यासठ सागर उपलब्ध होता है। कारण कि जो जीव मिथ्यात्वमें ग्राकर भी स्त्रीवेदका वन्ध न कर नपुंसकवेद श्रीर पुरुपवेदका वन्ध करता है उसके यह अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। संयम श्रौर संयमासंयमका उत्रुष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, इसलिए आठ कपायके अनुत्रुष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। कारण कि संयत जीवके प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका और संयतासंयत जीवके ग्रप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका वन्ध नहीं होता। इसके वाद इस जीवके असंयमको प्राप्त होनेपर उनका नियमसे वन्धं होने लगता है। नपुंसकवेद आदि सोलह प्रकृतियोंका वन्ध सासादन गुण्स्थानतक होता है। यतः मिथ्यात्वका उत्क्रप्ट अन्तरकाल कुछ कम दो छ्यासठ सागर है, साथ ही ये सप्रतिपच प्रकृतियां हैं श्रीर इनका वन्घ भोगभूमिमें नहीं होता इसलिए इनके श्रवुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल साधिक दो छ्यासट सागर श्रीर कुछ कम तीन पत्य कहा है। श्रायुत्रोंके उत्कृप्र श्रौर त्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्घका श्रन्तरकाल स्पप्टही है। एकेन्द्रियका उत्कृष्टकाल श्रनन्तकाल है श्रौर इनके वैक्रियिकपट्कका वन्ध नहीं होता या पञ्चेन्द्रियोंका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रनन्तकाल है। इसीसे यहां वैक्रियिक पट्कके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रनन्त काल कहा है। तिर्यञ्चगति श्रादि तीन प्रकृतियोंका वन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता श्रीर सहस्रार कल्पसे श्रागे नहीं होता। यदि निरन्तररूपसे इस कालका विचार करते हैं तो वह एक सौ त्रेसठ सागर होता है। इसीसे यहां इन तीन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल एक सौ त्रेसठ सागर कहा है। ग्रग्निकायिक ग्रौर वायुकायिक जीवींके मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता और इनकी कायस्थित असंख्यात लोकप्रमाण है। इसीसे यहां इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर-काल ग्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। संयमका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल कुछ कम अर्घपुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। इसीसे ब्राहारकद्विकके ब्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट ब्रन्तरकाल कुछ कम अर्थपुद्रल परिवर्तन प्रमाण कहा है। रोप कथन स्पष्ट ही है।

२२०. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-छदंस०-सादासा०-बारसक०-पुरिस०हस्स-रिद-अरिद-सोग-भय-दुगुं०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०
अंगो०-वज्जरिसभ०-वएण०४-अगुरू०४-पसत्थिव०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभगसुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेचीसं
सा० देस्०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु-वंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खगदि-पंचसंटा०-पंचसंटा०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेचीसं सा०
देस्०। अणु० जह० एग०, उक्क० तेचीसं सा० देस्०। दो आयु० उक्क० णित्थ
अंतरं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देस्०। एवं सन्वणेरइयाणं आयु०।
मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० वावीसं साग० देस्०।
अणु० जह० एग०, उक्क० तेचीसं देस्०। तित्थय० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तिरिण साग० सादिरे०। अणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०।

२२१. एवं इस पुढवीस । णवरि मणुसग०-मणुसाणु०-उचा० सादभंगो।

रान्य हु आर अस्य असर असर असर युर्वे २२१. इसी प्रकार छुद्द पृथिवियोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रका भङ्ग साता प्रकृतिके समान है।

२२०. श्रादेशसे नारिकयोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, वारह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्थभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, ग्रस्थिर, ग्रुभ, ग्रशुभ, सुभग, सुस्वर, ग्रादेय, यशकीर्ति, ग्रयशकीर्ति, निर्माण श्रीर पांच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृप स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुं सकवेद, तिर्यञ्चगति, पांच संस्थान, पांच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, श्रप्रशस्तविहायोगित, दुर्भंग, दुःस्वर, श्रनादेय और नोचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। त्रानुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है त्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितियन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सव नारिकयोंके आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल जानना चाहिए। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर साधिक तीन सागर है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्रुप्ट ग्रन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

सेसाणं अपप्पणो हिदी देस्रणा। सत्तमाए णिरयोघं। णवरि मणुसगदि-मणु-साणु॰-उच्चा० उक्क० अणु॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं सा॰ देस्०।

२२२. तिरिक्लेसु पंचणा०-छदंस०-सादासा०-ग्रहकसा०-सत्तरणोक०-पंचिंदिय-तेजा०-क०-समचदु०-वरणा०४-श्रगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-ग्रादे०-जस०-ग्रजस०-णिमि०-पंचंत० उक्क० श्रगु० श्रोघं । थीणगिद्धि०३-

शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारिकयोंके समान अन्तरकाल है। इतनी विशेषता है कि मनु-ष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है।

विशेषार्थ-जो नारकी उत्पन्न होनेके वाद पर्यप्त होनेपर प्रथम दण्डकमें कही गई पांच ज्ञानावरण श्रादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्ध करता है श्रीर श्रनन्तर मरणके पूर्व उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करता है उसके उक्ष प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर उपलब्ध होता है, इसलिए यह अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा है। नरकमें सम्यग्दिष्टका उत्कृप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है श्रौर सम्यग्दिष्टके स्त्यानगृद्धि तीन श्रादि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता। तथा मिथ्यादृष्टि रहनेपर भी जन्मके प्रारम्भमें श्रौर श्रन्तमें पर्याप्त श्रवस्थामें यदि उक्क प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है तो इन प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका भी वही कुछ कम तेतीस सागर उत्कृप्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है। इससे यह भी उक्क प्रमाण कहा है। और सम्यग्द**ि**के इनका वन्ध नहीं होता इसलिए श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल भी कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नरकमें मनुष्यगति ग्रादि तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितवन्य मिथ्यादृष्टि नारकीके छुठे नरकतक ही होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम बाईस सागर कहा है। पर सातवें नरकमें इनके अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर वन जाता है। कारण कि सातवें नरकमें जो भवके प्रारम्भमें श्रौर श्रन्तमें सम्यग्दिष्ट होकर इनका बन्ध करता है श्रौर मध्यमें कुछ कम तेतीस सागर कालतक मिथ्यादिष्ट रहकर इनका वन्ध नहीं करता उसके इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तीर्थंङ्कर प्रकृतिका तीसरे नरकतक साधिक तीन सागरकी श्रायुवाले नारकी होनेतक ही वन्ध होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल साधिक तीन सागर कहा है। यह तरकमें सामान्यसे ग्रन्तरकाल प्रत्येक नरकमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए। मात्र छडे नरकतक मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका वन्ध मिथ्यादृष्टिके भी होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल साताप्रकृतिके समान कहनेकी स्चना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२२२. तिर्वञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, स्नातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, श्राठ कषाय, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रगुम, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशकोतिं, श्रयशकोतिं, निर्माण श्रीर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रगुत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल श्रोधके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन,

मिच्छत्त-अ्रणांताणुवंधि०४-इत्थि० उक्क० हिदि० श्रोघं । अणु० जह० एग०, उद्ध० तिरिण पित्तदो० देसू०। अपचक्ताणा०४-णवुं स०-तिरिक्लगदि-चहुजादि-श्रोराणि०-पंचसंठा०--श्रोराणि०श्रंगो०--छस्संघ०--तिरिक्लाणुप०-श्रादाउजो०-श्रणसत्थिव०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० श्रोघं । अणु० जह० एग०, उक्क० पुञ्चकोडी देसू०। णिरय-मणुस-देवायु० उक्क० हिदि० णित्थ अंतरं। अणुक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० पुञ्चकोडितिभागं देसूणं। तिरिक्लायु० उक्क० श्रोघं। अणु० जह० श्रंतो०, उक्क० पुञ्चकोडी सादिरे०। वेउन्वियञ्चक-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० श्रोघं।

२२३. पंचिदियतिरिक्तवं ३ पढमदंडगेण सह देवगदि०४-उच्चा० काद्वं ।

मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्स्रष्ट स्थितिबन्धकां अन्तर काल ओघके समान है। अनुत्स्रष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्स्रष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्थ है। अव्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगित, चार जाति, औदारिक श्रारीर, पांच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगित, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्स्रष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल ओघके समान है। अनुत्स्रष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्स्रष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुके उत्स्रष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्स्रष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर मुह्ते है और उत्स्रष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिका विभागप्रमाण है। तिर्यञ्च आयुके उत्स्रष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल ओघके समान है। अनुत्स्रष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर मुह्ते है और उत्स्रष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्स्रष्ट और अनुत्स्रष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल ओघके समान है।

निशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें उसी पर्यायमें उत्पन्न हुए सम्यक्तवका उत्रुष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। इसीसे यहां स्त्यानगृद्धि तीन आदि प्रकृतियोंके अनुत्रुष्ट स्थितिवन्धका उत्रुष्ट अन्तर काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। यहां भवके आदि और अन्तमें इन प्रकृतियोंका वन्ध कराकर यह अन्तर काल ले आना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण चार आदि प्रकृतियोंके अनुत्रुष्ट स्थितिवन्धका उत्रुष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि कहनेका कारण यह है कि संयतासंयत तिर्यञ्चके अप्रत्याख्यानावरण चारका वन्ध नहीं होता और असंयत सम्यन्दिष्ट तिर्यञ्चके शेपका वन्ध नहीं होता। इसिलए प्रारम्भमें और अन्तमें इनका वन्ध करावे और मध्यमें कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक संयमासंयम और सम्यक्तव गुणके साथ रख कर उक्त अन्तर काल ले आवे। यद्यपि तिर्यञ्चकी उत्रुष्ट आयु तीन पल्यकी भी होती है पर वहां संयमासंयम गुणके न प्राप्त होनेसे अप्रत्याख्यानावरण चारका अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होता और भोगभूमिमें नपुंसकवेद आदिका वन्ध नहीं होता, इसिलए वहाँ तिर्यञ्चोंमें अन्तरका प्रश्न ही नहीं उठता, अतः इन सबके अनुत्रुष्ट स्थितिवन्धका उत्रुष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। शेष कथन सुगम है।

२२३. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तीनमें प्रथम दराडकके साथ देवगति चतुष्क श्रौर उचगोत्रका कथन करना चाहिए। इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त है श्रौर उत्कृष्ट

१. मूलप्रतौ पंचिंदिय तिरिक्लोघो पढम—इति पाठः ।

उक्क हिदि जह श्रंतो , उक्क पुन्वको डिप्रधनं । अणु जह एगस , उक्क श्रंतो । सेसाणं सन्वपगदीणं उक्क जह श्रंतो , उक्क पुन्वको डि-पुधनं । अणु हिदि पगिदिश्रंत । एवरि तिरिण आयु तिरिक्खो । तिरिक्खा-यु उक्क जह पुन्वको डी समयूणं, उक्क पुन्वको डिप्रधनं । पंचिदियतिरिक्ख आपज्ञ सन्वपगदीणं उक्क जह [उक्क] अंतो । अणु जह एग , उक्क श्रंतो । एवरि तिरिक्खायु उक्क अणु जह एग , उक्क श्रंतो । एवरि तिरिक्खायु उक्क आणु जह एग । मणुसायु उक्क गिरिय अंतरं । अणुक्क जह एग ।

२२४. मणुसं ३ पंचिदियतिरिक्खभंगो । एवरि पचक्वाणा ०४ अपचक्वा-णावरणभंगो । मणुसायु० उक्क॰ जह॰ पुन्वकोडी समयू०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । अणु॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ पुन्वकोडी सादि॰ । आहार॰२ उक्क॰ अणु॰ जह॰ अंतो॰, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । तित्थय० उक्क० एत्थि अंतरं । अणु॰ जहरणु॰ अंतो॰। मणुसअपज्ज० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एवरि तिरिक्खायु० उक्क० एत्थि

श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तवप्रमाण है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। शेष सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिपृथक्तवप्रमाण है। अमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। इतनी विशेषता है कि तीन श्रायुश्रोंका श्रन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तिर्यञ्च श्रायुक्ते उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव प्रमाण है। पञ्चिन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकों से व प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव प्रमाण है। पञ्चिन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकों से व प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। समुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्तव अधिक तीन पत्य है। तथापि उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कर्मभूमिमें ही उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ प्रथम द्रग्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्व कोटि पृथक्तव कहा है। यहाँ पूर्वकोटिपृथक्तवके प्रारम्भ और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कराकर अन्तरकाल ले आवे। चार आयुओंके सिवा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी इसी प्रकार ले आवे। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२२४. मनुष्य चतुष्कमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि प्रत्याख्यानावरण् चारका भङ्ग अप्रत्याख्यानावरण् चारके समान है। मनुष्यायुके उत्रुष्ट स्थिति-वन्धका जधन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्रुष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है। अनुत्रुष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है और उत्रुष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। आहारकद्विकके उत्रुष्ट और अनुत्रुष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर मृहूर्त है और उत्रुष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव प्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्रुष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्रुष्ट स्थितिबन्धका जधन्य और उत्रुष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है, इतनी विशेषता है कि तिर्यन

श्रंतरं । श्रयु॰ जह॰ उक्क॰ श्रंतो॰ । मयुसायु॰ उक्क॰ जह॰ श्रंतो॰ समयू॰, उक्क॰ श्रंतो॰ । श्रयु॰ जह॰ उक्क॰ श्रंतो॰ ।

२२५. देवेसु पंचणा॰-छदंसणा०-सादासा०-वारसंक०-पुरिस०-हस्स-रदिअरदि-सोग-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिदि०-श्रोरालि०-तेजा॰-क०-समचदु०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-श्रगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-जस०-श्रजस०-णिम०-तित्थय०-उचा०-पंचंत०
उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रद्वारस साग० सादि०। श्रणु० जह० एग०, उक्क०
श्रंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-श्रणंताणुवंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंदा०-पंचसंघ०-अण्यत्थ०-दूभग-दुस्सर-श्रणादे०-णीचा० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रद्वारस साग० सादि०। श्रणु० जह० एग०, उक्क० एकत्तीसं साग० देसू०। दोश्रायु०
णिरयभंगो। तिरिक्लगदि-तिरिक्लाणु०-उज्जो० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रद्वा-

ञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। ग्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर काल ग्रन्तर्भुहर्त है। ममुज्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य ग्रन्तर एक समय कम ग्रन्तर्भुहर्त है श्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्भुहर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्भुहर्त है।

विशेपार्थ—मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है यह स्पष्ट ही है। मात्र प्रत्याख्यानावरण चारके श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर काल मनुष्य त्रिकमें कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण उपलब्ध होता है। श्रीर श्रप्रत्याख्यानावरण चारके श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भी इतना ही उपलब्ध होता है। इसीसे यहां प्रत्याख्यानावरण चारका भङ्ग श्रप्रत्याख्यानावरण चारके समान है ऐसा कहा है। श्रेष कथन स्पष्ट ही है।

२२४. देवोंमें पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, वारह कपाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, श्ररति, श्रोक, भय, जुगुष्सा, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक शरीर, तेजस शरीर, कामण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिक शरीर श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रपंभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुखचुचतुष्क, प्रशस्तिवहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, श्रुश्भ, सुभग, सुसर, श्रादेय, यशकीर्ति, श्रयशकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उद्यगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रनुक्ष्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर पक समय हे श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है। स्त्यानगृद्ध तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धीचार, स्रोवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगिति, दुर्भग, दुःखर, श्रनादेय श्रोर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। दो श्रायुश्रोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। तिर्थञ्चगित, तिर्थञ्चगत्यानुपूर्वी श्रोर उत्कृष्ट स्थात श्रहतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है।

रस साग० सादि० । अर्गु० जह० एग०, उक० अद्वारस साग० सादि० । एइंदिय-अदाव-थावर० उक० अर्गु० जह० अंतो० एग०, [उक्क०] वे साग० सादि० । एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणी अंतरं णादूण णेदन्वं ।

२२६. एइंदिएस तिरिक्लायु॰ उक्क॰ जह॰ वावीसं॰ वस्ससहस्साणि समयू॰, उक्क॰ अर्णतकालं॰। अर्णुक॰ पगदिश्रंतरं। मणुसायु॰ उक्क॰ खिर्थ अंतरं। अर्णु॰ पगदिश्रंतरं। मणुसग०-मणुसाणु॰-उच्चा॰ उक्क॰ अर्णु॰ जह॰ अंतो॰ एग॰, उक्क॰ असंखेजा लोगा। सेसाएं [उक्क॰] जह॰ अंतो॰, उक्क॰ असंखेजा लोगा। अर्णु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰।

श्रुनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। एकेन्द्रिय जाति, श्रातप श्रौर स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रुनुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका जघन्य श्रन्तर क्रमसे श्रन्तर्मुहूर्त श्रौर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। इसी प्रकार सब देवोंके श्रपना श्रपना श्रन्तर जानकर कथन करना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें श्रोघ उत्कृष्ट स्थितवन्ध सहस्रार कल्प तक होता है श्रोर सहस्रार कल्पमें उत्कृष्ट श्रायु साधिक श्रठारह सागर है, इसिलए यहाँ प्रथम व द्वितीय दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल साधिक श्रठारह सागर कहा है। यहाँ भवके प्रारम्भ व श्रन्तमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करानेसे यह श्रन्तरकाल उपलब्ध होता है। मिथ्यादृष्ट जीव नौ श्रेवेयक तक उत्पन्न होता है श्रोर श्रन्तिम श्रेवेयकके देवकी उत्कृष्ट श्रायु इक्तीस सागर है। इसीसे यहाँ दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके श्रवुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल कुछ कम इक्तीस सागर कहा है। यहाँ प्रारम्भ और श्रन्तमें मिथ्यादृष्टि रखकर इन प्रकृतियोंका वन्ध करावे श्रोर मध्यमें कुछ कम इक्तीस सागर तक सम्यग्दृष्टि रखकर इन प्रकृतियोंका वन्ध करावे श्रोर मध्यमें कुछ कम इक्तीस सागर तक सम्यग्दृष्टि रखकर इन प्रकृतियोंका वन्ध करावे श्रोर साध्यमें कुछ कम इक्तीस सागर तक सम्यग्दृष्टि श्रोत श्राद्दि तीन प्रकृतियोंका बन्ध सहस्रार करण तक होता है इसिलए इनके उत्कृष्ट श्रोर श्रवुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर कहा है। मात्र श्रवुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर काललाते समय मध्यमें जीवको साधिक श्रठारह सागर कालतक सम्यग्दृष्टि रखे। एकेन्द्रिय जाति श्राद्दि तीन प्रकृतियोंका वन्ध ऐशान कर्व्यतकहोता है, इसिलए इनके उत्कृष्ट श्रोर श्रवुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल साधिक दो सागर कहा है। श्रेष कथन स्रुगम है।

२२६. एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वाईसहजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मृहूर्त और एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त है।

२२७. वादरे तिरिक्ल-मणुसायु०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा०वज्जाणं उक्क० ज्ञंतो०, उक्क० त्रंगुल० असं० । अणु० जह० एग०, उक्क० त्रंतो० । तिरिक्लायु० उक्क० जह० वावीसं वासहस्साणि समयू०, उक्क० सगिद्धदी० । अणु० पगिद्शंतरं । मणुसायु० एइंदियोघं । मणुसग०-मणुसाणुपु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुल० असंखे० । अणु० जह० एग०, उक्क० कम्मिद्धदी० ।

र्रः वादरपज्जत्तेस सन्वाणं उक्क० [जह०] श्रंतो०, उक्क० संखेजाणि वास-सहस्साणि । श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । एवरि तिरिक्तायु० उक्क० जह०, वावीसं वाससहस्साणि समयू०, उक्क० सगिहदी० । श्रणु० पगिदश्रंतरं । मणुसायु० एइंदि०श्रोघं । मणुसग०-मणुसाणुपु०-उच्चा० उक्क० जह० श्रंतो ० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० दो वि संखेजाणि वाससहस्साणि । वादरश्रपज्ज० तिरिक्तश्र-पज्जत्तभंगो ।

२२६. सुहुमेइंदिएस तिरिक्लायु॰ उक्क॰ जह॰ अंतो॰ समयू॰, उक्क॰ काय-हिदी॰ । त्राणु॰ पगदिअंतरं । मणुसायु॰ उक्क॰ णित्थ अंतरं । त्राणु॰ पगदिअंतरं ।

२२७. वादर एकेन्द्रियों ने तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रको छोड़कर शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वाईस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुका मङ्ग सामान्य एकेन्द्रियोंके समान है। मनुष्याति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण है।

२२८. वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि तिर्य-श्रापुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वाईस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यापुका भङ्ग सामान्य एकेन्द्रियोंके समान है। मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य इतर अन्तर्मुहूर्त है और अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। वादरअपर्याप्तकोंका भङ्ग तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

२२९. सुक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यगित,

१. मूलप्रती अंतो उक्क० श्रग्रु० इति पाठः ।

मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो० । अर्णु० जह० एग०, दोरणं पि असंखेजा लोगा। सेसाणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असं० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सुहुमाए पज्जत्तापज्जत्त० पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

२३०. वेइं०-तेइं०-चढुरिं० तेसिं पज्जत्ता'० तिरिक्खायु० उक्क० जह० वारस-विरसाणि एगुणवण्णरादिंदियाणि झम्मासाणि समयू०, उक्क० तिण्णं पि संखे-ज्जाणि वाससहस्साणि । अणु० पगदिश्रंतरं । मणुसायु० उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० पगदिश्रंतरं । सेसाणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वाससह

मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर दोनोंका उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रसंख्यातलोक
प्रमाण है। शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है ग्रौर
उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रंगुलके ग्रसख्यातवें भाग प्रमाण है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर
एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म पर्याप्त ग्रौर सूदम ग्रपर्याप्त जीवोंमें
ग्रंपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ग्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंको उत्कृप्ट श्रायु वाईस हजार वर्ष प्रमाण है। इसीसे एकेन्द्रियों-में तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय कम वाईस हजार वर्ष कहा है। तथा एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति ग्रनन्त काल प्रमाण है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। एकेन्द्रिय जीव मनुष्यायुका उत्क्रप्ट स्थितिवन्ध करके मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, फिर तिर्यश्च नहीं रहता इसलिए यहां मनुष्यायुके उत्क्रप्ट स्थितिबन्धके ज्ञन्तर कालका निषेध किया है। मनुष्यायुके ज्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एकेन्द्रियोंमें मनुष्यायु प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है यह स्पप्ट ही है। जो एकेन्द्रिय श्रसंख्यात लोक प्रमाण काल तक श्रग्निकायिक श्रोर वायुकायिक होकर परिभ्रमण करता रहता है, उसके इतने काल तक मनुष्यगति त्रादि तीन प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता, इस लिए इनमें इन तीन प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृप्ट श्रन्तरकाल श्रसंख्यात लोक प्रमाण कहा है। मात्र इन प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्ध का उत्कृष्ट ग्रन्तर काल लाते समय वह पृथिवीकायिक ग्रादिकी कायस्थितिके प्रारम्भमें ग्रौर श्रन्तमें उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करा कर ले श्रावे। एकेन्द्रियों में सूचम एकेन्द्रियों की उत्क्रप्ट कायस्थिति भी असंख्यात लोकप्रमाण है श्रीर इनमें एकेन्द्रियोंको दृष्टिसे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नहीं होता, इसलिए एकेन्द्रियोंमें शेष प्रकृतियोंके उत्कृप स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इस प्रकार, यह सामान्य एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा श्रन्तरकालका विचार किया। इसी प्रकार वाद्र श्रादि एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति श्रादि जान कर श्रन्तरकालका निर्णय करना चाहिए।

२३०. द्वीन्द्रय, ञीन्द्रय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर एक समय कम बारह वर्ष, एक समय कम उनचास दिन रात और एक समय कम छह महिना है और उत्कृष्ट अन्तर तीनोंका संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थिति- पन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर

१. मूलप्रतौ पञ्जत्तापञ्जत्ता तिरि-इति पाठः ।

स्सािंग । त्र्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। त्र्रपज्जत्त० पंचिंदियतिरिक्ख-त्रपज्जत्तभंगो ।

२३१. पंचिदिय०२ णाणादि० ओघं। पढमदंडओ ओघं। एवरि उक्क० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसद्दुध०। थीएगिद्धि०३-मिच्छ०-अएंताएवंधि०४-इत्थि० उक्क० हिदि० पंचणाणा०भंगो। अणु० ओघं। अहकसा० [उक्क०] णाणावरणभंगो। अणु० ओघं। िएरय-देवायु० उक्क० हिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि पुन्वकोडी समयू०। उक्क० णाणाव०भंगो। अणु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसद्दुधनं। तिरिक्खायु० उक्क० जह० पुन्व-कोडी समयू०, उक्क० णाणावरणभंगो। अणु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसद्दुधनं। तिरिक्खायु० उक्क० सागरोवमसद्दुधनं। मणुसायु० उक्क० तिरिक्खायुभंगो। अणु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसद्दुधनं। मणुसायु० उक्क० तिरिक्खायुभंगो। अणु० जह० अंतो०, उक्क० काय-हिदी०। णिरयगदि-एइं०-वेइं०-तेइं०-चदुरिं०-णिरयाणुपु०-आदाव-थावरादि०४-

संख्यात हजार वर्ष है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। इनके श्रपर्याप्तकोंमें श्रपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय श्रौर चतुरिन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति श्रौर कायस्थितिको ध्यानमें रखकर श्रन्तरकालका विचार कर लेना चाहिए। जो द्वीन्द्रिय मरकर द्वीन्द्रिय होता है, त्रीन्द्रिय मरकर त्रीन्द्रिय होता है श्रौर चतुरिन्द्रिय मरकर चतुरिन्द्रिय होता है उसीके तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कमसे एक समय कम वारह वर्ष, एक समय कम उनचास दिन रात श्रौर एक समय कम छह महीना उपलब्ध होता है। इसी प्रकार श्रन्यत्र भी जहाँ एक मार्गणामें श्रपनी श्रायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय कम श्रपनी उत्कृष्ट श्रायुप्रमाण कहा है वहाँ इसी प्रकार स्पष्टीक्ररण कर लेना चाहिए।

२३१. पञ्चेन्द्रियहिकमें हानावरणादिकका मङ्ग श्रोघके समान है। प्रथम दण्डक श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर पञ्चेन्द्रियोंमें पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर है श्रीर पञ्चेन्द्रिय पर्यातकोंमें सौ सागर पृथक्त्व है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार श्रीर स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका भङ्ग पाँच ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका कघन्य अन्तर वस्त हजार वर्ष श्रीर एक समय कम एक पूर्वकोटि है। उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर वस्त हजार वर्ष श्रीर एक समय कम एक पूर्वकोटि है। उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। तिर्थञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। तिर्थञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तर है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका भङ्ग तिर्थञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका भङ्ग तिर्थञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका कघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण् है। नरकगित, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, ज्ञीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट स्थितवन्धका भङ्ग ह्वानावरणके जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट स्थितवन्धका भङ्ग ह्वानावरणके

उक्क० ग्राणावरणभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं० । तिरिक्लगिद-तिरिक्लाणुपु०-उच्चा० उक्क० णाणावरणभंगो । अणु ओघं । मणु-सग०-देवगिद-वेउिव०-वेउिव०अंगो०-मणुस०-देवाणुपु० णाणावरणभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि-सभ० उक्क० णाणावरणभंगो । अणु० ओघं । आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० कायिद्दी० । तित्थय० ओघं । अपज्जत्ता० तिरिक्लअपज्जत्तभंगो । एविर दो आयु० उक्क० जह० अंतो० समयू०, उक्क० अंतो० । अणुं० जह० अंतो०, उक्क० अंतो० ।

समात है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पवासी सागर है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगित, देवगित, वैकियिक शरीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वीका मङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वजर्ष-भनाराचसंहननके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका भङ्ग आघके समान है। आहारक द्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा तीर्थिकर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चिन्द्रय अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ— पञ्चे न्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थित पूर्वकोट पृथकत्व अधिक एक हजार सागर और पञ्चे न्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थित सो सागर पृथक्त है इसिलए इनमें बानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितवन्धक करा कर यह अन्तरकाल ले आवे। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धके जधन्य अन्तरका स्पष्टीकरण मूल प्रकृति स्थितवन्धके समय जिस प्रकार किया है उसी प्रकार यहाँ कर लेना चाहिए। तथा इन दोनों आयुओंके अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मुहुर्त स्पष्ट ही है और उत्कृष्ट अन्तर सो सागर पृथक्त कहनेका कारण यह है कि कोई भी पञ्चे न्द्रिय इतने कालके वाद नरकायु और देवायुका नियमसे वन्ध करता है। तिर्यञ्चायुके अनुत्कृष्ट स्थितवन्धके उत्कृष्ट अन्तरकालका स्पष्टीकरण भी इसी प्रकार करना चाहिए। मात्र मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कायस्थित प्रमाण कहा है सो इसका अभिप्राय यह है कि पञ्चे न्द्रिय रहते हुए अधिकसे अधिक इतने कालक मनुष्यायुका वन्ध नहीं होता है। वीचमें बन्ध हो या न हो नियम नहीं है। पञ्चेन्द्रिय और पञ्चे न्द्रिय पर्याप्त जीव अधिकसे अधिक एक सौ प्चासी सागर कालतक नरकगित आदि ग्यारह प्रकृतियोंका वन्ध नहीं करते, इसिलए इनमें इन प्रकृतियोंके

२३२. पुढिनिका॰ तिरिक्लायु॰ उक्क॰ [जह॰] वावीसं वाससहस्सा० समयू॰, उक्क॰ असंखेजा लोगा । अणु॰ पगिद्रअंतरं । मणुसायु॰ उक्क॰ स्थातें । अणु॰ जह॰ पगिद्रअंतरं । सेसाणं उक्क॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ असंखेजा लोगा । अणु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰ । वादरपुढिव॰ तं चेव । एवरि उक्क॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ कम्मिटिदी॰ । वादरपज्जत्ते संखेजाणि वाससहस्साणि । अपज्जत्ते तिरिक्खअपज्जत्त-भंगो । एवं आउ॰-तेउ॰-वाउ॰ । एवरि तिरिक्खायु॰ उक्क॰ टिदि॰ जह॰ सत्त-वस्ससहस्साणि तिणिण रादिदियाणि तिणिण वस्ससहस्साणि समयू॰, उक्क॰ कायिटिदी॰ । अणु॰ अप्पप्णो पगिदिअंतरं ।

श्रवुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर एक सौ पचासी सागर कहा है । इसी प्रकार शेष श्रन्तरकालका विचार कर लेना चाहिए।

२३२. पृथिवीकायिक जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्रुप्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम वाईस हजार वर्ष है श्रीर उत्रुप्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्रुप्ट स्थितिबन्धको श्रन्तर महातिबन्धको श्रन्तर महातिबन्धको श्रन्तर नहीं है। श्रनुत्रुप्ट स्थितिबन्धको श्रन्तर प्रकृतिबन्धको श्रन्तर नहीं है। श्रनुत्रुप्ट स्थितिबन्धको श्रन्तर प्रकृतिबन्धको श्रन्तर समान है। श्रेष प्रकृतियोंके उत्रुप्ट स्थितिबन्धको जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है श्रीर उत्रुप्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रनुत्रुप्ट स्थितिबन्धको जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्रुप्ट श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है। वादर पृथिवीकायिक जीवोंमें यही श्रन्तर काल है। इतनी विशेषता है कि उत्रुप्ट स्थितिबन्धको जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है श्रीर उत्रुप्ट श्रन्तर कर्मस्थिति प्रमाण है। वादर पर्याप्तक जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। श्रपर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार जलकायिक, श्रग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चायुके उत्रुप्ट स्थितिबन्धको जघन्य श्रन्तर एक समय कम सात हजार वर्ष एक समय कम तीन हजार वर्ष है तथा उत्रुप्ट श्रन्तर काल कायस्थितिग्रमाण है। श्रनुत्रुप्ट स्थितिबन्धको श्रन्तर श्रपने श्रपने प्रकृतिबन्धको श्रन्तरके समान है।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिफकी भवस्थित वाईस हजार वर्षप्रमाण और कायस्थित असंख्यात लोकप्रमाण होनेसे यहाँ तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनमें शेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहनेका यही कारण है। वादर पृथिवीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके बिना शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण कहा है। वादर पर्यातकोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष कहा है। जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके कथनमें पृथिवीकायिक जीवोंके कथनसे कोई अन्तर नहीं है, इसलिए इनका कथन पृथिवीकायिक जीवोंके समान जाननेको कहा है। मात्र इनकी भवस्थितिमें अन्तर है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर कहते समय वह एक समय कम अपनी अपनी उत्कृष्ट भवस्थितिप्रमाण कहा है।

२३३, वर्णप्पदि० एइंदियभंगो । एवरि तिरिक्खायु० उक्क० हिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि समयू०, उक्क० अर्थातकालं अंगुल० असं० संखेजाणि वस्स सहस्साणि । ऋणु० पगदिश्रंतरं । मणुसायु० उक्क० रणित्थ अंतरं । ऋणुक्क० पगदि अंतरं । एवरि मणुसगदितिगस्स अर्णु॰ पगदिअंतरं । वादरवणप्पदिपत्ते० सहस्साणि समयू॰ । णिगोदे॰ वणप्फदिभंगो । णवरि वादरणियोदेसु सन्वेसु उक्क हिदि जह अंतो , उक्क कम्महिदी । अर्गु जह एगस , उक्क० अंतो॰। एवरि तिरिक्खायु० उक्क० हिदि॰ जह० अंतो० समयू०, पिलदो॰ असं॰। अणु॰ पगिदअंतरं। णिगोदेसु पिलदो॰ असंखे॰, वादर-णिगोद्पज्जत्ते संखेज्जाणि वाससहस्साणि । सन्वसुहुमाणं सुहुमएइंदियभंगो। एवरि ऋपपण्णो कायहिदी भाणिदव्वा ।

२३३. वनस्पतिकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान ग्रन्तर काल है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय कम दस हजार वर्ष है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल, श्रंगुलके श्रसंख्यातचें भाग प्रमाण तथा संख्यात हजार वर्ष है। त्रजुत्कृष्ट स्थितिबन्धका त्रन्तर काल प्रकृतिवन्धके त्रन्तर कालके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके ग्रन्तरकालके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतित्रिकके ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल प्रकृतिवन्धके श्रन्तर कालके समान है। वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भक्त है। इतनी विशेपता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम दस हजार वर्ष है। निगोद जीवोंमें वनस्पतिकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सब बादर निगोद जीवोंमें उत्कृप्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है श्रौर उत्कृप्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण् है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्घका जघन्य श्रन्तर एक समय कम श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर प्रकृतिबन्धके श्रन्तरके समान है। निगोद जीवोंमें पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाणे है श्रौर बादर निगोद पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष है। सव सूदम जीवोंमें सूक्ष्म एके-न्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी कायस्थिति कहनी चाहिए।

विशोषार्थ-एकेन्द्रियोंकी उत्कृप्ट भवस्थिति बाईस हजार वर्ष है श्रौर वनस्पतिकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति दस हजार वर्ष है। तथा वनस्पतिकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट काय-स्थिति अनन्तकालप्रमाण, वादर वनस्पतिकायिकोंकी श्रङ्कलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रौर बादर पर्याप्त वनस्पतिकायिकोंकी संख्यात हजांर वर्षप्रमाण है। इसीसे यहाँ इनमें तिर्यञ्चायु के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तरं एक समय कम दस हजार वर्ष श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर वनस्पतिकायिकोंमें अनन्तकाल, इनके वाद्रोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण और इनके वादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर जीवोंकी उत्रुप्ट भवस्थिति भी दस हजार वर्ष है। इसीसे इनमें भी तिर्यञ्चायुके उत्रुप्ट स्थितिवन्धका

जघन्य अन्तर एक समय कम दस हजार वर्ष कहा है।

२३४. तस॰२ पंचिदियभंगो । एवरि उक्क० हिदि॰ जह॰ ग्रंतो॰, उक्क० अपप्पणो कायहिदी॰ । तिण्णि श्रायु॰ उक्क॰ हिदि॰ जह॰ पंचिदियभंगो । उक्क॰ कायहिदी॰ । श्रणु॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ सागरोवमसदपुधत्तं । मणुसायु॰ उक्क॰ श्रणु॰ श्रोघं । एवरि कायहिदी॰ । श्रपज्जत्ता॰ पंचिदियतिरिक्खश्रपज्जत्तभंगो ।

२३५. पंचमण्॰-पंचवचि० चढुत्रायु॰-त्राहार॰२-तित्थय॰ उक्त॰ त्राणु॰ णित्थ श्रंतरं । सेसाणं उक्त० णित्थ श्रंतरं । श्रणु॰ जह० एग०, उक्त॰ श्रंतोग्रु॰ १

२३६. कायजोगीसु णिरय-देवायु॰-श्राहार॰२ उक्क॰ श्रणु॰ णित्थ श्रंतरं। तिरिक्लायु॰ उक्क॰ द्विदि॰ णित्थि श्रंतरं। श्रणु॰ पगदिश्रंतरं। मणुसायु॰ उक्क॰

२३४. त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है। तीन आयुओं के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर पञ्चेन्द्रिय जीवोंके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध का जधन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्तव प्रमाण है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओधके समान है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। त्रस अपर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेपार्थ—त्रसकायिक श्रोर त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंकी कायस्थितिका उल्लेख श्रानेक वार कर श्राये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहां जो अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है वह जान लेना चाहिए। नरकायु, तिर्यञ्चायु श्रोर देवायुके श्रमुतकृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रम्तर सौ सागर पृथक्तव प्रमाण कहा है सो इसका स्पष्टीकरण यह है कि त्रसकायिक श्रोर त्रसकायिक पर्याप्त जीव सौ सागर पृथक्तवके वाद श्रवश्य ही नारकी, तिर्यञ्च श्रोर देव होता है। श्रेप कथन स्पष्ट ही है।

२३४. पांचों मनोयोगी श्रोर पांचों वचनयोगी जीवोंमें चार श्रायु, श्राहारक द्विक श्रोर तीर्थं कर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रेष प्रकृ-तियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोगों श्रीर पांचों वचनयोगोंका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहर्त है। तथा इनमें मध्यमें उत्कृष्ट स्थितिवन्घ हो सकता है। इसीसे इनमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्घका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहर्त कहा है। पर इस प्रकार एक योगमें दो वार उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव नहीं है, इसिलए उसके श्रन्तरकालका निषेध किया है। श्रव रहीं प्रथम दण्डकमें कही गई चार श्रायु श्रादि सात प्रकृतियाँ सो इनके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल सम्भव नहीं है। कारणका विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए।

२३६. काययोगी जीवोंमें नरकायु, देवायु श्रौर श्राहारक द्विकके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। ितर्यश्चायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट

णित्थ अंतरं । अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं असं० । सेसाणं उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० दिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णविर यणुसग०-मणु- साणु०-उच्चा० उक्क० दिदि० णित्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा ।

२३७. त्रोरालियका॰ िएरय-देवायु०-त्राहार०२-तित्थय० उक्क० त्राणु० हिदि० एत्थि त्रंतरं । तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० एत्थि त्रंतरं । त्राणु० पगदि-त्रंतरं । सेसाणं मणजोगिभंगो ।

२३८. श्रोरालियिमस्स॰ पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगु'०-श्रोरालि॰-तेजा॰-क०-वण्ण०४-श्रगु०४-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० हिदि० णित्थि श्रंतरं। श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। देवगदि०४-तित्थय० धुविगाण भंगो।

स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। रोप प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्यगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यके एकमात्र काययोग होता है। इसीसे काययोगमें मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल उपलब्ध हो जाता है। जो मनुष्यायुका अजधन्य स्थितिवन्ध करके और लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य होकर पुनः मनुष्यायुका अजधन्य स्थितिवन्ध करता है उसके मनुष्यायुके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तरकाल उपलब्ध होता है और जो प्रारम्भमें मनुष्यायुका वन्ध करके अनन्तकालतक काययोगके साथ रहकर अन्तमें मनुष्यायुका वन्ध करता है उसके मनुष्यायुके अजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल उपलब्ध होता है। इसोसे मनुष्यायुके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर अनन्तकाल उपलब्ध होता है। इसोसे मनुष्यायुके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर अनन्तकाल उपलब्ध होता है। इसोसे मनुष्यायुके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३७. श्रीदारिक काययोगी जीवोंमें नरकायु, देवायु, श्राहारकद्विक श्रीर तीर्थंङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। तिर्थञ्चायु श्रीर ममुख्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर प्रकृतिबन्धके श्रन्तरके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—श्रीदारिककाययोगमें तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके प्रकृतिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक सात हजार वर्ष कह श्राये हैं वही यहाँ इन दोनों श्रायुश्रोंके श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३८. श्रीदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु चतुष्क, उपघात, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजुत्कृष्ट स्थितिबन्धका ज्ञान्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। देवगितचतुष्क श्रीर तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। श्रेष प्रकृति

सेसाणं उक्क० हिदि॰ णित्थ अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं अधापवत्तस्स । अथवा से काले पज्जत्ती जाहिदि ति सामित्तं दिज्जदि तदो धुवि-गाणं देवगदिपंचगस्स उक्क० अणु० णित्थ अंतरं । सेसाणं परियत्तमाणियाणं उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० हिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दो आणु० पंचिदियतिरिक्तअपज्जत्तभंगो ।

२३६. वेडिव्वय०-त्राहार० मणजोगिभंगो । वेडिव्वय-त्राहारिम० त्र्योरात्ति-यमिस्सभंगो । कम्मइग० सव्वपगदीयां उक्क० त्राणु० ग्रात्थि त्रांतरं ।

२४०. इत्थिवे॰ श्रोघं । पढमदंडश्रो सो चेव इत्थं वि। एवरि पिलदोवमसद-पुषत्तं । थीणगिद्धि॰ ३-मिच्छ०--श्रणांताणुवंधि०४--इत्थि०-एवुंस०--तिरिक्खगदि--एइंदि॰-पंचसंठा०--पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०--श्रादउज्जो०--श्रप्पसत्थ०--थावर--दूभग--दुस्सर-श्रणादे०-एीचा० उक्क० णाणावरणभंगो । श्रणु० जह० एग०, उक्क०

तियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तके जानना चाहिए। अथवा तदमन्तर समयमें पर्याप्तिको ग्रहण करेगा ऐसे समयमें उत्कृष्ट स्थितवन्धका स्थामित्व प्राप्त होता है इसिलए ध्रुवबन्धवाली और देवगितपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। शेष परिवर्तनशील प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। शेष परिवर्तनशील प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंका अन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध प्रकरणमें जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिकों प्राप्त होगा वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी कह श्राये हैं श्रीर यहाँ उत्तर प्रकृति स्थितिबन्ध प्रकरणमें तद्योग्य संक्लेश परिणामोंके होने पर श्रथवा उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके होने पर उत्कृष्ट स्थितिवन्धका स्वामी होता है यह कहा है। इसी वातको ध्यानमें रखकर यहाँ श्रन्तर कालका निरूपण दो प्रकारसे किया है। फिर भी हर हालतमें किसी भी कर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं प्राप्त होता इतना स्पष्ट है। कारण कि श्रीदारिकमिश्रकाययोगका काल इतना श्रव्प होता है जिसमें दो वार उत्कृष्ट स्थितिवन्धके योग्य परिणाम नहीं प्राप्त होते।

२३९. वैक्रियिककाययोगी और ब्राहारक काययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भक्त है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और ब्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रौदारिमश्रकाययोगी जीवोंके समान भक्त है। कार्मण्काययोगी जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ब्रन्तर काल नहीं है।

२४०. स्त्रीवेदी जीवोंमें श्रोधके समान भक्त है। प्रथमदण्डक भी उसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि यहाँ सौ पत्य पृथक्तव कहना चाहिए। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रानन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्थञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्थञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, दुभंग, दुसर, श्रनादेय श्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल ज्ञानावरणके समान है। श्रानुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन

पण्वएणं पित्तदोव देस् । तिरिक्स-मणुसायु उक जह पुन्वकोडि समयू ०, उक णाणावरणीयमंगो । अणु जह अंतो ०, उक पित्तदो ० सदपुथतं । णिरयायु ० उक णित्य अंतरं । अणु ० दिदि ० जह ० अंतो, उक्क ० पुन्वकोडित-भागं देस ० । देवायु ० उक्क ० जह ० दसवस्ससहस्साणि पुन्वकोडी समयू ०, उक्क ० कायिद्वि । अणु ० जह ० अंतो ०, उक्क ० अद्वावएणं पित्तदोवमाणि पुन्वकोडि-पुधत्तेण । वेउन्वियञ्चक निर्ं ० निरं ० जह ० प्रां ०, उक्क ० पण्वएणं पित्तदो ० सादि ० । मणुस ० अरो चि ० अरो ० अरो ० जह ० एग ०, उक्क ० तिरिण पित्तदो ० देस ० । आहार ० २ उक ० अर्णु ० जह ० अरो ०, उक्क ० कायिद्वि ० । तित्थय ० उक्क ० अर्णु ० णित्थ अंतरं ।

पत्य है। तिर्यञ्चायु श्रौर मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृप अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है। नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्भुहर्त है और उत्कृप्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर दस हजार वर्ष और पक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्क्रप्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। त्रजुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य त्रन्तर त्रन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव श्रधिक श्रहावन पत्य है। वैक्रियिक छह, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका जन्नन्य ज्ञन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ज्ञन्तर साधिक पचपन पत्य है। मनुष्य-गति, श्रौदारिक शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन श्रौर मनुप्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर हानावरण्के समान है। श्रवुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पत्य है। श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है।

विशेषार्थ—स्त्रोवेदकी उत्कृष्ट कायस्थित सौ पत्य पृथक्तव प्रमाग है। इसीसे यहां प्रथम दग्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट स्थितवन्ध कराकर यह पृथक्तव प्रमाग कहा है। कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कराकर यह श्रन्तर ले श्राना चाहिए। सम्यक्तवके कालमें स्त्यानगृद्धि तीन श्रादि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसिलए इनके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर काल कुछ कम पचवन पत्य कहा है। चारों श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धके श्रन्तर कालके विषयमें पहले श्रनेक वार निदेश कर श्राये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहां श्रन्तरकाल जान लेना चाहिए। मात्र देवायुके श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर जो पूर्वकोटि पृथक्तव श्रिधक श्रद्ठावन पत्य

२४१. पुरिसेसु पढमदंडओ ओघं। एवरि उक्क० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। थीएगिद्धि० ३-िमच्छ०-अर्णाताणुवंधि०४-इत्थि० उक्क० पाणाव०भंगो। अर्णु० जह० एग०, उक्क० ओघं। एवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अर्णादे०-णीचा० उक्कस्सं एएएवर०भंगो। अर्णु० ओघं। एएरयायु० उक्क० एत्थि अंतरं। अर्णु० इत्थि०भंगो। तिरिक्ख-मणुसायु० इत्थिभंगो। एवरि सगहिदी०। देवायु० उक्क० जह० दसवस्ससहस्साणि पुन्वकोडी समयू०, उक्क० पाणावर०भंगो। अर्णु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादि०। एएर्यग०-वेइं०-तेइं०-चदुरिं०-िएर्याणु०-आदाव-थावरादि०४ उक्क० पाणाव०भंगो। अर्णु० जह० एग०, उक्क० तेविहसागरोवमसदं। देवगदि०४ उक्क० हिदि० एएर्याच०भंगो। अर्णु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०।

कहा है सो उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि किसी स्त्रीवेदीने देवायुका पचवन पत्य-प्रमाण स्थितवन्ध किया पश्चात वह स्त्रीवेदके साथ पूर्वकोटि पृथक्त काल तक परिश्रमण कर तीन पत्यकी श्रायुवाला स्त्रीवेदी हुश्रा श्रीर वहां छह महीना शेष रहने पर उसने पुनः देवायुका वन्ध किया तो देवायुका यह अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। देवो पर्यायमें वैकि-यिक छह श्रादि वारह प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता और वहांसे च्युत होनेके वाद भी अन्त-मृंहूर्त काल तक इनका वन्ध न होना सम्भव है, क्योंकि ये सप्रतिपत्त प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक पचवन पत्य कहा है। सम्य-ग्रहि मनुष्यनीके सम्यक्तवका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। इसीसे स्त्रीवेदमें मनु-प्रयाति श्रादि पाँच प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पत्य कहा है, क्योंकि मनुष्य सम्यन्दिएके इनका वन्ध नहीं होता। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२४१. पुरुपवेदी जीवोंमें प्रथम दएडक ग्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्महर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्तव है। सत्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, ग्रनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। त्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है श्रीरं उत्कृष्ट अन्तर श्रोघके समान है। नपुंसकवेद, पांच संस्थान, पांच संहनन, श्रव्रशस्त विहा-योगति, दुर्भग, दुखर, ग्रनादेय ग्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितवन्धका ग्रन्तरकाल ज्ञानावरण के समान है। अनुत्कृप्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। नरकायुके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका ग्रन्तर कालं नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका ग्रन्तर काल स्त्रीवेदके समान है। तिर्यञ्चायु ग्रौर मनुष्यायुका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रपनी स्थिति कहनी चाहिए। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर दस हजार वर्ष और एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भृहते है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरक गति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, नरक गत्यानुपूर्वी, श्रातप, स्थावर आदिचारके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। देवगति चारके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका ग्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। ग्रुनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके मणुसगदिपंचगस्स उक्क॰ हिदि॰ गाणाव॰भंगो । त्राणु॰ जह॰ एग॰, उनक॰ तिरिण पिलदो॰ सादि॰ । त्राहार०२ उनक॰ त्राणु॰ जह० त्रांतो०, उनक० सग-हिदी॰ । तित्थय० उनक॰ गित्थि झंतरं । त्राणु॰ त्रोघं ।

२४२. णवुंस० पहमदंडम्रो मूलोघं। थीणगिद्ध०२-मिच्छ०-म्रणंता णुवंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्लग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्लाणु०-उज्जो०-म्रण्यस्थ०-दूमग-दुस्सर-म्रणादे०-णीचागो० उक्क० हिदि० म्रोघं। म्रणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देस्र०। तिणिण म्रायु०-वेउव्वियञ्जक-मणुसग०-मणु-

उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका अधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य है। आहारक द्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। तीथ कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल शोधके समान है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सी सागर पृथक्तवप्रमाण है। इसीसे इसमें प्रथम दण्कमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट अन्तरकाल उक्क प्रमाण कहा है। पुरुषवेदमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। श्रोघसे स्त्यान-गृद्धि तीन ग्रादि नौ प्रकृतियोंके ग्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है। इसीसे यहां इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल श्रोधके समान कहा है। मात्र स्त्रीवेद सप्रतिपन्न प्रकृति होनेसे यहां श्रोघके समान इसके श्रमुत्कप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागर कहना चाहिए। नपुंसकवेद आदि सोलह प्रकृतियोंका संम्यग्दि श्रीर सम्यग्मिश्यादि के तो वन्ध होता ही नहीं। साथ ही इनका अकर्मभूमिज जीवके भी बन्ध नहीं होतो। इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर श्रोघसे साधिक दो छुवासठ सागर श्रीर कुछ कम तीन पत्य कहा है। पुरुष-वेदमें यह अन्तर इसी प्रकार प्राप्त होता है, इसलिए यहां यह श्रोघके समान कहा है। जो जीव दो छवासठ सागर तक सम्यग्दि और मध्यमें सम्यग्मिण्यादिए रहा ग्रौर ग्रन्तमें नौ श्रैवेयकमें उत्कृष्ट श्रायुके साथ उत्पन्न हुश्रा उसके एक सौ त्रेसठ सागर काल तक पुरुषवेदमें नरकगित ग्रादि दस प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहां इनके ग्रनुत्कृष्ट स्थित-वन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक से त्रेसठ सागर काल प्रमाण कहा है। उपशम श्रेणिपर चढ़ा हुआ जो जीव उतरते समय देवगतिचतुष्कका वन्ध करनेके अनन्तर पूर्व समयमें मरकर तेतीस सागर की श्रायुवाला देव होता है उसके साधिक तेतीस सागर काल तक देवगति चतुष्कका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहां इनके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। सम्यग्द्रि मनुष्यके मनुष्यगतिपञ्चककावन्ध नहीं होता और मनुष्यके सम्यक्तवका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है। इसीसे यहां इनके अनुत्कृष्ट स्थितियन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन पत्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही हैं।

२४२. नपुं सकवेदमें प्रथम दण्डक मूलोधके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, श्रनन्तानुबन्धो चार, स्त्रीवेद, नपुं सकवेद, तिर्यञ्चगित, पांच संस्थान, पांच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, श्रप्रशस्त, विहायोगित, दुर्भग, दुस्वर, श्रनादेय श्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीन श्रायु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगित,

साणु०-उचा०-त्राहार०२ उनक० त्रणु० त्रोघं। देवायु० उनक० हिदि० एत्थि त्रांतरं। त्रणु० हिदि० पगदित्रांतरं। एइंदि०-वीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०-त्रादाव-थावर०४ उनक० एएए। त्रणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। तित्थय० मणुसभंगो। त्रोरालि०-त्रोरालि० त्रांगो०-वज्जरिसभ० उक० एएए। त्रणु० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू०। एवं त्रहकसा०।

२४३. त्रवगदवेदे सन्वपगदीएां उक्क० एतिथ श्रं०। श्रग्रु० जह० उक्क० श्रंतो०।

मनुष्यगत्य। नुपूर्वी, उच्चगोत्र श्रीर श्राहारक द्विकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तरं काल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल प्रकृतिबन्धके श्रन्तरके समान है। पकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, श्रोन्द्रियजाति चतुरिन्द्रिय जाति, श्रातप श्रीर स्थावर चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल ज्ञानावरण्के समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। तीर्थं इर प्रकृतिका भङ्क मनुष्यों के समान है। श्रीदारिक शरीर, श्रीदारिक शाङ्गोपङ्ग श्रीर वज्रष्यमनाराच संहननके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रान्तरकाल ज्ञानावरण्के समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्व कोटि है। इसी प्रकार श्राट कषायों के उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल ज्ञाना चाहिए।

विशेषार्थ—नरकमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसीसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन ग्रादि श्रष्टाइस प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नरकमें एकेन्द्रिय जाति श्रादि नौ प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता श्रीर सप्रतिपद्म प्रकृतियाँ होनेसे अन्तर्मुहूर्त कालतक श्रीर इनका बन्ध सम्भव नहीं है। इसीसे इन प्रकृतियोंके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। वर्षु सकवेदी सम्यग्द्दि मनुष्य या तिर्यञ्चके कुछ कम एक पूर्वकोटि कालतक श्रीदारिक श्रिर श्रादि तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसिलए इनके श्रमुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण कहा है। यहाँ तिर्यञ्च पर्यायकी श्रपेद्धा उत्कृष्ट श्रन्तरकाल उपलब्ध होगा। मात्र प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें इनका बन्ध कराके यह श्रन्तरकाल ले श्राना चाहिए। श्रेप कथन सुगम है।

२४३. श्रपगतवेदमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्तमु हूर्त है।

विशेषार्थ—नपुंसक वेदसे उपशम श्रे शिपर चढ़े हुए जीवके उतरते समय सवेदी होनेके एक समय पहिले अपनी सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। इसलिए अवगत वेदमें उत्कृष्ट स्थितिवन्धके अन्तर कालका निपेध किया है तथा उपशान्त मोहका काल अन्तर्मुह्रते होनेसे यहां अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्त-मुंह्रते कहा है। चार संज्वलनकी वन्ध व्युच्छितिहोनेके वाद उनका पुनः वन्ध अपगत वेदमें अन्तर्मुह्रते कालके वाद ही होता है इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुह्रते कहा है।

२४४. कोधादि०४ मराजोगिभंगो ।

२४५. मदि०-सुद० पंचणा०-णवदंस०-सादासा०-भिच्छत्त-सोलसक०-अहणोक०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचढु०-वरण्ण०४-अगुरू०४-पसत्थ०-तस०४-थिराधिर—
सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-िण्णिम०-पंचंत० उक्क० हिदि० जह०
अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवुंस०ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-अण्यसत्थ०-दूभग—दुस्सर—अण्यादे०—
णीचा० उक्क० हिदि० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तिरिण्ण पलिदो० देस् ०।
चढुरण्यंत्रायु०-वेउन्वियञ्च०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० मूलोघं। णविर देवायु०
उक्क० हिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि पुन्वकोडी समयू०, उक्क० अणंतकालमसंखे०। तिरिक्तवगदि-तिरिक्तवाणुपु०-उज्जो० उक्क० अष्मं। अणु० हिदि० जह०
एग०, उक्क० एक्कतीसं सा० सादि०। चढुजादि-आदाव-थावरादि०४ उक्क० हिदि०
ओघं। अणु० हिदि० जह० एंग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०।

२४४. क्रोघादि चार कषायवाले जीवोंमें सव प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—मनोयोगका काल ग्रौर चारों कवायोंका काल एक समान है इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके स्थितवन्धका ग्रन्तरकाल मनोयोगी जीवोंके समान कहा है।

२४४. मत्यज्ञानी, ग्रीर श्रताज्ञानी जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता ग्रीर श्रसाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, पञ्चे न्द्रिय जाति, तैजस श्रीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति, निर्माण श्रीर पांच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघत्य अन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त है। नपुंसकवेद, श्रीदारिक शरीर, पांच संस्थान, श्रौदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्गभ, दुस्वर, ग्रनादेय ग्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल ग्रोघके समान है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर इत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पल्य है। चार श्रायु, वैकियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रका अन्तर काल म्लोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्ध का जघन्य अन्तर दस हजार वर्ष और एक समय कम एक पूर्वकोटि है। तथा उत्कृष्ट अन्तर ग्रनन्तकाल है जो ग्रसंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुंपूर्वी श्रौर उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिवन्घका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक इकतीस सागर है। चार जाति, श्रातप श्रौर स्थावर श्रादि चारके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। अनुत्रुष्ट स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्रुष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

२४६. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-सादासा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०तिरिक्लगदि-पंचिदि०-छोरालि०-तेजा०-क०-छस्संठाण्-छोरालि०छंगो०-छस्संघ०वण्ण०४-तिरिक्लाणु०-अगुरू०४-उज्जो०-दोविहा०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमि०णीचा०-पंचंत० उक्क० हिदि० जह० छंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। अणु०
जह० एग०, उक्क० खंतो०। णिरय-देवायु० उक्क० अणु० हिदि० णित्थ
छंतरं। तिरिक्ल-मणुसायु० उक्क० हिदि० णित्थ छंतरं। अणु० जह० छंतो०,
उक्क० छम्मासं देसू०। वेउव्वियछ०-तिरिण्णजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण०
उक्क० णित्थ छंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० छंतो०। मणुसगदिदुगं उच्चा०
उक्क० छिदि० जह० छंतो०, उक्क० वावीसं सा० देसू०। अणु० जह० एग०,
उक्क० छंतो०। एइंदि०-आदाव-थावर० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० बेसाग०
सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० छंतो०।

२४६. विभङ्गहानमें पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नवकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, ग्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, छह संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, उद्योत, दो विद्दायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर ग्रादि छह, निर्माण, नीचगोत्र ग्रीर पांच ग्रन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहुर्त है ग्रोर उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। ग्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर, अन्तर्मुहर्त है। नरकायु ग्रीर देवायुके उत्कृप ग्रीर त्रमुत्कृष्ट स्थितियन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहुर्त है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम छह महिना है। वैकियिक छह, तीन जाति, सुदम, ग्रपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तमुंहर्त है। मनुष्यगित द्विक श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम वाईस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है उत्कृष्ट ग्रान्तर ग्रान्तर्मुहूर्त है। एकेन्द्रिय जाति, ग्रातप ग्रौर स्थावरके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। श्रमुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृप्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेपार्थ—नरकमें विभङ्गहानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इसीसे यहां पाँच ज्ञानावरण ग्रादि ५७ प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यहां प्रारम्भ ग्रीर ग्रन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराकर यह ग्रन्तर काल ले ग्रावे। वैकिथिक छह ग्रादि वारह प्रकृतियोंका वन्ध देव और नारिकयोंके नहीं होता। मनुष्य और तिर्थञ्चोंके होता है। फिर भी इनके विभङ्गहानके कालमें इन प्रकृतियोंके दो वार उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम नहीं होते, इसिलए यहां इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके ग्रन्तरकालका निषेध किया है। नरकमें मनुष्यगितिहिक 'ग्रीर उच्चगीत्रका विभङ्गहानमें बन्ध छठे नरकतक ही होता है। इसीसे यहां इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वाईस सागर कहा है। एकेन्द्रिय जाति ग्रादि

२४७. श्राभि॰-सुद्०-श्रोधि॰ पंचणा॰-छदंसणा॰-श्रसादा॰-चदुसंज०-पुरिस०श्ररिद-सोग-भय-दुगुं ॰-पंचिदि०-तेजा॰-क०-समचदु०-वएण०४-श्रगुरु० ४-पस्त्थिव०तस०४-श्रथिर-श्रस्भ-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-श्रज०-िणिम०-तित्थय॰-उचागो०-पंचंत०
उक्क० हिदि० गित्थ श्रंतरं । श्रणु॰ जह॰ एग॰, उक्क० श्रंतो० । सादावे॰-हस्सरिद-थिर-सुभ-जस॰ उक्क० हिदि० जह० श्रंतो॰, उक्क० छान्निह साग॰ सादि॰ ।
श्रणु० हिदि॰ जह० एग॰, उक्क० श्रंतो० । मणुस-देनायु॰ उक्क० हिदि॰ जह॰
पित्दो० सादि०, उक्क० छान्निसाग॰ सादि॰ । देनायु० छान्निसाग० देस्। श्रणु॰ जह० श्रंतो॰, उक्क० तेत्तीसं० सा० सादि॰ । श्रहक॰ उक्क० हिदि० गित्थ श्रंतरं ।
श्रणुं० श्रोघं । मणुसगदिपंचगस्स उक्क० गित्थ श्रंतरं । श्रणु॰ जह० नासपुधत्तं॰, उक्क० पुन्नकोडी० । देनगदि०४ उक्क० हिदि० गित्थ श्रंतरं । श्रणु॰ जह० श्रंतो॰, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । श्राहार०२ उक्क० श्रणु॰ जह० श्रंतो०, उक्क० छान्हिसा॰ सादि० । त्रीह पुन्नकोडीह सादिरे०।

तीन प्रकृतियोंका वन्ध ऐशान कल्पतक होता है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर कहा है। यहां भी प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कराकर यह श्रन्तर काल छे श्रावे। शेष कथन सुगम है।

२४७, ग्राभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी ग्रौर ग्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चे-न्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु-चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, ग्रस्थिर, त्रशुभ, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, त्रयशः कीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रद्धत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। साता वेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है **और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ**वासठ सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध-का जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायु श्रीर देवायुके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका जधन्य श्रन्तर साधिक पत्य प्रमाण है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। किन्तु देवायुका कुछ कम छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्राठ कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर काल श्रोघके समान है। मनुष्यगति पाँचके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रतुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर वर्षपृथक्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। ग्राहारकद्विकके उत्हृए श्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर ग्रौर साधिक तेतीस सागर है। प्रथवा इनकी उद्वेलना करता है इसलिए उत्कृष्ट भ्रौर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्घका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल दो पूर्वकोटि ग्रिधिक साधिक छुवासठ सागर है।

१. मूलप्रती श्रणु० जह० श्रोघं इति पारः।

२४८. मणपज्ज० पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-देवगदि— पंचिंदि०-वेउिव०-तेजा०-क०-समचढु०-वेउिव०झंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-ऋगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-ऋादे०--णिमि०--तित्थय०--उचा०--पंचंत० उक्क० द्विदि० णित्थि ऋंतरं । ऋणु० जह० उक्क० झंतो० । सादा०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-

विशेपार्थ - उक्त तीन ज्ञानोंमें पाँच ज्ञान।वरण श्रादि ४२ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थिति-वन्ध मिथ्यात्वके श्रमिमुख दुए जीवके होता है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके श्रन्तर कालका निपेध किया है। तथा जो सातवें श्रादि गुणस्थानोंमें कमसे कम एक समयके लिए ग्रीर ग्रधिकसे ग्रधिक ग्रन्तर्मुहूर्तके लिए इनका ग्रवन्धक होकर पुनः मरण्कर या उतरकर इनका वन्ध करता है उसके इनके श्रवुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृप्र श्रन्तर श्रन्तर्भुहूर्त उपलब्ध होता है, इसलिए इनके श्रवुत्कृप्र स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्भुद्धर्त कहा है। सातावेदनीय श्रादि छह प्रकृ-तियोंका उत्कृप्ट स्थितिबन्ध यहाँ खस्थानवर्ती जीवके होता है और आभिनिवोधिक ग्रादि तीनों ज्ञानोंका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल साधिक छ्यासठ सागर कहा है। इन तीन ज्ञानोंका उत्कृप्टकाल चार पूर्वकोटि श्रधिक छ्यासठ सागर वतलाया है। उसे देखते हुए मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक छथासठ सागर वन जाता है पर देवायुके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट ग्रन्तर काल कुछ कम छथासट सागर ही उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ मनुष्यायुके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट श्रन्तर काल साधिक छ्यासड सागर श्रीर देवायुके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर काल कुछ कम छ्रथासठ सागर कहा है। इनके ग्राठ कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध भी मिथ्यात्वके ग्रिमेमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितियन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। सम्यग्दिए देवके मनुष्यगति पञ्चकका नियमसे वन्ध होता है। यह मनुष्योमें कमसे कम वर्षपृथक्तवप्रमाण ग्रीर ग्रधिकसे ग्रधिक पूर्वकोटि प्रमाण ग्रायुके साथ उत्पन्न हुग्रा ग्रीर मरकर पुनः देव हो गया। तो इसके मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त प्रमाण श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिप्रमाण उपलब्ध होता है। इसीसे यहाँ यह श्रन्तर उक्त प्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कका देव श्रौर नारकीके बन्ध नहीं होता। तथा नरकमें जानेके पहले ग्रौत वहाँसे निकलने पर ग्रन्तर्मु हुत काल तक इनका ग्रौर भी बन्ध सम्भव नहीं है, क्योंकि ये सप्रतिपन्न प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका उत्कृप्ट ग्रन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। ग्राहारकद्विकके उत्कृष्ट ग्रौर श्र<u>न</u>ुत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर काल दो प्रकारसे बतलाया है। प्रथम ग्रन्तर काल उद्वेलनाकी विवन्ना न करके कहा गया है श्रौर दूसरा श्रन्तर काल उद्वेतनाकी विवन्नासे कहा गया है। श्रेष कथन सुगम है।

न्यम छुन्न है। विद्यान होने पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु-चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुसर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञान्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर काल श्रन्तर के। सातावेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, शुभ

जस० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देस्०। श्रणुक्क० श्रोघं। श्रसादा०-श्ररदि-सोग-श्रथिर-श्रसभ-श्रजस० उक्क० एतिथ श्रंतरं। श्रणु० श्रोघं। देवायु० उक्क० द्विदि० एतिथ श्रंतरं। श्रणु० पगदिश्रंतरं। श्राहार०२ उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देस्र०। श्रणु० जह० उक्क० श्रंतो०। एवं संजदा०। सामाइ०-छेदो० धुविगाएां उक्क० श्रणु० द्विदि० एतिथ श्रंतरं। सेसाएां मणपज्ज-वभंगो। एवं परिहारे। सुहुमसंप० सन्वपगदीएं उक्क० श्रणु० एतिथ श्रंतरं। संजदासंजद० परिहारभंगो।

२४६. ऋसंजदेसु पृदमदंडश्रो श्रोघं । एवरि श्रष्टक० धुविगाएं सह भाषि-दव्वं । थीणगिद्धि ३-मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४-इत्थि०-णवुं स०--तिरिक्खगदि--पंच--संठा ॰-पंचसंघ ०-उक्जो ०-तिरिक्लाणु '०--अप्पसत्थ ० --दूभग--दुस्सर--अर्णादे ०--णीचा ० उक्क० हिदि० श्रोघं । श्रणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देस्र० । श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर ओघके समान है। असातावेद-नीय, ग्ररति, शोक, ग्रस्थिर, श्रशुभ और श्रयशःकोर्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। त्रानुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल श्रीघके समान है। देवायुके उत्कृप स्थिति-वन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है। ग्राहारकद्विकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृप्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त हैं । इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए । सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रुवुत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। शेष प्रकृ-तियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके जानना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका अन्तर काल नहीं हैं। संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्क परिहार विशुद्धि। संयत जीवोंके समान है।

विशेषार्श—मनःपर्ययज्ञानीके प्रथम दग्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध असंयमके अभिमुख होने पर होता है, इसिलए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके अन्तर कालका निपेध किया है। इसी दिएसे असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके अन्तर कालका निपेध किया है। यहाँ जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है उसे प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कराकर छ आना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२४९. असंयत जीवोंमें प्रमथ दण्डक श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्राठ कपायोंका कथन ध्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके साथ करना चाहिए। स्त्यानगृद्धितीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगित, पाँच संस्थान; पाँच संहनन, उद्योत, निर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुस्तर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। चार श्रायु, वैक्रियिक छह श्रीर मनुष्यगितका

१. सूरुपतौ -क्लाग्रु० उज्जो० ग्रप्प- इति पाठः ।

चढुआयु॰-नेउन्नियद्यक्क-मणुसगिद् 'मदि॰भंगो | चढुगिद्-आदाव-थावर०४ उक्क॰ हिदि॰ ओघं | अणु॰ णवुंसगभंगो | ओरालि॰-ओरालि॰अंगो॰-वज्जरिसभ॰ उक्क॰ आणु॰ ओघं | तित्थय॰ उक्क॰ णित्थ अंतरं | आणु॰ जह॰ उक्क॰ आंते॰ | चक्खुदंस॰ तसपज्जत्तमंगो | अचक्खु॰ मूलोघं | ओधिदं॰ ओधिणाणिभंगो ।

२५०. किएणले० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-वारसक० अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिदि०-तेजा०-क०-वएण०४-अगु६०४-तस०४-अथर-अध्रम-अजस०-णिमि०-पंचेत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४-णवुंस०-हुंडसं०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० णाणाव०भंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। सादा०-पुरिस०-हस्स-रदि-ओरालि०-समचदु०-

भङ्ग मत्यक्षानियोंके समान है। चार गित, ग्रातप ग्रीर स्थावर चारके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर भोघके समान है। श्रनुतकृप्ट स्थितिवन्धका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। श्रीदारिक श्रारा, ग्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग ग्रीर वज्जर्षभनाराचसंहननके उत्कृप्ट ग्रीर श्रनुतकृप्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तर श्रोघके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृप्ट स्थितिबन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर काल ग्रन्तर्मुहर्त है। चक्षुदर्शनवाले है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर काल ग्रन्तर्मुहर्त है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंका भङ्ग त्रसपर्याप्तकोंके समान है। श्रचचुदर्शनवाले जीवोंका भङ्ग प्रलोधके. समान है। श्रविदर्शनवाले जीवोंका भङ्ग ग्रविधिवानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ— असंयत जीवोंके आठ कषायोंका निरन्तर बन्घ होता रहता है, इसिलए यहाँ इनके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके साथ इनका निर्देश करनेकी सूचना की है। असंयत अवस्थामें स्त्यानगृद्धि तीन आदि २८ प्रकृतियोंका कुछ कम तेतीस सागर काल तक वन्ध नहीं होता, इसिलए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यह अन्तर सातवें नरककी अपेचासे कहा गया है, क्योंकि देवोंमें जो तेतीस सागरकी आयुके साथ उत्पन्न होता है वह मनुष्य पर्यायमें आकर नियमसे संयमको प्राप्त करता है, इसिलए ऐसे जीवके इनका वन्ध ही नहीं होता, अतपव इस अपेचासे असंयमका काल छेने पर इन प्रकृतियोंके वन्धका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता। शेप कथन स्पष्ट ही है।

२५०. कृष्ण लेश्यावाले जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ग्रसाता वेदनीय, बारह कषाय, ग्ररित, शोक, भय, जुगुष्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, ग्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, ग्रस्थिर, ग्रशुभ, ग्रयशःकीर्ति, निर्माण ग्रीर पांच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मु हुर्त है ग्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धी चार, नपुंसक वेद, हुएडकसंस्थान, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय, ग्रीर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। साता वेदनीय, पुरुप वेद, हास्य, रित, ग्रीदारिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, ग्रीदारिक ग्राक्नोपाङ्ग, वर्जूपभनाराच वेद, हास्य, रित, ग्रीदारिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, ग्रीदारिक ग्राक्नोपाङ्ग, वर्जूपभनाराच

१. मूलप्रतौ गदि॰ विभंगमदि॰ भंगो इति पाँठः ।

श्रोराचि०श्रंगो०-वज्जरिसभ०-पसत्थ०-थिरादिछ० उनक० जह० श्रंतो०, उनक० तेत्तीसं० देस्०। श्रणु० जह० एग०, उनक० श्रंतो०। इत्थिवे०-तिरिनखगदि-चदु-संठा०-पंचसंघ०-तिरिनखाणु०-उज्जो० उनक० सोदभंगो। श्रणु० जह० एग०, उनक० तेत्तीसं सा० देस्०। णिरय-देवायु० उनक० श्रणु० णित्थ श्रंतरं। तिरिनख-मणुसायु० उनक० द्विदि० णित्थ श्रंतरं। श्रणु० जह० श्रंतो०, उनक० श्रमासं देस्०। णिरयगदि-देवगदि-चदुजादि-दोश्राणु०-श्रादान-थावरादि०४ उनक० द्विद० णित्थ श्रंतरं। श्रणु० जह० एग०, उनक० श्रंतो०। मणुसग०-मणुसाणु०-उचा० उनक० जह० श्रंतो०, उनक० वावीसं सा० देस्०। श्रणु० जह० एग०, उनक० तेत्तीसं सा० देस्०। वेउव्विय०-वेउव्वय० श्रंगो० उनक० णित्थ श्रंतरं। श्रणु० जह० एग०, उनक० वावीसं सा०। तित्थय० उनक० श्रणु० णित्थ श्रंतरं। श्रणु० जह० एग०, उनक० वावीसं सा०। तित्थय० उनक० श्रणु० णित्थ श्रंतरं।

२५१. गील-काऊ० पंचणा०-णवदंस०-सादासादा०-वारसक०-पुरिस०-छएणो-क०-मणुसग०-पंचिदि०-छोरालि०-तेजा०-क०--समचदु०--छोरालि०छंगो०--वज्जरि--सभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०--झगु०४--पसत्थ०--तस०४--थिराथिर--सुभासुभ--सुभग--सुस्सर-झादे०-जस०-अजस०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जह० झंतो०, उक्क०

संहनन, प्रशस्त विहायोगति ग्रौर स्थिर ग्रादिक छह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तरअन्तर्मुहूर्त है श्रोर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्रुष्ट अन्तर अन्तमु हुर्त है। स्त्रीवेद, तिर्यञ्चगति, चार संस्थान, पांच संहन्न, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर उद्योतके उत्कृप्ट स्थितिवन्घका भङ्ग साता प्रकृतिके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्घका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृप्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। नरकायु श्रीर देवायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रमु स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है । तिर्यञ्चायु ग्रौर मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर अन्त-मुं हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छह महिना है। नरक्गति, देवगति, चार जाति, दो त्रानुपूर्वी, त्रातप, स्थावर त्रादि चारके अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम वाईस सागर है। श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। वैकियिक शरीर श्रौर वैक्रियिक त्राङ्गोपाङ्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्घका त्रम्तरकाल नहीं है। त्रानुत्कृष्ट स्थितिवन्घका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वाईस सागर है। तीर्थंङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रतुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

२४१. नील श्रौर कापोतलेश्यावाले जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, छह नोकषाय, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कामंणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रौदारिक श्राक्षेप, तैजस शरीर, कामंणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रौदारिक श्राक्षेप।क्ष, वज्जर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति,

सत्तारस-सत्तसाग० देस् । अणु० जह० एग०, उनक० अंतो० । थीणगिद्धि० ३मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४-इत्थि०-णुवुंस०-तिरिक्खग०-पंचसंदा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उनक० णाणाव०भंगो ।
अणु० दिदि० जह० एग०, उनक० सत्तारस-सत्तसाग० देस् । णिरय-देवायु०
उनक० अणु० णित्थ अंतरं । तिरिक्ख-मणुसायु० किण्ण०भंगो । णिरयगदिदेवगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव-थावरादि०४ उनक० दिदि० णित्थ अंतरं ।
अणु० जह० एग०, उनक० अंतो० । वेजिव्व०-वेउव्व०अंगो० उनक० णित्थ
अंतरं । अणु० जह० एग०, उनक सत्तारस-सत्तसाग० । तित्थय० उनक० दिदि०
जह० अंतो०, उनक० तिण्णि साग० सादि० । अणु० जह० एग०, उनक अंतो० ।
णीलाए उनक० णित्थ अंतरं । अणु० जह० एग०, उनक अंतो० ।

२५२. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०-सादासादा०-वारसक०-पुरिस०-छएणोक०-मणुसग०-पंचिदि०-त्रोरालिय-तेजा०-क०-समचढु०-त्रोरालि०द्रंगो०-वज्जरिसभ०-वएण०४-पणुसाणु०-त्रगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-

श्रयशःकीर्ति, निर्माण, उचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिवन्घका जघन्य श्रन्तर अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृप्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर व कुछ कम सात सागर है। श्रनुत्कृष्ट स्थितियन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, ग्रनन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुं सकवेद, तिर्यञ्चगति, पांच संस्थान, पांच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगिति, दुर्भग, दुस्वर, श्रनादेय श्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जधन्य ग्रन्तर एक समय है और उत्कृप्ट ग्रन्तर कुछ कम सत्रह सागर व कुछ कम सात सागर है। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध्का श्रन्तर काल कृष्ण लेश्याके समान है। नरकगित, देवगित, चार जाति, दो श्रानुपूर्वी, श्रातप ग्रीर स्थावर ग्रादि चारके उत्कृष्ट स्थितवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिक शरीर और वैकियिक ग्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। ग्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर सत्रह सागर व सात सागर है। तीर्थंद्वर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। श्रमुत्कृप्र स्थितियन्यका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्र श्रन्तर श्रन्तर्मु हुर्त है। किन्तु नील लेश्यामें उत्क्रप्ट स्थितिवन्घका श्रन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृप्ट स्थि-तिवन्यका जघन्य ग्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहर्त है।

२४२. पीत लेश्यामें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेद-दनीय, वारह कपाय, पुरुपवेद, छह नोकपाय, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रौदारिक शरीर श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ज धभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, शुभ, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकोर्ति, श्रयशःकीर्ति, निर्माण, श्रादे ० - जस० - श्रजस० - शिमि० - तित्थय० - उच्चा० - पंचंत० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० वे साग० सादि० । श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । थीणगिद्धि० ३ - मिच्छ० - श्रायांताणुवंधि० ४ - हत्थि० - एवं स० - तिरिक्खग० - एइंदि० - पंचसंठा० - पंचसंघ० - तिरिक्खाणु० - श्रादा० - राजा० - श्रापसत्थ० - दूमग - दुस्सर - श्राणादे० - एविचा० उक्क० याणा-व० मंगो । श्रणु० जह० एग०, उक्क० वे साग० सादि० । तिरिक्ख० - मणुसायु० उक्क० द्विदि० एत्थि श्रंतर । श्रणु० जह० श्रंतो०, उक्क० छम्मासं देसूणं। देवायु० - श्राहारस०२ उक्क० श्रणु० एत्थि श्रंतर । देवगदि० ४ उक्क० एत्थि श्रंतर । श्रणु० जह० पत्थि श्रंतर । स्वणु० जह० पत्थि सादि०, उक्क० वेसाग० सादि० । पम्माए सो चेव मंगो । एवरि सगदिदी काद्वा । एइंदिय० - श्रादाव - श्रावर च वज्ज० ।

२५३. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-वारसक०-सत्तणोक०-मणु-सग०--पंचिदि०--त्रोरात्ति०--तेजा०--क०--समचदु०--त्रोरात्ति०श्रंगो०--वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०--त्रगु०४-पसत्थ०--तस०४--थिराथिर--सुभासुभ--सुभग--सुस्सर--त्रादे०-जस०-त्रजस०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रद्वारस साग० सादि०। श्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। थीणगिद्धि०३-

तीर्थंद्वर, उच्चगोत्र ग्रीर पांच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुंहूर्त है ग्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुं हुर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अन्तरानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, पांच संस्थान, पांच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्ची, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुस्वर, श्रमादेय ग्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तरकाल श्रानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट श्र्तर साधिक दो सागर है। तिर्यञ्चायु ग्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ग्रीर उत्कृष्ट श्रम्तर कुछ कम छह महीना है। देवायु ग्रीर श्राहारक श्ररीर द्विकके उत्कृष्ट ग्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर साधिक उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्थ प्रमाण है ग्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। पद्मलेश्यामें यही मंग है। इतनी विशेषता है कि इनके अपनी स्थिति कहनी चाहिए। ग्रीर इनके एकेन्द्रिय जाति, ग्रातप ग्रीर स्थावर प्रकृतिका वन्ध नहीं होता।

२४३. शुक्कतेश्यामें पाँचः ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, वारह कषाय, सात नोकषाय, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्जर्षमनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रम, श्रगुभ, सुभग, सुस्तर, श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र श्रीर पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रौर

मिच्छ०-त्रणांताणुवंधि०४-इत्थि०--णवुंस०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--त्रणसत्थ०--दूभग--दुस्सर-त्र्रणादे०-णीचा० दुक्क० णाणाव०भंगो । त्रुणु० जह० एग०, उक्क० एक्कत्तीसं सा० देसू० । मणुसायु० देवभंगो । देवायु० उक्क० त्रुणु० णात्थि त्र्रांतरं । त्राहार०२ उक्क० द्विदि० णात्थि श्रंतरं । त्रणु० द्विदि० जह० उक्क० त्रंतो० । देवगदि०४ उक्क० णात्थि श्रंतरं । त्रणु० जह० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० ।

२५४. भवसिद्धिया श्रोघं । अन्भवसिद्धिया॰ मिद्रभंगो । सम्मादिद्दी॰ श्रोधि-भंगो । स्वइगसम्मा० पंचणा०-छदंसणा॰-सादासा॰-चटुसंज०-सत्तरणोक०- पंचिदिय-तेजा॰-क॰-समचदु॰-चएण॰४-अगु॰४-पसत्थिवि॰-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-जस०-श्रजस॰--णिमि०-तित्थय०-उच्चा॰-पंचंत० उक्क॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क० तेत्तीसं सा॰ सादि॰ । श्रणु॰ श्रोघं । श्रष्ठक० उक्क॰ णाणाव०-भंगो । श्रणु॰ श्रोघं । मणुस-देवायु॰ उक्क॰ णित्थ श्रंतरं । श्रणु॰ पगिदश्रंतरं । मणुसगिदपंचगस्स उक्क० द्विदि॰ जह॰ श्रंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं साग॰ देसु॰। श्रणु॰ जह॰ एग॰, उक्क० श्रंतो० । देवगिदि०४ उक्क० जह० श्रंतो॰। श्रणु॰

उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःखर, श्रनादेय श्रोर नीचगोत्र प्रकृतियांके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर द्वानावरण्के समान है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। मनुष्यायुके उत्कृप्ट श्रोर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर देवोंके समान है। देवायुके उत्कृप्ट श्रोर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर वहाँ है। श्राहारकद्विकके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्राहारकद्विकके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है। देवगितचितुष्कके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है श्रोर उत्कृप्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है।

२४४. भन्य जीवोंमें सव प्रकृतियोंके उत्कृप्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर काल श्रोधके समान है। श्रमन्य जीवोंमें मत्यक्षानियोंके समान है। सम्यग्दिएयोंमें श्रविध्वानियों के समान है। चायिक सम्यग्दिएयोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विद्यायोगित, श्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रास्थर, श्रास्थर, श्रास्थर, श्रास्थर, श्रास्थर, श्राम्भ, सुस्थर, श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उद्यगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंकेउत्कृष्ट स्थितवन्धका ज्ञन्तर श्रन्तर श्रन्तर भ्रत्ति है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। आठ कपायोंके उत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर ज्ञाचके समान है। अठत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका श्रन्तर काल प्रस्ति है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका ज्ञन्तर श्रम्तर श्रम्वर है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका ज्ञन्तर श्रम्तर श्रम्तर है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका ज्ञन्तर श्रम्तर श्रम्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। ग्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका ज्ञन्तर ज्ञन्तर प्रम्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर हित्ति सागर है। श्रमुत्कृष्ट स्थितवन्धका ज्ञन्तर ज्ञन्तर प्रम्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रम्तर

जह॰ एग०, उक्क॰ दो वि तेत्तीसं साग॰ सादि॰। आहार०२ उक्क॰ ऋणु॰ जह॰ ऋंतो०, उक्क तेत्तीसं साग० सादि॰।

२५५. वेदगे॰ पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदिय-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अग्र०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थय०-उचा०-पंचंत० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं। सादावे०-हस्स-रिद-थिर-सुभ-जस० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० छाविह्व० देसू०। अणु० ओघं। असादा०-अरिद-सोग-अथिर-असुभ-अजस० ओधिभंगो। दो आयु० उक्क० हिदि० जह० पित्तदो० सादि०, उक्क० छाविह साग० देसू०। अणु० ओधिभंगो। मणुसगदि-पंचगस्स ओधिभंगो। देवगदि०४ उक्क० हिदि० णित्थ अंतरं। अणु० जह० पित्तदो० सादि०, उक्क० तेत्तीसं साग०। आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०।

२५६. उवसम० पंचणा०-छदंसणा०-त्रसादा०-चदुसंज०-पुरिस०-ऋरदि-सोग-भय-दुगु'०-[पंचिदिय०-तेजा०-क०-समचदु०-वर्गण४-ऋगुरु०४--पसत्थवि०--तस०४--

श्रन्तमु हूर्त है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितवन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर पक समय है। तथा दोनों ही उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्त- मुंहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है।

२४४. वेदक सम्यक्तवमें पाँच श्वानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुण्सा, पञ्चिन्द्रय जाति, तैजस शरोर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, जसचतुष्क, सुभग, सुसर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उद्यगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। साता वेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, शुभ, और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जयन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर ओघके समान है। असाता वेदनीय, अरित, शोक, अस्थिर, अश्वभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर अवधिश्वानके समान है। दो आगुओंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जयन्य अन्तर आवधिश्वानके समान है। दो आगुओंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जयन्य अन्तर अवधिश्वानके समान है। मनुष्यगित पञ्चकके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर अवधिश्वानके समान है। मनुष्यगित पञ्चकके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर अवधिश्वानके समान है। देवगितवन्धको उत्कृष्ट स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जयन्य अन्तर तेतीस सागर है। आहारकिद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जयन्य अन्तर तेतीस सागर है। आहारकिद्वकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितवन्धका जयन्य अन्तर तेतीस सागर है। आहारकिद्वकके तेतीस सागर है।

२४६. उपशम सम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुण्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, श्रस्थिर, श्रशुभ, सुभग, सुसर, श्रादेय, श्रयशःकीतिं, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके

अथिर-असुभ-सुभग-सुस्तर-आदेय--अजस०--िएमिण-उच्चा०--पंचंत०] ओधिभंगो । सादावे०-हस्स-रिद्-थिर-सुभ-जस० तित्थय० उक्क० जह० उक्क० अंतो० । अणु० ओघं । अहक०-देवगदि०४ उक्क० हिदि० एत्थि अंतरं । अणु० जहएणु० अंतो० । मणुसगदिपंचग० उक्क० अणु० एत्थि अंतरं । आहार०२ उक्क० अणु० जह० उक्क० अंतो० ।

उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रविधिष्ठानके समान है। साता वेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, श्रम, यशःकीर्ति श्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञधन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रम्तर श्रम्तम् हूर्त है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रम्तर श्रोधके समान है। श्राठ कषाय श्रौर देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रम्तरकाल नहीं है। श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञधन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रम्तर श्रम्तम् हूर्त है। ममुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रम्तरकाल नहीं है। श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका ज्ञधन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रम्तरम् हुर्त है।

विशेषार्थ - यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरण पाँच स्रादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि इनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मिथ्यात्वके श्रिममुख हुए जीवके होता है। तथा इनके श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्भुहुर्त कहनेका कारण यह है कि जो जीव इनका कमसे कम एक समयके लिए श्रौर श्रधिकसे अधिक अन्तमु हूर्तके लिए श्रबन्धक होकर पुनः इनका वन्ध करता है उसके जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त उपलब्ध होता है। अवधिक्वानमें इन प्रकृतियोंका यह अन्तरकाल इसी प्रकार उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ यह श्रन्तरकाल अवधिक्षानके समान कहा है। साता वेदनीय श्रादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध खस्थानमें होता है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त श्रीर श्रनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान कहा है। श्राट कषाय श्रीर देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इस-लिए इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होनेसे वह नहीं कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त कहनेका कारण यह है कि जिस जीवने इनकी उपरामसम्यक्त्वमें बन्धव्युच्छित्ति की वह पुनः इनका वन्ध श्रन्त-र्मुहुर्त कालके बाद ही करता है। मनुष्यगतिपञ्चकका उत्कृप्ट स्थितिवन्ध मिथ्यात्वके श्रभि-मुख हुए जीवके होता है, इसलिए तो यहाँ इनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके श्रन्तरकालका निपेध किया है ग्रौर उपशमसम्यग्दि तिर्यञ्च ग्रौर मनुष्यके इनका वन्घ नहीं होता, इसिलए उपशमसम्यक्तवमें इनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके अन्तरकालका निपेध किया है। यद्यपि उपशमसम्यग्दिष्ट देव श्रौर नारिकयोंके इनका बन्ध होता है पर वहाँ मिथ्यात्वके श्रिभमुख होनेके पूर्वतक इनका अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध ही होता रहता है, इसलिए वहाँ भी इनके अनु-त्कृष्ट स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल सम्भव नहीं है। ग्राहारकद्विकके उत्कृष्ट ग्रीर ग्रनुत्कृष्ट -स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि जो प्रमत्तसंयमके अभिमुख जीव होता है उसके इनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है। पुनः उसके श्रप्रमत्त होनेपर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्घ होता है। इस प्रकार इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्तर्मुहूर्त उपलब्ध हो जाता है।

१. मूलप्रती श्रग्रु० जहयग्रु० जह० इति पाठः।

२५७. सासणे तिषिण त्रायु० उक्क० त्रणु० स्पत्थि श्रंतरं । सेसाणं उक्क० स्पत्थि श्रंतरं । त्रणु० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० ।

२५८. सम्मामि० सादासादा०-हस्स-रदि-त्रारदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस० त्रजस० उवसमसम्मादिहिभंगो । धुविगाएां उक्क० त्रणु० एत्थि त्रांतरं ।

२५६. मिच्छादिद्वी० मदिभंगो । सिएए० पंचिदियपज्जत्तमंगो । असएएी० चर्ढु-आयु० तिरिक्लोघं । वेडिव्वयछक्क-मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० [अणुक्क०] ओघं । सेसाएं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अएंतकालं० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आहार० मूलोघं । एवरि यम्ह अएंतकालं तिम्ह अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो । अणाहार० कम्मइगभंगो । एवं उक्कस्सयं अंतरं समत्तं ।

२४७. सासादनमें तीन ग्रायुश्रोंके उत्कृष्ट श्रीर ग्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्घका ग्रन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा ग्रमुत्कृष्ट स्थिति-वन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्भुहुर्त है।

विशेषार्थ—सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृप्ट काल छह त्राविल है। इसमें त्रायुकर्मके वन्धके दो त्रापकर्ष काल सम्भव नहीं हैं। इसिलए तो यहाँ तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु त्रौर देवायु इन तीन त्रायुत्रोंके त्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके त्रान्तरकालका निषेध किया है और एक पर्यायमें त्रायुकर्मका दो बार उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता नहीं, इसिलए यहाँ उक्त तीनों त्रायुत्रोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धके त्रान्तरकालका निषेध किया है।

२५८. सम्यग्मिथ्यात्वमें सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, हास्य, रित, श्ररित, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, श्रशुभ, यशकीितं श्रीर श्रयशकीितं उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध- का अन्तर उपशमसम्यग्दिष्ट जीवोंके समान है। तथा ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—प्रथम दराइकमें कही गई सातावेदनीय आदि सप्रतिपक्त प्रकृतियाँ हैं और सम्यग्मिथ्यात्वका काल उपश्मसम्यक्तवके समान अन्तर्मुहूर्त है, इसिलए यहाँ इन प्रकृतियों के उत्कृप्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपश्मसम्यक्तवके समान घटित हो जानेके कारण वह उपयमसम्यक्तवके समान कहा है। इनके सिवा यहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनका सतत बन्ध होता रहता है। उसमें भी इनका उत्कृप्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसिलए इनके उत्कृप्ट और अनुत्कृप्ट स्थितिवन्धका अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होनेसे उसका निपेध किया है।

२५९. मिथ्यादि जीवोंमें सव प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यश्वानियोंके समान है। संशी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। असंश्वी जीवोंमें चार आयुओंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। वैक्षियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका अन्तर ओवके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आहारक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोधके समान है। इतनी विशेषता है कि ओधमें जहाँ अनन्त काल कहा है वहाँ अङ्गुलका असंख्यातवां भाग कहना चाहिए। अनाहारकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग कार्मण्काययोगी जीवोंके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाल समाप्त हुआ।

२६०. जहएएए पगदं । दुविधं—श्रोघे० श्रादे० । श्रोघे० पंचएा०-चदुदंस० सादावे०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-तित्थय०-पंचंत० जह० हिदि० एत्थि श्रंतरं । श्रज० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । एदा-पचला-श्रसादा०-हस्स-रदि-श्ररदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वएए०४-श्रगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-श्रजस०-एिमि० जह० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रसंखेजा लोगा । श्रज० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । श्रीएगिद्धितियं मिच्छतं श्रएंताणुवंधि०४-इत्थि० जह० हिदि० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रसंखेजा लोगा । श्रज० जह० एग०, उक्क० वे छावहिसाग० देसू० । इत्थिवे० सादिरे० । एवं श्रहक० । एवरि श्रज० उक्क० पृज्वकोंदी देसू० । एवं स०-पंचसंदा०-पंचसंघ०-श्रप्सत्थ०-दूभग-दुस्सर-श्रणादे०-एविच० जह० जह० श्रंतो०, उक्क० श्रसंखेजा लोगा । श्रज० जह० एग०, उक्क० वे छावहिसाग० सादि० तिएए पलिदो० देसू०।

२६१. णिरयायु०-देवायु० जह० हिदि० [जह०] दसवस्संसहस्साणि सादि०, उनक० त्र्रणंतकालं०। अज० जह० अंतो०, उनक० त्र्रणंतकालं०। तिरिक्लायु०

२६०. अव जघन्य अन्तर कालका प्रकरण है। उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ ग्रौर ग्रादेश । ग्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुपवेद, यशःकीर्ति, तीर्थंकर श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-वन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रजधन्य स्थितिबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुर्त है। निद्रा, प्रचला, असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण-चतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रभ, श्रेशुभ, सुभग, सुखर, श्रादेय, श्रयशःकीति श्रीर निर्माण प्रकृतियौंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य त्रान्तर अन्तर्मुहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ज्ञन्तर एक समय है जौर उत्कृष्ट ज्ञन्तर अन्तर्मु हूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार श्रीर स्त्रीवेद प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सांगर है । किन्तु स्त्रीवेदके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छुवासठ सागर है। इसी प्रकार आठ कपायोंके जयन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल है। इतनी विशेषता है कि श्राठ कषायोंके त्रज्ञघत्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुखर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हुत है और उत्कृप्ट अन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो छुथासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है।

२६१. नरकायु श्रीर देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर साधिक दस हजार वर्ष है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है जो श्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर

जह० हिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि सादि०। अज० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुथचं। मणुसायु० जह० हिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। वेडिव्यछ० जह० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उक्क० तेविहसागरोवमसदं। मणुसग०-मणु-साणु० जह० हिदि० जह० अंतो०, अज० जह० एग०, उक्क० दो वि असंखेज्जा लोगा। चढुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं। ओरालि०-ओरालि० अंगो०-वज्जरिसभ० जह० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० तिरिण पिलदो० सादि०। आहार०२ जह० हिदि० जह० णित्थ अंतरं। अज० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० अद्योगगलपरि०। उच्चा० जह० हिदि० णित्थ अंतरं। अज० ज० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

एक समय कम जुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृप्ट ग्रन्तर साधिक दो हजार सागर है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर सी सागर पृथक्तव है। मनुष्यायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय कम जुल्लक भवग्रहण प्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है जो श्रसंख्यात पुद्रलपरिवर्तनप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। वैक्रियिक छहके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य स्थितवनधका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृप्ट अन्तर अनन्त काल है जो ग्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। ग्रजघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर दोनोंका ही उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक-प्रमाण है। चीर जाति, ग्रातप श्रीर स्थावर ग्रादि चारके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एक सी पचासी सागर है। श्रीदारिक शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वज्रर्षमनाराच संहननके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्त-र्भुहूर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्घका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन पत्य है। श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और उत्कृष् अन्तर श्रर्धपुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। उचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण श्रादि वाईस प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध च्रंपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धके ग्रन्तर कालका निषेध किया है। इनके ग्रज-घन्य स्थितिचन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त उपशमश्रेणिकी अपेतासे कहा है। तात्पर्य यह है कि जो जीव उपशमश्रेणिमें इन प्रकृतियोंका कमसे कम एक समयके लिए श्रीर श्रधिकसे श्रधिक श्रन्तर्मुहुर्तके लिए श्रवन्धक होकर पुनः इनका वन्ध करता है उसके इन प्रकृतियोंके श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त उपलब्ध होता है। निद्रा श्रादि बत्तीस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका वन्ध कमसे कम ग्रान्तर्मुहुर्त कालके बाद होता है, क्योंकि ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य वन्धकाल अन्तम् हुतं है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तरकाल श्रन्तर्महर्त कहा है श्रीर वादर पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंके ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल श्रसंख्यात लोक प्रमाण कहा है। तथा इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रन्तम् इर्त है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि इनके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुर्त है। मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्भहर्त है, इसलिए स्यानगृद्धि तीन आदि नौ प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है श्रीर वादर पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रसंख्यात लोक प्रमाण है इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इन प्रकृतियोंके उत्कृप्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय है, इसलिए इनके ग्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कहा है और मिथ्यात्वका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल कुछ कम छ्यासठ सागर है, इसलिए इनके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर प्रमाण कहा है। मात्र स्त्रीवेद सप्रतिपत्त प्रकृति है, इसलिए इसका यह ग्रन्तरकाल साधिक दो ब्रुयासठ सागर वन जानेसे वह उक्त प्रभाण कहा है। ग्रप्रत्याख्यानावरण चार ग्रौर प्रत्याख्यानावरण चार इन ग्राठ कपायोंका यह ग्रन्तर काल ग्रपनी विशेषताकी ध्यानमें रखकर इसी प्रकार प्राप्त होता है। मात्र संयमासंयम श्रीर संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्व कोटि प्रमाण होनेसे इनके अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। नपुंसक वेद ग्रादि सोलह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध कमसे कम ग्रन्तमु हुर्त कालतक ग्रीर श्रधिकसे श्रधिक श्रसंख्यात लोकप्रमाण कालतक नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य स्थिति-यन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भृहते प्रमाण श्रीर उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इसका स्पष्टीकरण पहले किया ही है। तथा इनका श्रजघन्य स्थितिवन्ध कमसे कम एक समय तक नहीं होता, और श्रधिकसे श्रधिक दो छ्यासठ सागर और कुछ कम तीन पत्य काल तक नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर दो छ्यासठ सागर तथा कुछ कम तीन पत्य कहा है। देवायु श्रीर नरकायुका जघन्य स्थितिवन्ध पञ्चेन्द्रिय पर्यात जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष कहा है श्रीर पञ्चेन्द्रिय पर्यप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है यह स्पष्ट हो है। तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुल्लकमवग्रहण प्रमाण है। श्रीर इसमेंसे एक समय जघन्य स्थितिवन्धमें लगता है इसलिए इसके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर

एक समय कम जुल्लकभव ग्रहण प्रमाण कहा है। तथा त्रस पर्यापकी उत्कृष्ट कायस्थिति दो हजार सागर है और एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है इतने कालुके भीतर तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिवन्ध नियमसे नहीं होता। यहां एक ऐसा जीव लो जिसने तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिवध किया है। इसके बाद वह क्रमसे त्रस पर्याप्त हो गया श्रीर श्रपनी कायस्थितिके भीतर उसने तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिवन्ध नहीं किया। पुनः वह पर्याप्त एकेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्पतक परिश्रमण करता रहा। इसके वाद वह श्रुपर्याप्तकों में उत्पन्न होता है श्रीर तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिवन्ध करता है, इसलिए यहां तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो हजार सागर कहा है। एक बार श्रायुवन्धके वाद पुनः दूसरी वार श्रायुवन्धमें कमसे कम श्रन्तमुहूर्त काल लगता है, इसलिए तिर्यञ्चायुके अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुर्त कहा है। तथा एक जीवके निरन्तर यदि तिर्यञ्चायुका वन्ध नहीं होता है तो सौ सागर पृथकत्व कालतक नहीं होता, इसके बाद वह नियमसे तिर्यञ्चायुका बन्ध करता है, इसलिए इसके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर सौ सागर पृथक्तव प्रमाण कहा है। मनुष्यगतिका उत्कृष्ट ग्रन्तर अनन्त काल है, इसिछए यहां मनुष्यायुके जघन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। शेष खुलासा तिर्यञ्चायुके समान है। वैक्रियिक छहके श्रज्ञंघन्य स्थितिवन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हुर्त है श्रीर जघन्य स्थितिवन्धका जघन्यकाल एक समय है। तथा एकेन्द्रियों श्रीर विकलत्रयमें श्रनन्त कालतक परिश्रमण करते हुए इनका वन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्ते, त्रज्ञचन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर अ**न**न्तकाल कहा है। तिर्यञ्चगति आदि तीनका जघन्य स्थितिबन्ध अनन्त काल तक नहीं होता और अज-घन्य स्थितिबन्ध एक सी त्रेसठ सागर कालतक नहीं होता। इसीसे इनके जघन्य स्थिति-वन्घका उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रनन्त काल ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिबन्घका उत्कृष्ट श्रन्तर एक सौ त्रेसठ सागर कहा है। शेष खुलासा वैकिथिक षट्कके समान है। अग्निकायिक ग्रौर वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतिद्विकका वन्ध नहीं होता श्रौर इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रसंख्यात लोकप्रमाण है, इसीसे इनके जघन्य श्रोर श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष स्पष्टी करण वैक्रियिकषट्कके समान है। सूक्ष्म जीवोंकी कायस्थिति श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। इनके चार जाति श्रादि नौ प्रकृतियोंका श्रोघ जघन्य स्थितिवन्ध नहीं होता और इनका अज्ञघन्य स्थितिबन्घ एक सौ पचासी सागर कालतक नहीं होता। इसीसे इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण और श्रजघन्य स्थितिबन्धका उरकृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर कहा है। एक जीव जो छुठवें नरकमें वाईस सागर प्रमाण श्रायुके श्रन्तमें चेदक सम्यग्दिए हुश्रा। पुनः कुछ कम छ्यासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्तवके साथ रहकर सम्यग्मिण्यादृष्टि हो गया। पुनः कुछ कम छ्र्यासठ सागर प्रमाण काल तक वेदक सम्यक्तवके साथ रहकर श्रन्तमें इकतीस सागरप्रमाण आयुके साथ नौ ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुग्रा। उसके एक सौ पचासी सागर काल तक चार जाति ग्रादि प्रकु-तियोंका वन्ध नहीं होनेसे इनके श्रजधन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर काल उपलब्ध होता है। तथा इसमेंसे प्रारम्भके बाईस सागर कम कर देने पर तिर्यञ्चगति श्रादि तीन प्रकृ-तियोंके अजधन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। शेष अन्तर कालका स्पष्टीकरण वैक्रियिकषट्कके समान है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके श्रौदारिक शरीर श्रादि तीन प्रक्र-तियांका श्रोघ जघन्य स्थितिबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट

२६२. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-भय-दुगुं०-पंचिदि०ओरालिय०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०:वएण०४-अगुरू०४-तस०४-णिमि०-पंचंत०
जह० अज० हिदि० एिथ अंतरं । थीणिगिद्धितियं मिच्छचं अणंताणुवंधि०४ जह०
हिदि० एिथ अंतरं । अज० जह० अंतो०, उनक० तेत्तीसं सा० देसू० । इत्थि०णवुंस०-दोगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सरअणादे०-णीचुच्चा० जह० हिदि० एिथ अंतरं । अज० जह० एग०, उनक० तेत्तीसं
सा० देसू० । सादासा०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-समचदु०-वज्जरिस०-पसत्थ०थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे० [-जस०-अजस०] जह० हिदि० एिथ अंतरं ।
अज० जह० एग०, उनक० अंतो० । दो आयु० जह० हिदि० एिथ अंतरं । अज०
हिदि० जह० अंतो०, उनक० अंतो० । दो तित्थय० जह० हिदि० एिथ अंतरं । अज०

अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है और मनुष्य सम्यग्दिष्ट इनका वन्ध नहीं होता, इसि लिए इनके अजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य कहा है। शेष अन्तर कालका स्पष्टीकरण वैकियिकषद्कके समान है। संयमका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अर्ध-पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है, इसिलिए आहारकद्विकके अजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्रलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा उधगोत्रका अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके वन्धका नहीं होता, इसिलिए इनके अजधन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२६२. आदेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, ग्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, ग्रौदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तराय प्ररुतियोंके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रनन्ता-नुवन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो त्रानुपूर्वी, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुखर, ग्रनादेय, नीचगोत्र श्रौर उचगोत्रके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्रुप्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, पुरुपवेद, हास्य, रति, श्ररति, श्रोक, समचतुरस्रसंस्थान, वजर्पभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगित, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर श्रोर श्रादेय, यशकोर्ति श्रोर श्रयशकोर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। दो आयुश्रोंके जघन्य स्थितिवन्घका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छह महीना है। तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन सागर है। श्रजघन्य स्थितियन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्त-

१. जह० श्रज० जह० द्विदि० इति पाठः ।

माए । एवरि सगिहदी भाषिदंग्वा । मणुसगिदितिगं सादभंगो । विदियादि याव छिंडि ति उक्कस्सभंगो । एवरि थीएगिद्धितियं मिच्छत्तं अएंताणुवंधि०४ जह० अज०जह० अंतो०, उक्क० तिएए-सत्त-द्रस-सत्तारस-वावीसं साग० देसू० । सत्तमाए एवं चेव ए। द्रवेव । एवरि तिरिक्खगिद-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-ए।चा० जह० अज० थीएगिद्धि-तियभंगो । मणुसगिदितिगं इत्थिभंगो ।

२६३. तिरिक्षेसु पंचणा०-छदंस०-सादासा०-ग्रहक०-सत्तणोक०-पंचिदि०-

मुँहूर्त है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए। तथा मनुष्यगित त्रिकका भङ्ग साता प्रकृतिके समान कहना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक उत्कृप्रके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चारके जघन्य और अजघन्य स्थितियन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृप्ट अन्तर कमसे कुछ कम तीन सागर, कुछ कम सात सागर, कुछ कम सल सागर, कुछ कम सलह सागर और कुछ कम बाईस सागर है। सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चानगृद्धी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर स्त्यानगृद्धित्रकके समान है। तथा मनुष्यगितित्रकका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारिकयोंमें श्रसंक्षी जीव मरकर उत्पन्न होता है श्रीर ऐसे नारकी जीवके उत्पन्न होनेके प्रथम व द्वितीय समयमें जघन्य स्थितिबन्ध होता है। इसीसे यहाँ दो त्रायु त्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनके इसके सिवा पाँच शानावरण आदि ४८ प्रकृतियोंका निरन्तर अजधन्य स्थितिवन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके अजधन्य स्थितिवन्धके अन्तर कालका भी निषेध किया है। नरकमें सम्यक्तवका जधन्य काल अन्तम् हुर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है श्रीर सम्यग्दप्रिके स्त्यानगृद्धि तीन श्रादि श्राठ प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता, इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। इसी दृष्टिको ध्यानमें रखकर यहाँ स्त्रीवेद त्रादि वाईस प्रकृतियोंके ग्रजघन्य स्थितवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। उच्चगोत्रका सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके वन्य नहीं होता, इसलिए इस अपेन्नासे इसके अजंघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा ये सब सप्रतिपन्न प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य ग्रन्तर एक समय कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है। प्रथम नरकमें यह व्यवस्था श्रविकल घटित हो जाती है, इसलिए इसमें सब प्रकृतियोंका कथन सामान्य नारिकयोंके समान कहा है। मात्र जहाँ कुछ कम तेतीस सागर कहा है वहाँ प्रथम नरककी स्थितिको ध्यानमें रखकर श्रन्तर कहना चाहिए। तथा यहाँ मनुष्यगतित्रिकका बन्ध मिथ्यादृष्टि श्रीर सम्यग्-्दि दोनोंके होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजधन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल साता प्रकृतिके समान कहा है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक उत्कृपके समान अन्तर-काल होनेका कारण यह है कि इन पृथिवियोंमें असंक्षी जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता। जिन प्रकृतियोंके सम्बन्धमें विशेषता है वह श्रलगसे कही ही है सो विचार कर जान लेना चाहिए।

२६३. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता वेदनीय, श्राठ कपाय, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र तेजा०-क०-समचढु०-वर्गण्०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-िएमि०-पंचंत० जह० द्विदि० जह० अंतो०, उक्क० असंसेज्जा लोगा। अज०, जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणिगिद्धितयं मिच्छतं अणंताणुवंधिचदुक्कं जह० द्विदि० णाणाव०भंगो। अज० जह० एग०, उक्क० तििएण पित्ति। देसू०। एवं इत्थिवे०। अपच्चक्खाणा०४-णवुंस-चदुजादि०-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०-अंगो०-इस्संघ०-आदाव०-अप्सत्थ०-थावरादि०४-द्भग-दुस्सर-अणादे० जह० द्विदि० णाणाव०भंगो। अज० द्विदि० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू०। तिरिण् आयु० जह० द्विदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी तिभागं देसू०। तिरिक्खायु० जह० द्विदि० जह० खुदा० समयू०, उक्क० पित्ति। असं०। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी सादि०। वेउिन्वयद्य०-मणुसग०-मणुसाणु० आंचं। उच्चा० मणुसाणु०भंगो। तिरिक्खाणु०-णीचागो०-उज्जो० जह० द्विदि० जह० अंतो०, उक्क० आणंत-कालं०। अज० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू०।

संस्थान, वर्णचतुष्क, ग्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, श्रश्चभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवनधका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुबन्धी चारके जघन्य स्थितिवन्ध-का श्रन्तर ज्ञानाचर एके समान है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है थ्रौर उत्कृप्ट ग्रन्तर कुछ कम तीन पल्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितियन्धका ग्रन्तरकाल जानना चाहिए। ग्रप्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, चार जाति, श्रीदारिक शरीर, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, श्रातप, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर ग्रादि चार, दुर्भग, दुस्वर श्रौर ग्रनादेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-वन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। तीन श्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिबन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम तीसरा भाग है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम श्रुलकभवग्रहण्यमाण है श्रीर उत्कृप्ट अन्तर पत्यके श्रसंख्यातवें भाग-प्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है। वैकियिक छह, मनुष्यगति श्रौर मनुष्यानुपूर्वीके जघन्य श्रौर श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका अन्तर श्रोघके समान है। उच्चगोत्रके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थिति-वन्धका ग्रन्तर मनुष्यानुपूर्वीके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र ग्रौर उद्योतके जघन्य स्थितियन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो श्रसंख्यात पुद्रल परिवर्तन प्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ-तिर्यञ्चोमं वादर एकेन्द्रिय पर्यप्तिकोंका उत्कृष्ट श्रन्तर काल श्रसंख्यात

२६४. पंचिदियतिरिक्ख०३ जह० द्विदि० जक्क०भंगो । अज० अणुक्क०भंगो । ण्विर तिरिक्खायु० जह० द्विदि० जह० खुद्दाभ० समयू०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । प्रजत्त-जोणिणीसु जह० द्विदि० जह० णित्थि अंतरं । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० सन्वपगदीणं जह० अज० द्विदि० उक्कस्सभंगो । ण्विर तिरिक्खायु० जह० द्विदि० जह० खुद्दाभ० समयू०, उक्क० अंतो० । अज० जह० उक्क० अंतो० । मणुसायु० जह० द्विदि० णित्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० अंतो० ।

लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियांके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चोमें वेदक सम्यक्तका काल कुछ कम तीन पल्य है इसलिए इनमें स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। यहाँ स्त्रीवेदकी स्थिति स्त्यानगृद्धि तीनके समान है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर स्त्यानगृद्धि तीनके समान कहा है। संयमासंयमका काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है और मनुष्योंमें वहीं उत्पन्न हुए सम्यक्त्वका काल भी इतना ही है इसलिए अप्रत्याख्यानावरण चार आदि इकतीसके अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृप अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण कहा है। तीन आयुओंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है तथा अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुत और उत्कृप अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है यह स्पप्ट ही है। तिर्यञ्चोंमें जो निरन्तर एकेन्द्रियोंमें परिश्रमण करते रहते हैं उनमें तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिवन्ध कम कम एक समय कम अञ्चकमवग्रहणके बाद और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके वाद नियमसे होता है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम ज्ञुञ्चकभवग्रहण्यमाण और उत्कृप अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पप्ट ही है।

२६४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तीनमें जघन्य स्थितिबन्धका ग्रन्तरकाल उत्कृष्टके समान है । इतनी विशेषता है कि ग्रीर ग्रजघन्य स्थितिबन्धका ग्रन्तरकाल ग्रनुत्कृष्टके समान है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय कम जुल्लकभवग्रहण प्रमाण है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर पूर्वकोटिपृथक्तवप्रमाण है । परन्तु पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त ग्रीर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तरकाल नहीं है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ग्रपर्याप्त जीवोंमें सव प्रकृतियोंके जघन्य ग्रीर ग्रजघन्य स्थितिबन्धका ग्रन्तरकाल उत्कृष्टके समान है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम श्रुक्तक भवग्रहण्प्रमाण है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मु हुर्त है । ग्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य कोर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मु हुर्त है । ग्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य कोर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मु हुर्त है । ग्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मु हुर्त है ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पत्य है। परन्तु तीन पत्यकी आयु प्राप्त होनेके बाद जीव नियमसे देव होता है। इसीसे यहाँ तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सामान्यसे पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है। इसमें पूर्वकोटि पृथक्त्व कालके प्रारम्भमें और अन्तमें तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध कराके यह अन्तर काल ले आना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२६५. मणुस०३ पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वर्गण०४-अगु०-उप०-ियाम०-तित्थय०-पंचंत० जह० हिदि० यात्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० अंतो० । थीणिगिद्धि०३-िमच्छ०-अर्णताणुविध०४ जह० हिदि० यात्थि अंतरं । अज० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० तिरिण पिलदो० देसू० । एवं इत्थि० । एवं अंतरं । अज० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देसू० । सादासा०-पुरिस०-हस्स-रिद-अरिद-सोग-देवगिद-पंचिदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्व०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-उच्चा० जह० हिदि० णित्थ अंतरं । अज० जह० एग०, [उक्क०] अंतो० । एवं स०-तिरिक्ख-मणुसगदि-चदुजादि-ओरा-लि०-पंचसंग०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पतत्थ०-शव-रादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० हिदि० णित्थ अंतरं । अज० हिदि० जह० पुन्वकोडी देसू० । तिरिणुआयु० जह० हिदि० णित्थ अंतरं । अज० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडितिभागं देसू० । मणुसायु० जह०

२६४. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तरमु हूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुवन्धी चारके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तम् हुर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पत्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके श्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। श्राठ कषायोंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्रुए श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। साता वेदनीय, ग्रसाता वेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, ग्ररति, शोक, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैकियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग, देवानु-पूर्वी, परघात, उङ्गास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, त्रस्थिर, ग्रुभ, त्रशुभ, सुभग, सुखर, आदेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति श्रौर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है। नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, चार जाति, श्रौदारिक शरीर, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर स्रादि चार, दुर्भग, दुःस्वर, स्रनादेय श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट् ग्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। तीन ग्रायुश्रोंके जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। मनुष्यायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर

१. मूलप्रतौ द्विदि० जह० गुल्यि इति पाठः ।

हिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । अज० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी सादि० । पज्जत्त-जोणिएणीसु मणुसायु० जह० द्विदि० एत्थि अंतरं । अज० हिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी सादि० । िएरयगदि-िएरयाणु० जह० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं । अज० हिदि० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू० । आहार०२ जह० हिदि० एत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं ।

२६६. मणुसञ्चपज्जत्ते धुविगाणं जह० अज० णित्थ अंतरं। तिरिक्खायु० जह० हिदि० णित्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। मणुसायु० जह० हिदि० जह० खुदाभ० समयू०, उक्क० अंतो०। अज० जह० उक्क० अंतो०। सेसाणं जह० हिदि० णित्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

एक समय कम जुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृप्ट श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहृतं है और उत्कृप्ट श्रन्तर साधिक एक पूर्वकोटि वर्षभाण है। किन्तु पर्याप्त और योनिनी मनुष्योंमें मनुष्यायुके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम् हूर्त है और उत्कृप्ट श्रन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। नरकगित और नरकगत्यानुपूर्विके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहृतं है और उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तवप्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव प्रमाण है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें कुछ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपकथ्रेणिमें होता है श्रीर जिनका चपकश्रेणिमें नहीं होता उनमेंसे चार श्रायुश्रोंको छोड़कर शेषका श्रसंक्षीचर मनुष्यके भवके प्रथम श्रीर द्वितीय समयमें होता है, इसलिए यहाँ जघन्य स्थितिवन्धमें श्रन्तर कालका निषेध किया है। शेष श्रन्तर कालका विचार सुगम है।

२६६. मनुष्य अपर्यात्तकों भें ध्रवबन्धवाली प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य स्थिति-वन्धका अन्तर काल नहीं है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अज-घन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त है। मनुष्यायुके जघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम जुल्लक भवप्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु -हुर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हुर्त है। शेष प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हुर्त है।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव मनुष्य अपर्याप्तकों में उत्पन्न होता है उसके उत्पन्न होने के प्रथम और द्वितीय समयमें दो आयुके बिना शेष प्रकृतियों का जघन्य स्थितिवन्ध होता है, इसिलए इनके जघन्य स्थितिवन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा जो अववन्धवाली प्रकृतियाँ हैं उनका इसके वाद निरन्तर अजधन्य स्थितिवन्ध होता रहता है इसिलए इनके अजध्य स्थितिवन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। परन्तु इनके सिवा जो सप्रतिपन्न प्रकृतियाँ हैं उनका अदल वदलके बन्ध होना सम्भव है, इसिलए उनके अजधन्य स्थितिवन्धका

२६७. देवेसु तित्थय॰ जह॰ हिदि॰ जह॰ श्रंतो०, उक्क॰ तेत्तीसं सा॰ देसू०। श्रज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ श्रंतो०। सेसाएां एएरयोघं। एवरि सग-हिदी॰। भवण०-वाणवेंत० पहमपुहिवभंगो। एवरि सागरो० सादि॰ पिलदो॰ सादि०। जोदिसिय याव सन्वद्व ति उक्कस्सभंगो। एवरि थीएगिद्धि॰३-मिच्छ०-श्रणंताणुवंधि०४ जह० श्रज॰ हिदि० जह०श्रंतो०, उक्क० श्रप्पण्यो हिदी०।

२६८.एइंदिए तिरिक्ल०४ [जहं०]जहं॰ श्रंतो॰, उक्क॰ श्रगंतकालं॰ श्रंगुलस्स श्रसं॰ संखेजाणि वाससहस्साणि श्रसंखेजा लोगा श्रंतोग्र॰। श्रज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ श्रंतो॰ यथासंखाए एइंदि०-वादर-वादरपज्जत-सुहुम-सुहुमपज्जत्ताणं। तिरिक्खायु॰ जह॰ द्विदि॰ जह॰ खुद्दाभव॰ समयू॰, उक्क॰ प्रतिदो॰ श्रसंखे॰। श्रज॰ श्रगुक्क॰-

अन्तर काल कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध हो जाता है, इसिलए शेप प्रकृतियोंके अजधन्य स्थितियन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

२६७. देवों में तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृप्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृप्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितवन्धका अन्तर नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थित कहनी चाहिए। भवनचासी और व्यन्तर देवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि साधिक एक सागर और साधिक एक पत्य कहना चाहिए। ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक उत्कृप्टके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चारके जघन्य और अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृप्ट अन्तर अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—देवोंमें तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिवन्ध प्रन्यतरके सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है, इसिलए यहाँ जघन्य स्थितिवन्धक। जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय
और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट हो है। मूलमें शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर नारिकयोंके समान कहकर अपनी स्थिति
कहनेकी सूचना की है सो इसका यह अभिप्राय है कि जिन प्रकृतियोंका मिथ्यादिष्ट और
सासादनदृष्टिके ही वन्ध होता है उनका नौश्रेवेयक तक, तिर्यञ्चगित आदिका सहस्रार कल्प
तक और एकेन्द्रिय जाति आदि तीनका पेशान कल्प तक वन्धका विधान करके इनका अन्तर
काल इस हिसावसे प्राप्त करे। शेष कथन सुगम है।

२६८. एकेन्द्रियोंमें एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर पर्यात एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय श्रीर सूद्रम पर्यात एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगित चतुष्कके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्त- मुं हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर क्रमसे श्रनन्त काल, श्रङ्गुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण, संख्यात हजार वर्ष, श्रसंख्यात लोकप्रमाण श्रीर श्रन्तमुंहूर्त है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय क्रम श्रुलक भवशहणप्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पत्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका भङ्ग श्रमुत्कृष्ठके समान है। तथा श्रेप प्रकृतियोंका भङ्ग

१. मूलप्रतौ श्रज० जह० द्विदि० इति पाटः।

भंगो। सेसाणं उक्तस्सभंगो। वादरे तिरिक्खायुग० एइंदियभंगो। सुहुम-वादरपज्जते तिरिक्खायु० जह० द्विदि० जह० रात्थि अंतरं। सेसं उक्तस्सभंगो। अपज्जत्ता० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। सुहुमे तिरिक्खायु० जह० द्विदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्त० पिलदो० असंखे०। अज० अणुक्त०भंगो। सेसाणं उक्तस्सभंगो। सञ्चाणं मणुसायु० जह० द्विदि० रात्थि अंतरं। अज० द्विदि० पगिदअंतरं।

२६६.वीइं०-तीइं०-चढुरिं० पज्जत्तापज्जत्ता ॰ उकस्सभंगो । एवरि तिरिक्खायु ० जह ॰ जह ॰ खुद्दाभव ॰ समयू ॰, उक्क ॰ द्विदि ॰ । पज्जत्ते ॰ जह ॰ द्विदि ॰ एत्थि अंतरं । अज ॰ द्विदि ॰ अगुक्क ॰ भंगो ।

२७०. पंचिदिय०२ खवगपगदीणं तित्थयरस्स जह० हिदि० स्पत्थि श्रंतरं। श्रज० श्रोघं। सिदापचला-श्रसादा०-हस्स-रिद-श्ररिद-सोग-भय-दुगुं०-देवगदि-

उत्कृष्टके समान है। वादरों में तिर्यञ्चायुका भङ्ग एकेन्द्रियों के समान है। सूदम जीवों में श्रीर वादर पर्याप्त जीवों में तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर काल नहीं है। तथा शेष भङ्ग उत्कृष्टके समान है। श्रपर्याप्तकों में तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकों के समान भङ्ग है। सूदम एकेन्द्रियों में तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम श्रुल्लक भवग्रहण प्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पल्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा श्रजघन्य स्थितवन्धका भङ्ग श्रजुत्कृष्टके समान है। तथा श्रेप प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इन सवके मनुष्यायुके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। तथा श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर प्रकृतिवन्धको श्रन्तर प्रकृतिवन्धको श्रन्तर काल नहीं है। तथा श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर प्रकृतिवन्धको श्रन्तर के समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत ग्रौर नीचगोत्र प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध ग्रियकायिक ग्रौर वायुकायिक जीवोंके होता है ग्रौर इनका उत्कृष्ट श्रन्तर अनन्त काल है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर श्रन्तत काल कहा है। तथा बादर एकेन्द्रियोंमें ग्रग्निकायिक ग्रौर वायुकायिक जीवोंका उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रङ्गलके ग्रसंख्यातवें भागप्रमाण, वादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्षप्रमाण, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें ग्रसंख्यात लोकप्रमाण ग्रौर सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें ग्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। इन सबके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२६९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें सव प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम श्लुलक भवग्रह्ण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है। इनके पर्याप्तकोंमें जघन्य स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अजुत्कृष्टके समान है।

२७०. पञ्चेन्द्रियद्विकमें चपक प्रकृतियोंके और तीर्थंङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजधन्य स्थितिवन्धका अन्तर काल ओघके समान है। निद्रा, प्रचला, असाता वेदनीय, हास्य, रित, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, देवगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक

पंचिदि०-वेडिव्य-तेजा०-क०-समचढु०-वेडिव्व्यंगो०-व्याण०४-देवाणु०अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-शिमि०
जह० हि० जह० अंतो०, उक० कायहिदी० | अज० जह० एग०, उक० अंतो० |
एविदि० जह० वंति०४ अज० उक० तेत्तीसं साग० सादि० | र्योरइय-देवायु० जह०
हिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि सादि०, उक० कायहिदी० | तिरिक्ख०-मणुसायु०
जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक० कायहिदी० | अज० सव्वाणं उक०भंगो |
पज्जत्तगे तिरिक्ख-मणुसायु० जह० र्यात्थ अंतरं | अज० पगदिअंतरं | आहार०२
जह० र्यात्थ अंतरं | अज० जह० अंतो०, उक० कायहिदी० | सेसाणं उकस्स-भंगो | पंचिदियअपज्जत्त० तिरिक्ख-मणुसायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक०
अंतो० | अज० जह० उक० अंतो० | सेसं उकस्सभंगो |

शरीर, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, त्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, त्रस्थिर, ग्रुम, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, श्रयशःकीर्ति श्रीर निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। श्रजघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्क्रप्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। नर-कायु ग्रौर देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट ग्रान्तर कायस्थितिप्रमाण है। तिर्यञ्चायु ग्रौर मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम भ्रुल्लक भवश्रहण्प्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा सवके ग्रजघन्य स्थितिवन्घका ग्रन्तर उत्क्रप्टके समान है। पर्यातकोंमें तिर्यञ्चायु ग्रौर मनुष्यायुक्ते जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजधन्य स्थितिवन्धका अन्तर प्रकृति-बन्धके श्रन्तरके समान है। श्राहारकद्विकके जघन्यस्थितिबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्चाय और मनुष्यायुके जघन्यस्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण्प्रमाण है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्त-र्भुहुर्त है। तथा शेष प्रकृतियांका भङ्ग उत्कृष्ट के समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय ग्रौर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें चपक प्रकृतियों ग्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसिलए इनके ग्रज्जघन्य स्थितिवन्धके ग्रन्तरकालका निपेध किया है। यहाँ निद्रा ग्रादि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध विशुद्ध परिणामों श्रे ग्रुसं जीवके होता है, इसिलए इनके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त ग्रीर जन्तर ग्रुन्तर ग्रुप्ती ग्रुप्ती ग्रुप्ती ग्रुप्ती ग्रुप्ती ग्रुप्ती ग्रुप्ती कायस्थिति प्रमाण कहा है। यहाँ कायस्थितिके प्रारम्भमें ग्रीर ग्रन्तमें ग्रसं श्रिप्ती कराकर उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल ले ग्राना चाहिए। देवगितिच्युक्तका देवोंके ग्रीर नारिकयोंके बन्ध नहीं होता, इसिलए इनके ग्रज्जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। मात्र इनके सिवा निद्रादि शेप प्रकृतियोंके ग्रज्जघन्य स्थितिवन्धका ग्रह्मिके ग्रिप्तिके बन्धमें ग्रिधिकसे ग्रिधिक ग्रन्तर्मुहूर्तका ग्रन्तर पड़ता है, इसिलए इन प्रकृतियोंके ग्रज्जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर्मुहूर्तक है। श्रेष कथन स्पष्ट ही है।

२७१. पुढविका० तिरिक्खायु० एइंदियभंगो । सेसं उक्कस्सभंगो । एवं पंच-कायाणं । तस०२ पंचिंदियभंगो । एविर सगिंदि भाणिद्व्या । तसत्रप्रजात्त० पंचि-दियत्रप्रजात्तभंगो ।

२७२. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भयहुगुं०-चहुत्रायु०-तिणिणसरीर०-ग्राहार०श्रंगो०-वण्ण०४-ग्रगु०-उप०-णिमि०तित्थय०-पंचंत० जह० ग्रज० णित्थ ग्रंतरं। णविर विच्जोगि०-ग्रसच्चमोस० पंचणा०णवदंस०-मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-ग्रगुरुलहु०-उपघा०णिमि० ग्रज० जह० एग०, उक्क० ग्रंतो०। सेसाणं जह० णित्थ ग्रंतरं। ग्रज० जह०
एग०, उक्क० ग्रंतो०।

२७३. कायजोगीसु खवगपगदीएां वेडिन्वयङ्गक-तित्थय॰ जह० एत्थि श्रंतरं। ग्रज० द्विदि० जह० एग०, एक्न० श्रंतो०। एएरय-देवायु० जह० श्रज० एत्थि

२७१. पृथिवीकायिक जीवोंमें तिर्यञ्चायुका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। शेष प्रकृतियों-का भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पाँच कायवाले जीवोंके जानना चाहिए। त्रस ग्रीर त्रस पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धके श्रन्तरकालका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रपनी स्थिति कहनी चाहिए। त्रस ग्रप्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय श्रपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

२७२. पाँचों मनोयोगी श्रौर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शना-वरण,मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुण्सा, चार श्रायु, तीन शरीर, श्राहारक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ण-चतुष्क, श्रगुरुल्घु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रौर पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि वचनयोगी श्रौर श्रसत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व वारह कपाय, भय, जुगुण्सा, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुल्घु, उपघात श्रौर निर्माण प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम द्राडकमें कहीं गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियों में कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका तथन्य स्थितिवन्ध च्रापकश्रेणिमें होता है और कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका जधन्य स्थितिवन्ध संयमके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयतके होता है, इसलिए इनके जधन्य और अजधन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। मात्र वचनयोगी और अनुभयवचनयोगी जीवोंमें पाँच द्र्शनावरण आदि प्रकृतियोंका जधन्य और अजधन्य स्थितिवन्ध द्वीन्द्रिय पर्याप्तके होता है, इसलिए इनके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेमें कोई वाधा नहीं आती, इसलिए यह उक्त प्रकारसे कहा है। यहाँ चार आयुओंके जधन्य और अजधन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है यह स्पष्ट ही है।

२०२. काययोगी जोवोंमें ज्ञपकप्रकृतियाँ वैक्रियिक छह ग्रौर तीर्थक्कर इन प्रकृतियोंके ज्ञान्य स्थितिवन्धका ग्रान्तरकाल नहीं है। ग्राज्ञधन्य स्थितिवन्धका ज्ञान्य ग्रान्तरएक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रान्तर ग्रन्तर्भुहूर्त है। नरकायु ग्रौर देवायुके जधन्य ग्रौर ग्राज्ञधन्य स्थितिबन्ध-

श्रंतरं। तिरिक्खायु॰ जह॰ हिदि॰ तिरिक्खोघं। श्रज॰ श्रणुक्तस्सभंगो। मणुसा॰ मूलोघं। तिरिक्खगदि०४ एइंदियभंगो। मणुसग०-मणुसाणु० जह॰ जह० श्रंतो०, श्रज॰ जह० एग०, जक्क० दोएएं पि श्रसंखेज्जा लोगा। एवं उच्चा०। एवरि जह० एतिथ श्रंतरं। सेसाएं जह० हिदि० जह॰ श्रंतो०, जक्क० श्रसंखेज्जा लोगा। श्रज॰ जह० एग०, जक० श्रंतो०।

२७४. श्रोरालियका० खवगपगदीणं ग्रेरइय-देवायु०-श्राहारदुग-तित्थय० जह० श्रज० णित्थ श्रंतरं । सादासादा०-पुरिस०-वेजिवयञ्चक-जसिग० जह० ग्रित्थि श्रंतरं । श्रज० [जह०] एग०, उक्क० श्रंतो० । तिरिक्ख-मणुसायु० जह० द्विदि० गित्थि श्रंतरं । श्रज'० पगदिश्रंतरं । तिरिक्खगदि०४ जह० द्विदि० जह० श्रंतो०, उक्क० तिण्णि वाससहस्साणि देस्र०। श्रज० जह० एग०, उक्क श्रंतो० । सेसाणं जह० जह०

का अन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चाय के जघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अजघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल मूलोधके समान है। तिर्यञ्चगित चारके जघन्य और अजघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल एकेन्द्रियोंके समान है। मनुष्यगित और मनुष्यग्ता गत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुं हुते हैं, अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका ही असंख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार उच्चगोत्रका जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके जघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेप प्रकृतियोंके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुं हुते है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुं हुते है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुं इते है।

विशेपार्थ—काययोगी जीवोंके प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिन्य क्षिण्य क्षिण क्षिण्य क्षिण्य क्षिण्य क्षिण क्षण क्षिण क्ष

२७४. श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें चपक प्रकृतियाँ, नरकायु, देवायु, आहारकद्विक श्रीर तीर्थं इर प्रकृतियों के जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, श्रुक्तावेदनीय, पुरुषवेद, वैक्रियिक छह श्रीर यशःकीर्ति प्रकृतियों के जघन्य स्थितवन्धका श्रम्तर काल नहीं है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रम्तर श्रन्तमुँ हुर्त है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायु के जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रम्तरकाल नहीं है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका श्रम्तरकाल प्रकृतिवन्धक श्रम्तरकाल के समान है। तिर्यञ्चनित्र चारके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रम्तर श्रम्तमुँ हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रम्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रम्तर श्रम्तमुँ हुर्त है। श्रेष प्रकृतियों के जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रम्तर श्रम्तमुँ हुर्त है। श्रेष प्रकृतियों के जघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रम्तर श्रम्तर श्रम्तमुँ हुर्त है

१. श्रज॰ जह॰ पगदि—इति पाठः ।

श्रंतो॰, उक्क॰ वावीसं वाससहस्साणि देस्र॰। श्रज॰ जह॰ एग०, उक्क॰ श्रंतो॰। २७५. श्रोरालियमि॰ उक्कस्सभंगो। केण कारणेण उक्कस्सभंगो ? येण वादर-एइंदिए वि श्रधापवत्तो वा से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि ति वा सामित्तं दिएणं तेण कारणेण उक्कस्सभंगो। एवरि दो श्रायु॰ तसश्रपज्जत्तभंगो।

श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हूर्त है।

विशेषार्थ-श्रौदारिककाययोगमें चपक प्रकृतियाँ, श्राहारकद्विक श्रौर तीर्थङ्कर प्रकृ तियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें होता है। तथा इसके सिवा अन्यत्र इस योगमें ग्रजघन्य स्थितिवन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिवन्धके ग्रन्तर-कालका निषेध किया है। इस योगमें नरकायु श्रीर देवायुके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर-काल नहीं है यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय, पुरुपवेद श्रीर यशःकीर्तिका जघन्य स्थिति-वन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वैकियिक छहका जघन्य स्थितिबन्ध सर्वविशुद्ध ग्रसंक्षीके होता है पर इसके योगपरिवर्तन होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके भी जघन्य स्थितिवन्धके ग्रन्तर कालका निषेध किया है। तथा ये सब प्रतिपच प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनके अजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्सुहर्तं कहा है। तिर्यञ्चगतिचतुष्कका जघन्य स्थितिवन्ध श्रिप्तिवायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके होता है श्रीर वायुकायिक जीवोंमें श्रीदा-रिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध वादरपृथिवीकायिक पर्याप्त जीवींके भी होता है श्रौर वहाँ श्रौदा-रिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कमं बाईस हजार वर्ष है। इसलिए यहाँ शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वोईस हजार वर्ष कहा है। शेष कथन सुगम है।

२७४. श्रीदारिक मिश्रकाययोगमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है। यहाँ उत्कृष्टके समान भङ्ग किस कारणसे है ? यतः वादर एकेन्द्रिय जीवमें भी श्रघः प्रवृत्त होता है श्रथवा तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त करेगो उसे जघन्य स्थितिवन्धका स्वामित्व प्राप्त होता है, इस कारणसे उत्कृष्टके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो श्रायुश्रोंका भङ्ग त्रसञ्जपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—श्रीदारिक मिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट स्थितवन्धके श्रन्तरकालका विचार दो प्रकारसे किया है। बादर एकेन्द्रिय जीवके भी वह प्रकार सम्भव है, इसिलए यहाँ भी सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर कोल उत्कृष्टके समान जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मात्र यहाँ बन्धको प्राप्त होनेवाली तिर्यञ्चायु ग्रीर मनुष्यायुके सम्वन्धमें कुछ विशेषता है। जिसका निर्देश मूलमें श्रलगसे किया ही है। बात यह है कि श्रपर्याप्त श्रवस्थाके वाद भवान्तरमें भी श्रीदारिक मिश्रकाययोगका सातत्य बना रहता है, इसिलए श्रस श्रपर्याप्तकोंमें उक्त दोनों श्रायुश्रोंके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धकां श्रन्तर काल कह श्रोये हैं उसी प्रकार वह यहाँ भी वन जाता है।

२७६. वेउव्विय०-वेडव्वियमि० डक्कस्सभंगो । आहार०-आहारमिस्स० मण-जोगिभंगो । कम्मइगका० डक्कस्सभंगो ।

२७७. इत्थिवेदे ॰ पंचणा ॰ —च दुदंस ० —च दुसंज ॰ - तित्थय ॰ - पंचंत ॰ जह ॰ अज ॰ णित्थ अंतरं । णिहा-पचला-असादा ॰ - हस्स-रिह-अरिह-सोग-भय-दुगुंच्छ - पंचिदियजा-दि-तेजा ० - क ॰ - समच दुं ॰ - व गण् ॰ ४ - अग्र ॰ ४ - पस्थिव ० - तस ॰ ४ - थिराथिर - स्र भासुभ - [स्र भग] - सुस्सरं ॰ - आदे ॰ - [अजस ०] - णिमि ॰ जह ॰ जह ॰ अंतो ०, जक ॰ पिलदोव म-सद्पुथ चं । अज ॰ जह ॰ एग ०, जक ॰ अंतो ०। थीणिगिद्धि ॰ ३ - भिच्छ ० - अणंताणु - वंधि ० ४ - इत्थि ॰ - एजुंस० - तिरिक्ख गदि - एइंदि ० - पंचसंग ० - तिरिक्खाणु ० - आदा छ जो ० - अण्यसत्थ ० - थावर - दूभग - दुस्सर - अणादे ० - णीचा ० जह ० अज ० जक स्स मंगो । अहक ॰ जह ० जह ० अंतो ०, जक ॰ पिलदो ॰ सद्पुध चं । अज ० जह ० एग ०, जक ॰ पुन्व को डी देसु ०। सादा वे ० - पुरिस ० - जस ० - उच्चा ० जह ० हिदि ॰ णित्थ अंतरं । अज ० जह ० एग ०, जक ० अंतो ०। णिरयायु ० जक स्स मंगो । तिरिक्स मणुसायु ० जह ० हिदि ० जह ० एग ०, जक ० योते ०। एज अणु ० मंगो । देवायु ० जह ० हिदि ० जह ० दसवस्ससहस्साणि सादि ०, जक ० पिलदो व मसद्पुध चं । अज ० हिदि ० जह ० दसवस्ससहस्साणि सादि ०, जक ० पिलदो व मसद्पुध चं । अज ० हिदि ० जह ० दसवस्ससहस्साणि सादि ०, जक ० पिलदो व मसद्पुध चं । अज ० हिदि ० जह ० दसवस्ससहस्साणि सादि ०, जक ० पिलदो व मसद्पुध चं । अज ० हिदि ० जह ० दसवस्ससहस्साणि सादि ०, जक ० पिलदो व मसद्पुध चं । अज ० हिदि ० जह ० दसवस्ससहस्साणि सादि ०, जक ० पिलदो व मसद्पुध चं । अज ० हिदि ० जह ० दसवस्ससहस्साणि सादि ०, जक ० पिलदो व मसद्पुध चं । अज ० हिदि ० जह ० दसवस्य सादि ० पिलदो व स्व व स्व

२७६. वैकियिक काययोग श्रोर वैकियिक मिश्र कायययोगमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है। श्राहारक काययोग और श्राहारक मिश्रकाययोगमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। तथा कार्मणुकाययोगमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

२७७. स्त्रीवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, तीर्थंकर श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। निद्रा, प्रचला, श्रसाता वेदनीय, हास्य, रति, श्ररति, शोक,भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, प्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, सुभग, सुखर, श्रादेय श्रयशः कीतिं, श्रीर निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्घका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है श्रोर उत्क्रप्ट अन्तर सौ पत्य पृथक्त्व है। श्रजघन्य स्थितवन्धको जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृप अन्तर अन्तर्म हूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, ग्रातप, उँघोत, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःखर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल उत्कृष्टके समान है। ग्राठ कपायोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमु हूर्त है ग्रीर उत्कृप्ट अन्तर सौ पत्य पृथक्त्व है। अजघन्य स्थितियन्यका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। साता वेदनीय, पुरुषवेद, यशकीर्ति श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिवन्घका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्घका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। नरकायुका भन्न उत्कृष्टके समान है। तिर्य-ञ्चायु ग्रौर मनुष्यायुके जघन्य स्थितिवन्धको ग्रन्तर काल नहीं है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धको श्रन्तर काल श्रनुत्रुपके समान है। देवायुके जघन्य स्थितिवन्घका जघन्य श्रन्तर साधिक

१. मूलप्रतौ सुस्तर० श्रादा० ग्रिमि० श्रादे० जह० इति पाठः ।

अणु॰भंगो । वेडिवियञ्जक ः तिरिएं जां० - सुहुम० - अपज्ज० - साधारं वर्ण जहरू अज० उक्क०भंगो । सणुसगदिपंचगस्स जहरू अज० उक्क०भंगो । आहार्०२ जहरू दिद्रि० सित्थ अंतरं । अज० जहरू अंतों०, उक्क० कायिद्दि ।

२७८: पुरिस॰ पंचणा०-चहुदंस०-चहुसंज०-पंचंत० जह० अज० एिथ अंतरं। थीणिगिद्धि॰ ३-मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४-इत्थि०-णुबुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्प-सत्थ०-हूमग-हुस्सर-अणादे०-णीचागो० जह० अज० उक्कस्सभंगो। णिद्दा-पचला-असादा०-हस्स-रिद-अरिद-सोग-भय-हुगुं०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचहु०-वएण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-अणार्द०-अजस०-णिमि० जह० हिदि० उक्कस्सभंगो। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। [अहक०

अन्तर काल अनुत्कृष्टके समान है। वैकियिक छह, तीन जाति, सृक्ष्म अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके जधन्य और अजधन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगति पञ्चकके जधन्य और अजधन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। आहारकद्विकके जधन्य और अजधन्य काल नहीं है। अजधन्य स्थितिबन्धका जधन्य अन्तर अन्त मुद्दते है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ- स्त्रीवेदमें प्रथम द्राडकमें कही गई प्रकृतियोंका ज्ञवन्य स्थितिवन्ध् चपक-श्रेणीमें होता है श्रीर इसके सिवा श्रन्यत्र श्रजघन्य स्थितिवन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रौर अजघन्य स्थितिबन्धंके श्रन्तरकालका निपेध किया है। मात्र तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध ्उपशम् श्रेगीमें प्राप्त होता है पर यहाँ इसके भी जघन्य और ग्रजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इसका भी निषेध किया है। स्रीवेद की उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण है । जिस ग्रसंही स्त्रीवेदी जीवने इसके प्रारम्भ में और अन्तमें जघन्य स्थितिबन्ध किया और मध्यमें अजघन्य स्थितिबन्ध कियां उसके दूसरे दण्डकमें कही गई निद्रा ग्रांदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रान्तर्काल सौ पत्यपृथक्तव उपलब्ध होता है इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। ब्राठ कषायोंके जंघन्य स्थितिवन्धका उत्कृप्ट अन्तर इसी प्रकार ले ग्राना चाहिये। तथा संयमास्यम और संयमका उत्हुए काल कुछ कम एक पूर्वकोटि होनेसे यहाँ श्राठ कवायोंके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। क्योंकि संयमासंयममें अप्रत्याख्यानावरण चारका और संयममें प्रत्याख्यानावरण चारका बन्ध नहीं होता। सातावेदनीय आदि चार प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अन्तर-कालका निषेध किया है। फिर भी ये सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ है इसीलिए इनके श्रजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालके उपलब्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती । सामान्यतः प्रतिपत्त प्रकृ-तियोंके श्रजघन्यं स्थितिवन्धकां जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मुहूर्तं प्राप्त होता है, इसलिए यह उक्तप्रकारसे कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२७८. पुरुषवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रीर पाँच अन्तरायके जघन्य और अज्ञावन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्ताजु-वन्धी चार, खीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, नपुंसकवेद, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, हुमैंग, दुखर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य श्रीर अज्ञावन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल उत्कृषके समान है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, हास्य, रित, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा,

जि० जह० श्रंतो०, उक्क० सागरोवमसदपु०। श्रज० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देस्०।] सादावे०-पुरिस०-जस०-तित्थय०-उच्चा० जह० एतिथ श्रंतरं। श्रज० दिदि० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। णिरयायु० उक्क०भंगो। तिरिक्ल-मणुसायु० जह० दिदि० एत्थि श्रंतरं। श्रज० श्रणुक्क०भंगो। देवायु० जह० जह० दसवस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० कायिद्वदि०। श्रज० दिदि० पगिदिश्रंतरं। णिरयगदि-चदुजा०-णिरयाणु०-श्रादाव-थावरादि०४ उक्कस्सभंगो। तिरिक्लगदि-तिरिक्लाणु०-उज्जो० जह० श्रज० उक्कस्सभंगो। मणुसगदि-पंचगस्स जह० श्रज० उक्कस्सभंगो। देवगदि०४ जह० श्रज० उक्कस्सभंगो। श्राहार०२ जह० एत्थि श्रंतरं। श्रजे० जह० श्रंतो०, उक्क० कायिद्दिवि०।

पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभं, सुभग, सुखर, त्र्रनादेय, श्रयशःकीर्ति श्रौरं श्रौर निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। श्रजधन्य स्थितिबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है। श्राठ कपायोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्महुर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर सौ सागर पृथक्तव है। ग्रजघन्यं स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृप्ट ग्रन्तर कुंछ कम एक पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, पुरुपवेद, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर श्रीर उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर ग्रन्त-र्मुहुर्त है । नरकायुके जघन्य श्रोर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर उत्कृष्टके समान हैं। तिर्यञ्चायुं श्रीर मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरंकाल श्रदुत्कृएके समान है। देवायुके जधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर साधिक दस हजार वर्ष है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायंस्थितिप्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थिति-वन्धका अन्तरकाल प्रकृतिवन्धके अन्तरकालके समान है। नरकगति, चार जाति, नरक-गत्यानुपूर्वी, ग्रातप ग्रीर स्थावर ग्रादि चार प्रकृतियोंके जघन्य ग्रीर ग्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल उत्कृष्टके समान हैं। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर उद्योत प्रकृतियीके जघन्य ग्रौर ग्रंजघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य श्रीर श्रजधन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर उत्कृष्टके समान है। देवगतिचतुष्कके ज्यन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर उत्क्रप्रके समान है। श्राहारकंद्रिकके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदमें पांच ज्ञानावरण श्रादि प्रथम दएडकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें श्रपने अपने वन्धके श्रन्तमें होता है। श्रन्यत्र श्रजघन्य स्थितिवन्ध होता है, इसिलए इनके जघन्य श्रोर श्रजघन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निपेध किया है। सातावेदनीय श्रादि पांच प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसिलए इनके जघन्य स्थितिवन्धका तो निपेध किया है पर तीर्थक्कर प्रकृतिके सिवा इनके सप्रतिपच प्रकृतियाँ होतेके कारण इनके श्रजघन्य स्थितिवन्धके प्राप्त होनेमें कोई वाधा नहीं श्राती इसिलये उसका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्भंदर्भ कहा है।

२७६. णबुंस० पंचणा०-चढुदंस०-चढुसंज०पंचंत० जह० अज० णित्थ अंतरं। थीणिगिद्धि० ३-मिन्छ०-अणंताणुवंधि०४-इत्थि०-णाबुंस०-पंचसंग०-पंचसंग०-अण-सत्थिव०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० दिदि० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस्व०। णिहा-पचला-असादा०-हस्स-रिद-अरिद-सोग-भय-दुगुं०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचढु०-वण्ण०४-अगुरू०४-पसत्थिवि०-तस०४-थिराथिर-सुभा-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमि० जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सादा०-पुरिस०-जस० जह० अज० ओघं। दो आयु०-वेजिवयञ्जक०-मणुसग०-मणुसाणु० ओघं। तिरिक्लायु० जह० जह० खुहाभव० समयू०, उक्क० सागरोवमसर्दपुथचं। अज० ओघं। देवायु० तिरिक्लाघं। तिरिक्लग०-तिरिक्लाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० दिदि० जह० अंतोस्व०, उक्क० अणंतकालं०।

तथा उपशमश्रेणिमें मरणकी श्रपेक्षा तीर्थंद्वर प्रकृतिके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तात्पर्य यह है कि जो उपशमश्रेणिमें एक समयके लिए श्रवन्धक होकर मरता है श्रीर देव होकर पुनः बन्ध करने लगता है उसके एक समय श्रन्तरकाल उपलब्ध होता है श्रीर जो श्रन्तर्मुहूर्त श्रवन्धक होकर मरता है श्रीर देव होकर पुनः वन्ध करने लगता है उसके श्रन्तर्मुहूर्त अन्तरकाल उपलब्ध होता है। श्राहारकद्विकका भी जधन्य स्थितिवन्ध चपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है। इसलिए इसके जधन्य स्थितिवन्धके श्रन्तरकालका निषेध किया है। तथा श्रेष कथन स्पष्ट ही है।

२७६. नपुं सकवेदमें पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रीर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्घका श्रन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पांच संस्थान, पांच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर श्रनादेय श्रीर नीचगोत्र प्रकृतियोंने जघन्य स्थितिबन्ध का अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। निद्रा, प्रचला, श्रसातावेदनीय, हास्य, रित, श्ररति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र-वर्णचतुष्क, त्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, श्रयशःकोर्ति श्रौर निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्सुहूर्त है। सातावेदनीय, पुरुषवेद श्रौर यशःकीर्तिके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। दो श्रायु, वैकियिक छह, मनुष्यगति श्रौर मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल एक समय कम चुल्लकभवग्रह्ण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त है। ग्रजघन्य स्थितिबन्धका ग्रन्तरकाल ग्रोघके समान है। देवायुके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्घका श्रन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, उद्योत श्रौर नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर-मुं हुर्त है और उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रनन्त काल है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर ग्रमुत्कृष्टके

अज ० अण ॰ भंगो । चढुजादि-आदाव-थावरादि ०४ जह ० ओघं । अज ० अण ० भंगो। अोराज्ञि ०-ओराज्ञि ० अंगो०-वज्जरिसभ० [जह ०] ओघं। अज ० जह ० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू०। अहक ० जह० अज ० ओघं। आहार ०२ जह० हिदि० णित्थि अंतरं। अज ० ओघं। तित्थय० उक्कस्सभंगो।

२८०. अवगदवे॰ सगपगदीएां जह० हिदि॰ एात्थि श्रंतरं। श्रज० जह० उक्त० श्रंतो॰।

२८१. कोधादि०४ खनगपगदीएां चढुत्रायु०-त्राहार०२ जह० अञ० एात्थि

समान है। चार जाति, श्रातप श्रीर स्थावर श्रादि चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर श्रजुत्कृष्टके समान है। श्रीदारिक श्रादीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपङ्ग श्रीर वर्ष्ण पमनाराचसंहननके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका ज्ञान्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्राठ कवायोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। तीर्थङ्गर प्रकृतिके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदमें प्रथम दण्डकमें कही गई पांच ह्यानावरण श्रादि प्रकृतियों के ज्ञान्य श्रीर श्रज्ञाचन्य स्थितवन्धके श्रन्तरकालके न होनेका स्पष्टीकरण जिस प्रकार पुरुपवेदमें कर श्राये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये। नपुंसकवेदमें सम्यक्त्वका उत्रुप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है श्रीर सम्यक्त्वके सद्भावमें स्थिवेद श्रादि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता, इसलिए इनके श्रज्ञाचन्य स्थितिवन्धका उत्रुप्ट श्रन्तरकाल श्रुछ कम तेतीस सागर कहा है। वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका उत्रुप्ट श्रन्तरकाल श्रसंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहां निद्रा श्रादि तीसरे दण्डकमें कहीं गई प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्रुप्ट श्रन्तरकाल श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। वादर श्रिनकायिक पर्याप्त श्रीर वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका उत्रुप्ट श्रन्तरकाल श्रनन्त काल है, इसलिए यहां तिर्यञ्चगिति श्रादि तीन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्रुप्ट श्रन्तर श्रनन्तकाल कहा है। कर्मभूमिज मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चके उसी पर्यायमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वका उत्रुप्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, श्रीर इसके श्रीदारिक श्रारीर श्रादि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहां है। श्रेष कथन स्पप्ट ही है। स्थितिवन्धका उत्रुप्ट श्रन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। श्रेष कथन स्पप्ट ही है।

२८०. श्रपगतवेदमें श्रपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृप्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें अपनी सच प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध चपक श्रेणिमें उपलब्ध होता है, इसिलए इनके जघन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है तथा उपनाम श्रेणिमें अपगतवेदीके अपनी प्रकृतियोंका अन्तर्भुहर्त काल तक वन्ध नहीं होता, इसिलए यहां अजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्भुहर्त कहा है।

२८१. क्षोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चपक प्रकृतियां, चार आयु और आहारक-द्विकके जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि मान्- श्रंतरं । एवरि माणस्स कोधसंज॰ श्रज॰ जह॰ एग०, एक० श्रंतो० । एवं मायाए दो संजल॰, लोभ॰ [चत्तारि] संजल० । सेसाएं जह० द्विदि० एत्थि श्रंतरं । श्रज॰ जह० एग०, एक० श्रंतो० ।

२८२. मदि-सुद्० पंचणा०-णवदंसणा०-सादासा०-मिच्छ०-सोलसक०-अहणो-क०-पंचिद्य-तेजा०-क०-समचढु०-वरण्०४-अगुरू०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० जह० हि० जह० अंतो०, उक्क० असंखेजा खोगा । अज० जह० एग०, े उक्क० अंतो०। .णवुंस-खोरालि०-

कषायमें कोध संज्वलनके अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार माया कषायमें दो संज्वलनोंका और लोभकपायमें चार संज्वलनोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। तथा चारों कषायोंमें शेप प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—चारों कषायों में चारों श्रायुश्रोंका श्रंजघन्य स्थितिवन्धं श्रन्तंरके साथ दो वार सम्भव नहीं है और जघन्य स्थितिवन्ध एक बार ही होता है इसलिए तो इनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धके श्रन्तरकालका निर्षेध किया। श्रीर जपक प्रकृतियों श्रीर श्राहा-रकद्विकका जघन्य स्थितिवन्ध चपक श्रेणिमें होता है। साथ ही उपशम श्रेणिमें कषायोंके रहते हुए चपक प्रकृतियोंकी बन्धन्युच्छित्त नहीं होती। यद्यपि श्राहारकद्विककी वन्धन्यु-च्छित्ति हो जाती है पर उपशमश्रेणि पर चढ़ते श्रीर उतरते हुए कषायमें परिवर्तन होता है श्रौर उपशान्तमोहमें कपायका श्रभाव हो जाता है इसलिए इन चारों कपायोंमें न तो चपक प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल उपलन्ध होता है श्रीर न श्राहाः रकद्विकके ही जघन्य श्रौर अजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल उपलब्ध होता है, इसलिए यहां इसका निषेध किया है। यहां शेष प्रकृतियोंका एक कपायमें दो वार जघन्य स्थितिवन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। पर जिसके एक कपायमें कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहर्त के लिए सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध होता है उसके अन्य सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महुर्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। यहां मानकपायमें क्रोधसंज्वलनके, मायाकपायमें क्रोध श्रीर मान संज्वलन-के श्रीर लोकषायमें कोध, मान माया श्रीर लोभ संज्वलनके श्रजघन्य स्थितिबन्धका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है वह उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेचासे जानना चाहिए। कारण स्पष्ट है।

२८२. मत्यद्वान श्रीर श्रुतद्वानमें पांच द्वानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, श्रुसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलहकषाय, श्राठ नोकषाय, पञ्चिन्द्रिय जाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, श्रुगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रुस्थिर, श्रुम, श्रुशुम, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशकीर्ति, श्रुयशकीर्ति, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्भुहुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर्भहर्त है। नपुंसकवेद, श्रीदारिकशरीर, पाँच संस्थान, श्रीदारिक

पंचसंठा०-त्रोरात्ति०त्रंगो०-छस्संघ०-त्र्यपसत्थ०-दूभग-दुस्सर-त्र्रणादे० जं० हि० श्रीघं। श्रज ः जह ॰ एग ॰, उक्क ॰ तिएए। प्रित्ते ॰ देसू ॰। च दुश्राधु-वेउ विवयस्क-मणुंसग०-मणुसाणु॰ श्रोघं। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० हिदि० श्रोघं। अज , जह , एग , उक एकत्तीसं साग । सादि । चढुजादि-आदाव-थावरादि ०४ जहुं अज् णुवुं संगभंगो । णीचागो । ज हिं श्रोघं । श्रज जह एग , उर्क तिरिए पिल्दो॰ देसू॰। उच्चा॰ जह॰ अज॰ जह॰ अंतो॰ एग॰, उक्क॰ असं-खेजा लोगा।

२८३. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलस्क०-भय-दुर्ग ०--णिरय-

श्राङ्गोपाङ्ग, छुद्द संहनन, श्राप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःखर श्रीर श्रनादेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल श्रोधके समान है। श्रजधन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पत्य है। चार श्रायु, वैकियिक छह, मनु-ध्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रीघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी ग्रौर उद्योत प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्यका ग्रन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक इकतीसं सागर है। चार जाति श्रातप श्रीर स्थावर श्रादि चार प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नपुंसकवेदके समान है। नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पत्य है। उद्यगोत्रके ज्ञावन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मुहुर्त और एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनों का ग्रसंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ-इन दोनों ग्रज्ञानोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जवन्य स्थितिवन्ध वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके होता है श्रीर इनकी कायस्थित श्रसंख्यात लोक प्रमाण है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरं ग्रसंख्यात लोक प्रमाण कहा है। यहाँ कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रोर श्रन्तमें जघन्य स्थितिवन्ध करा कर यह श्रन्तर-काल ले ग्राना चाहिए । नपुंसकवेद ग्रादि दूसरे दएडकमें कही गई प्रकृतियोंका भोगभूमिमें वन्ध नहीं होता, इसिलए यहाँ उनके अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका कुछ कम तीन पत्य श्रन्तरकाल कहा है। यहाँ इन प्रकृतियोंके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका यह श्रन्तरकाल इसी प्रकार कहा है। यह तीन पत्यमें कुछ कम कहा यह विचारणीय है। नीचगोत्रके श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए। तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृ-तियोंका बारहवें कल्पके अपर वन्ध नहीं होता ग्रौर वहाँ दोनों ग्रक्षानोंका उत्कृष्ट काल इक-तीस सागर है। इसीसे यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तरकाल साधिक सागर कहा है। ये सप्रतिपच प्रकृतियाँ होनेसेयह साधिक काल्वन जाता है। जिस बाद्र पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवने कायस्थितिके श्रादिमें श्रीर श्रन्तमें उद्यगोत्रका जघन्य स्थितिवन्ध किया उसके तो इसके जघन्य स्थितिवन्धका श्रसंख्यात लोक प्रमाण उत्कृष्ट श्रन्तरकाल उपलब्ध होता है तथा श्रग्निकायिक श्रौर वायुकायिक जीवोंके इसका वन्घ नहीं होनेसे श्रजघन्य स्थितिवन्धका उक्ते प्रमाण उत्कृष्ट श्रन्तरकाल उपलब्ध होता है । इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है । रिक्स

२८३. विभङ्गह्मानमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यांत्व, सोलह कपाय, भय,

देवायु॰-तेजा॰-क॰-वएए।०४-अगु॰-उप॰-िएिम॰-पंचंत० जह० अज० एिथ अंतरं। सादा॰-पुरिस०-हस्स-रिद्-वेजिवयछ०-चढुजादि-समचढु॰-वज्जरिसअ०-पर०-उस्सा० उज्जो०-पसत्थ०-तस०-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय॰-साधारए।-थिरादिछक-एीचु-च्चा० ज० द्विदि० एिथ अंतरं। अज० जह० एग०, जक० अंतो०। असादा०-इत्थि०-एवुंस०-अरिद्-सोग-पंचसंटा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० जह० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देस्०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्त-मणुसायु॰ एिरयोघं। एइंदि०-आदाव-थावर०जह० जह० अंतो०, उक्क० वेसाग० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोगदि-ओरालि०-ओरालि०-आंगो०-दोआगु० ज० द्वि० एतिथ अंतरं। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०।

जुगुप्सा, नरकायु, देवाय्, तैजसशरीर, कार्मणशरीर वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, वैक्रियिक छह, चार जाति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्जर्षभनाराचसंहनन, परघात, उङ्घास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, प्रपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण, स्थिर ग्रादि छह, नीच गोत्र श्रीर उच्चगोत्र प्रकु-तियोंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, श्ररति, शोक, पांच संस्थान, पांच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर श्रस्थिर श्रादि छहके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्त-मु हूर्त है । तिर्यञ्चायु श्रौर मनुष्यायुके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर सामान्य नारिकयोंके समान है। एकेन्द्रिय जाति, श्रातप और स्थावरके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तसु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक दो सागर है। ग्रजधन्य स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। दो गति, औदारिक शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर दो आनुपूर्वीके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है।

विशेषार्थ—विमङ्गलानमें नरकायु श्रीर देवायुके सिवा प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए यहां इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निपेध किया है। नरकायु श्रीर देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है यह तो स्पष्ट ही है। इसी प्रकार इनके अजघन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका यथायोग्य अभाव जान लेना चाहिए। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनके अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकालका निषेध किया है। इनके अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकालका निषेध किया है। इनके अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल स्पष्ट ही है। जो नारकी भवके प्रारम्भमें पर्याप्त होने पर असातादि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध करके पुनः भवके अन्तमें बन्ध करता है उसके इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर उपलब्ध होनेसे वह उक्ष प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२८४. श्राभि०-सुद्०-श्रोधि० पंचणा०-अदंसणा०-सादा०-चहुसंज०-पुरिस०हस्स-रिद-भय-दुगुं०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचहु०-वएण्०४-श्रारु०४-पसत्थ०तस०४-थिरादिछक-णिभि०-तित्थय०-उचा०-पंचंत० ज० हिदि० एिथ श्रंतरं। श्रज०
जह० एग०, उक० श्रंतो०। एवरि णिहा-पचला श्रज० ज० उक० श्रंतो०। श्रसादा०श्ररिद-सोग-श्रथर-श्रसुभ-श्रजस० जह० [जह०] श्रंतो०, उक० काविहसाग०
सादि०। श्रज० जह० एग०, उक० श्रंतो०! श्रहक० ज० हि० ज० श्रंतो०,
उक० बाविहसाग० सादि०। श्रज० ज० श्रंतो०, उक० पुन्वकोडी देसू०। दो
श्रायु० उक्तस्सभंगो। मणुसगदिपंचगस्स ज० हि० ज० श्रंतो०, उक० बाविहसाग०
सादि०। श्रज० ज० एग०, उक्त० पुन्वकोडी० सादि०। देवगदि०४-श्राहार०२
ज० हि० एिथ श्रंतरं। श्रज० ज० श्रंतो०, उक० तेत्तीसं सा० सादि०।

२८४. श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रौर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय-जाति, तेजसरारीर, कार्मणुशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु४, प्रशस्तविहायी-गति, त्रसचतुष्क, स्थिर त्रादि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर, उचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि निद्रा ग्रीर प्रचलाके ग्रजघन्य स्थितियन्थका जघन्य ग्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर ग्रन्तमुँहूर्त है। श्रसातावेदनीय, ग्ररित, शोक, श्रस्थिर, श्रश्चभ श्रौर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहुर्त है ग्रीर उत्कृप्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। श्राठ कषायोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक छवासट सागर है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। दो ग्रायुत्रोंका भङ्ग उत्कृप्टके समान है। मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य त्रान्तर त्रान्तर्मुहूर्त है त्रौर उत्कृष्ट अन्तर साधिक छुवासठ सागर है। त्रज्ञघन्य स्थितिवन्ध-का जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। देवगति चतुष्क श्रौर श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। श्रजधन्य स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुद्धर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

निशेपार्थ—इन तीन हानोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध च्रापकश्रेणिमें होता है, इसिलए इनके जघन्य स्थितिवन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा इनमेंसे कुछ तो सान्तर प्रकृतियां है, सव नहीं हैं, फिर भी उपशम श्रेणिमें मरणकी अपेचा इनके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अपेचा इनके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर मुद्दित उपल्वध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। इतनी विशेषता है कि आठवें गुणस्थानके जिस भागमें निद्रा और प्रचलाकी व्युच्छित्ति होती है वह मरणसे रहित है इसिलए इनके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त कहा है। जिस जीवने सम्यक्त्वको प्राप्त कर प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें असाता आदिका जघन्य स्थितिवन्ध किया। पुनः वह साधिक छन्यासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तमें पुनः प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें जघन्य स्थितिवन्ध किया उसके असाता आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका गुणस्थानमें जघन्य स्थितिवन्ध किया उसके असाता आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका

२८५. मणपज्ज० पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-देवगदि— पंचिदि०-तिण्णिसरीर-समदु०-वेउन्वि०श्रंगो०-त्रण्ण०४-देवाणु०-श्रगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-णियि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० ज० णित्थ श्रंतरं। श्रज० ज० उक्क० श्रंतो०। सादा०-हस्स-रिद्-थिर-सुभ-जस० ज० णित्थ श्रंतरं। श्रज० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। श्रसादा०-श्ररिद-सोग-श्रथिर-श्रसुभ-श्रजस० ज० ज० श्रंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देसू०। श्रज० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। देवायु० उक्कस्सभंगो। श्राहार०२ ज० हि० णित्थ श्रंतरं। श्रज० ज० उक्क० श्रंतो०। एवं संजदाणं।

उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर उपलब्ध होनेके कारण वह उक्क प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आठ कपायों के जयन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक छ्यासठ सागर ले आना चाहिए। मात्र इनका जयन्य स्थितिवन्ध अविरत सम्यग्दिए और संयतासंयत जीवके करा कर यह अन्तरकाल लाना चाहिए। यहां इनके अजयन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोठि कहा है। सो यह अन्तर इतने कालतक संयतासंयत और संयत रख कर लाना चाहिए। मनुष्यगतिपञ्चकके जयन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी साधिक छ्यासठ सागर तक सम्यग्दिए रखकर प्राप्त करना चाहिए। मात्र इस कालके प्रारम्भमं और अन्तमं देव और नारकीके जयन्य स्थितिवन्ध कराकर इसे लाना चाहिए। आहारकद्विकका जयन्य स्थितिवन्ध स्थितवन्ध कराकर इसे लाना चाहिए। आहारकद्विकका जयन्य स्थितवन्ध स्थितवन्ध करके ग्रीर मर कर तेतीस सागरकी क्षायुके साथ देव होता है और वहांसे आकर अप्रमत्त संयत होकर पुनः आहारकद्विकका वन्ध करता है उसके इनके अजयन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेके कारण वह उक्क प्रमाण कहा है। शेप कथन सुगम है।

२८५. मनःपर्ययज्ञानमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्ला, देवगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक ण्राङ्गो-पाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, श्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र श्रीर पांच श्रन्तराय प्रकृतियोंके ज्ञघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अज्ञघन्य स्थितिवन्धका ज्ञघन्य श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तरकाल श्रन्त-प्रीहर्त है। सातावेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, ग्रुम श्रीर यशःकीर्ति प्रकृतियोंके ज्ञघन्य स्थितिवन्धका श्रम्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है। श्रसातावेदनीय, श्ररित, श्रोक, श्रस्थिर, श्रग्रुम श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है। श्रमातावेदनीय, श्ररित, श्रोक, श्रस्थिर, श्रग्रुम श्रीर श्रयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है। श्रमात्व स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है। देवायुका भङ्ग उत्कृप्टके समान है। श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है। देवायुका भङ्ग उत्कृप्टके समान है। श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मनःपर्ययद्यानमें प्रथम द्राडकमें कही गई पांच झानावरण ग्रादि प्रकृतियों का जघन्य स्थितिवन्ध चपक श्रेणिमें होता है, इसिलए इनके जघन्य स्थितिवन्धके श्रन्तर कालका निपेध किया है। मनःपर्ययद्यानमें इन प्रकृतियोंकी वन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर पुनः श्रन्तर्मुहुर्तके वाद इनका वन्ध होता है इसिलए यहाँ इनके श्रज्ञधन्य स्थितिवन्धका जधन्य

२८६. सामाइ॰-छेदो॰ धुविगाणं ज० अज॰ हि० णित्थ अंतरं । तित्थयरं धुविगाणं भंगो। सेसाणं मणपज्जवभंगो। परिहार॰ सन्वपगदीणं जह० ज० अंतो०, उक्क॰ पुन्वकोडी देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सुहुमसांपराइ० सन्वपगदीणं जह० अज० णित्थ अंतरं। संजदासंजदा० धुविगाणं ज० अज० णित्थ अंतरं। परियत्तमाणियाणं संजदभंगो। आयु० परिहारभंगो।

२८७, असंज॰ पंचणा॰-छदंसणा॰-सादासा०-वारसक॰़-[सत्तणोक०-]पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरू०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिभि०-पंचंत०ज० अज० मदि०भंगो। थीणगिद्धि०३-भिच्छ०-अणंताणुवंधि०४--इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-

श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त कहा है। यहाँ सातावेदनीय श्रादिका भी जघन्य स्थितिवन्ध स्वपक श्रेणिमें होता है, इसलिए इनके भी जघन्य स्थितिवन्धके श्रन्तर कालका निपेध किया है। इनके श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृप्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त स्पप्ट ही है। ग्रसाता वेदनीय श्रादिका जघन्य स्थितिवन्ध प्रमत्तसंयतके होता है। जो मनःपर्ययद्यानके प्राप्त होनेके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें इनका जघन्य स्थितिवन्ध करता है उसके इनके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्व कोटि प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। संयम मार्गणाके कथनमें मनःपर्ययद्यानके कथनसे कोई श्रन्तर नहीं है इसलिए इसमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल मनः-पर्ययद्यानके समान कहा है। श्रेष कथन स्पप्ट ही है।

२८६. सामायिक संयत श्रीर छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ध्रुववन्ध प्रकृतियोंके समान है। श्रेप प्रकृतियोंका भंग मनःपर्ययक्षानके समान है। परिहारिवशिद्ध संयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्भुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक पूर्वकोटि है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्भुहूर्त है। श्रुजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रीर सव प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। परावर्तमान प्रकृतियोंका मङ्ग जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। परावर्तमान प्रकृतियोंका मङ्ग संयतोंके समान है श्रीर दोनों श्रायुश्रोंका भङ्ग परिहारिवशुद्धि संयत जीवोंके समान है।

विशेपार्थ—इन सब संयमोंमें सब प्रकृतियोंका जो अन्तरकाल कहा है उसे स्वामीका विचार कर ले आना चाहिये। विशेष बात न होनेसे यहाँ हमने अलग-अलग स्पष्टीकरण नहीं किया है।

नहा । जया ह । २८७. श्रसंयत जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसाता २८७. श्रसंयत जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, श्रसात वेदनीय, समचवेदनीय, वारह कषाय, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचवेदन तुरक्ष संस्थान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगित, श्रसचतुष्क, स्थिर, श्रिस्थर, श्रुम अश्रुम, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति, निर्माण श्रीर पांच श्रन्तराय प्रश्चात्योंके ज्ञान्य श्रीर श्रज्ञान्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल मत्यज्ञानियोंके समान है। स्त्यानियोंके ज्ञान्य श्रीर श्रज्ञान्य स्थितिवन्ध गृह्वितीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पांच संस्थान, पांच संहनन, श्रप्रशस्तविहायोगिति, दुर्भग, दुःस्वर श्रीर श्रनादेय प्रकृतियोंके ज्ञान्य स्थितिवन्ध संहनन, श्रप्रशस्तविहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर श्रीर श्रनादेय प्रकृतियोंके ज्ञान्य स्थितिवन्ध

दुस्सर-अणादे० ज० श्रोघं । श्रज० णवुंसगभंगो । चदुश्रायु०-वेउन्वियञ्च०-मणुसग०मणुसाणु०-उच्चा० मदि०भंगो । तिरिक्खगदि०४ ज० हि० जह० श्रोघं । श्रज० जह०
एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । चदुजादि—श्रादाव-धावरादि०४ णवुंसगभंगो ।
श्रोरालि०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरि० श्रोघं । तित्थय० ज० णित्थ श्रंतरं । श्रज० जह० उक्क० श्रंतो० ।

२८८. चक्खु० तस्पज्जत्तभंगो । अचक्खु० मूलोघं । ओधिदं० ओधि-णाणिभंगो ।

२८६. तिषिणलेस्साणं पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-वारसक०-सत्तणोक०-णिरयगदि-देवगदि-पंचजादि-श्रोरालि०-तेजा०-क०-समचढु०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्ज-रिसभ०-वण्ण०४-दोश्राणु०-श्रगुः०४-[श्रादाव-]पसत्थ०-तस०४- [थावर०४] थिरा-थिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-जस०-श्रजस०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० ज० हि० णित्थि श्रंतरं। श्रज० ज० एग०, उक्क० श्रंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-श्रणंताणु-वंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख-मणुसग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोश्राणुपु०-उज्जो०-

का अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। चार आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भक्ष मत्यज्ञानियोंके समान है। तिर्यञ्चगित चतुष्कके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर ओघके समान है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छुछ कम तेतीस सागर है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारका भक्ष नंपुंसक वेदी जीवोंके समान है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रपंभनाराच संहनन का भङ्ग श्रोधके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुते है।

विशेषार्थ—सातवें नरकमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर होनेसे यहाँ अजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यहाँ तीर्थ द्वर प्रकृतिका वन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इसके जधन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

२८८. चजुद्रशैनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। त्रवश्चदर्शनवाले जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। त्रविदर्शनवाले जीवोंमें अवधिक्रानियोंके समान भङ्ग है।

२८९. तीन लेश्याओं में पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, वारह कषाय, सात नोकषाय, नरकगित, देवगित, पांच ज्ञाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्जपंभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क दो त्रानुपूर्वी, त्रगुरुलघु चतुष्क, ग्रातप, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थावर चतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रश्चम, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, यशःकीर्ति, त्रयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर और पांच अन्तराय प्रकृतियोंके जधन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्थञ्चगित, मनुष्यगित, पांच संस्थान, पांच संहनन, दो न्रानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग,

१. मुलप्रती श्रगु० ४ श्रपसत्थ० तस ४ इति पाठः ।

अप्पसत्थ॰-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचुचा॰ जह॰ द्विदि॰ णित्थ अंतरं। अज १० जह० एग॰, उक्क॰ तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरो॰ देस्०। णिरय-देवायु० जह० अज० णित्थ अंतरं। तिरिक्ख-मणुसायु० णिरयभंगो। वेडिव्व॰-वेडिव्व॰अंगो॰ जह० द्विदि॰ णित्थि अंतरं। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ वावीसं सत्तारस सत्त साग॰। णविर णील-काऊए मणुसग०-मणुसाणु०-उचा॰ पढमदंडगे भाणिद्व्वं। काऊए तित्थय॰ जह॰ जह० अंतो॰, उक्क॰ तिणिण साग० सादि॰। अज० जह'० एग०, उक्क० अंतो॰।

दुःस्वर, श्रनादेय, नीचगोत्र श्रीर उच्च गोत्र प्रकृतियों के ज्ञघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सत्र सागर श्रीर कुछ कम सात सागर है। नरकायु श्रीर देवायुके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नारिकरोंके समान है। विकिथिक श्ररीर श्रीर वैकिथिक श्राङ्गोपङ्गके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर वाईस सागर, सत्र सागर श्रीर सात सागर है। इतनी विशेषता है कि नील श्रीर कापोत लेश्यामें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रको प्रथम दण्डकमें कहना चाहिए। कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितवन्यका जघन्य अन्तर श्रन्तमुँ हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन सागर है। श्रज्ञघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मुहुर्त है।

विशेषार्थ-सुष्ण लेश्यामें सम्यक्त्वका उत्कृप्ट काल कुछ कम तेतीस सागर, नील लेश्यामें कुछ कम सत्रह सागर श्रौर कापोत लेश्यामें कुछ कम सात सागर है। इसीसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिके श्रजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर इन लेश्याश्रोंमें उक्ष प्रमाण कहा है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण लेक्यामें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर एच्चगोत्रके ग्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्क्रप्ट अन्तरकाल मध्यमें कुछ कम तेतीस सागरतक मिथ्यादृष्टि रखकर ले ग्राना चाहिये। कारण कि सातवें नरकमें इन तीन प्रकृतियोंका मिथ्या दृष्टिके चन्ध नहीं होता। तथा नील और कापोत लेश्यामें इनका वन्ध मिथ्यादृष्टिके भी होता है। यही कारण है कि मूलमें इन दोनों लेश्याओं में इन प्रकृतियोंका प्रथम दण्डक के साथ कथन करनेकी सूचना की है। यहां तीनों लेश्याश्रोमें जो जीव नरकगितमें जाता है ग्रीर वहांसे ग्राता है उसके इन छेश्यात्रोंके सद्भावमें नरकगित, देवगित, नरकानुपूर्वी श्रीर देवानुपूर्वीका बन्ध नहीं होता। इसीसे यहां इन तीन लेश्याश्रोमें इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है और अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रान्तर एक समय ग्रीर उत्कृष्ट ग्रान्तर ग्रान्तर्मु हुर्त कहा है। तथा इसी प्रकार सातवें नरकमें जानेवाले जीवके कृष्णलेश्यामें वैकियिकद्विकका बन्ध नहीं होता। इन तीन लेश्याश्रोमें छठवें नरकतक जानेवाले जीवके नरक जानेके पूर्व श्रौर वहांसे श्रानेके वाद इन लेश्याश्रोंमें श्रवश्य ही इन दोनों प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध सम्भव है। इसीसे इन तीन लेश्याश्रोमें इन दोनों प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितियन्घका उत्कृष्ट श्रन्तर क्रमसे वाईस सागर, सत्रह सागर श्रौर सात सागर कहा है। श्रेप कथन सुगम है।

१. मूजप्रती जह ० जह ० एग० इति पोठः ।

२६०. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४अगुरु०४--वादर-पज्जत्त-पतेय-णिमिण्-तित्थय०-पंचंत० ज० णितथ अंतरं।
अज० ज० एक० अंतो०। अथवा जह० एग०, एक० अंतो०। थीणिमिद्ध०३मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४ जह० द्विदि० णितथ अंतरं। अज० जह० अंतो०, एक० वेसाग० सादि०। सादासा०-पुरिस०-हस्स-रिद-अरिद-सोग-पंचिदि०-समचढु०-पसत्थिव०-तस०-[थावर०-] थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाएजो०-अप्सत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० अंतो०, एक० वेसाग० सादि०। अठक० वेसाग० सादि०। तिरिक्ख-पणुसा० देवोघं। मणुसगदिपंचग० जह० पग०, एक० वेसाग० सादि०। तिरिक्ख-पणुसा० देवोघं। मणुसगदिपंचग० जह० जह० अंतो०, एक० वेसाग० सादि०। सादि०। सादि०। सादि०। पण्ठसाव० पादि०। पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव०। पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव०। पण्ठसाव० पण्ठसाव० पण्ठसाव०। पण्ठसाव० पण्ठसाव०। पण्ठसाव० पण्ठसाव०। पण्ठसाव० पण्ठसाव०। पण्यसाव०। पण्यसाव०। पण्यसाव०। पण्यसाव०। पण्यसाव०। पण्यसाव०। पण्यसाव०। पण्यसाव

२९०. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मेणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण, तीर्थंङ्कर श्रीर पाँच श्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रज-घन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रोर उत्क्रप्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्रथवा जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तमु हुतं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व ग्रौर ग्रनन्तानुवन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, श्रसाता-वेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, श्ररति, शोक, पञ्चेन्द्रिय जाति, संमचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिर, ग्रस्थिर, ग्रुभ, ग्रिशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीति, श्रयशःकीर्ति श्रीर उच्चगोत्र प्रकृतियोके जधन्य स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है, अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-मुंहूर्त है। अग्रेट क्पाय, देवायु और आहारकद्विकके जधन्य और अजधन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, पांच संस्थान, पांच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, ज्ञातप, उद्योत, अप्रशस्तिवहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय ग्रीर नीच गोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तरकाल ग्रन्तमु हूर्त है और उत्कृप्ट अन्तरकाल साधिक दो सागर है। अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृए अन्तर साधिक दो सागर है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक द्रो सागर है। ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृप्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। देवगतिचतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृप्ट अन्तर साधिक दो सागर है। इसी प्रकार पद्म लेक्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रपनी स्थिति कहनी चाहिए। तथा पञ्चेन्द्रिय जाति श्रीर त्रसंकाय ये दो प्रकृतियाँ प्रथम दण्डकमें सम्मिलित कर लेनी चाहिए।

१. मूलप्रती जह० श्रद्भ० भंती० इति पाठः।

२६१. स्रकाए पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-सत्तणोक०-पंचिदियतेजा०-क०-समचदु०-वएण०४-अगुरु०४-[आदाव-] पसत्थ०--तस०४-थिराथिर-स्रभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिम०-तित्थय०-उचा०-पंचंत० जह०
दिदि० णित्थ अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४ जह० दिदि० णित्थ अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० एक्क्तीसं०
देस् ० । अद्धक०-देवायु० जह० अज० णित्थ अंतरं । इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०पंचसंघ०-अप्पस्तथ०-दूभग-दुस्सर-अणादे० जह० अज० जह० अंतो० एग०,

विशेषार्थ-पीतलेश्यामें प्रथम दग्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध सर्वविशुद्ध ग्रप्रमत्तसंयतके होता है ग्रीर इस लेश्याके कालके भीतर दूसरी वार जघन्य स्थितियन्थके योग्य परिणाम उपलब्ध नहीं होते, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धके प्रन्तरकालका निषेध किया है। तथा यहाँ इन प्रकृतियोंके ग्रजधन्य स्थिति-वन्धका काल दो प्रकारसे वतलाया है सो इसका कारण यह प्रतीत होता है कि जो अप्रमत्तसंयत जीव क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय स्थितिवन्धापसरण करते हुए इन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध करता है उसके अजघन्य स्थिथिवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है श्रीर जो खस्थानमें इनका जघन्य स्थितिवन्ध करता है उसके इनके ग्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय ग्रौर उत्कृष्ट अन्तर ग्रन्त-र्मुहुर्त उपलब्ध होता है। इससे वह दो प्रकारका कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन श्रादि श्राठ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध यहां संयमके श्रिभमुख जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितियन्थके ग्रन्तरकालका निषेध किया है। तथा इस लेश्यामें सम्यक्तवका जघन्य काल ग्रन्तर्<u>भेह</u>र्त ग्रौर उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर होनेसे यहां इन प्रकृतियोंके ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। साता श्रादि प्रकृतियोंमेंसे कुछका यहां श्रप्रमत्तसंयत जीवके श्रीर कुछका प्रमत्तसंयत जीवके जघन्य स्थितिवन्ध होता है। यहां भी लेश्याके कालके भीतर दो वार जघन्य स्थितिवन्ध नहीं होता, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका निषेध किया है। इसी प्रकार ग्रागे भी खामित्वका विचारकर शेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य स्थितिवन्घका श्रन्तरकाल जान लेना चाहिए।

श्रन्तरकाल जान लान जाव रहि। स्ट्रिंग हानावरण, छह दर्शनावरण, स्नातावेदनीय, श्रस्नातावेदनीय, र्ध्र, श्रुक्ललेश्यामें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, स्नातावेदनीय, श्रस्तात्वेदनीय, पञ्चेन्द्रय जाति, तेजस श्रीर, कार्मण श्रीर, समचतुरस्र-चार संच्यान, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रातप, प्रश्स्तिवहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्राह्म, श्रग्रुम, सुभग, सुस्वर, श्राह्मय, यशःकोर्ति, श्रयशःकोर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र श्रुम, श्रग्रुम, सुभग, सुस्वर, श्राह्मय स्थितवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्ते है। स्त्यानगृद्धि तीन, वन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। स्थितवन्धका जघन्य श्रीर देवागुके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रम्तरकाल नहीं है। स्त्रीचेद, श्राठ कपाय श्रीर देवागुके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका श्रम्तरकाल नहीं है। स्त्रीचेद, गुंसकवेद, पांच संस्थान, पांच संहनन, श्रप्रशस्तिवहायोगिति, दुर्भग, दुःस्वर, श्रीर गुजादेयके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त श्रीर एक श्रनादेयके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त श्रीर एक श्रनादेयके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त श्रीर एक

१. मूलप्रती श्रणादेय णीचागो० जह० इति पाठः ।

उक्क एकत्तीसं सा० देस् ० । मणुसायु० देवभंगो । मणुसगिदपंचगस्स जह० जह० ग्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देस् ० । ग्रज० जह० एग०, उक्क० ग्रंतो० । देवगिद०४ जह० णित्थ ग्रंतरं । ग्रज० जह० ग्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । ग्राहार०२ [जह०] णित्थ ग्रंतरं । ग्रज० जह० [उक्क०] ग्रंतो० ।

२६२. भवसिद्धिया० त्रोघं। त्रव्यवसिद्धिया मदि०भंगो। सम्मादिद्दी० त्रोधि-भंगो। खइगस० पहमदंहत्रो त्रोधिभंगो। [त्रसादा० त्ररदि-सोग-त्र्राथर-त्रसभ-त्रज्ञस० जह० जह० त्रंतो०, उक्क० तेत्तीससाग० सादिरे०। त्रज० जह० एग०, उक्क० त्रंतो०।] त्रहक० जह० जह० त्रंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। त्रज० त्रोधिभंगो। [दो] त्रायु० उक्कस्सभंगो। मणुसगदिपंचगस्स देवगदि०४ सुक्कभंगो। त्राहार०२ जह० एत्थि त्रंतरं। त्रज० जह० त्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०।

समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका कुछ कम इकतीस सागर है। मनुष्यायुका भक्न देवोंके समान है। मनुष्याति पञ्चकके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवगित चतुष्कके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियोंका केंवल मिथ्यादृष्टि श्रीर सासाद्वसम्यग्दृष्टिके वन्ध होता है उनमेंसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारके श्रजधन्य स्थिति-वन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रीर स्त्रीवेद श्रादिके जधन्य श्रीर श्रजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है सो यह नौवं श्रैवेयकमें प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें मिथ्यादृष्टि रखकर ले श्राना चाहिए। तथा मनुष्यगितपञ्चकके जधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर देवोंमें प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें जधन्य स्थितिवन्ध कराके ले श्राना चाहिए। देवगितचतुष्कका देवोंके वन्ध नहीं होनेसे उत्कृष्ट श्रन्तर प्राप्त होता है।

२९२. भव्य जीवोंका भङ्ग श्रोघके समान है। श्रमव्य जीवोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। सम्यग्दियोंका भङ्ग श्रविध्ञानियोंके समान है। ज्ञायिकसम्यग्दियोंमें प्रथम द्रण्डकका भङ्ग श्रविध्ञानियोंके समान है। श्रसातावेदनीय, श्ररित, श्रोक, श्रस्थिर, श्रशुभ श्रीर श्रयशःकीत्तिके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रजघन्य स्थितिवन्ध जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुद्धर्त है। श्राठ कपायोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुद्धर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका भङ्ग श्रविध ज्ञानियोंके समान है। दो आयुश्रोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक श्रीर देवगित चनुष्कका भङ्ग श्रुक्कतेश्याके समान है। श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तर्मुद्धर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है।

१. मूलप्रतौ जह० श्रव्ज० गुव्धि इति पाठः।

रहरे. वेदगे धुविगाणं जह॰ हिदि० णित्थ श्रंतरं । श्रज॰ जह० उक्क॰ श्रंतो॰ । 'सादा॰-हस्स-रिद-थिर-सुभ-जस० जह० णित्थ श्रंतरं । श्रज० जह० एग०, उक्क॰ श्रंतो॰ । श्रसादा॰-श्ररिद-सोग-श्रथिर-श्रसुभ-श्रजस० जह० [जह॰] श्रंतो०, उक्क० छाविह साग० देसू॰ । श्रज॰ जह० एग०, उक्क॰ श्रंतो॰ । श्रहक० जह० जह० श्रंतो०, उक्क० छाविह०देसू॰ । श्रज॰ जह० श्रंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देसू॰ । दोश्रायु॰ उक्कस्सभंगो । मणुसगदिपंचगस्स जह० जह० श्रंतो०, उक्क० छाविहसाग० देसू॰ । श्रज॰ जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी । देवगदि०४ जह० णित्थ श्रंतरं । श्रज॰ जह० पित्ति। सोदि॰, उक्क० तेत्तीसं सा० । श्रथवा जह० जह० श्रंतो०, उक्क० छाविह-साग॰ देसू० । श्रज॰ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि॰ । श्राहारदुगं जह० हि॰ णित्थ श्रंतरं । श्रज॰ जह० तेत्तीसं सा० । तित्थय॰

विशेषार्थ — ग्रप्रत्याख्यानावरण चार ग्रौर प्रत्याख्यानावरण चारका जघन्य स्थितिवन्ध मनुष्यके होता है। जीव इनका जघन्य स्थितिवन्ध करके ग्रौर मर कर तेतीस सागरकी ग्रायुवाला देव होता है। पुनः वहाँसे ग्राकर ग्रौर मनुष्य होकर पुनः इनका जघन्य स्थितिवन्ध करता है उसके इनके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आहारकद्विकके ग्रजधन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले ग्राना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२९३. चेद्क सम्यक्त्वमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, हास्य,रति, स्थिर,शुभ, श्रीर यशःकीर्तिके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रसातावेदनीय त्रारति, शोक, श्रस्थिर, श्रश्चम श्रौर श्रयशःकीतिके जघृन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहर्त है। ग्राठ कषायोंके जघन्य स्थितियंन्घका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहुर्त है ग्रीर उत्हृए ग्रन्तर कुछ कम छ्यासट सागर है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृप्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। दो त्रायुत्रोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छथासठ सागर है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्कके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर साधिक एक पत्य है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। प्रथवा जघन्य स्थितियन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्भु हुत है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम छुवासठ सागर है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। ग्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। ग्रज-घन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर

१. मूलप्रतौ उनक० अंतो० पुन्वकोडी देसू० सादि० देवगदि० इति पाठः।

धुविगाहि सह काद्वा । धुविगाणं अथवा जह० जह० अंतो०, उक्क० छाविह० देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं आयु०-तित्थयरवज्जाणं सव्व-पगदीणं जह० हिदि० [जह०] अंतो०, उक्क० छाविह० देसू०। अज० ओधिभंगो। तित्थय० जह० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

है। तीर्थंद्वर प्रकृतिकी ध्रववन्धवाली प्रकृतियों के साथ गण्ना करनी चाहिये। अथवा ध्रुव-बन्धवाली प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमुंहूर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तमुंहूर्त है। ग्रायु ग्रौर तीर्थंकर प्रकृतिके सिवा ग्रेष सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमुंहूर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। ग्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर ग्रवधिक्वानके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थिति-बन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमुंहूर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। ग्रज्ञघन्य स्थितिबन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तमुंहूर्त है।

विशेषार्थ-वेदसम्यक्तवमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल दो प्रकारसे वतलाया है। सर्वप्रथम कृतकृत्यवेदक सम्यग्दिष्ट विविच्चित प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका खामी होता है इस दृष्टिको ध्यानमें रखक्कर श्रन्तरकाल कहा है। इस अपेज्ञासे ध्रवबन्धवाली प्रकृतियों श्रीर दूसरे दएडकमें कही गई साता श्रादि प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति, वन्धका श्रन्तर उपलब्ध नहीं होता है। वेदकसम्यक्त्वका उत्कृप्ट काल कुछ कम छवासठ सागर होनेसे यहाँ असाता आदिके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृप्ट अन्तरकाल कुछ कम छवासठ सागर कहा है। प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य स्थितिवन्ध करानेसे यह अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इसी प्रकार श्राठ कषायोंके जघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल प्राप्त करना चाहिए। संयमासंयम श्रौरसंयमका उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि होनेसे यहाँ श्राठ, कषायों-के अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिकहा है। मनुष्यगतिपञ्चकका जघन्य स्थितिबन्ध सर्वविशुद्ध देव श्रौर नारकीके होता है, इसलिए यहाँ इसके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर अन्तमु हूर्त कहां है, क्योंकि ये परिणाम श्रन्तमु हूर्तके वाद पुनः हो सकते हैं श्रीर यदि ये परिणाम वेदक सम्यक्तवके कालके प्रारम्भमें श्रीर अन्तमें होते हैं तो इनके जघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छ्रासठ सागर उपलब्ध होनेसे वह उक्क प्रमाण कहा है। तथा इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक सम्य है, इसिलए श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कहा है श्रीर जो वेदक सम्यग्दिए देव मर कर मनुष्य होता है श्रौर एक पूर्वकोटिप्रमाण श्रायुको बिताकर पुनः देव होता है उसके इन पाँच प्रकृतियोंके श्रजघन्य स्थितिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर एक पूर्वकोटि देखा जाता है, इस-लिए वह उक्त प्रमाण कहा है। देवगति चतुष्कका जघन्य स्थितिवन्ध जव कृतकृत्य वेद्क सम्यग्दृष्टिके होता है तब इसके अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होनेसे उसका निषेध किया है। और देवोंमें इन चार प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता, श्रतएव यहाँ श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य

१. जह० एग० श्रंतो इति पाठः ।

२६४. उनसम॰ पहमदंडम्रो म्रोधिभंगो । स्रसादा०-म्रहि-सोग-मणुसगिद-पंचगस्स० म्रिथर-म्रसभ-म्रजस० जह० जह० उक्क० म्रंतो० । स्रज जह० एग०, उक्क० म्रंतो० । म्रहक० जह० [म्रजह०] जह० उक्क० म्रंतो० । देनगिद०४-म्राहार०२-तित्थय० जह० एत्थि म्रंतरं । म्रज० जह० उक्क० म्रंतो० । एनिर तित्थय० म्रज० जह० एग०, उक्क० म्रंतो० ।

श्रन्तर साधिक एक पल्यप्रमाण श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। श्रथवा श्रप्रमत्तके इनका जघन्य स्थितिवन्ध मानने पर जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ जघन्य श्रन्तर प्रमत्त गुण्स्थानसे श्रन्तरित करके ले श्राना चाहिए श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर लानेके लिए कुछ कम छ्यासठ सागर कालके प्रारम्भमें श्रौर श्रन्तमें जघन्य स्थितिवन्ध करा कर ले श्राना चाहिए। इनके श्रज्ञधन्य स्थितिवन्धकाजधन्य श्रन्तर एक समय तक जघन्य स्थितिवन्ध करानेसे उपलब्ध होता है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर छाते समय उपश्म श्रेणो पर श्रारोहण करा कर श्रौर उतार कर देवगित चतुष्कके वन्धि होने के एक समय पूर्व मरण करा कर तेतीस सागरकी श्रायुवाले देवोंमें उत्पन्न करानेसे प्राप्त होता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार श्रागे भी श्रन्तरकालका विचार कर लेना चाहिये।

२९४. उपशमसम्यग्हिए जीवोंमें प्रथम द्ग्डिकका मङ्ग श्रविध्वानके समान है। श्रसातावेदनीय, श्ररित, शोक, मनुष्यगितपञ्चक, तथा श्रस्थिर, श्रश्चम और श्रयशःकीर्तिके जधन्य
स्थितिवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है। श्राड कषायोंके जधन्य श्रीर श्रज्ञधन्य
श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मुहुर्त है। श्राड कषायोंके जधन्य श्रीर श्रज्ञधन्य
स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है। देवगितचतुष्क, श्राहारकिक और तीर्थङ्कर प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रज्ञधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके श्रज्ञधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है।

विशेषार्थ—यहां देवगतिचतुष्क आदि सात प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध उपशम श्रेणीमें होता है, इसलिए उसके अन्तरकालका निपेध किया है और उपशमश्रेणीपर आरोहण कर उतरनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य और उत्कृप्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि अपूर्वकरणके विविद्यत भागमें इनकी वन्धव्युच्छित्ति होनेपर उपशम श्रेणीसे उतरकर पुनः उसी भागको प्राप्त होनेतक इन प्रकृतियों
का वन्ध नहीं होता । आहारकद्विकका अन्तरकाल प्रमत्तगुणस्थानमें लाकर और पुनः
अप्रमत्त गुणस्थामें ले जानेसे भी प्राप्त किया जा सकता है। मात्र जो जीव अपूर्वकरणमें एक
समयके लिए तीर्थङ्कर प्रकृतिका अबन्धक होकर और दूसरे समयमें मरकर देव होकर पुनः
उसका वन्ध करने लर्गता है उसके तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर
एक समय उपलब्ध होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

१. मूलप्रती जह० श्रंती० जह० इति पाठः।

२६५. सासरो तिरिण श्रायु० जह० श्रज० सत्थि श्रंतरं । सेसार्ण सन्वपग० जह० सिर्थ श्रंतरं । श्रज० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० ।

२६६. सम्मामि० धुविगाणं जह० अज० णित्य अंतरं । सादा०-हस्स-रिद-थिर-सुभ-जस० जह० णित्य अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तप्पिड-पक्ताणं जह० द्विदि० जहण्णु० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। मिच्छादिद्वी० मिद्द०भंगो।

्रह७. सग्णीसु पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-सत्तणोक०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० जह० हिदि० णित्थ अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०२-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० हिदि० णित्थ अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० वेछाविह साग० देसू०। एवं इत्थिवे० जह० हिदि० णित्थ अंतरं। अज० ओघं। अष्टंकसा० जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० प्रात्थ प्रंतरं। अज० जह० ग्रंतो०, उक्क० प्रवक्तीही देसू०। णवुंस०-पंचसंग०-पंचसंग०-

२९४. सासादनसम्यक्त्वमें तीन श्रायुश्रोंके जघन्य श्रीर ग्रजघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुहूर्त है।

२९६. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुचवन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य ग्रीर ग्रजधन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। सातावेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, ग्रुम ग्रीर यशःकीर्तिके जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। ग्रजधन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक. समय है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। तथा इनकी प्रतिपद्म प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर चन्धका जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। ग्रजधन्य स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

विशेषार्श—यहाँ खामित्वका विचारकर अन्तरकाल ले स्राना चाहिए।

२९७. संज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, वार संज्वलन, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्न संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविद्दायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अश्रुभ, स्थुमा, सुस्थर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तराय प्रकृतियांके जघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चारके जघन्य स्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अविदेके जघन्य स्थितवन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रश्नस्त

अप्पसंचि०-द्भग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० वेद्याविह० सादि० तिणिण पित्तदो० देस्व०। णिरय-देवायु० जह० [जह०] दस वस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० सगिहदी०। अज० अणु०मंगो। तिरिक्ख-मणुसायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० सगिहदी०। अज० जह० ज्ञंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। णिरयग०-णिरयाणु० जह० जह० अंतो०, उक्क० सगिहदी०। अज० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं०। तिरिक्खाण-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० णित्थ अंतरं। अज० ओघं। मणुसगिदिव्यादि-वेउव्वि०-वेउव्व० अंगो०-दोआणु०-उचा० जह० णित्थ अंतरं। अज० आह० णित्थ अंतरं। अज० जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० णित्थ अंतरं। अज० ओघं। आराजि०-ओराजि०अंगो०-वज्जिरसम० जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० णित्थ अंतरं। अज० जोघं। आराजि०-ओराजि०अंगो०-वज्जिरसम० जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० संतो०, उक्क० सगिहदी०।

विहायोगति, दुर्भग, दुःखर, ग्रनादेय ग्रौर नीचगोत्रके जघन्य स्थितवन्धका ग्रन्तरकाल नहीं है। श्रज्ञधन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृप्ट श्रन्तर साधिक दो छ्यासठ सागर ग्रीर कुछ कम तीन पल्य है। नरकायु ग्रीर देवायुके जघन्य स्थितियन्धका जघन्य ग्रन्तर साधिक दस हजार वर्ष है श्रौर उत्कृप्र ग्रन्तर ग्रपनी स्थितिश्माण है। ग्रज-घन्य स्थितिवन्धका भङ्ग अनुत्कृएके समान है। तिर्यश्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुत्तकभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्भुहर्त है और उत्कृप्ट अन्तर सी सागर पृथक्त प्रमाण है। नरकगति श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिवन्धका ज्ञचन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अज्ञघन्य स्थिति-वन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर एक सौ पचासी सागर है। तिर्यञ्ज-गति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उघोतके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितवन्धका अन्तर काल स्रोधके समान है। मनुष्यगित, देवगित, वैक्रियिक शरीर, वैक्रि-यिक ग्राङ्गोपाङ्ग, दो ग्रानुपूर्वी ग्रौर उचगोत्रके जघन्य स्थितवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। अज्ञचन्य स्थितियन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। चार जाति, ग्रातप ग्रौर स्थावर चारके जघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल नहीं है। अजधन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल ओधके समान है। श्रीदारिक शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य स्थितियन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रज-घन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल श्रोघके समान है। श्राहारकद्विकके जधन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रजधन्य स्थितिवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तर्भुहर्त है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर ग्रपनी स्थितिप्रमाण् है।

विशेषार्थ—यहाँ ग्रलग-ग्रलग प्रकृतियोंके जघन्य ग्रीर ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जो ग्रन्तरकाल कहा है उसका ग्रन्य मार्गणाग्रोंमें ग्रनेक बार स्पष्टीकरण कर आये हैं उसे देख-कर यहाँ ग्रन्तरकालका विचार कर लेना चाहिए। २६८. असएणीसु पंचणा०-णवदंसणा०-सादासादा०-भिच्छ०-सोलसक०-णव-णोक०-पंचनादि-तिरिणसरीर-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-वएण०४-अग्र०४-आदाव-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुगल-णिभि०-पंचंत० नह० नह० अंतो०, उक्क० असंखेज्ना लोगा। अन० नह० एग०, उक्क० अंतो०। चरु आयु०-वेचिवयछ०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० तिरिक्खोघं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-एज्नो०-णीचा० नह० नह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अन० नह० एग०, एक्क० अंतो०।

२६६. त्राहारगे खवगपगदीणं जह० णित्थ त्रंतरं । त्रज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि० ३-मिन्छत्त-अणंताणुविध०४-इत्थि० जह० जह० अंतो०, उक्क० सगिद्धदी० । अज० त्रोघं । णिहा-पचला-असादा०-छण्णोक०-पंचिदि०-तेजा०-क० समचदु०-वर्णण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-मुभामुभ-मुभग-सुस्सर-आदे०-[अजस०-]णिमि० जह० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अद्रक० जह० जह० त्रंतो०, उक्क० सगिद्धदी०। अज० अोघं । णवुंस०-पंचसंदा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा०

२९८. ग्रसंक्षी जीवोंमं, पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संहनन, ग्रौदारिक ग्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रातप, दो विहायोगित, त्रस ग्रौर स्थावर ग्रादि दस युगल, निर्माण ग्रौर पाँच ग्रन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर्मुहूर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रसंख्यात लोकप्रमाण है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है। चार ग्रायु, वैकियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वा, ग्रौर उच्चगोत्रके जघन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितवन्धका ग्रन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वा, उद्योत ग्रौर नोचगोत्रके जघन्य स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रन्तर काल है जो ग्रसंख्यात पुद्रल परिचर्तन प्रमाण है। ग्रजघन्य स्थितवन्धका जघन्य ग्रन्तर पक समय है ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर भन्तर्मुहूर्त है।

२९९. श्राहारक जीवोंमें जपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार और स्त्रीवेदके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर ओघके समान है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, छह नोकपाय, पञ्चिन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तिवहायोगिति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, स्रथ्न, सुभग, सुस्यर, आदेय, अयशःकीति और निर्माणके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर श्रङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिवन्धका अवन्तरकाल ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संह्नन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग,

जहण्णिट्टिदिवंधग्रंतरकालपरूवगानु

जह० हिदि॰ जह० श्रंतो॰, उक्क॰ सगिंदि। | श्रज॰ श्रोपे क्यार्य देवानु कि हिदि० जह॰ दसवस्ससहस्साणि सादि०, जक्क० सगिंदि। | श्रावे कि समियू॰, उक्क॰ वेसाग॰ सहस्साणि सादिरे॰ | श्रज॰ जह० इंतो०, उक्क० सगिंदिने॰ | श्रज॰ जह॰ श्रुंतो॰, उक्क० सगिंदिने॰ | श्रज॰ जह॰ श्रुंतो॰, उक्क० श्रुंतां कि श्रुंते। | श्रुंते। वे उित्वे व श्रुंते। वे उित्वे व श्रुंते। विरिक्ति । श्रुंते। विरिक्ति । श्रुंते। विरिक्ति । श्रुंते। विरुक्ति कि श्रुंते। विरुक्ति कि श्रुंते। विरुक्ति कि श्रुंते। विरुक्ति कि श्रुंते। विरुक्ति व श्रुंते। विरुक्ति व श्रुंते। श्रुंते। व श्रु

दुःखर,श्रनादेय श्रौर नीचगोत्रके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रौर उत्कृप्ट अन्तर श्रपनी स्थितिप्रमाण है। श्रज्ञघन्य स्थितिवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। नरकायु श्रौर देवायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर साधिक दस हजार वर्ष है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रपनी स्थितिप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम् हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अङ्गलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम चुलुकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो हजार सागर है। श्रज्ञघन्य स्थितिबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम् इर्त है श्रीर उत्कृप्ट ग्रन्तर सी सागर पृथक्त्व है। मनुष्यायुके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कम क्षुह्मक भवग्रह्ण प्रमाण है श्रीर उत्क्रप्ट श्रन्तर श्रपनी स्थितिप्रमाण है। श्रजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रङ्गलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिक छह, मनुष्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितियन्थका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तमुंहर्त है ग्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर ग्रपनी स्थितिप्रमाण है। ग्रजघन्य स्थितिवन्भका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्व कोटिवर्ष प्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी ग्रौर उद्योतके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त है ग्रीर उत्क्रप्ट ग्रन्तर ग्रपनी स्थितिप्रमाण है। ग्रजधन्य स्थितियनधका श्रन्तर काल श्रीघके समान है। चार जाति, ग्रातप ग्रौर स्थावर ग्रादि चारके जघन्य स्थितिवन्धका जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मु हुर्त है ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर ग्रपनी स्थितिप्रमाण है। ग्रजघन्य स्थितिवन्धका अन्तर काल **ओघके समान है।** श्रीदारिक शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वज्रर्पभनाराच संहननके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृप्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमागु है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल श्रोधके समान है। श्राहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्ते है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रपनी स्थितिप्रमाण है। श्रनाहारक जीवोंमें श्रपनी सव प्रकृतियोंके जघन्य ग्रौर ग्रजघन्य स्थितिवन्धका ग्रन्तर काल कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है।

भारतीय ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण यकाशन

[हिन्दी ग्रन्थ]

[16.01 X1.4]	
१. मुङ्गिदूत [उपन्यूमु]—ऋजना-पवनज्ञयकी पुरवगाधा	4)
२. पर्याचित् [स्वर्गीया वहिनके पवित्र संस्मरण श्रीर युगविश्लेषण]	
३. दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ	ર્શ
४. पाश्चात्य तर्कशास्त्र [ग्रप्राप्य]	ર્શ
५. शोरो-शायरी [उद्देक सर्वोत्तम १५०० शेर ग्रौर १६० नज्ञन]	³⁾ જો છો છો છો
६. मिलनयामिनी [बचनजीके नवीनतम गीत]	رد الا
 वैदिक साहित्य विदोंपर हिन्दीमं साधिकार मौलिक विवेचन] 	シ 81
प्त. मेरे वापू [महात्मा गाँधीके प्रति श्रद्धाञ्जलि]	ソ Sin
९. पंच प्रदीप [श्री शान्ति एम० ए० के मधुर गीत]	રા)
१०. भारतीय विचारधारा [भारतीय दर्शनका महत्त्वपूर्ण जन्य]	シ
११. ज्ञानगंगा [संसारके महान् साधकोंकी स्क्लियोंका ग्रज्ञय भरडार]	ર) ર) §
१२. गहरे पानी पैठ [स्क्रिल्पने ११८ मर्मत्यशीं कहानियाँ]	50 500
१३. वर्दमान [महाकाव्य]	711) 61
१४. होर-श्रो-सुखन [उर्दू शायरीका प्रामाणिक इतिहास]	9)
१४. जैन-जागरणके श्रय्रदूत	り
१६. हमारे त्राराध्य	シ
१७. संस्मरण	<u>ચ</u>
१८. रेखाचित्र	9
•	ရွ
 भारतीय ज्योतिष [ज्योतिष शास्त्रका प्रामाणिक प्रन्थ] रजतरिम [डॉ० वर्माके ५ एकांकी नाटक] 	(و
२१ - राजसारको अपने १ स्थानको साम्य	ال دال
२१. श्राकाशके तारे: धरतीके फूल २२. श्राभुतिक जैन कवि [श्रीमती रमा जैन]	
२२ जिल्लास्य जिल्लाम्य परिचय स्था विकेत्य कार्यसन्ते सन्य न्यानी	સામુ
२३. जैनशासन [नैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करनेवाली सुन्दर रचना] २४. जुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न [ऋध्यात्मवादका ऋद्भृत ग्रन्थ]	<u>ચ</u> સ્
२४. हिन्दी जैन साहित्यका संनिप्त इतिहास	3)
	शानु
[प्राकृत, संस्कृत ग्रंथ]	
२६. महावन्ध मिहाधवल तिद्धान्त शाल]-प्रथम भाग, हिन्दी श्रतवाद सहित	६२)
२७. महावन्ध—[महाधवल सिद्धान्तरास्त्र]—द्वितीय भाग	१रो
२८. करलक्खरा [समुद्रिक शास्त]-इत्तरेखा विज्ञानका नवीन प्रत्थ [स्टाक समाप्त]	3
२९. मदनपराजय [भाषानुवाद तथा ७८ पृष्ठकी विस्तृत प्रस्तावना]	り
३०. कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची	१३)
३६. न्यायविनिश्चय विवरण [प्रथम भाग]	<i>£</i> x)
३२. तत्त्वार्थवृत्ति [श्रुततागर स्रिरिंचित टीका । हिन्दी सार सहित]	かがかりかかかり
३३. ग्रादिपुराण भाग १ [भगवान् ऋषभदेवका पुण्य चरित्र]	
२४. त्रादिपुरास भाग २ [भगवान् ऋषभदेवका पुरस चरित्र]	१०)
३५. नाममाला सभाष्य	રાા
२६. केवलज्ञानपञ्चन्द्रहामणि [न्योतिप ग्रन्थ]	શ્રુ
रक रामान्य रामान्य रामान्य मिन्द्रास्तो	- 3)
and all [NAM]	777 5
३६. थिरुकुरल—तामिल माषाका पञ्चमवेद [तामिल लिपि] ४०. वसुनिन्द-श्रावकाचार	別のからめおえる
४१. तत्त्वार्थवातिक [रानगर्तिक] भाग १	্ৰ
	१२)
भारतीय जाजारित जार्यां के ———	८)वि० ९)
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुराड रोड, बनारस प्र	

हमारे सुरुचिपूर्गा प्रकाशन

[मूर्तिदेवी जैन संस्कृत, प्राकृत ग्रंथमाला]

१. महावन्घ [महाघवल सिद्धान्त]	१२)
२. मदन पराजय	ζj
३. कञ्चड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रंथसूची	رَ₹۶
४. न्यायविनिश्चय विवरण [प्रथम भाग]	શ્ યું
५. तत्त्वार्थवृत्ति [हिन्दीसार सहित]	શ્ ક્ર્)
६. सभाप्य रत्नमंजूपा	શ્રે
७. नाममाला सभाष्य	راا\$
८. केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	Ý)
९. म्रादिपुराण [प्रथम भाग]	१०)
१०. म्रादिपुराण [द्वितीय भाग]	१०)
११. वसुनन्दि-श्रावकाचार	4)
१२. तत्त्वार्यवार्तिक [राजवार्तिक] भाग १	१२)
१३. समयसार [श्रंग्रेजी]	(ب
१४. विरूकुरल (तामिल भाषाका पंचमवेद)	4)
१५. जातक (प्रथम भाग) मूल ग्रहकया सहित सा० मू० ८) वि	० मू० ९)
[मूर्त्तिदेवी जैन हिन्दी ग्रंथमाला]	•
~ **	३॥गु
१. श्राधुनिक जैन कवि	₹J
२. जैन शासन [द्वितीय संस्करण] ३. हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास	7111FJ
इ. हिन्दा जन साहित्यका तायाचा राजहार	શું
४. कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रतन	9
[लोकोदय हिन्दी ग्रंथमाला]	
१. मुक्तिदूत [पीराणिक रोमांस]	<i>ل</i> ا 3 :
२. दो हजार वर्ष पुरानी कहानियों	₹) 3:
३. पथचिह्न [स्मृति रेखाएँ]	શ
४. शेर-म्रो-शायरी [दितीय संस्करण]	<i>(</i>)
५. मिलन यामिनी [गीत]	8)
६. वैदिक साहित्य	2111 5)
७. मेरे वापू	રામ
८. पंच-प्रदीप [गीत]	<i>₹)</i>
९. भारतीय विचारघारा	ર) ફ)
१०. ज्ञानगंगा [श्रेष्ठतम सुन्तियां]	עוד עוד
११. गहरे पानी पैठ	` ξ)
१२. वर्द्धमान	4)
१३. होर-म्रो-सुखन [भाग १]	4)
१४. जैन-जागरणके अप्रदूत	₹
१५. हमारे ग्राराध्य	રાંપ્ર
१६. रजतरिम	ĘĴ
१७. भारतीय ज्योतिप	
१८. संस्मरण	ગ ચ ૪)
१९. श्राकाशके तारे: घरतीके फूल	رُلا
२०. रेखाचित्र	ט בננ
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुएड रोड, बना	1771 4
	~ ~~~



